प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास

लेखक

डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी, एम० ए०, पी-एच०डी०

कि ता ब म ह ल, इ ला हा बा द

१ ६ ७ १

दो शब्द

इस ग्रंथ का उद्देश्य परीक्षित के राज्यारोहण से गुप्त-वंश के अन्त तक के प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास की एक झांकी प्रस्तुत करना है। इसकी प्रेरणा मुझे अपने समसामयिक इतिहासकारों की एक विशेष प्रवृत्ति से मिली है। उन्होंने भरत के युद्ध से बौद्धमत के विकास-काल तक के ऐतिहासिक तथ्यों को विशिष्ट कालानुक्रम में बँधे पाने में असमर्थ बताते हुए उनके साथ उचित न्याय नहीं किया है। अतएव, मैंने वही दुस्तर कार्य करना श्रेयस्कर समझा है; और, प्रस्तुत सामग्री को प्राचीन भारत के कालानुक्रमिक इतिहास के रूप में सामने रखने की चेष्टा की है। इस इतिहास में मैंने अब तक उपेक्षित भरतोत्तर काल को तो सम्मिलित किया है, पर कन्नौज राज्य के सम्पूर्ण काल को छोड़ दिया है। यह काल मध्ययुगीन भारत के इतिहासकारों का विषय है।

इस प्रकार यह ग्रंथ दो भागों में विभाजित है। पहले भाग में वैदिक, महाकाव्यात्मक, पौराणिक, जैन, बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर परीक्षितोत्तर-पूर्व बिम्बिसार-युग के राजनीतिक उतार-चढ़ाव का इतिवृत्त सँजोने का प्रयत्न किया गया है; और, यह इतिवृत्त इस प्रकार सँजोया गया है कि यह बिम्बिसारोत्तर युग के विनिमय से किसी भी भाँति कम बोधगम्य न हो। साथ ही, इस भाग के अन्त में ब्राह्मण-जातक-काल के राजतंत्र पर भी एक छोटा अध्याय जोड़ दिया गया है। दूसरे भाग में बिम्बिसार से गुप्त-सम्राटों तक के काल का इतिहास है। यह सामग्री, एक सीमा तक, डॉक्टर स्मिथ द्वारा प्रस्तुत सामग्री से अधिक पूर्ण और समीचीन है। और, इस सामग्री से भी परिचयात्मक पद्य उद्धृत कर इसे और भी महत्त्व-पूर्ण बना दिया गया है। इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत के कवि मनीषी अपने चारों ओर के राजनीतिक उत्थान-पतन के प्रति प्रायः असावधान एवं उदासीन नहीं रहते थे।

वैसे मैंने यह तो कभी चाहा ही नहीं कि यह कृति भारत के हर प्रान्त और हर राज्य के राजनीतिक एवं वंशगत इतिहास का व्यापक इतिवृत्त हो। मेरी दृष्टि तो मुख्यतया उन राज्यों और साम्राज्यों पर ही रही, जिनके प्रभावों ने क्षेत्रीय सीमायें तोड़ दीं, और जिनका देश की राजनीतिक घटनाओं की सामान्य

गति पर अपना दबाव रहा। मात्र स्थानीय महत्त्व के राजवंशों का मैंने उल्लेख भर किया है, क्योंकि गुप्त-काल के पहले इनकी कोई अखिल भारतीय स्थिति नहीं थी। हाँ, गुप्त-काल के बाद ऐसा अवश्य हुआ कि किसी जयदेव-पराचक्र-काम के भारत के अन्दर के भागों के कतिपय शासकों से वंशगत सम्बन्ध रहे, कोई ललितादित्य विजयों पर विजयें करता कन्नौज तक आ गया और किसी राजेन्द्र चोला ने गंगा के तट तक अपने हाथ-पैर पसार लिये।

इसके अतिरिक्त मेरा ऐसा कोई दावा नहीं कि परीक्षित से बिम्बिसार के काल तक की सामग्री भी उनकी ही प्रमाणित है, जितनी कि मौर्य-वंश के सम्राटों से सम्बन्धित या गुप्त-वंश के सम्राटों से सम्बन्धित। इसका कारण स्पष्ट है। तत्कालीन राजवंशों से सम्बन्धित जो भी सामग्री मिलती है, वह उतनी अधिक विश्वसनीय या प्रामाणिक नहीं उतरती।

जहाँ तक मुझ से बन पड़ा है, मैंने इस सम्बन्ध में हुई तमाम खोजों से लाभ उठाने की चेष्टा की है। कुछ राजवंशों—विशेषतया सीथियन-काल के राजवंशों—से सम्बन्धित प्रश्नों पर मैंने अनेक बार विचार किया है और शाहदौर, मैरा, खालात्से, नागार्जुनीकोंडा, गुणाइघर और ऐसे ही दूसरे स्थानों से प्राप्त शिलालेखों का अध्ययन कर पुस्तक में नयी सामग्री जोड़ी है। साथ ही, विवादास्पद विषयों में अपनी दृष्टि-विशेष स्पष्ट करने के लिए पाद-टिप्पणियाँ और अनुक्रमणिकायें दी हैं।

मैंने इस प्रकार हर बार नयी से नयी उपलब्ध सामग्री पुस्तक में सम्मिलित की है और थोड़ी-सी भी पुरानी पड़ गई सामग्री पुस्तक से निकाल दी है।

यहाँ श्री अडवानी और अन्य व्यक्तियों द्वारा भिल्सा से प्राप्त कुछ ताम्र-सिक्कों का उल्लेख आवश्यक है। इनकी सीधी ओर सिंह अंकित है और सम्राट् का नाम 'रामगुप्त' पढ़ा गया है। पर, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित स्थापना अभी तक नहीं हो सकी है। बात यह है कि उपलब्ध साक्ष्य से स्पष्ट नहीं होता कि यह 'रामगुप्त' कोई स्थानीय राजकुमार था, अथवा गुप्त-सम्राटों का कोई सीधा वंशधर। यही प्रयाग-विश्वविद्यालय द्वारा कराई गई कौशाम्बी की खुदाई में घोष्ठीराम-मठ से प्राप्त बताई गई एक मुद्रा-विशेष की भी चर्चा अपेक्षित है। मुद्रा पर प्रसिद्ध हूण-शासक तोरमाण का नाम है और इससे कृष्ण-तृतीय राष्ट्रकूट के समकालीन जैन सोमदेव के इस साक्ष्य की पुष्टि होती है कि हूण गंगा की घाटी में बहुत दूर तक घुसते चले गये थे। चिओनिताई के

प्रमबेटम को कई विद्वानों ने कुषाण-शासक माना है; पर, इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता।

सारांश यह है कि इस देश के आरम्भिक इतिहास के वर्णपट के कुछ अदृश्य बिन्दुओं पर अब तक घनांधकार का जो गहरा पर्दा पड़ा हुआ है, उसे किसी जादूगर की छड़ी या ओझा के मंत्र-तंत्र से नहीं हटाया जा सकता। यदि ऐसा चमत्कार किसी प्रकार सम्भव हो, तो भी लेखक के रूप में मुझे यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि मुझ में ऐसी कोई विलक्षण क्षमता नहीं है।

—लेखक

अपनी ओर से

भारत के प्राचीन राजनैतिक इतिहास के विषय मे अँग्रेजी में देशी-विदेशी लेखकों की अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं। किन्तु, हिन्दी में कुछ पुस्तकों के होने पर भी किसी प्रामाणिक एवं श्रेष्ठ पुस्तक का अभाव सदा ही खटकता रहा है और विद्यार्थी-वर्ग को बड़ी कठिनाई और उलझन का सामना करना पड़ता रहा है। उसी अभाव की पूर्त्ति के उद्देश्य से इतिहास के प्रकाण्ड पंडित डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी की 'Political History of Ancient India' का हिन्दी-रूपान्तर 'प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास' विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत है।

इसके अनुवाद-कार्य में मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। वैसे अनुवाद का कार्य ही अपने आप मे कुछ कम दुस्साध्य नही—उस पर पारिभाषिक शब्दावली की समस्या और भी विकट !...प्रस्तुत पुस्तक में नामों में एकरूपता लाना भी बड़ा जटिल कार्य लगा, क्योंकि अँग्रेज़ी और हिन्दी में उच्चारण-वैविध्य इतना अधिक है कि कभी-कभी बड़ी निराशा का अनुभव हुआ। मूल पुस्तक में ही प्रायः ऐसे अनेक शब्द है, जिनके उच्चारण में साम्य नहीं है। इस सब के बावजूद, प्रयास यही रहा है कि यह कार्य अच्छे से अच्छे रूप में सामने आये।

पुस्तक की भाषा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। सम्पूर्ण विषय सहजता और सादगी के साथ प्रतिपादित किया गया है, ताकि पुस्तक विद्यार्थियो के लिए अधिक सुगम और सुबोध हो सके।

सुझाव अपेक्षित हैं। उनका स्वागत होगा और अगले संस्करण के समय उन पर निश्चय ही विचार किया जायेगा।

— **प्रकाशक**

विषय-सूची

भाग १ :(परीक्षित के राज्यारोहण से बिम्बिसार के राज्यारोहण तक)

अध्याय १. प्रस्तावना

अध्याय २. कुरु तथा विदेह

अध्याय ३. राजतन्त्र तथा महाजनपद

भाग २: (बिम्बिसार के राज्याभिषेक से मौर्य-वंश के अन्त तक)

अध्याय ४. प्रस्तावना

अध्याय ५. मगध का उत्थान

अध्याय ६. फ़ारस और मैसीडोनिया के आक्रमण

अध्याय ७. मौर्य-साम्राज्यः दिग्विजय का युग

अध्याय ८. मौर्य-साम्राज्य : धम्म-विजय का युग और उसका ह्रास

अध्याय ६. बैम्बिक-शुंग-शासन और बैक्ट्रियन यूनानी

अध्याय १०. मगध तथा भारत-यूनानी राजसत्ताओं का पतन

---

१. इस पुस्तक में 'भारत' से अभिप्राय सामान्यतः उस समस्त क्षेत्र से है जो १५ अगस्त १६४७ तक उस नाम से जाना जाता रहा है।

अध्याय ११. उत्तर भारत में सीथियन-शासन

अध्याय १२. दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत में सीथियन शासन

अध्याय १३. गुप्त-साम्राज्य : गुप्त-शक्ति का उदय

अध्याय १४. गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः): विक्रमादित्यों का युग

अध्याय १५ : गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः): उत्तर गुप्त-सम्राट्

वंशानुक्रमिक एवं समकालिक सारणियाँ

परिशिष्ट, अनुक्रमणिका आदि

मानचित्र

ABBREVIATIONS

A. G. I. —Ancient Geography of India.

A. H. D —Ancient History of the Deccan.

A. I. H. T. —Ancient Indian Historical Tradition.

A. I. U. —The Age of Imperial Unity (Bharatiya Vidya Bhawan).

Alex. —Plutarch's Life of Alexander.

A.H.M. —Age of the Nandas and Mauryas (Pub. Motilal Banarsi Dass for the Bharatiya Itihas Parishad.)

Ann. Bhand. Ins.—Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute.

Arch. Rep. —Archaeological Survey Report.

A. R. —Annual Report.

A.R.I. —Aryan Rule in India.

A. S. I. —Archaeological Survey of India.

A. S. R. (Arch. Surv. Rep.) —Reports of the Archaeological Survey of India.

A. S. W. I. —Archaeological Survey of Western India.

Bhand. Com. Vol. —Bhandarkar Commemoration Volume.

B. K. S. —Book of Kindred Sayings.

Bomb. Gaz. —Bombay Gazetteer.

Bund. Ind. —Buddhist India.

C. —Central.

C. A. H. —Cambridge Ancient History.

Cal. Rev. —Calcutta Review.

Camb. Ed. —Cambridge Edition.

Camb. Hist. Ind. (C. H. I.) —Cambridge History of India (Vol. I)

Carm. Lec. —Carmichael Lectures, 1918.

Ch. (Chap.) —Chapter.

C. I. C. A. I.—Catalogue of Indian Coins, Ancient India.

C. I. I. (Corpus) —Corpus Inscriptionum Indicarum.

Com. Vol. —Commemoration Volume.

Cunn. —Cunningham.

Dialogues —Dialogues of the Buddha.

D. P. P. N. —Dictionary of Pali Proper Names (Malalasekera).

D. K. A. —Dynasties of the Kali Age.
D. U. —Dacca University.
Ed. —Edition.
E. H. D. —Early History of the Dekkan.
E. H. I. —Early History of India.
E. H. V. S. —Early History of the Vaishnava Sect.
Ep. Ind. —Epigraphia India.
Gandhara (Foucher) —Notes on the Ancient Geography of Gandhara.
Gaz. —Gazetteer.
G. B. I. —The Greeks in Bactria and India.
G. E. I. —(The) Great Epic of India.
G. O. S. —Gaekwar Oriental Series.
H. & F. —Hamilton and Falconer's Translation of Strabo's Geography.
H. C. I. P.—The History and Culture of the Indian People (Bharatiya Vidya Bhawan).
H. F. A. I. C. —History of Fine Art in India and Ceylon.
Hist. N. E. Ind.—History of North Eastern India.
Hist. Sans. Lit. —(A) History of Sanskrit Literature.
H. O. S. —Harvard Oriental Series.
Hyd. Hist. Cong. —Proceedings of the Indian History Congress, (Hyderabad 1941).
I. H. Q. —Indian Historical Quarterly.
Ind. Ant. (I. A.) —Indian Antiquary.
Ind. Lit. —History of Indian Literature.
Imp. Gaz. —Imperial Gazetteer.
Ins. —Inscriptions.
J. A. (Journ. As.) —Journal Asiatique.
J. A. H. S.—Journal of the Andhra Historical Society.
J. A. O. S.—Journal of the American Oriental Society.
J. A. S. B.—Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal.
J. B. Br. R. A. S. —Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society.
J. B. O. R. S. —Journal of the Bihar and Orissa Research Society.
J. I. H. —Journal of Indian History.
J. N. S. I.—Journal of the Numismatic Society of India.

J. R. A. S. —Journal of the Royal Asiatic Society (Great Britain).

J. R. N. S. —Journal of the Royal Numismatic Society and the Numismatic Chronicle.

J. U. P. H. S. —Journal of the United Provinces Historical Society.

Life —(The) Life of Hiuen Tsang.

M. A. SI. —Memoirs of the Archaeological Survey of India.

Med. Hind. Ind. —Mediaeval Hindu India.

Mod. Rev.—Modern Review.

M. R. —Minor Rock Edicts.

N. H. I. P. —The New History of the Indian People (Vol. VI).

N. Ins. —(A) List of Insriptions of North India.

Num. Chron.—Numismatic Chronicle.

O. S. (Peuzer) —The Ocean of Story.

P. A. O. S. —Proceedings of the American Oriental Society.

Pro. Or. Conf. —Proceedings of the All India Oriental Conference.

R. D. B. —Rakhal Das Banerji.

R. P. V. U. —Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads.

S. B. E. —Sacred Books of the East.

Sec. —Section.

S. I. I. —South Indian Inscriptions.

S. Ins. —(A) List of Inscriptions of Southern India.

. S. P. Patrika —Vanijya Sahitya Parishad Patrika.

Ved. Ind. —Vedic Index.

Vizag. Dist. Gaz. —Vizagapatam District Gazetteer.

Vogel Valume —A Volume of Oriental Studies presented to Jean Philippe Vogel (1947).

Z. D. M. G. —Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft.

भाग १

(परीक्षित के राज्यारोहण से बिम्बिसार
के राज्यारोहण तक)

प्रस्तावना | १

१. प्राक्कथन

कोई भी थ्यूसीडाइड्स या टैसीटस अभी तक ऐसा नहीं हुआ जिसने भावी पीढ़ी को सामने रक्खा हो और प्राचीन भारत के वास्तविक इतिहास पर किसी तरह का कोई प्रकाश डाला हो। फिर भी, अनेक विद्वानों तथा पुरातत्ववेत्ताओं के धैर्ययुक्त अनुसन्धानों के फलस्वरूप हमारे सामने भारत के प्राचीन इतिहास के पुनर्गठन के लिये तथ्यों का प्रचुर भण्डार उपस्थित है। सर्वप्रथम डॉक्टर विन्सेन्ट स्मिथ ने इस सतत् अभिवृद्धिशील ज्ञान-भण्डार की एक-एक वस्तु को छाँटने, उसे क्रमबद्ध तथा संचित करने का उल्लेखनीय प्रयास आरम्भ किया। किन्तु, महान् इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ यमुना के तट पर कौरवों तथा पाण्डवों के बीच हुए महाभारत के युद्ध के तुरन्त बाद के युग की उपेक्षा कर गये, क्योंकि उन्हें तत्सम्बन्धी कथाओं में कोई गम्भीर इतिहास नहीं मिला। डॉक्टर स्मिथ ने सातवीं शताब्दी ईसापूर्व के मध्य से अपना इतिहास आरम्भ किया। परन्तु, इस पुस्तक के लेखक का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय इतिहास के उपेक्षित कालों, जातियों व राजवंशों के इतिहास की एक निश्चित रूपरेखा तैयार करना है। अतः मैं महाभारत के युद्ध के बाद हुए राजा परीक्षित के राज्याभिषेक (पुराणों के अनुसार) से अपना कार्य आरम्भ कर रहा हूँ।

परीक्षित-काल तथा उत्तर परीक्षित-काल के सम्बन्ध में वीबर, लासेन, ईर्गलिंग, कालैण्ड, ओल्डेनबर्ग, जैकोबी, हाप्किन्स, मैकडोनेल, कीथ, रीज, डेविड्स, फ़िक, पार्जिटर, भण्डारकर तथा अन्य इतिहासकारों ने पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है, किन्तु ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर साहित्य से उपलब्ध सामग्री के आधार पर परीक्षित से बिम्बिसार तक के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा तैयार करने का प्रयास अगले पृष्ठों में पहली ही बार किया जा रहा है।

२. मूलस्रोत

दुर्भाग्यवश उत्तर परीक्षित-काल या पूर्व बिम्बिसार-काल का ऐसा कोई भी शिलालेख या सिक्का इस समय उपलब्ध नहीं है जिसका कि निश्चयात्मक ढंग से उल्लेख किया जा सके। दक्षिण भारत से प्राप्त जो धातु-पत्र जन्मेजय-काल[1] के समझे जाते रहे हैं, वे अब कल्पित या असत्य प्रमाणित हो चुके हैं। अतः हमें मुख्य रूप से साहित्यिक सामग्री (वेदों तथा उपनिषदों) पर ही निर्भर करना पड़ेगा। इसे भी दुर्भाग्य ही कहिये कि इन वेदों और उपनिषदों की पुष्टि में पाश्चात्य विद्वानों के जो लेख या उद्धरण उत्तर बिम्बिसार-कालीन इतिहास को पुनर्जीवित करने में किसी पुरातात्त्विक अनुसन्धान से भी अधिक सहायक सिद्ध हो सकते थे, वे भी हमें पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते। इसमें सन्देह नहीं कि मोहनजोदड़ो व हड़प्पा में हुई खोजों से प्राचीन भारत के इतिहास से सम्बन्धित वेदों व उपनिषदों की उक्तियों की पुष्टि होती है; किन्तु, इस अनुसन्धान-कार्य से पूर्व परीक्षित-काल की सौफीर-सम्यता (Sophir, Ophir)[2] का पता चलता है। इसके अतिरिक्त मोहनजोदड़ो व हड़प्पा के उत्खनन से जो कुछ प्राप्त हुआ है, उससे तत्कालीन राजनैतिक इतिहास की जानकारी के लिये कोई सामग्री नहीं मिलती। मुख्यतः मध्यदेश या गंगा की घाटी के बारे में तो कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

वैसे उत्तर परीक्षित-काल तथा पूर्व बिम्बिसार-काल के इतिहासकारों के लिये उपयोगी भारतीय साहित्य को ५ वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१. उत्तर परीक्षित तथा पूर्व बिम्बिसार-काल का ब्राह्मण-साहित्य—प्राचीन जातियों या राजवंशों से सम्बंधित ब्राह्मण-साहित्य—से बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। इस साहित्य में निम्न ग्रन्थ सम्मिलित हैं—

(अ) अथर्ववेद का अन्तिम भाग।

(ब) 'ऐतरेय', 'शतपथ', 'पंचविंश' तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थ।[3]

(स) 'बृहदारण्यक' का अधिकांश, 'छांदोग्य' तथा अन्य उपनिषद्।

उपर्युक्त ग्रन्थ उत्तर परीक्षित-काल के हैं। यह तथ्य इसलिये भी प्रामाणिक है कि इनमें राजा परीक्षित, उनके पुत्र जन्मेजय तथा जन्मेजय के उत्तराधिकारी

१. *Ep. Ind.* VII. App., pp. 162-163; IA, III, 268; IV, 333.

२. Cf. IA, XIII. 228; I. *Kings*. 9, 28; 10, 11.

३. शतपथ ब्राह्मण के १३वें काण्ड के गीतों एवं गाथाओं का विशेष महत्त्व है। ऐतरेय की अष्ठम् पंचिका भी महत्त्वपूर्ण है।

का बार-बार उल्लेख आया है। इन ग्रन्थों में विदेह के जनक का भी उल्लेख है। जनक के दरबार में ऋषियों-महर्षियों ने एकत्रित होकर राजा परीक्षित के वंश पर विचार-विमर्श किया था। उपर्युक्त ग्रन्थ बुद्ध के भी पहले के हैं। इसलिये निश्चय ही ये पूर्व बिम्बिसार-काल के हैं। डॉक्टर राजेन्द्र लाल मित्रा[1] तथा प्रोफेसर मैकडोनेल[2] के कथनों से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

२. दूसरे वर्ग में ब्राह्मण-साहित्य का वह भाग आता है जिसका कोई काल निश्चित नहीं किया जा सकता। परन्तु, विद्वानों के मतानुसार इस वर्ग का साहित्य उत्तर बिम्बिसार-काल का है। इसमें रामायण, महाभारत और पुराण आते हैं। तत्कालीन रामायण २४ हजार श्लोकों या पदों[3] का था। कात्यायनी-पुत्र-कृत 'ज्ञान-प्रस्थान' की टीका 'महाविभाषा' के अनुसार, प्रथम या द्वितीय शताब्दी में रामायण में केवल १२ हजार श्लोक[4] थे। इसमें बुद्ध तथागत[5] का ही नहीं, वरन् यवनों (यूनानियों) और शकों (सीथियन्स) से हुए हिन्दुओं के संघर्ष 'शकान् यवन मिश्रितान्'[6] का भी स्पष्ट उल्लेख है। रामायण के किष्किन्धा कांड[7] में सुग्रीव ने यवनों के देश तथा शकों के नगरों को कुरुदेश व मद्रास के बीच बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय यवनों व शकों (यूनानी व सीथियन्स) का पंजाब के भूभागों पर अधिकार था। लंका-काण्ड[8]

---

१. छांदोग्य उपनिषद् का अनुवाद, p. 23-24.

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, p. 189, 202-203, 226.

३. १. ४. २—चतुर्विंश सहस्राणि श्लोकानाम् उक्तवान् ऋषिः।

४. *JRAS*, 1907, pp. 99 ff. Cf. *Bunyiu Nanjio's Catalogue*, No. 1263.

५. II. 109. 34.

६. I. 54. 21.

७. IV. 43. 11-12. दक्षिण के वैजयन्तपुर का भी उल्लेख आया है। (II. 9. 12), द्रविड़ (*Ibid*. 10.37), मलय और दर्दुर (*Ibid*., 91. 24), मुरचीपत्तन (Muzris, Cranganore, IV 42. 3), दकन के निवासियों के रीति-रिवाज (II. 93. 13), यवद्वीप (जावा) सात उन्नतिशील राज्य, सुवर्णद्वीप (सुमात्रा) (IV. 40. 30) में तथा कर्कटक लग्न (II. 15. 3)।

८. 69. 32; Cf. मत्स्य, 249, 53; भागवत, X. 25; महाभारत III. 101. 15.

में 'मन्दराचल' या गोवर्द्धन को उठाने का भी उल्लेख 'परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन्'[1] के रूप में मिलता है।

महाभारत के सम्बन्ध में हाप्किन्स[2] ने लिखा है कि महाभारत-काल में बुद्ध का प्रभाव घट चुका था। उक्त तथ्य ग्रन्थ के उन अवतरणों से सिद्ध होता है, जिनमें 'एडुकों' (बौद्ध-स्मारकों) की ओर तिरस्कारपूर्ण ढंग से संकेत किया गया है, और कहा गया है कि 'एडुकों' के आगे देवताओं के मन्दिर समाप्त हो गये (III. 190. 65)। संकेतों में यह भी कहा गया है कि लोग देवताओं को छोड़कर 'एडुकों' की पूजा करने लगेंगे और यह धरती देवालयों से विभूषित होने के स्थान पर 'एडुकों' से पट जायगी।

ग्रन्थ में यूनानियों को पश्चिमी देशों का निवासी बतलाया गया है और उनके पतन की ओर संकेत किया गया है। इसमें रोमन्स (रोमकों) का भी एक बार उल्लेख मिलता है (II. 51.17)। रोमन्स और यूनानी तथा पार्सियन (पह्लवों) के बीच एक स्पष्ट भिन्नता का संकेत है। शकों, यवनों व बैक्ट्रियन्स के बारे में एक निश्चित भविष्यवाणी की गई है कि आने वाले भयानक युग में ये जातियाँ बड़े अनाचारपूर्ण ढंग से राज्य करेंगी (*III. 188.35*)। ये उद्धरण स्पष्ट हैं, और अपने आप में काफ़ी हैं।

महाभारत के आदिपर्व[3] में सम्राट् अशोक का 'महा असुर' के अवतार' के रूप

---

१. अन्य पौराणिक संदर्भों के लिये *Calcutta Review*, March, 1922, pp. 500-502. देखिये। सुत्ती के लिये Hopkins, *JAOS*. 13, 173 and for 'empire' रामायण, II. 10. 36. देखिये।

२. *The Great Epic of India*, pp. 391-93.

३. I. 67.13-14. Cf also XII. 5. 7. जहाँ अशोक का शतधन्वन् के साथ उल्लेख आया है।

४. यह महत्वपूर्ण या दिलचस्प प्रसंग है कि मार्कण्डेय पुराण (८८.५) के देवी-माहात्म्य में मौर्यों को एक प्रकार का असुर कहा गया है—

कालका दौरहृता मौर्याः कालकेयास्तथासुराः
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम।

कालक, दौरहृत, मौर्य तथा कालकेय असुरों को मेरे आदेश पर आगे बढ़ने दो। लड़ाई के लिये तैयार रहो।

सुरद्विषाम् (देवताओं के शत्रु अर्थात् असुर) शब्द भागवत पुराण (१. ३. २४.) में उन लोगों के लिये प्रयुक्त हुआ है जो बुद्ध द्वारा बहकाये गये हैं।

में उल्लेख किया गया है। अशोक को 'महावीर' व 'अपराजित' भी कहा गया है। इसमें एक यूनानी सामन्त 'सौवीर के यवनाधिप' और उसके साथी 'दत्तमित्र' (Demetrios) का भी उल्लेख है।[१] शान्ति-पर्व में 'मालिनी' नगर को अंगराज्य (मगध के अन्तर्गत) में मिलाये जाने की भी चर्चा है।[२] यहीं पर 'निरुक्त'[३] के ग्रन्थकार यास्क (सम्भवतः चौथी या पाँचवीं शताब्दी[४] के), सांख्य-दर्शनवेत्ता वार्षगण्य[५] एवं कौटिल्य के मुख्य शिष्य माने जाने वाले अर्थ तथा धर्म वेत्ता कामन्दक[६] का भी उल्लेख मिलता है।

१००० ईसवी सन् के अलबेरूनी, ६०० ईसवी सन् के राजशेखर तथा ५०० ईसवी सन् के पूर्व के महाभारत के संग्रहकर्त्ता को १८ पुराणों[७] की निश्चित जानकारी थी। महाभारत के उपलब्ध मूल में जहाँ कलियुग के राजाओं की सूची है, वहीं आन्ध्र तथा उत्तर आन्ध्र के राजाओं का भी उल्लेख है। ६०० ईसवी सन् के बाण ने भी कुछ पौराणिक तिथियों की चर्चा की है। अतः महाभारत को *तृतीय-चतुर्थ शताब्दी के पूर्व का नहीं कहा जा सकता।*

---

१. महाभारत, I. 139. 21-23.

२. 5. 1-6.

३. 342. 73.

४. 318. 59.

५. *JRAS*, 1905, pp. 47-51; Keith, सांख्य-प्रणाली, pp. 62,63, 69.

६. शान्ति, 123. 11.

७. Cf. अलबेरूनी, Ch. XII; प्रचण्ड पाण्डव ed. by Carl Cappeller, p. 5 (अष्टादश पुराण सार-संग्रहकारिन्); महाभारत, XVIII. 6.97; हर्षचरित, III (p. 86 of Parab's ed., 1918); पवमान-प्रोक्त पुराण, *i.e.* वायुपुराण; Cf. सकल पुराण राजर्षि चरिताभिज्ञः (III. 87) और हरेरिव वृषविरोधीनि बालचरितानि (II. 77); *EHVS*, दूसरा संस्करण, pp. 17, 70, 150। अठारहों पुराण का सार-संग्रह राजशेखर-कृत है। इससे सिद्ध होता है कि पुराणों की रचना नवीं शताब्दी के पूर्व ही हुई थी, मंगलेष के नेरूर-शिलालेख के अनुसार कुछ पुराण छठवीं शताब्दी में भी थे (IA, VII. 161—मानव पुराण रामायण भारत इतिहास कुशलः वल्लभः, i.e. पुलिकेशी प्रथम)। मत्स्य पुराण सबसे पुराने पुराणों में से एक है। (देखिये 70, 46, 56, 72, 27, etc.)।

उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध है कि महाकाव्यों (महाभारत आदि) या पुराणों के आधुनिक रूप बहुत बाद की कृतियाँ हैं। इन्हें पूर्व बिम्बिसार-काल के इतिहास का उपयुक्त आधार नहीं कहा जा सकता। इनसे अधिक उपयुक्त तो 'महावंश' और 'अशोकावदान' की कहानियाँ होंगी, जिनसे मौर्य-कालीन घटनाओं का भी पता चलता है। किन्तु, फिर भी यह उचित न होगा कि हम इनकी पूर्णरूपेण उपेक्षा कर दें, क्योंकि इनका भी अधिकांश प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण है। डॉक्टर स्मिथ के अनुसार लंका के पाली-ग्रन्थों का अवलोकन करते समय बहुत सावधान रहना चाहिए। संस्कृत महाकाव्यों व पुराणों के अध्ययन में भी डॉक्टर स्मिथ की चेतावनी को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

अपनी कृतियों में डॉक्टर कीथ ने उपर्युक्त महाकाव्यों व पुराणों के प्रति अविश्वास तथा वेदों में अस्पष्ट रूप से वर्णित (महाभारत के युद्ध-जैसी) घटनाओं की ऐतिहासिकता पर विश्वास करने वालों की 'भोली-भाली आस्था' पर आश्चर्य प्रकट किया है। यद्यपि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि महाकाव्यों व पुराणों के आधुनिक स्वरूप में बहुत कुछ ऐसा है जो विश्वास के योग्य नहीं है किन्तु, यह भी असत्य है कि इनमें कथा-तत्त्व के आ जाने से सत्य का बिल्कुल ही लोप हो गया है। डॉक्टर स्मिथ का मत है कि यूरोपीय विद्वानों ने बड़े अनुचित ढंग से पुराणों की प्रामाणिकता का तिरस्कार किया है। किन्तु, इसके गम्भीर अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें बड़े ही वास्तविक एवं महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परम्पराएँ निहित हैं। जहाँ तक महाभारत का सम्बन्ध है, हमारे पास निश्चय ही किसी भी प्रकार के तत्कालीन शिलालेखादि का अभाव है। फिर भी वैदिक साहित्य में अनेक ऐसे संकेत हैं, जिनसे लगता है कि महाभारत का महायुद्ध कोरी कल्पना मात्र नहीं है। अगले अध्याय में इस सम्बन्ध में विचार किया जायगा। कुरुक्षेत्र की कथा के बाह्लिक, प्रातिपेय,[१] धृतराष्ट्र, वैचित्रवीर्य, देवकीपुत्र कृष्ण तथा यज्ञसेन शिखण्डी जैसे अनेक चरित्रों का प्राचीन वैदिक साहित्य[२] में भी उल्लेख मिलता है। 'शतपथ' में एक स्थल पर कुरु राजकुमार तथा सृञ्जय[३] के बीच शत्रु-भाव की भी चर्चा है। महाकाव्य में वर्णित महायुद्ध कभी-कभी इन्हीं दोनों के बीच शक्ति-परीक्षा का भी रूप धारण कर

१. महाभारत, V. 23.9.

२. शतपथ ब्राह्मण (V. 4.3.7) तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र (XII. 10) में क्रमशः अर्जुन तथा पार्थ को इन्द्र माना गया है (*Vedic Index*, 1.522.)

३. *Vedic Index*, II. p. 63; शतपथ ब्राह्मण. XII, 9.3.

लेता है (कुरूणां सृञ्जयानाञ्च जिगीषुनां परस्परम्)।[१] 'जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण'[२] के अनुसार महाभारत में अपने विरोधी पांचालों के निकट सम्बन्धी 'दालभ्यास' वंश को कुरुओं ने बहुत फटकारा है। 'छांदोग्य उपनिषद्' बड़ा प्रसिद्ध है। इसमें कुरुओं की रक्षा करने वाली घोड़ी की प्रशंसा से भरी एक गाथा है। कुरुओं तथा सृञ्जय की लड़ाई के युद्धगान निश्चय ही पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व के हैं, क्योंकि 'आश्वलायन' तथा 'पाणिनि' को वैशम्पायन-कृत महाभारत का पूरा ज्ञान था। यदि अगले पृष्ठों में वेदों से उपलब्ध सामग्री पर विचार करेंगे तो महाभारत की लड़ाई निश्चित रूप से नवीं शताब्दी ईसापूर्व के आसपास की घटना लगेगी। युद्ध की कथा की रूपरेखा किसी भी स्थिति में ५वीं शताब्दी ईसापूर्व के बाद की नहीं है। इस प्रकार सम्पूर्ण अंश को अप्रामाणिक कहकर नहीं टाला जा सकता।

डॉक्टर कीथ से बिल्कुल भिन्न, पार्जिटर ने वैदिक सामग्री की अपेक्षा पौराणिक परम्पराओं को अधिक महत्त्व दिया है। पार्जिटर के मतों व निष्कर्षों को डॉक्टर बार्नेट ने भी स्वीकार किया है। पार्जिटर[३] ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि वैदिक साहित्य में ऐतिहासिकता नहीं है। अतः वह सदैव ही विश्वसनीय भी नहीं है। किन्तु, शाक्य को एक व्यक्ति मात्र मानने वाले पुराणों में राजाओं की सूची में अभिमन्यु तथा सिद्धार्थ का भी नाम है। प्रसेनजित् को राहुल का उत्तराधिकारी कहा गया है। प्रद्योत को बिम्बिसार से कई पीढ़ी पूर्व का माना गया है। अशोक के सम्बन्ध में केवल एक वाक्य मिलता है। सातवाहन वंश का कोई उल्लेख ही नहीं है। आन्ध्र के राजाओं में श्रीकुम्भ सातकर्णि[४] जैसे राजा का अस्तित्व तत्कालीन प्राप्त सिक्कों[५] से पूर्ण प्रमाणित है, उसका नाम तक पुराणों में नहीं है।[६] अतः क्या इन पुराणों पर विश्वास किया जा सकता है? कुछ विचारधाराओं एवं सिद्धान्तों क विरोध करते समय तो पार्जिटर स्वयं संस्कृत महाकाव्यों एवं पुराणों की सामग्री को अस्वीकार कर देते हैं। यहाँ पर वी० गार्डन चाइल्ड (V. Gordon Childe)[७]

१. महाभारत, VI. 45.2.

२. I. 38.1 (XII, 4)

३. *Calcutta Review*, Feb., 1924, p. 249.

४. *Ancient Indian Historical Tradition*, pp. 9 ff.

५. Mirashi *in the Journal of the Numismatic Society of India*, Vol. II.

६. Cf. *AIHT*, pp. 173, n.l; 299, n. 7.

७. *The Aryans*, p. 32.

के इस मत का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि "क्षत्रिय-परम्परा महाकाव्यों व पुराणों के परम्परा-इतिहास का विशुद्ध स्रोत नहीं है। प्राचीन दृष्टिकोण पौरोहित्य-परम्पराओं या उसके संशोधित एवं परिवर्धित ग्रन्थों पर आधारित नहीं है, वरन् वेदों के आन्तरिक तत्वों पर आधारित है। इस तथ्य पर इसलिये भी विश्वास किया जा सकता है कि वेद-स्रोतों में कुछ यों ही और कभी-कभी ही ऐतिहासिक और भौगोलिक उल्लेख आये हैं। इसे हम क्षत्रिय-परम्परा नहीं कहेंगे। इनका काल तो २०० ईसवी है। इनके बाद भी कथा-प्रणयन का क्रम शताब्दियों चलता रहा है, जिनसे विभिन्न जातियों एवं वंशों का स्वार्थ-साधन अवश्य ही हुआ होगा।" वैदिक साहित्य के पक्ष में दो तर्क बड़े ही सशक्त हैं। एक तो यह कि वैदिक साहित्य बहुत प्राचीन है; दूसरे, यह कि वेदों के मूल-पाठ में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की स्वतन्त्रता अपेक्षाकृत कम थी।

३. तृतीय वर्ग में उत्तर बिम्बिसार-काल का ब्राह्मण-साहित्य आता है। इसके काल व तिथि के विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र २४६ ईसापूर्व व १०० ईसवी[1] सन् के बीच

१. कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ को सातवीं शताब्दी के कादम्बरी का ग्रन्थकार बाण ही नहीं जानता था वरन् सातवीं शताब्दी के पूर्व की शताब्दियों में हुए जैन-ग्रन्थकार नन्दीसूत्र और पैरण भी इस ग्रन्थ को जानते थे। इसके अतिरिक्त सम्भवतः वात्स्यायन के न्यायभाष्य के समय भी यह पुस्तक थी। वात्स्यायन के न्यायभाष्य की दिग्नाग तथा वसुबन्धु ने आलोचना भी की है (*I. A*, 1915. p. 82, 1918, p. 103)। कुछ विद्वानों के मतानुसार अर्थशास्त्र का प्रणयन धर्मशास्त्र के बाद सम्भवतः तीसरी शताब्दी में हुआ था। किन्तु रुद्रदामन शिलालेख के समय के जूनागढ़ शिलालेख से ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्र के पूर्व भी अर्थविद्या का अस्तित्व था। अर्थशास्त्र के टेक्निकल शब्दों 'प्रणय' तथा 'विष्टि' का भी उल्लेख मिलता है। यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र की रचना में अपने पूर्ववर्त्ती आचार्यों का उल्लेख नहीं किया है (Bk. V. Ch. 2)। इसलिये यह भी सम्भव है कि रुद्रदामन जिसने कि अर्थ-विद्या पढ़ी थी उसने कौटिल्य ही नहीं वरन् उसके पूर्ववर्त्ती आचार्यों से भी टेक्निकल शब्दों का प्रयोग सीखा हो। यह उल्लेखनीय है कि जूनागढ़ के तत्सम्बन्धी रिकार्ड में अर्थशास्त्र के साहित्य को विशेष स्थान मिला है। जूनागढ़ के स्कन्द-गुप्त के शिलालेख में 'उपधास तथा सर्व-ओपधाभिश्च विशुद्धबुद्धिः' का उल्लेख मिलता है। पूरा अनुच्छेद इस प्रकार है—

रखा जा सकता है।[१] इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का मूल्यांकन जितना भी किया जाय, उतना ही कम होगा। भारतीय प्राचीन इतिहास के उद्वेलित समुद्र में ये ग्रन्थ लंगर के सदृश हैं। जहाँ तक पूर्व बिम्बिसार-काल का सम्बन्ध है, ब्राह्मण-साहित्य व उपनिषदों की सामग्री कुछ निम्न कोटि की अवश्य पड़ती है, किन्तु इन ग्रन्थों के प्रणेताओं का काल निश्चित है। इस दृष्टि से ये ग्रन्थ महाकाव्य या पुराणों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण ठहरते हैं, क्योंकि पुराणों की तिथि की प्रामाणिकता सर्वदा सन्देहास्पद है।

न्याय आर्जनेर्थस्य च कः समर्थः
स्याद अर्जितस्याप्य-अथ रक्षणे च
गोपायितस्यापि च वृद्धि हेतौ
वृद्धस्य पात्र प्रतिपादनाय।

उक्त अनुच्छेद से निम्न शब्दावलियाँ याद आ जाती हैं—दण्डनीतिः, अलब्ध-लाभार्था लब्धपरिरक्षणी, रक्षित विवर्धनी, वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।

जानसन (*JRAS*, 1929. I January, p. 77. ff.) ने इस बात का संकेत दिया है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अश्वघोष के समयका कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र ४०० ईसवी के आर्यसूर की जातक-माला से पूर्व का ग्रन्थ है (Winternitz, *Ind. Lit.*, Vol. II. 276)। किन्तु चीनभूमि तथा चीनपट्ट के उल्लेख से ऐसा लगता है कि यह ग्रन्थ ईसापूर्व की तीसरी शताब्दी के मध्य से भी पूर्व का है। इस उल्लेख से दक्षिणी-पूर्वी एशिया का ही आभास मिलता है (McCrindle's *Ancient India*, p. 162)। संस्कृत-विद्वानों के ग्रन्थों में चीनी सिल्क का प्रायः जिक्र आया है। अच्छा सिल्क पैदा करने वाले प्रदेश मौर्य साम्राज्य की सीमा से बाहर थे (देखिये *The Problem of the Far East*, p. 15)। ईंट के बजाय काठ की चहार-दीवारी का उल्लेख मिलता है। इससे भी कहा जाता है कि अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के बाद का ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त राजधानी तथा दरबार में संस्कृत भाषा के प्रयोग का उल्लेख भी आया है। खारवेल शिलालेख में 'चक्रवर्त्ती' शब्द नहीं मिलता तथा 'समाहर्तृ' तथा 'सन्निधातृ' शब्दों की रचना भी बाद में ही आती है।

१. पतंजलि के बारे में नये विचारों के लिये *Indian Culture*, III. 1 ff; *Proceedings of the Indian History Congress, Third Session*, pp. 510-11 देखिये।

४. चतुर्थ वर्ग में बौद्ध-साहित्य के सुत्त, विनय के अंश तथा जातक-कथाएँ आती हैं। भरहुत और साँची में उपलब्ध कुछ शिलालेखों में बुद्ध-धर्म के आदेश या विधियाँ और नियम मिलते हैं। इन्हें २०० से १०० ईसापूर्व के मध्य का माना जाता है। स्तूप-द्वारों तथा छज्जों (railings) पर जातक-कथाओं की कुछ नक़्क़ाशियाँ या चित्र मिलते हैं। पाली में लिखे गये बुद्ध-धर्म के नियम प्रथम शताब्दी ईसापूर्व के कहे जाते हैं। इनमें प्राचीन कथाओं का बौद्ध रूप सुरक्षित है। इनसे बिम्बिसार के राज्याभिषेक के तुरन्त बाद के युग से सम्बन्धित बहुत-सी जानकारी प्राप्त होती है। फिर, जहाँ ब्राह्मण-साहित्य कुछ अनिश्चित और धुँधला पड़ने लगता है, वहाँ इन लेखों से पर्याप्त प्रकाश मिलता है।

५. पाँचवें वर्ग में जैन-मत के धर्म-ग्रन्थ आते हैं। इनमें से कुछ तो २०० ईसवी सन् के पूर्व के भी कहे जा सकते हैं। किन्तु, जैन-मत के आदेश पाँचवीं या छठवीं शताब्दी में लेखबद्ध किये गये हैं।[१] इनसे पूर्व बिम्बिसार-काल के अनेक राजाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि जैन-साहित्य कुछ बाद के काल का है, फिर भी इससे सर्वथा विश्वस्त सामग्री नहीं मिलती।

---

१. Jacobi, परिशिष्ट पर्वन्, p. VII; S. B. E. Vol. XXII. p. XXXVII; XLV, p. XI., Cf. Winternitz, *A History of Indian Literature, Eng.* Trans., Vol. II, p. 432.

परीक्षित-काल | २

जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः

—अथर्ववेद ।

महाभारत की लड़ाई के तुरन्त बाद परम्परानुसार हुए राजा परीक्षित के राज्याभिषेक से हम लोग अध्ययन आरम्भ करते हैं ।

क्या वास्तव में राजा परीक्षित हुए थे ? अवश्य, महाभारत और पुराणों में उनका उल्लेख मिलता है । किन्तु महाभारत या पुराणों जैसे साहित्य में किसी राजा का उल्लेख मात्र ही तब तक उसके अस्तित्व का निश्चित प्रमाण नहीं है, जब तक कि अन्य बाह्य साक्ष्यों से उसकी पुष्टि न हो ।

अथर्ववेद संहिता[1] के बारहवें भाग के स्तुति-खण्ड में कुरुओं के राजा के रूप में परीक्षित नाम आता है । उनके राज्य में घी, दूध की नदियाँ बहती थीं । अथर्ववेद के उल्लिखित श्लोक इस प्रकार हैं—

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्यां अति
वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः
परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन्
कुलायन कृण्वन कौरव्यः पतिर्वदति जायया
कतरत त आ हराणि दधि मन्थाम् परिश्रुतम्
जायाः पतिम् विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः
अभीव स्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पथोबिलम्
जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ।

कुरुदेश में गृहस्थी में प्रवेश करने वाला पति अपनी पत्नी से कहता है—"राजा परीक्षित अविनश्वर हैं, वे सर्वत्र राज्य करते हैं तथा घट-घटव्यापी हैं ।[2] उनकी स्तुतियों का श्रवण करो । राजा परीक्षित के सिंहासनासीन होने से हमको सुरक्षित आवास प्राप्त हुआ है ।"

---

१. अथर्ववेद, XX, 127, 7-10.

२. वैश्वानर की व्याख्या के लिये बृहद्देवता (II. 66) देखिये ।

परीक्षित के राज्य में रहने वाली पत्नी अपने पति से पूछती है—"तुम्हारे लिये दही लाऊँ, या कोई उत्तेजक पेय अथवा सुरा ?"[१]

रोथ और ब्रूमफ़ील्ड अथर्ववेद में परीक्षित को देवी-सत्ता के रूप में मानते हैं। किन्तु, ज़िमर और ओल्डेनबर्ग परीक्षित को मनुष्य मानते हैं। एतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण के इस कथन से कि प्रसिद्ध राजा जन्मेजय अपने नाम के साथ पिता का नाम परीक्षित भी धारण करते थे, उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। ऐतरेय ब्राह्मण[२] में लिखा है कि पुरोहित तुरा कावषेय ने जन्मेजय परीक्षित का राज्याभिषेक इन्द्र के राज्याभिषेक के समान सम्पन्न कराया।

एतेन ह्वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो जन्मेजयाम् पारिक्षितम् अभीषेच।

मैकडोनेल और कीथ[३] ने परीक्षित की चर्चा करते हुए कहा है कि महाभारत के अनुसार परीक्षित प्रतिश्रवा के पितामह तथा प्रतीप के प्रपितामह थे। महाभारत और पुराणों के अनुसार दो परीक्षित हुए हैं। एक परीक्षित को तो सभी एकमत से अवीक्षित, अनास्वा या कुरु का पुत्र तथा प्रतिश्रवा और प्रतीप का अग्रज मानते हैं। दूसरे परीक्षित प्रतीप के वंशज तथा अभिमन्यु[४] के पुत्र माने जाते हैं। अतः हम पहले परीक्षित को परीक्षित प्रथम तथा दूसरे को परीक्षित-द्वितीय कहेंगे। कुछ लेखकों का मत है कि महाभारत व पुराणों के परीक्षित वेदों में आये परीक्षित से अभिन्न हैं। इस मत के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि शतपथ ब्राह्मण[५] के अनुसार वैदिक परीक्षित के पुत्र जन्मेजय के पुरोहित इन्द्रोत दैवाप शौनक महाभारत के पूर्व के परीक्षित प्रथम के पुत्र के भी पुरोहित थे, ऐसा पुराणों[६] में भी कहा गया है। इन्द्रौत के पुत्र दृति कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारिण[७] के समकालीन थे। महाभारत[८] में दी गई वंशावली में भी कक्षसेन का नाम परीक्षित-प्रथम के

१. ब्रूमफ़ील्ड ,अथर्ववेद, pp. 197-98.

२. VIII, 21.

३. *Vedic Index*, Vol., I., p. 494.

४. महाभारत, आदिपर्व, ९४.५२ और ९५.४१। परीक्षित के लिये मत्स्य पुराण (५०, ५३) देखिये।

कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च
परीक्षिच्च महातेजाः प्रवरश चारिमर्दनः

५. *Vedic Index*, I. 78.

६. Pargiter, *AIHT*, 114.

७. *Vedic Index*, I. 373.

८. महाभारत I. 94, 54.

पुत्रों की सूची में मिलता है। आगे वैदिक परीक्षित की तरह ही परीक्षित प्रथम के भी चार पुत्र हुए। परीक्षित के चारों पुत्रों के नाम जन्मेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन[1] थे तथा बड़े लड़के का ब्राह्मणों से विरोध था।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे अन्य तथ्य भी हैं जिनसे विपरीत निष्कर्ष निकलता है। अथर्व-स्तुतियों में वैदिक परीक्षित को विश्वजनीन राजा तथा 'अनश्वर देव' की उपाधियों से अभिहित किया गया है। इनके समय में 'कौरव्य' शब्द केवल शाही घराने के लोगों के लिये ही नहीं प्रयुक्त होता था, वरन् कुरुदेश के हर नागरिक को कौरव्य कहा जाता था। राजा परीक्षित के राज्य में सभी सुखी थे। ये तथ्य महाभारत और पुराणों के परीक्षित प्रथम पर कुरु[2] के अधिक समीपवर्ती लागू नहीं होते। इसके विपरीत तत्सम्बन्धी एक वेदस्तुति—विषय तथा शब्दावली दोनों दृष्टियों से—भागवत पुराण १६वें से १८वें अध्याय तक में आये परीक्षित द्वितीय के प्रसिद्ध आख्यान से काफ़ी मिलती-जुलती है। हम यह भी जानते हैं कि इस परीक्षित ने एक बार दिग्विजय करके सभी महाद्वीपों को अपने अधिकार में कर लिया था। उक्त परीक्षित को 'परमदेवता' (supreme deva) कहा जाता था, अर्थात् वे जनसाधारणके समान नहीं थे। (न वै नृभिर्नरदेवम् पराख्याम् सम्मातुं अर्हसि)। इन्हें सम्राट् (emperor) भी कहा जाता था। इनके संरक्षण में प्रजा सुखी एवं निर्भीक थी। (विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः)।

उपर्युक्त परीक्षित तथा वैदिक परीक्षित की अभिन्नता का एक और प्रमाण भागवत पुराण में ही[3] वहाँ मिलता है, जहाँ तुरा कावषेय को उनके पुत्र जन्मेजय का भी पुरोहित कहा गया है—

कवषेयम् पुरोऽधाय तुरम् तुरगमेधराट्
समन्ताम् पृथिवीं सर्वाम् जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः।

स्मरण रहे कि यही ऋषि (तुरा कावषेय) ऐतरेय ब्राह्मण में जन्मेजय परीक्षित के भी पुरोहित कहे गये हैं।

भागवत पुराण निस्सन्देह बादका ग्रन्थ है। किन्तु, इसमें दी गई सामग्री निराधार नहीं है। यदि महाभारत और वेदों में दी गई राजा परीक्षित के पुत्रों की सूची

१. विष्णु पुराण IV. 21.1.

२. वायु पुराण (६३.२१) और हरिवंश (XXX.9) में परीक्षित प्रथम को कुरु कहा गया है। कुरु के पुत्र को 'कुरोः पुत्रः' कहा गया है।

३. Book IX. Ch. 22., Verses 25-37.

देखी जाय तो यह और भी स्पष्ट हो सकता है। हम जानते हैं कि वैदिक परीक्षित के जन्मेजय, उग्रसेन, श्रुतसेन[१] तथा भीमसेन चार पुत्र थे। इसके विपरीत महाभारत के परीक्षित प्रथम का (महाभारत के आदिपर्व के ६५वें अध्याय के ४२वें श्लोक के अनुसार) केवल एक पुत्र भीमसेन था। अध्याय ६४ में ५४-५५वें श्लोक के अनुसार उनके सात पुत्र—जन्मेजय, कक्षसेन, उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुषेण तथा भीमसेन थे। इनमें श्रुतसेन का नाम नहीं है। यहाँ तक कि Java Text के अध्याय ६५ में[२] जन्मेजय तक का नाम नहीं है। वीरचड़ो[३] के चेल्लूर या कोकनाड़ के लेखपत्र में दी गई कुरु-पांडु की वंशावली में भी परीक्षित प्रथम के तुरन्त बाद यह नाम नहीं आता। चोड़ के लेखों का लेखक भी जो कम-से-कम उपलब्ध महाभारत के प्रणेताओं से तो पहले का है ही, कदाचित् इस बात पर निश्चित मत नहीं था कि परीक्षित प्रथम ही जन्मेजय व श्रुतसेन के पिता थे। इसके विपरीत महाभारत और पुराण इस बात पर एकमत हैं कि परीक्षित द्वितीय के जन्मेजय नाम का एक पुत्र था जो पिता के बाद गद्दी पर बैठा था। अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित द्वितीय का उल्लेख करते हुए महाभारत में कहा गया है[४]—परिक्षित खलु माद्रवतीं नामोपयेमे त्वन्मातरम्। तस्यां भवान् जन्मेजयः, अर्थात् "जन्मेजय! परिक्षित ने तुम्हारी माँ माद्रवती से विवाह किया, तब तुम्हारा जन्म हुआ।"

मत्स्य पुराण[५] में कहा गया है—

अभिन्योः परिक्षित् पुत्रः परपुरञ्जयः
जन्मेजयः परिक्षितः पुत्रः परमिधामकः ॥

अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित था जिसने अपने शत्रुओं का गढ़ जीता। परीक्षित का पुत्र जन्मेजय था जो बड़ा ही धर्मपरायण था। जन्मेजय के श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन तीन भाई और थे।[६]—जनमेजयः परिक्षितः सह भ्रातृभिः कुरुक्षेत्रे दीर्घ सत्रम् उपास्ते, तस्य भ्रातरस्त्रयः श्रुतसेन, उग्रसेन, भीमसेन इति। "परीक्षित के पुत्र

१. *Vedic Index*, Vol. I, p. 520.

२. *JRAS*, 1913, p. 6.

३. Hultzsch, *SII*, Vol. 1, p. 57.

४. I. 95.85.

५. 50. 57.

६. महाभारत (1.3.1.) ग्रन्थ के अनुवाद के समय के राय और दत्ता के विचारों का भी उल्लेख किया गया है। पार्जिटर द्वारा उद्धृत पौराणिक पाठ के *Dynas-*

जन्मेजय अपने भाइयों के साथ दीर्घ सत्र वाले यज्ञ में भाग लेते थे। जन्मेजय के तीन भाई थे—श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन।

वैदिक परीक्षित के पुत्र तथा उत्तराधिकारियों से सम्बन्धित विवरण महाभारत के परीक्षित के पुत्र तथा उत्तराधिकारियों के विवरण से बिल्कुल मिल जाता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि वैदिक परीक्षित के पुत्र जन्मेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया था। इस प्रसिद्ध यज्ञ के कराने वाले पुरोहित इन्द्रौत दैवाप शौनक थे। इसके विपरीत 'ऐतरेय ब्राह्मण' में अश्वमेध यज्ञ कराने वाले पुरोहित का नाम तुरा कावषेय आता है। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में कही गई बातें परस्पर विरोधी हैं। इनका समाधान तभी सम्भव है जब हम यह मान लें कि हम दो विभिन्न राजाओं के बारे में अध्ययन कर रहे हैं और दोनों के पिता का नाम एक ही है, या जन्मेजय ने ही दो अश्वमेध यज्ञ किये होंगे। प्रश्न है कि किस जन्मेजय ने यज्ञ किया था? इसका पुराणों से कुछ उत्तर मिलता है। अभिमन्यु के पौत्र तथा परीक्षित-द्वितीय के पुत्र जन्मेजय के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण में कहा गया है—

द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः
प्रवर्तयित्वा तां सर्वम् ऋषिं वाजसनेयकम्
विवादे ब्राह्मणैः सार्द्धमभिशप्तो वनंययौ।[1]

उपर्युक्त अनुच्छेद की अन्तिम पंक्ति में ब्राह्मणों से होने वाले विवाद की ओर संकेत किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में भी इसका उल्लेख मिलता है। इसके मूल पाठ में जन्मेजय से पौरोहित्य विरोध रखने वाले कश्यप लोग हैं। कश्यप

---

ties of Kali Age, p.4 n[4] भी देखिये। इस मत का कि श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन जन्मेजय के पुत्र हैं, कुछ पुराणों तथा हरिवंश में खण्डन मिलता है। (Pargiter, *Ancient Indian Historical Tradition*, p.113 f.) अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित के बारे में विष्णु पुराण में लिखा है—'योऽयं साम्प्रतम् अवनीपतिः तस्यापि जन्मेजय-श्रुतसेन-उग्रसेन-भीमसेनः पुत्रास् चत्वारो भविष्यन्ति।'

१. 50,63-64., Cf. N. K. Siddhanta, *The Heroic Age of India*, p.42.

२. VII. 27.

शब्द गर्ग लोगों से मेल नहीं खाता । गर्गों का परीक्षित-प्रथम[1] के पुत्र से झगड़ा था । बौद्धायन श्रौत सूत्र[2] में गर्गवंश को अंगिरा-वर्ग में रख दिया गया है । इसके विपरीत परीक्षित-द्वितीय के पुत्र के विरोधियों का वैशम्पायन ने नेतृत्व किया था जो निश्चित रूप से कश्यप-वंश[3] के थे ।

इस प्रकार परीक्षित-प्रथम की अपेक्षा परीक्षित-द्वितीय वैदिक परीक्षित से अधिक समानता रखते है । यह भी सम्भव है कि परीक्षित-प्रथम और परीक्षित-द्वितीय एक ही व्यक्ति के दो नाम रहे हो जिनका नाम कुरुवंश की सूची में आता है । केवल परीक्षित नाम ही नहीं, वरन् दोनों के सभी पुत्रों के नाम भी विष्णु तथा ब्रह्मपुराण[4] में एक ही दिये गये हैं, और दोनों के पढ़ने से एक ही निष्कर्ष भी निकलता है । दोनों परीक्षितों के पुत्रों व उत्तराधिकारियों और ब्राह्मणों के विवाद की कहानी भी एक ही तरह की है । ध्यान रक्खें कि पुराणों में तुरा काव-षेय को परीक्षित-द्वितीय के पुत्र का पुरोहित कहा गया है । वेदों के मूलपाठ से यह भी स्पष्ट है कि दोनों राजपुरोहित जनक के पाँच या छः पीढ़ी बाद हुए और एक ही राजा के पुरोहित रहे । यह राजा उद्दालक आरुणि, याज्ञवल्क्य तथा सोमशुषमा का समकालीन था । अब जिन दोनों परीक्षित के पुत्रों के नाम तथा उनसे सम्बन्धित कहानियाँ एक ही तरह की हैं, उनके अस्तित्व पर कुछ संदेह होना सर्वथा उचित ही होगा । अतः सम्भावना यही है कि कुरु के राज-वंश में केवल एक ही परीक्षित हुए थे, जिनके पुत्र ने तुरा और इन्द्रौत, दोनों पुरोहितों को प्रश्रय दिया था ।

उपर्युक्त परीक्षित महाभारत के पहले हुए थे या बाद में ? महाभारत के बाद अभिमन्यु के पुत्र का नाम परीक्षित क्यों रखा गया ? इस प्रश्न के उत्तर से स्पष्ट है कि महाभारत के दसवें भाग के लिखे जाने तक कुरुवंश में परीक्षित नाम का कोई व्यक्ति नहीं हुआ ।[5] महाभारत के बारहवें भाग के १५१वें अध्याय में

---

१. Pargiter, *Ancient Indian Historical Tradition*, p. 114; Vayu, 93,22-25.

२. Vol. III. p.431 ff.

३. *Op. cit* ., p.449.

४. विष्णु, IV. 20,1;21.1; ब्रह्म, XIII, 109.

५. वायु. 93,22-25; मत्स्य, 50,63-64. etc

६. महाभारत, X. 16,3.

जब कुरुक्षेत्र-वंश का नाश हो जायगा (परिक्षीणेषु कुरुष) तो आपके एक पुत्र होगा (उत्तरा अभिमन्यु की पत्नी) । उस बच्चे का नाम इसी कारण से परीक्षित होगा ।

भीष्म द्वारा कहलाई गई इन्द्रौत-परीक्षित सम्वाद की कहानी है। कदाचित् वंशावली तैयार करने वालों ने काल-गणना की भूल को बचाने के लिये परीक्षित नाम गढ़ लिया हो। इस सम्बन्ध में परीक्षित-प्रथम के पिता के नाम तथा कुरुवंश की सूची में परीक्षित के नाम के बारे में विद्वानों में मत-वैभिन्य भी ध्यान देने योग्य है। इसके विपरीत[1] परीक्षित-द्वितीय के पिता के नाम तथा अन्य विवरणों पर सभी एकमत हैं। इन उल्लेखों व विवरणों से किसी स्पष्ट परम्परा का अभाव प्रकट होता है।

---

१. डॉक्टर एन० दत्त के अनुसार, वैदिक परीक्षित तथा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को (जो कि महाभारत की लड़ाई के बाद हुआ) एक समझना युक्तिसंगत नही है (*The Aryanisation of India*, pp. 50 ff.) क्योंकि यह मैक्डोनल, कीथ और पार्जिटर के इस मत के विरुद्ध पड़ता है कि वैदिक परीक्षित (जन्मेजय के पिता) पांडु के पूर्वज थे। यह भी उल्लेखनीय है कि परीक्षित को पांडुओं का पूर्वज उन्हीं प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है जिसको कि कीथ ने अविश्वसनीय करार दे दिया है (Cf. *RPVU*, 21 618)। इस संबंध मे जन्मेजय का नाम वंशावली का अतिक्रमण करना होगा।

डॉक्टर दत्त ने आगे कहा है कि विष्णु पुराण में जन्मेजय, श्रुतसेन आदि को भाई-भाई कहा गया है जो कि परीक्षित प्रथम के लड़के थे। यदि उन्होंने उसके बाद का भी अनुच्छेद पढ़ा है तो उन्हें मिला होगा कि परीक्षित-द्वितीय के लड़के चार भाई थे। इस दूसरे मत की पुष्टि तो महाभारत (I. 3.1.) में हो जाती है किन्तु पहले के मत का समर्थन नहीं हो पाता।

डॉक्टर दत्त ने आगे कहा है कि राजाओं का परिचय तथा उनके समय का निर्धारण उनके गुरुओं या पुरोहितों से संबंधित तथ्यों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु यदि नाम तथा एक के बाद दूसरे के उत्तराधिकार के तथ्य सही है तो ऐसा करने में हर्ज ही क्या है। वास्तव में ऐसे तथ्यों को बिना सोचे-समझे अस्वीकार कर देने में भी खतरा है। किन्तु यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि वैदिक परीक्षित और अभिमन्यु के बाद के परीक्षित की समानता किसी गुरु या पुरोहित के नाम पर नहीं वरन् निम्न तथ्यों पर आधारित है—(१) पहले किसी भी जन्मेजय परीक्षित के होने का कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता; (२) अनेक बातें वैदिक परीक्षित तथा जन्मेजय में एक-सी मिलती हैं, (जैसे कुरु राज्य की समृद्धि का वर्णन, दो अश्वमेध यज्ञों का होना तथा कश्यपों से युद्ध आदि)

वैदिक स्तुतियों से परीक्षत के शासन-काल तथा उनके घरेलू जीवन का कुछ पता चलता है। महाभारत से हमें पता चलता है कि परीक्षित ने राजकुमारी माद्रा (माद्रावती) से विवाह किया था। उन्होंने २४ वर्ष तक राज्य किया

जिनसे हमें परीक्षित और जन्मेजय के बारे में पता चलता है जो कि अभिमन्यु के बाद हुए हैं। परीक्षित-सम्बन्धी उक्त समानता तथा वैदिक परीक्षित और वैदिक जनक के बीच किसी प्रकार का तिथि-सम्बन्ध दोनों दो अलग-अलग चीजें हैं। यह तिथि-सम्बन्ध दो प्रकार के प्रमाणों के आधार पर माना जाता है। एक प्रकार के प्रमाण तो वंशसूची और ब्राह्मण ग्रन्थों से लिये गये हैं। इन्द्रौत से सोमशुषमा को उत्तराधिकार के तथ्य ब्राह्मण ग्रन्थों से प्राप्त किये गये हैं।

डॉक्टर दत्त के अनुसार नामों की समानता का मतलब व्यक्ति की समानता ही अनिवार्यतः नहीं होता। उदाहरणार्थ, धृतराष्ट्र विचित्रवीर्य तथा काशी के धृतराष्ट्र के नामों को ही ले लीजिये। *Political History* में वैदिक तथा महाभारत-कालीन परीक्षितों और जन्मेजयों को इसलिये एक नहीं कहा जा सकता कि दोनों नाम एक ही हैं।

इतिहासकार (डॉ० दत्त) के मतानुसार बाद के युग में प्रतिद्वन्द्वी राजवंशों तथा विचारधाराओ वाले नामों के साथ भी विभिन्न पुरोहितों तथा प्रसिद्ध राजाओं के नाम जोड़ दिये जाते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि यह मत प्रकट करते हुए डॉक्टर दत्त के मस्तिष्क में कोई उदाहरण था या नहीं। शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण तथा उपनिषदों में इन्द्रौत और तुरा को जन्मेजय से तथा उद्दालक और याज्ञवल्क्य को जनक से सम्बन्धित कहा गया है। यह भी कहा गया है कि यह सम्बन्ध निराधार या कल्पित है किन्तु इस आरोप का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह भी हो सकता है कि पुराणों तथा महाभारत में तथ्यों को ठीक से न प्रस्तुत किया गया हो जैसा कि पार्जिटर ने संकेत किया है। किन्तु यह कहना ठीक नहीं होगा कि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में ग़लत तथ्यों का ही समावेश किया गया है क्योंकि बाद के लिखे गये पुराणों में कुछ ऐसी क्रमहीनता मिल सकती है।

अंततः वंशसूची की प्रामाणिकता को निम्न आधारों पर अप्रामाणिक कहा गया है—१. टीकाकारों का मौन। २. शतपथ ब्राह्मण की १०वीं तथा १४ वीं पुस्तकों में ग्रन्थकार तथा पुस्तक के सम्बन्ध में विरोधी तथ्य मिलते हैं। विभिन्न पुरोहितों के भी नामों का उल्लेख आया है।

और ६० वर्ष की आयु में उनका स्वर्गवास हुआ।[१] परीक्षित नाम के साथ जुड़ी हुई अनेक प्रचलित कहानियों को भी कुछ श्रेय दिया जा सकता है। केवल इन्हीं तथ्यों को ऐतिहासिक माना जा सकता है कि परीक्षित कुरुवंश में एक राजा थे, उनके राज्य में प्रजा सुखी एवं समृद्ध थी, उनके कई लड़के थे, बड़े का नाम जन्मेजय था और उसने उनके बाद शासन का भार सम्भाला था।

यहाँ पर कुरुओं की राज्य-सीमा के बारे में कुछ शब्द कह देना अप्रासंगिक न होगा। परीक्षित ने भी इसी देश पर राज्य किया था। महाभारत के अनुसार कुरु राज्य सरस्वती से गंगा तक फैला हुआ था। दिग्विजय-पर्व में कुरु राज्य की सीमा कुलिन्द की सीमा (सतलज और गंगा-यमुना के उद्गम के समीप) से सूरसेन और मत्स्य तक (मथुरा तक) तथा रोहतक (पूर्वी पंजाब) की सीमा से पांचालों (रुहेलखंड) की सीमा तक बतलाई गई है। समूचा राज्य तीन भागों में

---

३. एक शिष्य द्वारा अपने गुरु के प्रति पर्याप्त आदर का अभाव।

(१) टीकाकारों ने आचार्य-परम्परा का उल्लेख किया है किन्तु उसकी अधिक व्याख्या इसलिये नहीं की गई कि उतने उल्लेख मात्र को ही सुगम तथा स्पष्ट माना गया होगा।

(२) ब्राह्मण ग्रन्थों की १४वीं पुस्तक तक, जिसमें कि बृहदारण्यक भी शामिल है, वंशसूची नहीं रखी गई है। उपनिषदों के अन्त में गुरु-सूचियाँ निस्सन्देह दी गई हैं। ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि सभी ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों की वंशसूचियों में एक ही परम्परा का उल्लेख हो। ये ग्रन्थ या उपनिषद् किसी एक ही ग्रन्थकार की रचनायें हैं। इसलिए इन ग्रन्थों के तथ्यों में विरोधाभास का प्रश्न ही नहीं उठता। विभिन्न ग्रन्थों में ग्रन्थकार के सम्बन्ध में विभिन्न परम्पराओं के उल्लेख से किसी आचार्य-परम्परा का अपमान नहीं होता और जबकि ग्रन्थ के मूल पाठ में सन्देह की ज़रा भी गुंजाइश न रहे।

(३) यह भी उम्मीद नहीं की जानी चाहिये कि प्राचीन काल में सभी शिष्य अपने गुरु का समान रूप से आदर-सत्कार करते थे। उदाहारणार्थ, धृष्टद्युम्न को लीजिये जो द्रोणाचार्य का शिष्य था। द्रोणाचार्य को उसकी हत्या तक करनी पड़ी है।

१. महाभारत I. 49, 17-26. टीकासहित। बृहदारण्यक उपनिषद् (III. 3.1) से हमें पता चलता है कि परीक्षित का वंश तत्कालीन माद्रा देश का रहने वाला था।

विभाजित था—कुरुजांगल, कुरु खास तथा कुरुक्षेत्र।[1] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, कुरुजांगल राज्य का जंगली हिस्सा और सरस्वती के किनारे के काम्यक वन से यमुना के समीप[2] खाण्डव तक फैला हुआ था किन्तु कहीं-कहीं कुरु-जांगल शब्द ऐसा आया है कि उससे समूचे देश (देश या राष्ट्र) का बोध होता है।[3] कुरु खास सम्भवतः हस्तिनापुर (मौजूदा मेरठ जिले के)[4] के पास-पड़ोस के क्षेत्र को कहते थे। कुरुक्षेत्र की सीमा के सम्बन्ध में तैत्तरीय आरण्यक[5] में कहा गया है कि कुरुक्षेत्र के दक्षिण में खाण्डव, उत्तर में तुरगना तथा पश्चिम में परीणा[6] स्थित है। महाभारत[7] के कुरुक्षेत्र का विवरण इस प्रकार है—

"सरस्वती के दक्षिण तथा दृशद्वती के उत्तर कुरुक्षेत्र में जो रहता है, वह वास्तव में 'स्वर्ग' में ही रहता है। यह क्षेत्र—तरुन्तुक, मरुन्तुक अथवा अरुन्तुक—राम और मचक्रुक झीलों के बीच उपस्थित है।"[8]

मोटे तौर से कुरु राज्य मौजूदा थानेश्वर अर्थात् दिल्ली तथा गंगा के दो-आबे के उत्तरी भाग में फैला हुआ था। कुरु राज्य में पिहोआ के समीप सरस्वती से मिलने वाली अरुणा, अंशुमती, हिरण्वती, आपया (आपगा या ओगावती),

---

१. महाभारत, I. 109. 1; 149. 5-15; II. 26-32; III. 83.204; *Ptolemy*, VII. I.42.

२. ततः सरस्वती कूले समेषु मरुधन्वसु
काम्यकम् नाम ददृशुर वनम् मुनिजनप्रियम्।

'तब उन्हें सरस्वती नदी के किनारे काम्यक वन मिला जो समतल तथा जंगली मैदान था। ऋषियों-मुनियों का प्रिय आश्रम था।' महाभारत III. 5.3. खाण्डव वन की स्थिति के लिये I. 222.14; 223.1.

३. Cf. महाभारत, 1.109. 24; VIII. 1.17. XII, 37.23.

४. Smith, *Oxford History* (1919) P. 31. Cf. Ram, II. 68. 13; महाभारत I. 128. 29 ff; 133.11; Pargiter, *Dynasties of Kali Age*. 5; *Patanjali* II. 1.2. अनुगंगम् हस्तिनापुरम्।

५. *Vedec Index*, I. pp. 169-70.

६. Cf. Parenos of Arrian (Indika, IV), सिन्ध की एक सहायक।

७. III, 83. 4; 9; 15; 25; 40; 52; 200; 204-208.

८. मचक्रुक, तरुन्तुक और अरुन्तुक यक्ष-द्वारपाल थे जो कुरुक्षेत्र की रक्षा करते थे।

(राप्ती की शाखा) कौशिकी तथा सरस्वती और दृषद्वती या राप्ती[1] नदियाँ प्रवाहित होती हैं। यहाँ 'सर्यनावत' नामक एक झील भी है जिसका शतपथ ब्राह्मण में 'अन्यताप्लक्ष' के नाम से उल्लेख मिलता है।

वेदों के अनुसार इस राज्य की राजधानी आसन्दीवत[2] थी जिसे पुराणों व महाकाव्यों में वर्णित नागसाह्वय या हस्तिनापुर समझा जा सकता है। किन्तु चितांग[3] के समीप का मौजूदा आसन्ध इसका उपयुक्त स्थान लगता है।

महाभारत के अनुसार कुरुक्षेत्र के राजागण पुरु-भरत-वंश के थे। पौरव तथा कुरुवों के सम्बन्ध का ऋग्वेद[4] में भी उल्लेख है। ऋग्वेद में पुरुवंश के प्रसिद्ध तथा त्रसदस्यु[5] के उत्तराधिकारी कुरुश्रवण का नाम आया है। पुरु-भरत-वंश तथा कुरु देश के सम्बन्ध की पुष्टि वेदों से भी हो जाती है। ऋग्वेद के एक श्लोक में इस वंश के दो राजाओं देवश्रवा तथा देववात[6] की चर्चा है और उनके द्वारा सरस्वती, आपया तथा दृषद्वती पर किये गये यज्ञ का उल्लेख है। कुछ प्रसिद्ध ब्राह्मण गाथाओं[7] तथा महाभारत के अनुसार भरत दौषान्ति ने गंगा, यमुना तथा सरस्वती के तटों पर यज्ञ किये थे। उपर्युक्त प्रसंग में जिस क्षेत्र की चर्चा आई, वस्तुतः वही बाद में कुरुक्षेत्र रूप में प्रसिद्ध हो गया।

---

१. इसी नदी की सही स्थिति के लिये महाभारत III. 83. 95. 151; V. 151. 78; देखिये। Cunninghamn's *Arch Rep.*, for 1878-79 quoted in *JRAS*, 1883, 363n; Smith, *Oxford History*, 29; *Science and Culture*, 1943, p. 468 ff.

२. *Vedic Iudex*, Vol. I., p. 72.

३. नक्शा देखिये Smith, *Oxford History*, p. 29; फ्लीट के *Dynasties of the Kanarese Districts* में आसन्दी जिले का उल्लेख आया है (*Bombay Gazetteer*, 1. 2, p. 492)। वहाँ पर इसे कुरुक्षेत्र से संबन्धित करने का कारण भी है।

४. X. 33, 4.

५. ऋग्वेद, IV. 38.1; III. 19.3.

६. ऋग्वेद, III. 23; Oldenberg, *Buddha*, pp. 409-10.

७. शतपथ ब्राह्मण XIII. 5. 4. 11; ऐतरेय ब्राह्मण VIII. 23; महाभारत VII. 66.8.

ओल्डेनबर्ग के मतानुसार संहिता-काल में छोटे-छोटे सम्प्रदाय एक दूसरे में मिलकर ब्राह्मण-काल में बृहत्तर हो गये। अपने पुराने शत्रु पुरुओं के साथ भरत-वंश ने भी बृहत्तर रूप धारण किया, बाद में कुरु कहलाये और इनके देश को कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा।[1]

महाभारत[2] में दी गई राजाओं की सूची में परीक्षित के पूर्वजों के रूप में जो नाम आये हैं, वे इस प्रकार हैं—

पुरु रावस अइल,[3] आयु,[4] ययाति नहुष्य,[5] पूरु,[6] भरत दौहषन्ति

१. महाभारत में (XII. 349.44) 'कौरवो नाम भारताः' उल्लेख से भरत-वंश के कुरुओं में मिल जाने का संकेत मिलता है। रामायण में (IV.33.11) फिर भी भरत और कुरु दोनों वंश अलग-अलग हैं। इतिहासकार सी० वी० वैद्य (*History of Medieval Hindu India*, Vol. II. p. 268 ff.) के अनुसार ऋग्वेद-परम्परा के भरत को दौहषन्ति भरत नहीं कहा जा सकता। ऋग्वेद के पुत्र से इस भरत की समानता हो सकती है जो कि स्वयंभू कहे जाने वाले मनु का भी वंशज माना जाता है किन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि ऋषभ का पुत्र भरत भी बहुत बाद का है। भरत-वंश के राजकुमार तथा ऋग्वेद-परम्परा के भरत कुरु से सम्बन्धित थे। तत्कालीन कुरुवंश में सरस्वती और दृषद्वती नदियाँ बहती थी तथा पुराणों के अनुसार यहाँ के राजाओं में दिवोदास तथा सुदास थे जो मनु की पुत्री वैवस्वता के वंशज थे। भरत-पुरोहित वशिष्ठ और विश्वामित्र कौशिक स्वयंभू मनु नहीं वरन् वैवस्वता मनु की पुत्री के वंशजों से संबंधित थे। वशिष्ठ के भरत दौहषन्ति से सम्बन्धित होने के प्रमाणों के लिये संवरण और ताप्ती की कथा (महाभारत I. 94 and 171 f.) देखिये। विश्वामित्र कौशिक तथा पुरु-भरत-वंश के संबंध तो सर्वविदित ही हैं (महाभारत I. 94.33)। यह कहा जा सकता है कि ऐतरेय ब्राह्मण में भरत ऋषभ कहलाने वाले विश्वामित्र के पूर्वज भरत तथा विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला के पुत्र भरत भिन्न-भिन्न थे। किन्तु इसके प्रमाण में कोई गंभीर इतिहास नहीं है। ऋग्वेद वाले विश्वामित्र कुशिक वंश से सम्बन्धित थे। महाभारत में कुशिक लोग भरत दौहषन्ति के वंशज कह गये हैं।

२. आदिपर्व, अध्याय ६४-६५।

३. ऋग्वेद X. 95; शतपथ ब्राह्मण XI. 5.1.1.

४. ऋग्वेद I. 53.10; II. 14.7. etc.

५. ऋग्वेद I. 31.17; X. 63.1.

६. ऋग्वेद VII. 8.4; 18.13.

सौद्युम्नि,[1] अजमीढ,[2] ऋक्ष,[3] संवरण,[4] कुरु,[5] उच्चश्रवा[6], प्रतीप प्रातिसत्वान या प्रातिसुत्वान,[7] वाह्लिक प्रातिपीय[8] शान्तनु,[9] तथा धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य[10]।

वेदों में भी इन नामों के उल्लेख से इनकी ऐतिहासिकता,[11] प्रमाणित होती है किन्तु यह कहना कठिन है कि महाभारत में उपर्युक्त नामों को एक दूसरे से या परीक्षित से जिस प्रकार सम्बद्ध किया गया है वे तथा उनके राज्याभिषेकों का क्रम सर्वथा विश्वसनीय है। हो सकता है इनमें से कुछ राजाओं का तो कुरुओं से कभी कोई सम्बन्ध ही न रहा हो। अन्य राजाओं में उच्चश्रवा कौपयेय, वाह्लिक प्रातिपीय और शान्तनु निश्चय ही परीक्षित की ही तरह कौरव्य-वंश के थे।[12]

उक्त सूची का पहला राजा पुरु रावस अइल कथाओं के अनुसार ऐसे राजा का लड़का था जो बाह्ली (मध्य एशिया) से आकर मध्य भारत में[13] बस

१. शतपथ ब्राह्मण XIII. 5.4. 11-12; ऐतरेय ब्राह्मण VIII. 23.

२. ऋग्वेद IV. 44.6.

३. ऋग्वेद VIII. 68.15.

४. ऋग्वेद VIII. 51.1. (*Vedic Index*, II. 42)

५. ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः उल्लेख मिलता है। Cf. कुरुश्रवण, ऋग्वेद, X. 33.4.

६. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III. 29.1-3.

७. अथर्ववेद XX. 129.2.

८. शतपथ ब्राह्मण XII.9.3.3.

९. ऋग्वेद, X. 93.

१०. काठक संहिता, X.6.

११. यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में कुरु नाम के किसी भी राजा का उल्लेख नहीं आता। वैदिक साहित्य में कुरु एक देश के निवासियों का नाम है।

१२. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III. 29.1; शतपथ ब्राह्मण, XII. 9.3; निरुक्त संस्करण द्वारा क्षेमराज श्रीकृष्ण दास श्रेष्ठी, p. 130; बृहद्देवता, VII. 155-156; *Studies in Indian Antiquities*, pp. 7-8.

१३. रामायण, VII. 103,21-22. यह बाह्ली मध्य देश के बाहर था तथा कार्दम राजाओं के अधीन था। हो सकता है यह बलख या वैक्ट्रिया का भाग रहा हो। *IHQ*, 1933, 37-39 तथा मत्स्य पुराण, 12.14 ff. भी देखिये।

गया था। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि पपंचसूदनि में कुरुओं को महाभारत व पुराणों में आये अइल-वंश की प्रमुख शाखा कहा गया है। ये लोग हिमालय के उस पार से (जिसे उत्तर कुरु[१] भी कहते थे) यहाँ आये थे। महाभारत की सूची में दूसरा नाम भरत का है। इसे पुरु रावस और पुरु राजा का उत्तराधिकारी कहा गया है जो सन्देहजनक है। महाभारत तथा ब्राह्मण गाथाओं में इस राजा को गंगा, यमुना और सरस्वती के देश से सम्बद्ध किया गया है और उसे सत्वातों को हराने का श्रेय दिया गया है। यह भी कहा गया है कि राजा भरत कुरु-राजवंश का पूर्वज था। यह वेदों के उस उल्लेख से पुष्ट हो जाता है जिसमें भरत, उसके वंशज देवश्रवा तथा दैववात को कुरुभूमि से सम्बन्धित माना गया है। उच्छ्रवा कौपायेय का पांचालों से वैवाहिक सम्बन्ध था। बाह्लिक प्रातिपीय ने पांचालों के घनिष्ठ सम्बन्धी शृञ्जय के प्रति अपनी शत्रुता की भावना को छिपा रखा था। बाह्लिक प्रातिपीय तथा अथर्ववेद एवं अन्य ग्रन्थों में आये बाह्लिक जाति के बीच भी कोई सम्बन्ध था, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु कुरुओं[२] तथा महावृषों[३] का आपसी सम्बन्ध था और ऐतरेय ब्राह्मण एवं महाभारत-काल में कुरु लोग हिमालय के पार रहते थे। इस कथन से इस बात का संकेत मिलता है कि

इसमें इलावृत वर्ष (मध्य एशिया) का भी उल्लेख है। महाभारत III. 90.22-25 भी देखिए। गंगोत्री के पास एक स्थान है जो पुरु रावस-वंश की जन्म-भूमि मानी जाती है।

१. Law : *Ancient Mid-Indian Kshatriya Tribes*, p. 16. कुरुओं का महावृष (*Vedic Index*, II 279n.) तथा बाह्लिकों से (महाभारत II. 63.2-7) के सम्बन्ध उल्लेखनीय हैं। महाभारत में (III. 145. 18-19) उत्तर कुरु कैलाश और बदरी पहाड़ों के समीप माने गये हैं। दूसरे ग्रन्थ में ये लोग और उत्तर के कहे गये हैं। महाभारत के I.109.10 में मध्यदेश के कुरुओं को दक्षिण कुरु कहा गया है।

२. कुरु के प्रातिपेयों व बाह्लिक का संबंध महाभारत में (II. 63.2-7) में कहा गया है। प्रातिपेयाः शान्तनवा भीमसेनाः स बाह्लिकाः......शृणुध्वम् काव्याम् वाचम् संसदी कौरवाणाम्।

३. *Vedic Index*, II. 279n 5; शतपथ ब्राह्मण (कण्व-पाठ) बाह्लिक और महावृषों के लिये अथर्ववेद, V. 22.4-8.

कुरुओं का आविर्भाव उत्तर में हुआ था। परीक्षित के पूर्व उनकी ५वीं पीढ़ी के शान्तनु से कुरु राजवंश का और निश्चित इतिहास प्राप्त होता है। परीक्षित-काल से घटनाओं के बारे में हमें बहुत थोड़ी ही विश्वसनीय सूचना मिलती है। हम केवल इतना ही जानते हैं कि शान्तनु के समय में जो अकाल पड़ा था, वह परीक्षित के काल में समाप्त हो गया था और उस समय तक प्रजा सुखी एवं समृद्ध हो गई थी।

राजा परीक्षित के समय या काल की हमें कोई प्रत्यक्ष सूचना नहीं मिलती। पुलकेसी-द्वितीय के दरबारी स्तुति-पाठक रविकीर्ति के, ५५६ या ६३४-३५ ईसवी सन् के, एक लेख के अनुसार महाभारत की लड़ाई उस समय से ३७३५ वर्ष पूर्व हुई थी—

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादु आहवादु इतः
सप्ताब्द-शत युक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु।[1]

उपर्युक्त वर्णन से महाभारत की लड़ाई ३१०२ वर्ष ईसापूर्व में पड़ती है। उक्त युद्ध तथा परीक्षित का जन्म क़रीब-क़रीब एक ही समय हुआ था। यहीं से कलियुग का आरम्भ कहा जा सकता है। किन्तु, जैसा कि फ़्लीट[2] का कहना है, इस तिथि का कुछ हिन्दू-ज्यौतिषियों ने—अपने मतलब के लिये—घटना के ३५ सौ वर्ष बाद आविष्कार कर लिया है। इसके अतिरिक्त वृद्ध गर्ग, वराह-मिहिर तथा कल्हण की विचारधारा के ज्यौतिषियों के कथनानुसार महाभारत की लड़ाई कलियुग आरम्भ होने के ६१२३ वर्ष बाद या शकाब्द से २५२६ वर्ष या २४४६[3] वर्ष ईसापूर्व में हुई थी। महाभारत के युद्ध की यह तिथि भी उतनी ही संदेहास्पद है जितनी कि आर्यभट्ट और रविकीर्ति द्वारा निश्चित तिथि। वृद्ध गर्ग-परम्परा का साहित्य उतना विश्वस्त एवं ऐतिहासिकता से पूर्ण नहीं कहा जा सकता जितनी कि कुसुमपुर के ज्यौतिषी की कृतियाँ। इन कृतियों में दी गई तिथियाँ रविकीर्ति के शिलालेख से मेल नहीं खातीं। श्री पी० सी० सेन गुप्त[4]

१. *Ep. Ind.*, VI, pp. 11-12.

२. *JRAS*, 1911., p. 479 ff., 675 ff.

३. आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिर नृपतौ
षड्-द्विका-पंच द्वियुतः शककालस्तस्य राजश्च।
—बृहद् संहिता, XIII 3. Cf. राजतरंगिणी, I,48-56.

4. श्री पी. सी. सेन गुप्त, *Bharat Battle Traditions*, *JRASB*, 1938, No. 3 (Sept. 1939, pp. 393-413)।

ने वृद्ध गर्ग और वराह के अस्तित्व की तिथियों के लिये भागवतामृत तथा कुछ आधुनिक पंचांगों की ओर संकेत किया है। उक्त लेखक द्वारा महाभारत के कुछ श्लोकों के आधार पर उस परम्परा के समर्थन में अनेक कठिनाइयाँ हैं। जहाँ तक पौराणिक कलियुग के आरम्भ की तिथि का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में बड़ी ही अनिश्चितता है। श्री सेन गुप्त के अनुसार महाभारत-कलियुग के २४५४ वर्ष ईसापूर्व से शुरू हुआ तथा महाभारत की लड़ाई २४४९ वर्ष ईसापूर्व में हुई। दूसरे शब्दों में कलियुग आरम्भ होने के ५ वर्ष बाद महाभारत का युद्ध हुआ। किन्तु श्री सेन गुप्त ने ही यह भी कहा कि महाभारत का युद्ध कलियुग और द्वापर के संधि-काल में हुआ था। इस युद्ध के ३६ वर्ष बाद श्रीकृष्ण की मृत्यु हुई और यहीं से वास्तविक कलियुग आरम्भ हुआ। इस प्रकार कलियुग के आरम्भ के सम्बन्ध में दी जाने वाली विभिन्न तिथियाँ एक दूसरे से मेल नहीं खाती। इस सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि कल्हण ने महाभारत के युद्ध को २४४९-४८ वर्ष ईसापूर्व का कहा है। कश्मीर के कोनार्ड-प्रथम भी इसी समय हुए थे। उन्होंने अशोक को कोनार्ड-तृतीय (११८२ ईसापूर्व) के बहुत पहले का बताया है। उक्त विवरणों से स्पष्ट है कि महाभारत की लड़ाई को २४४९ में मानने के सभी आधार अविश्वसनीय हैं। कुछ इतिहासकार[1] आर्यभट्ट और वृद्ध गर्ग के विरोधी मतों को यह कह कर टाल देते हैं कि वराहमिहिर का शक-काल वास्तव में शाक्य-काल के शक-नृपकाल के रूप में स्वीकार किया गया है, वराहमिहिर स्वयं भी शकेन्द्र-काल या शक-भूप-काल के अतिरिक्त शक-काल के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते।[2]

पुराणों के संकलन-कर्त्ताओं ने एक तीसरा दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। विभिन्न ऐतिहासिक पुराणों में एक श्लोक कुछ हेरफेर के साथ आया है जिसमें कहा गया है कि नन्द-वंश (मगध) के प्रथम राजा महापद्म के १०५०, तथा कुछ अन्य पांडुलिपियों के अनुसार १०१५, १११५ व १५०० वर्ष पूर्व राजा परीक्षित का जन्म हुआ था—

---

१. *IHQ*, 1932, 85; *Modern Review*, June 1932, 650 ff.

२. वराहमिहिर-कृत-बृहत् संहिता, टीकाकार भट्टोत्पाल तथा सम्पादक सुधाकर द्विवेदी, p.281.

३. बृहद संहिता, VIII, 20-21.

महापद्म आभिषेकात् तु यावज्जन्म परिक्षितः
एवम वर्ष सहस्त्रम् तु ज्ञेयं पंचाशदुत्तरम् ।[1]

उपर्युक्त श्लोक में यदि 'पंचाशदुत्तरम्' शब्द सही है तो परीक्षित का जन्म १४वीं या १५वीं शताब्दी ईसापूर्व में पड़ता है। किन्तु, यह तिथि भी सन्देह जनक ही है। पहली बात तो यह है कि विभिन्न पांडुलिपियों में अलग-अलग तिथियों के दिये जाने से उनका महत्त्व समाप्त हो जाता है। दूसरी बात यह कि विभिन्न पुराणों में महाभारत के युद्ध और महापद्म के राज्याभिषेक के बीच जिन-जिन राजाओं व राजवंशों का उल्लेख मिलता है, उनके शासन-कालों का जोड़ १०५० वर्ष नहीं होता। १०५० वर्ष ही मत्स्य, वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में भी आया है। इन अनिश्चितताओं को स्पष्ट करने में हमें कुछ तथ्यों से सहायता भी मिलती है। उदाहरण के लिये, यह तथ्य कि बिम्बिसारिद और प्रद्योत एक दूसरे के बाद गद्दी पर बैठे। किन्तु एक बात और ध्यान देने योग्य है— जिस श्लोक में परीक्षित के जन्म और महापद्म के राज्याभिषेक के बीच १०५० वर्ष का अन्तर कहा गया है, उसी में आगे कहा गया है कि अन्तिम आन्ध्र राजा तथा महापद्म के राज्याभिषेकों में ८३६ वर्षों का अन्तर है। अनेक पुराणों में महापद्म तथा उनके वंशजों के शासन-काल को १०० वर्षों का माना गया है। कहा गया है कि उसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठे। इस प्रकार अन्तिम आन्ध्र राजा पुलोमावि तथा चन्द्रगुप्त के बीच केवल ७३६ वर्ष का अन्तर है। चूँकि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक ३२६ वर्ष ईसापूर्व के पहले नहीं माना जा सकता, इसलिये पुलोमावि भी ४१० वर्ष ईसापूर्व के पहले का नहीं हो सकता। किन्तु ५वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हमें दक्षिण भारत का जो इतिहास मिलता है, उससे उपर्युक्त तिथि

---

१. Pargiter, *Dynasties of Kali Age*, p. 58. पार्जिटर के अनुसार 'शतम् पंचदशोत्तरम्'की पुष्टि वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों से नही होती। 'शतम्' पंचदशोत्तरम् का उल्लेख केवल भागवत पुराण में मिलता है। मत्स्य पुराण में 'पंचदशोत्तरम्' शब्द नहीं है। मत्स्य पुराण की एक पांडुलिपि में 'शतोत्रयम्' शब्द आया है। कुछ लोग उक्त शब्दावली को 'पंचशदुत्तरम्' के रूप में सही मानते हैं। अवन्ती के प्रद्योतों की मगध-सूची में सबसे ऊँची संख्या १५०० मिलती है। बार्हद्रथ-शासन को ७२३ वर्ष के बजाय १००० वर्ष का मानने पर उच्चतम संख्या (१००० बार्हद्रथ + १५२ प्रद्योत + ३६० शिशुनागों का समय) १५१२ वर्ष की होती है।

मेल नहीं खाती। उस समय जिस भूमि पर पुलोमावि का शासन कहा जाता है, उस पर उन दिनों वाकाटकों का राज्य था। ये सब आन्ध्र-वंश या सातवाहनों के पतन के बाद हुए थे। उपर्युक्त तथ्यों से पुराणों में[1] दी गई तिथियों के प्रति सावधान रहने की चेतावनी मिलती है।

वैदिक साहित्य में गुरुओं और शिष्यों की तालिकाएँ (वंशसूची) मिलती हैं, जिनके आधार पर परीक्षित और महाभारत का युद्ध १४०० वर्ष ईसापूर्व[2] माना जा सकता है। उक्त तिथि से मिलती-जुलती हुई पौराणिक तिथि को स्वीकार किये जाने के भी इधर अनेक प्रयास किये गये। यद्यपि उपर्युक्त तालिकाओं की महत्ता पर उचित प्रकाश डाला गया है किन्तु इनके द्वारा उपलब्ध तिथियाँ पर्याप्त प्रामाणिक नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, यह बात स्वीकार कर ली गई है कि बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्त में दी गई वंशसूची, वंश-ब्राह्मण तथा जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण की वंशसूची की समकालीन है तथा ये सब सूचियाँ ५५० ईसापूर्व के बाद की कदापि नहीं हैं। बृहदारण्यक तथा समूचा श्रुति-साहित्य बुद्ध के पहले का माना जाता है किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि इनको दी गई वंशसूचियाँ एक ही समय की हैं और एक ही ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। इतिहासकार वैदिक साहित्य को मोटे तौर से ५०० वर्ष ईसापूर्व का साहित्य[3] समझते हैं। पाणिनि[4] ने वैदिक साहित्य को दो भागों में बाँट दिया है। पहला भाग तो वह जिसे वे 'पुराणप्रोक्त' कहते हैं तथा दूसरा भाग वह जिसमें अन्य साहित्य आते हैं। ये साहित्य उतने पुराने नहीं हैं। इन साहित्यों के काल के बारे में '५५० वर्ष ईसापूर्व का' कहने के बजाय '५५० वर्ष ईसापूर्व के बाद का नहीं' कहना ही अधिक ठीक है।

आगे यह भी कहा गया है कि जन्मेजय के पुरोहितों का काल ५५० ईसापूर्व से ८०० वर्ष पूर्व का है। उक्त संख्या (८००) ४० गुरु-शिष्य-परम्पराओं के होने तथा प्रत्येक परम्परा के २० वर्ष तक चलने के अनुमान से प्राप्त हुई है। किन्तु, यह तथ्य उस समय संदेहपूर्ण हो उठता है जब हम देखते हैं कि बृहदारण्यक

१. *The Early History of the Vaishnava Sect* by Rai Chaudhari, Second ed., p. 62 ff.

२. Dr. Altekar, *Presidential Address to the Archaic Section of the Indian History, Congress Proceedings of the Third Session*, 1939. pp. 68-77.

३. Winternitz, *A History of Indian Literature*, p. 27.

४. IV.3.105.

उपनिषद् में गुरुओं की संख्या ४५ (४०) नहीं दी गई है तथा प्रत्येक गुरु-शिष्य-परम्परा का औसत काल जैन तथा बुद्ध ग्रन्थों के अनुसार ३० वर्ष (२० नहीं) माना गया है।[1]

कथा-सरित्सागर में एक जगह परीक्षित का काल दिया गया है। यह तिथि गुप्त-काल[2] के ज्यौतिषियों तथा पुराणों द्वारा बताई गई तिथि के बहुत बाद पड़ती है। इस ग्रन्थ में कौशाम्बी के राजा उदयन का उल्लेख है और उन्हें ५०० वर्ष ईसापूर्व का बताया गया है। इसके साथ उदयन को परीक्षित के बाद की पाँचवीं पीढ़ी में कहा गया है। यद्यपि इसमें की सामग्री बहुत बाद की है, किन्तु उसमें बाण या ६०० ईसवी सन् में हुए गुणाढ्य का भी उल्लेख मिलता है।

यद्यपि कथा-सरित्सागर में परीक्षित की तिथि बहुत बाद में दी गई है किन्तु कुछ बाद में लिखे गये वैदिक साहित्य से भी इस सम्बन्ध में धारणा बनाई जा सकती है। इसी अध्याय के अगले भाग में हम यह भी देखेंगे कि परीक्षित के पुत्र जन्मेजय उपनिषद् के जनक या उनके समकालीन उद्दालक आरुणि से ५ या ६ पीढ़ी बाद के हैं। कौषीतकि या शांखायन आरण्यक[3] के अन्त में उन शिक्षकों की एक सूची है, जिसके द्वारा आरण्यक में निहित ज्ञान-भण्डार उपलब्ध हो सका है। सूची का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"ओ३म् ! वंशसूची प्रारम्भ होती है। ब्राह्मण-भूषण ! गुरु-भूषण ! यह जानकारी गुणाख्य शांखायन से मिली। गुणाख्य को काहोला कौषीतकि से प्राप्त तथा काहोला कौषीतकि को उद्दालक आरुणि से यह ज्ञान हुआ।"[4]

उपर्युक्त अनुच्छेद से स्पष्ट है कि गुणाख्य शांखायन उद्दालक से दो पीढ़ी बाद के हैं और उद्दालक जन्मेजय से ५ या ६ पीढ़ी बाद के। अतः परीक्षित से सात या आठ पीढ़ी बाद गुणाख्य हुए थे। गुणाख्य आश्वलायन से अधिक बाद के नहीं हो सकते, क्योंकि आश्वलायन ने अपने गुरु काहोला[5] की वन्दना की है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि शांखायन की भाँति आश्वलायन का कोई

---

१. Jacobi, परिशिष्ट-पर्वन्, 2nd. ed., XVIII; Rhys Davis, *Buddhist Suttas*, Introduction, XLVII.

२. कथा-सरित्सागर IX. 6-7 ff. Penzer, I. 95.

३. अध्याय १५.

४. *SBE*, Vol. XXIX, p.4.

५. आश्वलायन गृह्य सूत्र, III 4. 4.

ऐसा नाम नहीं था जो आश्वलायन के पूर्व रखा जा सकता। वेदों में भी आश्वलायन को एक शिक्षक बताया गया है। यह महत्वपूर्ण बात है कि वैदिक एवं बौद्ध साहित्य दोनों में आश्वलायन को कोशल (आधुनिक अवध) का कहा गया है। प्रश्न उपनिषद् में आश्वलायन को कोशल का रहने वाला या कौशल्य कहा गया है। इन तथ्यों से हमें सावत्थी (कोशल का ही एक नगर) के आस्सलायन का ध्यान हो जाता है। मज्भिम निकाय[1] के अनुसार वे वेदो के उद्‌भट विद्वान्[2] तथा गौतम बुद्ध के समकालीन थे। आश्वलायन का, गौतम बुद्ध के समकालीन केटुभ (कर्मकाण्ड) वेत्ता के रूप में भी उल्लेख हुआ है। इससे यह भी सम्भव है कि वे गृह्य सूत्र के ही आश्वलायन रहें होंगे। यदि ऐसा है तो वे ६वी शताब्दी ईसापूर्व में रहे होंगे। गुणाख्य शांखायन जिनके गुरु काहोला की गृह्य सूत्रकार ने वन्दना की है वे भी ६वीं शताब्दी ईसापूर्व के बाद के नहीं हो सकते। गुणाख्य के आरण्यक में पौष्करसादि, लौहित्य तथा एक अन्य गुरु की भी चर्चा की गई है। तीसरे गुरु को मगधवासी कहा गया है। प्रथम दो का उल्लेख बुद्ध के समकालीन तथा लोहिच्च सुत्त में हुआ है। आरण्यक में मगध के गुरु की चर्चा से एक ऐसे युग का संकेत मिलता है जो श्रोत सूत्र के बाद का है। श्रौत सूत्र में ब्राह्मणों को 'ब्रह्मबन्धु मगधदेशीय' कहा गया है।[3]

गोल्डस्टुकर के कथनानुसार, पाणिनि ने किसी जंगल मे रहने वाले के अर्थ में ही (आरण्यक) शब्द का प्रयोग किया है। कात्यायन ने (चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व) अपने वार्तिक में आरण्यक का अर्थ 'वन में लिखा या पढ़ा गया ग्रन्थ' बताया है। अपने बाद हुए वैयाकरणी द्वारा एक भिन्न अर्थ प्रचलित किये जाने पर भी पाणिनि खामोश रहे। इससे स्पष्ट है कि चौथी शताब्दी ईसापूर्व में आरण्यक का अर्थ वन में लिखे या पढ़े गये ग्रन्थ से ही समझा जाता था। इस प्रसंग में स्मरण रखना चाहिए कि पाणिनि काहोला के समकालीन तथा गुणाख्य के गुरु याजवल्क्य की कृतियों को प्राचीन-ब्राह्मण साहित्य में (पुराण प्रोक्त) में नहीं

१. II. 117. et seq.

२. तिन्नाम् वेदानं पारगू मनिघण्डु केटुभानां।

३. *Vedic Index*, II. 116. पौष्करसादि तथा दूसरों से संबंधित उल्लेख कोई खास महत्त्व के नहीं हैं। हमें केवल सांखायन आरण्यक के उल्लेख का पाणिनि और आपस्तम्ब के संदर्भ के साथ क्या महत्व है को ही समझना है, —*Panini, His Place in Sanskrit Literature*, 1914, 99.

रखते।[1] गुणाढ्य के गुरु काहोला के दूसरे समकालीन श्वेतकेतु का उल्लेख आपस्तम्ब[2] के धर्म सूत्र में मिलता है। पाणिनि के सूत्रों में 'यवनानि'[3] का उल्लेख तथा काव्य-मीमांसा[4] में यह उल्लेख कि वे पाटलिपुत्र (जिसकी स्थापना बुद्ध की मृत्यु के बाद उदयन के समय ४८६ ईसापूर्व में हुई) में हुए थे, यह सिद्ध करता है कि वे शाक्यों के पूर्व के नहीं हैं। वैदिक साहित्य में असाधारण गति रखते हुए भी पाणिनि को यह नहीं ज्ञात था कि आरण्यक को 'वन में प्रणीत ग्रन्थ' भी माना जाता है। इसलिये यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि पाणिनि गुणाढ्य शांखायन जैसे आरण्यक-वेत्ताओं के बहुत बाद हुए थे। यदि पाणिनि का काल छठी शताब्दी ईसापूर्व माना जाय तो तत्सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री बिल्कुल ठीक उतरती है।

हमें अभी भी परीक्षित और गुणाढ्य के समय का अन्तर निकालने का प्रयास करना है। प्रोफ़ेसर रीज डेविड्स ने यह अन्तर १५० वर्षों तक रखा है। जेकोबी के अनुसार एक धर्मगुरु का औसत कार्यकाल ३० वर्ष था। इस प्रकार हम लोग परीक्षित और गुणाढ्य शांखायन के बीच २४० या २७० अथवा ८ या ९ पीढ़ी का समय रख सकते हैं। इसके फलस्वरूप परीक्षित का समय ९ वीं शताब्दी ईसापूर्व में पड़ता है।

परीक्षित के बाद कुरुवंश की गद्दी उनके ज्येष्ठ पुत्र जन्मेजय को मिली। महाभारत में इस राजा द्वारा किये गये एक बड़े नागयज्ञ का उल्लेख है। इस प्रसंग में जन्मेजय द्वारा तक्षशिला[5] के जीतने की भी चर्चा है। 'पंचविंश ब्राह्मण'[6] तथा बौधायन श्रौत सूत्र[7] से स्पष्ट है कि इस कुरु राजा का सर्प-सत्र कोई ऐतिहासिक आधार नहीं रखता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैदिक साहित्य में जिस सर्प-सत्र का उल्लेख है वह महाभारत की ही कथा का एक प्रतिरूप है।

१. IV. 3.105 Goldstukar की पुस्तक *Panini* में टीकासहित याज्ञवल्क्यादयो हि न चिरकाला इत्याख्यानेषु वार्त्ता।

२. धर्मसूत्र 1.2.5,4-6.

३. IV. I. 49.

४. p. 55.

५. महाभारत 1.3.20; तक्षशिला के पूर्वप्रसंग के लिए पाणिनि,IV. 3.93; *Vinaya Texts*, Pt. II. p. 174; Malalasekera, *Dictionary*, I, p. 982 भी देखिये।

६. XXV. 15; *Vedic Index*, I, p. 274.

७. Vol. II, p. 298; XVII. 18.

उक्त कथा तीन विभिन्न स्थितियों से होकर विकसित हुई है। मूलकथा तो यह है कि नागों ने स्वयं यह सत्र (यज्ञ) किया था और उनमें से एक नाग का नाम जन्मेजय था। जन्मेजय नामक सर्प ने अपने आचार्यत्व में उक्त यज्ञ करके नागों की ओर से मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। कथा का दूसरा रूप बौधायन श्रौत सूत्र के अनुसार यह है कि जन्मेजय नामक नाग राजा ने मनुष्य रूप धारण करके खाण्डवप्रस्थ (कुरुदेवा में) में उक्त यज्ञ इसलिये किया था कि सर्पों को विष प्राप्त हो जाय। अन्त में महाभारत में कुरुराजा (जन्मेजय) ने यह यज्ञ किया, किन्तु यज्ञ का उद्देश्य नागों के लिए मृत्यु पर विजय प्राप्त करना या विष प्राप्त करना न होकर इन जीवों का पूर्ण उन्मूलन था। इन विषैले जन्तुओं के इस कार्य में ऐतिहासिक संघर्ष की झलक पाना तो असम्भव ही है।[१]

चूँकि ब्राह्मण-साहित्य में जन्मेजय को एक विजेता के रूप में चित्रित किया गया है, इसलिए जन्मेजय की तक्षशिला-विजय को एक ऐतिहासिक तथ्य कहा जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण[२] में कहा गया है—जन्मेजयः पारिक्षितः समन्तम् सर्वतः पृथ्वीं जयन् परीयायाश्वेन च मध्येनेजे तदेषा यज्ञ-गाथा गीयते—

आसन्दीवत धान्यादम् रुक्मिणां करितस्रजम्

अश्वं बबन्ध सारंगम्[३] देवेभ्यो जन्मेजय इति।

जन्मेजय ने दिग्विजय-यात्रा की थी और अनेक देशों को जीता था। अन्त में अश्वमेध यज्ञ भी किया जिसके बारे में कहा गया है—"आसन्दीवत में देवलोक को जाने वाले जन्मेजय के घोड़े के शरीर पर काले धब्बे थे तथा वह स्वर्ण-आभूषणों एवं पीली मालाओं से मंडित था।"[४] ऐतरेय ब्राह्मण[५] के एक दूसरे अनुच्छेद में लिखा है कि जन्मेजय की अभिलाषा 'सर्वभूमि' या 'सार्वभौम' बनने की नहीं थी—

"एवंविदम् हि वै मामेवंविदो याजयन्ति तस्माद् अहं जयाम्यभीत्वरीं सेनां

१. डॉक्टर डब्ल्यू० कालैण्ड द्वारा अनुवादित पञ्चविंश ब्राह्मण, p. 641; *Cf.* Winternitz, *JBBrRAS.*, 1926, 74. ff; Pargiter, *AIHT*, p. 285 के अनुसार परीक्षित-द्वितीय को नागाओं ने मार डाला था किन्तु उसके पुत्र जन्मेजय-तृतीय ने उन सबको हराया और शान्ति स्थापित की।

२. VIII. 21.

३. Variant—अबधनादश्वम् सारङ्गम्—शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4.1-2.

४. Keith, ऋग्वेद ब्राह्मण ग्रन्थ, 336; Eggeling, शतपथ ब्राह्मण, V, p. 396.

५. VIII. 11.

जयाम्यभीत्वर्या सेनया न मा दिव्या न मानुष्य इष्व रिच्छन्त्येष्यामि सर्वमायुः सर्वभूमिर्भविष्यामीति ।"

"जन्मेजय परीक्षित प्रायः कहा करते थे कि जो लोग हमारे यज्ञ को जानते हैं, वे जानते हैं कि मैं आक्रमणकारी पर विजय प्राप्त करता हूँ और मैं आक्रमणकारी के साथ विजय प्राप्त करता हूँ। लोक या परलोक कहीं के भी बाण मुझ तक नहीं पहुँच सकते। मैं अपनी पूरी आयु भर जीऊँगा और समूची पृथ्वी पर शासन करूँगा।"

जन्मेजय द्वारा तक्षशिला पर विजय का अर्थ है माद्रा या मध्य पंजाब पर जन्मेजय का अधिकार। जन्मेजय की माता माद्रावती[1] इसी माद्रा देश की थीं। इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य है कि एक बार कुरु राज्य की पश्चिमी सीमा सिन्ध की सहायक नदी परिणाह (Parenos) तक फैली हुई थी। सिकन्दर के समय तक झेलम और रावी के बीच के क्षेत्र पर पौरव-वंश के राजकुमार राज्य करते थे। भूगोलवेत्ता पालेमी (Ptolemy) ने एक जगह कहा है कि शाकल (स्यालकोट) प्रदेश पर पाण्डु लोग राज्य करते थे।

अनुमानतः विजय-यात्राओं के बाद राजा जन्मेजय का 'पुनर्अभिषेक' एवं ऐन्द्र-महाभिषेक हुआ और उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किये। इसी समय उनके वैशम्पायन तथा ब्राह्मणों के बीच विवाद हुआ। मत्स्य पुराण के अनुसार पहले तो राजा ब्राह्मणों के विरुद्ध दृढ़ता से अडे रहे, किन्तु बाद में उन्होंने हार मान ली और अपने पुत्र को राज-पाट देकर जंगल को चले गये। इतिहासकार पार्जिटर के अनुसार जन्मेजय के सम्बन्ध में यह प्राचीनतम उक्ति है। वायु पुराण के अनुसार ब्राह्मणों ने उनको समाप्त करके उनके लड़के को राज्य सौंप दिया। पौराणिक उक्तियों की मोटी-मोटी बातों की पुष्टि ब्राह्मण ग्रन्थों से होती है। शतपथ ब्राह्मण में जन्मेजय के एक अश्वमेध की चर्चा करते हुए कहा गया है कि इसे इन्द्रौत दैवाप शौनक ने कराया था। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि दूसरे अश्वमेध यज्ञ का पौरोहित्य-कार्य तुरा कावषेय ने पूरा किया। तत्सम्बन्धी एक कथा के अनुसार अपने एक यज्ञ में जन्मेजय ने कावषेय को पुरोहित न बनाकर भूतवीरों को बनाया; किन्तु कश्यपों के असितमृग कहलाने वाले एक गोत्र ने भूतवीरों से पौरोहित्य-कार्य छीन लिया। हमारे पास ब्राह्मणों से विवाद की अनेक पौराणिक कहानियाँ हैं। जन्मेजय के विरोधियों के नेता वैशम्पायन निश्चित

१. भागवत पुराण (I. XVI. 2) में इरावती की लड़की उत्तरा को जन्मेजय तथा उसके भाइयों की माँ कहा गया है।

रूप से कश्यप-वंश के थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इस विवाद का 'कोपाज्जन्मेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तः' के रूप में उल्लेख हुआ है।

गोपथ ब्राह्मण में जन्मेजय तथा दो हंसों की एक कथा है जिसमें 'ब्रह्मचर्य' की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि यह कथा बिल्कुल पौराणिक है, किन्तु स्पष्ट है कि गोपथ ब्राह्मण-काल में जन्मेजय को कहानियों का नायक माना जाता रहा है।[१] अश्वमेध यज्ञ के बलि के गीत (यज्ञगीत) में आसन्दीवत को जन्मेजय की राजधानी कहा गया है। इस सम्बन्ध में पहले भी कहा जा चुका है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञभवन या जन्मेजय के राजभवन की बड़ी सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है—

समामान्तसदम् उक्षान्ति हयान् काष्ठमृतो यथा
पूर्णान् परिस्रुतः कुम्भान् जन्मेजयसादनऽइति।

"जन्मेजय के राजमहल (या यज्ञभवन) में यज्ञ के घोड़ों पर दधि और सुरा का अभिषेक होता था। परीक्षित के समय में भी दधि एवं सुरा कुरुओं का मुख्य पेय था।"[२]

यदि महाभारत पर विश्वास किया जाय तो तक्षशिला में भी कभी-कभी जन्मेजय का ही दरबार लगता था और वहीं पर वैशम्पायन ने उन्हें कुरु और पाण्डु[३] के संघर्ष की कथा सुनाई थी। सृञ्जय भी इस संघर्ष से सम्बद्ध थे। यद्यपि महाभारत की लड़ाई का कोई स्वतंत्र प्रमाण नहीं है किन्तु कुरु तथा सृञ्जय के बीच शत्रु-भाव के अनेक संकेत मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण[४] में भी इस तथ्य का उल्लेख है।

१. गोपथ ब्राह्मण, ed. by. R.L. Mitra and Harachandra Vidyabhushan, p. 25 ff. (I. 2.5.)। उपर्युक्त कथा में दन्ताबल धौम्र एक नाम आया है, कुछ लेखकों ने इस नाम को और जैमिनीय ब्राह्मण के दन्ताल धौम्य को एक ही कहा है, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं है। बौद्धायन श्रौत सूत्र (Vol. III, p. 449) में धूम्र, धूम्रायन तथा धौम्य शब्द कश्यप-ग्रुप के विभिन्न व्यक्तियों के लिए आये हैं।

२. शतपथ ब्राह्मण, XI. 5.5,13; Eggeling, V. 95.

३. महाभारत, XVIII. 5.34.

४. कुरुक्षेत्र के युद्ध को प्रायः कुरुओं तथा सृञ्जय के बीच हुआ कहा जाता है (महाभारत, VI. 45.2; 60. 29; 72,15; 73.41; VI. 20.41;149. 40; VIII. 47. 23; 57.12; 59.1; 93.1)। शतपथ ब्राह्मण में भी इन दो वंशों के बीच कुछ अमैत्रीपूर्ण व्यवहार का उल्लेख मिलता है (XII. 9.3. 1 ff.; *Vedic Index* II. p. 63)।

इतिहासकार हॉप्किन्स ने छान्दोग्य उपनिषद्[1] की उस कथा की ओर संकेत किया है जिसमें एक घोड़ी ने कुरुओं की रक्षा की थी—

यतोयत आवर्त्तते तत् तद् गच्छति मानवः
....कुरून् अश्वाभिरक्षति ।

उक्त पद से महाभारत की तत्सम्बन्धी कथा याद आ जाती है ।[2]

यह कहा जा सकता है कि चूँकि पाण्डुओं का वैदिक साहित्य में नाम नहीं, आता, इसलिये इनका कुरुओं से संघर्ष उत्तर वैदिक काल में हुआ होगा। किन्तु, यह निष्कर्ष निकलना ग़लत होगा कि भारतीय परम्परा के अनुसार पाण्डु भी कुरु की ही वंश-परम्परा के थे । हॉप्किन्स अवश्य कहता है कि पाण्डु लोग अज्ञात जाति के थे और मुख्यतः गंगा के उत्तर की किसी जंगली जाति से सम्बन्धित थे। पतंजलि ने भीम, नकुल और सहदेव को कुरु[4] कहा है । हिन्दू-परम्परा के अनुसार पाण्डव लोग कुरुवंश की ही एक शाखा थे, जैसे कि कौरव भरत-वंश की एक शाखा थे । महाभारत नाम ही युद्ध के दोनों पक्षों या बहादुरों (कुरुओं) की अपेक्षा करता है । बौद्ध-साहित्य भी इसी ओर संकेत करता है । दश ब्राह्मण जातक[6] में युधिष्ठिला-वंश का एक राजा, कुरु राज्य तथा इन्दपत्त नगर पर शासन करता था। उसे कौरव्य (कुरुवंश का) कहा गया है । पाण्डवों में एक से अधिक पति वाली स्त्रियाँ थीं। पाण्डवों के बहुपति-प्रथायुक्त विवाहों से हम यह नहीं कह सकते कि वे लोग कुरु नहीं थे । मध्यदेश के कुरुओं में नियोग-प्रथा भी एक प्रकार की बहुपति-प्रथा ही है ।[7] उत्तरी कुरुओं

---

१. IV. 17. 9-10, *The Great Epic of India*, p. 385.

२. महाभारत, IX, 35.20.

३. *The Religion of India*, p. 388.

४. IV. 1.4.

५. *Ind. Ant.*, I, p. 350.

६. जातक नं० 495

७. *Political History*, pp. 95-96, *Journal of the Department of Letters* (Calcutta University), Vol.IX भी देखिये । इसके अलावा *Early History Vashnava Sect*, Second Edition, pp. 43-45 *JRAS*, 1897. 755 ff. आपस्तम्ब, II. 27.3; बृहस्पति XXVII भी देखिये । यद्यपि पांडुवंश में बहुपति-प्रथा थी किन्तु द्रौपदी के आलावा किसी के भी कई पति नहीं थे । इनके

में वैवाहिक धर्म का आदर किया जाता था, किन्तु विवाह के नियम निश्चित रूप से ढीले थे।[१]

आश्वलायन के गृह्य सूत्र[२] के समय में वैशम्पायन 'महाभारताचार्य' के रूप मे प्रसिद्ध थे। तैत्तरीय आरण्यक[३] तथा पाणिनि की अष्टाध्यायी[४] में भी वैशम्पायन का उल्लेख है। इस समय यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि महाभारत का मूल गायक जन्मेजय का समकालीन था या नहीं। किन्तु, वैदिक साहित्य में मुझे ऐसी कोई वस्तु नहीं मिली जो महाभारत की विरोधी हो। इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक साहित्य के प्राचीन अंशों में महाभारत का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु 'इतिहासों' शब्द उनमें भी मिलता है। यह सर्वविदित है कि वैशम्पायन द्वारा जन्मेजय को सुनाई गई कथा सर्वप्रथम 'इतिहास' कहलाई तथा बाद में उसे 'जय'[६] या 'विजय' गान की संज्ञा दी गई है। वह कथा या विजय-गान राजाओं के पूर्वज पाण्डवों की जीत के गीत कहलाये--

मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा
जयो नामेतिहासो यं श्रोतव्यो बिजिगीषुणा।[७]

"इस कथा को सुनकर मनुष्य हर प्रकार के पापों से दूर हटता है, जैसे चन्द्रमा राहु से दूर हटता है। इस इतिहास का नाम 'जय' है तथा इसका श्रवण हर विजय की इच्छा रखने वाले को करना चाहिए।"

शतपथ ब्राह्मण[८] तथा शांखायन श्रौत सूत्र[९] में कहा गया है कि जन्मेजय

वंशजों में भी कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। महाभारत में कुरुओं और पांडवों का उल्लेख अलग-अलग ही हुआ है। इसी प्रकार विद्वानों ने Plantagenet, York and Lancaster; Capet, Valois, Bourbon and Orleans; Chaulukya and Vaghela देशों को भी संबंधित कहा है।

१. महाभारत, I. 122.7.

२. III. 4.

३. I. 7.5.

४. IV. 3. 104.

५. अथर्ववेद, XV. 6.11-12.

६. *Cf.* C.V. Vaidya, *Mahabharat: A Criticism*, p.2; and S. Levi in *Bhand. Corm. Lec.*, Vol., pp. 99 sqq.)।

७. महाभारत, आदि पर्व, 62,20; *Cf.* उद्योग, 136,18.

८. XIII.5 4.3.

९. XVI. 9.7.

के भाई भीमसेन, उग्रसेन और श्रुतसेन ने भी अश्वमेध यज्ञ[1] किया था। इनके जीवन और इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में बृहदारण्यक उपनिषद् में बड़ी दिलचस्पी दिखाई गई है। पंडितों में भी इस सम्बन्ध में बड़ी जिज्ञासा-भरी चर्चाएँ होती हैं। स्पष्ट है कि परीक्षित-वंश का सूर्य उपनिषद्-काल[2] के पूर्व ही अस्त हो चुका था। यह भी स्पष्ट है कि परीक्षित के वंशज कुछ पापों के भागी सिद्ध हुए थे जिनके प्रायश्चित्त के लिये उन्होंने अश्वमेध किये थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधैः परोऽवरम्
अजहुः कर्मपापकम् पुण्याः पुण्येन कर्मणा।[3]

ऐसा समझा जा सकता है कि तत्कालीन धर्माचार्यों ने नियमोल्लंघनों का प्रायः प्रायश्चित्त कराया है और काफ़ी समय तक कुरु राज्य में राजा तथा पुरोहित वर्ग एक दूसरे से मिल-जुलकर रहते रहे हैं। पुराणों के अनुसार जन्मेजय के बाद शतानिक के पुत्र तथा उत्तराधिकारी का नाम अश्वमेधदत्त था। अश्वमेध-दत्त से अधिसीमाकृष्ण पैदा हुए, जिनका उल्लेख वायु तथा मत्स्य पुराणों में मिलता है। अधिसीमाकृष्ण का पुत्र निचाक्षु था। ऐसा कहा जाता है कि निचाक्षु के काल में हस्तिनापुर गंगा की धारा में बह गया और राजा ने अपनी राजधानी कौशाम्बी या कोसाम (इलाहाबाद के समीप) को स्थानान्तरित कर दिया।[4]

---

१. क्या इन तीनों भाइयों ने जन्मेजय के यज्ञों में भाग लिया था? महाभारत में (1.3.1.) इनके भाग लेने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

२. इस प्रश्न से, 'आखिर परीक्षित लोग कहाँ गये' यह नहीं सिद्ध होता कि उनका विनाश हो गया था। पार्जिटर के अनुसार यह प्रश्न कुछ और ही संकेत करता है। 'अश्वमेध यज्ञ करने वाले कहाँ गये' का अभिप्राय यह भी था कि वे लोग बड़े ही प्रतापी या वरदान-प्राप्त लोग थे, (*AIHT*, 114.)। रामायण में जन्मेजय का नाम भी उन राजाओं की सूची में रखा गया है जो बड़े ही ऐश्वर्यशाली थे।

३. शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.3.; *Cf.* महाभारत, XII. 152,381. महाभारत के अनुसार परीक्षित-वंश के लोगों पर ब्रह्महत्या तथा भ्रूणहत्या का पाप था (*Ibid.*, 150, Verses 3 and 9)। *Cf.* also शतपथ ब्राह्मण XIII. 5.4.1.

४. गंगयापहृते तस्मिन्नगरे नागसाह्वये
त्यक्त्वा निचाक्षुं नगरम् कौशम्ब्यायाम् सो निवोत्स्यति।

वैदिक साहित्य में जन्मेजय के उत्तराधिकारियों तथा कुरुओं की राजधानी हस्तिनापुर का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, यद्यपि पुराणों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं। हस्तिनापुर की ऐतिहासिकता पाणिनि[१] की कृतियों से भी प्रमाणित है। जहाँ तक राजकुमारों का प्रश्न है, ऋग्वेद में निस्सन्देह राजा (भरत) अश्वमेध[२] का उल्लेख मिलता है, किन्तु कोई ऐसा संकेत नहीं है कि यह अश्वमेध वही अश्वमेधदत्त है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में शतानिक सात्राजित को एक शक्तिशाली राजा कहा गया है, जिसने काशी के राजकुमार धृतराष्ट्र को हराकर उनका अश्वमेध का घोड़ा छीन लिया था। सम्भवतः यह राजा भी भरत-वंश का ही था[३] किन्तु सात्राजित जन्मेजय के पुत्र शतानिक से भिन्न थे। पंचविंश ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण तथा छान्दोग्य उपनिषद् में अभिप्रतारिण कक्षसेनि नामक एक कुरु राजा की चर्चा की गई है जो गिरीक्षित औच्चमान्यव, शौनक कापेय का समकालीन था। दृति ऐन्द्रौत दैवाय (दैवाप) जन्मेजय के पुरोहित शौनक का लड़का तथा शिष्य था।[४] कक्षसेन का पुत्र अभिपतारिण राजा का उत्तराधिकारी लगता है। महाभारत[५] में कक्षसेन का उल्लेख जन्मेजय के भाई के रूप में मिलता है। इस प्रकार अभिप्रतारिण जन्मेजय का भतीजा मालूम होता है। ऐतरेय ब्राह्मण तथा शांखायन श्रौत सूत्र में[६] वृद्धद्युम्न अभिप्रतारिण नामक एक राजकुमार का उल्लेख मिलता है, जो सम्भवतः अभिप्रतारिण का पुत्र

'जब नागसाह्वय नगर (हस्तिनापुर) गंगा की लहरों में बह जायगा तो निचाक्षु कौशाम्बी में रहने लगेगा।'

रामायण के अनुसार (II.68.13)—Pargiter, *Dynasties of the Kali Age*, p. 5 हस्तिनापुर गंगा के किनारे बसा था। महाभारत (I.128) तथा महाभाष्य (अनुगंगम् हस्तिनापुरम्) का भी यही मत है।

१. VI. 2,101.

२. V. 27.4-6.

३. शतपथ ब्राह्मण XIII. 5. 4. 19-23.

४. वंश ब्राह्मण; *Vedic Index*, Vol, I, pp. 27,373

५. I. 94.54.

६. XV. 16. 10-13.

था। ऐतरेय ब्राह्मण[1] में उसके पुत्र रथगृत्स तथा पुरोहित शुचिवृक्ष गौपालायन[2] का भी नाम आता है। शांखायन श्रौत सूत्र के अनुसार[3] यज्ञ के समय वृद्धद्युम्न ने कोई भूल कर दी जिस पर एक ब्राह्मण ने शाप दिया कि एक दिन कुरुक्षेत्र से कुरुवंश निष्कासित कर दिया जायगा और, फिर हुआ भी ऐसा ही।

जन्मेजय के राज्य-काल में होने वाले यज्ञों से राजवंश पर भयंकर एवं गम्भीर कुपरिणामों की भी आशंका रहा करती थी। कुरु राज्य में उपयुक्त व्यक्तियों द्वारा कर्मकाण्डों के समुचित निर्वाह में उतनी ही रुचि दिखाई जाती थी जितनी कि विदेह के दरबार में दार्शनिक परिचर्चाओं पर। यहाँ तक कि चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व तक चन्द्रगुप्त मौर्य को युद्ध अथवा प्रशासन के कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी यज्ञ-महोत्सवों में भाग लेना पड़ता था। ब्राह्मण-कर्मकाण्ड के एक मात्र गढ़ प्राचीन कुरु राज्य में यज्ञ के समय हुई भूलें बहुत बड़ी और गम्भीर[4] मानी जाती थीं। इन दिनों धार्मिक अनाचरण या अभिषेक के फलस्वरूप दैवी विपत्तियाँ आ जाती थीं और राज्य को इन्हें भोगना पड़ता था। पुराणों में हस्तिनापुर के गंगा की धारा में बह जाने का उल्लेख मिलता ही है। छान्दोग्य उपनिषद् में एक बार कुरु राज्य भर में ओले तथा टिड्डियों से कृषि के विनाश की कहानी मिलती है। इस विनाश के फलस्वरूप उषास्ति चाक्रायण के परिवार को उद्वासित होकर पड़ोस के किसी सामन्त राजकुमार के गाँव में तथा बाद में विदेह के जनक के यहाँ शरण लेनी पड़ी।

---

१. Trivedi's translation, pp. 322-23.

२. एक गौपालायन कुरु के यहाँ 'स्थपति' नामक ऊँचे पद पर था (बौद्ध श्रौत सूत्र, XX. 25; *Vedic Index*, I 128) शुचिवृक्ष और उसके संबंध के बारे में कुछ पता नहीं चलता।

३. XV. 16. 10-13.

४. छान्दोग्य, I. 10. 1; बृहद् उपनिषद्, III, 4. पूर्वप्रसंग के लिये इसके अलावा ऋग्वेद, X. 98 (शांतनु के समय का अकाल) तथा महाभारत, I. 94 (संबरण की कथा) भी देखिये। छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है— मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्य सहजायता उषस्तिर ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास। 'जब कुरुप्रदेश में ओले पड़े थे और टिड्डियों का प्रकोप हुआ था तो उषस्ति चाक्रायण तथा उनकी पत्नी को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था।' इस ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी की यह दशा परीक्षित-कालीन कुरुवासियों की हालत से भिन्न थी। टीकाकारों ने मटची का अर्थ ओले, पत्थर या टिड्डियों का दल माना है। देखी

पंचविंश ब्राह्मण[1] में कुरु-राजवंश की शाखा के राजा अभिप्रतारिण से सम्बन्धित एक कथा लिखी है, जिसमें कहा गया है कि अभिप्रतारिण के राज्य-काल में कुरुओं पर अनेक विपत्तियाँ आईं। हमें यह भी पता चलता है कि सम्भवतः कक्षसेन के पुत्र अभिप्रतारिण के पुरोहित दृति ने खाण्डव[2] में एक यज्ञ कराया था। पंचविंश ब्राह्मण[3] मे ही यह भी लिखा है कि अभिप्रतारिण राजे अपने सम्बन्धियों में सबसे शक्तिशाली थे। उसी अनुच्छेद मे कहा गया है कि अभिप्रतारिण के समय में जन्मेजय नहीं थे तथा कुरु के राजवंश में अभिप्रतारिण वंश ही सबसे अधिक चमका था। इसके बाद इस वंश की अनेक शाखायें हो गईं। इन्हीं में से एक हस्तिनापुर का राजा हुआ था और उसने बाद में अपनी राजधानी हस्तिनापुर से कौशाम्बी को स्थानान्तरित किया था। पुराणों में भी इस शाखा का उल्लेख मिलता है। इस वंश की एक दूसरी शाखा ने इषुकार[4] में राज्य किया। तीसरी सबसे शक्तिशाली शाखा खाण्डव (महाभारत के अनुसार इन्द्रप्रस्थ) में अधिष्ठित थी। यह राजधानी दिल्ली के पास ही अवस्थित थी। जातकों में कहा गया है कि यहाँ युधिष्ठिला-वंश (युधिष्ठिर-गोत्र) के राजा रहते थे।

अभिप्रतारिणों का राज्य-वैभव अल्पकालीन ही था। कुरुओं पर तरह-तरह की विपत्तियाँ आईं और वंश का विघटन हो गया।[5] राज्य के अधिकांश ब्राह्मण तथा राजकुमार राज्य से उद्वासित होकर पूर्वी भारत में जा बसे।

भागवत में भी लिखा है—मटची युथवत्तेषाम् समुदयास्तु निर्गताः (X.13. 110)। किटल के शब्दकोश में यही अर्थ मिलता है (Jacob, *Scraps from Shaddarshan*, *JRAS*, 1911, 510; *Vedic Index*, II. 119; भण्डारकर, *Carm. Lec.*, 1918, 26-27; Bagchi, *IHQ*, 1933, 253)।

१. XXV. 3. 6.

२. XIV. 1. 12.

३. II. 9. 4, Caland's ed., p. 27.

४. *SBE*, XIV. 62.

५. *Cf.* जैमिनीय ब्राह्मण, III. 156; *JAOS*, 26.61. जब अभिप्रतारिण वृद्ध हो गया तो उसके लड़कों ने जायदाद का बँटवारा कर लिया और आपस में लड़ने-झगड़ने लगे।

भारत या कुरुवंश द्वारा कौशाम्बी के राजधानी बनाये जाने की पुष्टि भाष्य से भी होती है।[1]

भारतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः
तन्नार्हसि बलाद्धर्तुं राजधर्मस्य वेशिकः।

"तुमने भरत-वंश में जन्म लिया है। तुम आत्म-अनुशासित, शुद्ध एवं प्रबुद्ध हो······।"

---
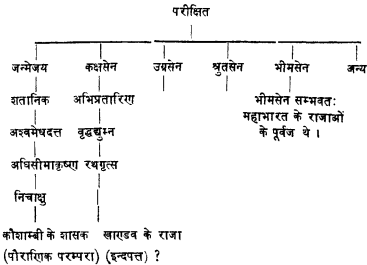
१. Ed. गणपति शास्त्री, p. 140, Trans. V. S. Sukthankar, p. 79. *Cf.* प्रतिज्ञायौगन्धरायण, "वेदाक्षर समवाय प्रविष्टो भारतो वंशः", "भारत कुलोपभुक्तम वीणारत्नम्", Act II.

भारतानान् कुले जातो
वत्सानामूर्जितः पतिः, Act. IV.

२. जनक-काल

सर्वे राज्ञो मैथिलस्य मैनाकस्येव पर्वताः
निकृष्टभूता राजानो······ — महाभारत[1]

हमने देखा कि एक के बाद दूसरी विपत्ति ने कुरुवंश को विनष्ट कर दिया। सम्पूर्ण राज्य टुकड़े-टुकड़े में छिन्न-भिन्न हो गया। अन्तिम राजा को राज्य तक छोड़ देना पड़ा। कुरु के बाद के युग में लोगों ने राजनीति में नाम मात्र को भाग लिया। कुरुवंश के बाद के युग में उद्दालक आरुणि ठथा याज्ञवल्क्य के सम-कालीन विदेह के दार्शनिक राजा जनक का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। इनका उल्लेख वेदों में भी मिलता है। कुरुओं की ह्रासोन्मुख तथा विदेहों की बढ़ती हुई शक्ति का आभास तो इसी तथ्य से होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों[2] में कुरुओं को राजन् कहा गया है जबकि विदेह के जनक का 'सम्राट' (शाहंशाह) के रूप में उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण[3] के अनुसार भी राजा की अपेक्षा सम्राट् अपेक्षतया ऊँची प्रतिष्ठा पाता था।

इसमें सन्देह नहीं कि राजा जनक परीक्षित-वंश के बाद हुए थे। आगे हम देखेंगे कि जनक सम्भवतः निचाक्षु के समकालीन थे। राजा जनक निश्चित रूप से उषास्त या उषास्ति चाक्रायण के समकालीन थे और इन्हीं के समय में कुरुवंश पर विपत्ति आई थी। हम देखते हैं कि राजा जनक के समय में लोगों को परीक्षित-वंश की रहस्यपूर्ण स्थिति अच्छी तरह याद थी। यहाँ तक कि उस पर मिथिला के राजदरबार में बड़े ही जिज्ञासापूर्ण ढंग से विचार-विमर्श भी होता था। बृहदारण्यक उपनिषद् में एक प्रश्न पूछकर भुज्यु लाह्यायनी ने जनक के दरबार के रत्न याज्ञवल्क्य की परीक्षा ली थी। प्रश्नकर्त्ता को प्रश्न का उत्तर माद्रा की एक बालिका से प्राप्त हो चुका था। प्रश्न यों था—

[क्व पारिक्षिता अभवन् ?[4] (परीक्षिता वंश के लोग कहाँ गये ?) याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—अश्वमेध यज्ञ करने वाले जहाँ निवास करते हैं।] इससे यह स्पष्ट

---

१. III. 134. 5. जिस प्रकार सभी पर्वत मैनाक पर्वत से निम्नकोटि के हैं, उसी प्रकार मिथिला नरेश के मुक़ाबले में सभी राजागण भी निम्न स्तर के हैं।

२. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 14. पंचविंश, XIV. 1. 12. etc.

३. V. I. 1, 12-13.

४. बृहद् उपनिषद्, III. 3. 1, E. Roer, बृहद् उपनिषद्, p. 20.

है कि उस समय परीक्षित-वंश के लोग समाप्त हो चुके थे; फिर भी उनके जीवन तथा उनके अन्त की स्मृति सबों के मस्तिष्क में ताज़ी थी। देश के विभिन्न भागों के लोग बड़ी जिज्ञासा एवं रुचि से उनकी चर्चा करते थे।[१]

यह सम्भव नहीं कि जन्मेजय और जनक के बीच काल-सम्बन्ध का बिल्कुल ठीक-ठीक निरूपण किया जा सके। महाभारत और पुराणों की परम्परा के अनुसार तो दोनों समकालीन लगते हैं। महाभारत में कहा गया है कि जनक के दरबार के प्रमुख व्यक्ति उद्दालक तथा उनके पुत्र श्वेतकेतु ने जन्मेजय के सर्प-सत्र (नागयज्ञ) में भाग लिया था—

सदस्यश्चाभवद् व्यासः पुत्र-शिष्य सहायवान्
उद्दालकः प्रमतकः श्वेतकेतुश्च पिंगलः।[२]

'व्यास ने अपने पुत्र तथा शिष्य उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु तथा पिंगल के साथ पौरोहित्य कार्य सम्पन्न किये।'

विष्णु पुराण में कहा गया है कि जन्मेजय के पुत्र शतानिक को याज्ञवल्क्य ने वेदपाठ कराया।[३]

इस सम्बन्ध में वेदों के आधार पर महाभारत व पुराणों की अविश्वसनीयता प्रकाशित हो जाती है। शतपथ ब्राह्मण[४] से हमें पता चलता है कि इन्द्रौत दैवाप या दैवापी शौनक जन्मेजय के समकालीन थे। जैमिनीय उपनिषद् तथा वंश ब्राह्मण के अनुसार दृति ऐन्द्रौत उनके शिष्य थे। दृति के शिष्य पुलुष प्राचीनयोग्य थे।[५] उन्होंने पौलुषी सत्ययज्ञ को पढ़ाया

१. Weber, *Ind. Lit.*, 126 ff. In the *Journal of Indian History*, April, 1936, p. 20, edited by Dr. S. Krishnasvami Aiyangar and Others, "ऐसा लगता है कि श्रीराम चौधरी ने Weber के नाम का बिना उल्लेख किये हुए उसके विचारों को अपना बनाकर रखने का प्रयास किया है।" A perusal of the *Bibliographical Index* (pp. 319, 328) appended to the first ed. of the *Political History* and p. 27 of the text; बाद के संस्करणों की भूमिका से *JIH* में छपे लेखक की सच्चाई पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है।

२. महाभारत, आदिपर्व, 53. 7.

३. विष्णु पुराण, IV. 21. 2.

४. XIII. 5. 4. 1.

५. *Vedic Index*, II. p. 9.

था। छान्दोग्य उपनिषद्[1] से हमें पता चलता है कि पौलुषी सत्ययज्ञ जनक के दो दरबारियों[2] अश्वतरश्वि तथा उद्दालक आरुणि के समकालीन थे। इसलिये सत्ययज्ञ निश्चित रूप से विदेह के जनक के समकालीन थे। सत्ययज्ञ जनक के समकालीन होते हुए भी आयु में उनसे कुछ बड़े थे, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण[3] में लिखा है कि सत्ययज्ञ के शिष्य सोमशुष्मा सत्ययाज्ञी प्राचीनयोग्य ने जनक से भेंट की थी। चूँकि सत्ययाज्ञी, इन्द्रोत दैवापी शौनक के बहुत बाद हुए थे, इसलिये उनके समकालीन जनक इन्द्रोत के समकालीन जन्मेजय के काफ़ी बाद हुए होंगे।

हमें शतपथ ब्राह्मण के दसवें भाग का अन्त तथा बृहदारण्यक के छठवें अध्याय में दी गई गुरुओं की सूची भी ध्यान में रखनी चाहिए। सूची के अनुसार ऋषि कावषेय, सांजीवीपुत्र के ६ पीढ़ी पूर्व पड़ते हैं, जबकि जनक के समकालीन याज्ञवल्क्य तथा उद्दालक आरुणि सांजीवीपुत्र के पूर्व क्रमशः चौथे तथा पाँचवे पड़ते हैं।

जन्मेजय	तुराकावषेय	
यज्ञवचस	राजस्तम्बायन	
कुश्रि	कुश्रि वाजश्रवस[4]	
शांडिल्य	उपवेशी	
वत्स्य	अरुण	
वामकषायण	उद्दालक आरुणि	} राजा
माहित्थि	याज्ञवल्क्य	} जनक
कौत्स	आसुरी	
माण्डव्य	आसुरायण	
माण्डूकायनी	प्राश्नीपुत्र आसुरिवासिन्	
संजीवीपुत्र	संजीवीपुत्र	

१. V. II. 1. 2.

२. बृहद् उपनिषद्, V. 14. 18. "जनको विदेहो बुडिलम् आश्वतराश्विम्, उवाच।" and III. 7. 1.

३. XI. 6. 2. 1-3.

४. *I C*, III. 747.

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा जनक जन्मेजय से पाँच या छः पीढ़ी बाद में हुए थे।[1] इतिहासकार जैकोबी तथा रीज डेविड्स[2] दोनों इस प्रश्न पर सहमत हैं कि प्राचीन काल की एक गुरु-परम्परा या पीढ़ी की औसत अवधि ३० वर्ष होती थी। अतः इन्द्रोत से लेकर सोमशुषमा तक और तुरा कावषेय से लेकर उद्दालक आरुणि और जनक तक की ५ या ६ गुरु-परम्पराओं या पीढ़ियों की कुल अवधि १५० या १८० वर्ष रही होगी।[3] इसलिये

१. विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार जन्मेजय को जनक से एक दर्जा ऊपर ही रखा जाना चाहिए। इन लोगों ने ऊपर लिखे 'क्व परीक्षिता अभवन्' प्रश्न की व्याख्या की है। इन लोगों ने गोपथ ब्राह्मण की कथा का उल्लेख करते हुए दन्ताबल धौम्र को जन्मेजय का समकालीन कहा है। जन्मेजय के समय के इस दन्ताबल धौम्र की समानता जैमिनीय ब्राह्मण के दन्ताबल धौम्य से की गई है। इसे जनक के समय का भी कहा जा सकता है। इतिहासकारों ने यह सुझाव दिया है कि किसी ब्राह्मण ग्रन्थ में आया नाम भाल्लवेय इन्द्रद्युम्न का ही नाम था (*JIH.*, April 1936, 15 ff., etc.)। उक्त तथ्य के प्रभाव से वैदिक साहित्य में लङ् तथा लिट् का प्रयोग कभी-कभी एक ही अर्थ में किया जाता था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि 'क्व परीक्षिता अभवन्' का प्रश्न सर्वप्रथम जनक के दरबार में नहीं उठा था। इसे मूर्धाभिषिक्त उदाहरण माना जाता है तथा यह किसी दैवी सत्ता के लिये प्रयुक्त होता था। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि जन्मेजय, परीक्षित तथा विदेह जनक सबों के समय में यह घटना घटी है। दूसरी ओर ऊपर ही संकेत किया जा चुका है कि बौद्धायन श्रौत सूत्र में धौम्र तथा धौम्य को कश्यप-ग्रुप के दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के रूप में माना गया है। जन्मेजय की मृत्यु इति तथा अभिप्रतारिण के समय में ही हो गई होगी (See *ante*, p. 46. See also *IHQ*, Vol. VIII 1932, 60 ff)। जहाँ तक भाल्लवेय नामक प्रश्न है, यह नाम पितृनाम या गोत्रनाम है, जैसे ऐतरेय या भारद्वाज आदि। मुख्य नाम के अभाव में जिस भाल्लवेय का नाम आवे हम उसे इन्द्रद्युम्न ही समझें यह भी ठीक नहीं है, जैसे कि हर आत्रेय को उदमय तथा हर भारद्वाज को द्रोण या पिण्डोल नहीं कहा जा सकता।

२. परिशिष्ट पर्वन्, 2nd Ed. XVIII and *Buddhist Suttas*, Introduction, p. XIVII.

३. कुछ आलोचकों का कहना है कि यह आवश्यक नहीं कि शिष्य गुरुओं की अपेक्षा आयु में उनसे कम ही हों। यह भी हो सकता है कि कभी-कभी शिष्य

अब यह मानना तर्कसंगत लगता है कि राजा जनक का जन्म जन्मेजय के १५० या १८० वर्ष बाद तथा परीक्षित के दो शताब्दी बाद हुआ होगा। यदि पौराणिक परम्परा को स्वीकार करते हुए हम परीक्षित को १४वीं शताब्दी ईसापूर्व में मानें तो जनक का काल १२वीं शताब्दी ईसापूर्व में पड़ता है। इसके विपरीत शांखायन आरण्यक के अनुसार यदि हम उद्दालक के शिष्य के शिष्य गुणाख्य शांखायन को छठी शताब्दी ईसापूर्व में मानें तो परीक्षित का आविर्भाव ६ वीं शताब्दी ईसापूर्व में पड़ता है तथा जनक का समय सातवीं शताब्दी ईसापूर्व में प्रमाणित होता है।

राजा जनक के राज्य विदेह का सर्वप्रथम उल्लेख यजुर्वेद[१] की संहिताओं में मिलता है। विदेह राज्य उत्तरी बिहार[२] के आधुनिक तिरहुत को मानना चाहिए। पश्चिम में सदानीरा नदी विदेह और कोशल की सीमारेखा थी। सम्भवत: आधुनिक गण्डक नदी ही उस समय की सदानीरा नदी थी। सदानीरा नेपाल से निकल कर पटना के पास गंगा में मिलती थी।[३] ओल्डेनबर्ग[४] के अनुसार महाभारत में सदानीरा और गण्डक को भिन्न-भिन्न माना गया है—'गण्डक कौश्च महाशोणाम् सदानीरां तथैव च।' इसलिये पार्जिटर के अनुसार आधुनिक राप्ती[५] के

गुरु के बराबर की उम्र का या अधिक उम्र का भी हो सकता है; किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि गुरुओं तथा शिष्यों की परम्परा में सभी शिष्यों को गुरुओं से अधिक आयु का ही मान लिया जाय, केवल उस स्थित में नहीं जब कि गुरु अपने शिष्य का पिता भी हो। कभी-कभी अधिक आयु के शिष्यों द्वारा गुरु का स्थान ले लेने से Jacobi और Rhys Davids ने गुरु और शिष्य की एक पीढ़ी की जो औसत अवधि रखी है वह ग़लत नहीं कही जा सकती।

१. *Vedic Index*, II. 298.

२. पार्जिटर के अनुसार (*JASB*, 1897, 89) विदेह-सीमा गोरखपुर में राप्ती के किनारे से दरभंगा तक थी। पश्चिम में कोशल तथा पूर्व में आन्ध्र राज्य के उत्तर में पहाड़ी तक तथा दक्षिण में वैशाली की सीमा तक विदेह राज्य फैला हुआ था।

३. *Vedic Index*, II. 299.

४. *Buddha*, p. 398n. *Cf.* Pargiter, *JASB*, 1897. 87. महाभारत, II. 20. 27.

५. यदि महाभारत (II. २०.२७) में आये क्रमेण शब्द का यह भी अर्थ निकाला जा सकता है कि नदियों का नाम भी क्रमबद्ध ही रखा गया है तो तत्कालीन सदानीरा नदी आज की बूढ़ी गण्डक कही जा सकती है। यह गण्डक नदी से भिन्न है (*Cf.* map in *JASB*, 1895.)।
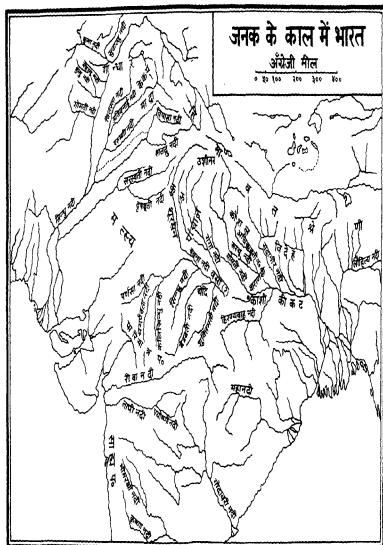
निकाला जा सकता है कि माधव का नाम भी [illegible]
तत्कालीन सदानीरा नदी आज की बूढ़ी गण्डक कही जा सकती है। यह गण्डक नदी से भिन्न है (*Cf.* map in *JASB*, 1895.)।

प्राचीन काल की सदानीरा नदी थी। सुरुचि जातक[1] के अनुसार समूचा विदेह ६ सौ मील (तीन सौ लीग) क्षेत्र में फैला था तथा राज्य भर में १६ हज़ार ग्राम थे।[2]

यद्यपि जातक कथाओं तथा महाकाव्यों में विदेह की राजधानी मिथिला का बराबर उल्लेख मिलता है, किन्तु वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख नहीं आता। आजकल नेपाल की सीमा में पड़ने वाले जनकपुर नामक छोटे से क़स्बे को ही पुरानी मिथिला नगरी कहा जा सकता है। बिहार के मुजफ़्फ़रपुर तथा दरभंगा ज़िलों की सीमाएँ जहाँ मिलती हैं, उस स्थान से यह स्थान थोड़ी दूर उत्तर में है। सुरुचि तथा गान्धार[3] जातक में लिखा है कि मिथिला का विस्तार २१ मील (सात लीग) के क्षेत्र में था। इस नगर के चारों द्वारों पर एक-एक हाट थी।[4] महाजनक जातक[5] में मिथिला नगर का वर्णन इस प्रकार है—

'मिथिला नगरी की भवन-निर्माण-कला रेखाचित्रों एवं नक़्क़ाशियों के कारण बड़ी ही दर्शनीय है। नगर के भीतर सुन्दर सड़कें तथा गलियाँ हैं। नगर-द्वार, दीवारें तथा सामरिक दृष्टि से बनाये गये गुम्बद बड़े ही सुन्दर हैं। विदेह राज्य की इस यशस्विनी राजधानी में वीरों तथा योद्धाओं की भी कमी नहीं है। ये वीर अपने अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजाएँ भी फहराते हैं। इनकी पोशाक सिंह-चर्म की होती है। मिथिला के ब्राह्मण काशी-वेश (पांडित्य-द्योतक) धारण करते हैं तथा सुगन्धित चन्दन लगाये रहते हैं। मिथिला के राजमहलों की रानियाँ सदैव राजसी वेशभूषा तथा बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत रहती हैं।'[6]

रामायण[7] के अनुसार मिथिला के राजवंश की स्थापना निमि नामक राजा ने की थी। निमि के पुत्र का नाम मिथि था तथा मिथि के पुत्र जनक-प्रथम थे। महाकाव्य के अनुसार राजवंश जनक-द्वितीय (सीता के पिता) तक चलता है।

---

१. जातक नं० 489.

२. जातक नं० 406.

३. जातक नं० 489 and 406.

४. जातक नं० 546.

५. No. 539; Cowell's जातक, Vol. VI, p. 30.

६. मिथिला के अन्य विवरण के लिये महाभारत (III 206. 6-9) देखिये।

७. I. 71.3.

जनक-द्वितीय के भाई कुशाध्वज, सांकाश्य के राजा थे। वायु[1] तथा विष्णु पुराण[2] में राजा नेमि या निमि को इच्छ्वाकु का पुत्र कहा गया है तथा उनके नाम के साथ विदेह[3] का विशेषण लगाया गया है। उक्त दोनों पुराण निमि के पुत्र को ही जनक-प्रथम कहते हैं। राजवंश के सीरध्वज नामक राजा को सीता का पिता कहा गया है। इसी राजा को हम रामायण का जनक (सीता का पिता) कह सकते हैं। पुराणों में सीरध्वज से आरम्भ करके सम्पूर्ण वंश का उल्लेख किया गया है। इस वंश के अंतिम राजा कृति थे और वंश का नाम जनक-वंश रखा गया था।

धृतेस्तु बहुलाश्वोऽभूद् बहुलाश्व-सुतः कृतिः
तस्मिन् संतिष्ठते वंशो जनकानाम् महात्मनाम्।[4]

वेदों में भी विदेह के राजा का नाम नामि साप्य[5] कहा गया है, किन्तु उन्हें कहीं भी मिथिला के राजवंश का संस्थापक नहीं कहा गया है। इसके विपरीत शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि सरस्वती[6] के तट से आये विदेघ माथव नामक राजा ने विदेह राज्य की नीव डाली थी। कथा है कि एक बार अग्निदेवता सरस्वती के तट से पूर्व की ओर बढ़े, तो माथव तथा उनके पुरोहित गौतम राहुगण ने अग्नि का पीछा किया और हिमालय से प्रवाहित होने वाली सदानीरा नदी तक पहुँचे। अग्नि ने नदी को नहीं जलाया। इसीलिये प्राचीन काल में

---

१. 88. 7-8; 89. 3-4.

२. IV. 5. 1.

३. स शापेन वशिष्ठस्य विदेहः संपद्यत—वायु पुराण। बृहद्देवता (vii. 59) में भी वशिष्ठ द्वारा विदेह के राजा को शाप देने की कथा मिलती है।

४. वायु पुराण (89, 23) के अनुसार जनक एक वंश का नाम था, इसके लिये (महाभारत, III. 133, 17; रामायण, I. 67.8) देखिये। जनकानाम्, जनकैः आदि आये शब्दों से लगता है कि ऐसा आवश्यक नहीं था कि हर नाम के साथ जनक शब्द रखा जाय। इक्ष्वाकुनाम् (रामायण, I. 5. 3.) से उन लोगों का बोध होता है जो इक्ष्वाकु-वंश के थे या उससे प्रभावित थे (I. 1. 8); रघूनाम् अन्वयम् आदि।

५. *Vedic Index*, I. 436.

६. Macdonnel, *Sanskrit Literature*, pp. 214-15; *Vedic Index*, II. 298; शतपथ ब्राह्मण, 1,4,1, etc.; Oldenberg, *Buddha*, pp. 398-99; Pargiter, *JASB*, 1897, p. 86 *et seq*.

ब्राह्मण लोग नदी पार नहीं करते थे। उक्त कथा के समय सदानीरा नदी के पूर्व का भाग जंगली तथा कृषिविहीन पड़ा था।[1] माथव के पहुँचने के बाद अन्य ब्राह्मण भी वहाँ पहुँचे और खेती करना आरम्भ कर दिया। ब्राह्मणों ने हवन के लिये अग्नि पैदा की और उससे पूछा—"हम लोग कहाँ रहें?" अग्निदेवता ने उत्तर दिया—"नदी के पूर्व आप का देश है।" शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि सदानीरा नदी विदेह तथा कोशल राज्यों की सीमा बनाती है। पुराणों में मिथिला के राजवंश की सूची में 'मिथि वैदेह' नाम संभवतः माथव विदेघ की स्मृति में ही रखा गया था।

यदि माथव विदेघ मिथिला राजा के संस्थापक थे तो नामि साप्य को यह पद कदापि नहीं प्राप्त हो सकता था। मज्झिम निकाय[2] तथा निमि जातक के अनुसार मखादेव मिथिला के राजवंश के पूर्वपुरुष थे तथा निमि का जन्म वहीं से राजवंश को समाप्त करने के निमित्त ही हुआ था। बौद्ध-साहित्य के अनुसार भी निमि नाम पहले नहीं था, वरन् मिथिला के बाद के राजाओं ने यह नाम ग्रहण किया था।[3]

उत्तर वैदिक साहित्य में मैथिल राजाओं के समूचे राजवंश को जनक-वंश, वंशो-जनकानां महात्मनां (उदार आत्मा वाले जनक का वंश) कहा गया है। इस वंश के कई राजाओं ने अपने नाम के साथ जनक शब्द जोड़ा था। ऐसी स्थिति में वैदिक साहित्य में उल्लिखित आरुणि और याज्ञवल्क्य के समकालीन जनक कौन थे, यह पता लगा सकना बड़ा कठिन है। किन्तु, पौराणिक सूची के सीरध्वज से संबंधित एक तथ्य है, जिसके आधार पर सीरध्वज को जनक (सीता का पिता) माना जा सकता है। रामायण की सीता के पिता जनक, भरत के नाना केकय के राजा (भरत के नाना)[4] अश्वपति से आयु में कम तथा उनके समकालीन राजा थे।

१. इस प्रदेश को महाभारत में 'जलोभव' कहा गया है (महाभारत, II. 30.4.; Pargiter, *Ibid.*, 88 n)।

२. II. 74-83.

३. बृहद्देवता (vii. 59) के अनुसार विदेह के राज्य सरस्वती के तट पर स्थित अपनी जन्मभूमि के सम्पर्क में हमेशा रहे हैं—पंचविंश ब्राह्मण, XXV. 10. 16-18 (नामि साप्य की कथा)।

४. रामायण, II. 9. 22.

आरुणि और उद्दालक[1] इन राजाओं के दरबार में प्रायः आया-जाया करते थे। किन्तु, भरत के मामा का नाम[2] भी अश्वपति था। इसलिये ऐसा लगता है कि केकय प्रदेश के सभी नरेश अपने नाम के साथ अश्वपति शब्द जोड़ते थे, जैसा कि जनक-वंश[3] के राजा करते थे। ऐसी स्थिति में यह कहना असम्भव है कि वैदिक जनक ही सीता के पिता थे। फिर भी भवभूति ने यह स्वीकार किया है कि वैदिक जनक ही सीता के पिता थे। कवि ने अपने महावीर-चरित[4] में सीता के पिता का उल्लेख करते हुए कहा है—

तेषामिदानीं दायादो वृद्धः सीरध्वजो नृपः
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्म पारायणं जगौ।[5]

बौद्ध जातकों में आये जनक को सीता का पिता (जनक) मानना और भी कठिन है। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स[6] जातक नं० ५३९ में आये महाजनक को विदेह का जनक मानते हैं। जातक के जनक ने एक जगह कहा है कि "मिथिला के सभी राजमहल जल जायँ किन्तु मेरे महल में आग नहीं लग सकती।" उक्त कथन से विदेह के दार्शनिक राजा जनक का स्मरण हो आता है।

महाभारत[7] में जनक को मिथिला का 'जनदेव' कहा गया है। उत्तराध्ययन

---

१. *Vedic Index.*, II, 69; छांदोग्य उपनिषद्, V. 11. 1-4; बृहद् उपनिषद्, III. 7.

२. रामायण, VII. 113. 4.

३. अश्वपति एक वंश का ही नाम है। इस मत के विरोध में यह कहा जा सकता है कि महाभारत के अनुसार (vii. 104. 7; 123.5) केकय के सामन्त या बृहत्क्षत्र के साथ ऐसा कोई विशेषण नहीं था।

४. Act I, Verse 14.

५. *Cf.* Act II, Verse 43; उत्तर-चरित, Act IV, Verse 9. महाभारत (III. 133,4) में उद्दालक और काहोड़ के समकालीन को इन्द्रद्युम्नि कहते थे (*AIHT*, 96)। महाभारत (XII. 310. 4; 3. 8. 95) में याज्ञवल्क्य के समकालीन को दैवराति कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण इसी याज्ञवल्क्य का कहा जाता है (*Ibid.*, XII. 318. llf.)। किन्तु, इन इन्द्रद्युम्नि तथा दैवराति शब्दों से किसी राजा का कुछ पता नहीं चल सकता।

६. *Buddhist India*, p. 26.

७. XII 17. 18-19; 219. 50.

(जैन) में यही विशेषण राजा नेमि[1] के साथ जोड़ा गया है। इस तथ्य के साथ-साथ विष्णु पुराण[2] में नेमि तथा अरिष्ट का नाम पास-पास मिलता है। इस उल्लेख से नेमि को महाजनक-द्वितीय समझा जा सकता है। जातक में महाजनक-द्वितीय के पिता का नाम अरिट्ठ कहा गया है। यदि महाजनक-द्वितीय ही राजा नेमि थे तो इन्हें जनक (सीता के पिता) नहीं समझा जा सकता, क्योंकि वैदिक साहित्य में नेमि तथा जनक को अलग-अलग दो व्यक्ति माना गया है। वैदिक जनक को जातक का महाजनक-प्रथम माना जाय तो प्रमाण कठिनाई से ही मिलेगा।

शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक तथा महाभारत[3] में जनक को सम्राट् कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वे साधारण राजा से उच्चतर थे। यद्यपि वैदिक साहित्य में यह कहीं नहीं मिलता कि राजाओं के राजा को सम्राट् कहते हैं, तो भी शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है कि 'सम्राट्' राजा से बड़ा होता है। राजसूय यज्ञ करने से राजा का पद मिलता है और 'वाजपेय' यज्ञ करने से सम्राट् की उपाधि प्राप्त होती है। राजा का पद निम्न तथा सम्राट् का पद उच्च होता है।[4] राजा जनक का यश, यज्ञ करने वाले राजा के कारण नहीं, वरन् संस्कृति और दर्शन प्रेमी के रूप में फैला था। आश्वलायन श्रौत सूत्र[5] के अनुसार जनक के दरबार में कोशल, कुरु, पांचाल तथा माद्रा देश तक के ब्राह्मण भी रहते थे। जनक के दरबारी विद्वानों में अश्वल जारत कारव, आर्त्तभाग, भुज्यु लह्यायनी, उपास्त या उपास्ति चाक्रायण, काहोडा कौषितकेय, गार्गी, वाचक्नवी, उद्दालक, आरुणि तथा विदध शाकल्य आदि प्रमुख थे। बृहदारण्यक उपनिषद् के तृतीय अध्याय में जनक के यहाँ होने वाले वाद-

"मिथिलायाम् प्रदीप्तायाम् न मे दह्यति किञ्चन
अपि च भवति मैथिलेन गीतम् नगरम् उपहितम् अग्निनाभिवीक्ष्य
न खलु मम हि दह्यतेऽत्र किञ्चित्
स्वयं इदम् आह किल स्म भूमिपालः।"

"अपने नगर में आग लगी देखकर मिथिला के राजा ने कहा कि इन लपटों में मेरी कोई भी चीज नहीं जल रही है।"

१ *SBE*, XLV. 37.

२. IV. 5. 13.

३ III. 133. 17

४. शतपथ ब्राह्मण, V, 1. 1. 12-13; XII, 8. 3.4; XIV, 1. 3.8.

५. X 3. 14.

विवाद का विस्तृत उल्लेख है। उद्दालक आरुणि[1] के शिष्य याज्ञवल्क्य वाजस्नेय विद्वानो में प्रमुख थे। कुरु-पांचाल के ब्राह्मणों से जनक के सम्पर्क का उल्लेख करते हुए ओल्डेनबर्ग[2] ने कहा है—"पूर्व के राजा संस्कृति में रुचि रखने वाले पश्चिमी देशों के विद्वानों को अपने दरबार में एकत्र किया करते थे। उदाहरण के लिये, मैसेडोनियन राजकुमार के दरबार में एथेन्स के विद्वान् एकत्र होते थे।"

ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में जनक के समय के उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है। इन ग्रन्थों से हमें पता चलता है कि उन दिनों विदेह के अतिरिक्त उत्तर भारत में ९ अन्य महत्त्वपूर्ण राज्य थे—

१. गान्धार	४. उशीनर	७. पांचाल
२. केकय	५. मत्स्य	८. काशी
३. माद्रा	६. कुरु	९. कोशल

वैदिक साहित्य मे उपर्युक्त राज्यों की कोई निश्चित भौगोलिक सीमा नहीं मिलती। अतः इन राज्यों की स्थिति जानने के लिये हमें वेदों के बाद के साहित्य पर दृष्टि डालनी पड़ेगी। महाभारत के कवियों द्वारा गान्धार-निवासियों को उत्तरापथ (भारत के सबसे उत्तरी भाग) के निवासियों में ही शामिल किया गया है--

> उत्तरापथ जन्मानः कीर्त्तयिष्यामि तां अपि,
> यौन काम्बोज गान्धाराः किराता बार्बरैः सह।[3]

गान्धार देश सिन्धु नदी के दोनों ओर अवस्थित था।[4] तक्षशिला और पुष्करा-

---

१. बृहदारण्यक उपनिषद्, VI. 5. 3.

२. *Buddha*, p. 398.

३. महाभारत, XII. 207. 43.

४. रामायण, VII.113. 11; 114. 11—सिन्धोर-उभयतः पार्श्वे। जातक नं० 406 के अनुसार गान्धार राज्य में कश्मीर भी शामिल था। Hekataios of Miletus (549-486 ईसापूर्व) के अनुसार गान्धारिक शहर का पुराना नाम कस्पाप्यरोस था। Stein (*JASB*, 1899, extra no. 2, 11) के अनुसार यह नगर वहाँ बसा था जहाँ से सिन्ध नदी में नावें आदि चलना शुरू होती हैं,

वती गांधार के दो प्रमुख नगर थे। इनके बारे में कहा जाता है कि इन्हें महाभारत के दो योद्धाओं ने बसाया था—

गान्धार-विषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशिला पुरी
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती ।[1]

उक्त पंक्तियों में वर्णित भूभाग पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी ज़िले तथा उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पेशावर ज़िले तक फैला हुआ था। तक्षशिला की प्रसिद्ध नगरी वाराणसी[2] से ६ हज़ार मील (२ हज़ार लीग) दूर तथा रावलपिंडी से कुछ मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित थी। रावलपिंडी से २० मील उत्तर-पश्चिम के सराय काला रेलवे जंकशन के उत्तर-पूर्व या पूर्व में थोड़ी ही दूर पर तक्षशिला के ध्वंसावशेष आज भी पाये जाते हैं, जैसे नदी के समीप की घाटी में ये नगर बसे थे। इसी घाटी में साढ़े तीन मील के अन्दर ही तीन बड़े नगरों के ध्वंसावशेष मिलते हैं। इनमें से जो ध्वंसावशेष सबसे दक्षिण में (सबसे पुराना) है वह भीरमाण्ड नामक पठार पर स्थित है।[3]

पुष्करावती या पुष्कलावती नगर पेशावर से १७ मील उत्तर-पूर्व की ओर स्वर्ण नदी पर स्थित था। इसे अब प्रांग और चारसाद्दा कहते हैं। इसका प्राचीन नाम कमल नगरी भी था। प्राकृत में इसे पुक्कलावती भी कहते थे।[4]

अर्थात् प्राचीन गान्धार में कस्पात्यरोस वही जगह है जहाँ कि Darius द्वारा भेजे गये Skylax के नेतृत्व में लोगों ने सिन्धु नदी के मार्ग की छानबीन की थी। Stein को यह सिद्धान्त नहीं स्वीकार है कि कस्पाप्यरोस संस्कृत का कश्यपपुर है और इसी नाम से कश्मीर शब्द बनाया गया है। अलबेरूनी भी इस स्थान को जानता था, किन्तु उसके अनुसार यह मुल्तान का ही एक नाम था। कश्मीर से कश्यपपुर के परम्परागत सम्पर्क का उल्लेख राजतरंगिणी (1.27) में मिलता है।

1. वायु पुराण, 88. 189-90; *Cf.* रामायण, VII. 114. 11.

2. तेलपट्ट और सुसीम जातक, Nos. 96. 163.

3. Marshall, *A Guide to Taxila*, pp. 1-4; *AGI*, 1924, 120, 128 f.

4. Schoff, *The Periplus of the Erythraean Sea*, pp. 183-84; Foucher, *Notes on the Ancient Geography of Gandhara*, p. 11; *Cf.* V. A. Smith, *JASB*, 1889. 111; Cunnigham, *AGI*, 1924, 57 f; Strabo (XV. 26) extends Gandaritis westwards to the Choaspes (Kunar ?).

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में गान्धार के रहने वालों को गान्धारी कहा गया है। इनके नाम पर ही देश का नाम गान्धार पड़ा है। ऋग्वेद[१] में यहाँ के आदिवासियों की भेड़ों के अच्छे ऊन की भी चर्चा है। अथर्ववेद[२] में गान्धारियों का नाम मुजावत (एक छोटी जाति) के साथ आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में गान्धार के राजा नग्नजित तथा उसके लड़के स्वरजित का उल्लेख मिलता है। नग्नजित के संस्कार ब्राह्मण-विधियों के थे, किन्तु शास्त्रीय विधियों से परिवार का निरूपण ठीक नहीं माना जाता था।[३] कालान्तर में मध्य देश (मध्यभारत) के लोगों का दृष्टिकोण बदला और गांधार की राजधानी में तीन वेदों तथा अठारह पुराणों[४] के अध्ययन के हेतु बड़े-बड़े विद्वान् एकत्र होने लगे।

छान्दोग्य उपनिषद्[५] के एक प्रमुख अनुच्छेद में वैदिक जनक के समकालीन उद्दालक आरुणि ने किसी शिष्य के सद्गुरु के पाने की चर्चा की है जिसके सम्पर्क से शिष्य को अपने मार्ग का ज्ञान हो जाता है। वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त होता तथा मोक्ष प्राप्त करता है। उक्त अनुच्छेद इस प्रकार है:—

"यथा सोम्य पुरुषां गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षाम् आनीय तां ततोऽतिजने विसृजेत्, स यथा तत्र प्रां वा उदं वाधरां वा प्रत्यां वा प्रध्मायीत–अभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टाः। तस्य यथाभिनहनां प्रमुच्य प्रब्रूयाद् एतां दिशम् गन्धारा एतां दिशम् व्रजेति। स ग्रामाद् ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारान् एवाप समपद्येत, एवं एवेहाचार्यवां पुरुषो वेद।"

"ओ मेरे बच्चे! संसार में जब मनुष्य को उसकी आँखों में पट्टी बाँधकर गांधार से किसी एकाकी स्थान में जाकर छोड़ दिया जाता है तो वह चिल्लाता है—'मैं यहाँ आँख में पट्टी बाँधकर लाया गया हूँ।' उसका यह स्वर पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं में प्रतिध्वनित होता है। इसी समय कोई दयालु आकर उसकी आँखें खोलकर कहता है—'यह गान्धार का मार्ग है। तू इसी मार्ग से आगे बढ़।' बुद्धिमान मनुष्य एक गाँव से दूसरे गाँव चलता, रास्ता

१. I. 126. 7.

२. V. 22. 14, *Cf.* महाभारत, VIII. 44. 46; 45. 8 etc.

३. ऐतरेय, vii 34; शतपथ, ब्राह्मण, viii, 1.4.10; *Vedic Index*, i. 432.

४. *Cf.* Rhys Davids and Stede, *Pali-English Dictionary*, 76 (*Vijja-thanani*); वायु, 61. 79; ब्रह्माण्ड, 67. 82; मिलिंद, I, 9. mentions 19 *Sippas*; *Cf.* IV, 3, 26.

५. VI, 14.

पूछता आगे बढ़ता है और अन्त में गान्धार प्रान्त में पहुँच जाता है। इस प्रकार सद्गुरु का शिष्य अपना मार्ग ढूंढ लेता है।''[१]

उक्त उद्धरण उस समय और स्पष्ट हो जाता है जब हम यह स्मरण करते हैं कि उद्दालक आरुणि[२] तक्षशिला गये थे और वहाँ उन्होंने विश्वविख्यात गुरु से शिक्षा प्राप्त की थी। सेतकेतु जातक[३] में कहा गया है कि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने तक्षशिला जाकर सभी कलाओं का अध्ययन किया। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि उद्दालक आरुणि उत्तर भारत[४] से लोगों को यहाँ भेजते थे। कौषीतकि ब्राह्मण[५] में कहा गया है कि ब्राह्मण लोग विद्याध्ययन के हेतु उत्तर की ओर जाते थे। जातक कथाओं के विविध उल्लेखों में तक्षशिला को विश्वविद्यालय की नगरी कहा गया है। गान्धार के निवासी पाणिनि ने अपने एक सूत्र[६] में कहा है कि कौटिल्य भी कदाचित् तक्षशिला के ही विद्वान् थे।[७]

पश्चिमी पंजाब में गान्धार तथा व्यास के मध्य केकय राज्य स्थित था। रामायण[८] से हमें पता चलता है कि केकय राज्य की सीमा विपाशा (व्यास) नदी के भी आगे तक थी और गान्धार देश की सीमा से मिलती थी। महाभारत[९] में इस देश को माद्रा (माद्राश्च सह केकयैः) से सम्बद्ध किया गया है। इतिहासकार ऐरियन[१०] केकय देश को सारंग (रावी की सहायक) नदी का तटवर्त्ती भाग बतलाता है।

यद्यपि वैदिक साहित्य में केकय की राजधानी का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु रामायण के अनुसार राजगृह या गिरिव्रज केकय की राजधानी था—

---

१. *Cf.* डॉक्टर आर० एल० मित्रा द्वारा अनुवादित छांदोग्य उपनिषद्, p. 114.

२. No. 487.

३. No. 377.

४. शतपथ ब्राह्मण, XI. 4. 1.1, *et seq.*—उदीच्यांवृतो धावयाम् चकार।

५. VII. 6; *Vedic Index,* II. 279.

६. सूत्र, IV. 3. 93; *AGI* (1924), 67.

७. Turnour, महावंश, Vol. I (1837), p. xxxix.

८. II. 68. 19-22; VII. 113-14.

९. VI. 61. 12; VII. 19. 7. माद्रा-केकयः

१०. *Indika,* iv; *Ind. Ant.,* V. 332; McCrindle, *Megasthenes and Arrian,* 1926, pp. 163, 196.

उभौ भरत-शत्रुघ्नौ केकयेषु परन्तपौ,
पुरे राजगृहे रम्ये मातामह-निवेसने।[1]

'शत्रुओं का दमन करने वाले शत्रुघ्न और भरत दोनों अपने नाना के घर केकय की सुन्दर राजधानी राजगृह में हैं।'

गिरिव्रजम् पुरवरं शीघ्रं आसेदुर् अंजसा।[2]

'केकय देश को भेजे गये दूत शीघ्र सुन्दर नगर गिरिव्रज पहुँच गये।'

अयोध्या से केकय राज्य की राजधानी ६५० मील दूर थी और वहाँ का रास्ता सात दिन का था। अयोध्या से विदेह लोग चौथे दिन पहुँच जाते थे। केवल दो सौ मील की दूरी थी। पार्जिटर के अनुसार सड़कें अच्छी न होने के कारण ही उक्त स्थानों तक पहुँचने में इतना समय लगता था। इतिहासकार कनिंघम झेलम के किनारे के आधुनिक गिर्जक और जलालपुर को केकय राज्य की राजधानी मानते हैं।[3]

मगध में एक दूसरा राजगृह-गिरिव्रज था, जिसका उल्लेख ह्वेनसांग ने अपने 'पो-हो' या 'बल्ख' में किया है।[4] केकय राज्य के नगर तथा मगध के नगर में अन्तर स्पष्ट करने के लिये बाद वाले को मगध का गिरिव्रज कहा गया है।[5]

पुराणों[6] में केकय, माद्रक तथा उशीनर राजवंशों को ययाति के पुत्र अनु के ही कुटुम्ब की शाखाओं के रूप में माना गया है। ऋग्वेद[7] में भी अनु-वंश का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के अष्टक मण्डल[8] के एक श्लोक में कहा गया है कि अनु-वंश पुरुष्णी के समीप (मध्य पंजाब) रहता था और यही भूभाग बाद में केकय तथा माद्रक राजवंशों के अधिकार मे चला गया था।

१. रामायण, II. 67. 7.

२. रामायण, II. 68. 22.

३. रामायण, I. 69. 7; II. 71 18; *AGI*, 1924, 188; *JASB*, 1895, 250ff.

४. Beal, *Si-yu-ki*, vol. I, p 44.

५. *SBE*, XIII. p. 150.

६. मत्स्य, 48. 10. 20; वायु, 99. 12-23.

७. I. 108.8; VII. 18. 14; VIII. 10.5.

८. 74.

वैदिक जनक के समकालीन केकय-नरेश का नाम अश्वपति था। भरत के नाना और मामा[1] के नामों के साथ अश्वपति जुड़ा रहता था। शतपथ ब्राह्मण[2] और छान्दोग्य उपनिषद्[3] के अनुसार केकय-नरेश एक विद्वान् राजा थे और उन्होंने कितने ही ब्राह्मणों को पढ़ाया था। उदाहरणार्थ, अरुण औपवेशी गौतम, सत्ययज्ञ पौलुषी, महाशाल जाबाल, बुडील, आश्वतराश्वि, इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय, जन शार्कराक्ष्य, प्राचीनशाल औपमन्यव तथा उद्दालक आरुणि उनके पढ़ाये हुए थे। चूँकि अरुण औपवेशी, उद्दालक से आयु में बड़े थे, अतः स्पष्ट है कि अश्वपति भी जनक के समकालीन तथा आयु में उनसे बड़े थे।

जैन विद्वानों ने केकय राज्य के सेयविया[4] नगर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राज्य का अर्द्धभाग आर्य प्रदेश था। कालान्तर में केकय-वंश के कुछ लोग दक्षिण चले गये और मैसूर में जा बसे।[5]

माद्रा देश के लोग कई भागों में बँटे हुए थे, जैसे उत्तरी माद्रा, दक्षिणी माद्रा, पश्चिमी माद्रा, पूर्वी माद्रा तथा माद्रा मुख्य आदि। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि उत्तरी माद्रा के लोग हिमवत् श्रेणी के पार उत्तर कुरु के पास अर्थात् कश्मीर में रहते थे। पूर्वी माद्रा के लोग त्रिगर्त्त या काँगड़ा के समीप स्यालकोट से पूर्व की ओर बसे थे।[6] दक्षिणी माद्रा के लोग मध्य पंजाब, इरावती नदी (रावी)[7] के पश्चिम में बसे थे। बाद में माद्रा की सीमा का विस्तार हुआ और गुरुगोविन्द सिंह[8] के समय का अमृतसर का ज़िला भी माद्रा में शामिल था। माद्रा की प्राचीन राजधानी शाकल या शाकल नगर (सियालकोट) थी। महाभारत[9] तथा कई जातकों[10] में भी इस नगर

१. रामायण, II. 9. 22; VII. 113.4.

२. X. 6.1.2.

३ V. 11 4. *et seq.*

४. *Ind. Ant.*, 1891, p. 375.

५. *AHD*, 88, 101.

६. पाणिनि, IV. 2. 107-8; *Cf.* Association of Madras and Trigarttas, महाभारत, VI. 61. 12. In I. 121. 36 the number of 'Madras' is given as four.

७. *Cf.* महाभारत, VIII. 44. 17.

८. Malcolm, *Sketch of the Sikhs*, p. 55.

९. II. 32. 14—ततः शाकलमभ्येत्य माद्राणां पुटभेदनम्।

१०. *E. g.* कालिंगबोधि जातक, नं० 479; और कुस जातक, No. 531.

का उल्लेख आया है तथा यह भी संकेत मिला है कि जनक के दरबार के विद्वान् शाकल्य सम्भवतः यहीं के थे। यह नगर आपगा[1] नदी के तट पर था। दो नदियों के बीच में होने के कारण ही कदाचित् इसे शाकल-द्वीप[2] भी कहते थे। आजकल इसी प्रदेश को रेचना दोआब भी कहते हैं।

उत्तर वैदिक साहित्य के अनुसार माद्रा (मुख्य) में राजतन्त्र-शासन-प्रणाली थी। जनक के समय के यहाँ के शासक का नाम अज्ञात है। राजनीतिक दृष्टि से यह प्रदेश कोई बहुत महत्त्वपूर्ण न था, किन्तु उत्तरी प्रदेशों की भाँति यहाँ भी बहुत बड़े-बड़े विद्वान् हुए हैं। मद्रगार, शौणायनी तथा काप्य पतंचल[3] आदि उद्दालक आरुणि[4] के गुरु यहाँ के थे। प्राचीन महाभारत के अनुसार माद्रा का राजवंश बड़ा ही चरित्रवान् था;[5] किन्तु कालन्तर में ये लोग बदनाम हो गये तथा इनके नियम व इनकी प्रथाएँ दोषपूर्ण सिद्ध हुई।

उशीनर देश मध्य देश या भारत में स्थित था। ऐतरेय ब्राह्मण[7] में कही गई 'अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि' उक्ति से स्पष्ट है कि भारत के मध्य में कुरु-पांचाल, वाश तथा उशीनर राज्य थे। कौपीतकि उपनिषद् में उशीनर को मत्स्य, वाश तथा कुरु-पांचाल के साथ कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण में

---

१. महाभारत, VIII. 44. 10; Cunningham, *AGI*, 1924, 211 f. कनिंघम ने इस आपगा के बारे में कहा है कि यह आयक नदी जम्मू की पहाड़ियों से निकल कर चिनाब में मिलती है।

२. महाभारत, II. 26. 5.

३. Weber, *Ind. Lit.*, 126.

४. बृहदारण्यक उपनिषद् III. 7. 1.

५. *Cf.* अश्वपति तथा उसकी पुत्री सावित्री।

६. माद्रा देशवासियों के बारे मे विशेष विचार के लिये देखिए, Dr. H. C. Ray in *JASB*, 1922, 257; Law, *Some Kshatriya Tribes of Ancient India*, p. 214. Mr. S. N. Mitra ने संकेत किया है कि परमत्थ-दीपनि (p. 127) (wrongly) के अनुसार सागल नगर मगध-रट्ठ में था। अपदान (p. 131) के अनुसार इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि माद्रा ही उस देश का नाम था जिसकी राजधानी सागल (शाकल) थी।

७. VIII. 14.

उशीनरों व वाशों को उदीच्य (उत्तरवासियों) के पूर्व स्थान दिया गया है।[1] 'कुरु पंचालेषु अंग-मगधेषु काशी कौसल्येषु शाल्व मत्स्येषु स वश-उशीनरेषु-उदीच्येषु' उक्ति से उक्त कथन और स्पष्ट हो जाता है।

महाभारत में यमुना के समीप[2] दो छोटे जलाशयों के तट पर उशीनर को यज्ञ करते हुए कहा गया है। कथासरित्-सागर के अनुसार जहाँ कनखल के पास गंगा पर्वतों से उतर कर मैदान में आती है,[3] वहीं उशीनर पर्वत था। आजकल यह एक तीर्थ-स्थान है। यह पर्वत निश्चित रूप से दिव्यावदान[4] का उशीर-गिरि तथा विनय-पाठ[5] का उशीर-ध्वज रहा होगा। पाणिनि ने अपने कई सूत्रों[6] में उशीनर देश की भी चर्चा की है और भोज नगर को इसकी राजधानी बताया है।[7]

ऋग्वेद[8] में उशीनराणी नामक एक रानी का उल्लेख है तथा महाभारत, अनुक्रमणी और कुछ अन्य जातकों में राजा उशीनर तथा उनके पुत्र शिवि[9] की चर्चा है। जनक के समकालीन उशीनर को हम नहीं जानते। कौषीतकि उपनिषद् के अनुसार काशी के अजातशत्रु तथा विदेह के जनक के समकालीन गर्ग्य बालाकि कुछ समय तक उशीनर देश में रह चुके थे।

महाभारत के राजा विराट के राज्य मत्स्य का विस्तार अलवर, जयपुर तथा भरतपुर तक था। इन्हीं राजा विराट के दरबार में पाण्डवों ने अपने

---

१. गोपथ ब्राह्मण, II. 9.

२. महाभारत, III. 130.21.

३. पंडित दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरंग द्वारा संपादित, तृतीय संस्करण, p. 5. उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले में हरद्वार के पास कनखल है (*Cf.* also महाभारत, V. III. 16-23)।

४. P. 22.

५. Part II, p. 39. See Hultzsch, *Ind. Ant.*, 1905, p. 179.

६. II. 4. 20; IV. 2. 118.

७. महाभारत, V. 118. 2. For Ahvara, a fortress of the Ushinaras, see *Ind. Ant.*, 1885, 322.

८. X, 59. 10.

९. महाभारत, XII. 29. 39; *Vedic Index*, Vol. I, p. 103; महाकान्ह जातक, No. 469; निमि जातक, No, 541; महानारद कस्सप जातक, No. 544, etc.

वनवास-काल का अन्तिम वर्ष छद्म-वेष में बिताया था।[1] किन्तु, पड़ोसी राज्य अलवर, शाल्व के अधिकार में था।[2] मत्स्य राज्य दिल्ली के कुरु राज्य के दक्षिण तथा मथुरा के शूरसेन राज्य के पश्चिम में था। मत्स्य राज्य दक्षिण में चम्बल तथा पश्चिम में सरस्वती नदी तक फैला हुआ था। महाभारत में अपर-मत्स्य जाति का उल्लेख है जो इतिहासकार पार्जिटर के अनुसार चम्बल के उत्तरी तट की पहाड़ियों में रहती थी। सरस्वती और गंगा के प्रसंग में रामायण में वीर-मत्स्य की चर्चा है।[3] कनिंघम[4] के अनुसार जयपुर राज्य का वैराट प्राचीन मत्स्य राज्य की राजधानी था। पार्जिटर[5] के अनुसार मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य थी। किन्तु, टीकाकार नीलकण्ठ के अनुसार उपप्लव्य राजधानी नहीं वरन् उसके समीप का (विराट नगर समीपस्थ-नगरान्तरम्) एक नगर था।[6]

सर्वप्रथम ऋग्वेद[7] में मत्स्य का उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण[8] में ध्वसन द्वैतवन नामक एक मत्स्य राजा का नाम आया है। उसने सरस्वती के के निकट अश्वमेध यज्ञ किया था। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

चतुर्दश द्वैतवनो राजा संग्रामजिद्हयान्
इन्द्राय वृत्रघ्ने बधनात्तस्माद् द्वैतवनम् सर (इति)।[9]

---

१. भण्डारकर, *Carmichael Lectures*, p. 53.

२. *Cf. Ind. Ant.*, 1919; N. L. Dey's *Geographical Dictionary*, p. ii.

३. महाभारत, II. 31. 2-7; III. 24.25; IV. 5.4; रामायण II, 71. 5. पार्जिटर ने संकेत किया है (*JASB*, 1895, 250 ff) कि मत्स्य देश खाण्डव-प्रस्थ (दिल्ली) से दक्षिण की ओर है। पाण्डव-कुमारों की विराट-यात्रा के वर्णन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसकी स्थिति शूरसेन के पश्चिम मथुरा में है। वीर लोग दशार्ण के उत्तर और पांचाल के दक्षिण से लगी सीमा के देश यमुना के पार से गुजरे और फिर यकृल्लोम और शूरसेन देशों से बढ़ते हुए मत्स्य देश पहुँचे। फिर वे मत्स्य राज्य के देहात उपाप्लव्य से हस्तिनापुर जो कुरु के वंशजों की राजधानी थी, वहाँ रथ-यात्रा द्वारा दो रोज में पहुँचे। पहले ही दिन संध्या समय तक व्रिकस्थल जो कि रास्ते में है, पहुँचा जा सकता है।

४. *AGI*, 1924, 337, *AGI*, 179. दक्षिण भारत में विराट नगर के लिए देखिये, *Bomb. Gaz.*, I, ii, 558.

५. *JASB*, 1895. 252.

६. महाभारत, IV. 27. 14. *Cf. Ind. Ant.*, 1882. 327.

७. VII. 18. 6.

८. XIII. 5. 4. 9.

९. महाभारत, III. 24-25.

गोपथ ब्राह्मण[1] में शाल्व, कौषीतकि उपनिषद्[2] में कुरु-पांचाल तथा महाभारत में जालन्दर दोआब के त्रिगर्त्त[3] और मध्य भारत[4] के चेदिवंश के साथ मत्स्य का उल्लेख मिलता है। मनुसंहिता[5] के अनुसार कुरुक्षेत्र, पांचाल तथा शूरसेनक प्रदेशों को मिलाकर पूरे भूभाग को ब्रह्मर्षि देश कहा जाता था।

विदेह के समकालीन मत्स्य नरेश का नाम नहीं ज्ञात होता, किन्तु कौषीतकि उपनिषद् के अनुसार उस समय भी मत्स्य राज्य महत्त्वपूर्ण राज्य था।

जनक के काल में भी कुरु राज्य ने इसका पूरा प्रयास किया कि ब्राह्मण-संस्कृति के देश के रूप में उसकी महत्ता बनी रहे। किन्तु, जनक के काल में कुरु के ब्राह्मण केवल यज्ञ के कर्मकाण्ड तक ही सीमित न रहकर दार्शनिक ज्ञान की ओर भी आकृष्ट हो चुके थे। इससे कुरु राज्य के तत्कालीन सामाजिक जीवन में एक प्रकार के विकास का संकेत मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद्[6] के अनुसार परीक्षित के उत्तराधिकारियों के समय में कुरु राज्य के आर्थिक जीवन में कठिनाइयाँ बढ़ गई थीं। जनक के समय में कुरु देश के लोग पूर्वी भारत में पैदा हो रही धर्म-निरोधी नवीन आस्थाओं की ओर भी मुड़ चुके थे। विदेह के दरबार में कुरु के ब्राह्मण (उषास्ति चाक्रायण) ब्रह्म और आत्मा पर विवाद भी करते थे। राज्य के पूर्वी भाग के लोगों के दूसरे राज्यों में आने-जाने के फलस्वरूप कुरु के जीवन का बौद्धिक स्तर भी काफ़ी ऊँचा उठा था। इसी प्रकार १५ वीं शताब्दी में कुस्तुनतुनिया से पश्चिमी यूरोप की ओर कुछ लोगों के जाने के फलस्वरूप पश्चिमी यूरोप का बौद्धिक जीवन काफ़ी समृद्ध हो गया था।

यदि पुराणों में दी गई जन्मेजय के उत्तराधिकारियों की सूची ऐतिहासिक स्वीकार कर ली जाय तो जनक के समय में सम्भवतः निचाक्षु कुरु (हस्तिनापुर) के राजा माने जायेंगे।

---

१. I. 2. 9.

२. IV. I.

३. महाभारत, Bk. IV. 30. I. 2; 32. I. 2.

४. V. 74. 16.

५. II. 19.

६. I.10, I-7.

१. जन्मेजय	१. इन्द्रौत देवाप सौनक
२. शतानीक	२. दृति ऐन्द्रौत (पुत्र तथा शिष्य)
३. अश्वमेधदत्त	३. पुलुष प्राचीनयोग्य (शिष्य)
४. अधिसीमा कृष्ण	४. पुलुषी सत्ययज्ञ (शिष्य)
५. निचाक्षु	५. सोमशुषमा सत्ययाज्ञी (शिष्य) जनक के समकालीन

पुराणों में बड़ी उत्सुकतापूर्वक कहा गया है कि निचाक्षु ही वह कुरु राजा थे जिन्होंने अपनी राजधानी हस्तिनापुर से कौशाम्बी में स्थानान्तरित की थी। जनक के काल में कौशाम्बी का अस्तित्व था, इसके पर्याप्त संकेत मिलते हैं।[1] शतपथ ब्राह्मण में उद्दालक आरुणि के समकालीन प्रोति कौशाम्बेय की चर्चा है, जो जनक के दरबार में भी आते-जाते थे। अतः स्पष्ट है कि कौशाम्बेय जनक के समकालीन थे। अपनी शतपथ ब्राह्मण की टीका में श्री हरिस्वामी ने कौशाम्बेय को कौशाम्बी नगर कहा है।[2] अतः यह सोचना वांच्छनीय है कि जनक के समय में निचाक्षु तथा कौशाम्बी, दोनों का अस्तित्व था। अतः अब पौराणिक कथन को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। पुराणों के अनुसार गंगा के प्रवाह (प्रवाह में हस्तिनापुर के बह जाने से) के फलस्वरूप राजधानी स्थानान्तरित की गई थी। मटची द्वारा कुरु राज्य का तहस-नहस भी राजधानी के स्थानान्तरण का मुख्य कारण था। यह भी सम्भव है कि अभिप्रतारिण (कुरुवंश की शाखा) के यज्ञ-सम्बन्धी दृष्टिकोण का भी इससे कुछ सम्बन्ध हो। इस समय तक कुरु अपने राज्य के अन्दर भी अपनी राजनीतिक महत्ता खो चुके थे। वे सर्वशक्तिमान् नहीं रह गये थे और दूसरे दर्जे के हो गये थे। किन्तु, शतपथ ब्राह्मण के काल तक भरत-वंश के सुख-समृद्धि की स्मृतियाँ ताजी थीं।[3]

---

१. *Cf.* Weber, *Ind. Lit.*, p. 123; *Vedic Index*, I. 193.

२. कौशाम्बेय को कुशाम्ब का भी वंशज कहा जा सकता है, किन्तु इस वंश के राजा को, जो इस नगर के नाम पर अपना नाम धारण करता है, उसे अलग नहीं किया जा सकता (*Cf.* क्रमदीश्वर, p. 794—कुशाम्बेन निर्वृत्ता कौशाम्बी-नगरी)।

३. XIII. 5. 4. 11-14; 21-23.

महद्‌द्य भरतानाम् न पूर्वे नापरे जनाः
दिव्यं मर्त्य इव पक्षाभ्याम् नोदापुः सप्तवानमा (इति)।

पांचाल राज्य में बरेली, बदायूँ, फ़र्रुखाबाद, रुहेलखंड के ज़िले तथा उत्तर प्रदेश के दोआब का क्षेत्र सम्मिलित था। इस राज्य की पूर्वी सीमा गोमती तथा दक्षिणी सीमा चम्बल नदी बनाती थी। पश्चिम में मथुरा के याकृलोम तथा शूरसेन थे। उत्तर में घने जंगल तथा गंगा नदी कुरु व पांचाल देशों की सीमा-रेखा बनाती थी। उत्तर में गंगोत्री[1] के समीपवर्ती जंगलों तक पांचाल राज्य की सीमा थी। वैदिक साहित्य, महाभारत या जातकों में कहीं भी पांचाल के उत्तरी या दक्षिणी भाग का उल्लेख नहीं मिलता। केवल संहितोउपनिषद् ब्राह्मण में प्राच्य (पूर्वी) पांचाल[2] की चर्चा मिलती है। पांचाल के दो भाग और थे। वैदिक साहित्य में आये 'श्येनिक' शब्द से इस कथन की पुष्टि होती है।[3] पांचाल की पुरानी राजधानियों में से एक राजधानी काम्पिल्य सम्भवतः बदायूँ और फ़र्रुखाबाद[4] के बीच कम्पिल नामक स्थान पर थी। शतपथ ब्राह्मण[5] में पांचाल की दूसरी राजधानी को परिवक्रा या परिचक्रा नगर कहा गया है। वीबर के मतानुसार महाभारत-काल[6] में इस नगर को 'एकचक्रा' कहा जाता रहा है।

पांचालों में जैसा कि नाम से ही प्रकट है—क्रिवि, तुर्वश, केसिन, शृञ्जय तथा सोमक पाँच वंश शामिल थे।[7] वैदिक साहित्य के अनुसार प्रत्येक वंश के एक या एक से अधिक राजकुमार हुए थे। उदाहरणार्थ, क्रिवि में क्रव्य पांचाल, तुर्वश में सोन सात्रासह, केसिन में दाल्म्य, शृञ्जय-वंश में दैववात, प्रस्तोक, वीतहव्य, सहदेव सारन्जय तथा दुष्तरितु आदि थे। सोमक-वंश में सोमक साहदेव्य राजकुमार थे। उपर्युक्त प्रथम तीन नाम पांचाल के राजपद से सम्बन्धित थे।

---

१. ऋग्वेद, V. 61. 17-19; महाभारत, I. 138.74; 150 f; 166; IV. 5.4; IX. 41.

२. *Vedic Index*, I. 469. *Cf.* also पतंजलि (Kielhorn's ed., Vol. I, p. 12) and Ptolemy's Prasiake (vii. 1. 53)। इसमें अदिस्दर नगर (अहिच्छत्र ?) तथा कन्नोर (कन्नौज ?) भी आ जाता था।

३. *Vedic Index*, I. 187.

४. *Vedic Index* 1. 149; Cunningham in *JASB*, 1865, 178; *AGI*, 1924. 413.

५. XIII. 5.4.7.

६. *Vedic Index*, I.494.

७. पुराणों के अनुसार (ब्राह्मण पुराण, XIII. 94 f. *Cf.* मत्स्य, 50.3) मुद्गल, शृञ्जय, बृहदिषु, यवीनर तथा क्रमिलाश्व पांचाल जनपद के ही भागक थे।

ऋग्वेद के एक श्लोक में कृवि तथा सिन्धु और असिक्री (चिनाब नदी) का उल्लेख आया है। किन्तु, कृविवंश की निवास-भूमि के बारे में कोई भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। शतपथ ब्राह्मण[1] के अनुसार यही लोग परिवक्रा नगर के पांचाल राजा थे। शतपथ ब्राह्मण[2] के अनुसार पांचाल राजा सात्रासह ने अश्व-मेध यज्ञ किया तो ६ हजार ६ तुर्वश उठ खड़े हुए—

सात्रासहे यजमानेऽश्वमेधेन तौर्वशाः

उदीरते त्रयस्त्रिशाः षट्सहस्राणि वरमिणां।

उपर्युक्त पंक्तियों से पांचालों तथा तुर्वशों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध का संकेत मिलता है। पुराणों के अनुसार मारुत-वंश के बाद तुर्वशु (तुर्वश) वंश-परम्परा पौरव-वंश में विलीन हो गई।[3] पांचाल लोग पौरवों के ही वंशज थे। अतः पांचालों व तुर्वशों का विलय असम्भव नहीं लगता। ऐसा लगता है कि राजा शोन का वंश बाद में बरेली[4] के अहिच्छत्र के सम्पर्क में भी आया था।

वैदिक साहित्य के अनुसार पांचालों से सम्बंधित केसिन-वंश[5] गोमती के

---

१. *xiii*, 5. 4. 7—कृवय इति ह वय पुरा पंचालान् आचक्षते। *Vedic Index*, I. 198, According to Kasten Ronnow, *Acta Orientalia*, XVI, iii, 1937, p. 165, Krivis were named after a dragon-demon who was their tribal divinity.

२. Oldenberg, **बुद्ध**, p. 401; शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.16. H.K. Deb. (*Vedic India and Mediterranean Men*, Verlag Otto Harrassowitz Leipzig) के अनुसार 'तुर्वश' शब्द तेरेष या तुर्ष के लिए ही आया है जो एक मित्र व्यक्ति था तथा मेर्नेप्तह् या मेनेप्तह् से युद्ध भी किया था (C. 123-125 B. C.)। Breasted ने 'तेरेष' को तिरिसेनियन कहा है (*A History of Egypt*, p. 467)।

३. *AIHT*, p. 108. तुर्वसोः पौरवम् वंशम् प्रविवेश पुरा किल (वायु, 99.4)।

४. *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 525.

५. *Vedic Index*, I 186-187. केसिन दाल्भ्य शब्द केसिन और दाल्भ्य के बीच घनिष्ठ संबंध की ओर संकेत करता है। ऋग्वेद (V, 61 17-19) के अनुसार ये गोमती के निवासी थे। महाभारत (IX. 41 1-3) से स्पष्ट है कि दाल्भ्य लोगों में संबंधित गोमती नैमिष से दूर नहीं होगी। यह पांचालों से भी संबंधित रही होगी। संभवत. यह नदी गुमती रही है जो निमसार (प्राचीन) सीतापुर के पास से बहती है।

आसपास निवास करता था। उत्तर वैदिक परम्परा में शृञ्जय[1] व पांचाल वंश एक दूसरे से सम्बन्धित थे। महाभारत[2] में उत्तमौज-वंश वालों को पांचाल्य या शृञ्जय दोनों नामों से पुकारा गया है। महाभारत-काल[3] में यह वंश यमुना के तटवर्त्ती प्रदेश में रहता था। समूचे महाभारत में सोमक तथा पांचाल एक दूसरे से सम्बन्धित कहे गये हैं[4] और सोमवंश के लोग काम्पिल्य एवं उसके आसपास रहते थे।

वीरगाथाओं में पांचालों के राजवंश को भरत-वंश[5] का ही कहा गया है। इस वंश के राजाओं में दिवोदास और सुदास भरत-वंश[6] से सम्बन्धित कहे गये हैं। किन्तु, इनको पांचाल राजा नहीं माना गया है। महाभारत में द्रुपद को यज्ञसेन का भी नाम दिया गया है। उनके एक पुत्र का नाम शिखण्डिन था।[7] किन्तु, यह स्पष्ट नहीं हो सका कि वे राजकुमार थे, या पांचाल-नरेश केसिन-दाल्भ्य के पुरोहित थे। कौशीतकि ब्राह्मण[8] में एक शिखण्डिन यज्ञसेन का नाम आया है।

पांचालों का इतिहास कुरुओं से हुए युद्धों तथा सन्धियों से परिपूर्ण है। महाभारत में इन दोनों वंशों के बीच चली युद्ध-परम्परायें सुरक्षित है। महाभारत से ही हमें यह भी सूचना मिलती है कि उत्तर पांचाल कहा जाने वाला पांचाल का कुछ भाग कुरुओं ने अपने गुरुओं को दे दिया था।[9] सोमनस्स जातक[10] में उत्तर पांचाल नगर का उल्लेख मिलता है। वैसे एक समय ऐसा भी आया,

---

१. Pargiter, मार्कण्डेय पुराण, p 353; महाभारत, I. 138. 37; V. 48. 41; ब्रह्म पुराण, XIII, 94f.

२. महाभारत, VIII. 11. 31; 75. 9.

३. महाभारत, iii. 90. 7. with commentary.

४. *Cf.* महाभारत, I. 185. 31; 193. 1; II. 77. 10—धृष्टद्युम्नः सोमकानाम् प्रवर्हः, सौमकिर् यज्ञसेन इति।

५. महाभारत, आदि, 94. 33; मत्स्य, 50. 1-16; वायु, 99. 194-210.

६. *Vedic Index* I, p. 363; II. pp. 59. 454.

७. महाभारत, आदि, 166. 24; भीष्म, 190, *et. seq.*

८. VII. 4.

९. महाभारत, I. 166.

१०. No. 505. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (III. 7. 6.) में कुरु-पांचाल-एकता की ओर संकेत किया गया है।

जब कुरु और पांचाल वंश के सम्बन्ध बडे अच्छे थे और पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध भी हुए थे। पांचाल राजा दाल्म्य, कुरु राजा उच्छस्रवा[1] की बहन के पुत्र थे। महाभारत में ही पांचाल की एक राजकुमारी का विवाह कुरु के वंशज पांडवों के साथ हुआ था, ऐसा उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य में वर्णित पांचाल राजाओं में से एक प्रवहण जैवालि जनक के समकालीन थे। उपनिषदों के अनुसार प्रवहण जैवालि जनक के दरबारी पंडितों आरुणि, श्वेतकेतु, शिलक शालावत्य तथा चैकितायन दाल्भ्य से शास्त्रार्थ किया करते थे।[2] ऊपर यह स्पष्ट हो चुका है कि उपर्युक्त प्रथम दो पंडितों में दोनों वैदिक जनक के समकालीन थे।

काशी

काशी का राज्य ६०० मील क्षेत्र में विस्तृत था।[3] वाराणसी (बनारस) इसकी राजधानी थी। काशी को केतुमती, सुरुन्धन, सुदस्सन ब्रह्मवद्धन, पुप्फावती, रम्म तथा मोलिनी[4] नामों से भी पुकारते थे। नगर की चतुर्दिक् सीमा ३६ मील लम्बी थी।[5]

अथर्ववेद के परिवर्धित संस्करणों में काशी की जनता का भी उल्लेख आया है।[6] इन लोगों के कोशल तथा विदेह के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भी थे। शांखायन श्रौत सूत्र[7] के अनुसार जल जातुकर्ण्य को काशी, विदेह तथा कोशल तीनों का पुरोहित कहा गया है। ये जनक तथा श्वेतकेतु के समकालीन थे। सत्तुभस्त जातक[8]

१. *Vedic Index*, I. 84, 187, 468. महाभारत में दी गई वंशावली में उच्छस्रवा नाम के एक राजकुमार का उल्लेख आया है।

२. बृहदारण्यक उपनिषद्, VI. 2; छान्दोग्य उपनिषद्, 1. 8. 1; V. 3. 1.

३. A stock phrase, धजविहेठ जातक, No. 391.

४. *Dialogues, of the Buddha*, Part III, p. 73. *Carmichael Lectures*, 1918, pp. 50-51. वाराणसी शब्द उन दो छोटी नदियों पर आधारित है जिनके बीच यह नगर बसा है--वाराणयास्तथा च आस्या मध्ये वाराणसी पुरी (पद्म, स्वर्ग खण्ड, xvii, 50)।

५. तण्डुलनालि जातक, No. 5.

६. *Vedic Index*, II. 116n.

७. XVI. 29. 5.

८. No. 402.

में काशी के एक शासक का नाम जनक कहा गया है। ये उपनिषदों के जनक नहीं थे, क्योंकि हम पहले ही जान चुके हैं कि सुप्रसिद्ध जनक के काल में काशी के राजा का नाम अजातशत्रु था।

अजातशत्रु के पूर्वजों के सम्बन्ध में बहुत थोड़ी जानकारी प्राप्त हो सकती है। अजातशत्रु का नाम पुराणों में दी गई काशी के शासकों की सूची[1] में नहीं मिलता। काशी के राजा धृतराष्ट्र का नाम भी इस सूची में नहीं मिलता। धृतराष्ट्र को शतानीक सात्राजित ने परास्त किया था और उसके बाद शतपथ ब्राह्मण के काल तक इस वंश का उत्थान नहीं हो सका था। महागोविन्द सुत्तन्त[2] में धृतराष्ट्र का नाम 'धतरट्ठ' के रूप में भी मिलता है और वे भरत-वंश के राजकुमार कहे गये हैं। पुराणों में काशी के राजवंश को भरत-वंश की शाखा कहा गया है। वैदिक साहित्य में इस वंश के दो राजाओं—दिवोदास और दैवदासी—का नाम मिलता है, किन्तु बाद के साहित्य में उन्हें काशी का नहीं वरन् नैमिषीय कहा गया है।[3]

जातकों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि कभी-कभी काशी के राजवंश के अयोग्य राजा गद्दी से उतार दिये जाते थे और उनके स्थान पर दूसरे वंशों के लोग शासक बन बैठते थे। यह स्पष्ट है कि काशी के राजाओं में सभी किसी एक वंश के नहीं थे। इनमें से कुछ मगध के थे[4] तो कुछ विदेह के। इनमें से बहुत से शासक ब्रह्मदत्त थे। श्री हरित कृष्णदेव[5] के अनुसार ब्रह्मदत्त किसी एक शासक विशेष का नाम नहीं था। वायु तथा मत्स्य पुराणों में लगभग सौ राजाओं को 'ब्रह्मदत्त' की उपाधि या विशेषण से अभिहित किया गया है—

शतम् वय ब्रह्मदत्तानाम्
वीराणां कुरवः शतम्।[6]

---

१. वायु, 99. 21-74; विष्णु, IV, 8. 2-9.

२. Rhys Davids, *Dialogues of the Buddha*, Part II, p. 270.

३. कौशीतकि ब्राह्मण, xxvi. 5.

४. *Cf.* जातक, 378, 401, 529.

५. इस सुझाव को डॉ० डी० आर० भण्डारकर ने भी स्वीकार कर लिया है (*Carmichael Lectures*, 1918, p. 56)।

६. मत्स्य, Ch. 273, 71; वायु, Ch. 99, 454.

महाभारत[1] में भी सौ 'ब्रह्मदत्तों' की चर्चा है। दुम्मेध जातक[2] के अनुसार शासक तथा उसके राजकुमार दोनों के साथ 'ब्रह्मदत्त' शब्द जोड़ा जाता था।[3] गंगमाल जातक[4] के अनुसार बनारस के राजा उदय को भी 'ब्रह्मदत्त' कहा जाता था। इस प्रसंग में यह भी स्पष्ट हो जाता है कि काशी के राजवंश का नाम ही ब्रह्मदत्त था।

कुछ भी हो ब्रह्मदत्त नामधारी शासक किसी एक वंश के शासक नहीं थे। दरीमुक जातक का मनोनीत राजा मगध का राजकुमार था। कुछ दूसरे ब्रह्मदत्त नामधारी राजा विदेह के राजवंश के थे। मातिपोसक जातक[5] के अनुसार काशी के एक ब्रह्मदत्त का विवरण इस प्रकार है—

मुत्तोऽम्हि कासिराजेन विदेहेन यसस्सिना ति।

सम्बुल जातक[6] में काशी के राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र सोत्थिसेन को विदेहपुत्र भी कहा गया है—

यो पुत्त कासिराजस्स सोत्थिसेनो ति तम् विदू
तस्साहम् सम्बुला भरिया एवं जानाहि दानव,
विदेहपुत्तो भद्दन ते वने वसति आतुरो।

सम्भव है जनक के समकालीन काशी के राजा अजातशत्रु ब्रह्मदत्त ही रहे हों। यद्यपि उनकी वंश-परम्परा अज्ञात है, किन्तु उपनिषदों के अनुसार वे उद्दालक आरुणि के समकालीन थे। उद्दालक जातक में कहा गया है कि उद्दालक के समय में काशी के राजा को 'ब्रह्मदत्त' कहा जाता था।

उपनिषदों में अजातशत्रु तथा गर्ग्य बालाकि के बीच शास्त्रार्थ का उल्लेख मिलता है। कौषीतकि उपनिषद् में कहा गया है कि विद्याप्रेमी के रूप में अजातशत्रु विदेह के जनक के प्रतिस्पर्धी थे। शतपथ ब्राह्मण[7] के एक प्रसंग में

---

१. II. 8. 23.

२. No. 50; Vol. I, p. 126.

३. *Cf.* सुशीम जातक (411), कुम्भ सपिंड जातक (415), अट्ठान जातक (425), लोमस कस्सप जातक (433) आदि।

४. 421.

५. No. 455.

६. No. 519.

७. V. 5. 5. 14.

भद्रसेन अजातशत्रु नामक एक व्यक्ति उद्दालक आरुणि से बहुत प्रभावित था। मैकडॉनेल और कीथ के अनुसार वह व्यक्ति काशी का राजा ही था। सम्भव है यह व्यक्ति अजातशत्रु का पुत्र या उत्तराधिकारी रहा हो।[1]

कोशल

आधुनिक काल का अवध ही प्राचीन काल का कोशल राज्य था।[2] उत्तर की ओर नेपाल की पहाड़ियों तक तथा पूर्व में इसे विदेह से अलग करने वाली सदानीरा नदी तक कोशल की सीमा थी। पहले यह वन-प्रदेश था, किन्तु बाद में यहाँ ब्राह्मण आये और विदेह जैसे राज्य की स्थापना हो गई। माथव विदेघ के यहाँ आने की कथा से स्पष्ट है कि कोशल का राज्य ब्राह्मणों के विदेह-आगमन के पूर्व था, किन्तु ब्राह्मणों के सरस्वती के तट पर बसने के काल के बाद ही इसका अस्तित्व माना जाता है। कोशल के दक्षिण में सर्पिका या स्यन्दिका[3] तथा पश्चिम मे गोमती नदी थी। यह नदी नैमिषारण्य से होकर बहती थी और कोशल तथा अन्य राज्यों (जैसे पांचाल आदि)[4] के बीच सीमा-रेखा का काम करती थी।

महाभारत में उत्तर कोशल और मुख्य कोशल को अलग-अलग माना गया है। इसी प्रकार दूरवर्ती कोशल तथा समीपवर्ती कोशल भी अलग-अलग माना गया था। समीपवर्ती कोशल तथा सुदूर कोशल दक्षिण भारत[5] में पड़ते थे। पूर्व-कोशल निश्चित रूप से प्राक्-कौशल से भिन्न था। यह भाग सरयू और मिथिला के बीच स्थित था।[6]

वैदिक साहित्य में कोशल के किसी नगर का उल्लेख नहीं है। यदि रामायण पर विश्वास किया जाय तो जनक के समय में कोशल (कोशलपुर) की राजधानी

१. *SBE*, XLI, p. 141.

२. गोपथ ब्राह्मण मे कोशल का उल्लेख आया है (*Vedic Index*, 1. 195)।

३. रामायण, II. 49. 11-12; 50. 1; *Cf.* सुन्दरिका, *Kindred Sayings*, I. 269.

४. रामायण, II. 68. 13; 71. 16-18; VII. 104. 15 (कोशल के राजा ने गोमती के नैमिषारण्य में यज्ञ किया था); *Cf.* महाभारत, XII. 355.2; IX. 41.3 (पांचाल नैमिष से दूर नहीं था)। ऋग्वेद (V. 61. 17-19) में दाल्भ्य तथा पांचाल गोमती के निवासी कहे गये हैं।

५. महाभारत, II. 30.2-3;31.12-13.

६. महाभारत, II. 2[illegible]. 28.

अयोध्या थी। यह नगर सरयू के तट पर बसा था। इसका क्षेत्र १२ योजन में फैला हुआ था।[1] ऋग्वेद में भी सरयू नदी का उल्लेख है तथा इसके तट पर किसी आर्य नगरी की चर्चा है।[2] रामायण[3] मे दशरथ के समकालीन चित्ररथ का नाम आया है जो सरयू के तट पर रहते थे। ऋग्वेद के स्तोत्रों में दशरथ की प्रशंसा की गई है।[4] किन्तु, उसमें यह स्पष्ट नहीं कहा गया है कि वे ही सीरध्वज जनक के समकालीन इक्ष्वाकु-वंश के राजा थे। रामायण के अनुसार दशरथ के सबसे बड़े पुत्र ने जनक की पुत्री सीता से विवाह किया था। ऋग्वेद में राम नामक एक असुर की भी चर्चा है।[5] किन्तु, कोशल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है। दशरथ जातक में दशरथ और राम को वाराणसी का राजा कहा गया है, किन्तु जनक और सीता के सम्बन्ध को अस्वीकार किया गया है।

कोशल सम्भवतः जनक के पुरोहित आश्वल की जन्मभूमि थी। प्रश्न उपनिषद् के अनुसार पुरोहित आश्वल सुकेशा भारद्वाज तथा कोशल के राजकुमार हिरण्यनाभ के समकालीन पिप्पलाद के शिष्य आश्वलायन कौशल्य[6] के पूर्वज रहे होंगे। कोशल का विस्तृत इतिहास अगले अध्याय में दिया जायेगा।

३. मिथिला के अन्य विदेह शासक

पुराणों में सीरध्वज जनक[7] के उत्तराधिकारियों की एक लम्बी सूची दी गई है। भवभूति ने सीरध्वज जनक को याज्ञवल्क्य[8] का समकालीन माना है। पुराणों में दी गई विदेह राजाओं की सूची में से एक या दो को छोड़कर शेष कोई

---

१. रामायण, I.55.7. यह अवध के फ़ैज़ाबाद जिले में है। कोशलपुर नाम के लिये रामायण, II 18.38. देखिये।

२. IV.30.18.

३. II.32.17.

४. I.126.4.

५. X. 93.14.

६. अश्वलस्यापत्यम् आश्वलायनः [प्रश्न उपनिषद् (1.1) की शंकर की टीका]।

७. वायु, 89,18-23; विष्णु, IV. 5.12-13.; 4th ed. of this work, pp. 67. ff.

८. महावीरत चरित, I, Verse 14; II, Verse 43; उत्तर रामचरित, IV, Verse 9.

भी वैदिक, बौद्ध तथा जैन साहित्य में उल्लिखित विदेह के शासकों से समानता नहीं रखता। इसलिये यह कहना कठिन है कि ये सूचियाँ कहाँ तक विश्वसनीय हैं। वीरगाथाओं में आये राजाओं की वैदिक जनक से समानता स्थापित करना सबसे कठिन समस्या है। भवभूति के मत के समर्थन में दिये जा सकने वाले तर्कों का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। सीरध्वज का नाम सूची में काफ़ी ऊपर है। किन्तु, इससे यह नहीं सिद्ध होता कि वे राजवंश के अन्त के बहुत पहले हुए थे। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि वास्तव में मगध के राजा बिम्बिसार के समकालीन प्रद्योत पौराणिक सूची में इनसे ६ पीढ़ी पूर्व रखे गये हैं। कोशल के प्रसेनजित के समकालीन इक्ष्वाकु राजा सिद्धार्थ इनके पितामह माने गये हैं। विष्णु पुराण के अनुसार जनक के समय में ही कई अन्य समानान्तर राजवंश के शासन समकालीन ही थे।[1] इसलिये सीरध्वज-सम्बन्धी निर्णय को अभी विचाराधीन ही समझना चाहिए। चूँकि सूची में सीरध्वज के स्थान के बारे में अभी सन्देह है, इसलिये यह कह सकना कठिन है कि उद्दालक या याज्ञवल्क्य के समकालीन विदेह के राजा के बाद की सूची में कौन-कौन से राजा हुए थे। जातकों के अनुसार राजा निमि जनक के बाद हुए थे, क्योंकि वे राजवंश के अन्तिम राजा के पूर्व गद्दी पर बैठे थे। इतिहासकार पार्जिटर[2] के अनुसार पौराणिक राजाओं की सूची के बहुलास्व तक के राजा महाभारत के पूर्व हुए थे। बहुलास्व के पुत्र कृति को पार्जिटर ने महाभारत[3] का कृतक्षण माना है और उन्हें युधिष्ठिर का समकालीन कहा है, जैसा कि दो पुराणों में भी कृति को जनकवंश का अन्तिम राजा[4] कहा गया है। कृति और कृतक्षण की समानता सत्य नहीं लगती। उचित तो यह होगा कि कृति को पुराणों का कराल जनक कहा जाय, क्योंकि आगे हम देखेंगे कि कराल जनक को जनक-वंश का अन्तिम शासक माना गया है। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही आपत्तिजनक हो सकता है कि कराल जनक को निमि का पुत्र कहा गया है जबकि कृति बहुलास्व के पुत्र थे। किन्तु, यह भी तो हो सकता है कि इस वंश के कई राजा अपने नाम में 'निमि' शब्द जोड़ते रहे हों और बहुलास्व भी उनमें से एक रहे हों। अतः

१. VI. 6.7ff. *Cf.* रामायण, I. 72.18.
२. *AIHT*, p. 149.
३. II. 4.27.
४. *AIHT*, pp. 96,330;

कराल और कृति को जनक-वंश की दो भिन्न-भिन्न शाखाओं के अन्तिम व्यक्ति मानने की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

वैदिक साहित्य में जनक और माथव के अतिरिक्त नेमि साप्य तथा पर-आह्लार को भी विदेह का राजा कहा गया है । मैकडोनेल तथा कीथ ने आह्लार की समानता कोशल के पर-अटणार से स्थापित की है, जिसकी चर्चा अगले अध्याय में होगी । नेमि साप्य को पंचविंश तथा ताण्ड्य ब्राह्मण[१] में प्रसिद्ध यज्ञ करने वाला कहा गया है । उत्तराध्ययन सूत्र[२] के नेमि, विष्णु पुराण के नेमि, कुम्भकार[३], निमि जातक[४] तथा मज्झिम निकाय के मखादेव सुत्त[९] के निमि से नेमि साप्य की समानता स्थापित करना निस्सन्देह एक समस्या है । निमि जातक में कहा गया है कि निमि मैथिल-वंश के अन्तिम राजा के पूर्व हुए थे । कुम्भकार जातक तथा उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार राजा नेमि या निमि पांचाल के राजा दुम्मुख (द्विमुख) गांधार के राजा नग्गजी (नग्गाति) तथा कलिंग के राजा करण्डु (करकण्डु) के समकालीन थे । दुम्मुख का पुरोहित बृहदुक्थ वामदेव का पुत्र था ।[६] वामदेव सहदेव के पुत्र सोमक के समकालीन थे ।[७] सोमक विदर्भ के राजा भीम तथा गान्धार नरेश नग्नजित (नग्गजी) से सम्बन्धित थे ।[८] इससे यह सम्भव लगता है कि दुम्मुख नग्नजित के समकालीन रहे होंगे । यही तथ्य हमें कुम्भकार जातक व उत्तराध्ययन सूत्र में भी मिलते है ।

निमि जातक के अनुसार जिस समय निमि का जन्म हुआ, ज्योतिषी ने इनके पूर्वजों को बता दिया था कि "राजन् ! यह पुत्र आपके वंश का अन्तिम राजा होगा और इसके बाद आपका वंश समाप्त हो जायगा ।"

निमि के पुत्र कराल जनक[९] की मृत्यु के बाद सचमुच ही वंश समाप्त हो

१. XXV, 10. 17-18.
२. *SBE*, XLV. 87.
३. No. 408.
४. No. 541.
५. *Vedic Index*, 1. 370.
६. *Ibid.*, II. 71.
७. ऋग्वेद, IV. 15. 7-10 अनुक्रमणी सहित ।
८. ऐतरेय ब्राह्मण, VII. 34.
९. मखादेव सुत्त (मज्झिम निकाय) II. 82; निमि जातक ।

गया। इस राजा की महाभारत के कराल[1] से समानता मानी जा सकती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि भोज जिन्हें दाण्डक्य भी कहा जाता है, एक ब्राह्मण-कन्या का कौमार्य नष्ट करने के प्रयास के फलस्वरूप अपने राजपाट तथा बन्धु-बन्धवों सहित सदा के लिए विनष्ट हो गये। हो सकता है यही राजा कराल या कलार रहा हो। कराल (विदेह), उनके राजपाट तथा बन्धु-बान्धवों का भी विनाश हो गया।[2] निमि जातक के अनुसार कराल से विदेह के राजवंश का अन्त हो जाता है। विदेहों के पतन से रोम के टारक्विंस की याद आती है। वह ऐसे ही अपराधों के फलस्वरूप देश से निकाला गया था और जैसा रोम में हुआ था वैसा ही विदेह में भी हुआ। राजतन्त्र के बाद गणतन्त्र-शासन प्रणाली (वज्जियन गणतंत्र) का उद्भव हुआ।

विदेह के राजवंश को समाप्त करने में काशीवालों का भी हाथ था, इस कथन पर विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं। जनक के समकालीन काशी राजा अजातशत्रु जनक की चतुर्दिक् कीर्ति से जलते थे। "यथा कास्यो वा वैदेहो वा उग्र-पुत्र उज्यां धनुर्-अधिज्यां कृत्वा द्वौ वाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपतिष्ठेद्।"[3] इस कथन से काशी विदेह के योद्धाओं में यदाकदा हुए संघर्षों का संकेत मिलता है। महाभारत[4] में काशी के राजा प्रतर्दन तथा मिथिला के राजा जनक[5] के बीच हुए युद्ध का उल्लेख मिलता है। पाली टीका 'परमत्थ जोतिका'[6] में कहा गया है कि जनक-वंश के बाद लिच्छवि-वंश का उद्भव हुआ। ये लोग उत्तरी बिहार के एक-एक सशक्त राजवंश तथा वज्जियन गणतंत्र के मुख्य अंग हो गये। वास्तव में ये लोग काशी की ही राजकुमारी की सन्तान थे। इस संकेत से इस तथ्य की

---

१. XII. 302. 7.

२. अश्वघोष के बुद्धचरित (IV. 80) से अर्थशास्त्र की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। "कराल जनक ने ब्राह्मण-कन्या से प्रेम किया, जाति से वंचित हुआ, किन्तु प्रेम का परित्याग नहीं किया।"

३. बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 8.2. उग्र के पुत्र ने काशी या विदेह से धनुष-वाण खीचा था (Winternitz, *Ind. Lit.*, translation, I, 229 with slight emendations) ।

४. XII. 99. 1-2.

५. रामायण, VII. 48. 15.

६. Vol. I, pp. 158-165.

पुष्टि होती है कि काशी के ही राजवंश ने कालान्तर में अपने को विदेह में जमा लिया।

४. विदेह-शासकों के समय में दक्षिण भारत

'दक्षिणापद' शब्द ऋग्वेद[1] में आता है और इससे उस प्रदेश का बोध होता है, जहाँ लोग निर्वासन-काल में जाते थे। कतिपय विद्वानों के मतानुसार 'दक्षिणापद' का अर्थ सर्वमान्य आर्य-प्रदेश की सीमा से बाहर दक्षिण का भाग था। पाणिनि[2] ने भी 'दक्षिणात्य' शब्द का प्रयोग किया है। बौद्धायन में दक्षिणापथ तथा सौराष्ट्र[3] का उल्लेख साथ-साथ आया है। यह कहना कठिन है कि पाणिनि के दक्षिणात्य, तथा बौद्धायन में आये 'दक्षिणापथ' का क्या अर्थ है? पालि-साहित्य में दक्षिणापथ के साथ अवन्ती (मालवा) का भी नाम मिलता है तथा एक स्थान पर इसके गोदावरी के तट पर होने का उल्लेख आया है। महाभारत के नलोपाख्यान में दक्षिणापथ को अवन्ती और विन्ध्य से भी आगे तथा विदर्भ और (दक्षिण) कोशलों के भी दक्षिण में कहा गया है। दक्षिण के कोशल, वारधा तथा महानदी के तट के निवासी थे। दिग्विजय-पर्व में मद्रास प्रेसीडेन्सी के दक्षिणी भाग को दक्षिणापथ कहा गया है। गुप्त-काल में कोशल से राँची राज्य तक यह प्रदेश फैल गया था। बाद में यह प्रदेश विन्ध्य भारत तथा नर्मदा तक फैला था।[4]

उपर्युक्त दक्षिणापथ शब्द का चाहे जो भी अर्थ हो, किन्तु इतना निश्चित है कि निमि तथा कराल विदेह राजाओं के समय में आर्य लोग विन्ध्य पर्वत के पार तक फैल चुके थे और वहाँ नर्मदा से गोदावरी तक कई राज्यों की स्थापना की थी। इन्हीं राज्यों में से विदर्भ भी एक था। विदर्भ में बरार (आइने-अकबरी का वरदातट) तथा वरधा (वारदा) और वेनगंगा के मध्य का अधिकाश भाग शामिल था। उत्तर में ताप्ती की सहायक पयोषणी नदी तक यह फैला हुआ था।[5] निमि के काल में भी विदर्भ निश्चित रूप से एक

१. X. 61.8; *Vedic Index*, I. 337.

२. IV. 2. 98.

३. बौद्धायन सूत्र, I. 1. 29.

४. *DPPN*, 1, 1050; महाभारत, II 31. 16-17; III. 61. 21-23. इलाहाबाद का समुद्रगुप्त का स्तम्भ-लेख; Fleet, *Dynasties of the Kanarese Districts*, 341 n. The *Periplus* distinguishes Dachinabdes (दक्षिणापथ) from Damirica (तमिलनाड)।

५. महाभारत, III. 61. 22-23. 120. 31.

प्रख्यात राज्य था। कुम्भकार जातक तथा उत्तराध्ययन के अनुसार निमि गांधार के राजा नग्नजित के समकालीन थे। ऐतरेय ब्राह्मण[1] के अनुसार गान्धार-नरेश नग्नजित विदर्भ के राजा भीम के समकालीन थे।

"एतम् हैव प्रोचतुः पर्वत-नारदौ सोमकाय साहदेव्याय सहदेवाय सारंजयाय बभ्रवे दैवावृद्धाय भीमाय वैदर्भाय नग्नजिते गान्धाराय।"

अतः विदर्भ निमि के समय में एक स्वतंत्र राज्य था। पौराणिक उल्लेखों से ज्ञात होता है कि विदर्भ में यदुवंश[2] के लोग राज्य करते थे। जैमिनीय ब्राह्मण[3] में भी इस राज्य का उल्लेख मिलता है। विदर्भ अपने यहाँ एक विशिष्ट प्रकार के कुत्तों के लिये भी प्रसिद्ध था जो चीतों को परास्त कर देते थे[4]—'विदर्भेषु माकलास् सारमेया अपीह शारदूलान् मारयन्ति।' प्रश्न उपनिषद्[5] में आश्वलायन के समकालीन विदर्भ के ऋषि भार्गव का नाम आता है। बृहदारण्यक उपनिषद्[6] में एक अन्य ऋषि विदर्भी कौण्डिन्य का भी नाम आता है। यह नाम कुण्डीन शब्द का ही एक रूप है जो विदर्भ की राजधानी का नाम था।[7] आजकल अमरावती[8] के चाण्डूर तालुके में वारधा के तट पर बसे कौण्डिन्यपुर नामक स्थान को ही प्राचीन कुण्डीन नगर कहा जा सकता है। विदर्भ तथा कुण्डीन के एक साथ उल्लेख से स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में आया विदेह दक्षिण में ही था।[9]

१. VII. 34.

२. मत्स्य पुराण, 44, 36; वायु पुराण, 95. 35-36.

३. II. 440; *Vedic Index*, II. 297.

४. *JAOS*, 19, 100.

५. I. 1; II. 1.

६. *Vedic Index*, II. 297.

७. महाभारत, III. 73. 1-2; V. 157. 14; हरिवंश, विष्णु पर्व, 59-60.

८. गज़ेटियर, अमरावती, Vol. A, p. 406.

९. *Indian Culture*, July, 1936, p. 12. इसी लेखक ने पुराणों की उक्ति को स्वीकार किया है तथा वैदिक साहित्य की जातियों को अनैतिहासिक माना है। इसने ऐतरेय ब्राह्मण के सत्वातों को यादव माना है और उन्हें मथुरा तथा समीपवर्त्ती जिलों का कहा है। उसने ऐसा कोई तथ्य नहीं दिया जिसमें सत्वातों की समानता किसी से की गई हो तथा उन्हें मथुरा के आसपास का माना गया हो।

यदि कुम्भकार जातक पर विश्वास किया जाय तो इसमें वर्णित गांधार के राजा नग्नजित तथा विदर्भ के राजा भीम, कलिग के राजा कारण्डु के समकालीन थे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है निमि के समय या ब्राह्मण-काल में कलिंग राज्य का भी अस्तित्व था। जातक के उक्त उल्लेख की पुष्टि उत्तराध्ययन सूत्र से भी होती है। महागोविन्द सुतन्त[१] के अनुसार कलिग के राजा सत्तभु मिथिला के राजा रेणु तथा शतपथ ब्राह्मण[२] में वर्णित काशी के राजा धृतराष्ट्र के समकालीन थे। अतः अब इसमें सन्देह नहीं रहा कि ब्राह्मण-काल में कलिंग राज्य का स्वतंत्र अस्तित्व था। पाणिनि[३] तथा बौद्धायन[४] में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। बौद्धायन में कलिंग को अशुद्ध देश कहा गया है जिससे स्पष्ट है कि आर्य लोग भी कलिंग पहुँच चुके थे।[५] महाभारत के अनुसार उड़ीसा की वैतरणी नदी[६] से आन्ध्र की सीमा तक कलिंग का विस्तार था। राज्य की दक्षिणी सीमा का निर्धारण ठीक-ठीक नहीं हो सका है। यों दक्षिणी सीमा विजगापट्टम ज़िले के यल्लमनचिलि तथा चिपुरुपल्ली तक थी, किन्तु कभी-कभी गोदावरी के उत्तर-पूर्व का पिष्टपुर या पित्थपुर भी राज्य की सीमा में आ गया है। आन्ध्र से बहने वाली गोदावरी तक कलिंग की सीमा नहीं कही जा सकती। पार्जिटर के अनुसार पूर्वी पर्वत-श्रेणियों और समुद्र के बीच का मैदानी भाग कलिंग का राज्य था। किन्तु, ऐसा लगता है कि कलिंग के राजा का आधिपत्य अमरकंटक की पहाड़ियों पर बसने वाली जातियाँ भी स्वीकार करती थीं, क्योंकि नर्मदा के उद्गम अमरकंटक को भी कलिंग का पश्चिमी भाग कहा गया है। पाली ग्रन्थों में कलिंगारण्य के उल्लेख से लगता है कि कलिंग राज्य में काफ़ी पहाड़ियाँ व जंगल आदि थे। कालिदास के समय में राजधानी के महलों की खिड़कियों से समुद्र दिखाई पड़ता था और लहरों के उद्घोष से नगर में बजने वाले दमामे धीमे पड़ जाते

---

१. *Dialogues of the Buddha*, II. 270.

२. XIII. 5. 4. 22.

३. IV. 1. 170.

४. I, i, 30-31.

५. अशोक के समय में कलिंग में काफ़ी ब्राह्मण बसते थे (*Cf* Edit, XIII)।

६. महाभारत, III. 114. 4.

थे।[1] युवान क्वांग के समय में तो कलिंग बहुत छोटा राज्य था। उड़ीसा के वुतु, कुंगयूतो (गंजाम जिले का कोंगाद) तथा गंजाम और विजगापट्टम जिले इस राज्य में थे। जातकों में दन्तपुर नगर को कलिंग की राजधानी कहा गया है।[2] महाभारत के अनुसार राजपुर कलिंग की राजधानी थी।[3] महावस्तु[4] में सिहपुर तथा जैन-ग्रन्थों में कंचनपुर नगर का उल्लेख आता है।[5]

महागोविन्द सुत्तन्त में गोदावरी[6] के तट पर स्थित अस्सक या अश्मक राज्य का भी उल्लेख मिलता है। यह राज्य राजा रेणु तथा धृतराष्ट्र के समय में भी था। इस राज्य का राजा ब्रह्मदत्त था।

---

१. *Ind. Ant.*, 1323, 67; *Ep. Ind.*, XII. 2; *JASB*, 1897, 98 ff; कूर्म p, II, 39, 9; पद्म, स्वर्ग-खण्ड, VI. 22; वायु, 77, 4-13; Malalasekera, *DPPN*, 584; रघुवंश, vi. 56.

२. *Cf. Ep Ind*, XIV; p. 361. दन्तपुर वासकात; दन्तकुर, महाभारत, V, 48, 76. दण्डगुल (Pliny McCrindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 144)। संभवतः गंजाम जिले के चिकाकोल के दन्तवक्तृ किले के नाम पर भी इसी नाम की छाया है। इसी जिले में कलिंग की राजधानियाँ हैं, जैसे चिकाकोल के पास सिहपुर (सिंगुपुरम्) है। *AHD*, p. 94; कलिंग नगर (वंशधरा का मुखलिंगम) (*Ep. Ind.*, IV. 187) (कलिंग पातम; (*Ind. Ant* 1887, 132; *JBORS*, 1929, pp. 623 f)।

३. XII. 4.3.

४. Senart's edition, p. 432.

५. *Ind. Ant.*, 1891, p. 375. पद्मपुराण के भूमि-खंड (47.0) में श्रीपुर को कलिंग का एक नगर माना गया है।

६. सुत्त निपात, 977; *SBE*, X, pt. ii, 184; *Cf.* Asmagi (*Bomb. Gaz.* I. 1, p. 532; *Megasthenes and Arrian* (1926, 145)। अश्मक का उल्लेख पाणिनि ने भी किया है (IV. I. 173)। इस नाम से कुछ पथरीले देश का संकेत मिलता है। *Camb. Hist. of India* (Vol. 1) में अश्वक शब्द को संस्कृत अश्व तथा ईरानी अस्प के समान कहा है जिसका अर्थ घोड़ा होता है। टीकाकार भट्टस्वामिन् ने अश्मक को महाराष्ट्र माना है। इसकी राजधानी पोटलि या पोटन थी—चुल्ल-कालिंग जातक, नं० 301; अस्सक जातक (207); D 2.235; परिशिष्ट-पर्वन्, 1. 92. नगरे पोटनाभिधे, *Bomb., Gaz.* 1. 1. 535; Law,

प्राचीन दक्षिणापथ
अँग्रेजी मील
० ५० १०० २००
नर्मदा या रीवा नदी
विदर्भ
मूलक
अस्मक
कृष्णा नदी
घटप्रभा नदी
मलप्रभा नदी
पम्पा या तुंगभद्रा नदी
कावेरी नदी
ताम्रपर्णी नदी
भीमरथी नदी
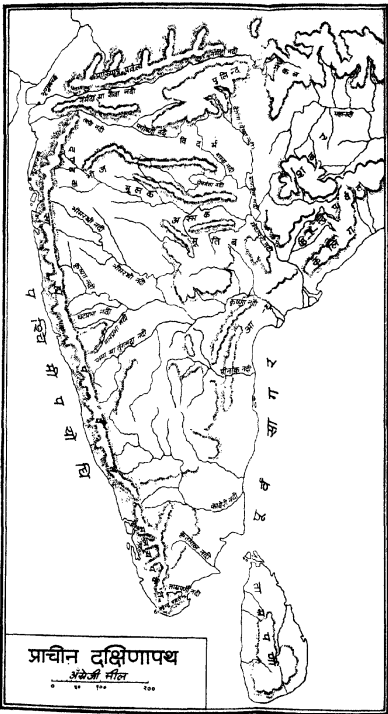
राजाओं में घनिष्ठ सम्बन्धों के भी प्रमाण मिलते हैं। महाभारत[१] तथा हरिवंश[२] दोनों में भोजकट नामक स्थान का उल्लेख है जो विदर्भ में पड़ता है। वाकाटक राजा प्रवरसेन-द्वितीय के कार्यों से भी यह सिद्ध होता है कि भोजकट बरार के इलिचपुर (प्राचीन विदर्भ) में पड़ता है।[३] डॉक्टर स्मिथ द्वारा दिये गये संकेतों से भी स्पष्ट है कि भोजकट का नाम भोज राजाओं के नाम पर है तथा यह प्रान्त इन राजाओं का गढ़ था, ऐसा अशोक[४] के लेखों में भी मिलता है। महाकवि कालिदास ने भी अपने रघुवंश[५] में विदर्भ के राजा को भोज[६] की संज्ञा दी है।

भोजवंश केवल विदर्भ तक ही सीमित न था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार दक्षिण में भी भोज राजाओं का फैलाव था और दण्डक पर भी भोजों का ही अधिकार रहा होगा। कौटिल्य अर्थशास्त्र[७] में एक अनुच्छेद है—"दण्डक्यो नाम भोजः कामात् ब्राह्मण-कन्यां अभिमन्यमानस सबन्धु-राष्ट्रो विनाश।" अर्थात् 'दाण्डक्य नामक (या दंडक में राज्य करने वाले) भोज राजा ब्राह्मण कन्या पर कुदृष्टि डालने के फलस्वरूप अपने राज्य तथा बन्धु-बान्धवों सहित विनष्ट हो गया।' सरभंग जातक[८] से पता चलता है कि दण्डकी (दण्डक) राज्य की राजधानी का नाम कुम्भावती था। रामायण[९] के अनुसार राजधानी का नाम मधुमन्त तथा महावस्तु[१०] के अनुसार गोवर्द्धन (नासिक) दण्डकी राज्य की राजधानी थी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जनक-वंश के बाद के राजाओं तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना के समय दक्षिण भारत में भी अनेक राज्य थे। इनमें आर्य तथा

---

१. V. 157. 15-16.

२. विष्णु पर्व, 60.32.

३. *JRAS*, 1914, p. 329.

४. *Ind. Ant.*, 1923, 262-63 में भोजकट सम्भवतः अमरावती जिले का बतकुली स्थान था।

५. V. 39-40.

६. *Cf.* Also महाभारत, V. 48. 74; 157.17; हरिवंश, विष्णु पर्व, 47.5.

७. Ed. 1919, p. 11.

८. No. 522.

९. VII. 92. 18.

१०. Senart's Edition, p. 363.

अनार्य दोनों राज्य थे। जहाँ तक भोज-राजवंश का प्रश्न है, कलिंग, अश्मक, दण्डक तथा विदर्भ राज्यों में भोजवंश के शासक राज्य करते थे। इन बड़े-बड़े तथा संगठित राज्यों के अतिरिक्त भी विन्ध्य भाग के दक्षिण में छोटे-छोटे अनार्य राज्य थे। इन राज्यों में आन्ध्र, शवर, पुलिन्द तथा मुतिब वंश प्रमुख थे।[1]

इतिहासकार डॉक्टर स्मिथ के अनुसार आन्ध्र लोग द्रविड़ थे तथा गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टे में रहते थे। इन लोगों की भाषा का नाम तेलुगू था। सर पी० टी० आयंगर का कहना है कि आन्ध्र लोग मूलतः विन्ध्य-क्षेत्र की जातियों में से ही थे। उनका राज्य पश्चिम से पूर्व गोदावरी और कृष्णा की घाटियों तक फैला था।[2] डॉक्टर भण्डारकर का कहना है कि सेरिवाणिज जातक में जिस आन्ध्रपुर का उल्लेख मिलता है, वह आन्ध्र राजाओं की राजधानी थी। यह नगर तेलवाह नदी पर बसा था। आजकल सम्भवतः इसे तेलंगिरि[3] कहते हैं। किन्तु, यदि 'श्री राज्य'[4] में मैसूर के गंग-राज्य की चर्चा है तो तुगभद्रा या कृष्णा का नाम ही तेलवाह नदी रहा होगा। आन्ध्रपुर नगर भी बेज़वाड़ा रहा होगा या उसके आसपास का कोई नगर[5] प्राचीन आन्ध्रपुर रहा होगा। पल्लव शासक शिवस्कन्द वर्मन के समय के प्राप्त कुछ धातुपत्रों से सिद्ध होता है कि आन्ध्र राज्य कृष्णा की घाटी तक फैला हुआ था और सम्भवतः धन्नकड़ अर्थात् बेज़वाड़ा इसकी राजधानी थी। बेज़वाड़ा के आसपास कृष्णा के तट पर[6] के किसी

१. ऐतरेय ब्राह्मण, III. 18.

२. *Ind. Ant.*, 1913, pp. 276-78.

३. *Ind. Ant.*, 1918, p. 71. दक्षिण भारत में टेर (Ter) नाम की भी एक नदी है (*Ep. Ind*, XXII. 29)।

४. *Mysore and Coorg from Inscription*, 38. 'Seri' may also refer to श्री विजय या श्री विषय (सुमात्रा ?)।

५. तेलवाह (oil carrier) से एक अनुच्छेद याद आता है—विख्यात कृष्णावेर्णा (कृष्णा) तैल-स्नेहोपलब्ध सरलत्व (*IA*, VIII. 17; *Cf. Ep.* XII. 153);—with a smoothness caused by sesame oil of the famous (river) Krishna.

६. हल्ट्ज (*Ep. Ind.*, VI. 85) ने अमरावती नगर से इसका तादात्म्य किया है। बर्गेस ने बेज़वाड़ा से १८ मील दूर धरणीकोट को सुझाव दिया है। यह कृष्णा नदी के किनारे था। फ़र्गुसन, सेवेल तथा वाटर्स ने बेज़वाड़ा ही को प्राथमिकता दी है (*Yuan Chwang*, II. 216)। चीनी यात्री ऐनतोलो के समय में (आन्ध्र की) इसकी राजधानी पिंग-की-लो या कृष्णा ज़िले का बेगीपुर राजधानी थी।

अन्य नगर के भी प्राचीन आन्ध्र की राजधानी होने की पूरी सम्भावना है। युवान च्वाँग ने एलोरा के समीपवर्ती बेंगीपुर ज़िले को पिंग-की-लो तथा आन्ध्र को अन-तो-लो का नाम दिया था। कालान्तर में आन्ध्र-खण्ड गोदावरी से कलिंग तक फैल गया था। आन्ध्र-खण्ड में पिट्ठपुरी या पिथपुरम् भी शामिल था।[1]

मत्स्य तथा वायु पुराणों में शवरों एवं पुलिन्दों को दक्षिणापथ-वासिन: कहा गया है, अर्थात् ये लोग दक्षिण भारत के रहने वाले थे। इनके अतिरिक्त वैदर्भों तथा दण्डकों को भी दक्षिण का ही कहा गया है।

तेषांपरे जनपदा दक्षिणापथ-वासिन:।

× × ×

कारुषाश्च सह इषीका आटव्या: शवरास् तथा
पुलिन्दा विन्ध्य-पुषिका (?) वैदर्भा दण्डकै: सह[2]
आभीरा: सह च-इषीका: आटव्या: शवराश्च ये
पुलिन्दा विन्ध्य-मूलिका वैदर्भा दण्डकै: सह।[3]

महाभारत में आन्ध्रों, पुलिन्दों तथा शवरों के पश्चिम में होने की बात कही गई।

दक्षिणापथ जन्मान: सर्वे नरवर आन्ध्रका:
गुहा: पुलिन्दा: शवराश् चूचुका मद्रकै: (?) हस।[4]

ब्राह्मण-काल में शवरों के देश की वास्तविक स्थिति क्या थी, यह नहीं बताया जा सकता। मोटे तौर से विजगापट्टम ज़िले के सवरालु या सौरस को ही इनका देश कहा जा सकता है। पुलिन्दों की राजधानी दशार्ण[5] के दक्षिण-पूर्व में कही जा सकती है। दसान (धसान) नदी बुन्देलखण्ड में पड़ती है।[6]

ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्र, पुलिन्द व शवर जातियों के साथ-साथ मुतिब

---

१. Watters, II. 209 f, *IA*, xx, 93; *Ep. Ind.*, IV. 357.

२. मत्स्य, 114, 46–48.

३. वायु 45, 126.

४. महाभारत, XII. 207.42.

५. महाभारत, II. 5-10.

६. *JASB*, 1895,253; कालिदास ने इसे विदिशा या भिलसा में कहा है (मेघदूत, 24-25)।

जाति का भी उल्लेख आया है। मुतिब जाति के प्रदेश के बारे में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सका है। इतिहासकारों ने मोदूब जाति का भी उल्लेख किया है। इनका सम्बन्ध मोलिएदे के उबेराय से बताया गया है। 'शांखायन श्रौत सूत्र'[1] में मुतिब जाति को मुवीप या मुशीप भी कहा वया है। यह भी सम्भव है कि हैदराबाद-दक़न के समीप की नदी मुशी से भी मुशीप जाति का कुछ सम्बन्ध रहा हो।[2]

---

१. XV. 26. 6.

२. *Cf.* मूषिक, Pargiter, मार्कण्डेय पुराण, p. 366.

राजतन्त्र तथा महाजनपद | ३

१. सोलह महाजनपद

सम्भवतः छठवीं शताब्दी ईसापूर्व के आरम्भ में ही विदेह में राजवंश का पतन हुआ। इसी शताब्दी के मध्य में बिम्बिसार के श्वसुर महाकोशल के नेतृत्व में कोशल राज्य का उदय हुआ। वैदिक साहित्य में विदेह के पतन तथा कोशल के उदय के बीच के समय की राजनीतिक स्थिति पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। किन्तु, बौद्ध-ग्रन्थ 'अंगुत्तर निकाय' से हमें पता चलता है कि इस बीच भी 'सोलस महाजनपद'[1] नामक सोलह बड़े-बड़े तथा शक्तिशाली राज्य थे। वे १६ महाजनपद ये हैं—

१. काशी
२. कोशल
३. अंग
४. मगध
५. वज्जि (वृजि)
६. मल्ल
७. चेतिय (चेदि)
८. वंस (वत्स)
९. कुरु
१०. पांचाल
११. मच्छ (मत्स्य)
१२. शूरसेन
१३. अस्सक (अश्मक)
१४. अवन्ती
१५. गान्धार
१६. कम्बोज

ये महाजनपद विदेह के कराल जनक के बाद तथा महाकोशल राज्य उदय के पूर्व ही हुए थे, क्योंकि इनमें वज्जि महाजनपद का उद्भव वि राजतंत्र के तुरन्त बाद हुआ था। छठवीं शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में काशी राज्य अपनी स्वाधीनता खोकर कोशल का अंग बन चुका था। काशी राज्य का अस्त भी महाकोशल के पूर्व ही हुआ था।

---

१. *PTSI*, 213; IV, 252, 256, 260. महावस्तु में भी (I 34) इसी प्रकार की लिस्ट दी गई है किन्तु उसमें गान्धार और कम्बोज का नाम न देकर शिबि और दशार्ण (पंजाब और राजपूताना में) के नाम हैं। इसी प्रकार की एक अधूरी सूची जनवसभ-सुत्तन्त में मिलती है।

जैन 'भगवती सूत्र'[1] नामक ग्रन्थ में महाजनपदों की सूची कुछ भिन्न प्रकार की है, जो निम्नलिखित है--

१. अंग	९. पाढ्य (पांड्य या पौन्ड्र)
२. बंग (वंग)	१०. लाढ (लाट या राढ)
३. मगह (मगध)	११. बज्जि (वज्जि)
४. मलय	१२. मोलि (मल्ल)
५. मालव(क)	१३. काशी
६. अच्छ	१४. कोशल
७. वच्छ (वत्स)	१५. अवध
८. कोच्छ (कच्छ ?)	१६. सम्भुत्तर (सुम्होत्तर ?)

उपर्युक्त सूचियों के अवलोकन से स्पष्ट है कि अंग, मगध, वत्स, वज्जि, काशी तथा कोशल राज्यों के नाम दोनों सूचियों में उभयनिष्ठ हैं। भगवती-सूची का मालव राज्य अंगुत्तर-सूची का अवन्ती लगता है। 'मोलि' सम्भवतः 'मल्ल' शब्द का ही समानार्थी है। इनके अतिरिक्त भगवती-सूची में जिन राज्यों के नाम आये हैं वे सुदूरपूर्व तथा सुदूरदक्षिण भारत की जानकारी का संकेत देते है। भगवती-सूची में उल्लिखित राज्यों के विस्तार से लगता है कि यह सूची अंगुत्तर-सूची[2] के बाद की है। अतः विदेह-वंश के पतन के बाद की भारत की राजनीतिक स्थिति जानने के लिये बौद्ध-सूची को ही हम सही और प्रामाणिक मानते हैं।

उपर्युक्त सोलह महाजनपदों में शुरू में सम्भवतः काशी सबसे शक्तिशाली था। हम देख चुके हैं कि विदेह के राजतन्त्र को समाप्त करने में काशी राज्य का

---

१. *Saya*, xv, उद्देस्स I (Hoernle, उवासगदसाव, II, Appendix), W. Kirfel, *Die Kosmographie Der Inder*, 225.

२. Mr. E. J. Thomas ने *History of Buddhist Thought*, p. 6 में संकेत किया है कि जिस जैन लेखक ने उत्तरी गांधार और कम्बोज के बजाय दक्षिण भारत के प्रदेशों का नाम सूची में लिखा है, उसने दक्षिण भारत में ग्रन्थ तैयार किया है तथा केवल उन्हीं देशों का उल्लेख किया है जिसे वह जानता था। यदि कोई लेखक मालवावासियों को नहीं जानता तो इसका अर्थ है कि वह पंजाब का नहीं वरन् मध्य भारत का रहा होगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वह लेखक बहुत बाद का रहा होगा।

प्रमुख हाथ रहा है। अनेक जातकों में भी भारत के अन्य नगरों की अपेक्षा काशी राज्य की राजधानी वाराणसी को अधिक गरिमावान् नगर बताया गया है। इन जातकों में काशी के शासकों की महत्त्वाकांक्षाओं की ओर भी संकेत मिलता है। गुत्तिल जातक[१] में वाराणसी को भारत भर के नगरों में प्रमुख नगर कहा गया है। वाराणसी नगर का विस्तार ३६ मील[२] में था जबकि मिथिला तथा इन्दपत्त में से प्रत्येक का विस्तार केवल २१ मील[३] में था। काशी के कई राजाओं की यह भी इच्छा थी कि उन्हें विभिन्न राजाओं के बीच 'मुख्य राजा' का सम्मान प्राप्त हो तथा वे समूचे भारत (सकल जम्बूद्वीप)[४] के सम्राट् माने जायँ। 'महावग्ग' में भी कहा गया है कि काशी राज्य महान्, समृद्धशाली तथा प्रभूत साधनों से सम्पन्न था—'भूतपुब्बं भिक्खवे वाराणसीयम् ब्रह्मदत्तो नाम काशीराजा अहोसि अद्धो महद्धनो महाभोगो महद्बलो महावाहनो महाविजितो परिपूर्णकोश कोट्ठागारो।'[५]

जैन लोग भी काशी राज्य की महानता की पुष्टि करते हैं तथा वाराणसी के राजा अश्वसेन को अपने तीर्थङ्कर पार्श्व का पिता मानते हैं। इनका देहावसान महावीर से २५० वर्ष पूर्व या लगभग ७७७ वर्ष ईसापूर्व में हुआ था।

इसके पूर्व ब्राह्मण-काल में काशी के राजा धृतराष्ट्र ने एक बार अश्वमेध यज्ञ करने का प्रयास किया था किन्तु शतानीक सात्राजित ने उन्हें परास्त कर दिया जिसके फलस्वरूप शतपथ ब्राह्मण के काल तक काशी राज्य पुनः उभर न सका तथा धृतराष्ट्र को अश्वमेध का इरादा तो छोड़ ही देना पड़ा।[६] काशी के कुछ राजा तो भाग्यशाली भी सिद्ध हुए हैं। ब्रहात्त जातक[७] के अनुसार काशी के एक राजा ने एक बड़ी सेना के साथ कोशल पर आक्रमण किया था और वहाँ

---

१. No. 243.

२. द्वादश योजनिकम् सकल-वाराणसी-नगरम्—'सम्भव जातक' No. 515; सरभ-मिगा जातक 483; भूरिदत्त जातक, 543.

३. सुरचि जातक, 489; विधुर पंडित जातक, 545.

४. भद्दसाल जातक, 465; धोनसाख जातक, 353.

५. महावग्ग, X, 2.3; विनय पिटकम्, I, 342.

६. शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 19.

७. No. 336.

के राजा को बन्दी बना लिया था। 'कौशाम्बी' जातक[१], 'कुनाल' जातक[२] तथा 'महावग्ग'[३] में काशी के ब्रह्मदत्त राजाओं[४] द्वारा कोशल को अपने अधीन कर लेने का उल्लेख मिलता है। अस्सक जातक[५] में गोदावरी के तट पर बसी अस्सक की राजधानी पोतलि को काशी राज्य की एक नगरी कहा गया है। स्पष्ट है कि अस्सक के शासक ने काशी की अधीनता स्वीकार कर ली होगी। सोननन्द जातक[६] के अनुसार काशी के राजा मनोज ने कोशल, मगध और अंगराज्य के राजाओं को अपने अधीन कर लिया था। महाभारत[७] के अनुसार काशी के राजा प्रतर्दन ने वितहव्य या हैहय[८] राजाओं को कुचल दिया था। समुचित प्रमाणों के अभाव में जातक में उल्लिखित विभिन्न राजाओं की व्यक्तिगत सफलताओं तथा जीतों को पूर्ण विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। फिर भी विभिन्न जातकों तथा महावग्ग में समान रूप से आये उल्लेखों से स्पष्ट है कि काशी का साम्राज्य किसी समय में बहुत बड़ा तथा अपने पड़ोसी राज्यों जैसे कोशल आदि से बहुत अधिक शक्तिशाली था।

१. No. 428.

२. No. 536.

३. *SBE*, Vol. XIII, pp. 294-99.

४. महाभारत में (I. 105. 47. ff; 106. 2, 13; 113. 43; 114. 3 f; 126, 16; 127,24) काशी की राजकुमारियों, धृतराष्ट्र की माँ और पांडु को कौशल्य के रूप मे लिखा गया है। इससे महाभारत-काल में काशी और कोशल के बीच सम्बन्ध था। गोपथ ब्राह्मण में भी काशी-कोशल का उल्लेख मिलता है (*Vedic Index*, I. 19०)।

५. No. 207.

६. No. 532.

७. XIII. 30.

८. डॉक्टर भण्डारकर ने काशी के जिन जातक राजाओं का उल्लेख किया है, पुराणों में भी उनके नाम मिलते हैं। उदाहरणार्थ, जातक नं० २६३ के विस्सेन, जातक नं० ४५८ के उदय तथा जातक नं० ५०४ के भल्लाटीय राजाओं का नाम पुराणों में विश्वक्सेन, उदक्सेन तथा भल्लाट के रूपों में आए हैं। मत्स्य, 49. 57 *et. seq.*; वायु, 99.180 *et. seq.*; विष्णु, IV. 19. 13.

भोजाजानिय जातक[1] में लिखा है कि पड़ोसी राज्य वाराणसी पर हमेशा अपनी आँख गड़ाये रहते थे। एक बार तो काशी के सात पड़ोसी राज्यों ने एक साथ मिलकर काशी को घेर लिया था।[2] तत्कालीन वाराणसी की तुलना प्राचीन काल के बेबीलोन तथा मध्यकालीन रोम से की जा सकती है क्योंकि इस पर सदैव लड़ाकू तथा अर्धसभ्य देश ललचाये रहते थे।

कोशल

जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं कोशल राज्य के पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सर्पिका या स्यन्दिका अर्थात् सई नदी[3], पूर्व में विदेह से कोशल को अलग करने वाली सदानीरा तथा उत्तर में नेपाल की पहाड़ियाँ हैं। कोशल राज्य के अन्तर्गत गोमती के तट पर स्थित केसपुत्त[4] का कालामस भूभाग तथा शकों का देश कपिलवस्तु भी आ जाता था। सुत्त निपात[5] में महात्मा बुद्ध कहते हैं, "हिमालय (हिमवन्त) के बिल्कुल पास स्थित कोशल प्रदेश[6] के रहने वाले लक्ष्मी-सम्पन्न हैं। ये लोग वंश से आदिच्छ[7] तथा जन्म से शाकिय हैं। यहीं के एक परिवार से मैं परिभ्रमण के लिये निकला हूँ। मुझे ऐन्द्रिक सुखों की तनिक भी लालसा नहीं है।" मज्झिम निकाय[8] में भी बुद्ध को कोशल का ही कहा गया है।

'भगवा पि कोशलको अहम् पि कोशलको'

अग्गण सुत्तन्त[9] तथा भद्दसाल जातक[10] के आरम्भ के अध्यायों से स्पष्ट

---

१. No. 23.

२. जातक, 181.

३. रामायण, II, 49. 11-12; 50. 1; VII, 104. 15.

४. अंगुत्तर निकाय, I. 188 (*PTS*); IC. II. 808. ऋग्वेद में, V. 61, दाल्म्य-वंश जो केशिन-वंश से सम्बन्धित थे, उनका स्थान गोमती के तट पर था।

५. *SBE*, X, Part II, 68-69.

६. कोसलेसु निकेतिनो : Rhys Davids और Stede ने निकेतिन शब्द का अर्थ निवास से लगाया है। Cf. J., III, 432—दुमसाखा निकेतिनी।

७. आदित्य से सम्बन्धित (सूर्यवंश), Cf. *Luders*, *Ins.*, 929, I.

८. II, 124.

९. दीघ निकाय, III (*PTS*), 83; *Dialogues*, III, 80.

१०. No. 465; *Fousboll*, IV. 145.

है कि छठवीं शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में शाक्य लोग कोशल के राजा की अधीनता स्वीकार कर चुके थे।

मुख्य कोशल में तीन बड़े नगर थे। सेतव्य[1] तथा उक्कत्थ[2] जैसे छोटे नगरों के अतिरिक्त अयोध्या, साकेत तथा श्रावस्ती या सावत्थि, तीन प्रमुख नगर थे। अयोध्या (अवध) नगर सरयू नदी के तट पर बसा था। आजकल यह फ़ैजाबाद जिले में पड़ता है। प्रायः अयोध्या को ही साकेत कहा जाता है, किन्तु प्रोफ़ेसर रीज डेविड्स के अनुसार बौद्ध-काल में दोनों नगरों का अलग-अलग अस्तित्व था। सम्भवतः अयोध्या और साकेत वैसे ही रहे होंगे जैसे कि आजकल लन्दन और वेस्टमिन्स्टर हैं।[3] सावत्थि या श्रावस्ती अचिरावती (या राप्ती) नदी के दक्षिणी किनारे पर बसा था तथा इसे साहेट-माहेट भी कहते थे। मौजूदा उत्तर प्रदेश के गोंडा तथा बहराइच जिलों की सीमा पर आज भी प्राचीन श्रावस्ती का उजड़ा हुआ रूप विद्यमान है।[4]

रामायण तथा पुराणों के अनुसार कोशल के राजाओं के पूर्वपुरुष इक्ष्वाकु थे। इक्ष्वाकु के ही वंशज कुशीनर[5] मिथिला[6] तथा वैशाली[7] (या विशाल) में राज्य करते थे। ऋग्वेद[8] में भी एक जगह इक्ष्वाकु नामक एक राजा का उल्लेख मिलता है।[9] अथर्ववेद में भी इनका या इनके वंश के किसी अन्य राजा का 'योद्धा' के रूप में उल्लेख आया है। पुराणों में दी गई इक्ष्वाकु-वंश की सूची में इक्ष्वाकु से लेकर बिम्बसार के समकालीन राजा प्रसेनजित् तक का नाम

---

१. पायासी सुत्तन्त।

२. अम्बट्ठ सुत्त।

३. *Buddhist India*, p. 39.

४. Cunningham, *Ancient Geography of India*, 1924, p. 469; Smith, *EHI*, 3rd ed., p. 159. श्रावस्ती के राजमहल से अचिरावती की उपेक्षा हो जाती है (*DPPN*, II, 170 n)।

५. कुश जातक, No. 531, महावत्थु (III. 1) में इक्ष्वाकु को बनारस का कहा गया है—अभूषि राजा इक्ष्वाकु वाराणस्याम् महाबलो।

६. वायु पुराण, p. 89, 3.

७. रामायण, I. 4. 11-12.

८. X, 60, 4.

९. XIV, 39, 9.

मिलता है। इनमें से अनेक राजाओं के नाम तो वैदिक साहित्य में भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए, गोपथ ब्राह्मण[1] में मन्धातृ युवनाश्व[2] का नाम आया है। पुरुकुत्स[3] का नाम ऋग्वेद[4] में है। शतपथ ब्राह्मण[5] में इसी राजा को ऐक्ष्वाकु[6] त्रसदस्यु[7] कहा गया है यद्यपि ऋग्वेद[8] में भी इस नाम का उल्लेख मिलता है। ऋगवेद[9] में ही त्र्यरुण[10] नाम भी आया है। पंचविंश ब्राह्मण[11] में इस राजा को ऐक्ष्वाकु त्रिशंकु[12] कहा गया है तथा तैत्तरीय उपनिषद् में भी यह नाम आया है।[13]

ऐतरेय ब्राह्मण[14] में राजा हरिश्चन्द्र[15] को भी ऐक्ष्वाकु राजा कहा गया है तथा इस ग्रन्थ में उनके पुत्र रोहित[16] (रोहिताश्व) का भी नाम आया है।[17] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भगीरथ[18] का नाम 'भगेरथ'[19] के रूप में आया है तथा उनको 'एक राट' अर्थात् 'एक मात्र राजा' कहा गया है। ऋग्-वेद में[20] भगीरथ को 'भजेरथ' लिखा गया है। इसी वेद में राजा अम्बरीष[21]

१. I. 2. 10, *et. seq.*
२. वायु, 88,67.
३. वायु, 88, 72.
४. I, 63, 7; 112. 7. 14; 174. 2, VI. 20. 10.
५. XIII. 5, 4, 5.
६. Cf. reference, ऋग्वेद, IV, 42. 8.
७. वायु, 88. 74.
८ IV. 38.1; VII, 19.3, etc.
९. V. 27.
१०. वायु, 88, 77.
११. XIII. 3.12.
१२. वायु, 88. 109.
१३. 1. 10.1.
१४. VII, 13. 16.
१५ वायु, 88, 117.
१६ वायु, 88. 119.
१७ VII, 14.
१८. वायु, 88. 167.
१९ IV, 6.1 ff.
२०. X, 60.2.
२१ वायु, 88. 171

का भी नाम आया है।[1] 'ऋतुपर्ण'[2] नाम बौद्धायन श्रौत सूत्र[3] में आया है। दशरथ और राम[4] के भी नाम ऋग्वेद[5] में आये हैं। उपर्युक्त नामों में से कुछ वैदिक साहित्य में नहीं मिलते और न उनके इक्ष्वाकु-वंश या कोशल से सम्बद्ध होने की ही चर्चा कही मिलती है।

प्रश्न उपनिषद् में हिरण्यनाभ कौशल्य[6] को राजपुत्र या राजकुमार कहा गया है।[7] इस राजा का नाम शतपथ ब्राह्मण[8] के एक पद्य में मिलता है तथा इसे 'पर आटणार' (कोशल-विदेह) से सम्बद्ध बताया गया है। शांखायन श्रौत सूत्र[9] तथा जैमिनीय उपनिषद् में[10] यही उल्लेख मिलता है। शतपथ ब्राह्मण के विपरीत श्रौत सूत्र में हिरण्यनाभ की समानता 'पर आटणार' से की गई है। यह कहना कठिन है कि शतपथ ब्राह्मण की जिस गाथा में 'पर आटणार' के पराक्रम की प्रशंसा की गयी है, उसमें हिरण्यनाभ नाम इसी विजेता के लिये आया है या वंश के किसी अन्य राजा के लिये। शतपथ ब्राह्मण उपर्युक्त अन्य दो ग्रन्थों से पुराना है। इसलिये यह भी सम्भव है कि श्रौत सूत्र की अपेक्षा उसका मूल रूप अधिक विश्वसनीय हो। प्रश्न उपनिषद् के अनुसार

---

१. I. 100. 17.

२. वायु, 88. 173.

३. XVIII, 12 (Vol. II, p. 357)

४. वायु, 88. 183-84.

५. I 126.4; X. 93. 14.

६. वायु, 88. 207.

७. VI. 1, जैमिनीय उपनिषद् में II, 6. (Cf. शांखायन श्रौत सूत्र XVI,9.13) उसे या उसके लड़के को (शतपथ ब्राह्मण, XII.5.4.4.) महाराजा कहा गया है। राजपुत्र उपाधि के साथ कोई अधिक महत्त्व नही जोड़ना चाहिए। महाभारत में बृहद्‌वल को कोशल का राजा कहा गया है। इसी ग्रन्थ में एक जगह इस राजा के बारे में—'कोशलानामधिपतिम् राजपुत्रं बृहद्‌वलम्' की उक्ति मिलती है।

८. XIII 5. 4.4.

'अटनारस्य परः पुत्रोस्वम् मेघ्यमबन्धयत्
हैरण्यनाभः कौशल्योदिशः पूर्णा अमंहत।'

९. XVI, 9.13.

१०. II. 6.

हिरण्यनाभ (पिता) कौशल्य आश्वलायन[1] के समकालीन सुकेशा भारद्वाज[2] के समकालीन थे। यदि यह सत्य है (जैसा कि सम्भव भी है) कि कोशल के आश्वलायन तथा मज्झिम निकाय[3] में उल्लिखित सावत्थी के आस्सलायन (जो कि गौतम के समकालीन थे) एक ही हैं तो इनका काल छठवीं शताब्दी ईसा-पूर्व मानना होगा। उस निष्कर्ष के फलस्वरूप हिरण्यनाभ (पिता) तथा हैरण्यनाभ (पुत्र) दोनों निश्चित रूप से छठवी शताब्दी में ही हुए रहे होंगे।

पौराणिक सूची के कुछ राजाओं जैसे शाक्य, शुद्धोदन, सिद्धार्थ, राहुल तथा प्रसेनजित् का नाम बौद्ध-साहित्य में भी आया है। यह नहीं पता कि छठवीं शताब्दी ईसापूर्व में हुए हिरण्यनाभ या हैरण्यनाभ तथा प्रसेनजित् के बीच कोई सम्बन्ध था या नहीं। पौराणिक सूचियों[4] के अनुसार हिरण्यनाभ को प्रसेनजित् का पूर्वज कहा गया है। किन्तु वंश-सूची में प्रसेनजित् की वास्तविक स्थिति निश्चित नहीं की जा सकी है। आगे चलकर प्रसेनजित् को राहुल का पुत्र तथा सिद्धार्थ (बुद्ध) का पौत्र कहा गया है। किन्तु, यह सर्वथा अनर्गल है क्योंकि प्रसेनजित् गौतम बुद्ध के समकालीन थे तथा इक्ष्वाकु-वंश की किसी अन्य शाखा से सम्बन्धित थे। तिब्बत के लोग प्रसेनजित् को ब्रह्मदत्त का पुत्र मानते हैं।[5] अब यह स्पष्ट हो गया कि प्रसेनजित् के पूर्वपुरुषों तथा हिरण्यनाभ की वास्तविक स्थिति के बारे में कोई सर्वमान्य धारणा नहीं स्थापित हो सकी है। हिरण्यनाभ ने या उसके पुत्र ने एक अश्वमेध यज्ञ भी किया था। क्या हिरण्यनाभ को ही बौद्ध-परम्परा मे 'महाकोशल' का नाम दिया गया है ? यदि हिरण्यनाभ छठी शताब्दी में हुए थे तो हो सकता है, इन्ही का नाम 'महाकोशल' रहा हो।

इतिहासकार पार्जिटर के अनुसार कतिपय पौराणिक अनुच्छेदों से स्पष्ट है कि महाभारत की लड़ाई[6] के बाद ही हिरण्यनाभ या उनके पुत्र हैरण्यनाभ पदासीन हुए थे। सिर्फ़ हिरण्यनाभ ही एक ऐसे राजा थे जिन्हें वैदिक साहित्य में विदेह तथा कोशल दोनों कहा गया है। उक्त तथ्य हिरण्यनाभ को ही राजा महाकोशल मानने की पुष्टि करते हैं। बौद्ध-परम्परा के अनुसार महाकोशल की पुत्री ही अजातशत्रु की माँ थी और उसे कोशलादेवी या वैदेही दोनों कहा जाता रहा है।

---

१. प्रश्न I, 1.
२. VI, 1.
३. II. 147 *et. seq.*
४. *AIHT*, 173,
५. *Essay on Gunadhya*, p. 173.
६. *AIHT*, 173.

पौराणिक सूचियों की उपादेयता के बारे में यहाँ एक बात कही जा सकती है। यद्यपि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन सूचियों में अनेक राजाओं तथा राजकुमारों का सही उल्लेख मिलता है तो भी ये सूचियाँ कहीं-कहीं इतनी दोषपूर्ण हो गई हैं कि प्राचीन भारत के इतिहास के जिज्ञासुओं या विद्वानों को इनकी उपेक्षा कर देनी पड़ती है।

१. इक्ष्वाकु-वंश की विभिन्न शाखाओं के राजाओं जैसे पूरुष[1] के त्रसदस्यु, शफाल[2] के ऋतुपर्ण, कपिलवस्तु के शुद्धोदन तथा श्रावस्ती के प्रसेनजित् को इस प्रकार एक दूसरे में समेट दिया गया है कि ये सब एक ही वंश के शासक लगते हैं तथा ऐसा लगता है कि क्रम से एक के बाद दूसरे ने राज्य किया था।

२. इन सूचियों में समकालीन राजाओं को एक दूसरे के उत्तराधिकारी के रूप में दिखाया गया है, जैसे श्रावस्ती के प्रसेनजित् को सिद्धार्थ तथा राहुल का उत्तराधिकारी कहा गया है जबकि प्रसेनजित् सिद्धार्थ के समकालीन थे तथा इक्ष्वाकु-वंश की एक अन्य शाखा के थे।

३. कुछ राजाओं, जैसे हरिश्चन्द्र के पूर्वज राजा वेध, 'पर आटणार' तथा महकोशल आदि की चर्चा ही नहीं की गई है।

४. वंश-सूची में वंश-नाम 'शाक्य' व्यक्ति का नाम माना गया है तथा सिद्धार्थ (बुद्ध) को शासक कहा गया है जबकि उन्होंने राज्य किया ही नहीं।

यह पता लगा सकना आसान नहीं है कि पौराणिक सूचियों में आये राजाओं में से कितने कोशल के वास्तविक राजा थे। रामायण[3] में अयोध्या के राजाओं की जो सूची दी गई है उसमें पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, हरिश्चन्द्र, रोहित, ऋतुपर्ण तथा कई अन्य राजाओं का नाम तक नहीं मिलता। वैदिक साहित्य से हमें पता चलता है कि उपर्युक्त राजाओं में से कई ने कोशल के बाहर राज्य किया था। कोशल के

१. ऋग्वेद, IV, 38. 1; VII, 19,3.

२. बौद्धायन श्रौत सूत्र, XVIII, 12 (Vol. II, p. 357), आपस्तम्बीय श्रौत सूत्र (XXI, 20.3), फिर भी ऋतुपर्ण को ऐक्ष्वाकु नहीं कहा गया है। किन्तु यह नाम बहुत कम मिलता है, इसलिए हो सकता है इस नाम से महाभारत या पुराणों के समय के किसी राजा का भी अर्थ निकाला जाय।

३. I. 70.

केवल तीन राजा हिरण्यनाभ[1], प्रसेनजित् तथा शुद्धोदन ही ऐसे थे जिन्होंने कोशल या कोशल के बाहर राज्य किया था और इनका उल्लेख पौराणिक सूचियों, वैदिक साहित्य तथा बौद्ध-ग्रन्थों में मिलता है।

बौद्ध-ग्रन्थों में कोशल के कई अन्य राजाओं के भी नाम मिलते हैं, किन्तु पुराणों तथा रामायण में उनका पता नहीं चलता। इन राजाओं में से कुछ की राजधानी अयोध्या, कुछ की साकेत तथा शेष की श्रावस्ती थी। घट जातक[2] के अनुसार अयोध्या के राजाओं में एक नाम कालसेन भी था। नन्दियामिग जातक[3] के अनुसार कोशल का एक राजा साकेत में रहता था। वांक, महा-कोशल तथा कई अन्य राजाओं[4] की राजधानी सावत्थी या श्रावस्ती थी। लगता है कि पहले अयोध्या कोशल की राजधानी थी किन्तु बाद में साकेत को वह महत्त्व प्राप्त हुआ। श्रावस्ती सबसे बाद में कोशल की राजधानी बनी। बौद्ध-काल[5] तक अयोध्या एक छोटा-सा क़स्बा मात्र रह गया था, किन्तु साकेत तथा श्रावस्ती की गणना भारत के छः बड़े नगरों में की जाती रही।[6]

प्राचीन कोशल राज्य के बारे में जो भी विवरण प्राप्त होता है, वह बड़ा ही असमञ्जसपूर्ण है। यदि पुराणों पर विश्वास किया जाय तो राजा परी-क्षित के वंशज अधिसीमा कृष्ण के समय में दिवाकर नाम का राजा अयोध्या में

१. शतपथ ब्राह्मण में (XIII, 5.4, 4-5) हैरण्यनाभ को कौशल्यराज कहा गया है किन्तु ऐक्ष्वाकु नहीं माना गया है। इसके विपरीत पुरुकुत्स दौर्गह को ऐक्ष्वाकु माना गया है किन्तु कौशल्यराज नहीं माना गया, जैसे कि कौशल्यराज और ऐक्ष्वाकु में अन्तर माना गया है। इसलिए दोनों प्रकार के राजाओं को एक ही वंश तथा एक ही देश का शासक नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः त्रसदस्यु पूरुष देश का राजा था। वार्ष्ण नामक राजा ऐक्ष्वाकीय वृष्णि से संबन्धित था। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण (1.5.4) में इसका उल्लेख भी है।

२. No. 454.

३. No. 385.

४. *E. g.* Kosalraja *of J.* 75; अत्त (336); सब्बमित्त (512); और प्रसेनजित्।

५. *Buddhist India*, p. 34.

६. महापरिनिब्बान सुत्त, *SBE*, XI, p. 99.

राज्य करता था। किन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जिन राजाओं को उक्त राजा का उत्तराधिकारी कहा गया है वे कभी क्रमबद्ध रूप से किसी विशिष्ट भू-भाग के राजा नहीं रहे। अतः इनके तथा गौतम बुद्ध के काल की दूरी निकालने का प्रयास व्यर्थ ही होगा। यह भी ठीक-ठीक ज्ञात नहीं है कि अयोध्या तथा साकेत को छोड़कर कोशलाधीशों ने कब श्रावस्ती को अपनी राजधानी बनाया। हो सकता है कि बुद्ध, बिम्बिसार या अधिसीमा कृष्ण के वंशज कौशाम्बी के उदयन के समकालीन प्रसेनजित् के राज्याभिषेक के पूर्व ही श्रावस्ती को कोशल की राजधानी बना लिया गया हो।

'महावग्ग'[1] के अनुसार काशी के ब्रह्मदत्त राजाओं (पूर्व के) के समय में कोशल एक निर्धन, छोटा तथा सीमित साधनों का राज्य था (दीघीति नाम कोशल राजा अहोसि दलिद्दो अप्पधनो अप्पधोगो अप्पबलो अप्पवाहनो अप्पविजितो अपरिपुण्ण-कोष कोट्ठागारो)।

छठवीं तथा पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व में कोशल एक शक्तिशाली राज्य था। गंगा की घाटी में अपने एकाधिपत्य के हेतु कोशल राज्य को एक बार काशी तथा एक बार मगध से भी लोहा लेना पड़ा था। आगे इन युद्धों पर भी प्रकाश डाला जायगा। मगध से कोशल का वैमनस्य तो तब तक चलता रहा जब तक कि कोशल और मगध एक नहीं हो गये।

अंगराज्य

अंगराज्य मगध के पूर्व स्थित था। अंग के पूर्व राजमहल की पहाड़ियाँ हैं, जिन पर सामन्तों का आधिपत्य था। इन्हें 'पर्वतवासिनः' भी कहा जाता था। अंगराज्य मगध से मोदागिरि (जिसे अब मुंगेर जिला कहते हैं) स्थान से अलग किया गया था। मगध और अंगराज्यों के बीच चम्पा (अब चांदन नदी)[2] नदी बहती थी। किसी समय अंगराज्य में मगध भी शामिल

१. *SBE*, XVII, p. 294.

२. इतिहासकार पार्जिटर के अनुसार (JASB, 1897, 95), प्राचीन अंगराज्य में आजकल के भागलपुर और मुंगेर जिले शामिल थे। उत्तर की ओर यह कौशिकी या कोशी नदी तक फैला हुआ था। पूर्निया जिले का पश्चिमी भाग भी अगराज्य में भी आ जाता था। काश्यप विभाण्डक की कुटी नदी के तट पर तपोवन में थी। इनके लड़के ऋष्य शृंग को राजमहल की सुन्दरियों ने भुलावा देकर नाव से राजधानी उठा ले गई थीं। महाभारत के अनुसार (II, 30. 20-22) मोदागिरि, मुंगेर तथा कौशिकी-कच्छ में भी शासक थे जो अंग के शासक कर्ण से भिन्न थे। कर्ण का राज्य मगध तथा पर्वतवासिन् के राज्य के बीच था।

था तथा राज्य की सीमा समुद्र की लहरों को छूती थी । विधुर पंडित जातक में[1] राजगृह को अंगराज्य का नगर कहा गया है। महाभारत के[2] शान्ति-पर्व में एक अंग राजा का उल्लेख है जिसने विष्णु पर्वत (सम्भवतः गया में) पर यज्ञ किया था । सभापर्व[3] में कहा गया है कि अंग और बंग दो भू-भागों को मिलाकर एक राज्य स्थापित हुआ था । कथा-सरित्सागर[4] के अनुसार अंगराज्य का विटंकपुर नगर समुद्र-तट पर बसा था । अंगराज्य के वैभव-काल का चित्रण ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है ।[5] इस वर्णन में 'सामन्तम् सर्वतः पृथिवीं जयान्' के रूप में दिग्विजय का भी उल्लेख है । इस दिग्विजय करने वाले अंग राजा को विभिन्न देशों के उच्च घरानों से पुरस्कार या भेंट के रूप में बड़ी ही सुन्दर एवं रूपवती किशोरियाँ प्राप्त हुई थीं ।

अंग की सुप्रसिद्ध राजधानी चम्पा नगरी चम्पा[6] तथा गंगा[7] दो नदियों के संगम पर स्थित थी। कनिंघम के कथनानुसार आजकल भी भागलपुर के समीप चम्पानगर तथा चम्पापुर नाम के दो गाँव हैं, जो सम्भवतः प्राचीन अंगराज्य की राजधानी चम्पा नगरी के ही ध्वंसावशेष कहे जा सकते हैं। महाभारत, पुराणों तथा हरिवंश के अनुसार चम्पा का प्राचीन नाम मालिनी भी था ।[8]

चम्पस्य तु पुरी चम्पा
या मालिनी अभवत् पुरा ।

जातक कथाओं के अनुसार चम्पा नगरी का नाम 'काल चम्पा' भी था ।

---

१. No. 545.

२. 29,35, *JASB*, 1897, 94.

३. 44. 9; Cf. VI. 18.28, अंग और प्राच्य ।

४. 25. 35; 26. 115; 82. 3-16.

५. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 22.

६. जातक, 506.

७. महाभारत III, 84, 163; 307, 26 (गंगायाः सूतविषयम् चम्पामनु यायौ पुरीम्); Watters, *Yuan Chwang*, II, 181; दशकुमारचरित, II. 2.

८. मत्स्य, 48. 97; वायु, 99. 105-106; हरिवंश, 31.49; महाभारत XII. 5. 6-7; XIII. 42.16.

महाजनक जातक[1] के अनुसार चम्पा नगरी मिथिला से १८० मील दूर थी। इसी जातक में चम्पा नगरी के ; रों, घण्टाघरों तथा दीवालों का वर्णन मिलता है। गौतम बुद्ध की मृत्यु के समय तक चम्पा भारत की ६ प्रमुख नगरियों में से एक थी। चम्पा के अलावा राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा वाराणसी, ६ बड़े नगर थे।[2] चम्पा नगरी अपने धन-वैभव के साथ-साथ व्यापार-वाणिज्य के लिये भी प्रख्यात थी। यहाँ के व्यापारी अपने वाणिज्य-व्यवसाय के सिलसिले में सुवर्ण-भूमि[3] (गंगा के पार) की ओर भी जाते थे। दक्षिणी अन्नम तथा कोचीन-चीन की यात्रा करने वाले विस्थापित हिन्दुओं ने सम्भवतः इसी चम्पा नगरी के नाम पर अपनी बस्तियो का नामकरण किया था।[4] अंगराज्य के दूसरे प्रसिद्ध नगरों में अस्सपुर (अश्वपुर) तथा भद्दिय (भद्रिका)[5] विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गन्धारियों तथा मागधों के प्रसग में सर्वप्रथम मगध राज्य का उल्लेख अथर्ववेद[6] में मिलता है। रामायण में भी इस राज्य के उद्भव से सम्बन्धित एक कहानी है जो अर्थहीन-सी है। रामायण के अनुसार मदन या अनंग (कामदेव) ने एक बार शकर भगवान को अप्रसन्न कर दिया। फलस्वरूप कामदेव

१. No. 539.

२. महापरिनिब्बान सुत्त।

३. जातक, 539, Fausboll's Ed. VI, p. 34.

४. *Ind. Ant.*, VI. 229; Itsing, 58; Rhys Davids, *Buddhist India*, p. 35; Nundolal Dey, *Notes on Ancient Anga*; *JASB*, 1914; चम्पा में हिन्दुओं की बस्ती के लिए देखिए, Eliot, *Hinduism and Buddhism*, Vol. III, pp. 137 ff. and R. C. Majumdar, *Champa*; The oldest Sanskrit inscription (that of Vo-can) dates, according to some scholars, from about the third century A. D. इस शिलालेख में श्री मार राजवंश के एक राजा का उल्लेख है।

५. मलालसेकर, *DPPN*, 16; धम्मपद टीका, Harvard Oriental Series, 29.59. Cf. भद्दिय (भद्रिक या भद्रिका)। जैन लेखक के अनुसार सम्भवतः यह स्थान भागलपुर से ८ मील दूर का भदरिया स्थान ही है (*JASB*, 1914, 337)।

६. V. 22. 14.

शंकर जी की क्रोधाग्नि से बचने के लिये इसी क्षेत्र में भाग आये और यहीं अपना शरीर त्याग दिया । तभी से यह प्रदेश 'अंग' कहलाया ।[1] महाभारत व पुराणों के अनुसार अंग नामक राजा[2] ने इस राज्य की स्थापना की थी, इसीलिये इस प्रदेश का नाम अंगराज्य पड़ा । ऐतरेय ब्राह्मण[3] में यहाँ के राजाओं में अंग वैरोचन का नाम भी आया है । इस राजा का राज्याभिषेक आर्य-पद्धतियों से हुआ तथा उसे 'ऐन्द्र महाभिषेक' की संज्ञा दी गई । इस राज्याभिषेक पर बौद्धायन धर्म सूत्र में बड़ा आश्चर्य प्रकट किया गया है, क्योंकि धर्म सूत्र में अंगवासियों को वर्णसंकर जाति का माना गया है । महाभारत के अनुसार उक्त राजा को 'हाथियों को क़ाबू में कर लेने वाला' कहा गया । इसीलिये कदाचित् उसे म्लेच्छ-वंशीय या बर्बर जाति का कहा गया है । मत्स्य पुराण में उक्त अंग राजा के पिता को 'दानवर्षभः' अर्थात् 'दानवों में प्रधान' कहा गया है ।[4]

अंग के राजवंश के सम्बन्ध में भी हमें कुछ जानकारी प्राप्त है । महागोविन्द सुत्तन्त में अंग के[5] एक राजा का नाम 'धतरट्ठ' कहा गया है । बौद्ध-ग्रन्थों में 'गग्गरा' नाम की एक रानी का उल्लेख आया है जिसके नाम की एक झील भी चम्पा नगरी में थी । पुराणों[6] में अंगराज्य के शासकों

१. *JASB*, 1914, p. 317; रामायण, I. 23.14.

२. महाभारत, 1.104. 53-54; मत्स्य पुराण, 48.19.

३. VIII. 22; Cf. Pargiter, *JASB*, 1897, 97. अंगराज्य के दानों में अवचत्नुक नामक स्थान का उल्लेख आया है—

दशनागसहस्राणि दत्वात्रेयोऽवचत्नुके
श्रांतः पारिकुटान् प्रैप्सद् दानेनांगस्य ब्राह्मणः ।

'वैरोचन' शब्द से मत्स्य पुराण (p. 48,53) का 'वैरोचनी' शब्द याद आता है ।

४. बौद्धायन धर्म सूत्र, *I*. 1. 29; महाभारत VIII. 22. 18-19; मत्स्य पुराण 48. 60.; वायु पुराण में (62, 107-23) अंगों और निषादों का सम्बन्ध । पुराण में इस राजवंश को अत्रिवंश-समुत्पन्न कहा गया है । ऐतरेय ब्राह्मण में एक आत्रेय को राजा अङ्ग का पुरोहित कहा गया है । अंगवंश की उत्पत्ति के लिये देखिये—S. Levi, *Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde*, J. A. Juillet-septembre, 1923.

५ *Dialogues of the Buddha*, II. 270.

६. मत्स्य, 48. 91. 108; वायु, 99. 100-112.

की सूची मिलती है । जैन-परम्परा में भी अंग के राजा दधिवाहन का उल्लेख मिलता है। पुराणों तथा हरिवंश[1] के अनुसार राजा दधिवाहन राजा अंग का उत्तराधिकारी था। जैन-परम्परा के अनुसार इस राजा का काल छठवीं शताब्दी ईसापूर्व के आरम्भ में ही पड़ता है। इस राजा की कन्या राजकुमारी चन्दना या चन्द्रबाला पहली स्त्री थी, जिसने जैन-मत ग्रहण किया था।[2] इलाहाबाद के समीपस्थ कौशाम्बी राज्य के राजा शतानीक ने एक बार राजा दधिवाहन की राजधानी चम्पा पर आक्रमण किया और युद्ध के फलस्वरूप फैली अव्यवस्था के कारण राजकुमारी चन्दना डाकुओं के हाथ पड़ गई। किन्तु, फिर भी राजकुमारी ने पूर्णरूपेण अपने व्रत का पालन किया।

अंग तथा वत्स देशों के बीच मगध देश था। मगधवासी अपेक्षाकृत कमज़ोर पड़ते थे। इस राज्य तथा इसके सशक्त पड़ोसी के बीच[3] सदैव संघर्ष चलता रहता था। विधुर पंडित जातक[4] में मगध की राजधानी राजगृह को अंगराज्य का नगर कहा गया है जबकि महाभारत में अंग राजा द्वारा किये गये यज्ञ का स्थान गया कहा गया है। इन तथ्यों से लगता है कि अंग के शासक मगध को अपने राज्य में मिलाने में सफल रहे। फलस्वरूप इस राज्य की सीमा वत्स राज्य तक हो गई थी। सम्भवतः इसी खतरे के फलस्वरूप वत्स के शासक चम्पा नगरी पर आक्रमण किया करते थे। उभर रहे मगध राज्य से सशंक होकर अंग के राजा कौशाम्बी के राजा से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखना चाहते थे। श्री हर्ष के कथनानुसार अंग के राजा दृढ़वर्मन ने अपनी कन्या की शादी शतानीक[5] के पुत्र उदयन से करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करने में उनकी सहायता ली थी।

अंगराज्य की सफलता या उसका वैभव बहुत दिनों तक नहीं रह सका। कहा जाता है कि मगध के युवराज बिम्बिसार श्रेणिक ने छठवी शताब्दी ईसा-

---

१. 32. 43.

२. *JASB*, 1914, pp. 320-21. चन्दनबाला के लिए (*Indian Culture*, II, pp. 682 ff.) भी देखिए।

३. चम्पेय्य जातक।

४. Cowell, VI, 133.

५. प्रियदर्शिका, Act IV.

पूर्व के मध्य में अंगराज्य के अन्तिम राजा ब्रह्मदत्त को मारा डाला। बिम्बिसार श्रेणिक अंग की राजधानी चम्पा पर अधिकार करके वहाँ अपने पिता के प्रतिनिधि के रूप में रहने लगा[1] और इसी समय से अंगराज्य विस्तार-शील मगध राज्य का एक अभिन्न अंग बन गया।

मगध

प्राचीन मगध राज्य मोटे तौर से आजकल के दक्षिणी बिहार के पटना और गया जिलों तक था। मगध राज्य के उत्तर में गंगा और पश्चिम में सोन नदी बहती थी। दक्षिण में विन्ध्याचल की पहाड़ियाँ थीं तथा पूर्व में चम्पा नदी थी जो अगराज्य की राजधानी चम्पा के समीप गंगा से मिलती थी।[2] मगध की राजधानी गिरिव्रज (या राजगृह) थी जो गया की समीपवर्ती पहाड़ियों पर बसी थी[3]। महावग्ग में[4] इस नगर को 'गिरिब्बज' नगर कहा गया है ताकि वह केकय राज्य के गिरिव्रज नगर से भिन्न माना जाय। महाभारत में इस नगर को केवल गिरिव्रज ही नहीं वरन् राजगृह[5], बार्हद्रथपुर[6] तथा मगधपुर[7] भी कहा गया है। यह नगर पाँच पहाड़ियों वैहार, ग्रैण्ड राक (विपुल शैल),

---

१. Hardy, *A Manual of Buddhism*, p. 163 n (account based on the Tibetan *Dulva*), *JASB*, 1914, 321.

२. महाभारत, II. 20. 29; महापरिनिब्बान सुत्तन्त (*Dialogues* II. 94) और *DPPN*, I. 331 से पता चलता है कि वृजि देश की सीमा गंगा के उत्तरी तट उक्कावेला या उक्कचेला से आरम्भ होती है। यह स्थान वृजि देश में ही था। चम्पेय्य जातक (506); Fleet, *C* II, 227; *DPPN*, 403. महाभारत-काल में मगध की सीमा चम्पा नदी से आगे नहीं गई रही होगी क्योंकि मोदागिरि (या मुंगेर) दूसरे राज्य में पड़ता था।

३. मोटे तौर से *JASB*, 1872, 299. पंचन नदी के तट पर बसे गिर्यक को भी गिरिव्रज माना जाता रहा है। यह गया से ३६ मील उत्तर-पूर्व में तथा राजगिर से ६ मील पूर्व में है। (Pargiter in *JASB*, 1897,86) ।

४. *SBE*, XIII. 150.

५. महाभारत I. 113.27; 204. 17; II. 21. 34; III. 84. 104.

६. II. 24.44.

७. गोरथम् गिरिमासाद्य ददृशुर मागधम् पुरम्, II, 20.30; 21.13.

वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक[1] (रक्षन्तिवाभिसंहत्य संहतंगा गिरिव्रजम्) से घिरा हुआ था। यही कारण है कि किसी भी ओर से नगर पर आक्रमण नहीं हो सकता था। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में महाभारत में कहा गया है—पुरं दुराधर्षम् समन्ततः। रामायण में वासुमती[2] नाम से इस नगर का उल्लेख आया है। ह्वेनसांग ने अपने लेखों में इस नगर को कुशाग्रपुर[3] कहा है। बौद्ध-ग्रन्थों में इस नगर का सातवाँ नाम बिम्बसारपुरी[4] भी आया है।

ऋग्वेद में[5] कीकट नाम के भूभाग पर प्रमगन्द नाम के एक सामन्त के शासन का उल्लेख मिलता है। यास्क[6] के अनुसार कीकट भूभाग अनार्य प्रदेश था। बाद के ग्रन्थों में कीकट शब्द को मगध का ही पर्याय कहा गया है।[7]

यास्क की भाँति बृहद्धर्म पुराण के लेखक ने भी कीकट प्रदेश को अपवित्र देश कहा है तथा कुछ पवित्र स्थलों की ओर संकेत किया है—

कीकटे नाम देशेऽस्ति काक कर्णाल्यको नृपः
प्रजानां हितकृन्नित्यं ब्रह्म द्वेषकरस्तथा
तत्र देशे गयानाम पुण्य देशोऽस्ति विश्रुतः

---

१. पाली भाषा मे (*DPPN*, II, 721) में पांडव, गिज्भकूट, वेभार, इसीगिलि तथा वेपुल्ल (या वेंकक) के नाम मिलते है। पाली-सामग्री से लगता है कि महाभारत में आया 'विपुल' शब्द नाम है, उपाधि नहीं। डॉक्टर जे० वेंगर के अनुसार चैत्यकापंचकः (पाँच चैत्यक) शब्द चैत्यका पंचम् के लिए आया है। विशेष विवरण के लिए देखिए, *IHQ*, 1939, 163-64 (Keith)।

२. I. 32.8.

३. P. 113, Apparently named after an early Magadhan prince (वायु 99. 224; *AIHT*, 149),

४. Law, बुद्धघोष, 87 n.

५. III. 53.14.

६. निरुक्त, VI. 32.

७. **कीकटेषु गया पुण्य पुण्यम् राजगृहम् वनम्**
च्यावनस्याश्रमम् पुण्यम् नदी पुण्य पुनः पुना।

Cf. वायु, 108. 73, 105. 23; भागवत पुराण, 1, 3. 24—बुद्धो नाम्नांजन सुतः कीकटेषु भविष्यन्ति 'कीकटा मगधाह्वयाः'; कीकट के सम्बन्ध में *EP. Ind.*, II. 222 भी देखिए जहाँ इस नाम का एक राजकुमार मौर्यवंश में कहा गया है। कीकटेयक (*Monuments of Sanchi*, I. 302) भी देखिए।

नदी च कर्णदा नाम् पितॄणां स्वर्गदायिनी[1]
कीकटे च मृतोऽप्येव पापभूमौ न संशयः ।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि कीकट प्रदेश में गया जिला भी सम्मिलित था। इस प्रदेश को निश्चित रूप से पापभूमि तथा अनार्य प्रदेश माना जाता था। प्रथम पंक्ति में आया 'काक-कर्ण' शब्द शैशुनाग-वंश के काक-वर्ण के लिये ही प्रयुक्त हुआ होगा ।

मगध शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम अथर्ववेद[3] में आया है । मगध की गाथाओं या कहानियों की प्राचीनता के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये उतनी ही पुरानी हैं जितना कि यजुर्वेद ।[4] वैदिक साहित्य में इनकी बड़ी उपेक्षा की गई है । अथर्व-संहिता[5] के व्रात्य भाग में ब्राह्मण-सीमा से बाहर रहने वाले भारतीय को पुंश्चली (वेश्या) व मगध से सम्बन्धित कहा गया है । पूर्वी क्षेत्र वाले (प्राच्यांदिशि) के धर्म को वेश्या-धर्म कहा गया है तथा उसे मगध का मित्र माना गया है ।[6] श्रौत सूत्र में मगध में रहने वाले ब्राह्मणों को 'ब्रह्मबन्धु मागधदेशीय'[7] कहा गया है । मगध के ब्राह्मणों को ब्रह्मबन्धु[8] कहकर उनकी अवमानना की गयी है । इसके विपरीत शांखायन आरण्यक में मगधवासी ब्राह्मण का उल्लेख सम्मान के साथ किया गया है। इतिहासकार ओल्डेनबर्ग[9] के अनुसार वेदों में मगध के

---

१. मध्य खण्डम्, XXVI. 22, 22.

२. XXVI. 47; cf. वायु पुराण, p. 78. 22. पद्म पातालखण्ड, XI. 45.

३. V. 22. 14.

४. वाजसनेयी संहिता XXX. 5; *Vedic Index*, II. 116. मागधों और मगध के सम्बन्ध के लिए वायु पुराण, 62. 147 भी देखिए ।

५. XV. ii, 5—श्रद्धापुंश्चली मित्रोमागधो...etc; Griffith, II, 186.

५. Cf. Weber, *History of Indian Literature*, p. 112.

६. *Vedic Index*, II. 116.

७. 'राजानः क्षत्रबन्धवः' शब्द पुराणों में मागधों के लिए आया है (Pargiter, *Dynasties of the Kali ge*, p. 22) ।

८. *Buddha*, 400n.

९. *JASB*, 1897, 111; *JRAS*, 1908, pp. 851-53; *Bodh. Dh. Sutra*, I. i, 29. अंगों और मागधों को 'संकीर्ण-योनयः, कहा गया है, अर्थात् of mixed origin.

ब्राह्मणों को इसलिये निम्न कोटि का कहा गया है कि उनके संस्कार ब्राह्मण-विधियों से सम्पन्न नहीं हुए थे। पार्जिटर[1] के कथनानुसार मगध के आर्य लोग पूरब से आये आक्रमणकारियों में बिलकुल घुलमिल गये थे।

वैदिक साहित्य में प्रमगन्द के अलावा मगध के किसी भी अन्य राजा का उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत[2] के अनुसार जरासन्ध के पिता तथा वसु चैद्य उपरिचर के पुत्र बृहद्रथ ने मगध के आदिवंश की स्थापना की थी। रामायण[3] में मगध की राजधानी वसुमती को वसु द्वारा ही बसाया कहा गया है। यद्यपि ऋग्वेद[4] में एक बृहद्रथ का उल्लेख दो बार आया है किन्तु कोई ऐसा अन्य तथ्य नहीं मिलता, जिससे उन्हे जरासन्ध का पिता माना जा सके। पुराणों में बृहद्रथ-वंश के राजाओ की सूची दी गई है जो जरासन्ध के पुत्र सहदेव से आरम्भ की गई है। इस सूची में अन्तिम नाम रिपुञ्जय का है। सहदेव के बाद सातवाँ नाम राजा सेनाजित का है, जो परीक्षित-वंश के अधिसीमा कृष्ण तथा इक्ष्वाकु-वंश के दिवाकर के समकालीन थे। उपर्युक्त विवरण के बावजूद चूँकि हमारे पास बाहरी प्रमाणों का अभाव है इसलिये पुराणों में दिये गये तथ्यों को विश्वसनीय तथा प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। कहते हैं जिस समय पुलिक (या पुणिक) ने अपने पुत्र प्रद्योत को अवन्ती[5] (उज्जैन राज्य) के सिंहासन पर बिठाया उस समय

---

१. I. 63.30. २. I 32. 7. ३. I. 36. 18; X. 49.6.

४. Cf. सुप्र, pp. 809, 104. में विदेह तथा कोशल राजाओं की चर्चा भी आती है। भावी बृहद्रथ की संख्या १६, २२ या ३२ दी गई है और उनका शासन-काल ७२३ या १००० वर्ष दिया गया है (*DKA*, 17.68)। अन्तिम राजा का नाम रिपुञ्जय या अरिञ्जय था जिससे पाली भाषा के अरिन्दम की याद आती है (*DPPN*, II. 402)।

५. *Dynasties of Kali Age*, p. 18 : Cf. *IHQ*, 1930, p. 683. कथा-सरित्सागर तथा पुराणों के रूपान्तरित या अशुद्ध अनुच्छेदों की इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता (*IHQ*, 1930, pp. 679.691) कि मगध के प्रद्योत और अवन्ती के महासेन अलग-अलग थे क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा बौद्ध-लेखकों ने महासेन को भी प्रद्योत ही कहा है। पुराणों में 'अवन्तीषु' शब्द आया है (*DKA*, 18)। इसमें पुलिक द्वारा वंश-सम्बन्धी क्रान्ति की भी चर्चा है। पुराणों के प्रद्योत तथा अवन्ती के महासेन की समानता तथा प्रद्योतों के साथ 'प्रनत सामन्त' का विशेषण तथा 'नयवर्जित' शब्द के उपयोग से चण्ड प्रद्योत महासेन (अवन्ती) के बारे में संदेह की गुंजाइश नहीं रहती। बौद्ध ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। इन सबसे सिद्ध है कि पुराणों के प्रद्योत और अवन्ती के प्रद्योत में कोई अन्तर नहीं था।

बृहद्रथ-वंश तथा मध्य भारत के कुछ अन्य शासक समाप्त हो चुके थे। प्रद्योत गौतम बुद्ध के समकालीन थे। पुराणों में कहा गया है—'बृहद्रथेष्वती-तेषु वीतिहोत्रेषु अवन्तिषु।' इससे इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि छठवीं शताब्दी ईसापूर्व के अन्त तक बृहद्रथ-वंश का अन्त हो चुका था।

जैन-ग्रन्थों में राजगृह के दो शासकों—समुद्रविजय तथा उसके पुत्र गया[1] का उल्लेख मिलता है। कहते हैं राजा गया पूर्णत्व को प्राप्त हो चुका था किन्तु यह कथन सर्वथा अप्रामाणिक है।

पुराणों में मगध के एक दूसरे राजवंश की भी चर्चा आई है जिसे 'शैशुनाग' कहा गया है। इस वंश की स्थापना शिशुनाग ने की थी। गौतम बुद्ध के समकालीन बिम्बिसार इसी वंश के थे। अश्वघोष[2] ने अपने बुद्धचरित[3] में बिम्बिसार को शैशुनाग-वंश का नहीं, वरन् हर्यंक-कुल का कहा है। महावंश में 'शैशुनाग' वंश के संस्थापक शिशुनाग को 'सुसुनाग' कहा गया है। स्वयं पुराणों में कहा गया है कि प्रद्योत-कालीन वैभव शिशुनाग को प्राप्त होगा। कुछ सूत्रों के अनुसार प्रद्योत भी बिम्बिसार के समकालीन कहे जाते हैं—

अष्ट त्रिंशच्छतम् भव्याः
प्रद्योताः पंच ते सुताः
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नां
शिशुनागो भविष्यति।[4]

यदि उपर्युक्त कथन सत्य है तो शिशुनाग प्रद्योत-प्रथम के बाद हुए थे। पाली ग्रन्थों में प्रद्योत-प्रथम का नाम चण्ड प्रद्योत महासेन लिखा गया है तथा संस्कृत भाषा के कवियों एवं नाटककारों[5] ने इन्हें बिम्बिसार तथा उनके पुत्र

---

१. *SBE*, XLV. 86. महाभारत (VII. 64) में गया नाम के एक राजा का उल्लेख आया है किन्तु उसे अमूर्तरयस का पुत्र भी कहा गया है।

२. अश्वघोष कनिष्क के समकालीन था (C. 100 A. D.)। Winternitz, *Ind. Lit.*, II. 257)। इसके विपरीत पुराणों में गंगा की घाटी में भी गुप्त राज्य के होने की बात कही गई है।

३. XI. 2; रायचौधरी के *IHQ*, I (1925), p. 87.

४. वायु पुराण, 99; 314.

५. *Indian Culture*, VI. 411.

का समकालीन कहा है। इससे पता चलता है कि शिशुनाग उक्त राजाओं के बाद हुए थे। किन्तु, पुराणों में शिशुनाग को बिम्बिसार का पूर्वज माना गया है तथा उन्हें बिम्बिसार के वंश का संस्थापक कहा गया है। पुराणों में यह तथ्य बाह्य प्रमाणों[1] से प्रमाणित नहीं किया गया है। वाराणसी तथा वैशाली के शिशुनाग के राज्य में[2] मिलाये जाने के उल्लेख से सिद्ध होता है कि शिशुनाग बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के बाद हुए थे। सर्वप्रथम इन्हीं शासकों ने मगध-शासन की नींव डाली थी। मालालंकारवत्थु नामक पाली ग्रन्थ से पता चलता है कि राजा शिशुनाग वैशाली में रहते थे और वही बाद में उनके राज्य की राजधानी बन गई।[3] अपनी माता के जन्म की कथा से पूर्ण परिचित[4] राजा शिशुनाग ने वैशाली को अपनी राजधानी बनाया। राजगृह नगरी राजधानी होने के सम्मान से वंचित हो गई और बाद में भी पुनः यह सम्मान उसे प्राप्त न हो साक। उक्त कथन से यह भी संकेत मिलता है कि राजगृह के विजय-काल के बाद शिशुनाग का उद्भव हुआ। बिम्बिसार तथा अजातशत्रु का समय राजगृह का विजय-काल माना जाता है। पुराणों में वैशाली नहीं, वरन् गिरिव्रज (वाराणस्यां सुतम् स्थाप्य श्रविष्यति गिरिव्रजम्) को शिशुनाग की राजधानी कहा गया है। इसके अतिरिक्त अजातशत्रु के पुत्र उदयिन द्वारा राजधानी बदलने तथा पाटलिपुत्र को राजधानी बनाने का उल्लेख मिलता है। इससे लगता है कि शिशुनाग उक्त राजा के पूर्व हुए थे। किन्तु, शिशुनाग के पुत्र तथा उत्तराधिकारी कालाशोक ने पाटलिपुत्र में राज्य किया था। इससे स्पष्ट है कि ये लोग पाटलिपुत्र के संस्थापक उदयिन के बाद हुए थे। किन्तु, बाद में पुनः राजधानी के

१. हम यदि और थोड़ा आगे बढ़ें तो पुराणों के कथनों को स्वयं में ही विरोधी पायेंगे। इस प्रकार (क) प्रद्योत का तब राज्याभिषेक हुआ जबकि वीतिहोत्र का अन्त हो चुका था। (ख) शिशुनाग ने प्रद्योतों का मान-मर्दन करके उनसे राज्य छीन लिया था। (ग) इन शिशुनाग राजाओं के समय में ही २० वीतिहोत्र राजा भी हुए थे—एते सर्वे भवष्यन्ति, एककालम् महीक्षितः (*DKA*, 24)।

२. *Dynasties of Kali Age*, 21; *SBE*, XI. p. xvi.

३. यदि द्वात्रिंशत्-पुत्तलिका पर विश्वास किया जाय तो वैशाली में नन्द के समय तक कोई न कोई राजा हुआ करता था।

४. महावंशतिका के अनुसार (Turnour, *Mahawansha*, xxxvii) शिशुनाग वैशाली के लिच्छवि राजा का पुत्र था। वह एक नगरशोभिनी का पुत्र था तथा एक सरकारी अधिकारी ने उसका पालन-पोषण किया।

स्थानान्तरण[1] से लगता है कि कालाशोक के पूर्वज पुरानी राजधानी को अपना एक शरण-स्थल फिर भी बनाये हुए थे। 'अयिष्यति गिरिव्रजम्' उक्ति से यह नहीं सिद्ध होता कि गिरिव्रज शिशुनाग के समय तक राजधानी का नगर सदैव ही बना रहा।

अश्वघोष के अनुसार बिम्बिसार जिस हर्यंक-कुल के थे उस वंश की उत्पत्ति अभी तक बिल्कुल अनिश्चित-सी ही है। हरिवंश[2] तथा अन्य पुराणों में कहा गया है कि चम्पा में भी एक हर्यंक-वंश था। किन्तु, हर्यंक-वंश तथा चम्पा के हर्यंक-वंश को एक समझने या एक-दूसरे से सम्बन्धित समझने के हमारे पास तर्कयुक्त कारण नहीं हैं। 'हर्यंक-कुल' (मन्दसोर शिलालेख में लिखे गये 'औलिकर लांछन आत्म वंश-के अनुसार) तो केवल एक वंश विशेष का उपनाम या विशेषण कहा जा सकता है।[3] बिम्बिसार इस वंश का संस्थापक नहीं था। महावंश में कहा गया है कि जिस समय बिम्बिसार को उसके पिता ने सिंहासन सौंपा, उसकी आयु केवल १५ वर्ष की थी।[4] अंगराज्य ने बिम्बिसार के पिता को[5] परास्त किया था। बिम्बिसार ने इसका बदला लिया और यह प्रतिकार-संघर्ष तब तक चलता रहा जब तक कि अशोक ने कलिंग को जीतकर अपनी तलवार नही रख दी।

---

१. *SBE*, XI, p. xvi.

२. 31,49; वायु पुराण, 99, 108; J. C. Ghosh in *ABORI*, 1938 (xix) pp. i. 82.

३. हरि को पीला, घोड़ा, शेर तथा साँप का ज्ञान था।

४. Geiger's translation, p. 12. डॉक्टर भण्डारकर के मतानुसार बिम्बिसार अपने वंश का संस्थापक था। उसने अपनी वीरता से वज्जि लोगों को हराकर अपने राज्य की स्थापना की थी।

५. Turnour, N. L. Dey तथा अन्य लोगों ने भाटिय या भट्टिय को पिता माना है। तिब्बत के लोग उसे महापद्म कहते हैं। Turnour, महावंश I. p. 10; *JASB*, 1872, i 298; 1914, 321; गुनाढ्य पर निबन्ध, p. 173; पुराणों में हेमजित, क्षेमजित, क्षेत्रोजा या क्षत्रौजा को बिम्बिसार का पिता माना गया है। यदि पुराणों की उक्ति सही है तो भाटिय या भट्टिय शब्द सेनीय या श्रेणीय का जो क्रमशः बिम्बिसार तथा अजातशत्रु से सम्बन्धित थे, दूसरा नाम या उपाधि थी। किन्तु, अपर्याप्त प्रमाणों के कारण पुराणों की उक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता और खास कर तब, जबकि उपर्युक्त नामों में एक-रूपता भी न हो।

वज्जि या वृजि प्रदेश गंगा के उत्तर नेपाल की पहाड़ियों तक फैला हुआ था। पश्चिमी सीमा पर सम्भवतः गण्डक नदी प्रवाहित होती थी जो वज्जि प्रदेश को मल्ल राज्य या कोशल से अलग करती थी। पूर्व में कोसी नदी तथा महानन्द तक सीमा का विस्तार था। इस गणतन्त्र में आठ छोटे-छोटे राजवंश शामिल थे जिनमें विदेह, लिच्छवि, ज्ञात्रिक तथा वृज्जि प्रमुख हैं। शेष राजवंशों का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि उग्र, भोग, ऐक्ष्वाक तथा कौरव वंश ज्ञात्रिक तथा लिच्छवि वंशों से सम्बद्ध थे और एक ही गुट के सदस्य थे।[1] अंगुत्तर निकाय[2] में भी वृज्जि गणतन्त्र की राजधानी वैशाली तथा उग्रवंश को एक दूसरे से सम्बन्धित कहा गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्राचीन विदेह की राजधानी मिथिला थी, जो आजकल नेपाल की सीमा में जनकपुर नामक क़स्बे के रूप में है। रामायण में वैशाली[3] तथा मिथिला के बीच भिन्नता रखी गई है, किन्तु बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में उक्त भिन्नता का ध्यान न देकर विदेह शब्द का विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया गया है।[4]

लिच्छवि-वंश की राजधानी वैशाली थी, जो आजकल बिहार के मुजफ़्फ़रपुर जिले में गंडक नदी के तट पर बेसढ़ के नाम से विद्यमान है। रामायण में सम्भवतः इसी वैशाली को 'विशाल' नगर कहा गया है।[5]

विशालम् नगरीं रम्यां दिव्यां स्वर्गोपमाम् तव्।

एकपण्ण जातक[6] के आरम्भ मे कहा गया है कि वैशाली नगरी तीन दीवालों से घिरी थी तथा एक दीवाल दूसरी से तीन मील की दूरी पर थी। वहाँ तीन बड़े-बड़े राजद्वार तथा तीन घंटाघर भी थे। लिच्छवि राज्य को सीमा सम्भवतः नेपाल तक थी और सातवी शताब्दी ईसापूर्व तक यथावत् बनी रही।

---

१. *SBE*, XLV. 339. Cf; Hoernle, उवासगदसाव, II. p. 138; fn. 304.

२. I. 26; III. 49; IV. 208.

३. रामायण I. 47-48.

४. आचारांग सूत्र (II. 15, §. 17, *SBE*, XXII. Intro.)। उदाहरणार्थ, कुण्डग्राम के सन्निवेश को विदेह में वैशाली के निकट का माना गया है। महावीर तथा अजातशत्रु की माताओं को विदेहदत्ता, वेदेही (वैदेही) कहा जाता था।

५. रामायण, आदिपर्व, 45.10

६. No. 149.

ज्ञात्रिक-वंश के लोग सिद्धार्थ तथा महावीर के वंशज थे। ये लोग वैशाली के उपनगर कोल्लाग या कुण्डग्राम (या कुण्डपुर) में रहते थे। महापरिनिब्बान सुत्तन्त[1] में कोटिगाम (कुण्डग्राम ?) में नादिकों (या ज्ञात्रिकों)[2] के निवास का उल्लेख है। इन उपनगरों में रहने वाले महावीर तथा उनके वंशजों को 'वेशालि' अर्थात् 'वैशाली के रहने वाले' कहा जाता था।[3]

पाणिनि ने भी वृज्जि की चर्चा की है। कौटिल्य[4] ने भी वृज्जि को लिच्छवि से भिन्न माना है। युवान च्वांग[5] ने भी वृज्जि तथा वैशाली को भिन्न-भिन्न माना है। वृज्जि केवल समूचे गणतन्त्र का ही नाम नहीं था, वरन् गणतन्त्र में सम्मिलित एक वंश भी वृज्जि कहा जाता था। किन्तु, लिच्छवि-वंश की तरह वृज्जि-वंश के लोग भी वैशाली से सम्बद्ध थे। वैशाली केवल लिच्छवि-वंश की ही नहीं वरन् समूचे वृज्जि गणतन्त्र की राजधानी थी।[6] इतिहासकार राकहिल[7] के कथनानुसार उक्त नगर के अन्तर्गत तीन जिले आते थे। तीनों जिलों में तीन भिन्न-भिन्न राजवंशों की राजधानियाँ थीं। गणतन्त्र के शेष वंश जैसे उग्र, भोग, कौरव तथा ऐक्ष्वाक उपनगरों तथा गाँवों में रहते थे। उदाहरणार्थ, हत्थिगाम या भोगनगर आदि भिन्न-भिन्न वंशों के रहने के स्थान थे।[8]

---

१. Ch. 2. २. *SBE*, XXII. Intro. ३. Hoernle, उवासगदसाव, II. p. 4 n. ४. अर्थशास्त्र, मैसूर संस्करण, 1919, p. 378.

५. Watters, II. 81. Cf. also *DPPN*, II 814; *Gradual Sayings*, III 62; IV. 10. स्मिथ के अनुसार (Watters, II. 340) वृजि देश दरभंगा जिले के उत्तरी तथा नेपाल की तराई के समीपवर्ती भू-भाग को कहते थे।

६. Cf. मज्झिम निकाय, II, 101. *The Book of Kindred Sayings*, I. (संयुक्त निकाय) द्वारा श्रीमती Rhys Davids, p. 257. वज्जि-वंश का कोई भाई कभी वैशाली के निकटवर्ती जंगलों में भी निवास करता था।

७. *Life of Buddha*, p. 62.

८. उग्रों और भोगों के लिये Hoernle का उवासगदसाव देखिये। (II. p. 139., § 210); बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 8, 2; *SBE*, XLV, 71 n.; अंगुत्तर निकाय में I. 26. (निपात I. 14.6); उग्रों का सम्बन्ध वैशाली से भी था (उग्गो गहपति वैशालिको) तथा IV. 212 में हत्थिगाम के साथ। धम्मपद टीका में उग्ग नाम के एक नगर का उल्लेख आया है। Harvard Oriental Series, Vol. 30, 184. Hoernle ने (उवासगदसाव, II, App. III, 57) भोगनगर नाम के एक शहर की चर्चा की है। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बुगाम, जम्बुगाम तथा भोगनगर को वैशाली से पावा के रास्ते में बताया गया है (*Digha*, II. 122-26. Cf. also सुत्त निपात 194) वज्जि-वंश के साथ कौरवों के एक दल का सम्बन्ध भी दिलचस्प है। कुरु ब्राह्मण, जैसे उषस्ति चाक्रायण ने बौद्ध धर्म के उदय के बहुत पहले ही विदेह को राजधानी बनाना आरम्भ कर दिया था। वैशाली के इक्ष्वाकों के लिए रामायण I. 47. 11. भी देखिये।

हम देख चुके हैं कि ब्राह्मण-काल में विदेह (मिथिला) का संविधान राजतान्त्रिक था। रामायण[1] तथा पुराणों[2] के अनुसार 'विशाल' राज्य में भी पहले राजतान्त्रिक शासन था। रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने वैशालिक-वंश की स्थापना की थी। पुराणों के अनुसार विशाल इक्ष्वाकु के भाई नभाग के वंशज थे। राजा विशाल ने अपने ही नाम पर अपनी राजधानी का नाम रखा। विशाल के बाद हेमचन्द्र, सुचन्द्र, धूम्राश्व, शृञ्जय, सहदेव, कुशाश्व, सोमदत्त, काकुत्स्थ तथा सुमति इस वंश के मुख्य शासक थे। हम यह नहीं जानते कि इनमें से कितने राजाओं ने उत्तरी बिहार के इस राज्य पर शासन किया और इतिहास उन्हें मान्यता प्रदान करता है। शतपथ ब्राह्मण[3] में सहदेव सारंजय नामक एक राजा का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण में[4] उक्त राजा को सोमक सहदेव्य कहा गया है। वैदिक साहित्य में इनमें से किसी भी राजा को वैशाली से सम्बद्ध नहीं कहा गया है। महाभारत में एक शृञ्जय का उल्लेख आया है। कहा गया है कि उन्होंने गण्डक नहीं, वरन् जमुना[5] के तट पर यज्ञ किया था। सूत्रकृतांग में भी कहा गया है कि इच्छ्वाकु जैसे वंश के लोग भी वृज्जि गणतन्त्र में सम्मिलित थे।

वृज्जि गणतन्त्र का गठन निश्चित रूप से विदेह के राजवंश के पतन के बाद हुआ होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत की राजनीतिक कायापलट यूनान के राजनीतिक घटना-क्रम के समकक्ष चलती है। यूनान के वीरकाल में भी राजतन्त्र के बाद गणतन्त्रों का युग आया था। इतिहासकार बेरी ने यूनान की राजनीतिक उथल-पुथल का कारण बताते हुए लिखा है कि "कुछ स्थानों पर तो कुशासन के फलस्वरूप राजाओं को बलपूर्वक गद्दी से उतार दिया गया। कहीं-कहीं बालकों (नाबालिग़ों) के हाथ में या नीच वंश के लोगों के हाथ में राजसत्ता के आने पर राज्य के अमीरों ने राजतंत्र को उखाड़ फेंका। कहीं-कहीं राजाओं के अधिकार बिल्कुल सीमित कर दिये गए और वे नाम मात्र को राजा रह गये। वे केवल मुक़दमे तय करते थे, वास्तविक शासन-सत्ता किसी अन्य के हाथ में रहती थी। यूनान के केवल

१. I. 47. 11. 17.

२. वायु, 87. 16-22; विष्णु, IV. 1.18.

३. II. 4.4. 3-4.

४. VII, 34. 9.

५. महाभारत, III. 90.7. टीकासहित।

स्पार्टा नामक राज्य में बहुत सीमित राजतन्त्र बाद तक बना रहा। एथेन्स के आर्कन बेसीलियस में स्पार्टा का राजतन्त्र केवल न्यायालय के रूप में रह गया था।

मिथिला में राजतंत्र के बाद गणतन्त्र कैसे आया, इस सम्बन्ध में चर्चा पहले ही की जा चुकी है। 'विशाला' राज्य में यह परिवर्तन कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते।

कुछ विद्वानों के अनुसार वृज्जि गणतन्त्र[१] में सम्मिलित लिच्छवि-वंश के लोग विदेशी थे। डॉ० स्मिथ के अनुसार उनकी उत्पत्ति तिब्बत से सम्बद्ध की गई है। इतिहासकार डॉक्टर स्मिथ ने उपर्युक्त निष्कर्ष लिच्छवियों की न्याय-प्रणाली के आधार पर निकाला है। इसके अतिरिक्त लिच्छवि-वंश के लोग शव का अन्तिम संस्कार उसे जंगली जानवरों[२] के सामने फेंककर करते हैं। पंडित एस० सी० विद्याभूषण के अनुसार लिच्छवि नाम (मनु का निच्छिवि) की उत्पत्ति फ़ारस के निसिबिस नगर[३] से हुई है। इसके विपरीत उपर्युक्त कथन

१. *DPPN*, II. 814.

२. *Ind. Ant.*, 1903, p. 233 ff. तिब्बत के सम्बन्ध में तीन अदालतों की चर्चा है। इसके अलावा लिच्छवियों की भी सात अदालतें (tribunals) थीं, जैसे विनिच्छाया महामत्त (inquiring magistrates), विहारिक (jurist judges), सुत्तधार (masters of sacred code), अट्ठकुलक (the eihht clans, possibly a federal courts), सेनापति (general), उपराज (vice-roy vice-consul) तथा राजा (the ruling chief) जो पवेणी-पोत्थ (Book of Precedents) के आधार पर निर्णय करता था। इसके अलावा हम, जैसा कि यस० सी० दास ने भी स्पष्ट किया है, तिब्बत के इतिहास के बारे में और नहीं जानते। अट्ठकथा में ऐसा ही संकेत मिलता है। तिब्बत और वज्जि रीति-रिवाजों की तुलना में हमें इसका ध्यान रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में सिन्धु-वासियों के रिवाजों पर भी ध्यान देना आवश्यक है (Vats, *Excavations of Harappa*, I. Ch. VI. तथा महाभारत IV. 5. 28-33)।

३. *Ind. Ant.*, 1902, 143, ff; 1908, p. 73. विद्याभूषण में निच्छिवि तथा निसिबिस नामों में समानता का उल्लेख है। Achaemenids के शिलालेखों में पूर्वी भारत में पाँचवीं या छठीं शताब्दी में Persian Settlement का कोई उल्लेख नहीं है। लिच्छिवि लोग ईरानी देवी-देवताओं की अपेक्षा महावीर तथा बुद्ध के उपदेशों में अधिक आस्था रखते थे।

की अप्रामाणिकता की ओर अनेक विद्वानों ने संकेत किया है।[1] प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार लिच्छवि-वश के लोग क्षत्रिय-वंश के थे। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में लिखा है —"जब वैशाली के लिच्छवियों ने सुना कि महाप्रभु का कुशीनर में देहावसान हो गया तो उन्होंने मल्ल राज्य को संदेश भेजा कि चूँकि महाप्रभु क्षत्रिय थे और हम लोग भी क्षत्रिय हैं, इसलिये उनका कुछ अस्थि-अवशेष हमें भी मिलना चाहिए।" जैन-ग्रन्थ कल्पसूत्र में वैशाली के चेटक की बहन त्रिशाला को क्षत्रिय कहा गया है।[2]

मनु ने भी कहा है कि लिच्छवि लोग राजन्यस या क्षत्रिय-वंश के थे[3]—

झलो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान निच्छिविरेव
च नटश्च करणश्चैव खसो द्राविड़ एव च।

यह कहा जा सकता है कि चाहे लिच्छवि लोग विदेशी या अनार्य ही क्यों न रहे हों, किन्तु वे ब्राह्मण-क्षेत्र में आकर क्षत्रिय मान लिये गये जैसा कि मनु के उक्त श्लोक के अनुसार मध्यकाल में द्रविड़, गूजर तथा प्रतिहार को माना गया था। लिच्छवि-वंश के लोग हिन्दू धर्म की रूढ़ियों के उतने समर्थक नहीं थे जितने कि प्रतिहार तथा द्रविड़। इसके विपरीत वे जैन तथा बुद्ध धर्म जैसे ब्राह्मणेत्तर मतो की ओर अधिक आकृष्ट थे। मनु ने लिच्छवियों को व्रात्य राजन्यस का पुत्र कहा है। मध्यकाल के राजपूत-परिवारो के बारे में कभी ऐसी बात नही कही गई। इसके विपरीत उन्हें राम, लक्ष्मण, यदु तथा अर्जुन आदि का वंशज माना जाने लगा। भारत में प्रविष्ट पर, ब्राह्मण-धर्म तथा ब्राह्मण-विधियों को स्वीकार न करने वाले विदेशी, क्षत्रियों की कोटि में नहीं रखे जा सकते थे। अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि लिच्छवि लोग भी क्षत्रिय थे, किन्तु ब्राह्मण-विधियों की अवहेलना करने के फलस्वरूप उन्हें व्रात्य कहकर निम्न कोटि का मान लिया गया। रामायण में, जैसा कि हम देख चुके हैं, वैशालिका के शासकों को इक्ष्वाकु-वंश का कहा गया है। पाली की टीका प्रमत्थजोतिका[4] में इनकी उत्पत्ति वाराणसी से मानी

---

१. *Modern Review*, 1919, p. 50; Law, *Some Kshatriya Tribes*, 26 ff.

२. *SBE*, XXII, pp. xii. 227.

३. X. 22.

४. Vol. I, pp. 158-65.

गई है । यद्यपि लिच्छवियों की 'तावतिंस' देवों से तुलना की गई है किन्तु इससे यह नहीं सिद्ध होता कि ये लोग चिपटी नाक वाले तिब्बतियों के वंश से सम्बन्धित थे।[1]

लिच्छवि-वंश की स्थापना का काल कुछ निश्चित नहीं हो सका है, किन्तु इतना निश्चित है कि छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में महावीर तथा गौतम के समय में यह वंश पूर्णरूपेण जम चुका था। इसके बाद अगली शताब्दी लिच्छवियों के पराभव की शताब्दी रही।

बौद्ध-ग्रन्थों में प्रख्यात लिच्छवि-राजाओं—अभय, ओट्ठद्ध (महालि), सेनापति सीह एवं अजित—के नाम मिलते हैं। इन ग्रन्थों में दुम्मुख और सुनक्खत्त[2] का भी नाम मिलता है। एकपण्ण[3] तथा चुल्ल कालिंग[4] जातक के आरम्भ के अध्यायों में ही कहा गया है कि लिच्छवि-राजवंश की कुल संख्या ७ हज़ार ७०७ थी।[5] इनके अतिरिक्त इनके सेनापतियों, प्रतिनिधियों तथा कोषाध्यक्षों की भी संख्या इतनी ही थी। इन संख्याओं पर ही अधिक बल न देना चाहिये क्योंकि यह तो इस बात का एक संकेत मात्र है कि लिच्छवि-वंश में शासकों की संख्या काफ़ी थी।[6] प्रशासन का उत्तरदायित्व तथा विशेष रूप से विदेश-नीति का

---

१. *SBE*, XI, p. 32; *DPPN*, II, 779.

२. अंगुत्तर निकाय, निपात III, 74 (P.T.S., Part I, p. 220 f); महालि सुत्त, *Dialogues of the Buddha*, Part I, p. 198, Part III, p. 17; महावग्ग, *SBE*, XVII, p. 108; मज्झिम निकाय, I. 234, 68; II, 252; *The Book of the Kindred Sayings*, I, 245. लिच्छवियों के बारे में और जानकारी के लिये देखिये, Law, *Some Kshatriya Tribes of Ancient India*.

३. 149.

४. 301.

५. एक अन्य Tradition में यह संख्या ६८००० दी गयी है (*DPPN*, II. 781 n)। धम्मपद की टीका (Harvard Oriental Series, 30, 168) से हमें पता चलता है कि ये राजा लोग बारी-बारी से शासन करते थे।

६. *Cf.* वज्जि महल्लकों का उल्लेख दीघ निकाय (II, 74) तथा अंगुत्तर निकाय, (IV, 19) में भी मिलता है।

दायित्व तो राज्य के ६ गणराजाओं की एक विशेष समिति पर था। जैन-कल्पसूत्र[१] के अनुसार उपर्युक्त ६ लिच्छवि-शासकों, मल्ल के ६ मल्लकों तथा काशी व कोशल के १८ वंशाधिपतियों ने एक आपसी संगठन बना रखा था। निरयावली सूत्र से पता चलता है कि किसी समय उक्त राज्यों के संगठन का नेतृत्व चेटक नामक राजा ने किया था। इसी चेटक की बहन त्रिशाला या विदेहदत्ता महावीर की माँ थी। इसकी कन्या का नाम चेल्लना या वैदेही था, जो कूणिक-अजातशत्रु की माँ थी।

लिच्छवि, मल्ल, काशी तथा कोशल का उपर्युक्त संगठन मगध राज्य का विरोधी था। ऐसा कहा जाता है कि बिम्बिसार के समय में भी वैशाली के शासक इतने ढीठ थे कि वे गंगा के पार[२] वाले अपने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण करने की धृष्टता प्रायः करते थे। अजातशत्रु के समय में पासा बिल्कुल पलट गया था और वैशाली गणतन्त्र सदा-सदा के लिये समाप्त हो गया था।[३]

मल्ल

महाभारत[४] का मल्ल राष्ट्र (या मल्ल रट्ठ) मुख्यतः दो भागों में बँटा हुआ था। इनमें से एक भाग का कुसावती या कुशीनर तथा दूसरे भाग का पावा[५] नगर राजधानी के रूप में प्रयुक्त में होता था। सम्भवतः काकुत्था नदी जिसे आजकल कुकु कहते हैं दोनों भागों को एक दूसरे से अलग करती थी।[६] महाभारत[७] में भी मल्ल के दो भागों —मुख्य मल्ल तक्ष दक्षिणी मल्ल— का उल्लेख मिलता है। कुशीनर नगर की ठीक-ठीक स्थिति के बारे में विद्वानों में एक मत नहीं है। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में कहा गया है कि कुशीनर नगर का 'साल' उपवन (उपवत्तन)[८] हिरण्यवती नदी के तट पर था। स्मिथ के अनु-

१. § 128.

२. सि-न्यू-की, Bk. IX.

३. *DPPN*, II. 781-82.

४. VI, 9. 34.

५. कुस जातक, No. 531; महापरिनिब्बान सुत्तन्त, *Dialogues of the Buddha*, Part II, pp. 13 6 ff., 161-62.

६. *AGI* (1924), 714.

७. महाभारत, II. 30.3 and 12.

८. *JRAS*, 1906, 659; दीघ निकाय, II, 137.

सार गण्डक का ही नाम हिरण्यवती था और कुशीनर (कुशी नगर) नेपाल की सीमा में पड़ जाता है। यह नगर छोटी राप्ती या गंडक[१] के मिलन-विन्दु पर बसा माना जाता है। इतिहासकार विल्सन के अनुसार कुशी नगर पूर्वी गोरखपुर में कसिया के समीप है। कनिंघम ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। कसिया के 'निर्वाण' मंदिर के पीछे छोटी गंडक पर स्तूप के प्राप्त होने को स्मिथ ने भी माना है। यहाँ पर एक ताम्रपत्र भी मिला था जिस पर "परिनिर्वाण-चैत्ये ताम्रपट्ट इति"[२] खुदा हुआ था।

मल्ल राज्य का दूसरा प्रमुख नगर 'पावा' था जो इतिहासकार कनिंघम[३] के अनुसार कसिया से १२ मील दूर था और आजकल पडरौना कहा जाता है। यहाँ पर मल्ल राज्य के दोनों भागों को एक दूसरे से अलग करने वाली काकुत्था नदी थी जिसे अब 'बाठी नाला' कहते हैं। इसके विपरीत कार्लाइल का कहना है कि कसिया से १० मील दूर फ़ाज़िलपुर नामक स्थान पर प्राचीन काल का 'पावा' नगर स्थित था।[४] संगीति सुत्तन्त में पावा-मल्ल के उब्भटक का उल्लेख मिलता है।[५]

मल्ल राज्य वालों तथा लिच्छवियों को मनु ने व्रात्य क्षत्रिय कहा है। ये लोग भी अपने पूरब के पड़ोसियों की तरह बौद्धमत के कट्टर अनुयायी थे।

विदेह की भाँति मल्ल में भी पहले राजतंत्र-शासन-प्रणाली थी। कुस जातक में ओक्काक (इक्ष्वाकु) नाम के एक मल्ल राजा का उल्लेख मिलता है। इस नाम से यह संकेत मिलता है कि शाक्यों[६] की भाँति मल्ल-राजकुमार भी अपने को इक्ष्वाकु-वंश का ही कहते थे। उक्त तथ्य की पुष्टि उस समय और भी हो जाती है जब महापरिनिब्बान सुत्तन्त में 'वासेट्ठ' अर्थात्

---

१. *EHI*, Third ed., p. 159 n.

२. *ASI, AR*, 1911-12, 17 ff; *JRAS*, 1913, 152.
कसिया एक गाँव है जो गोरखपुर से क़रीब ३५ मील दूर है।

३. *AGI*, 1924, 498.

४. काकुत्था; *AGI*, 1924, 714.

५. *DPPN*, II, 194.

६. *Cf. Dialogues of the Buddha*, Part I, pp. 114-15.

वशिष्ठ गोत्र[1] का नाम आता है। महासुदस्सन सुत्त में महासुदस्सन[2] नाम का भी एक राजा मिलता है। हो सकता है कि ओक्काक या महासुदस्सन इतिहास की दृष्टि से मान्य न हों, किन्तु इनके नाम से सम्बन्धित कथाओं से यह तो सिद्ध होता ही है कि किसी समय मल्ल राज्य इन राजाओं द्वारा शासित था। महाभारत[3] में भी मल्ल राजाओं का उल्लेख हुआ है, जिससे उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि हो जाती है। मल्ल राज्य के राजतन्त्र के काल में कुसावती नगर इसकी राजधानी थी तथा अनुपिया और उरुवेलकप्पा अन्य दो प्रमुख नगर थे।[4]

बिम्बिसार के पूर्व राजतन्त्र के स्थान पर गणतन्त्र[5] की स्थापना हो गई थी और जंगलों[6] से घिरी राजधानी कुशीनर जल-प्लावित हो चुकी थी।

मल्लों तथा लिच्छवियों का आपसी सम्बन्ध कभी-कभी ही शत्रुतापूर्ण रहा, सामान्यतः मैत्रीपूर्ण ही माना गया। भद्दसाल जातक[7] की एक कथा में कोशल राज्य के प्रधान सेनापति बन्धुल तथा ५ सौ मल्लवासी लिच्छवियों के बीच तनातनी की चर्चा की गई है। जैन ग्रन्थ कल्पसूत्र के अनुसार मल्ल, लिच्छवि, काशी और कोशल के अधिपतियों ने कूणिक-अजातशत्रु के विरुद्ध मोर्चाबन्दी की थी, क्योंकि मैसेडन के राजा फ़िलिप की तरह कूणिक अजातशत्रु भी पड़ोसी गणतन्त्रों को समाप्त कर उनकी

---

१. *Dialogues of the Buddha*, Part II, pp. 162, 179, 181. रामायण में वशिष्ठ को इक्ष्वाकु का पुरोहित कहा गया है।

२. *SBE*, VI, p. 248.

३. II. 30. 3.

४. Law, *Some Kshatriya Tribes*, p. 149; *Dialogues of the Buddha*, Part III (1921), 7; *Gradual Sayings*, IV 293. अनुपीय अनोमा के तट पर है तथा कपिलवस्तु से काफ़ी दूर (३० लीग) है। यहीं पर बुद्ध ने क्षौरकर्म कराकर संन्यास ग्रहण किया था (*DPPN*, I, 81, 102)।

५. *Cf. SBE*, XI, p. 102; कौटिल्य का **अर्थशास्त्र**, 1919, p. 378.

६. खुद्दा-नगरक, उज्जंगल-नगरक, साखा-नगरक।

७. No. 465.

अपने राज्य में मिलाने का प्रयास कर रहे थे। अन्ततः, मल्ल राज्य मगध में मिल ही गया। तीसरी शताब्दी ईसापूर्व में मल्ल, मगध के मौर्य-सामाज्य का ही एक अंग था।

चेदि

चेदि राज्य एक ऐसा राज्य था जो कुरु के चतुर्दिक् (परीतः कुरून्) यमुना[१] के समीप फैला हुआ था। चम्बल के पास मत्स्य राज्य से भी इसका सम्बन्ध था। इसके अतिरिक्त यह काशी तथा शोन की घाटी[२] के कारुष मे भी सम्बन्धित था।[३] आधुनिक बुंदेलखंड तथा उसके समीपवर्त्ती प्रदेश को हम प्राचीन चेदि राज्य कह सकते हैं।[४] मध्य काल में तो इस राज्य का विस्तार नर्मदा (मेकल-सुता) तक हो गया था—

नदीनाम् मेकलसुता नृपानाम् रणविग्रहः
कवीनां च सुरानन्दाश चेदि मण्डल मण्डनाम् ।[५]

चेतिय जातक[६] के अनुसार चेदि राज्य की राजधानी सोत्थिवती नगर थी। महाभारत में इस नगर का संस्कृत नाम शुक्तिमती या शुक्ति-साह्वय[७] भी आया है। महाभारत में शुक्तिमती नामक नदी का भी नाम आया है जो चेदि राजा उपरिचर की राजधानी से होकर बहती थी।[८] पार्जिटर

---

१. पार्जिटर *JASB* 1895, 253 ff.; महाभारत, 1. 63. 2-58; IV. i, 11.

सन्तिरम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरुन
पंचालास चेदि मत्स्याश्च सुरसेनाः पटच्चराः
दशार्णा नवराष्ट्राश्च मल्लाः साल्वा युगन्धराः ।

२. महाभारत, V. 22. 25; 74. 16; 198. 2; VI. 47. 4; 54. 8.

३. दशार्णा की राजकुमारियों की शादी विदर्भ के भीम और चेदि के वीरबाहु या सुबाहु के साथ हुई थी (महाभारत, III. 69. 14-15)।

४. पार्जिटर (*JASB*, 1895, 253) के अनुसार चेदि राज्य जमुना के किनारे था। उत्तर-पश्चिम में चम्बल तथा दक्षिण-पूर्व में करवी था। दक्षिण में इसकी सीमा मालवा तथा बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों तक पहुँची हुई थी।

५. जाह्लण की सूक्ति-मुक्तावली (राजशेखर), *Ep. Ind.*, IV. 280.

६. No. 422.

७. III. 20. 50; XIV. 83. 2; N. L. Dey, *Ind. Ant.*, 1919. p. vii of *Geographical Dictionary*.

८. I. 63. 35.

ने आधुनिक केन नदी को ही प्राचीन शुक्तिमती कहा है। पार्जिटर के मतानुसार शुक्तिमती नगर आधुनिक बाँदा शहर के समीप था।[1] इसके अतिरिक्त सहजाति[2] तथा त्रिपुरी[3] चेदि राज्य के अन्य प्रमुख नगर थे।

चेदि राज्य उतना प्राचीन माना जाता है जितना कि ऋग्वेद, क्योंकि दानस्तुति के स्तोत्र के अन्त में कसु चैद्य का नाम आया है।[4] रैप्सन राजा कसु को ही महाभारत में 'वसु' कहा गया है।

चेतिय जातक में चेदि-राजाओं की सूची दी गई है। यह सूची महासम्मत तथा मानधाता नामों से आरम्भ की गई है। चेदि-वंश के एक राजा उपरिचर के पाँच पुत्र थे, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तर पांचाल तथा दद्दरपुर नामक नगर बसाये।[5] सम्भवतः उपर्युक्त राजा उपरिचर ही चेदि राज्य के पौरव राजा उपरिचर वसु थे। इन्हीं का महाभारत[6] में उल्लेख आया है तथा इन्हीं पाँच पुत्रों ने पाँच विभिन्न राजवंशों की स्थापना की थी।[7] किन्तु, महाभारत में वसु के वंशजों को कौशाम्बी, महोदय (कन्नौज) तथा गिरिव्रज से सम्बन्धित माना गया है।[8]

---

१. *JASB*, 1895, 255; मार्कण्डेय पुराण, p. 359.

२. अगुत्तर, III. 355 (P. T. S.)—आयस्मा महाकुन्दो चेतिसु विहरति सहजातियम्। सहजाति गङ्गा के तट पर व्यापार-मार्ग में रहते थे (*Buddhist India*, p. 103)। इलाहाबाद से १० मील दूर भीटा में (*Arch. Expl. Ind.*, 1909-10, by Marshal, *JRAS*, 1911, 128 f.– सहिजितिये निगमश, *JBORS*, XIX, 1933, 293) भी देखिये।

३. त्रिपुरी जबलपुर के पास स्थित थी। हेमकोश में इसे चेदि नगरी कहते थे (*JASB*, 1895, 249)। महाभारत (II, 253. 10) में भी इसका उल्लेख है। इसके साथ कोशल तथा वहाँ के निवासियों का भी जिक्र है। त्रिपुर नाम मेकलों तथा कुरुविन्दो के साथ भी आया है।

४. VIII. 5. 37-39.

५. हत्थिपुर को हत्थिनीपुर या कुरुदेश का हस्तिनापुर भी कहा जा सकता है। अस्सपुर नाम का नगर अंग राज्य में तथा सीहपुर नगर लाल स्थान पर था जहाँ से विजय ने लंका को प्रस्थान किया था। पश्चिमी पंजाब में एक दूसरा सिंहपुर भी था (Watters, I. 248)। रुहेलखण्ड का अहिच्छत्र ही उत्तर पांचाल था। दद्दरपुर हिमालय-क्षेत्र में था (*DPPN*, II. 1054)।

६. I. 63.1–2.

७. I. 63. 30.

८. रामायण, I. 32. 6-9; महाभारत, I. 63. 30-33.

महाभारत में चेदि राजा दमघोष, उनके पुत्र शिशुपाल सुनीथ तथा उनके पुत्र धृष्टकेतु और शरभ की चर्चा आयी है। ये राजा उस समय भी शासनारूढ़ थे जबकि महाभारत की लड़ाई हुई थी। किन्तु, अन्य विश्वसनीय प्रमाणों के अभाव में महाभारत तथा जातकों से चेदि-राजाओं के सम्बन्ध में जो विवरण हमें मिलता है उसे हम वास्तविक इतिहास के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

वेदब्भ जातक[1] में कहा गया है कि काशी से चेदि राज्य को जाने वाला राजमार्ग बिल्कुल निरापद नहीं था क्योंकि रास्ते में लुटेरों के आक्रमणों का भय बना रहता था।

वत्स

वंश या वत्स राज्य गंगा[2] के दक्षिण की ओर था। इलाहाबाद के समीप यमुना के तट पर कौशाम्बी (आधुनिक कोसाम) नगर वत्स की राजधानी थी।[3] इतिहासकार ओल्डेनबर्ग[4] ने ऐतरेय ब्राह्मण में आये 'वश' शब्द को ही वंश या वत्स माना है। किन्तु, अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में शिक्षक प्रोति कौशाम्बेय[5] का नाम आया है। यह टीकाकार श्री हरिस्वामी के मतानुसार कौशाम्बी[6] के रहने वाले थे। महाभारत की परम्परा के अनुसार किसी चेदि राजा[7] ने ही कौशाम्बी नगर की स्थापना की थी। कुछ भी हो, वत्स-वंश की उत्पत्ति काशी के राजा[8] से मानी गई है। पुराणों में कहा गया है कि जब गंगा के प्रवाह के फलस्वरूप हस्तिनापुर बह गया

१. No. 48.

२. रामायण, II. 53. 101.

३. Nariman, Jackson and Ogden, प्रियदर्शिका, lxxvi; बृहत् कथा श्लोक-संग्रह (4. 14. cf. 8. 21) में स्पष्ट उल्लेख है कि कौशाम्बी कालिन्दी या जमुना के तट पर था (Malalasekera, *DPPN*, 694)। प्राचीन काल में इसे गंगा के तट पर माना जाता था और वह भी इसलिए कि यह गङ्गा-जमुना के सङ्गम के समीप था।

४. *Buddha*, 393n.

५. शतपथ ब्राह्मण, XII. 2. 2. 13.

६. See p. 70 *ante*.

७. रामायण, I, 32. 3-6; महाभारत, I. 63. 31.

८. हरिवंश, 29. 73; महाभारत, XII. 49. 80.

तो जन्मेजय के वंशज राजा निचाक्षु ने अपनी राजधानी कौशाम्बी को स्थानान्तरित कर दी। हम पहले ही देख चुके हैं कि कौशाम्बी के भरत या कुरु वंशीय राजाओं की उत्पत्ति भास के दो नाटकों से प्रमाणित हो चुकी है। कौशाम्बी के राजा उदयन को स्वप्न-वासवदत्ता एवं प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण[1] में भरत-कुल का वंशज कहा गया है।

पुराणों में निचाक्षु के उत्तराधिकारियों (क्षेमक तक) की सूची दी गई है, जो इस प्रकार है—

"ब्रह्मक्षत्रस्य[2] यो योनिर्वंशो देवर्षि सत्कृतः
क्षेमकां प्राप्य राजानाम् संस्थाम् प्राप्स्यति वै कलौ।"

"जिन देवताओं तथा ऋषियों (या देवर्षियों) द्वारा सम्मानित वंश से ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का उद्भव हुआ, वह वंश कलियुग में क्षेमक के बाद से समाप्त हो जायगा।"

इस पुस्तक में इक्ष्वाकु तथा मगध के राजवंशों की सूची की जो टीका की गई है, वह पौरव-भरत-राजवंश पर भी वैसे ही लागू होती है। एक स्थान पर हमें अर्जुन और अभिमन्यु राजाओं के नाम मिलते है, किन्तु उन्हें छत्रधारी राजा नहीं माना जा सकता। इसी तरह इक्ष्वाकु, मगध तथा अवन्ती के भी जिन समकालीन राजाओं को हम जानते हैं, वे एक दूसरे के उत्तराधिकारी या वंशज के रूप में हमारे सामने आते है। भरत-वंश के सबसे बाद के प्रख्यात राजा उदयन के पूर्वजों के बारे में भी कोई सर्वमान्य मत नहीं स्थापित हो सका है। इस वंश के सबसे आरम्भ के राजा शतानीक-द्वितीय को हम अवश्य निश्चित रूप से जानते हैं। पुराणों के अनुसार उनके पिता का नाम वसुदान तथा भास के अनुसार सहस्रानीक था। शतानीक को भी परन्तप[3] कहा जाता था। परन्तप का विवाह विदेह की राजकुमारी से हुआ था, इसीलिये उनके पुत्र का नाम वैदेही-पुत्र[4] पड़ा था। कहते है राजा दधिवाहन[5] के समय में उन्होंने चम्पा पर आक्रमण

१. स्वप्न-वासवदत्ता, ed. गणपति शास्त्री, p. 140; प्रतिज्ञा, pp. 61, 121.

२. *Cf.* ब्रह्म क्षत्रियाणाम् कुल का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है। ये शिलालेख सेन राजाओं के थे जो अपने को भरतों की तरह कुरुवंश का कहते थे।

३. *Buddhist India*, p. 3.

४. स्वप्न-वासवदत्ता, Act VI, p. 129.

५. *JASB*, 1914, p. 321.

किया था। उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी उदयन थे। वे बुद्ध तथा अवन्ती के प्रद्योत के समकालीन थे। इस प्रकार वे मगध के बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के भी समकालीन पड़ते हैं।

संसुमारगिरि का भग्ग (भर्ग) राज्य वत्स[1] के अधीन था। यद्यपि 'अपदान' के अनुसार भर्ग राज्य कारुष से सम्बन्धित था, तो भी महाभारत[2] तथा हरिवंश[3] के अनुसार वत्स और भर्ग एक दूसरे से सम्बन्धित तो थे ही। इसके अतिरिक्त सामन्त निषाद से भी इनकी कुछ घनिष्ठता थी जबकि 'अपदान' में भर्ग और कारुष का संबन्ध लिखा है।[4] प्राप्त प्रमाणों के अनुसार यमुना तथा शोन की घाटी के बीच का भाग संसुमारगिरि कहा जाता था।

कुरु

महासुत्तसोम जातक[5] के अनुसार कुरु राज्य का विस्तार ३०० मील में था। पाली-ग्रन्थों के अनुसार इस राज्य पर युधिष्ठिला-वंश (युधिष्ठिर के वंश)[6] के राजा राज्य करते थे। आधुनिक दिल्ली के पास इन्दपत्त या इन्दपत्तन (इन्द्रप्रस्थ या इन्द्रपत) कुरु राज्य की राजधानी थी।[7] इसके अतिरिक्त हम हत्थिनीपुर[8] नाम भी सुनते हैं। निश्चय ही यह महाभारत का हस्तिनापुर था। राजधानी के अलावा अनेक निगम तथा गाँव भी थे, जिनमें से थुल्लकोट्ठिता, कम्मास्सदम्म, कुरुडी तथा वारणावत मुख्य हैं।[9]

---

१. जातक, नं० 353; *Carm. Lec.*, 1918, p. 63.

२. II. 30, 10-11.

वत्सभूमिञ्च कौन्तेयो विजिग्ये बलवान् बलात्
भरगाणामधिपञ्चैव निषादाधिपतिम् तथा।

"कुन्ती के बलशाली पुत्र (भीमसेन) ने बलपूर्वक वत्स देश जीता था।"

३. 29. 73. प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ, वत्सभर्गौ बभूवतुः—"प्रतर्दन के वत्स और भर्ग नामक दो पुत्र थे।"

४. *DPPN*, II. 345.

५. No. 537.

६. धूमकारि जातक, नं० 413; दस ब्राह्मण जातक, नं० 495.

७. जातक, Nos. 537, 545.

८. *The Buddhist Conception of Spirits*, *DPPN*, II. 1319.

९. महाभारत (V. 31. 19; 72. 15 etc.) में चार गाँवों का उल्लेख मिलता है, जैसे अविस्थल, वृकस्थल, माकण्डी, वारणावत।

जातकों में कुरु राजाओं को धनञ्जय कौरव्य,[1] कौरव्य[2] तथा सुतसोम[3] नामों से विभूषित किया गया है, किन्तु अन्य प्रमाणों के अभाव में हम इनकी ऐतिहासिकता को स्वीकार नहीं करते ।

जैन ग्रन्थ 'उत्तराध्ययन सूत्र' मे इषुकार नामक एक राजा का उल्लेख आया है। यह राजा कुरु राज्य[4] के इषुकार नगर का शासक था । ऐसा लगता है कि कुरु-राजवंश के बडे घराने के हस्तिनापुर से कौशाम्बी चले जाने तथा अभिप्रतारिणों का पतन हो जाने के बाद कुरु राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया। इनमें इन्दपत्त तथा इषुकार राज्य सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाते थे । इनमें से एक ने कुरु राजा के पुत्र रत्थपाल से भेंट की, जिन्होंने शाक्य ऋषि को अपना गुरु मान लिया था । इन्दपत्त तथा इषुकार राजा महात्मा बुद्ध के समकालीन माने जाते थे । बाद में छिन्न-भिन्न कुरु राज्य के छोटे-छोटे टुकड़े पुनः आपस में संगठित हुए और सम्भवतः गणतन्त्र के रूप में बदल गये ।[5]

पांचाल

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, पांचाल राज्य रुहेलखण्ड तथा मध्य दोआब-क्षेत्र में था। महाभारत, जातकों तथा दिव्यावदान[6] में इस राज्य को दो भागों में विभाजित कहा गया है । ये भाग हैं—उत्तर पांचाल तथा दक्षिण पांचाल । महाभारत के अनुसार गंगा नदी दोनों भागों की विभाजक रेखा थी।[7] उत्तरी पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती थी जिसे अब बरेली ज़िले में आँवला के पास स्थित रामनगर कहते हैं । दक्षिणी पांचाल की राजधानी काम्पिल्य थी और पांचाल का यह भाग गंगा से चम्बल[8] तक फैला हुआ था। प्राचीन काल

१. कुरुधम्म जातक, No. 276; धूमकारि जातक, No. 413; सम्भव जातक, No. 515; विधुर पण्डित जातक, No. 545. धनञ्जय अर्जुन का ही नाम है ।

२. दस ब्राह्मण जातक, No. 495; महासुत्तसोम जातक, No. 537.

३. महासुत्तसोम जातक; Cf. महाभारत (I. 95. 75) में सुत्तसोम भीम के पुत्र का नाम था ।

४. *SBE*, XLV. 62.

५. *DPPN*, II. 706f.

६. अर्थशास्त्र, 1919. 378.

७. महाभारत, I. 138. 70. वैदिक काल के विवरण के लिए देखिये 70*f ante*.

८. महाभारत, I. 138. 73-74.

में उत्तर पांचाल को प्राप्त करने के हेतु कुरुओं तथा पांचालों में बड़ा युद्ध हुआ था। जब कभी उत्तर पांचाल कुरु राष्ट्र[1] में चला जाता था तो इसकी राजधानी हस्तिनापुर[2] हो जाती थी, वैसे यह भाग काम्पिल्य राष्ट्र[3] के ही अन्तर्गत रहता था। काम्पिल्य के राजा कभी तो अपना दरबार उत्तर पांचाल नगर में लगाते थे और कभी उत्तर पांचाल के नरेश अपना दरबार काम्पिल्य में लगाते थे।[4]

प्रवाहण जैवल या जैवलि की मृत्यु से लेकर मगध के बिम्बिसार तक पांचाल राज्य का इतिहास बिल्कुल अनिश्चित-सा ही है। इस काल में पांचाल के केवल एक शासक दुर्मुख (या दुम्मुख) का नाम मिलता है जो कि मिथिला[5] के प्रायः अन्तिम (अन्तिम से एक पहले) राजा निमि[6] का समकालीन माना जाता था। कुम्भकार जातक में केवल इतना कहा गया है कि राजा दुर्मुख के राज्य का नाम उत्तर पांचाल राष्ट्र था तथा राज्य की राजधानी अहिच्छत्र नहीं वरन् तथा मिथिला के काम्पिल्य नगर थी। यह राजा कलिंग के करण्डु, गांधार के नग्गजि (नग्नजित) निमि का समकालीन था। ऐतरेय ब्राह्मण[7] में दुर्मुख को एक विजेता कहा गया है तथा बृहदुक्थ को उनका पुरोहित बताया गया है—

''एतं ह वा ऐन्द्रम् महाभिषेकम् बृहदुक्थ ऋशिर्दुर्मुखाय पंचालाय प्रोवच तस्मादु दुर्मुखः पंचालो राजा सन् विद्यया समन्तम् सर्वतः पृथिवीम् जयान् परीयाय।''

'पुरोहित बृहदुक्थ द्वारा कराये गये राजा दुर्मुख के इन्द्र-महाभिषेक से राजा को सिद्धि प्राप्त हुई तथा उन्होंने दिग्विजय-यात्रा की और चतुर्दिक् विजय प्राप्त की।'[8]

---

१. सोमनस्स जातक, नं० 505; महाभारत, I. 138.

२. दिव्यावदान, p. 435.

३. ब्रह्मदत्त जातक, नं० 323; जयद्दिस जातक, नं० 513; गण्डतिन्दु जातक, नं० 520.

४. कुम्भकार जातक, नं० 408.

५. जातक, नं० 541.

६. जातक, नं० 408.

७. VIII. 23.

८. Keith, ऋग्वेद ब्राह्मण (Harvard Oriental Series), Vol. 25.

महाउम्मग्ग जातक,[1] उत्तराध्ययन सूत्र,[2] स्वप्न-वासवदत्ता[3] तथा रामायण[4] में पांचाल राजा चुलानि ब्रह्मदत्त का उल्लेख आया है। रामायण के अनुसार चुलानि ब्रह्मदत्त ने कुशनाभ की कन्याओं से विवाह किया था। उन्हें वायु (वैश्वाना) देवता ने कुब्जा (कुबड़ी) बना दिया था। जातक के अनुसार ब्रह्मदत्त के एक मंत्री ने उन्हे समूचे भारत का सम्राट् बनाने की योजना बनायी थी। राजा ब्रह्मदत्त ने स्वयं भी मिथिला पर घेरा डाला था, ऐसा उल्लेख मिलता है। उत्तराध्ययन सूत्र में भी ब्रह्मदत्त को विश्वजनीन सम्राट् कहा गया है, किन्तु इस राजा की कथा को एक कहानी मात्र मानना होगा और कुछ नहीं। इस राजा से सम्बन्धित रामायण की कथा मे केवल इतना ही महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीन पांचाल राजाओं ने कान्यकुब्ज (कन्याकुब्ज, कन्नौज) नामक प्रसिद्ध शहर की नीव डाली थी।[5]

उत्तराध्ययन सूत्र मे काम्पिल्य के राजा संजय का नाम आया है जिन्होंने अपना राजापद त्याग दिया था।[6] हमें यह नहीं पता कि सजय के राज्य-त्याग के बाद क्या हुआ? किन्तु, इस तथ्य पर विश्वास किया जा सकता है कि बिदेह, मल्ल तथा कुरु राज्यों की भाँति पांचाल में भी संघीय शासन (राज-शब्दोपजीविन्) की स्थापना हुई थी।[7]

मत्स्य

मत्स्य राज्य बड़ा विस्तृत था तथा चम्बल की पहाड़ियों से सरस्वती नदी के समीपवर्त्ती जगलो तक फैला हुआ था। विराट नगर (जयपुर राज्य का बेराट) मत्स्य राज्य का केन्द्र था। इस राज्य के इतिहास पर पहले भी कुछ प्रकाश पड़

१. 546.

२. *SBE*, XLV. 57-61.

३. Act V.

४. I. 32.

५. *Cf.* Watters, *Yuan Chwang*, I. 341-42. रतिलाल मेहता ने इस बात की उपेक्षा कर दी है (*Pre-Buddhist India*, 43n)। कन्याकुब्ज या कान्यकुब्ज का महाभारत में जिक्र है (I. 175. 3; V. 119. 4)। महाभाष्य [IV. 1. 2. (233)] में कान्यकुब्जियों तथा अहिच्छत्रियों का उल्लेख है। पाली में कण्णकुज्ज शब्द मिलता है (*DPPN*, I. 498)।

६. *SBE*, XLV. 80-82.

७. अर्थशास्त्र, 1919, p. 378. इस प्रकार के वयोवृद्ध, राजा कहे जाते थे। इनमें से एक राजा विशाख पांचालिपुत्र का पितामह था। वह बुद्ध का शिष्य था (*DPPN*, II. 108)।

चुका है। मगध में बिम्बिसार के बाद मत्स्य राज्य पर कैसे-कैसे संकट आये, इस सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता।[1] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मत्स्य को उन राज्यों में नहीं रखा गया है, जहाँ पर राजतंत्र के बजाय गणतंत्र बने थे। सम्भवतः मत्स्य की स्वतंत्रता छिनने के समय तक यहाँ राजतंत्र ही बना रहा। एक बार मत्स्य राज्य चेदि राज्य में मिला लिया गया था। महाभारत[2] में ऐसा उल्लेख है कि सहज नाम का एक राजा कभी मत्स्य तथा चेदि दोनों राज्यों पर राज्य करता था। अशोक के कुछ सुप्रसिद्ध शिलालेख बैराट में भी मिलते हैं।

मध्य काल में मत्स्य-राजवंश की एक शाखा विजगापट्टम क्षेत्र में जा बसी ?[3] यह भी पता चलता है कि उत्कल देश के राजा जयतसेन ने सत्य मार्तण्ड को अपनी कन्या ब्याह कर उन्हें ओड्डवादि देश का शासक नियुक्त किया था। २३ पीढ़ियों के बाद सन् १२६९ ईसवी में हुए यहाँ के राजा का नाम अर्जुन था।

शूरसेन

शूरसेन देश की राजधानी मथुरा थी, जो कौशाम्बी की भाँति यमुना के तट पर बसी थी। वैदिक साहित्य में इस देश का या इसकी राजधानी का, कोई उल्लेख नहीं मिलता। यूनानी लेखकों ने अपनी कृतियों में इस राज्य को सौरसेनोय (Sourasenoi) कहा है। इस राज्य की राजधानी का नाम मथुरा (Methora and Cleisobora) कहा गया है। बौद्ध अध्यात्मवादियों की शिकायत है कि मथुरा में समुचित सुविधायें नहीं मिलतीं। ये लोग यहाँ के दमामें[4], शाटक (garments) तथा कार्षपण (coins) से अधिक दिलचस्पी नहीं रखते थे। पतंजलि के महाभाष्य[5] में भी इसका उल्लेख है। वेरांजा नामक नगर से मथुरा तक एक सड़क बनी हुई थी। यह सड़क श्रावस्ती को भी जाती थी। इसके अतिरिक्त तक्षशिला से वाराणसी तक एक सड़क जाती थी जो सोरेय्या, संकस्स, कन्नकुज्ज (कन्याकुब्ज, कन्नौज) तथा प्रयाग-पतित्थान (इलाहाबाद) से गुजरती थी।[6]

---

१. 66 ff. *ante*.

२. V. 74. 16; *Cf.* VI. 47. 67; 52.9.

३. दिब्बिद प्लेट, *EP. Ind.*, V. 108.

४. *Gradual Sayings*, II. 78; III. 188.

५. I. 2. 48 (Kielhorn, I. 19)।

६. *Gradual Sayings*, II. p. 66; *DPPN*, II. 438, 930, 1311.

महाभारत तथा पुराणों में मथुरा के राजवंश को यदु या यादव-वंश कहा जाता था। यादव-वंश मुख्यतः दो घरानों में बँटा हुआ था। ये घराने थे वीतिहोत्र तथा सत्वात।[१] सत्वात घराना भी कई कुटुम्बों में बँटा हुआ था। इन कुटुम्बों में देवावृद्ध, अन्धक, महाभोज तथा वृष्णि प्रमुख थे।[२]

ऋग्वेद में भी यदुवंश का उल्लेख कई बार आया है। ये लोग तुर्वश, द्रुह्यु, अनु तथा पुरु से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित कहे गये हैं। महाभारत तथा पुराणों की कथाओं से भी इन सम्बन्धों की पुष्टि हुई है। इन कथाओं में यदु तथा तुर्वश को एक ही माँ-बाप की सन्तान कहा गया है तथा द्रुह्यु, अनु और पुरु को उनका सौतेला भाई बताया गया है।[३]

ऋग्वेद[४] से हमें पता चलता है कि यदु तथा तुर्वश कहीं बड़े दूर देश से यहाँ आये थे। यदु का संबंध तो मुख्यतः फ़ारस से[५] स्थापित किया गया है। वैदिक साहित्य में सत्वातों का भी उल्लेख आया है। शतपथ ब्राह्मण[६] में कहा गया है कि एक बार भरत-वंश वालों ने सत्वातों से उनका यज्ञ का घोड़ा छीन कर उन्हें हराया था। भरत-वंश द्वारा सरस्वती, यमुना तथा गंगा[७] के तट पर यज्ञ किये जाने के उल्लेख से भरत-वंश के राजाओं के

---

१. मत्स्य, 43-44; वायु, 94-96.

२. विष्णु, IV, 13. 1; वायु, 96. 1-2.

३. *I. 108, 8.*

४. I. 36. 18; VI. 45. 1.

५. VIII. 6. 46. कुछ प्रमाणों के आधार पर पश्चिमी एशिया और भारत का सम्बन्ध ईसापूर्व से पहले का लगता है। ऋग्वेद के कुछ देवता, जैसे सूर्य, मरुत, इन्द्र, मित्र, वरुण, नासत्य तथा दक्ष (*Dakash*, star, *CAH*, I.553) का उल्लेख बाद के ग्रन्थों में भी मिलता है।

६. XIII. 5. 4 21. **शतानीकः समन्तासु मेध्यम् सात्राजितो हयम्**
आदत्त यज्ञं काशीनाम् भरतः सत्वातामिव।

महाभारत, VII 66.7 (मा सत्वानि विजीजहि) में ब्राह्मण ग्रन्थों की गाथा नहीं आ सकी है।

७. शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 11; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 23; महाभारत, VII. 66. 8.

अष्टासप्ततिम् भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु
गंगायाम् वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशतम् हयान्
महाकर्म (variant **महादद्य**) **भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः**
दिव्यं मर्त्यं इव हस्त्याभ्याम् (variant **बाहुभ्याम्**)
नोदापुः पंच मानवा (इति)।

राज्य की भौगोलिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। इसी के आसपास सत्वातों का राज्य भी रहा होगा। इस प्रकार महाभारत व पुराणों में सत्वातों के मथुरा से सम्बन्धित होने की पुष्टि हो जाती है। बाद में सत्वातों का एक घराना दक्षिण की ओर चला गया, क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मण[1] में सत्वातों को दक्षिण का कहा गया है। ये लोग कुरु-पांचाल देश से आगे अर्थात् चम्बल नदी के पार रहते थे और भोज राजाओं द्वारा शासित थे। पुराणों में भी भोज राजाओं को सत्वातों की ही एक शाखा कहा गया है[3]—

> "भजिना भजमान विष्यान्धक देवावृद्ध-महाभोज
> वृष्णि संज्ञः सत्वातस्य पुत्रा बभूवुः . . . . . .
> महाभोजस्त्वति धर्मात्मा तस्यान्वे भोज-
> मार्तिकावता बभूवुः।"

आगे कहा गया है कि दक्षिण में माहिष्मती, विदर्भ आदि कई राज्य थे। इन राज्यों की स्थापना भी यदुवंशियों ने ही की थी।[4] वैदिक साहित्य में भोज ही नहीं वरन् सत्वात-वंश की देवावृद्ध[5] शाखा का भी उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण[1] में बभ्रु देवावृद्ध को विदर्भ के भीम तथा गान्धार के नग्नजित का समकालीन कहा गया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी[6] में आन्धकों व वृष्णि का उल्लेख आया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[7] में वृष्णि-वंश की चर्चा संघ या गणतंत्र के रूप में की गई है। महाभारत में भी वृष्णि, अन्धक, तथा अन्य वंशों को संघ[8] कहा गया है। वृष्णि राजा वसुदेव को संघमुख्य की संज्ञा प्रदान की गई है। कुछ सिक्कों में वृष्णि राज्य का नाम मिलता है।[9] महाभारत तथा पुराणों

सो इवमेधशतेनेष्ट्वा यमुनामनु वीर्यवान्
त्रिशतास्वान् सरस्वत्याम् गंगामनु चतुःशतान्।

१. VIII. 14.3.

२. विष्णु, IV. 13. 1-6; महाभारत, VIII. 7-8. सत्वात-भोज लोग अनार्त्त (गुजरात) के रहने वाले थे।

३. मत्स्य पुराण, 43. 10-29; 44. 36; वायु, 94. 26; 95.35.

४. वायु, 96.15; विष्णु, 13. 3-5.

५. VII. 34.

६. IV. 1 114; VI. 2.34.

७. P. 12.

८. XII. 81. 25.

९. Majumdar, *Corporate life in Ancient India*, p. 119; Allan, *CCAI*, pp. clvf, 281.

में कहा गया है कि यूनान के पीसिस्ट्रेटस (Peisistratus) की भाँति कंस ने मथुरा में अत्याचार तथा बल-प्रयोग द्वारा यदुवंशियों को समाप्त करने का प्रयास किया था, किन्तु वृष्णि के वंशज कृष्ण-वसुदेव ने उसे मार डाला। घट जातक[1] तथा पतंजलि द्वारा भी कृष्ण द्वारा कंश के वध का उल्लेख किया गया है। घट जातक में कृष्ण-वसुदेव के मथुरा से सम्बन्धित होने की पुष्टि की गई है।

वृष्णि-वंश के पतन का मुख्य कारण इस वंश के लोगों द्वारा ब्राह्मणों[2] के प्रति अनादरपूर्ण आचरण था। यह बात उल्लेखनीय है कि वृष्णि तथा आन्धक दोनों वंशों को व्रात्य कहा गया है। महाभारत के द्रोणपर्व[3] में उल्लेख है कि इन लोगों ने प्राचीन आस्थाओं का उल्लंघन किया था। यह ध्यान देने योग्य है कि वृष्णि, आन्धक, मल्ल तथा लिच्छवि जो व्रात्य कहे जाते थे, 'ध्रुवा मध्यमा दिश' के दक्षिणी व पूर्वी क्षेत्रों में बसे हुए थे। इस क्षेत्र में कुरु व पांचाल के अतिरिक्त दो और राजवंश रहते थे। यह असम्भव नहीं कि ये लोग भारत में प्रविष्ट होने वाले आर्यों के प्रथम जत्थे के साथ ही आये हों और कुरु-पांचाल के पूर्वज पुरु व भरत वंशों द्वारा दक्षिण की ओर खदेड़ दिये गये हों। स्मरण रहे कि एक बार भरत-वंश ने सत्वातों को हराया था। सत्वात, वृष्णि तथा आन्धकों के पूर्वज थे। महाभारत में कहा गया है कि मगध के पौरवों तथा कुरुओं की शक्ति तथा उनके दबाव के फलस्वरूप ही यदुवंशी लोग दक्षिण की ओर चले गये थे।[4]

बौद्ध-ग्रन्थों में शूरसेन के राजा अवन्तिपुत्र की चर्चा आई है। ये शाक्य-मुनि के प्रमुख शिष्य महाकच्छान[5] के समय में हुए थे। इन्हीं के माध्यम से मथुरा-क्षेत्र में बुद्धधर्म का प्रचार हुआ था। राजा अवन्तिपुत्र के नाम से लगता है कि ये अवन्ति के राजवंश से भी ये सम्बन्धित थे। काव्य-मीमांसा[6] में

१. No. 454.

२. महाभारत, मौशल पर्व (I. 15-22; 2. 10); अर्थशास्त्र, 1919, p. 12; जातक, Eng. trans., IV. pp. 55-56.

३. 141. 15.

४. *Cf.* बहु कुरुचरा मथुरा, पतंजलि, IV. 1. 1.; *GEI.*, p. 395n.

५. *M.* 2. 83; *DPPN*, II. 438.

६. तृतीय संस्करण, p. 50. उन्होंने कठोर संयुक्त व्यंजनों के प्रयोग को प्रोत्साहन नहीं दिया।

कुविन्द नामक राजा का भी उल्लेख आया है। शूरसेन मेगास्थनीज के समय तक एक सशक्त तथा प्रभावशाली राष्ट्र के रूप में विद्यमान थे। किन्तु, इस समय वे निश्चित रूप से मौर्य-राज्य के अधीन हो गये रहे होंगे।

अस्सक

अस्सक (या अश्मक) राज्य गोदावरी[1] के तट पर बसा हुआ था। हैदराबाद निज़ाम के क्षेत्र में पड़ने वाले बोधन नाम को हम अस्सक की राजधानी कह सकते हैं। इसका प्राचीन नाम पोटलि, पोटन या पोदन था।[2] इससे लगता है कि यह स्थान मूलक तथा कलिंग[3] के बीच था। सोननन्द जातक में अस्सक को अवन्ती से सम्बन्धित कहा गया है। इससे यह संकेत मिलता है कि उन दिनों अस्सक राज्य में मूलक तथा समीपवर्त्ती ज़िले तो शामिल थे ही, साथ ही अस्सक का राज्य भी अवन्ती की सीमा तक फैला हुआ था।[4]

वायु पुराण[5] में अश्मक तथा मूलक को इक्ष्वाकु का वंशज कहा गया है तथा महाभारत में राजर्षि अश्मक को पोदन नगर का संस्थापक माना गया है। इससे सिद्ध होता है कि अश्मक और मूलक राज्यों की स्थापना इक्ष्वाकु-वंश के लोगों ने की, जैसे यदुवंश के लोगों ने विदर्भ तथा दण्डक राज्यों की नींव डाली। महागोविन्द सुत्तन्त में अस्सक राजा ब्रह्मदत्त का उल्लेख करते हुए उसे कलिंग के सत्ताभु, अवन्ती के वेस्साभु, सौवीर के भरत, विदेह के रेणु, अंग तथा काशी के राजा धतरट्ठ का समकालीन कहा गया है।[6]

अस्सक जातक[7] के अनुसार किसी समय पोटलि नगर काशी राज्य के अन्त-

१. सुत्त निपात, 977.

२. चुल्ल-कालिंग जातक, No. 301; D. 2. 235; Law, *Heaven and Hell in Buddhist Perspective*, 74; महाभारत, I. 177. 47. जैसा कि डॉ० सुखतन्कर का कहना है कि पहले की पांडुलिपियों में पोटन या पोदन नाम आया है, पौडन्य नहीं। यह कथन महागोविन्द सुत्तन्त, परिशिष्ट पर्वन् तथा नगरे पोटनामिधे की तत्सम्बन्धी दृष्टियों से मेल भी खाता है।

३. सुत्त निपात, 977; जातक, नं० 301.

४. *Cf.* भण्डारकर, *Carm Lec.*, 1918, pp. 53-54. महागोविन्द सुत्तन्त से ऐसा लगता है कि किसी समय अवन्ती दक्षिण की ओर नर्मदा की घाटियों तक फैला हुआ था। उसमें माहिष्मती नगर भी था जो नर्मदा के किनारे बसा था।

५. 88. 177-78; महाभारत, I. 177. 47.

६. *Dialogues of the Buddha*, Part II, p. 270. अन्तिम राजा का नाम शतपथ ब्राह्मण (XIII. 5. 4. 22) में भी आया है।

७. No. 207.

र्गत था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अस्मक का राजा भी काशी के अधीनस्थ ही रहा होगा। चुल्ल कालिंग जातक में अस्सक के एक राजा का नाम अरुण तथा उसके मन्त्री का नाम नन्दिसेन कहा गया है। यह भी उल्लेख्य है कि इस राजा ने एक बार कलिंग के राजा पर विजय प्राप्त की थी।

अवन्ती

मोटे तौर से अवन्ती राज्य समूचे उज्जैन-क्षेत्र में फैला हुआ था। मान्धाता से लेकर महेश्वर तक नर्मदा की घाटी भी अवन्ती राज्य में आ जाती थी। जैन ग्रन्थकारों ने ग्वालियर राज्य के गुना जिले के एरान से ५० मील दूर स्थित तुम्बवन को भी अवन्ती के ही अन्तर्गत कहा है।[1] विन्ध्याचल पहाड़ के कारण राज्य दो भागों में विभाजित हो गया था। अवन्ती राज्य के उत्तरी भाग में सिप्रा तथा अन्य नदियाँ बहती थी तथा इसकी राजधानी उज्जैन थी। दक्षिणी भाग नर्मदा की घाटी में ही था और माहिस्सती या माहिष्मती[2] जो कि मान्धाता द्वीप[3] भी मानी जाती थी, इसकी राजधानी थी।

बौद्ध तथा जैन ग्रन्थकारों ने अवन्ती के कुछ अन्य नगरों का भी उल्लेख किया है। इन नगरों में कुररघर, मक्करकट तथा सुदर्शनपुर[4] प्रमुख हैं।

---

१. इह इव जम्बूद्वीपेऽपाग भरतार्ध विभूषणाम्
अवन्तिरिति देशोऽस्ति स्वर्गदेशीय ऋद्धिभिः
तत्र तुम्बवनमिति विद्यते सन्निवेशनम्।
—परिशिष्ट पर्वन्, XII. 2-3.

तुम्बवन के लिये *Ep. Ind.*, XXVI. 115 ff. भी देखिए।

२. J. V. 133 (*DPPN*, I. 1050) में अवन्ती को दक्षिणापथ में कहा गया है। इससे यह बड़ी कठिनाई से समझा जा सकता है कि अवन्ती दक्षिणापथ का अर्थ दक्षिणी भाग ही था (भण्डारकर, *Carm. Lec.*, 54)।

३. Pargiter, मार्कण्डेय पुराण, और Fleet (*JRAS*, 1910, 444 f.)। इसे स्वीकार करने में एक कठिनाई है। मान्धाता, पारियात्र पर्वत (पश्चिमी विन्ध्य) के दक्षिण में था। माहिष्मती, विन्ध्य और ऋक्ष के बीचोबीच था—विन्ध्य के उत्तर तथा ऋक्ष के दक्षिण। टीकाकार नीलकठ के अनुसार भी यही उल्लेख मिलता है (हरिवश, II. 38. 7-19)। महेश्वर जहाँ कि होल्कर-वंश के लोग भी कुछ समय तक रहे हैं, उसके लिए *Ind. Ant.*, 1875. 346 ff. देखिए। मान्धाता के लिए *Ibid.*, 1876,53 देखिए।

४. Luders. Ins., No. 469; *Gradual Sayings*, V. 31; Law, *Ancient Mid-Indian Kshatriya Tribes*, p. 158; *DPPN*, I. 193; कथाकोश, 18.

महागोविन्द सुत्तन्त में माहिस्सती को अवन्ती की राजधानी तथा वेस्साभु को अवन्ती का राजा कहा गया है। महाभारत में अवन्ती तथा माहिष्मती को अलग-अलग कहा गया है और नर्मदा के समीपवर्त्ती अवन्ती के विन्द और अनुविन्द का उल्लेख किया गया है ।[1]

पुराणों के अनुसार माहिष्मती, अवन्ती तथा विदर्भ की स्थापना यदुवंश के लोगों ने ही की थी। ऐतरेय ब्राह्मण में भी सत्वातों तथा भोजों को दक्षिण में फैली हुई यदुवंश की शाखा का कहा गया है ।[2]

पुराणों में माहिष्मती राज्य के प्रथम राजवंश को हैहय[3] कहा गया है । उक्त वंश का नाम कौटिल्य के अर्थशास्त्र[4] में आया है। इसके अतिरिक्त महाभारत की षोड्शराजिका कथा में भी इसका उल्लेख हुआ है। कहते हैं नर्मदा की घाटी[5] के मूलवासी नागवंशियों को हैहयों ने ही वहाँ से भगाया था। मत्स्य पुराण के अनुसार हैहय-वंश की पाँच प्रमुख शाखायें थीं। ये शाखायें वीतिहोत्र, भोज, अवन्ती, कुण्डीकेर तथा तालजंघ थीं ।[6] अवन्ती के वीतिहोत्र-वंश का अन्त इस प्रकार हुआ कि राजा के मंत्री पुलिक (पुणिक) ने अपने स्वामी की हत्या कर के अपने पुत्र प्रद्योत को राज्य-सिंहासन पर बिठाया। अवन्ति का यह राजनीतिक परिवर्त्तन क्षत्रियों की आँखों के सामने ही हुआ था।[7] चौथी शताब्दी ईसापूर्व में अवन्ती राज्य मगध साम्राज्य का एक अंग हो गया।

---

१. नर्मदामभितः, महाभारत, II. 31.10.

२. मत्स्य, 43-44; वायु, 95-99; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 14.

३. मत्स्य, 43, 8-29; वायु, 94, 5-26.

४. अर्थशास्त्र, p. 11; महाभारत, VII. 68. 6 etc.; सौन्दरनन्द, VIII. 45.

५. *Cf.* नागपुर; और *Ind. Ant.*, 1884, 85; *Bomb. Gaz.*, I., 2. 313 etc.

६. 43. 48-49.

७. हमें इससे यह नहीं समझना चाहिए कि पुणिक का वंश एक छोटी जाति (चरवाहे) से उत्पन्न हुआ था। पुराणों के अनुसार वंश-परिवर्त्तन एक अमात्य (civil functionary) के द्वारा हुआ था, न कि सेनापति द्वारा। इसी कारण सेना (kshatriyas) ने अधिक ध्यान भी नहीं दिया। अमात्य लोग निस्संदेह ही यात्रियों की तरह एक सम्मानित वर्ग थे (*Cf.* also Fick, Ch. VI)। तिब्बत के लोग अनन्तनेमि को प्रद्योत का पिता कहते हैं (*Essay on Gunadhya*, p. 173)।

गान्धार

प्राचीन गान्धार राज्य में कश्मीर की घाटी तथा महत्वपूर्ण एवं प्रख्यात नगर तक्षशिला आ जाता था। तक्षशिला नगर वाराणसी[१] से ६००० मील (२००० लीग) माना जाता था। तक्षशिला में दूर-दूर देशों के लोग अध्ययनार्थ आया करते थे।

पुराणों में गान्धार के राजाओं को द्रुह्यु[२] का वंशज कहा गया है। एक पौराणिक उल्लेख के अनुसार यह राजा उत्तर-पश्चिम[३] का था। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर इसकी चर्चा की गई है। गान्धार के राजा नग्नजित को विदेह के राजा निमि, पांचाल के दुर्मुख, विदर्भ[४] के भीम तथा कलिंग के करकण्डु का समकालीन कहा जाता है। जैन ग्रन्थकारों का कहना है कि उक्त राजागण जैनमत में दीक्षित थे[५]। कहते हैं पार्श्व ने भी जैनमत स्वीकार कर लिया था। यदि नग्नजित के बारे में यह सत्य है कि उन्होंने जैनमत ग्रहण कर लिया था तो उनका समय ७७७ वर्ष ईसापूर्व होना चाहिए। बिम्बिसार के समय गान्धार में पुक्कुसाति हुए थे। नग्नजित द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने का उल्लेख इस तथ्य से मेल नहीं खाता कि वे तथा उनके पुत्र स्वरजित[६] ब्राह्मण-संस्कारों से अनुशासित थे। इस काल में विभिन्न मतों के ऊँचे सिद्धान्तों को विशेष गंभीरता की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। उपर्युक्त तथ्य से यही निष्कर्ष निकलता है कि इस काल के धर्म में रुचि रखने वाले राजवंश ब्राह्मण-धर्म के कट्टर अनुयायी नहीं होते थे।

छठवीं शताब्दी के मध्य में गान्धार के सिंहासन पर राजा पुक्कुसाति आसीन थे। उन्होंने अपना एक राजदूत मगध के दरबार में भेजा था तथा

---

१. जातक, नं० 406; तेलपट्ट जातक, नं० 96.; सुसीम जातक, नं० 163.

२. मत्स्य, 48. 6; वायु, 99.9.

३. *Vedic Index*, I. 385.

४. कुम्भकार जातक; ऐतरेय ब्राह्मण, VII. 34; शतपथ ब्राह्मण, VIII. 1.4.10; उत्तराध्ययन सूत्र। महाभारत (V. 48. 75) में एक नग्नजित का उल्लेख आया है जो कृष्ण का समकालीन तथा गांधारवासी था, किन्तु महाभारत में ही शकुनी को भी पांडवों तथा कृष्ण के समकालीन तथा गांधार का राजा कहा गया है।

५. *SBE*, XLV. 87.

६. सतपथ ब्राह्मण, VIII. 1. 4. 10 *Vedic Index*, I. 432.

अवन्ती के राजा प्रद्योत से युद्ध करके उसे परास्त किया था ।[1] राजा पुक्कुसाति पंजाब के रहने वाले पांडवों से बहुत भय खाता था । छठवी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में गान्धार को फ़ारस के शासक ने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया तथा गान्धार के लोग अकामेनिडन राज्य की प्रजा बन गये थे ।[2]

कम्बोज

विविध साहित्यों तथा शिलालेखों[3] में कम्बोज तथा गान्धार को एक-दूसरे से सम्बद्ध कहा गया है । गान्धार की तरह कम्बोज भी उत्तरापथ (उत्तरी भारत)[4] माना जाता था । भारत और पाकिस्तान के उत्तरी भागों में पड़ने वाले क्षेत्र को कम्बोज[5] कहना उचित होगा । महाभारत कम्बोजों को राजपुर[6] नामक स्थान (कर्ण राजपुरम् गत्वा काम्बोज निर्जिता स्तव्या[7]) से सम्बन्धित कहता है ।

१. *Buddhist India*, p. 28; *DPPN*, II. 215; *Essay on Gunadhya*, p. 176.

२. See "*Ancient Persian Lexicon and the Texts of the Achaemenidan Inscriptions*" by Herbert Cushing Tolman, Vanderbilt Oriental Series, Vol. VI; *Old Persian Inscriptions*, by Sukumar Sen; *Camb. Hist. Ind.*, I. 334.338.

३. महाभारत, XII. 207. 43; अंगुत्तर निकाय, P.T.S., I. 213; 4.252, 256, 261. अशोक के पाँचवें शिलालेख के अनुसार कम्बोज को गान्धार से सम्बन्धित किया जा सकता है जो कि अपनी अच्छी क़िस्म की ऊन के लिए प्रसिद्ध था (ऋग्वेद, V. 1.126.7), जिसे कम्बोज लोग कम्बल के रूप में उपयोग करते थे (यास्क, II. 2) ।

४. *Cf.* महाभारत, XII. 207.43; राजतरंगिणी, IV. 163-165; उत्तरी कश्मीर में कम्बोज नामक स्थान का ऐतिहासिक वृत्तान्त नहीं मिलता है । सामान्य रूप में यह स्थान उत्तरापथ' के राज्य में, स्पष्टतया सुदूर उत्तर दिशा में, तुखारों (Tukharas) के देश से अलग स्थित है ।

५. हिन्दुओं की बस्ती 'कम्बोज' के लिए इलियट का *Hinduism and Buddhism*, III, pp. 100 ff देखिए; B.R. Chatterji, *Indian Cultural Influence in Cambodia*; R. C. Majumdar, *Kambujadesha* भी देखिए ।

६. महाभारत, VII, 4. 5.

७. "Karna *having gone to* (गत्वा Rajapura"—कम्बोजों को पराजित किया । यह उद्धरण इस बात को सूचित नहीं करता है कि कर्ण (Karna) 'कम्बोज' वाया 'राजपुर' (Rajapura) तक बढ़ा हो । इस सम्बन्ध में यह भी संकेत करना बिलकुल निरर्थक प्रतीत होता है कि 'बैक्ट्रिया' (Bactria) देश के 'राजगृह' (Rajagriha) से 'राजपुर' (Rajapura) का कुछ लगाव रहा है जैसा कि एक लेखक के लेख (*Proceedings and*

महाभारत में उल्लिखित राजपुर नामक स्थान पुञ्ज के दक्षिण-पूर्व में था। युवान च्वांग[1] ने भी इसी नाम के एक स्थान की चर्चा की है। कम्बोज राज्य की सीमा काफ़िरिस्तान की ओर थी। एलफ़िन्सटन के अनुसार यहाँ के आदि-वासियों में अभी तक कौमोजी, कैमोज तथा कमोज नाम के लोग मिलते हैं, जिनसे प्राचीन कम्बोज शब्द की याद सहज हो आती है।[2]

हो सकता है उत्तर वैदिक काल में कम्बोज ब्राह्मण-विद्या का केन्द्र रहा हो। वंश ब्राह्मण में कम्बोज औपमन्यव[3] नाम के गुरु का उल्लेख आया है।

Transactions of the Sixth Oriental Conference, Patna, p. 109) में दर्शित है। 'कम्बोज' (Kamboja) को 'बाल्हिक' (Balhika) या (Bactria) से एकदम पृथक् माना गया है। इस संदर्भ में रामायण (1.6. 22), महाभारत (VII, 119. 14.26) और मुद्राराक्षस (II) देखा जा सकता है।

१. Watters, *Yuan Chwang*, Vol. I, p. 284; प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता 'कनिंघम' (Cunningham) (*AGI*, 1921, p. 148) प्रमाणित करता है कि कश्मीर के दक्षिणी भाग में स्थित 'राजोरी' (Rajaori) के नायकत्व में राजपुर (Rajapura) रहा है, यथार्थतः महाभारत (II. 27) में कम्बोज को बिलकुल पृथक् माना गया है; और अभिसार (Abhisar) जिसे 'राजोरी' (Rajaori) क्षेत्र में प्रमाणित किया जाता है, कोई भी अर्थ नहीं रखता है कि दोनों स्थान उस काल में बिलकुल स्वतन्त्र रूप से नामधारी अथवा अधिकारी रहे हों। क्या 'ग्रेट एपिक' (*Great Epic*, II. 30, 24-25) 'सुह्म' (Suhma) और 'ताम्रलिप्ति' (Tamralipti) दोनों में पृथक्त्व नहीं प्रदर्शित करता है? क्या 'दशकुमार-चरित' (*Dashakumara-Charita*) 'धामलिप्त' (Dhamlipta) जो 'सुह्म' (Suhma) देश में स्थित है, पर समान रूप से जोर देता है? अथवा निश्चयता प्रकट करता है? सत्य तो यह है कि 'राजोरी' (Rajaori) 'कम्बोज' (Kamboja) के केवल एक भाग के रूप में रहा है और जो कि अन्य क्षेत्र भी अपने में निहित करता है। परवर्त्ती काल में, 'राजोरी' (Rajaori) के शासक-परिवार के लोग 'खश' (Khasa) जाति के रहे हैं (*JASB*, 1899, Extra No. 2.28)।

२. Elphinstone, *An Account of the Kingdom of Kabul*, Vol. II, pp. 375-377; *Bomb. Gaz.*, I. 1, 498n; *JRAS*, 1843, 140; *JASB*, 1874, 260n; Wilson, विष्णु पुराण, III. 292. पालि-ग्रन्थों में कम्बोजों के प्रसंग में 'अस्सानम् आयतनम्' का उल्लेख, जिसका अर्थ 'घोड़ों का देश' है, मिलता है (*DPPN*, I. 526; *Cf.* महाभारत, vi. 90.3)। इसकी तुलना अस्पासिओई तथा अस्साकेनोई शब्दों से की जा सकती है जो विभिन्न ग्रन्थकारों ने सिकन्दर के समय में अलिशंग तथा स्वात की घाटियों में रहने वालों के लिए लिखा है (*Camb. Hist. Ind.*, I. 352n)।

३. *Vedic Index*, I. 127, 138; यास्क, II. 2.

मज्झिम निकाय[1] में कम्बोज में आर्यों का होना स्वीकार किया गया है। यास्क के समय में भारतवर्ष[2] के अन्दर के आर्यों से कम्बोजों को भिन्न माना जाता था, बाद के युगों में इस धारणा में परिवर्तन भी होते रहे। भूरिदत्त जातक[3] में कम्बोजों को अनार्य (या जंगली) कहा गया है—

एते हि धम्मा अनारिय रूपा
कम्बोजकानाम् वितथा बहुन्नन ति।[4]

उपर्युक्त पंक्ति युवान च्वांग के उस वर्णन से पूर्णरूपेण मेल खाती है, जो उसने कम्बोजों के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया है। युवान च्वांग लिखता है—"लम्पा से राजपुर तक के क्षेत्र में बसने वाले देखने में सरल और कड़े स्वभाव के लगते हैं। बोली से काफ़ी तेज़ और असंस्कृत मालूम होते हैं। ये लोग वास्तव में भारतवासी नहीं हैं, बल्कि सीमावर्त्ती क्षेत्र के निम्न कोटि के लोग हैं।"[5]

महाभारत-काल में सम्भवतः राजपुर ही कम्बोजों का मुख्य नगर था। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स के अनुसार आरम्भिक बुद्ध-काल में द्वारका कम्बोजों की राजधानी थी। किन्तु द्वारका कम्बोज राज्य में नहीं थी, बल्कि कम्बोज से द्वारका को एक सड़क जाती थी।[6] कुछ शिलालेखों में नन्दी नगर को कम्बोजों का मुख्य नगर माना गया है।

वैदिक साहित्य में किसी भी कम्बोज राजा का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वैदिक साहित्य में कम्बोज औपमन्यव नामक गुरु का उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः कम्बोज प्रदेश के ही थे। महाभारत के अनुसार कम्बोज में राजतंत्र-शासन-प्रणाली थी।[7] महाभारत में कम्बोज राजा चन्द्रवर्मन तथा सुदक्षिण का नाम मिलता है। कालान्तर में यहाँ भी राजतन्त्र के

---

१. II. 149.

२. II. 2; *JRAS*, 1911, 801f.

३. No. 543.

४. जातक, VI. 208.

५. Watters, I. 284; कम्बोजों के लिए S. Levi, "*Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde*", *JA*, 1923 भी देखिए।

६. *DPPN*, I. 526; *Cf.* Law, *The Buddhist Conception of Spirits*, pp. 80-83.

७. *Cf.* I. 67. 32; II. 4.22; V. 165. 1–3; VII. 90.59, etc.

स्थान पर संघ-शासन की व्यवस्था हो गई थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[१] में कम्बोजों के सम्बन्ध में 'वार्त्ता शास्त्रोपजीविन्' शब्दावली मिलती है। सम्भवतः कम्बोज कृषकों, पशुपालकों, व्यापारियों तथा सैनिकों का गणतंत्र था। महाभारत में कम्बोजों के बारे में 'कम्बोजानाञ्च ये गणाः' वाक्य मिलता है।[२]

२. महाभारत तथा महाजनपद

महाभारत के कर्णपर्व में कुछ महाजनपदों की विशेषताओं का बड़ा ही रोचक वर्णन मिलता है।[३] इस वर्णन में कुरु, पांचाल, मत्स्य, कोशल, काशी, मगध, चेदि तथा शूरसेन महाजनपदों की प्रशंसा की गई है तथा अंग राज्य का भी उल्लेख हुआ है—

> **कुरवः सह पंचालाः शाल्वा मत्स्या स-नैमिषाः[४]**
> **कोशलाः काशयोऽङ्गाश्च कलिंगा मागधास्तथा।**
> **चेदयश्च महाभागा धर्मम् जानन्ति शाश्वतम्**
> **ब्राह्मम् पंचालाः कौरवेयास्तु धर्मम्**
> **सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम्।**

"कौरवों के साथ-साथ पांचाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोशल, काशी, अंग, तथा चेदि राज्य के रहने वाले बड़े भाग्यशाली हैं तथा सदाचार का अर्थ जानते हैं। पाचालवासी वैदिक नियमों का पालन करते हैं। कौरव लोग सदाचार, मत्स्य लोग सत्य तथा शूरसेनवासी यज्ञ की विधियों के अनुसार चलते हैं।"

मगधवासी संकेतों को समझते थे। कोशल के लोग किसी वस्तु को देख कर ही उसे जान लेते थे। इसी प्रकार कुरु और पांचाल लोग आधी से भी पूरी बात समझ लेते थे। केवल शाल्ववासी पूरी तरह समझाने पर ही पूरी बात समझ पाते थे।

> **इंगितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोशलाः**
> **अर्द्धोक्ताः कुरु-पंचालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः।**

१. P. 378.

२. VII. 89. 38.

३. महाभारत, VIII. 40. 29; 45. 14-16; 28. 34. 40.

४. सीतापुर से २० मील दूर गोमती के बायें तट पर निमसार में नैमिप लोग रहते थे (Ayyar, *Origin and Early History of Saivism in South India*, 91)।

अंग राज्य वालों के बहुत से निन्दक थे। माद्रा तथा गान्धार वासियों की तरह अंगवासियों की भी बड़ी निन्दा की गई है—

आतुरानाम् परित्यागः सदारसुत विक्रयः
अंगेषु वर्तते कर्ण येषाम् अधिपतिर्भवान्।

"ऐ कर्ण ! जिस अंग राज्य के तुम राजा हो, वहाँ दुःखियों व पीड़ितों को त्याग दिया जाता है (उदासीनता दिखाना) तथा बच्चों और गृहणियों को बेच दिया जाता है।"

मद्रकेषु च संसृष्टाम्,
शौचां गांधारकेषु च,
राज-याजक-याज्ये च
नष्टम् दत्तम् हविर्भवेत्।

"जिस प्रकार माद्रावासियों में मित्रता की भावना नहीं रही, उसी तरह गान्धारवासियों में स्वच्छता नहीं रह गई। यज्ञ-कुण्ड में हवन या आहुति करने के समय राजा ही यज्ञकर्त्ता तथा पुरोहित दोनों रहता है।"

ऊपर जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं उनसे उत्तर भारत के महाजनपदों के निवासियों के प्रति मध्यदेश के कवियों की धारणा स्पष्ट हो जाती है।

३. काशी का पतन तथा कोशल का प्रभुत्व

कोशलो नाम मुदितः स्फितो जनपदो महान्।

—रामायण

पाँचवीं तथा छठवीं शताब्दी ईसापूर्व में सोलह महाजनपदों का उत्थान-काल समाप्त हो गया। उसके बाद का इतिहास यों है कि सोलहों महाजनपद छिन्न-भिन्न होकर कतिपय राज्यों के रूप में बदल गये और अन्त में ये राज्य मगध साम्राज्य के अंग बन गये।

इन राज्यों में काशी का पतन सबसे पहले हुआ। महावग्ग तथा जातकों में काशी तथा पड़ोसी राज्यों से, और विशेष कर कोशल से, संघर्ष का उल्लेख मिलता है। इस संघर्ष से संबंधित विवरण अभी तक अनिश्चित-सा है। इन संघर्षों में पहले तो काशी राज्य को सफलता मिली, किन्तु बाद में कोशल राज्य की ही जीत रही।

महावग्ग[1] और कौशाम्बी जातक[2] में कहा गया है कि काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने कोशल के राजा दीघति का राज्य छीन कर उनका वध कर डाला। कुनाल जातक[3] में भी कहा गया है कि काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने अपनी सेना के साथ कोशल को घेर लिया। उसने कोशल के राजा का वध करके उनकी रानी को छीन लिया तथा उसे अपनी रानी बना लिया। कोशल पर काशी के राजा की विजय का उल्लेख ब्रह्मचत्त[4] तथा सोननन्द जातकों[5] में भी किया गया है।

फिर भी काशी[6] राज्य की यह विजय स्थायी न हो सकी। महासीलव[7] जातक के अनुसार काशी के राजा महासीलव का राज्य कोशल-नरेश ने छीन लिया था। घट[8] तथा एकराज जातक[9] के अनुसार कोशल के वक और दब्ब-सेन राजाओं ने काशी पर विजय पायी थी। काशी पर कोशल की यह जीत सम्भवतः राजा कंस के समय में हुई थी।[10] काशी पर कंस के विजय-काल तथा बौद्ध-काल में कोई अधिक अन्तर नहीं लगता क्योंकि बौद्ध-काल में भी लोगों के मस्तिष्क में काशी के वैभव-काल की स्मृति हरी थी। अंगुत्तर निकाय की रचना के समय भी लोगों को काशी का उत्कर्ष-काल भली प्रकार याद था।

राजा महाकोशल के समय (छठवी शताब्दी ईसापूर्व के मध्य) में काशी कोशल राज्य का एक अंग था। राजा महाकोशल ने जब मगध के राजा के साथ अपनी पुत्री कोशला देवी का विवाह किया तो काशी राज्य का एक गाँव मगध को दे दिया। इस गाँव की मालगुजारी १ लाख रुपये होती थी। कोशल नरेश ने गाँव देते समय कहा कि इस गाँव का राजस्व मेरी पुत्री के हमाम तथा सौन्दर्य प्रसाधनों पर व्यय किया जायगा।[11]

---

१. *SBE*, XVII, 294-99.

२. No. 428.

३. No. 536.

४. No. 336.

५. No. 532.

६. *Cf.* जातक, नं० 100.

७. No. 51.

८. No. 355.

९. No. 303.

१०. सेय्य जातक, No. 282; तेसकुन जातक, No. 521; *Buddhist India*, p. 25.

११. हरित मात जातक, No. 239; वड्ढकी सूकर जातक, No. 283.

महाकोशल के पुत्र प्रसेनजित के समय में भी काशी कोशल राज्य का ही एक भाग रहा। लोहिच्च सुत्त[1] नामक बौद्ध ग्रन्थ में गौतम बुद्ध के एक प्रश्न के उत्तर में लोहिच्च ने काशी को कोशल राज्य का एक अंग कहा है।[2] महावग्ग[3] में कहा गया है कि प्रसेनजित का भाई काशी में कोशल के वायसराय के रूप में रहता था।

संयुक्त निकाय[4] के अनुसार प्रसेनजित पाँच राजाओं के एक गुट का नेतृत्व करता था। इनमें से एक तो उसका भाई ही था। वह काशी में रहता था। शेष अन्य राजाओं एवं सामन्तों में सेतव्य के राजन्य पायासि[5] तथा केसपुत्त के कालामस का नाम मुख्य है।[6]

इस गुट के दूसरे राजाओं में कपिलवस्तु के शाक्य सामन्त भी थे। कई ग्रन्थों से सिद्ध होता था कि ये कोशल के राजाओं की अधीनता स्वीकार करते थे।[7] देवदह के राजा भी कोशल के ही अधीनस्थ राजाओं में से एक थे।[8]

सम्भवतः महाकोशल के ही शासन-काल मे मगध के राजा बिम्बिसार का राज्याभिषेक हुआ था। प्रस्तुत ग्रन्थ के इस भाग में बिम्बिसार के राज्याभिषेक के पूर्व के प्राचीन भारत के इतिहास पर विचार किया गया है।

---

१. *Dialogues of the Buddha*, Part I. 288-97.

२. *Cf. Gradual Sayings*, V. 40. 'ज्यों-ज्यों कोशल-नरेश ने पसेनदी का राज्य बढ़ाया, त्यों-त्यों कोशलवासी आगे बढ़ते गये। कोशल का राजा ही मुख्य शासक था।

३. *SBE*, XVII. 195.

४. *The Book of the Kindred Sayings*, translated by Mrs. Rhys Davids, I, p. 106.

५. *Cf. Milinda*, IV. 4. 14; विमान-वत्थु की टीका; Law, *Heaven and Hell*, 79, 83. सहत-महत शिलालेख में पयासि नाम का गाँव आया है। इसके लिये Ray, *DHNI*, I, p. 521 भी देखिए।

६. *Indian Culture*, II. 808; अंगुत्तर, I, 188.

७. सुप्र, p. 99.

८. कपिलवस्तु, देवदह तथा कोलिय को तीन विभिन्न रूपों में कहा गया है (*DPPN*, I, p. 102 n)। शाक्यों पर कोशलाधीश के प्रभुत्व से यह भी कहा जा सकता है कि देवदह जो कि शाक्यों का नगर था, उस पर भी कोशलाधीश का ही प्रभुत्व था।

४. राजतन्त्र

पिछले पृष्ठों में मोटे तौर पर हम लोगों ने राजा परीक्षित के सिंहासन पर आरूढ़ होने से लेकर बिम्बिसार के राज्याभिषेक तक के उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के राजनीतिक उत्थान-पतन का अध्ययन किया। अब हम उपर्युक्त युग की उन कतिपय प्रवृत्तियों पर भी दृष्टि डालेंगे जिनके बिना राजनीतिक इतिहास पूर्ण नहीं माना जा सकता। हमने देखा कि उपर्युक्त युग के अधिकांश में भारत के विभिन्न भागों में राजतन्त्र का ही प्राधान्य रहा। बाद के वैदिक साहित्य तथा अन्य शास्त्रों में हमें भारत के विभिन्न भागों के राजाओं के राजनीतिक प्रभुत्व एवं अधिकारों तथा उनके सामाजिक महत्त्व का थोड़ा-बहुत विवरण मिलता है। इन विवरणों से राजाओं के चयन, उनके संस्कारों, परिवार के मुख्य सदस्यों, नागरिक व सैनिक व्यवस्था, राजा के अधिकारों की सीमा तथा राजकाज-संचालन के बारे में भी काफ़ी जानकारी प्राप्त होती है। जानकारी के समस्त स्रोतों की छानबीन करने पर भी उपर्युक्त युग का जो चित्र हमें प्राप्त होता है, वह धुंधला ही कहा जायगा। पाँच सौ वर्ष ईसापूर्व के पहले के इतिहास के बारे में केवल वैदिक स्रोतों पर ही विश्वास किया जा सकता है। किन्तु, फिर भी इन स्रोतों से प्राप्त जानकारी की पुष्टि मगध के उत्थान के बाद तैयार किये गये उत्तर वैदिक साहित्य से की जायगी।

भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित शासन-प्रथाओं का उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण में इस प्रकार हुआ[1]—

"एतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते सम्राट्-इत्येनान् अभिषिक्तानाचक्षत् एतामेव देवानां विहितिमनु।

एतस्यां दक्षिणायां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव तेऽ भिषिच्यन्ते भोज-एत्येनान् अभिषिक्तानाचक्षत् एतामेव देवानाम् विहितिमनु।

एतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो येऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते स्वरात्-इत्येनान् अभिषिक्तानचक्षत् एतामेव देवानाम् विहितिमनु।

एतस्यां उदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तम् जनपदा उत्तर-कौरव उत्तर-मद्रा इति वैराज्यायैव तेऽअभिषिच्यन्ते विराट-इत्येनान् अभिषिक्ताना-चक्षत् एतामेव देवानां विहितिमनु।

१. VIII. 14.

एतस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरु-पंचालानम् राजानः स वाश-ओशिनराणां राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते राज-एत्येनान्-अभिषिक्ताना चक्षत् एतामेव देवानाम् विहितिमनु ।"

"पूर्वी हिस्से में जो भी राजा हुए, वे सम्राट् रूप में गद्दी पर बैठे। वे अपने को सम्राट् समझते थे तथा देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होते थे। दक्षिणी भाग के राजा सत्वातों के राजा थे और देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होने पर 'भौज्य' कहे जाते थे। पश्चिमी हिस्से में जो राजा होते थे और देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होते थे, वे स्वशासक कहे जाते थे। उत्तरी क्षेत्र (उत्तर-कुरु तथा उत्तर-माद्रा) के राजा जब देवताओं की इच्छा से शासनारूढ़ होते थे तो वे सार्वभौम कहे जाते थे।"[1]

कुछ विद्वानों का कहना है कि 'वैराज्य' शब्द का अर्थ शासकविहीन राज्य है। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में एक राजा का राज्याभिषेक इन्द्र के अभिषेक के साथ किया गया और विराट कहा गया मिलता है। साथ ही उसे 'वैराज्य' की उपाधि के योग्य समझा गया है। जब किसी राजा का पुनराभिषेक किया जाता है तब उसे वैराज्य या अन्य राजसी उपाधियों से विभूषित किया जाता है। सायरण के अनुसार 'वैराज्य' का अर्थ है 'पूर्वख्याति'। इस प्रसंग में 'इतरेभ्यो भूपतिभ्यो वैशिष्ट्यम्' शब्दावली का प्रयोग किया गया है। डॉक्टर कीथ भी 'वैराज्य' शब्द का यही अर्थ स्वीकार करते हैं।

शुक्रनीति[3] में विराट शब्द को 'उच्चतर राजा' बताया गया है। महाभारत में कृष्ण को सम्राट्, विराट, स्वराट तथा सुरराज[4] आदि नामों से विभूषित किया गया है। यदि उत्तर कुरु तथा उत्तर माद्रा को गणतंत्र माना जाता था तो इसलिए नहीं कि उनके प्रसंग में 'वैराज्य' शब्द का प्रयोग किया गया

---

१. ऋग्वेद ब्राह्मण, translated by Keith, Harvard Oriental Series, Vol. 25.

२. VIII. 17.

३. B. K. Sarkar's Translation, p. 24; Kautilya (VIII. 2) में वैराज्य का अर्थ एक ऐसी शासन-प्रणाली है जो शक्ति के बल पर देश पर कब्जा करती हो। ऐसा राज्य वैध राजा से शोषण के अभिप्राय से उसका राज्य छीनता है।

४. XII. 43. 11; *Cf.* 68. 54.

है, बल्कि इसलिये गणतंत्र माना जाता था कि वे राज्य नहीं बल्कि जनपद थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि ब्राह्मण-काल में उत्तर कुरु देवक्षेत्र कहा जाता था तथा वहाँ नश्वर जीवों की पहुँच असम्भव मानी जाती थी।[1]

ब्राह्मण-काल में शासन-तंत्र को साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य तथा राज्य आदि अनेक प्रकारों का कहा गया है। ये सब शासन-तंत्र के ही प्रकार हैं, इसका निर्णय करना आसान नहीं है। किन्तु, शतपथ ब्राह्मण में साम्राज्य तथा राज्य को अलग-अलग प्रकार का बतलाया गया है।[2]

"राजा वै राजसूयेनेष्ट्व भवति, सम्राड् वाजपेयेन-आवरम् ही राज्यं परम् साम्राज्ययम्। कामयेत वै राजा साम्राड् भवितुं अवरम् हि राज्यम् परम् साम्राज्यम्। न सम्राट् कामयेत राजा भवितुं अवरम् हि राज्यम् परम् साम्राज्यम्।"

"एक शासक 'राजसूय' करने से राजा तथा 'वाजपेय' करने से सम्राट् माना जाता है। राजा का पद छोटा तथा सम्राट् का पद बड़ा है। स्वभावतः राजा की इच्छा सम्राट् बनने की हो सकती है, किन्तु सम्राट् भला राजा क्यों बनना चाहेगा।"

ऋग्वेद[3] में तथा उसके बाद पुराणों में भी 'भोज' शब्द समुचित रूप में आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'भोज' शब्द को राजसी उपाधि कहा गया है, जिसका प्रयोग दक्षिण भारत[4] के राजाओं के सिंहासनारूढ़ होने के बाद उनके लिये किया जाता था। 'सीज़र' शब्द कुछ इसी प्रकार की अर्थध्वनि देता है। आरम्भ में 'सीज़र' रोम के तानाशाह का नाम था। बाद में उसके परिवार वालों व वंशजों की यही उपाधि हो गई। उसके बाद तो 'सीज़र' शब्द जर्मनी तथा

१. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 23; ऋग्वेद, V. I. 238; II. 23, 1; X. 34, 12; 112. 9; शतपथ ब्राह्मण (XIII. 2. 8. 4 etc.) में गणों तथा गणज्येष्ठों का उल्लेख मिलता है।

२. V. I. I. 12-13; *Cf.* कात्यायन श्रौत सूत्र, XV. 1.1, 2.

३. III, 53. 7.

४ 'भोज' शब्द का उल्लेख राजा या सामन्त के अर्थ में भी आया है। अपनी प्रजा का रक्षक भी इसका अर्थ कहा जा सकता है (विशमत्ता)। दक्षिणी भारत के कुछ शिलालेखों के अनुसार यह एक सरकारी ओहदा भी था। (*Ind. Ant.*, 1876, 177; 1877, 25-28)। महाभारत (I. 84. 22) में ऐसे राजा के लिए भी यह शब्द आया है जो अपने परिवार के साथ कुछ शाही सुविधाओं से वंचित रहता है (अराजा भोज शब्दम् त्वम् तत्र प्राप्स्यसि मान्वयः)।

रोम दोनों राज्यों के राजाओं की पदवी के रूप में प्रयोग में आने लगा। इसी प्रकार 'स्वराज्य' शब्द है, जिसका अर्थ है अनियंत्रित राज्य। ऐसा राज्य, राज्यवासियों की भावना के प्रतिकूल पड़ता था।[1]

यद्यपि सदा ही नहीं, किन्तु प्रायः क्षत्रिय ही राजा होता था। ब्राह्मण लोग राजकाज के योग्य नहीं समझे जाते थे। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि राजा का सम्बन्ध राजसूय से होता है। राजसूय करने के बाद ही राजा की पदवी प्राप्त हो सकती है। राजसूय से क्षत्रिय राजा हो सकता है, जिसके योग्य ब्राह्मण नहीं होते।[2]

"राज्ञा एव राजसूयम्। राजा वै राजा सूयेनेष्ट्वा भवति न वै ब्राह्मणो राज्यायालम् अवरम् वै राजसूयम् परम् वाजपेयम्।"

ऐतरेय ब्राह्मण[3] में एक जगह एक ब्राह्मण राजा की चर्चा है। इसी प्रकार एक शूद्र राजा का भी उल्लेख है। आयोगव तथा अन्य अनार्य राजाओं का प्रसंग वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। छांदोग्य उपनिषद्[4] में जानश्रुति पौत्रायण को शूद्र राजा कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण[5] में मारुत्त आविक्षित को आयोगव राजा कहा गया है। आयोगव का अर्थ विधि-संहिताओं में 'मिश्रित जाति का' बताया गया है। ये लोग वैश्य पत्नी[6] तथा शूद्र राजा के वंशज माने गये हैं। श्रौत सूत्र और रामायण में निषाद स्थपति (सामन्तराज) का उल्लेख आया है। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में लिखा है कि अनार्य भी राजपद पा सकता है।[7] इसका अर्थ या तो यह है कि पहले अनार्य राजा होते थे या आर्य राजाओं के साथ अनार्य *राजाओं की भी गणना होती रही है।* महाकाव्य तथा जातक-कथाओं में ब्राह्मण तथा अन्य जातियों के राजाओं का उल्लेख आया है।[8]

---

१. कठक संहिता, XIV. 5; मैत्रायणि संहिता, 1.11. 5, etc.; *Vedic Index*, II. 221.

२. V. I.I. 12; *SBE*, XLI; Eggeling, शतपथ ब्राह्मण, Part III, p. 4.

३. VIII. 23 (Story of Atyarati's offer to Vasishtha Satyahavya)।

४. IV. 2. 1-5. सम्भवतः इस काल में कुछ शूद्र राजा भी थे।

५. XIII, 5. 4. 6.

६. मनु-संहिता, X. 12.

७. *Vedic Index*, I. 454; रामायण, II. 50. 32; 84. 1; जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, I. 4. 5.

८. *Cf.* जातक, 73, 432; महाभारत, i. 100. 49 f; 138. 70.

प्रायः राजा का पद पैतृक या पुश्तैनी हुआ करता था। ऐसे राजाओं की बंश-परम्परा की खोजबीन आसान है। इस प्रसंग में राजा जनक तथा राजा परीक्षित का नाम लिया जा सकता है। शतपथ ब्राह्मण[1] मे 'दशपुरुषम् राज्य' (दस पीढ़ियों वाले राजवंश) शब्द के उल्लेख से पैतृक राजपद की पुष्टि होती है, किन्तु निर्वाचन द्वारा राजा बनाये जाने का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता।[2] राजा का निर्वाचन या तो जनता करती थी या उसके मंत्रीगण। जैसा कि कौरव-वंश[3], देवापी और शान्तनु की कथाओं मे स्पष्ट है, राजा का चुनाव राजवंश के लोगों के बीच मे ही होता था। काशिराज के उपोसथ और संवर राजकुमारों से संवन्धित कथाओं से भी इसी बात की पुष्टि होती है। संवर जातक[4] में कहा गया है कि राजा के मरते समय उसके मंत्रीगण पूछते थे, "श्रीमान् आपकी मृत्यु के पश्चात् किसको श्वेतछत्र (उत्तराधिकार) दिया जाय?" राजा उत्तर देता था, "मंत्रियो! मेरे सभी बेटे राजपद के योग्य है, किन्तु आप उसे ही यह पद दें जिससे आप सन्तुष्ट हो।"

कभी-कभी तो ऐसे लोगों को भी राजा बनाये जाने के उदाहरण मिलते हैं, जिनका सम्बन्ध राजवंश से नहीं होता था। एक बार सृंजयों ने अपने पुश्तैनी राजा को राज्य से बाहर निकाल दिया था। इन लोगों ने स्थपति[5] को भी निकाल दिया था। जातक कथाओं में राजवंश से बाहर के आदमी के राजा चुने जाने

---

१. XII, 9. 3. 1-3; *Cf.* शासन के उत्तराधिकारी के जन्म का भी उल्लेख (ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 9), राजा को राजपिता कहा जाता था (VIII. 17), मिलता है।

२. इस प्रसंग में ऐतरेय ब्राह्मण (VIII. 12) के अनुच्छेद का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें ईश्वरीय शासक के चयन और उसके राज्याभिषेक का वर्णन मिलता है (Ghoshal, *A History of Hindu Political Theories*, 1927, p. 26)। वैदिक काल के बाद साहित्य में राजा के चुनाव का जो उल्लेख है, वह भी बहुत पहले का चित्रण लगता है (महाभारत, I, 94. 49---राजत्वे तम् प्रजाः सर्वा धर्मज्ञ इति वव्रिरे)। राजकर्त्ती (ऐतरेय ब्राह्मण, VIII 17; शतपथ ब्राह्मण, III, 4. 1.7.) शब्द के प्रयोग से ऐसा लगता है कि राजा के चुनाव में राजकर्मचारियों तथा गाँवों के मुखियों का बड़ा हाथ होता था। नैतिक गुणों के होने पर जोर दिया गया है। जो राजा होता था उसे ओजिष्ठ, बलिष्ठ, सहिष्ठ सत्तमः, पारयिष्णुतम एवं धर्मज्ञ कहा जाता था। ईसा की ४ शताब्दी पूर्व पंजाब के एक भाग में शारीरिक सौन्दर्य पर राजा का चुनाव होता था।

३. निरुक्त, II. 10; *Vedic Index*, II. 211.

४. No. 462.

५. शतपथ ब्राह्मण, XII. 1. 3. 1ff.

के कई उल्लेख मिलते हैं । पादंजलि जातक[१] में कहा गया है कि एक बार बनारस के किसी राजा के मर जाने पर उनके धार्मिक मामलों के मंत्री को राजा बनाया गया। राजा का पादंजलि नामक पुत्र बड़ा ही आलसी और आवारा था। सच्चंकिर जातक[२] में एक कथा है जिसके अनुसार ब्राह्मणों तथा अन्य वर्णों के लोगों ने एक बार अपने राजा का वध करके एक साधारण आदमी को राजा के पद पर प्रतिष्ठित किया था। कभी-कभी तो देश के बाहर के व्यक्ति को भी राजा बनाया जाता था। दरीमुख[३] तथा सोनक[४] जातक में कहा गया है कि बनारस के राजा के उत्तराधिकारी की असफलता पर जनता ने मगध के राजकुमार को राजा बनाया था।

ब्राह्मण-काल में आम तौर से राजा को चार पत्नियाँ तक रखने का अधिकार होता था। ये पत्नियाँ महिषी, परिवृक्ती, वावाता तथा पालागली कही जाती थीं। शतपथ ब्राह्मण[५] के अनुसार सबसे बड़ी या सर्वप्रथम विवाहित पत्नी को 'महिषी' कहते थे। 'परिवृक्ती' उस पत्नी को कहते थे जो परित्यक्ता हो या सम्भवतः जिसके कोई पुत्र न हो। 'वावाता' राजा की परम प्रिय पत्नी को कहते थे। 'पालागली' राजमहल के निम्नवर्गीय किसी दरबारी की लड़की होती थी।[६] ऐतरेय ब्राह्मण[७] में तो यहाँ तक कहा गया है कि राजा हरिश्चन्द्र के सौ रानियाँ थीं। जातक-काल में कई राजाओं के अन्तःपुर (जनानखाने) इससे भी अधिक बड़े होते थे। कुस जातक[८] में कहा गया है कि राजा ओक्काको के (इक्ष्वाकु) के १६ हज़ार रानियाँ थीं। उनकी सबसे बड़ी रानी शीलवती थी। दशरथ जातक[९] के अनुसार, बनारस के राजा के अन्तःपुर में भी इतनी ही रानियाँ थीं। सुरुचि जातक[१०] में मिथिला का राजा कहता है कि "मेरा राज्य

१. No. 247.
२. No. 73.
३. No. 378; *Cf.* No. 401.
४. No. 529.
५. VI. 5. 3. 1. *Vedic Index*, I. 478.
६. Weber and Pischel in *Vedic Index*, 1. 478.
७. VII. 13.
८. No. 531.
९. No. 461. रामायण (II. 34.13) में इसके लिये कहा गया है कि इस राजा को पटरानियों के अलावा ७५० रानियों के रखने का अधिकार था।
१०. No. 482.

काफ़ी बड़ा और विस्तृत है। ऐसे राजा को कम से कम १६ हज़ार रानियाँ तो अपने यहाँ रखनी ही चाहिए।" यह १६ हज़ार की संख्या कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण मालूम होती है, किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि जातक-काल के राजा लोग बहु-पत्नीवादी थे जो चार पत्नियों की सीमा को तो पार कर ही जाते थे। कभी-कभी तो सौ पत्नियों की सीमा भी लाँघ जाते थे।

उत्तराधिकार पा जाने या चुने जाने के बाद राजा का विधिवत् राज्याभिषेक किया जाता था। राज्याभिषेक शतपथ ब्राह्मण[1] तथा वैदिक संहिताओं में लिखे मंत्रों द्वारा किया जाता था। ऐसे लोग जो राज्याभिषेक करवाते थे, उन्हें राजकर्त्तृ या राजकृत कहते थे, और राजा की प्रशंसा के गीत गाने वाले, इतिहासकार, सारथी आदि सूत तथा गाँवों के नेता ग्रामणी[2] कहे जाते थे। प्रोफ़ेसर राधाकुमुद मुकर्जी[3] के अनुसार, "राज्याभिषेक के समारोह में सरकारी और ग़ैरसरकारी सभी प्रकार के तत्त्वों का प्रतिनिधित्व रहता था।" ऐसे राज्याभिषेकों के अवसर पर बलि की विधि वाजपेय या राजसूय यज्ञ द्वारा ही होती थी। इसे पुनर्भिषेक या ऐन्द्र-महाभिषेक भी कहते थे।

वाजपेय यज्ञ करने वाले राजा का पद बढ़ जाता था और उसे सम्राट् की पदवी प्राप्त हो जाती थी, जबकि राजसूय यज्ञ करने वाला साधारण राजा ही माना जाता था।[4] ये राजा राज्य, साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, महाराज्य, आधिपत्य, स्वावश्य तथा आतिष्ठत्व आदि के सम्मान से विभूषित होते थे।[5]

ऐन्द्र महाभिषेक के उद्देश्य के बारे में निम्न उल्लेख मिलता है---

"स य इच्छेद् एवंवित् क्षत्रियं अयं सर्वांजितीर्जयेतायं सर्वाल्लोकान् विन्देतायं सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्यम्, अतिष्ठाम्, परमताम् गच्छेत, साम्राज्यम्, भौज्यम्, स्वा-

१. III. 4.1. 7; XIII. 2.2. 18.

२. ग्रामणी का अर्थ साधारणतया वैश्य होता था (*Vedic Index*, I. 247; II. 334; *Camb. His. Ind.*, 131; शतपथ ब्राह्मण, V. 3.1.6)।

३. *The Fundamental Unity of India*, I. 43.

४. राज्य, *Cf.* शतपथ ब्राह्मण, V.I. 1, 12-13. कुछ ग्रन्थों में वाजपेय यज्ञ को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि राजसूय यज्ञ वरुण-सव होता है। तैत्तरीय संहिता (V. 6. 2. 1) और ब्राह्मण (II. 7. 6.1); शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 3. 2; Keith, *The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads*, 340; महाभारत, Bk. II. 12, 11-13. etc.

५. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 6. इन शब्दों के अर्थ के लिये Keith के किये अनुवादों 'भौज्य' और 'वैराज्य' को देखिए।

राज्यम्, वैराज्यम्, पारमेष्ठ्यम्, राज्यम्, महाराज्यम्, आधिपत्यम्, अयम् समन्त-पर्यायि स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आऽन्तादा परार्द्धात् पृथिव्यै समुद्र-पर्यन्ताया एकराट् इति तमेतेन ऐन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियम् शापयित्वाऽभिषिन्चेत् ।''[1]

अर्थात्, 'जो क्षत्रिय सर्वविजेता, सर्वश्रेष्ठ, सार्वभौम, शक्ति-सम्पन्न तथा धरती के एक कोने से सागर के तट तक अपना राज्य-विस्तार चाहता है, उसे राजा इन्द्र की तरह अपना ऐन्द्र महाभिषेक कराना चाहिए ।'[2]

इतिहासकार एग्जेलिग के मतानुसार, वाजपेय-समारोह[3] में १७ रथों की दौड़ भी शामिल रहती थी। इस दौड़ में यज्ञ करने वाले को विजयी हो जाने दिया जाता था। रथों की दौड़ से ही इस समारोह का नाम वाजपेय पड़ा। प्रोफ़ेसर हिलब्रैण्ड के कथनानुसार, इसी को प्राचीन भारत के राष्ट्रीय समारोह की संज्ञा दी जाती थी। इसे हम तत्कालीन भारतीय ओलम्पिक खेल के रूप में समझ सकते हैं। रथों की इस दौड़ के बाद एक और मनोरंजक प्रदर्शन होता था। दौड़ के विजेता को एक बाँस पर चढ़ना होता था जिसकी चोटी पर गेहुँए रंग का एक चक्र[4] रहता था। वहीं से वह सपत्नीक धरती माता को अर्घ्य देता था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जो राजा बाँस के शिखर पर अर्थात् हवा में आसन ग्रहण कर लेता था, वह सर्वोपरि हो जाता था[5] और सिंहासन का अधिकारी समझ लिया जाता था। यज्ञकर्त्ता जब नीचे उतरता था तो उसे सिंहासन पर बैठाला जाता था जिस पर बकरे का चर्म बिछा होता था। यज्ञकर्त्ता से अध्वर्यु (अर्थात् पुरोहित) कहता था—"अब तुम शासक हुए, तुम दृढ़प्रतिज्ञ (ध्रुव, धरुण) हो।" शासक भी कहता था—"मैं कृषि-उन्नति, शान्तिपूर्ण जीवन (क्षेम), धन (रायि), समृद्धि (पोष), जनकल्याण तथा जनहित के हेतु आसन ग्रहण करता हूँ।"[6]

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 15.

२. Keith, *HOS*, Vol. 25.

३. शतपथ ब्राह्मण, V. 1. 1. 5. ff; *SBE*, xli; *Vedic Index*, II. 281; Keith, *Black Yajus*, cviii-cxi; *RPV U*, 339f.

४. *Gaudhumam Chashalam* (गौघूमम् चशालम्) "a wheaten head-piece. (Eggeling)" "a wheel-shaped garland of meal." (*SBE*, xli. 31; Keith *RPVU*, 339; शतपथ ब्राह्मण, V. 2.1.6) ।

५. शतपथ ब्राह्मण, V. 2. 1. 22.

६. शतपथ ब्राह्मण, V. 2. 1 25; *The Fundamental Unity of India*, p. 80.

राजसूय यज्ञ इससे अधिक समय तक चलता था और उसके अन्तर्गत कई समारोह होते थे। यज्ञ फाल्गुण मास के प्रथम दिन आरम्भ होता था और दो वर्ष या इससे कुछ अधिक ही चलता था।[1] शतपथ ब्राह्मण[2] में इस यज्ञ का विस्तृत वर्णन मिलता है। पुरोहित बड़े विस्तृत ढंग से समारोह की विधियाँ सम्पन्न करवाते थे। राजसूय यज्ञ की मुख्य विशेषतायें इस प्रकार हैं—

१. राजमहल की मुख्य महारानी तथा प्रमुख दरबारी द्वारा राज-परिवार के कुल-पूज्यों को हीरे-जवाहिरात (रत्निनां हवींषि)[3] का अर्पण।

२. 'अभिषेचनीय'[4] समारोह।

३. 'दिग्व्यास्थापन'[5]। राजा विभिन्न दिशाओं में गमन करता था। यह क्रिया उसके विश्वव्यापी शासन की प्रतीक मानी जाती थी।

४. यज्ञकर्त्ता का व्याघ्र-चर्म[6] से वेष्ठन। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति व्याघ्र के समान ही शक्ति एवं शौर्यवान् है।

५. होतृ (पुरोहित) द्वारा शुनःशेप[7] की कथा।

६. किसी सम्बन्धी[8] पर नक़ली गाय का आक्रमण तथा राजवंश के इस व्यक्ति[9] और पशु के बीच बनवटी युद्ध।

७. सिंहासनारोहण।[10]

८. कौड़ी चौपड़ का खेल, जिसमें राजा को विजयी बनाया जाता था।[11]

---

१. Keith, *Black Yajus*, pp. cxi-cxiii; *RPVU*, 341; *Vedic Index*, II. 219; *SBE*, xli, p. xxvi.

२. V. 2. 3.9 (*et seq.*); *SBE*, xli, 42-113.

३. शतपथ ब्राह्मण, V. 3. 1; M. Louis Renou says—"Les. offrandes ne sont pas faites aux *ratnin* maix aux divinites dans les maisons de chaque *ratnin*."

४. शतपथ ब्राह्मण, V. 3 3-4.

५. शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 1.3; Keith, *Black Yajus*, *op. cit.*

६. शतपथ ब्राह्मण, V.4.1. 11.

७. ऐतरेय ब्राह्मण, vii. 13 ff; Keith, *RPVU*, 341 n

८. *RPVU*, 342; *Cf.* शतपथ ब्राह्मण, V. 4.3.3 *et seq.*

९. *Cf.* तैत्तरीय संहिता, 1.8.15 टीकासहित; *Vedic Index*, II. 219; *SBE*, xli, 100, n. I.

१०. शतपथ ब्राह्मण, V.4.4.1.

११. शतपथ ब्राह्मण, V. 4. 4. 6; Keith, *Religion and Philosophy of the Veda*, etc., p. 342.

इस अवसर पर जो लोग सम्मानित किये जाते थे, वे राजवंश के पूज्य होते थे। प्रायः ये लोग राजघराने के प्रमुख जन तथा नागरिक और सैनिक सेवा के लोग होते थे। इनके नाम हैं—

१. सेनानी (सेना का सेनापति)[१]
२. पुरोहित
३. महिषी (राजा की मुख्य महारानी)
४. सूत (सारथी एवं भाट)[२]
५. ग्रामणी (गाँवों का नेता या मुखिया)[३]
६. क्षत्री (अन्तर्वंश का अग्रज)[४]
७. संग्रहीत्रि (कोषाध्यक्ष), अर्थशास्त्र के सन्निधात्रि का अग्रज
८. भागदुघ (कर वसूलने वाला)
९. अक्षवाप (चौपड़ खेल का रक्षक)
१०. गो-विकर्त्तन (दौड़ में राजा का साथी)।
११. पालागल (दूत का अग्रज)[५]

---

१. *Cf.* सेनापति ऐतरेय ब्राह्मण, viii, 23.

२. इस पद की महत्ता सुमन्त्र और संजय के उदाहरणों से अधिक स्पष्ट होती है। महाभारत (XV. 16.4) में इन्हें महामात्र कहा गया है।

३. प्रश्न उपनिषद् (III. 4.) में शासक द्वारा गाँवों में प्रधानों की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है।

४. कुरु के दरबार में विदुर एक क्षत्रिय थे (महाभारत, I. 200. 17; II, 66. 1, etc.)। विभिन्न टीकाकारों के मत के लिए देखिए (*Vedic Index*, I. 201.)।

५. काफ़ी उत्सुकता का प्रसंग है कि इस सूची में स्थपति को जो कि स्थानीय शासक था तथा जिसका शतपथ ब्राह्मण (V. 4.4.17) में उल्लेख है, 'रत्नों' की सूची में नहीं रखा गया है। शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख राजसूय यज्ञ के समापन-समारोह के समय आया है। बलिदान की तलवार जो राजा को पुरोहित से मिलती थी, राजा के भाई को बाद में प्राप्त होती थी। गुप्त-काल में प्रान्तों के गवर्नरों को स्थपति की उपाधि से विभूषित किया जाता था (Fleet, *CII*, p. 120)। तैत्तरीय उपनिषद् में भी रत्नों की सूची मिलती है। पंचविंश ब्राह्मण (*Camb. Hist. Ind.*, I. 131) में आठ वीरों का उल्लेख आया है। शतपथ ब्राह्मण (XIII, 5.4.6) में अश्वमेध के प्रसंग में परिवेष्टि, क्षत्री या सभासद् का उल्लेख आया है।

अभिषेक की प्रथा राजसूय यज्ञ की सबसे आवश्यक प्रथा **थी।** यह प्रथा **सविता सत्यप्रसव, अग्नि** गृहपति, सोम वनस्पति, बृहस्पति वाक, इन्द्र ज्येष्ठ, रुद्र **पशुपति, मित्र सत्य और वरुण** धर्मपति जैसे देवताओं को अर्घ्यदान के **बाद पूरी की जाती थी। अभिषेक** का जल (अभिषेचनीया आपः) १७ प्रकार के द्रवों का मिश्रण **होता था।** इन द्रवों में सरस्वती नदी, समुद्र, भँवर, सरोवर, कुएँ तथा ओस का **पानी** भी रहता था। अभिषेक की क्रिया ब्राह्मण पुरोहित, राजवंश के सदस्य **राजा के** भाई-मित्र, राजे-महाराजे तथा वैश्य द्वारा सम्पन्न होती थी। पुनर्भिषेक **तथा** ऐन्द्र महाभिषेक, ये दो अभिषेक के सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकार होते थे।

'पुनः अभिषेक' का विस्तृत विवरण ऐतरेय ब्राह्मण[1] में मिलता है। इस समारोह से किसी क्षत्रिय द्वारा अन्य राजाओं को जीतने की भावना प्रकट होती थी। इसमें सबसे पहले राजा सिंहासन ग्रहण करता था। सिंहासन को आसन्दी कहते थे। यह उदुम्बर नामक लकड़ी का बना होता था और इसका 'विवयन' कहा जाने वाले भाग मूँज (घास) का होता था। इसके बाद अभिषेक होता था। पुरोहित कहता था—"तुम राजाओं के राजा बनो; महान् जनता तथा कृषक वर्ग[2] के महान् शासक बनो (राज्ञां त्वम् अधिराज भवेह महानतम् त्वा महीनाम् सं राजम् चर्षणीनाम्)।[3] इसके बाद राजा अपने सिंहासन से उतर कर पुरोहित (ब्राह्मण) के समक्ष नतमस्तक होता था। राजा कहता था—"ब्राह्मण येव तत् क्षत्रम् वशम् येति तद् यत्र वै ब्राह्मणः क्षत्रम् वशम् येति तद् राष्ट्रम् समृद्धम् तद् वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते।"[4] अर्थात्, 'राजसत्ता (क्षत्र) धर्म की सत्ता के प्रभाव के अन्तर्गत आ जाता है। केवल धर्म की सत्ता के प्रभाव की राजसत्ता के अन्तर्गत ही देश समृद्ध होता है तथा वहाँ वीर पुरुष जन्म लेते हैं।'[5] इस कथन से निरंकुशता पर नियंत्रण का आभास मिलता है। परीक्षित के पुत्र जन्मेजय का पुनः अभिषेक हुआ था।[6]

---

१. VIII. 5-11.
२. Keith, *HOS*, 25 (slightly emended)।
३. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 7.
४. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 9.
५. Keith.
६. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII, 11. प्राचीन ग्रन्थों में लंका के राजा 'देवानांपिय तिस्स' के द्वितीय राज्याभिषेक का उल्लेख मिलता है। (गाइगर द्वारा अनूदित महावंश, p. xxxii)।

ऐन्द्र महाभिषेक[1] में मुख्य रूप से ५ विधियाँ सम्पन्न होती थीं। सर्वप्रथम मनोनीत राजा को पुरोहित द्वारा शपथ ग्रहण कराई जाती है।[2] इसके पश्चात् आरोहण या सिंहासनासीन होने की रीति निभाई जाती थी। आरोहण के बाद 'उत्क्रोशन'[3] या उद्घोषण की विधि पूरी की जाती थी। राजा को राजपद प्रदान करने वाले कहते थे—"जो क्षत्रिय उद्घोषण द्वारा राजा नहीं बना वह अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता।" अतः यह उद्घोषणा की जाती थी। इसके उत्तर में जन-समुदाय 'एवमस्तु' कहता था। राजा को राजपद पर प्रतिष्ठित करने वाले कहते थे—

"हे जनता-जनार्दन ! क्या तुम राजा को राजा तथा राजाओं का पिता मानते हो। सभी प्राणियों के सार्वभौम स्वामी (विश्वस्य भूतस्य अधिपति) का आविर्भाव हो गया है। विशामत्ता (eater of the folk) का जन्म हो चुका है। शत्रुओं को विनष्ट करने वाला (अमित्राणां हन्ता) अस्तित्व में आ गया है। ब्राह्मणों का रक्षक (ब्राह्मणानां गोप्ता) तथा धर्म का संरक्षक (धर्मस्य गोप्ता) अवतरित हो गया है।"

यहाँ पर हमें राजतंत्र की कुछ प्रमुख विशेषताएँ ज्ञात होती हैं। 'विश्वस्य भूतस्य अधिपति' शब्दों से राजा की सार्वभौमिकता एवं उसके साम्राज्य-वैभव का संकेत मिलता है। 'विशामत्ता' शब्द राजा के कर वसूलने के अधिकार का परिचायक है। 'अमित्राणां हन्ता' से स्पष्ट है कि अपने शत्रुओं के उन्मूलन में राजा अपनी सारी शक्ति लगा देता था। राजा के लिये 'ब्राह्मणानां गोप्ता' कहा जाता था। इसी से प्रकट होता है कि वह कुलीन का वर्ग का कितना ध्यान रखता था। साथ ही 'धर्मस्य गोप्ता' से यह स्पष्ट है कि कानून के पालन, कुशल प्रशासन तथा जनकल्याण (योगक्षेम) की दिशा में राजा कितनी निष्ठा रखता था।

राजा के राज्याभिषेक की उद्घोषणा के बाद अभिमन्त्रण की विधि सम्पन्न होती थी, या अभिमन्त्रण की बारी आती थी।[4]

जिन राजाओं का ऐन्द्र महाभिषेक हुआ वे जन्मेजय परीक्षित, शारयात मानव, शतानीक साम्राजित, आम्बाष्ठ्य, युधांश्रौष्टि औग्रसैन्य, विश्वकर्मा भौवन, सुदास पैजवन, मारुत्त आविक्षित, अंग वैरोचन और भरत दौःष्यन्ति थे।[5] उपर्युक्त प्रथम

१. ऐतरेय ब्राह्मण, viii. 12-23.
२. Keith; ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 15.
३. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17.
४. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 18.
५. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 21-23.

तृतीय, चतुर्थ, पंचम् तथा नवम् राजा संभवतः परीक्षितोत्तर काल[1] के रहे। दुर्मुख पांचाल तथा अत्यराति जानन्तपि को ऐन्द्र महाभिषेक का महात्म्य बताया गया था। पहले राजा ने उस जानकारी का सदुपयोग किया, किन्तु दूसरे ने पुरोहितों का निरादार किया, उत्तर कुरुओं पर आक्रमण कर दिया और अन्ततः शिवि-वंश के किसी राजा द्वारा मारा गया। उत्तर कुरुओं के बारे में कहा जाता था कि उन्हें कोई नश्वर सत्ता हरा नहीं सकती थी।

ऐन्द्र महाभिषेक से घनिष्ठ रूप से संबंधित एक और यज्ञ होता था जिसे अश्वमेध कहते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार जिन राजाओं का ऐन्द्र महाभिषेक हो जाता था उनके बारे में यह भी माना जाता था कि उन्होंने अश्वमेध भी किया होगा और दिग्विजय के हेतु विश्व-परिक्रमा भी की होगी (समन्तम् सर्वतः पृथ्वीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे)। शतपथ ब्राह्मण[2] के अनुसार अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं में परीक्षित-वंश के भीमसेन, उग्रसेन तथा श्रुतसेन; कोशल-राजाओं में परआटणार हैरण्यनाभ; इक्ष्वाकु राजा पुरुकुत्स दौर्गह; पांचालों में क्रैव्य तथा शोन सात्रासाह; और मत्स्य-राजाओं में ध्वसन द्वैतवन और ऋषभ याज्ञातुर राजाओं में श्विक्न प्रमुख थे। आपस्तम्ब श्रौत्र सूत्र में कहा गया है कि सार्वभौम राजा ही अश्वमेध यज्ञ कर सकता था।[3] अश्वमेध का घोड़ा एक वर्ष तक घूमता रहता था।

---

१. शतानीक ने काशी के धृतराष्ट्र को पराजित किया जो कि महागोविन्द सुत्तन्त के अनुसार कलिंग के सत्ताभु तथा अस्सक के ब्रह्मदत्त का समकालीन था। जैसा कि परीक्षित के पूर्व के ग्रन्थों में दक्षिण के राज्यों की कोई चर्चा नहीं मिलती, इसलिए हो सकता है कि शतानीक और उसके समकालीन लोग परीक्षित के बाद हुए हों। आम्बाष्ठ्य तथा युधांश्रौष्टि पर्वत और नारद के समकालीन थे जो नग्नजित के काल के आसपास थे तथा संभवतः विदेह के पूर्व और निमि के समकालीन रहे होंगे। अंग सम्भवतः दधिवाहन के पूर्वज थे जो कि जैन ग्रन्थकारों के अनुसार ईसा से पूर्व छठवी शताब्दी में हुए रहे होंगे।

२. XIII, 5.4. 1-23.

३. XX. i. 1. विभिन्न ग्रन्थों के विभिन्न पाठों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है (अप्य-सार्वभौमः), *Baudh*, XV. I. भवभूति के समय तक (अर्थात् ईसा की आठवीं शताब्दी तक) अश्वमेध यज्ञ को किसी राजा की शक्ति तथा उसकी सेना के युद्ध-कौशल का मापदण्ड माना जाता रहा है (अश्वमेध इति विश्वविजयिनाम् क्षत्रियानांमूर्जस्वलः सर्व-क्षत्रिय-परिभावि महानुत्कर्ष-निष्कर्ष — उत्तर रामचरिताम्; Act IV, विनायक सदाशिव पटवर्धन द्वारा अनूवादित)। इसके पूर्व भी पापकर्मों के प्रायश्चित्त-स्वरूप यह यज्ञ किया जाता था। इस यज्ञ का वैष्णव रूप भी था। उसमें पशुबलि नहीं होती थी तथा देवार्पण की वस्तुएँ आरण्यक के अनुसार तैयार की जाती

उसके साथ सौ राजकुमार, सौ सरदार, सौ सारथी, सौ मुखिया तथा सौ बड़े-बड़े योद्धा भी घूमा करते थे।[1] यह दल सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से लैस होता था। यदि घोड़ा १ वर्ष तक निर्बाध ढंग से घूमता रहता था तो फिर उसको बलिदान कर दिया जाता था और यज्ञकर्ता हर्षोत्सव मनाता था। यज्ञ करने वाले राजा तथा उसके पूर्वजों की वन्दना में बाँसुरी-वादन के साथ गीत गाये जाते थे। इस समारोह में यज्ञकर्त्ता राजा भी बाँसुरी पर तीन गीत गाता था। इसके बाद 'पारिप्लव आख्यान'[2] कार्यक्रम के अन्तर्गत कथाएँ चलती थीं। कथाओं का कार्यक्रम वर्ष भर चलता रहता था और प्रत्येक बैठक १० दिन की होती थी।

ब्राह्मण ग्रन्थों तथा मंत्रों में राजतंत्र को पैतृक सम्मान या अधिकार नहीं कहा गया है। राजा राज्य का प्रधान नहीं, वरन् प्रधानों में प्रथम माना जाता था। वह प्रधानों की परिषद् का अध्यक्ष होता था। अथर्ववेद में एक स्थल पर कुरु राजा को 'देव' कहा गया है और कहा गया है कि राजा नश्वर जगत से परे होता है। सिंहासनारूढ़ राजा सभी जीवों से ऊपर माना जाता था। उसे 'विश्वस्य भूतस्य अधिपति' कहा जाता था। उसे 'विशामत्ता'[3] भी कहते थे। 'राजा त एकम् मुखम् तेन मुखेन विशोऽत्सि।'[4] उसके चतुर्दिक् सदैव राजवंश के सशस्त्र रक्षक रहा करते थे।[5] राजा अपनी इच्छानुसार ब्राह्मणों को भी देशनिकाला दे सकता था। वैश्यों से रुपया ले सकता था या इन पर अधिकार कर सकता था।

थीं। महाभारत के शान्ति-पर्व में आयी उपरिचर की कथा पढ़िए (Ch. 335-339—Ray Chaudhari, *EHVS*, 2nd. ed., 132)। अश्वमेध के महत्त्व के लिए डी० सी० सरकार द्वारा *Indian Culture* (I, pp. 311. ff; II. 789 ff.) का नोट देखिए।

१. शतपथ ब्राह्मण, XIII. 4.2.5.
"तस्येत पुरस्ताद्रक्षितार उपक्लृप्ता भवन्ति। राजपुत्राः कवचिनः शतम् राजन्या निषङ्गिनः शतम् सूतग्रामण्यां पुत्रा इषुपर्षिनः शतम् क्षात्र संग्रहीतॄणाम् पुत्रा दण्डिनः शतम् श्वशतम् निरष्टम् निर्ममां यस्मिन्नेनामपिसृज्य रक्षन्ति।"

२. *SBE*, xliv, pp. 298 ff; पारिप्लव आख्यान (शतपथ ब्राह्मण, XIII. 4. 3.2); Keith, *Black Yajus*, pp. cxxxii f; *RPVU*, 343 f; हाप्किन, *GEI*, 365, 386.

३. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17.

४. कौषीतकि उपनिषद्, II. 6.

५. ऐतरेय ब्राह्मण, iii. 48. कुरु के पुत्र तथा पौत्र कुल मिला कर ६४ सशस्त्र योद्धा होते थे। जब पांचाल-नरेश यज्ञ करता था तो ६ हजार, तीन और तीस सैनिक तैयार रहते थे (शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5. 4. 16; *Cf.* 4.2.5)।

वह शूद्रों से सेवा करा सकता था या उनका बध कर सकता था।[१] इसके अतिरिक्त उसे मनचाहे व्यक्ति को राज्य देने का भी अधिकार था। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार एक बार जनक ने याज्ञवल्क्य से कहा—'सोऽहं भगवते विदेहान् ददामि माञ्चापि सह दास्यायेति।'[२]

फिर भी व्यावहारिक रूप से राजा निरंकुश तानाशाह नहीं होता था। सर्वप्रथम राजा की सत्ता पर ब्राह्मणों का नियंत्रण होता था। 'पुनर्भिषेक' विधि द्वारा सिंहासनारूढ़ राजा को भी धर्मसत्ता (ब्राह्मण) के निर्देश पर सिंहासन छोड़ना पड़ता था। प्राचीन काल में ब्राह्मण संस्कृति एवं शिक्षा के अधिष्ठता माने जाते थे। ऐतरेय ब्राह्मण[३] तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र[४] से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जन्मेजय जैसे शक्तिशाली राजा को भी ब्राह्मणों के सामने नतमस्तक होना पड़ा था। ब्राह्मण-कन्या के साथ दुराचरण के फलस्वरूप कराल जनक का विनाश हुआ था। ब्राह्मणों का निरादर करने वाला वृष्णि-वंश भी नष्ट हो गया था।[५] इससे स्पष्ट है कि केवल राजा ही नहीं, वरन् जब गणराज्यों (संघीय सरकारों) को भी ब्राह्मणों से मैत्रीपूर्ण संबंध रखना पड़ता था।

राजा की सत्ता पर दूसरा नियंत्रण, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, मंत्रियों का होता था। राज्याभिषेक में राजा का सहायक रहने वाला, और महत्त्वपूर्ण अवसरों पर राजा को परामर्श देने वाला गाँव का मुखिया भी राजा पर कुछ न कुछ नियंत्रण रखता था। वेदों में सूत तथा ग्रामणी को राजकर्त्तृ (king-maker) कहा गया है। वेदों में उसके समंध में 'राजकृताः सूत-ग्रामण्याः'[६] मिलता है। इसके नाम से ही राज्य के ढांचे में इसके महत्त्व का आभास मिलता है। प्रारम्भिक राजसी समारोहों में इन लोगों (king-makers) तथा अन्य दरबारियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी।

वेदों में 'सभासद्' शब्द आया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय राजसभा का अस्तित्व होता था। राजा मारुत्त आविक्षित[७] की कथा में 'सभासद्' शब्द का

१. ऐतरेय ब्राह्मण, vii. 29.

२. बृहदारण्यक उपनिषद्, IV. 4. 23.

३. VII. 27.

४. Ed. 1919, P. 11.

५. *Cf* वैतहव्य का विवरण भी देखिए, (*Camb. Hist. Ind.*, I. 121)।

६. शतपथ ब्राह्मण, III. 4. 1. 7; XIII. 2. 2. 18; रामायण, II. 67. 2; 79. 1. द्विजातयः।

७. ऐतरेय ब्राह्मण, viii, 21; शतपथ ब्राह्मण, XIII. 5.4.6.

उल्लेख मिलता है। रामायण[1] में 'सभा' का अस्तित्व था और अमात्य-वर्ग तथा पुरोहितों के साथ राजकर्त्तृ के होने का भी स्पष्ट उल्लेख है। पालि-ग्रन्थों से पता चलता है कि बिम्बिसार के समय तथा उनके बाद तक मुखियों और मंत्रियों से परामर्श लिया जाना आवश्यक माना जाता था। महावग्ग में कहा गया है कि काशी का राजा ब्रह्मदत्त काशी में अपने मंत्रियों व सभासदों से पूछता था[2]—"महाशयो ! यदि आप कोशलाधीश दीघीति के पुत्र दीघायु से मिलेंगे तो क्या कहेंगे ?" महाअस्सारोह जातक[3] में कहा गया है कि राजा नगर भर में ढिंढोरा पिटवा कर अपनी सभा के सभासदों को एकत्र करता था। चुल्ल-सुतसोम जातक में एक राजा का उल्लेख है, जिसके ८० हज़ार सभासद् थे और राजा का सेनापति सबों का नेतृत्व करता था।[4] (सेनापति पमुखानि असीती अमच्च सहास्सानि)। पादंजालि तथा संवर जातकों के अनुसार सभासदों को किसी भी युवराज को पदच्युत् करने या नया राजा चुनने का अधिकार था। इन जातकों में गाँवों के मुखियों की विशेष सभा का भी उल्लेख मिलता है। हमें यह भी पता चलता है कि जब मगध के राजा सेणिय बिम्बिसार ने ८० हज़ार मुखियों (ग्रामिकों) की सभा बुलाया था तो उन्होंने शोण कोलिविस को भी संदेश भेजा था।[5]

राजा की राजसत्ता पर एक नियंत्रण और था। उपनिषदों[6] में इसे समिति या परिषद् कहा गया है। यह समिति या परिषद् सभासदों या मंत्रियों की समिति से भिन्न जनता (जन, महाजन) की सभा होती थी। ऐतरेय ब्राह्मण[7] के उत्क्रोशन अनुच्छेद के अनुसार जनता(जनाः)और राजकर्त्ता अलग-अलग थे। शतपथ ब्राह्मण[8]

---

१. II. 67. 2-4.

२. *SBE*, XVII. 304; विनयपिटकम् (Oldenberg), I. (1879), p. 348; *Cf.* रामायण, II. 79. सामात्याः सपरिषद्ः।

३. No. 302.

४. Cowell's जातक, V, p. 97. (No. 525); ८० हज़ार संख्या नाम मात्र की ही है।

५. महावग्ग, *SBE*, XVII. p. 1.

६. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, (II. 4.) हमें परिषद्, सभा और संसद् के उल्लेख मिलते हैं। स्पष्ट नहीं है कि ये कैसी संस्थाएँ थीं। अथर्ववेद में सभा और समिति में अन्तर बताया गया है।

७. VIII, 17; *Cf.* शतपथ ब्राह्मण, V. 33. 12.

८. III. 4. 1, 7; XIII. 2. 2. 18.

के अनुसार जनता के वर्ग में सूत और ग्रामणी[1] भी सम्मिलित थे। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि समिति या परिषद् पूर्णरूपेण जनता की संस्था होती थी—"भूयिष्ठाः कुरु-पंचालास्सागता भवितारः"[2], "पंचालानां समितिम् एयाय", "पंचालानां परिषदां आजगाम", "समग्गा शिवायोहुत्वा।" छान्दोग्य उपनिषद्[3] में पांचाल की जनता की समिति थी, जिसकी अध्यक्षता राजा प्रवाहण जैवलि स्वयं करता था—'श्वेतुकेतुः अरुणेयः पंचालानां समितिम् एयाय; तम ह प्रवाहणो जैवलिः उवाच्।' बृहदारण्यक उपनिषद्[4] में समिति के स्थान पर परिषद् शब्द का ही प्रयोग किया गया है—'श्वेतकेतुः ह वा अरुणेयः पंचालानां परिषद् माजगाम्।' बौद्ध-ग्रंथों में उल्लिखित लिच्छवी-परिषा (परिषद्) या अन्य परिषदों से पता चलता है कि तत्कालीन कुरु तथा पांचाल राजाओं की सभायें मात्र दार्शनिक विषयों पर ही शास्त्रार्थ नहीं करती थीं। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण[5] में इन सभाओं की चर्चा के प्रसंग में विवाद (संवाद) तथा गवाही 'उपद्रष्ट्रि' शब्दों का भी उल्लेख हुआ है। इससे लगता है कि कुरु और पांचाल सभाओं की परम्परायें शूद्रों की परम्पराओं से भिन्न थीं। ये लोग राजसी समारोहों में भाग लेते थे।[6] दुम्मेघ जातक[7] में मंत्रियों, ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की संयुक्त सभा का प्रसंग आया है।

अथर्ववेद[8] की इस उक्ति से भी राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण का संकेत मिलता है कि राजा तथा उसकी परिषद् के बीच सामञ्जस्य आवश्यक है। राजा की समृद्धि के लिये भी यह आवश्यक था। हमारे पास इस संबंध में भी तथ्य हैं कि कभी-कभी जानता ने अपने राजा को उसके कलंकित दरबारियों के साथ या तो राज्य से निकाल दिया है, या उन सबों को एक साथ फाँसी के तख्ते पर झुला दिया। शतपथ ब्राह्मण[9] में लिखा है—"दुष्टरीतु पौंसायन को उसके

---

१. जातक (525) में महाजन देखिए, Vol. V, p. 187; जातक (542-547), Vol. VI. p. 156, 489 etc; *Cf*. शतपथ ब्राह्मण, V. 3. 3. 12.

२. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III. 7.6.

३. V. 3. 1.

४. VI. 2. 1.

५. III. 7. 6.

६. ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17.

७. No. 50; *Cf*. वेसन्तर जातक (No. 547), Vol. VI, pp. 490 ff. सभी शिवि लोग सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्न पर विचार के लिए इकट्ठे होते थे और राजकुमार को दण्ड देने के लिए राजा को परामर्श भी देते थे।

८. VI. 88.3.

९. XII. 9. 3. 1. *etc. seq*; Eggeling, V. 269.

राज्य से निकाल दिया गया जबकि उसके पूर्वज १० पीढ़ी से उसी राज्य में राज्य करते रहे थे। इसी प्रकार भृञ्जय लोगों ने रेवोत्तरस पाटव चक्र स्थपति[1] को भी राज्य से निकाल दिया था।" ऐतरेय ब्राह्मण[2] के अनुसार जिन ऐसे कुछ लोगों को राज्य से निकाल दिया गया था, उन्होंने पुनर्भिषेक द्वारा, सिंहासनारूढ़ राजाओं की सहायता से, अपना राज्य वापस पाने का प्रयास किया था। इन लोगों का उक्त प्रयास फ्रान्स के उन निष्कासित लोगों की तरह था जिन्होंने हप्सबर्ग तथा होएन जोलर्न्स[3] के सैनिकों की सहायता से पुनः फ्रान्स पर अधिकार करने की कोशिश की थी। हमें वेस्सन्तर जातक[4] से पता चलता है कि एक बार शिवि राजा को देश की जनता का निर्णय कार्यान्वित करने के लिये राजकुमार वेस्सन्तर को देश से निकालना पड़ा था (सिवीनाम् वचनत्थेन सम्हा रट्ठ निरज्जति)। राजा से कहा गया—

"सचे त्वं न करिस्ससि सिवीनां वचनाम् इदम्
मञ्ञे तं सह पुत्तेन सिवीहत्थे करिस्सरे ति।"

'यदि आपने सिवि जनता को मानने से इन्कार किया तो मैं समझता हूँ कि वह आपके पुत्र और आपके विरुद्ध कदम उठायेगी।'

राजा ने उत्तर दिया—

"एसो चे शिवीनान् छन्दो छन्दम् न पनुदामसे।"

'देखो यह जनता की इच्छा है, मैं इसके विपरीत कुछ नहीं कर सकता।'

पदकुसल मानव जातक[5] में एक कथा है, जिसके अनुसार एक बार देश की जनता ने एक जगह इकट्ठा होकर (जानपदा निगमा च समागता) अपने राजा और पुरोहित को मौत के घाट उतारा था। उस राजा से देशवासियों का तनिक भी कल्याण न था, उल्टे हर ओर विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ उमड़ती रहती थीं। इसीलिए जनता ने राजा को मार कर एक दूसरे व्यक्ति को राजा बनाया। सच्चं-किर जातक[6] में भी इसी प्रकार की एक कथा आती है। खण्डहाल जातक[7] में भी एक

१. स्थपति उपाधि के लिए देखिए, *ante*, p. 167.

२. VIII. 10.

३. *Cf.* Lodge, *Modern Euorope*, p. 517.

४. No. 547; Text, VI. 490-502. ऐतरेय ब्राह्मण (xiii 23) में भी शिवि लोगों का उल्लेख मिलता है।

५. No. 432.

६. No. 73.

७. No. 542.

कथा है कि देश की जनता ने राजा के मंत्री का वध किया, राजा को पदच्युत् तथा जातिच्युत् किया और उसके राजकुमार को गद्दी पर बिठाया। भूतपूर्व राजा को नगर की सीमा में प्रवेश का अधिकार नहीं था। इतिहासकार फ़िक[1] के संकेतानुसार तेलपत्त जातक में तक्षशिला के राजा ने कहा था कि "मेरी प्रजा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।"[2] स्पष्ट है कि राजा जनक के बाद के काल में उत्तरी-पश्चिमी भारत के राज्यों में राजा की अधिकार-सत्ता बहुत कुछ घट गयी थी।[3]

---

१. *The Social Organisation in North-East India*, trans. by Dr. S. K. Maitra, pp. 113-114. Dr. D.R. Bhandarkar follows him in *Carmichael Lectures*, 1918, 134 f.

२. P. 102. "भगवते विदेहान् ददामि"।

३. सिकन्दर-काल के इतिहासकारों ने लिखा है कि ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी में निर्वाचित राजा होते थे। ब्राह्मण-काल में अम्बष्ठ लोग सशक्त शासक थे (ऐतरेय ब्राह्मण, viii. 21)। सिकन्दर के समय में लोकतान्त्रिक संविधान थे (*Ind. Alex.*, 252)।

भाग २

(बिम्बिसार के राज्याभिषेक से मौर्य-वंश के अन्त तक)

प्रस्तावना | ४

१. प्राक्कथन

अगले पृष्ठों में बिम्बिसार-काल से लेकर गुप्त-काल तक का राजनैतिक इतिहास दिया गया है। सौभाग्य से इस काल से संबंधित प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्रियाँ भी हमारे पास हैं। इसके अतिरिक्त इस काल से संबंधित वे साहित्यिक परम्परायें या शास्त्रोक्तियाँ भी हमें उपलब्ध हैं जिनका उल्लेख पुस्तक के पहले भाग में किया गया है। शिलालेख, सिक्के, विदेशी यात्रियों के लेख तथा उक्त काल पर लिखे गये विद्वानों के ग्रन्थ हमारी जानकारी के प्रमुख स्रोत हैं।

शिलालेख तथा पत्थर या ताम्रपत्रों पर खुदे लेख भी महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। पर, इससे राजवंश-विशेष तथा प्रथम एवं द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व के गणतन्त्रों का ही इतिहास मिल पाता है। जहाँ तक भारतीय इतिहास के घटना-क्रम तथा उसके काल का प्रश्न है, यूनानी कूटनीतिक प्रतिनिधियों, नाविकों तथा चीनी यात्रियों के लेख महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। प्राचीन भारत के विद्वानों के विभिन्न ग्रन्थ भी इतिहास के विभिन्न कालों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। परन्तु, ये ग्रन्थ अब दुर्लभ से हो गये हैं। इनमें पतञ्जलि का महाभाष्य, कुमारलता की कल्पनामन्द्रीतिका, परमार्थ की कृति वसुबन्धु तथा बाणभट्ट का हर्षचरित मुख्य हैं।

जहाँ तक बिम्बिसार से लेकर अशोक के समय तक के इतिहास का प्रश्न है इन पंक्तियों का लेखक अधिक मौलिकता का दावा नहीं कर सकता। इस संबंध में रीज़ डेविड्स और स्मिथ ने काफ़ी लिखा है। इसके अलावा गेगर, भण्डारकर, रैप्सन, जायसवाल, मलालसेकेरा, जैक्सन, हर्ज़फ़ेल्ड तथा हल्ट्ज़ आदि विद्वानों ने भी इस काल पर काफ़ी प्रकाश डाला है। इस लेखक ने उपर्युक्त विद्वानों के ग्रन्थों से उपलब्ध सामग्री का उपयोग करने के साथ-साथ उसके नवीन तथ्यों तथा जैन, बुद्ध एवं अन्य शास्त्रों से प्राप्य सामग्री को भी सम्मिलित किया है। उदाहरणार्थ, बिम्बिसार-

वंश के हर्यङ्क का नाम सबसे पहले इसी पुस्तक में है। इसके पूर्व अश्वघोष में इसका उल्लेख है। शिशुनाग-वंश के दुःखद अन्त तथा नन्द-वंश के उद्भव से संबंधित जो सामग्री हर्षचरित एवं जैन ग्रन्थों से मिली है, उसे यूनानी व लैटिन विद्वानों की कृतियों से संतुलित कर लिया गया है। महाकाव्यों की सामग्री से मगध के वैभव के श्रीगणेश पर प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त अशोक के शिलालेखों में कम्बोज और पुलिन्द जातियों की भी चर्चा मिलती है। इन जातियों का उल्लेख स्त्र्यध्यक्ष, विहार-यात्रा तथा अनुसंयान् शब्दों की व्याख्या के सिलसिले में आया है। इस पुस्तक में पुराने तथ्यों को नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य लेखकों से इस लेखक के निष्कर्ष भी प्रायः भिन्न हैं।

उत्तर मौर्य-काल पर लिखे गये अध्याय में मौर्य-साम्राज्य के विघटन के कारणों का अध्ययन किया गया है तथा पाठकों का ध्यान गार्गी संहिता एवं हाऊहंशू की ओर आकृष्ट किया गया है। इस अध्याय में मौर्य-साम्राज्य के पतन के इस सिद्धान्त को अनर्गल सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मौर्यों के पतन के लिये ब्राह्मणों का प्रतिक्रियावाद सबसे अधिक उत्तरदायी है।[1]

प्रस्तुत पुस्तक में उत्तर मौर्य-काल के आरम्भिक समय तथा सीथियन काल के बारे में विचार करते समय पहले के लेखकों से भिन्न मत प्रकट किया गया है, यद्यपि मत पूर्णतः मौलिक नहीं है। पुष्यमित्र की परम्परा तथा कुछ अन्य देशों के बारे में प्रचलित कतिपय धाराओं को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता। मुख्यतः सातवाहनों, शाकल के यूनानियों तथा उत्तरापथ के शक-पह्लवों के संबन्ध में तो ये धारणायें सर्वथा अस्वीकार्य हैं ही। इस पुस्तक के लेखक ने सन् १६२३ में यमुना की घाटी और पूर्वी मालवा के नागाओं को उत्तर कुशाण-काल से संबन्धित किया है। अनेक प्रसिद्ध पुस्तकों में भी इस तथ्य की चर्चा नहीं की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गुप्त-काल पर जो कुछ लिखा गया है, उसमें बूहलर, फ़्लीट, स्मिथ तथा एलेन की पुस्तकों के प्रकाशन के बाद भी उपलब्ध सामग्री का यथोचित उपयोग किया गया है। इस अध्याय में इतिहास के सर्वप्रसिद्ध शासक वंश की

---

१. उत्तर मौर्य-वंश पर वह अध्याय जो *JASB*, 1920 (No. 18, p. 305 ff) में प्रकाशित हुआ था।

ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। इसके बाद अन्तिम गुप्त-शासकों[1] का एक सुसम्बद्ध एवं क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

२. स्थानीय स्वशासन तथा राज्य की एकता

उत्तर बिम्बिसार-काल के राजनीतिक इतिहास की मुख्य विशेषता है दो तत्कालीन विरोधी—अन्तर्मुखी तथा बहुमुखी शक्तियों का समन्वय—अर्थात्, एक ओर तो स्थानीय जनपदों के स्वायत्त शासन की अक्षुण्णता तथा दूसरी ओर समूचे साम्राज्य की एकता की भावना साथ-साथ मिलती है। पहला आदर्श मनु के शब्दों में इस प्रकार था—'सर्वम् परवशम् दुःखम्, सर्वम् आत्मवशम् सुखम्।'[2] अर्थात्, दूसरे की अधीनता दुःखमय तथा स्वयं की अधीनता सुखप्रद होती है। स्वायत्त शासन अधिक पसन्द किया जाता था, सम्भवतः भौगोलिक परिस्थितियों के ही कारण। समूचा भारतवर्ष अनेकानेक नदियों तथा पर्वतमालाओं से बँटा था। बड़े-बड़े रेगिस्तान और दुर्गम जंगल थे। इन प्राकृतिक कारणों से देश का एक भाग दूसरे से अलग था और हर भाग की अपनी राजनीतिक इकाई होती थी। इस प्रकार इन राज्यों की स्थानीय परिस्थितियाँ भी भिन्न-भिन्न थीं। फिर भी उत्तर में नदियों के तटवर्ती विस्तृत मैदान तथा (प्रायद्वीप के समान) दकन के पठार के हरे-भरे दृश्य जीवन को एक नयी रसधारा प्रदान करते थे। यह रसधारा हिमालय से पश्चिमी तट की पहाड़ियों तक प्रवाहित होती रहती थी। यद्यपि भूभाग के इतने विस्तृत होने के कारण, विरोधी प्रवृत्तियाँ भी थीं। किन्तु, उनमें एकता के प्रति भी पूरी आस्था थी। यद्यपि सरस्वती रेणुका-कणों से पटी रहती थी, लौहीत्य सदैव बाढ़-पीड़ित रहता था तथा महाटवी निरन्तर विपद-ग्रस्त रहती थी, तो भी इनसे राष्ट्रीय एकता में किसी तरह की कोई भी बाधा नहीं पड़ती थी। गिरिव्रज के पाँचों पहाड़ भी साम्राज्य के इच्छुक राजाओं का साथ न दे सके। विन्ध्य के राजा ने उस ऋषि के समक्ष अपना मस्तक झुका दिया, जो सभ्यता एवं संस्कृति की नयी लहरगंगा के अंचल से गोदावरी और ताम्रपर्णी तक ले जा रहा था।

किसी एक राजनैतिक सत्ता के अन्तर्गत सुसंगठित होने की इच्छा ब्राह्मण-काल में भी पाई जाती थी। निम्न अवतरण से उक्त इच्छा का स्पष्टीकरण हो जाता है—

---

१. तथाकथित अंतिम गुप्त-शासकों पर वह अध्याय जो *JASB*, 1920 (No. 19, p. 313 ff) में प्रकाशित हुआ था।

२. मनुसंहिता, IV, 160.

"राजा चतुर्दिक् व्यापक हो जाय, सारी धरती का स्वामी हो जाय, सागर-परिवेष्ठित धरती के एक छोर से दूसरे छोर तक की सजीवता उसे प्राप्त हो तथा वह एकमात्र राजा (एकराट) हो।"

उपर्युक्त आदर्श हमारे समय में भी है तथा उससे राजनीतिक दार्शनिकों को भी प्रेरणा मिली है। इन दार्शनिकों ने हिमालय से लेकर समुद्र तक फैले भूभाग को सहस्र योजन का माना है। इस भूभाग को अपने अधिकार में करने वाले को चक्रवर्ती कहा जाता था। ये दार्शनिक लोग ऐसे राजा की प्रशंसा करते थे जो गंगा-रूपी मोतियों की माला पहने धरती की रक्षा करता हो। जिसके पास हिमवत् और विन्ध्य जैसे दो कर्णफूल हों, और जो चतुर्दिक् सागर से घिरी हो।

साम्राज्य की एकता के आदर्श को भी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के जनपद के स्वशासन की भावना को स्वीकार करना होता था। विभिन्न कालों में स्वशासन तथा साम्राज्य की दो विरोधी भावनायें नियमित रूप से सामने आती रही हैं। स्थानीय सीमाओं को पार करके देश की एकता की भावना इसलिये अक्षुण्ण रही कि भारतीय राजनीति में विदेशी आक्रमणों के भय का तत्त्व प्रायः सदा से ही विद्यमान रहा है। बर्बर जातियों के उद्भव-काल में यह भयप्रधान रहा (म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना) और देश को चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे सशक्त भुजाओं वाले संरक्षक की आवश्यकता पड़ी। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य ही पहला सम्राट् था जिसने आर्यावर्त्त की की सीमा के बाहर भी अपने राज्य का विस्तार किया। दक्षिण में साम्राज्य की स्थापना करने वाले राजा ने अपने देश से शकों, यवनों, पह्लवों तथा निशूदनों को निकाल दिया। चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी में गंगा के तटवर्त्ती प्रदेशों में साम्राज्य का झंडा लहराने वाले योद्धाओं ने सिथियनों को हराया तथा अपने नगरों में शक-राजाओं की सत्ता को प्रतिष्ठित किया। पौराणिक कथाओं के अनुसार एक बार विष्णु ने पृथ्वी को विनष्ट होने से बचाया था। ऐसा उन्होंने शूकर का रूप धारण करके किया था। गुप्त तथा चालुक्य काल में शूकर अवतार की बड़ी पूजा होती थी। कवि विशाखदत्त ने शूकर को एक मनुष्य ही मान लिया था, क्योंकि शूकर ने म्लेच्छों से पीड़ित पृथ्वी को त्राण दिया था। वाराहतनु (शूकर-रूप) को स्वयंभू भी कहा गया है। अरबों के विरुद्ध देश की रक्षा करने वाले उक्त राजवंशों के शक्तिशाली राजा 'आदिवाराह' की पदवी से भी विभूषित किये जाते थे। उस समय कभी-कभी ऐसे जल-प्लावन होते थे जो देश की समूची सभ्यता व संस्कृति पर प्रलय बनकर आक्रमण करते थे। ऐसे जल-प्लावनों से संघर्ष किये जाते थे। प्राचीन काल में शूकर अवतार को इन संघर्षों का भी प्रतीक मानते थे।

मगध का उत्थान | ५

सर्वमूर्द्धाभिषिक्तानामेष मूर्द्धनि ज्वलिष्यति
प्रभाहऽयाम सर्वेषाम् ज्योतिषामिव भास्करः
एनमासाद्य राजानः समृद्ध-बलवाहना
विनाशमुपयास्यन्ति शलभा इव पावकम्।

—महाभारत[1]

१. ५४४ ईसापूर्व से ३२४ ईसापूर्व के बीच की मुख्य प्रवृत्तियाँ

इतिहास का यह युग बिम्बिसार के राज्याभिषेक (५४५-५४४ ईसापूर्व[2]) से आरम्भ होकर सिकन्दर-महान् के आक्रमण के बाद चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्राट् होने के समय में आकर समाप्त होता है। इस युग की सबसे मुख्य विशेषता यह रही कि भारत के उपमहाद्वीपों के पूर्वी भाग में एक नये साम्राज्य की स्थापना हुई और वह भी जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, एक ब्राह्मण के नेतृत्व में हुई।

उस समय भारत के पूर्वी भाग (प्राच्य दिशि) में जो भी राजा हुए, उनका राज्याभिषेक सम्राट् के रूप में हुआ। राज्याभिषेक के बाद वे महान् सम्राट् माने जाते थे। उन दिनों पूर्वी भारत के लोग उत्तरी, दक्षिणी या मध्य भारत के लोगों से भिन्न थे। ऐतरेय ब्राह्मण में ग्रीको-रोमन लेखकों का उल्लेख है। ब्राह्मण उपनिषद् में पूर्व के प्रमुखतम देशों में काशी, कोसल और विदेह थे। किन्तु, इसी के साथ एक नया तारा और उदय हुआ। भारतीय राजनीति में बिम्बिसार तथा नन्द जैसे शक्तिशाली राजाओं के काल में मगध की राजनीति का वही स्तर था, जो पूर्व-नॉर्मन युग में इंगलैंड में वेसेक्स और जर्मनी में प्रसिया का। भारत के तत्कालीन राजाओं में साम्राज्य की लालसा पैदा करने में कई परिस्थितियों ने योग

---

१. II. 19, 10-11.

२. आगे देखिये खण्ड ७।

दिया। उत्तर भारत की नदियों के तटवर्त्ती प्रान्तों पर इनका राज्य था। इनके राज्य सर्वथा दुर्गम पर्वतों से घिरे थे। वाणिज्य-व्यापार नदियों व नावों से ही होता था। समूचा राज्य एक बड़ा उर्वर तथा शस्य-श्यामल भूखंड था। इन लोगों के पास गजसेना होती थी, जिससे प्राचीन शास्त्रों के रचयिता अत्यधिक प्रभावित रहते थे।

किन्तु, अच्छी सामरिक स्थिति तथा भौतिक समृद्धि ही किसी राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिये काफ़ी नहीं हैं। बर्क के अनुसार, तत्कालीन प्रजा की यह विशेषता थी कि वह अपने सम्राटों को अपना जीवन तथा सर्वस्व अर्पित कर देती थी, जैसा कि कुछ अतलान्तक देशों में है। प्राचीन मगध में भी कई जातियाँ एक-दूसरे से मिलजुल गई थीं। जिस प्रकार मध्यकालीन फ्रांस में सेल्ट जाति लैटिन और ट्यूटन में समाहित हो गई थी, उसी प्रकार प्राचीन भारत के उत्तरी भाग में कीकट जाति अन्य उन्नतिशील जातियों में मिलजुल गई थी। जिस राष्ट्र में बड़े-बड़े लड़ाकुओं और योद्धाओं ने जन्म लिया, जिस राष्ट्र में जरासन्ध, अजातशत्रु, महापद्म तथा कलिंग विजय करने वाले चण्डाशोक (संभवतः समुद्रगुप्त) जैसे महान् योद्धा पैदा हुए, उसी राष्ट्र के राजाओं ने प्रातिबोधि पुत्र, वर्द्धमान महावीर तथा गौतम बुद्ध के उपदेशों को स्वीकार किया तथा समूचे भारत में अपना साम्राज्य फैलाने के साथ-साथ विश्व-धर्म का प्रचार भी किया। इसी युग में देश में अजातशत्रु का जन्म हुआ और महात्मा बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुआ। राजगृह में अजातशत्रु और महात्मा बुद्ध की भेंट वैसी ही रही, जैसे कि वॉर्म्स (Worms) में चार्ल्स पंचम् तथा मार्टिन लूथर की। इसी देश में और इसी युग में आक्रामक साम्राज्यवादी लिप्सा तथा नैतिकता और उदारता के प्रतीकों का आविर्भाव हुआ। फिर, दोनों विचारधारायें अधिक समय तक अलग-अलग न रह सकीं। दोनों में समन्वय हुआ और धर्म-अशोक नामक बाज़ीगर ने दोनों प्रवृत्तियों को अपने में समा लिया। एक ओर उसने अपने पूर्वजों की तरह साम्राज्य की परम्परा अक्षुण्ण रखी तो दूसरी ओर शाक्य-संन्यासी की अध्यात्म-भावना को भी ग्रहण किया।

मगध राष्ट्र की एक मुख्य विशेषता यह थी कि वहाँ के लोगों के व्यवहार में एक प्रकार का लचीलापन था। यह गुण सरस्वती व दृषद्वती के तटवर्त्ती प्रदेशों के लोगों में नहीं था। इन प्रान्तों में ब्राह्मण लोग व्रात्य-वर्ग का सम्पर्क स्वीकार कर लेते थे तथा राजा लोग अपने महलों में शूद्र-कन्याओं को भी स्थान दे देते थे। वैश्यों व यवनों को भी शासकीय पदों पर नियुक्त कर दिया

जाता था। यही नहीं कभी-कभी नगरशोभिनी की सन्तान के कारण ऊँचे घरानों या पैतृक राजवंशों के शासकों को भी राज्य से निकाल दिया जाता रहा। राजा का सिंहासन एक साधारण नाई की पहुँच के अन्दर भी होता था।

मगध के वस्सकार (वर्षकार) जैसे राजा तथा कौटिल्य जैसे मंत्री अपने कार्यों में बहुत अधिक अनैतिक या मिथ्यावादी नहीं होते थे। वे किसी भी राज्य को विनष्ट करने या उसे छिन्न-भिन्न करने में पाश्चात्य दार्शनिक मैकियावली के समान नीतियों का ही अनुसरण करते थे। ये राजा तथा मंत्री एक ऐसी व्यावहारिक प्रशासन-पद्धति निकाल लिया करते थे जिसमें राजा, मंत्री व गाँवों के मुखियों का समान रूप से हिस्सा होता था। चौथी शताब्दी ईसापूर्व में भारत में आये विदेशी राजदूत तथा यात्रियों ने तत्कालीन राजाओं की न्याय-बुद्धि, आतिथ्य-भावना, दानशीलता तथा जनहित की चिन्ता का उल्लेख और उनकी प्रशंसा की है। तत्कालीन राजा एक सुसंगठित जम्बूद्वीप (वहत्तर भारत) की कल्पना को साकार करने के लिये अनवरत प्रयास करते रहते थे। वे समूचे भारत को राजनीतिक तथा भावनात्मक धागे में बाँध देना चाहते थे। मगध के राज-दरबार में गिरिव्रज के शासकों के पास तथा पाटलिपुत्र में भी ऐसे वफ़ादार लोग थे, जो देशभर में अपनी इच्छा के अनुकूल जनमत तैयार कर सकते थे। इन बन्दीजनों गा दरबारी प्रशंसकों की कहानियाँ आज भी प्राचीन भारत के इतिहास के विद्यार्थी के लिये महत्त्वपूर्ण सामग्री हो सकती हैं।

मगध के उत्थान के समय मध्यदेश के लोग भारत के अन्य भागों, अर्थाह पूर्व या पश्चिम की ओर भी खिसकने लगे थे। यादव-वंश भी मध्य प्रदेश से हटा था, जिसका उल्लेख महाकाव्य-परम्परा में भी मिलता है। सर्वविदित तथ्य है कि द्वारका (काठियावाड़) के वृष्णि-वंश तथा उसके अन्य समीपस्थ वंश अपने को यदुवंशी कहते थे। दक्षिण भारत के भी कुछ लोग अपने को यदुवंशी ही कहते हैं। हम यहाँ जिस काल का अध्ययन कर रहे हैं, उस समय दक्षिण भारत का भूभाग बड़े-बड़े व्याकरणवेत्ताओं व कूटनीतिज्ञों के लिये प्रसिद्ध था। इनमें से कुछ मगध के दरबार में भी पहुँचे थे। मगध के उत्थान-काल में भी ऐसा समय आ गया था कि शीघ्र ही सब कुछ राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एकता की डोर में आबद्ध माना जाता।

अपने को समूचे उपमहाद्वीप भारत में शक्तिमान् सिद्ध करने के लिये मगध के महान् राजवंशों के सामने तीन समस्यायें थी। पहली समस्या उत्तरी सीमा

पर स्थित गणतन्त्रों की, दूसरी राप्ती, चम्बल और यमुना के तटवर्त्ती राजतन्त्रों की, तथा तीसरी समस्या पंजाब और सिन्ध के प्रान्तों पर विदेशी प्रभाव की थी। अतएव, हम सर्वप्रथम गणतन्त्रों की समस्या का अध्ययन करते हैं।

२. बिम्बिसार-कालीन गणतंत्र

रीज़ डेविड्स पहला विद्वान् था जिसने बुद्ध तथा बिम्बिसार के समकालीन गणतंत्रों तथा राजतंत्रों पर प्रकाश डाला है।[1] इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तरी बिहार का वृजियन, कुशीनर (कुशीनगर) के मल्ल राज्य तथा पावा राज्य थे। उनके सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है।[2] छोटे गणतंत्रों में हमें कपिलवस्तु के शाक्य, देवदह और रामगाम के कोलिया, संमुमार पहाड़ियों के भग्ग राज्य, अल्लकप्प के बुलि राज्य, केसपुत्त के कालामस और पिप्पलिवन के मोरिय राज्य के उल्लेख मिलते हैं।

शाक्य राज्य की उत्तरी सीमा पर हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ थीं। पूर्वी सीमा पर रोहिणी[3] नदी तथा पश्चिमी और दक्षिणी सीमाओं पर राप्ती[4] नदी बहती थी। शाक्य राज्य की राजधानी कपिलवस्तु सुप्रसिद्ध लुम्बिनीवन[5] से आठ मील दूर रोहिणी के तट पर स्थित थी। यही पर बुद्ध पैदा हुए थे तथा यहीं बुद्ध के एक महान् अनुयायी का स्तम्भ था।[6] महाभारत[7] के तीर्थयात्रा में खण्ड-कपिलवट के नाम से उक्त स्थान का उल्लेख मिलता है। इस स्थान से कोशल तथा वृज्जि की राजधानियों को राजमार्ग बने थे। इस प्रकार यह राज्य तत्कालीन बड़े नगरों से जुड़ा हुआ था। शाक्यों के राज्य में देवदह नाम का भी नगर

१. *Buddhist India*, p. 1.

२. सुप्र, p. 118 ff, 126 ff.

३. राप्ती नदी की एक सहायक नदी (देखिये ओल्डेनबर्ग-कृत *Buddha*, p. 96); कनिंघम (*AGI*, नवीन संस्करण, 476) के अनुसार यह 'कोंवण' था

४. रैप्सन-कृत *Ancient India*, p. 161; ओल्डेनबर्ग, *Buddha*, pp. 95-96.

५. *AGI*, नवीन संस्करण, 476.

६. कहा जाता है कि कभी कपिलवस्तु, बस्ती ज़िले के उत्तर में 'पिपरावा' नामक स्थान का नाम था। कभी यह भी कहा जाता है कि यह स्थान 'पिपरावा' से १० मील उत्तर-पश्चिम की ओर 'तिलौरा कोट' तथा तराई में उसके आसपास के स्थान को कहते थे। (स्मिथ, *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 159)।

७. III, 84. 31.

था जिसमें कदाचित् पड़ोसी कोलिय राज्य का भी हिस्सा था। शाक्य लोग कोशल के राजा की प्रभुसत्ता को भी पसन्द करते और स्वीकार करते थे। कोशल का राजवंश आदित्य-वंशी इक्ष्वाकु का वंशज था।

कोलिय के राजवंश का कहना था कि वे लोग बनारस के शाही परिवार से सम्बन्धित थे। रामगाम तथा देवदह[1] नगरों से भी इनका सम्बन्ध था, ऐसा उल्लेख आया है। रोहिणी नदी कोलिय तथा शाक्य दोनों राज्यों की विभाजक सीमारेखा थी और दोनों राज्यों के भू भाग की सिंचाई इस नदी से होती थी।[2] एक बार जबकि दोनों राज्यों में खेतों की फ़सलें अपनी जवानी पर थीं, वहाँ के किसान एक जगह इकट्ठा हुए। इन लोगों में नदी के पानी के लिए झगड़ा हुआ। खून-खच्चर हो जाता, किन्तु महात्मा बुद्ध ने बीच-बचाव कर दिया।[3] कोलिय तथा शाक्य आपस में जो आरोप-प्रत्यारोप किये, उनसे पता चलता है कि शाक्यों में अपनी बहन से भी विवाह कर लेने की प्रथा थी। कनिंघम ने कोलिय राज्य को कोहान और औमि (अनोमा) नदियों के बीच बताया है। अनोमा ऐसी नदी थी जो एक ओर कोलिय तथा मल्ल और दूसरी ओर मोरिय राज्यों के बीच सीमारेखा बनाती थी।

ऐतरेय ब्राह्मण[4] तथा पाणिनि[5] की अष्टाध्यायी में भग्ग (भर्ग) राज्य की चर्चा आई है। ऐतरेय ब्राह्मण में भार्गायण राजकुमार कैऋषि सूत्वन का उल्लेख आया है। छठी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में भग्ग राज्य वत्स राज के अधीन था। धोनसाख जातक[6] की प्रस्तावना में लिखा है कि वतन के राजा उदयन के पुत्र राजकुमार बोधि, संसुमारगिरि में रहते थे और उन्होंने एक महल बनवाया था, जिसे कोकनद कहा जाता था। महाभारत और हरिवंश पुराण के अध्ययन से भी पता चलता है कि वत्स और भग्ग राजाओं में आपस में सम्बन्ध

---

१. *DPPN*, I, 689 f, कोलिया की राजधानी रोहणी के पूर्वी तट के निकट ही थी।

२. कुणाल जातक (भूमिका वाला भाग)।

३. *DPPN*, I, 690; कनिंघम, *AGI*, (नवीन संस्करण) 477; 491 ff.

४. VIII, 28.

५. IV. i. III. 177.

६. No. 353.

था और उनका निषादों से भी सम्पर्क था। महाभारत या 'अपदान' के अनुसार ये राज्य विन्ध्य-क्षेत्र में यमुना और शोन[1] नदियों के बीच अवस्थित थे।

बुलि राज्य और कालामस राज्यों के बारे में बहुत थोड़ा ही विवरण मिलता है। धम्मपद की टीका[2] में बुलि राज्य का उल्लेख अल्लकप्प राज्य के रूप में आया है। टीका में यह भी कहा गया है कि यह राज्य सिर्फ़ ३० मील (१० लीग) की लम्बाई में था। इस राज्य के राजाओं के बारे में प्राप्त विवरण से पता चलता है कि इनका वेथादीपक राजा से घनिष्ठ संबंध था। अतः यह माना जा सकता है कि अल्लकप्प वेथादीप से अधिक दूर नहीं था। वेथादीप में ही वह प्रसिद्ध ब्राह्मण रहता था, जिसने बुद्ध की जन्मभूमि[3] में उनकी अस्थियों को प्रस्तर-खण्डों से आच्छादित किया था। कालामस कदाचित् उस प्रसिद्ध दार्शनिक के वंशज थे, जिसका नाम आलार था और जो बुद्ध के सम्बोधि[4] प्राप्त करने के पहले तक उनका शिक्षक था। कालामस के निगम (नगर) केसपुत्त से हमें केशिन-वंश की याद आती है जिनका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण[5] में मिलता है। इनका उल्लेख सम्भवतः पाणिनि[6] की अष्टाध्यायी में भी है। ये लोग ऋग्वेद[7] के पांचाल और दाल्म्यों से भी संबंधित थे। यही बाद में गोमती के तट पर आ बसे। केसपुत्त बाद में कोशल में शामिल कर लिया गया और यहाँ के लोगों ने कोशल[8] जैसे शक्तिशाली राज्य की सत्ता स्वीकार कर ली।

मोरिय-वंश वही था जिसने मगध को मौर्य-वंश जैसा राजवंश प्रदान किया था।[9] इनको कभी-कभी शाक्य-वंश से भी उद्भूत कहा जाता है, किन्तु इसकी पुष्टि का

---

१. महाभारत, II. 30. 10-11; हरिवंश; 29. 73; *DPPN*, II, 345; सुप्र, p. 133.

२. Harvard Oriental Series, 28, p 247.

३. मजूमदार शास्त्री वेथादीप को कसिया बताते हैं (*AGI*, 1924, 714); देखिये फ़्लीट, *JRAS*, 1906, p. 900 n; Hoey के अनुसार वेथादीप बिहार के चम्पारन ज़िले में 'बेतिया' नामक स्थान का नाम था।

४. बुद्धचरित, XII, 2.

५. *Vedic index*, Vol. I, P. 186.

६. VI. 1. 165.

७. V. 61.

८. अंगुत्तर निकाय (PTS, I, 188; निपात III, 65)।

९. "तदुपरान्त ब्राह्मण चाणक्य के मार्यों के उत्तम कुल में उत्पन्न चन्द्रगुप्त नामक एक सुन्दर सजीले युवक को जम्बूदीप का शासक बनाया।"[*]—गेगर, महावंश, p 27; *DPPN*, II. 673.

अभाव है। तत्सम्बन्धी प्राप्त सामग्री में दोनों वंशों[1] को अलग-अलग माना गया है। मोरिय नाम मयूर से बना है। कहते हैं मोरिय-वंश के लोग जहाँ बसे थे वहाँ हमेशा मोरों का स्वर गूँजता रहता था। मोरिय-वंश की राजधानी पिप्पलिवन को ही न्यग्रोधवन या बरगदों का कुंज भी कहा जाता था। ह्वेनसांग ने भी अपने लेखों में इसकी चर्चा की है। यहाँ पर एम्बर-स्तूप[2] भी था, जिसके बारे में फ़ाहियान ने लिखा है कि यह स्थान कुशीनर[3] से १२ योजन या ५४ मील पश्चिम में है।

यहाँ पर इन गणतन्त्रों के अन्दरूनी संगठन पर थोड़ा विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा, यद्यपि यहाँ इतनी गुंजाइश नहीं है कि इनका विशद् वर्णन दिया जाय। इन गणतन्त्रों में मुख्यतः दो वंशज थे। ये वंश शाक्य और कोलिय-वंश के, या कुशीनर के मल्ल और पावा राज्य के मल्ल थे। वृज्जि और यादव वंशों की तरह उपर्युक्त वंशों की भी अनेक शाखाएँ थीं। इन राज्यों में सबसे विशेष बात यह थी कि इनमें कोई ऐसा पुश्तैनी राजा न था जो पूरे राज्य पर शासन करता। इन राज्यों में बैसीलियस नामक राजा यदि हुआ भी होगा तो उसने केवल न्याय-प्रशासन का ही सचालन किया होगा। इन देशों का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति अध्यक्ष (गणपति, गणज्येष्ठ, गणराज तथा संघमुख्य) एवं उसकी मन्त्रि-परिषद् थी। शासक-वर्ग के लोग ही मंत्रि-परिषद् में होते थे। वैशाली का चेटक भी ऐसा ही गणपति या संघमुख्य था। वह मरुदगण[4] राज्य का ज्येष्ठ या अध्यक्ष था। जैन-ग्रन्थों के अनुसार राज्य की सर्वशक्तिमान् कार्यकारिणी (Supreme Executive) के सदस्यों की संख्या

---

१. महापरिनिब्बन सुत्त।

२. रीज़ डेविड्स, *Buddhist Suttas* p. 135; वाटर्स, *Yuan Chwang*, II, pp. 23, 24; कनिंघम, *AGI*, नवीन संस्करण, pp. 491 f, 496 f.

३. *AGI*, नवीन संस्करण, 491; लेगि, *Fa Hien*, p. 79; वाटर्स, I. 141; देखिये *JARS*, 1903. चूँकि गोरखपुर से ३५ मील पूर्व की ओर कसिया (कुशीनारा, कुशीनगर) है, अतः मौर्यों का नगर कुशीनगर से बहुत अधिक दूर न रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि अनोमा के पार कोलियों तथा उसी नदी के तट पर अनुपिया के मल्लों से भी मौर्यों का अधिक निकट का सम्पर्क था।

४. ऋग्वेद. I. 23.8; देखिये, II. 23.1.

६ हुआ करती थी।[1] इनके अतिरिक्त उपराजा और सेनापति भी होते थे जो न्याय तथा सेना का काम देखते थे। पाली के महल्लक तथा वायु पुराण[2] के महत्तर में इनके संबंध में कहा गया है कि सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे इन शासकों का आदर एवं समर्थन करें।

उस समय कुछ ऐसे भी राजवंश थे जिनमें एक स्वस्थ न्याय-व्यवस्था थी, तथा अधिकारियों की अनेक श्रेणियाँ हुआ करती थीं। कोलिय-राजवंश में तो पुलिस भी होती थी जो जनता पर जोर-जुल्म करने और उनसे पैसा ऐंठने के लिये बदनाम थी।[3] उस समय परम्परा एवं धर्म के प्रति आस्था और मंदिरों तथा पुजारियों की व्यवस्था से उस धर्म की याद आती है जो प्राचीन बेबीलोनिया तथा आज के निप्पॉन (जापान) में विद्यमान है।

तत्कालीन स्वतन्त्र गणतन्त्रों की मुख्य संस्था का नाम परिषा था। यह एक लोकप्रिय सभा होती थी जहाँ सभी बूढ़े व युवक एक दूसरे से मिलते, निर्णय लेते तथा उसे कार्यान्वित करते थे। जनता को सभा-स्थल पर एकत्र करने के लिये एक सरकारी अफ़सर नगाड़ा[4] बजा कर एलान करता था। पालि-ग्रन्थों में सभा-स्थल को सन्थागार कहते हैं। यह सभा उसी प्रकार होती थी, जिस प्रकार जैमिनीय उपनिषद् में वर्णित कुरु-पांचाल सभा होती थी। बौद्ध-ग्रन्थ विनय पिटक तथा महागोन्दि सुत्तन्त में भी ऐसी सभाओं का उल्लेख मिलता है। ऐसी सभाओं में सभी सदस्य आकर शान्तिपूर्वक बैठते थे। सभापति सभा में प्रस्तावित कार्यक्रम सबके सामने रखता था और सदस्यगण अपने-अपने विचार प्रकट करते थे। अन्त में सर्वसम्मति[5] से जो निर्णय होता था वही मान्य होता था। यदि कोई विवाद (इसे संवाद भी कहते थे) खड़ा हो जाता था तो मामला मध्यस्थों के सुपुर्द कर दिया

---

१. नव मल्लई, नव लच्छई आदि। सुप्र, p. 125. न्यास में शासन करने वालों की संख्या ३०० थी। क्षुद्रकों द्वारा नगर के गणमान्य व्यक्तियों को सन्धि आदि करने का अधिकार था। परन्तु, यह नहीं ज्ञात है कि इनकी संख्या क्या थी ?

२. वायु पुराण, 96, 35.

३. DPPN, I. 690.

४. *Kindred Sayings*, II. 178. नगाड़े का प्रयोग दशार्ह वंशज भी करते थे (महाभारत, I. 220. 11)।

५. जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III 7.65; *Camb. Hist. Ind.*, I. 176; देखिये *Carm. Lec.*, 1918, 180 ff.

जाता था। इन स्वतन्त्र राज्यों की उपर्युक्त सभाओं में प्रयुक्त होने वाले 'आसन प्रज्ञापक' (seat betokener), 'ज्ञप्ति' (ज्ञप्ति, motion), 'शलाका ग्राहापक' (ballot-collector), 'गणपूरक' (whip), तथा 'उब्बाहिका' (referendum) शब्दों का भी उल्लेख मिलता है।

३. छोटे रजवाड़े तथा बड़े राज्य

युगों से भारतीय इतिहास की मुख्य विशेषता यह थी कि समूचे देश में बहुत-सी छोटी-छोटी रियासतें थीं तथा वे अपने पड़ोसी राज्यों से किसी पर्वत, जंगल या किसी रेगिस्तान से अलग रहती थीं। ये छोटे-छोटे नरेश किसी जंगल, पहाड़ की तलहटी या किसी मरुवन में, जहाँ भी इनकी राजधानी होती थी, अपना शानदार दरबार लगाते थे, चाहे उनका राज्य समूचे देश की प्रमुख राजनीतिक धारा से अलग ही क्यों न रहा हो। इन छोटे-छोटे राज्यों की संख्या बता सकना असम्भव-सा ही है। बिम्बिसार के युग में इन छोटे-छोटे रजवाड़ों का उत्थान-पतन भी हुआ। फिर भी, इन राज्यों में से कुछ का उल्लेख तो आवश्यक ही है। इनमें से गान्धार भी एक राज्य था, जो आम्भी के पूर्वजों पौष्करसारिन या पुक्कुसाति-वंश द्वारा शासित था। बिम्बिसार की रानी खेमा के पिता द्वारा शासित प्रदेश माद्र कहलाता था। रुद्रायन[1] द्वारा शासित रोरुक राज्य, सौवीर या सिन्ध की घाटी में स्थित था। अवन्तिपुत्त, शूरसेन राज्य पर राज्य करता था। दृढ़वर्मन और ब्रह्मदत्त के राज्य का नाम अंग था।

इन शासकों के जातिगत सम्बन्धों के बारे में कुछ कह सकना बड़ा कठिन-सा है। किन्तु, इनके नामों से ऐसा संकेत मिलता है कि या तो ये लोग स्वयं आर्य थे, अथवा आर्य-संस्कृति से पूर्वप्रभावित थे। कुछ राजे तो निश्चित रूप से निषाद कहे जाते थे। पालि-ग्रन्थों में वर्णित आलवक-वंश के लोग, जो यक्षों के देश में घने जंगलों के निवासी थे, निश्चित रूप से अनार्य थे।

इन राज्यों में आलवक[2] पर थोड़ा-सा प्रकाश डालना जरूरी है। यह छोटी-सी रियासत गंगा के समीप स्थित थी। कदाचित् इसी स्थान पर चंचु प्रदेश था जहाँ कि एक बार ह्वेनसांग गया था। कनिंघम और स्मिथ

१. देखिये दिव्यावदान, p. 545.

२. देखिये सुत्त निपात, *SBE*, X, II, 29-30.

के अनुसार वर्त्तमान ग़ाज़ीपुर[1] ही आलवक राज्य था। इसकी राजधानी आलवी[2] (सं अटवी, दे० अटविक) या आलभिया[3] थी। कदाचित् एक बहुत बड़े जंगल के समीप बसी होने के कारण ही राजधानी का नाम आलवी रखा गया था।[4] अभिधानप्पदीपिका में 'आलवी' देश के बीस प्रमुख नगरों में एक मानी गई है। उन दिनों वाराणसी, सावत्थी, वैशाली, मिथिला, आलवी, कोशम्बी, उज्जैनी, तक्कसिला, चम्पा, सागल, संसुमारगिर, राजगह, कपिलवत्थु, इन्दपट्ट, उक्कट्ठ[5], पाटलिपुत्तक, जेत्तुत्तर,[6] संकस्स[7] तथा कुसीनारा। चुल्लवग्ग[8] में कहा गया है कि आलवी में अग्गालव मंदिर था जिसे भगवान बुद्ध ने अपने पदार्पण से गौरवान्वित किया था। यह स्थान कोशल और मगध के बीच रास्ते में ही पड़ता था। उवासग-दसाव में आलभिया के राजा का नाम जियासत्तु (जीतशत्रु conqueror of ene-mies) बताया गया है। लेकिन, एसा लगता है कि जियासत्तु उस राज्य विशेष के राजाओं की उपाधि हुआ करती थी। इसी प्रकार बाद के युग[9] में 'देवानांपिय' की भी उपाधि शासकों[10] में प्रचलित थी। महावीर के समकालीन सावत्थी, कम्पिल,

---

१. वाटर्स, *Yuan Chwang*, II, p. 61, 340.

२. सुत्त निपात; *The Book of the Kindred Sayings*, Vol. I, p. 275.

३. उवासगदसाव, II, p. 103; परिशिष्ट, p. 51-53.

४. देखिये, *The Book of the Kindred Sayings*, Vol. I, p. 160. हार्नले ने यह विचार प्रकट किया कि 'अटवी' से इस नगर का नाम लिया गया है तथा इसका उल्लेख अभिधानप्पादीपिका में भी मिलता है। अशोक तथा समुद्र-गुप्त के लेखों में जंगली राज्य तथा वहाँ के निवासियों के रहन-सहन आदि के सम्बन्ध में भी देखिये।

५. कोशल राज्य का एक नगर (*Dialogues of the Buddha*, I, 108)।

६. चित्तौड़ के निकट (N. L. Dey)।

७. संस्कृत सांकाश्य अथवा कपित्थिका जो कनिंघम के अनुसार उत्तर प्रदेश के फ़र्रुख़ाबाद ज़िले की इक्षुमती नदी के तट पर स्थित संकिस का ही नाम था (देखिये कनिंघम, *AGI*, नवीन संस्करण, p. 422f, 706)।

८. VI. 17; देखिये *Gradual Sayings*, IV. 147; *DPPN*, I. 295.

९. बेबीलॉन में 'देवताओं के प्रिय' की उपाधि हम्मुरली के समय में ही पायी गयी है (*Camb. Hist. Ind.*, p. 511; *IC*, April-June 1946, p. 241)।

१०. ऐतरेय ब्राह्मण में देखिये 'अमित्रानाम् हन्ता' *The Essay on Gunadhya* (189) में हत्थालवक को आलवी का शासक बताया गया है।

मिथिला, चम्पा, वाणियगाम, वाराणसी तथा पोलसपुर आदि के राजाओं को 'देवानांपिय' की उपाधि प्राप्ति थी।[१] बौद्ध-लेखकों ने आलवक[२] के समीप यक्ख राज्य का भी उल्लेख किया है।

इस युग के इतिहास में न तो जंगल में बसने वाली छोटी-छोटी रियासतों का और न नन्हें-नन्हें गणतंत्रों का ही कोई महत्त्व था। इस काल में चार बड़े ही महत्त्वपूर्ण राज्य थे और वे थे कोशल, वत्स, अवन्ती और मगध।

कोशल के राजा महाकोशल के बाद उनका पुत्र प्रसेनदि (प्रसेनजित) गद्दी पर बैठा। कोशल राज्य बहुत विस्तृत था। कदाचित् कोशल राज्य गोमती से लेकर छोटी गण्डक और नेपाल की तराई से लेकर गंगा तक फैला था। कैमूर की पहाड़ियों के पूर्वी भाग में भी कोशल का विस्तार था। कोशल के अधीन कई राजा[३] भी हो गये थे। काशी, शाक्य और कालामस राज्य भी कोशल ही के अधीन थे। कोशल राज्य में दो मल्ल, बन्धुल तथा राजा का भतीजा दीर्घ चारायण[४] प्रभावशाली अधिकारी थे। इन्होंने कोशल-नरेश को छोटी गण्डक के उस पार भी अपना प्रभाव जमाने में बड़ी मदद की थी। जैन-ग्रन्थों के अनुसार ६ मल्ल रियासतें भी काशी-कोशल की मैत्री स्वीकार करती थीं। कोशल-नरेश की मित्रता मगध के राजा सेनिय बिम्बिसार[५] तथा विसालिका-लिच्छवि से भी थी। इसी मैत्री के फलस्वरूप कोशल का राज्य पूर्व की ओर काफ़ी फैल गया था तथा राजा ने अपने राज्य को खूब संगठित कर रखा था। साकेत से सावत्थि के राजमार्ग पर लूटमार मचाने वाले डाकुओं को भी कोशल-नरेश ने कड़ाई से दबा रखा था। ये लुटेरे साधुओं व पुजारियों के शान्तिपूर्ण जीवन में व्यवधान उपस्थित किया करते थे।

---

१. Hoernle, उवासगदसाव, II, pp. 6, 64, 100, 103, 106, 118, 166. शास्त्री द्वारा सम्पादित आर्य मंजुश्री-मूलकल्प, पृ० ६४५ में एक गौड़ राजा को जितशत्रु कहा गया है। यह कहना बड़ी भारी मूर्खता होगी, जैसा कि हार्नले ने पृ० १०३n पर किया है कि जियासत्तु (जितशत्रु), प्रसेनजित तथा चेदग एक ही थे (देखिये *Indian Culture*, II, p. 806)।

२. देखिये सुत्त निपत्त, *SBE*, Vol. X. ii, p. 45.

३. राजाओं के सम्बन्ध में जानने के लिये देखिये, *ante*, pt. 1, 155f.

४. मज्झिम निकाय, II, p. 118. कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा लेखों (नीति-विजित चारायणः, *Ep. Ind.*, III. 210) में वर्णित इसी नाम का व्यक्ति कदाचित् यही था। इन लेखों के अनुसार वह अर्थशास्त्र का लेखक तथा वात्स्यायन के अनुसार काम-विषय का पंडित था।

५. मज्झिम निकाय, II, p. 101.

लड़की वजिरा या वजिरि कुमारी[1] मगध के राजा बिम्बिसार के उत्तराधिकारी अजातशत्रु की रानी हुई थी। उक्त राजकुमार और राजकुमारियों के जीवन की अनेक घटनायें बड़ी ही स्मरणीय हैं। कोशल-नरेश और अजातशत्रु के बीच युद्ध हुआ था। पुत्र के विद्रोह से पिता का सिंहासन छिना था। बाद में कोशल-नरेश के रंगमहल में एक दासी-पुत्री भेजी गयी थी, जो राजकुमार की माँ बनी।

मगध के युद्ध के फलस्वरूप राजा पर बड़ी विपत्ति आई। उन्हीं दिनों उसने एक माली की लड़की 'मल्लिका' से विवाह कर लिया। मल्लिका अपने जीवन भर राजा के जीवन को माधुर्यपूर्ण बनाये रही और स्वयं उसने भी काफ़ी ख्याति अर्जित की। मल्लिकारम नामक उपवन में काफ़ी कथा-प्रवचन[2] हुआ करते थे। यद्यपि राजा ब्राह्मणों का एक बड़ा प्रश्रयदाता था, किन्तु मल्लिका भगवान बुद्ध की उपासक थी और उनके उपदेशों का ही अनुगमन करती थी। राजा की दो बहनें[3] भी थी, जिनके नाम मल्लिका और सुमना थे। ये दोनों बहनें अशोक के समय की कारुवाकी और हर्ष के समय की राज्यश्री के समान ही अपनी दानशीलता व उदारता के लिए प्रसिद्ध थीं।

कोशल राज्य के अन्दरूनी संगठन के अध्ययन से भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ मिलती हैं। समूचे राज्य की एक केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् होती थी। किन्तु, राजा की इच्छाओं पर मंत्रि-परिषद् का तनिक भी नियंत्रण नहीं होता था। कुछ ग्रन्थों में कोशल के मंत्रियों के नाम दिये गये हैं जो मृगधर,[4] उग्ग, सिरिवड्ढ, काल तथा जुन्ह है। राजा के पास सेनापति के रूप में कई मल्ल-योद्धा तथा उसका बेटा युवराज स्वयं था। सड़कों पर राजा के सिपाही पहरा देते थे। राज्य का कुछ भाग ब्राह्मणों को दे दिया जाता था और वे उस भाग पर राजा की तरह रहते थे। किन्तु, उक्त प्रकार के संगठन की कमज़ोरी जल्द ही उभर कर सामने आई और

१. मज्झिम निकाय, II, p. 110.

२. *DPPN*, II. 455-57. कहा जाता है कि जेतवन नामक प्रसिद्ध स्थान का नाम प्रसेनजित के एक पुत्र के नाम से लिया गया है।

३. *Dialogues of the Buddha*, I, pp. 108, 288. पसेनदी ने बुद्ध तथा उनके शिष्यों के लिये क्या किया, यह जानने के लिये गग्ग जातक नं० 155 देखिये। महान् यज्ञ के लिये की गई तैयारी के विषय में *Kindred Saynigs*, I. 102 का अध्ययन कीजिये।

४. *DPPN*, II, 168ff, 172, 1245.

५. देखिये Hoernle, उवासगदसाव, II, Appendix, p. 56; *DPPN*, I, 332, 572, 960; II, 1146.

ी
ी
द
श

ने
ार
ति
।
की
नें
की
व

म-
जा
ं में
ग्रुन्ह
बेटा
भाग
ये ।
और

स्थान

तथा
ग्ये ।
2 का

PN,

राज्य का पतन हो गया। राजा के जो मंत्री अधिक दानशील या उदार होते थे उनकी अपेक्षा मितव्ययी नीति का मंत्री अधिक पसन्द किया जाता था। एक बार तो एक मितव्ययी मंत्री से प्रसन्न होकर राजा ने सात दिन के लिये उसे अपना राजपाट तक सौंप दिया था। ब्राह्मणों को अधिक अधिकार दे देने से राज्य में कुछ विकेन्द्रीकरण की भावना आ गई थी, किन्तु सेनापतियों व अफ़सरों के कड़े व्यवहार तथा राजा होने पर युवराज के निर्दयतापूर्ण कार्यों से राज्य का विनाश जल्दी ही हो गया।

इसी काल मे कोशल राज्य के दक्षिण में वत्स राज्य अवस्थित था। यहाँ के राजा शतानीक परन्तप के बाद उनका लड़का उदयन गद्दी पर बैठा। प्राचीन कहानियों में उदयन को अनेक कथाओं[1] के नायक श्री रामचन्द्र, नल तथा पाण्डवों का प्रतिद्वन्द्वी कहा जाता है। धम्मपद की टीका में यह बताया गया है कि अवन्ती के राजा प्रद्योत की कन्या वासुलदत्ता या वासवदत्ता किस प्रकार उदयन की रानी बनी। इसमें वत्स के राजा की दो अन्य पत्नियों की चर्चा भी की गई है। इनमें एक तो कुरु-ब्राह्मण की कन्या मागन्धी[2] थी तथा दूसरी कोषाधिकारी घोषक की दत्तक पुत्री सामावती थी। मिलिन्दपन्ह नामक ग्रन्थ में गोपाल-माता[3] नामक एक किसान-कन्या का उल्लेख है। यह भी राजा की एक पत्नी थी। 'स्वप्नवासवदत्ता' तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में मगध के राजा दर्शक की बहिन पद्मावती को भी उदयन की रानी कहा गया है। प्रियदर्शिका में कहा गया है कि अंग राज्य के राजा दृढ़वर्मन की पुत्री आरण्यका के साथ उदयन का विवाह हुआ था। 'रत्नावली' के अनुसार एक बार राजा उदयन अपनी बड़ी रानी वासवदत्ता की दासी सागरिका के प्रेमपाश में बँध गया था। कालिदास के 'प्राप्य-आवन्तिम् उदयन कथा-कोविद ग्राम-वृद्धान्' (मेघदूत) शब्दों से स्पष्ट है कि कालिदास के समय में अवन्ती भर में

१. इस दन्तकथा का सम्पूर्ण विवरण जानने के लिये प्रो० फेलिक्स लकोट द्वारा लिखित तथा Rev. A.M. Tabard द्वारा अनूदित *Essay on the Gunadhya and the Brihatkatha* देखिये; इसी सम्बन्ध में और भी देखिये *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1920-21; गुणे, "*Pradyota, Udayana and Srenika*—A Jain Legend"; J. Sen, "*The Riddle of Pradyota Dynasty*" (*IHQ*, 1930, pp. 678-700); Nariman, Jackson and Ogden, प्रियदर्शिका, lxii ff; *Aiyangar Com. Vol.*, 352 ff; *Malalasekara*, *DPPN*, I. 379-80; II, 316 859.

२. देखिये अनुपमा, दिव्यावादन, 36.

३. IV, 8. 25; *DPPN*, I, 379-80.

वृद्धजनों द्वारा उदय को कहानियाँ कही और सुनी जाती थीं। जातकों में भी राजा उदयन के चरित्र पर कुछ प्रकाश डाला गया है। मातङ्ग जातक को प्रस्तावना में कहा गया है कि एक बार मदिरा के नशे में उदयन ने पिंडोल भारद्वाज को बड़ा उत्पीड़न दिया था। उनके शरीर पर काटने वाली चीटियों का भोटा बँधवा दिया था। ग्यारहवीं शताब्दी के विद्वान् सोमदेव द्वारा लिखित 'कथा-सरित्सागर' में उदयन की दिग्विजय[1] का वर्णन किया गया है। श्रीहर्ष-लिखित प्रियदर्शिका[2] में कहा गया है कि उदयन ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी और अपने श्वसुर दृढ़वर्मन का खोया हुआ राजपाट वापस लाकर उन्हें पुनः सिंहासना-सीन किया था। दृढ़वर्मन अंग राज्य के राजा थे। यद्यपि लोककथाओं से ऐति-हासिक तत्व निकालना काफ़ी कठिन-सा काम है, तो भी इतना तो स्पष्ट ही है कि उदयन एक महान् राजा था जिसने अनेक देशों को जीता और मगध, अंग तथा अवन्ती की राजकुमारियों से विवाह किया। उदयन का सितारा बड़ी तेज़ी से बुलन्दी पर चढ़ा। उदयन के बाद कोई योग्य उत्तराधिकारी न रहा। राजमहिषी का पुत्र बोधि शान्तिपूर्ण जीवन का प्रेमी था और उसने अशान्तिपूर्ण राजनीतिक जीवन की अपेक्षा घने जंगलों में जाकर मनन-चिन्तन का मार्ग चुना। बोधि संसुमारगिरि पर चला गया। अनेकानेक युद्धों से जर्जर उदयन का राज्य अन्ततः पड़ोसी राज्य अवन्ती के शासकों की राजलिप्सा का शिकार हो गया और उज्जैन के शासक यहाँ राज्य करने लगे।[3]

उदयन के समय में अवन्ती में चण्ड प्रद्योत महासेन राज्य करता था जिसकी कन्या वासवदत्ता उदयन की बड़ी रानी थी। प्रद्योत के बारे में महावग्ग में कहा गया है कि वह एक निर्दयी शासक था।[4] पुराणों में उसे 'नयवर्जित' कहा गया है। यद्यपि उसकी नीति ठीक न थी, किन्तु पड़ोसी राजे उसके अधीन थे—स वै प्रनत सामन्तः। एक बार उसने वत्स के राजा को क़ैद कर लिया था तथा मथुरा राज्य के भी सम्पर्क में था। मज्झिम निकाय[5] में कहा गया है कि बिम्बिसार के

१. त्वानी द्वारा अनूदित, Vol. 1, pp. 148 ff.

२. Act IV.

३. देखिये 'आवश्यक कथानक' में मणिप्रभा की कथा; जैकोबी, परिशिष्ट-पर्वन्, द्वितीय संस्करण, xii; कथा-सरित्सागर, II, p. 484. भद्रेश्वर ने अपनी पुस्तक 'कहावली' में, जिसे उन्होंने आवश्यक कथानक (IV) से उद्धृत किया है, लिखा है कि प्रद्योत का प्रपौत्र मणिप्रभा कौशाम्बी का शासक था, जबकि उसका भाई अवन्तिसेन उज्जैन अथवा अवन्ती का शासक था।

४. *SBE*, XVII, p. 187.

५. III. 7.

पुत्र अजातशत्रु ने राजगृह के चतुर्दिक् क़िलेबन्दी करा रखी थी क्योंकि उसे भय था कि कहीं प्रद्योत आक्रमण न कर दे। इससे स्पष्ट है कि अवन्ती का प्रद्योत अपने पड़ोसियों के लिये भी डर का कारण बना था। प्रद्योत ने पुष्करसारिन तथा तक्षशिला के राजा पर भी आक्रमण किया था।[१]

४. मगध का चन्द्रमा—बिम्बिसार

जैन-कथाओं के अनुसार एक बार अवन्ती के प्रद्योत ने बिम्बिसार[२] के जीवन-काल में ही राजगृह पर आक्रमण किया था। शुरू-शुरू में जिस राजकुमार ने मगध की राजसत्ता की नीव डाली, इतिहास को अब कदाचित् उसका नाम तक भी याद नही रहा। वह दक्षिणी बिहार के किसी छोटे सामन्त का बेटा था। कतिपय ग्रन्थों में एक काल्पनिक नाम[३] देकर इस दोष को दूर कर दिया गया है। कहते हैं, जिस वंश से उक्त राजकुमार का सम्बन्ध था, उसे हर्यङ्क-कुल कहते थे। जैसा कि हम पहले भी देख चुके है,[४] हमें पुराणों के अलावा अन्यत्र से प्राप्त सामग्री की उपेक्षा नही करनी चाहिए। नवयुवक बिम्बिसार का राज्याभिषेक उसके पिता द्वारा उसकी १५ वर्ष की आयु[५] में सम्पन्न हुआ था। बिम्बिसार सेणिय या श्रेणिक की उपाधि भी धारण करता था। बिम्बिसार का राज्याभिषेक इस अर्थ में भी स्मरणीय रहा कि उसके ६ सौ वर्ष बाद पुनः एक राजा ने अपने राजकुमार को गोद में लेकर मगध के राजसिंहासन पर बिठाया और उससे राज्य की रक्षा करने का आग्रह किया।

---

१. प्रद्योत इस युद्ध में असफल रहा। पुष्करसारिन तथा पांडव के बीच युद्ध हो जाने से ही उसका सम्पूर्ण विनाश होते-होते बचा (*Essay on Gunadhya*, 176)।

२. वह राजकुमार अभय की चालाकियों का शिकार हुआ (देखिये, *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1920-21, 3; *DPPN*, 1, 128)।

३. अनेक स्वर्गीय लेखकों द्वारा जो नाम दिये गए हैं, उनमें से कुछ के नाम हैं—भाटियो (भट्टिय, बोधिस), महापद्म, हेमजित, क्षेमजित, क्षेत्रोजा अथवा (क्षेत्रौजा)।

४. सुप्र, p. 115 ff.

५. महावंश, गेगर द्वारा अनूदित, p. 12.

नये राजा को समूचे राज्य की सभी परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान था। उत्तर में वृजि (वज्जि) की सैनिक शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। पास-पड़ोस के महत्त्वाकांक्षी राजा अपने राज्य-विस्तार की नीति पर चल रहे थे। मुख्यतया श्रावस्ती और उज्जैन राजधानियों से उक्त आक्रामक नीति का आविर्भाव हुआ था। इन दिनों उज्जैन का राजा और तक्षशिला के पुष्करसारिन से शत्रुता चल रही थी। तक्षशिला के राजवंश को उसके कई दुश्मनों ने परेशान कर रखा था। पंजाब के शाकल तक फैले हुए पांडव भी तक्षशिला को डराते-धमकाते रहते थे। तक्षशिला के राजा ने मगध से सहायता माँगी। यद्यपि राजा बिम्बिसार अपने गांधार देश के मित्र राजा को कृतार्थ करना चाहता था और अपने पूर्व के पड़ोसियों से चल रहे झगड़े को भी समाप्त करना चाहता था, तो भी प्रद्योत या किसी अन्य सैन्य-सामन्त के सम्पर्क में नहीं आना चाहता था।

एक बार अवन्ती के राजा को पाण्डु रोग हो गया था तो बिम्बिसार ने उसकी चिकित्सा के लिये वैद्यराज जीवक को भेजा था। यूरोप के हैप्सबर्ग्स तथा बोरबन्स की तरह बिम्बिसार भी राजवंशों से वैवाहिक सम्बन्धों का समर्थक था। उसने माद्रा,[1] कोशल[2] तथा वैशाली से वैवाहिक सम्बन्ध क़ायम भी किये। बिम्बिसार की यह नीति बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी। उसके द्वारा उपर्युक्त सैन्य-शक्तिप्रधान राज्य बिम्बिसार से सन्तुष्ट ही नहीं रहे, वरन् उन्होंने मगध को पश्चिम तथा उत्तर की ओर फैलने में भी मदद दी। कोशल से आई बिम्बिसार की रानी अपने साथ काशी ग्राम भी लाई। काशी से १ लाख का भू-राजस्व प्राप्त होता था। कोशल की ओर से राजकुमारी के 'स्नान व शृंगार'[3] के ख़र्च को पूरा करने के लिये उक्त ग्राम मगध को मिला था। वैशाली से हुए सम्बन्ध से भी तत्काल कुछ परिणाम निकले।

१. कहा जाता है कि शाकल (माद्रा) की राजकुमारी खेमा ही बिम्बिसार की मुख्य रानी (प्रेमिका) थी। क्या तोलेमी के समय में शाकल में पाये जाने वाले पाण्डवों से भी उसका कोई सम्बन्ध था?

२. *Dhammapada Commentary* (Harvard, 29, 60; 30, 225) के अनुसार बिम्बिसार तथा पसेनदी एक दूसरे की बहन से विवाह कर वैवाहिक सूत्र में बँधे थे।

३. देखिये जातक संख्या 239, 283, 492। तुष जातक (338) तथा मूषिक जातक (373) के अनुसार कोशल, की राजकुमारी ही अजातशत्रु की माता थी। 'जातक' की भूमिका में कहा गया है कि "अजातशत्रु के गर्भ में आने के समय, कोशल-कुमारी की यह तीव्र उत्कण्ठा हुई

अपनी कुशल कूटनीति के फलस्वरूप ही बिम्बिसार को अपने शत्रु अंग से संघर्ष करने का अवसर मिला और अन्त में बिम्बिसार ने ब्रह्मदत्त[1] को हराकर अंग राज्य पर अधिकार जमा ही लिया। महावग्ग[2] तथा शोणदण्ड सुत्त दोनों ग्रन्थों से भी बिम्बिसार की अंग राज्य पर विजय की पुष्टि होती है। इन ग्रन्थों में लिखा है कि राजा बिम्बिसार ने चम्पा नगर से प्राप्त होने वाली आय ब्राह्मण शोणदण्ड को समर्पित कर दी थी। जैन-ग्रन्थों में मिलता है कि अंग राज्य एक अलग प्रान्त था और मगध के युवराज द्वारा शासित था। चम्पा इसकी राजधानी थी।[3] राजा स्वयं राजगृह-गिरिव्रज[4] में निवास करता था। इस प्रकार कूटनीति और ताक़त के बल पर बिम्बिसार ने अंग राज्य तथा काशी के एक भाग को मगध में मिला लिया था। फिर तो मगध निरन्तर विस्तार की ओर बढ़ता ही गया, और तब तक बढ़ता गया जब तक कि महान् अशोक ने

कि वह महाराज बिम्बिसार के दाहिने घुटने का रक्तपान करे।" संयुक्त निकाय (*Book of Kinderd Sayings*, 110) में कोशल के पसेनदी ने अजातशत्रु को अपना भानजा कहा है। *Book of Kinderd Sayings*, Vol. I, p. 38 में मद्दा (मद्रा) अजातशत्रु की माता का नाम प्रतीत होता है। तिब्बत के एक लेखक ने उसे बासवी कहा है (देखिये *DPPN*, I. 34)। जैन-लेखकों ने वैशाली के चेतक की पुत्री चेलना (छलना) को कूणिक-अजातशत्रु की माता बताया है। निकायों में अजातशत्रु को वैदेही-पुत्र (विदेह की राजकुमारी का पुत्र) कहा गया है। यह कथन जैन-कथन की पुष्टि करता है, क्योंकि विदेह वैशाली ही में था। बुद्धघोष के अनुसार विदेही वेद-इह वेदेन इहति = मानसिक प्रयत्न, अर्थात् वह उन्नत मष्तिष्क वाली राजकुमारी का पुत्र था। इस सम्बन्ध में हमें याद रखना चाहिये कि कोशल के राजा पर-आटणार की उपाधि 'विदेह' थी, अतः महाकाव्य में अनेक राजकुमारियों को कौशल्य कहा गया है। अतः वैदेही पुत्र कहने मात्र से ही यह सिद्ध नही हो जाता कि वह कोशल-राजकुमारी का पुत्र नही था। एक अन्य स्रोत के अनुसार, "चेल" (छलना) को भी वैदेही कहा गया है, क्योंकि वह विदेह से लाई गई थी (*HU*, II, 20)।

१. देखिये *JASB*, 1914, p. 321.

२. देखिये *SBE*, XVII, p. 1.

३. देखिये हेमचन्द्र द्वारा लिखित परिशिष्टपर्वन् (VII, 22), और भगवती सूत्र तथा निरयावली सूत्र (वारेन द्वारा सम्पादित, p. 3)। राजा सेणिय एवं चेलनादेवी का पुत्र राया कूणिय जम्बूदीप में, भारतवर्ष में चम्पानगरी का शासक था।

४. सुत्त निपत्त, *SBE*, X, ii, 67.

कलिंग-विजय के बाद अपनी तलवार रख नहीं दी। महावग्ग में लिखा है कि बिम्बिसार के राज्य में ८० हज़ार[1] नगर थे।

बिम्बिसार के समय की इन सफल विजय-यात्राओं का एक कारण यह भी है कि राज्य का प्रशासन बड़ा ही कुशल और सशक्त था। बिम्बिसार अपने अफ़सरों[2] पर बड़ी कड़ाई से हुकूमत करता था। वह प्रायः ग़लत सलाह देने वाले अफ़सरों को बर्खास्त कर देता और जिस अधिकारी की सलाह उसे पसन्द आ जाती, उसे पुरस्कृत करता। राजा की उक्त नीति के कारण वस्सकार और सुनीथ जैसे अधिकारियों को ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ। राज्य के उच्च अधिकारी (राजभट) कई वर्गों में विभाजित थे। वे वर्ग इस प्रकार थे—(१) सब्बत्थक (सामान्य मामलों का कर्त्ता-धर्त्ता), (२) सेनानायक महामत्त, तथा (३) वोहारिक महामत्त (न्यायाधीश वर्ग)।[3] हमें 'विनय' नामक ग्रन्थ में तत्कालीन न्यायाधीशों के कार्यकलाप के सम्बन्ध में काफ़ी वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में यह भी बताया गया है कि अपराधियों को किस प्रकार उनके अपराध का त्वरित दण्ड दिया जाता था। कारावास के अलावा बेंत लगाने, दागने, सर काटने, तथा पसली तोड़ देने आदि की सज़ाएँ दी जाती थी। उपर्युक्त तीन वर्गों के अलावा अफ़सरों का एक चौथा वर्ग भी होता था। चतुर्थ वर्ग का अधिकारी गाँवों में होता था और किसानों की पैदावार पर दशांश कर लगाने व वसूलने[4] की जिम्मेदारी उस पर होती थी।

प्रान्तों में काफ़ी मात्रा में स्वशासन स्थापित था। हम चम्पा में एक उपराजा का उल्लेख देख चुके हैं। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन यूरोप में जिस प्रकार अर्ल और काउन्ट हुआ करते थे, बिम्बिसार के युग में उसी प्रकार मण्डलिक राजा[5] हुआ करते थे। बिम्बिसार हमेशा William the Conqueror की तरह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का दमन करता था। यह कार्य वह प्रायः अपने राज्य के ८० हज़ार नगरों से आये ग्राम-प्रधानों (ग्रामिकों) की सहायता से करता था।

---

१. सम्भवतः स्टॉक की संख्या।

२. विनय पिटक (VII, 3.5) का चुल्लवग्ग देखिये; विनय पिटक, I, 73, 74 f; 207, 240.

३. पाली लेख में वर्णित न्यायाधिकारी (*Kindred Sayings*, II, 172)।

४. *Camb. Hist. Ind.*, 199.

५. *DPPN*, II, 898.

बिम्बिसार ने यातायात और संचार-व्यवस्था को भी विकसित करने का प्रयत्न किया। नये राजमहल की नीव डाली गई। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-वर्णन में बिम्बिसार-मार्ग तथा बिम्बिसार-सेतु का उल्लेख किया है। ह्वेनसांग ने यह भी लिखा है कि जब पुराने राजगृह में आग लगी तो राजा ने श्मशान में नये नगर का निर्माण कराया। फ़ाहियान के कथनानुसार नये राजगृह के निर्माण का श्रेय अज्ञातशत्रु को था। राजदरबार में जीवक जैसे राजवैद्य का होना यह सिद्ध करता है कि बिम्बिसार के समय में औषध-विज्ञान की उपेक्षा नहीं की जाती थी।

एक अर्थ में बिम्बिसार अभागा था। प्रसेनजित की तरह वह भी अपने युवराज के षड्यन्त्र का शिकार हुआ। युवराज को उसने चम्पा का वाइसराय (उपराजा) ही नहीं बनाया था, वरन् उसे राजा के भी अधिकार प्रधान कर रखे थे। युवराज ने अपने पिता का ही अनुकरण किया। इतिहास जिसे अजातशत्रु, कूणिक तथा अशोकचन्द अनेक नामों से जानता है, उस कृतघ्न पुत्र ने अपने पिता को मौत के घाट उतारा। युवराज के इस जघन्य अपराध से मगध और कोशल के भी सम्बन्ध खराब हुए। डॉक्टर स्मिथ का कहना है कि उक्त हत्या युवराज की धार्मिक चर्चाओं से घृणा की प्रवृत्ति का परिणाम है। किन्तु, इससे पाली तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री के प्रति संदेह होता है। अन्य स्रोतों से मिली सामग्री पर रीज़ डेविड्स या अन्य इतिहासकार विश्वास करते हैं, तथा उनके आधार पर प्राप्त निष्कर्षों की प्रामाणिकता की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जैन-ग्रन्थों[४] की सहायता से पुष्टि करते है।

१. देखिये भगवती सूत्र, निरयावली सूत्र, परिशिष्टपर्वन्, IV, 1-9 ; VI, 22; तथा कथाकोश, p. 178.

२. चुल्लवग्ग, VII. 3. 5. राज्य-कार्य में बिम्बिसार ने अपने अन्य पुत्रों से भी सहायता ली थी। इनमें से एक अभय (उज्जैन की पद्मावती अथवा नन्दा का पुत्र) ने प्रद्योत के षड्यंत्र को विफल करने में अपने पिता को सहायता दी थी। अम्बपाली हाला का पुत्र विमल कोण्डन्न, छलना का पुत्र वेहाल, काल, सिलवत, जयसेन तथा पुत्री चुन्दी का भी उल्लेख मिलता है।

३. कथाकोश औपापत्ति सूत्र में उसे 'देवनुंपिय' कहा गया है (*AI*, 1881, 108)। यह उपाधि ई० पू० तीसरी शताब्दी के 'देवनांपिय' से मिलती है।

४. जैनियों ने इस बात का प्रयत्न किया है कि कूणिक को पिता की हत्या करने से मुक्त किया जाये। जैकोबी ने भद्रबाहु के कल्पसूत्र (1879, p. 5) को लिखते समय निरयावली सूत्र का उल्लेख किया है।

५. कूणिक-अजातशत्रु

कूणिक-अजातशत्रु ने चाहे जिस ढंग से सिंहासन प्राप्त किया हो, किन्तु वह बड़ा ही सशक्त शासक सिद्ध हुआ। राजगृह की क़िलेबन्दी करवा कर उसने प्रतिरक्षा की व्यवस्था दृढ़ की तथा शोन और गंगा के सगम के समीप उसने पाटलिग्राम की नीव डाली,जो उसके राज्य का नया गढ़ बना। प्रसिया (या प्रशा, यूरोप में) के फ़ेडरिक-द्वितीय की तरह अजातशत्रु ने अपने पिता की नीति का ही पालन किया, यद्यपि पिता से उसके सम्बन्ध कभी भी अच्छे नहीं रहे। उसका शासन हर्यक-वंश का चरमोत्कर्ष-काल था। उसने कोशल को ही नतमस्तक नहीं किया, काशी का ही कुछ भाग मगध में नही मिलाया, वरन् उसने वैशाली को भी हड़प लिया। उसकी तथा कोशल की लड़ाई का उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों[1] में भी मिलता है। कहते हैं, जब अजातशत्रु ने राजा बिम्बिसार की हत्या की तो बिम्बिसार की रानी कोसलादेवी की भी मृत्यु उसके वियोग में हो गई। रानी की मृत्यु के बाद भी मगध को काशीग्राम का राजस्व मिलता रहा। यह ग्राम रानी के शृंगार-व्यय के हेतु दहेज में मिला था। किन्तु, कोशलाधीश प्रसेनजित का कहना था कि पिता की हत्या करने वाले को उक्त ग्राम नही मिलना चाहिए। युद्ध आरम्भ हो गया। कभी तो प्रसेनजित काफ़ी भूभाग पर कब्ज़ा कर लेता और कभी अजातशत्रु कोशल के किसी भाग पर कब्ज़ा कर लेता। एक बार अपनी पराजय के बाद राजा प्रसेनजित श्रावस्ती भाग गया था। एक बार उसने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया था, किन्तु चूँकि वह रिश्ते में भान्जा होता था, इसलिये छोड़ भी दिया गया। यद्यपि अजातशत्रु की फ़ौज पर भी वह कब्ज़ा कर चुका था, किन्तु बाद में उसे प्रसन्न करने के लिये उसने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ कर दिया। राजकुमारी और अजातशत्रु के विवाह के बाद काशीग्राम पुन: मगध राज्य को दहेज में मिल गया और शान्ति स्थापित हो गई। किन्तु, राजकुमारी का पिता[2] ३ वर्षों से अधिक समय तक चैन से न रह सका। एक बार वह दौरे पर था कि कोशल के प्रधान सेनापति दीर्घचारायण ने राजकुमार विडूडभ को सिंहासन[3] पर बिठाल दिया। भूतपूर्व राजा, विडूडभ के मुक़ाबले

१. *The Book of the Kindred Sayings*, I, pp. 109-110; देखिये संयुक्त निकाय, हरितमात, वड्ढकी-सूकर, कुम्मा सपिण्ड, तच्छसूकर तथा भद्दसाल जातक।

२. *DPPN*, II, 172.

३. भद्दसाल जातक।

अजातशत्रु की मदद पाने के विचार से राजगृह की ओर भागा, किन्तु मगध की राजधानी पहुँचने के पूर्व ही उसे ठण्डक लग गई और उसकी मृत्यु हो गई।

मगध और वैशाली के युद्ध का वर्णन जैन-ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में सुरक्षित कर दिया है। कहा जाता है कि राजा सेणिय बिम्बिसार ने वैशाली के के राजा चेटक की कन्या तथा अपनी रानी चेल्लणा (छलना) के पुत्रों हल्ल और वेहल्ल को अपना प्रसिद्ध हाथी सेयणग (सेचनक--अभिषेक करने वाला) तथा १८ लड़ियो का हीरे का एक हार भेंट कर दिया। अपने पिता से राज्य छीनने के बाद कूणिय (अजातशत्रु) ने अपने छोटे भाइयों से उक्त दोनों उपहारों को वापस करने को कहा। अजातशत्रु ने अपनी पत्नी पऊमावई (पद्मावती)[१] के उकसाने पर ऐसा किया। छोटे भाइयों ने हाथी और हार वापस देने से इनकार कर दिया और अपने नाना चेटक के यहाँ भाग गये। अजातशत्रु सीधे तरीके से हाथी और हार वापस न पा सका। फलस्वरूप उसने वैशाली-नरेश चेटक[२] से युद्ध छेड़ दिया। बुद्धघोष की टीका सुमंगल-विलासिनी[३] के अनुसार, लिच्छवियों द्वारा विश्वासघात मगध और वैशाली के बीच युद्ध का कारण था। यह विश्वास-घात कुछ क़ीमती हीरे-जवाहरात के प्रश्न को लेकर हुआ था।

कतिपय पाली ग्रन्थों[४] में भी वैशाली और मगध के युद्ध का उल्लेख मिलता है। महावग्ग में कहा गया है कि एक बार मगध के दो मंत्री सुनीद (सुनीथ) और वस्स-कार वज्जियों के विरोध के लिये एक क़िले का निर्माण कर रहे थे। महापरिनिब्बान सुत्तन्त में कहा गया है कि "राजगृह की एक पहाड़ी पर वह परम सौभाग्यशाली (महात्मा बुद्ध) रहा करता था। उस समय मगध का राजा अजातशत्रु वज्जियों

१. मगध-वंश में पद्मावती का उल्लेख इतनी बार हुआ है कि मानो यह किसी एक व्यक्ति विशेष का नाम न होकर कोई उपाधि रही हो। राजकुमार अभय की माता, अजातशत्रु की एक रानी, दर्शक की एक बहन आदि का भी यही नाम था। कामसूत्र में कहा गया है कि पद्मिनी हर प्रकार से पूर्ण एवं सुन्दर स्त्री को ही कहा गया है। हो सकता है कि यह नाम पौराणिक कथाओं से लिया गया हो।

२. उवासगदसाव, II, परिशिष्ट, p. 7; देखिये त्वानी कथाकोश, p. 176 ff.

३. वर्मी संस्करण, Part II, p. 99. देखिये बी० सी० लॉ की *Buddhistic Studies*, p. 199; *DPPN*, II, 781.

४. *SBE*, XI, p. 1-5, XVII, 101; *Gradual Sayings*, IV, 14 etc.

पर आक्रमण करने का इच्छुक था। उसने कहा भी—"मैं वज्जियों का उन्मूलन कर दूँगा, चाहे वे कितने ही बली और ताक़तवर क्यों न हों। मैं इन वज्जियों को उजाड़ दूँगा, मै इन्हे नेस्तनाबूद करके रहूँगा।"

अजातशत्रु ने मगध के महामात्य ब्राह्मण वस्सकार को बुलाया—"ब्राह्मण! इधर आओ, जाकर उस सौभाग्यशाली (बुद्ध) से कहो कि अजातशत्रु ने वज्जियों का उन्मूलन करने का निश्चय किया है।" राजा की बात सुनकर महामात्य ने जाकर बुद्ध से ज्यों का त्यों सुनाया।

निरयावाली सूत्र में कहा गया है कि जब अजातशत्रु ने वैशाली के चेटक पर आक्रमण की पूरी तैयारी कर ली तो चेटक ने लिच्छवि, मल्लक, काशी तथा कोशल के १८ गणराज्यों[1] का आह्वान किया और उनसे कहा कि आप लोग चाहें तो अजातशत्रु की लालसा पूरी करें और नही तो उसके खिलाफ़ युद्ध करने को तैयार हों। मज्झिम निकाय[2] में कोशल और वैशाली के बीच काफ़ी अच्छे सम्बन्धों का उल्लेख मिलता है। इसलिये जैन-ग्रन्थों का यह तथ्य सन्देह से परे है कि काशी और कोशल के अलावा वैशाली तथा अन्य राज्यों में इस प्रश्न पर एकता हो गई। काशी, कोशल और वैशाली के अतिरिक्त अजातशत्रु के अन्य शत्रुओं ने भी इस बार संयुक्त रूप से उससे मोर्चा लिया। मगध-कोशल और मगध-वज्जि के युद्ध एक मात्र युद्ध ही नहीं थे, वरन् मगध के बढ़ते प्रभाव के विरोध में चल रहे आन्दोलन के प्रतीक भी थे। जिस प्रकार एक बार रोम के प्रभाव के विरुद्ध सेमनाइटों, इट्रस्कनों तथा गौलों को संघर्षरत होना पड़ा था, उसी प्रकार मगध के विरुद्ध धुधुआते धुएँ ने भी युद्ध की लपटों का रूप ग्रहण कर लिया।[3]

कूणिय-अजातशत्रु के बारे में कहा जाता है कि उसने वैशाली के युद्ध में महासिलाकण्टग तथा रथमुसल युद्ध-यन्त्रों का प्रयोग किया था। महासिलाकण्टग एक प्रकार का इंजन होता था, और बड़े-बड़े पत्थरों को लेकर भीड़ पर फेंकने का काम करता था। इसी प्रकार रथमुसल एक प्रकार का रथ होता था, जिसमें गदा लगी होती थी। रथ जिस ओर से होकर गुजरता था, गदा उसी ओर सैकड़ों का काम तमाम कर देती थी।[4] प्राचीन रथमुसल की तुलना आजकल के युद्धों में प्रयोग किये जाने वाले टैंकों से की जा सकती है।

1. Chiefs of the republican clans, *Cf.* 125 *ante.*

2. Vol. II, p. 101.

3. कहा जाता है कि अवन्ती के प्रद्योत ने भी अपने मित्र बिम्बिसार की मृत्यु का बदला लेने के लिये तैयारी की थी (*DPPN*, I, 34)।

४. उवासगदसाव, Vol.II, परिशिष्ट, p. 60 ; कथाकोश p. 179.

वैशाली के इस युद्ध में आजीविक सम्प्रदाय के गुरु गोसाला मंखलिपुत्त भी मारे गये। लगभग १६ वर्ष बाद महावीर की मृत्यु के समय भी मगध का विरोध करने वाले गणतंत्रों का अस्तित्व था। 'कल्प-सूत्र' के अनुसार, जिस समय महावीर की मृत्यु हुई उस समय मगध के शत्रु गणतंत्रों ने एक बड़ा महोत्सव किया जो १५ वर्ष पूर्व वैशाली के युद्ध की किसी विजयपूर्ण घटना की स्मृति में मनाया गया था। ऐसा निरयावली सूत्र में भी कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि मगध तथा उसके शत्रु गणतंत्रों के बीच छिड़ा युद्ध १६ वर्ष से अधिक समय तक चला।

---

१. *SBE*, xxii, 266 (अनुच्छेद 128)। जैसा कि जैकोबी ने कहा है (भद्रबाहु का कल्पसूत्र, 6 ff) कि महावीर के निर्वाण की तिथि विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व (ई० पू० ५८) थी, श्वेताम्बर इसे सही मानते है, जबकि दिगम्बरों के अनुसार विक्रम से ६०५ वर्ष पूर्व थी। कहा जाता है कि दिगम्बरों का विक्रम अर्थ शालिवाहन (७० ई०) मे है। हेमचन्द्र ने हमारे समक्ष एक दूसरी ही बात रखी कि महावीर के महानिर्वाण के १५५ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त शासक बना—

इवाम् च श्री महावीर मुक्ता वर्षास्ते गते
पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन् नृपः ।

— स्थविरावलिचरित, परिशिष्टपर्वन्, VIII, 339.

चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक जनश्रुति के अनुसार ३२६, या ३१२ ई०पू० में हुआ था; हेमचन्द्र के परिशिष्टपर्वन् के अनुसार महावीर की मृत्यु ४८१ से ४६७ ई०पू० में होनी चाहिये। प्राचीन बौद्ध-साहित्य (*Dialogues of the Buddha*, III p. 111, 203; मज्झिम, II, 243) के अनुसार जैन प्रचारक की मृत्यु बुद्ध से पूर्व हुई थी। इस प्रकार आधुनिकतम सूत्रों से यही ज्ञात होता है कि शाक्यमुनि का परिनिर्वाण ई०पू० ४८६ में हुआ था (Cantonese tradition, Smith, *EHI*, 4th. ed., 49)। सिंहली लेखकों के अनुसार शाक्यमुनि का निर्वाण अजातशत्रु के शासन के ८ वें वर्ष में हुआ था। इसके अनुसार बिम्बिसार का राज्याभिषेक ५४३ ई०पू० में होना चाहिये। जैन-लेखक, कूणिक के राज्याभिषेक तथा अपने स्वामी की मृत्यु के बीच का अंतर १६ तथा '५' वर्ष बताते हैं। बौद्ध-लेखकों के अनुसार दोनों के बीच का समय ८ वर्ष से भी कम होना चाहिये। जैन एवं बौद्ध साहित्य की विभिन्न तिथियों में तभी एकरूपता आ सकती है जब हम यह स्वीकार करें कि जैनियों ने कूणिक के चम्पा के शासक बनने के समय से तथा बौद्ध-साहित्यिकों ने अजातशत्रु के राजगृह के सिंहासन पर बैठने के समय से तिथि-गणना की है। बौद्ध-परम्परा के अनुसार परिनिर्वाण से १ वर्ष पूर्व वस्सकार, बुद्ध से वृजि-दुर्घटना के सम्बन्ध में मिले। तीन वर्ष के पश्चात् (*DPPN*, I, 33-34), अर्थात् ४८४ ई० पू० में वृजि-शक्ति का विघटन हुआ; परन्तु इस पर बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

'अट्ठकथा' में कहा गया है कि वैशाली तथा उनके मित्रों को विघटित व समाप्त' करने के लिये मगध के वस्सकार आदि राजनीतिज्ञों ने मैकियावली[1] की कूटनीति से काम लिया था।

वैशाली को पूरी तरह से हड़प लेने एवं कोशल व वज्जि की लड़ाइयों के समाप्त हो जाने के बाद काशी का कुछ भाग मगध में आ जाने से मगध के महत्वाकांक्षी शासक की अवन्ती के एकछत्र शासक से सीधी-सीधी मुठभेड़ हो गई। मज्झिम निकाय की यह उक्ति पहले हो उद्धृत की जा चुकी है कि अवन्ती के प्रद्योत के आक्रमण के भय से आजतशत्रु ने अपनी राजधानी को क़िलेबन्दी करवा ली थी। यह ज्ञात नहीं कि प्रद्योत ने कभी आक्रमण किया था या नहीं। ऐसा उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है कि अजातशत्रु अवन्ती को दबा पाने में कभी भी सफल हुआ। अजातशत्रु के उत्तराधिकारियों ने ही अवन्ती पर विजय प्राप्त की।

अजातशत्रु के ही शासन-काल में बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक महात्मा बुद्ध तथा जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ था। महात्मा गौतम बुद्ध की मृत्यु के कुछ ही दिन बाद सन्तों तथा साधुओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें बुद्ध की अमृतवाणियों तथा उनके उपदेशों के सकलन का निश्चय किया गया।

६. अजातशत्रु के उत्तराधिकारी—राजधानी का स्थानान्तरण तथा अवन्ती का पतन

पुराणों के अनुसार अजातशत्रु के बाद दर्शक मगध का उत्तराधिकारी हुआ, पर कुछ इतिहासकारों के अनुसार दर्शक को अजातशत्रु का उत्तराधिकारी मानना भूल होगी। इन लोगों का कहना है अजातशत्रु के पुत्र का नाम उदायिभद्द था तथा वही अजातशत्रु का उत्तराधिकारी था।[2] कथाकोश[3] तथा परिशिष्टपर्वन्[4] में

---

१. कूटनीति (उपलापन) तथा सम्बन्ध-विच्छेद (मिथुभेद)—*DPPN*, II 846; *JRAS*, 1931; *Cf. Gradual Sayings*, IV, 12. "अपनी चालाकी तथा मित्रता को तोड़ करके, अतिरिक्त अन्य किसी भाँति भी वृजिवासी पराजित नहीं किये सकते।"

२. देखिये *Modern Review*, July, 1919, p. 55-56. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प (Vol. I, p. 603 f) के अनुसार अजातशत्रु के राज्य में मगध के अतिरिक्त अंग, वाराणसी तथा उत्तर में वैशाली नगर भी थे। जायसवाल के अनुसार परखम-मूर्त्ति अजातशत्रु की समकालीन मूर्त्ति है। परन्तु, निस्संदेह परखम के कूणिक राजा नहीं थे (ल्यूडर्स सूची, सं० 150)।

३. p. 177.

४. p. 42.

उदय या उदायिन को कूणिक का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कहा गया है। उदायिन अजातशत्रु की रानी पद्मावती[1] का पुत्र था।

भास-रचित 'स्वप्नवासवदत्ता' के एक प्रसंग के अनुसार दर्शक का, मगध का शासक तथा उदयन का समकालीन होना कुछ सम्भव भी लगता है, किन्तु बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों की तत्सम्बन्धी सामग्री को देखते हुए यह विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि दर्शक अजातशत्रु के बाद ही मगध के सिंहासन का उत्तराधिकारी हो गया था। हो सकता है कि वह भी विशाख-पाञ्चालीपुत्र की ही तरह मण्डलिक राजा रहा हो। सम्भवतः इक्ष्वाकु-वंशियों में प्रमुख शुद्धोदन के समय में दर्शक भी मगध के शासकों में रहा होगा। कुछ इतिहासकार लङ्का में प्राप्त लेखों के आधार पर उसे बिम्बिसार के वंश का अन्तिम शासक नागदासक मानते हैं। फिर भी, बिम्बिसार के वंशजों की सूची[2] प्रस्तुत करते हुए 'दिव्यावदान'[3] में दर्शक का नाम कहीं भी नहीं दिया गया है। इस प्रकार बौद्ध ग्रन्थ भी दर्शक की वंश-परम्परा तथा उसकी राजा की स्थिति के बारे में एकमत नहीं हैं।

उदायिन—गद्दी पर बैठने के पूर्व अजातशत्रु का पुत्र उदायिन या उदयिभद्द अपने पिता की ओर से चम्पा[4] का वाइसराय (उपराजा) था। परिशिष्ट-पर्वन् से पता चलता है कि उसने गंगा के तट पर पाटलिपुत्र[5] नाम की एक नयी राजधानी का निर्माण करवाया था। इस कथन की पुष्टि गार्गी संहिता[6] तथा वायु पुराण के उन अंशों से होती है, जिनमें कहा गया है कि अपने शासन-काल के चतुर्थ वर्ष मे उसने कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) का निर्माण कराया था। पाटलिपुत्र आजकल के उत्तरी बिहार में था। नयी राजधानी के लिये यह जगह चुनी

---

१. बौद्ध-लेखकों के अनुसार प्रसेनजित की पुत्री वजिरा को उदायिन की माता कहा गया है।

२. उदाहरण के लिये, डॉ० डी० आर० भण्डारकर। इस सम्बन्ध में पूर्व-संस्करणों में 'सी-यु-की' के एक भाग का उल्लेख किया गया था (देखिये, बील द्वारा अनूदित, II, p. 102)—' प्राचीन संघाराम के लगभग १०० ली दूर 'ती-लो-शी-किया' का संघाराम बिम्बिसार के वंश के अन्तिम शासक ने बनवाया था।" कहा जाता है कि यह अन्तिम शासक दर्शक था, जिसे बिम्बिसार का वंशज कहा गया है। परन्तु, अब मेरा यह विचार है कि ऐसा सोचना एक भ्रम होगा (देखिये वाटर्स, II, p. 106 f)

३. P. 369.

४. जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, p. 42.

५. VI, 34; 175–180.

६. Kern, बृहत्संहिता, 36.

गई, क्योंकि राज्य के मध्य में स्थित थी। इसके अलावा गंगा और शोन जैसी बड़ी नदियों के संगम पर पाटलिपुत्र के निर्माण के समय व्यापारिक तथा सामरिक दृष्टिकोणों से भी सोचा गया होगा। इस प्रसंग में यह जान लेना अपेक्षित है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नदियों के संगम पर ही राजधानी बनवाने की चर्चा मिलती है।

परिशिष्टपर्वन्[1] में अवन्ती के राजा की चर्चा उदायिन के शत्रु के रूप में ही की गई है। इस बात को देखते हुए यह असम्भव नहीं लगता कि अवन्ती के राजा प्रद्योत के भय से उदायिन के पिता अजातशत्रु ने राजधानी की क़िलेबन्दी करवाई होगी। अंग तथा वैशाली राज्यों के पतन तथा कोशल के पराभव से अब केवल अवन्ती राज्य ही मगध का सबल प्रतिद्वन्द्वी बच रहा था। अवन्ती ने पूर्वी भारत के विभिन्न राज्यों व गणतन्त्रों को अपने में समाविष्ट कर लिया था। इसके विपरीत यदि 'कथा-सरित्सागर' और 'आवश्यक कथानक' पर विश्वास किया जाय जाय तो कौशाम्बी राज्य को अवन्ती के राजा पालक ने अपने में मिला लिया था। पालक प्रद्योत का पुत्र था। अवन्ती में मिलाए जाने के बाद अवन्ती का ही कोई राजकुमार कौशाम्बी पर शासन करता था। मगध और अवन्ती दोनों राज्य एक दूसरे की निगाह पर आ गये थे।[2] उक्त दोनों राज्यों के बीच

१. P. 45-46; Text, VI, 191; नृप्र, III, p. 204.

२. उदायिन तथा अवन्ती के राजा के बीच हुए युद्ध का विवरण जानने के लिये, देखिये *IHQ*, 1929, 399.

डॉ० जायसवाल के अनुसार पटना-मूर्त्तियों में से एक, जो कि भारतीय संग्रहालय की भरहुत-गॅलरी में रखी है, उदायिन की ही मूर्त्ति है (*Ind. Ant.*, 1919, p. 29 ff)। उनके अनुसार मूर्त्ति पर निम्नलिखित शब्द लिखे हैं— *Bhage ACHO Chhonidhise.* वह *!CHO* को भागवत सूची में दिये गये अजा का रूप बताते हैं और मत्स्य, वायु तथा ब्रह्माण्ड सूची में दी गई सूची में उदायिन को। डॉ० जायसवाल द्वारा दिये गये इस विचार को बहुत से विद्वानों ने जैसे बार्नेट, डॉ० चन्दा, डॉ० आर० सी० मजूमदार तथा डॉ० स्मिथ आदि ने नहीं माना, तथा उसे पूर्वमौर्यकालीन मूर्त्ति बताया है। अपनी पुस्तक 'अशोक' के तृतीय संस्करण में डॉ० स्मिथ ने डॉ० जायसवाल के मत को सही माना है। इन मूर्त्तियों पर बारीक़ अक्षरों के लेख को पढ़ना असम्भव है, अतः उनके आधार पर कोई फ़ैसला नहीं किया जा सकता। अभी इस समस्या को हम पूर्ण रूप से हल हुआ नहीं समझते। कनिंघम के अनुसार वह यक्ष की मूर्त्ति है। डॉ० चन्दा के अनुसार वह वैश्रवण (जिसकी राजधानी अखण्ड हो) की मूर्त्ति है (देखिये *Indian Antiquary*, March, 1919)। डॉ० मजूमदार के अनुसार उस पर लिखा है—गते (यखे ?) लेच्छई (वि) 40. 4 (*Ind. Ant.*, 1919)।

अजातशत्रु के समय से ही प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो चुकी थी। यह प्रतिद्वन्द्विता उदायिन के समय में भी यथावत् चली तथा अन्त में जैन-ग्रन्थों के अनुसार शिशुनाग या नन्द के समय में इसका फ़ैसला हो सका।

पुराणों के अनुसार नन्दीवर्धन तथा महानन्दिन, उदायिन के उत्तराधिकारी थे, परन्तु जैनियों[2] के अनुसार कोई उत्तराधिकारी नहीं था। कुछ इतिहासकार उदायिन के बाद अनुरुद्ध, मुण्ड तथा नागदासक का नाम लेते हैं। अंगुत्तर निकाय में मुण्ड[3] को पाटलिपुत्र का राजा माना गया है। इससे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। दिव्यावदान में भी मुण्ड का नाम दिया गया है, किन्तु अनुरुद्ध और नागदासक का नाम नहीं मिलता। अंगुत्तर निकाय में पाटलिपुत्र को मुण्ड की राजधानी कहा गया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि मुण्ड के शासन-काल के पूर्व ही मगध की राजधानी राजगृह से कुसुमपुर अथवा पाटलिपुत्र को स्थानान्तरित कर दी गई थी।

सीलोनीज़-क्रॉनिकल में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अजातशत्रु से लेकर नागदासक तक मगध के सभी राजाओं ने अपने पिता की हत्या[4] की थी। नागरिकों ने क्रोधवश पूरे के पूरे राजपरिवार को निष्कासित करके अमात्य को सिंहासन पर बिठाया था।

शिशुनाग---ऐसा लगता है कि यह नया राजा[5] बनारस में मगध का वाइसराय (उपराजा) था। कभी-कभी अमात्य-वर्ग के लोगों की गवर्नर या ज़िला-अधिकारी के रूप में नियुक्ति कोई आश्चर्य की बात न थी। यह प्रथा गौतमीपुत्र शातकर्णी तथा रुद्रदामन-प्रथम के समय तक चली आई थी। पुराणों में 'अपने पुत्र को

१. *Ind. Ant.*, II, 362.

२. परिशिष्टपर्वन्, VI, 236.

३. अंगुत्तर निकाय, III, 57. "पाटलिपुत्र के निकट पूज्य नारद का निवास-स्थान था। इसी समय मुण्ड के राजा की प्रिय रानी भद्दा का देहान्त हो गया। राजा को अत्यधिक शोक हुआ। लोहे के बने बर्तन में तेल भर कर रानी का शरीर उसमें रख दिया गया। पियका नामक एक कोषाधिकारी का भी उल्लेख मिलता है (*Gradual Sayings*, III, 48)।

४. जैन-जनश्रुतियों में भी अजातशत्रु की मृत्यु का वर्णन है (जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, द्वितीय संस्करण, p. xiii)।

५. पौराणिक तथा श्रीलङ्का की सूचियों में दिये गये राजाओं के नाम तथा उनके महत्त्वपूर्ण स्थान आदि के विषय में प्रथम भाग में ही तर्क दिया जा चुका है।

बनारस में रखकर राजधानी गिरिव्रज के जीर्णोद्धार[1] की बात आई है। राजा की द्वितीय राजधानी वैशाली[2] भी थी जो बाद में उसकी वास्तविक राजधानी हो गई थी। राजा शिशुनाग अपनी माँ की उत्पत्ति[2] को जानता था और शायद इसीलिये उसने वैशाली की पुनर्स्थापना करके उसे राजधानी का रूप दे दिया था। इसी समय से राजगृह-गिरिव्रज का मान घटने लगा और पुनः प्राप्त न किया जा सका।

शिशुनाग की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता यह रही कि उसने अवन्ती के राजा प्रद्योत के वंश की सारी शान-शौक़त मिट्टी में मिला दी। प्रद्योत के बाद उनके पुत्रों गोपाल और पालक ने राजपाट सँभाला तथा विशाख और आर्यक ने गोपाल और पालक का उत्तराधिकार प्राप्त किया। पुराणों में गोपाल का नाम नहीं आता। एकाध जगहों पर जहाँ आता भी है वहाँ पालक[3] आता है। जैन-ग्रन्थों के अनुसार महावीर के देहावसान के आसपास पालक का अस्तित्व माना जाता है। वह एक अत्याचारी शासक के रूप में प्रसिद्ध था। विशाखभूप (जो अधिकांश पौराणिक साहित्य में विशाखयूप के रूप में आया है) सम्भवतः पालक[4] का पुत्र था। पुराणों के अलावा अन्यत्र इस राजा का नाम न आने से लगता है कि या तो यह किसी दूर के ज़िले में

---

१. *SBE*, XI, p. xvi. यदि 'द्वात्रिंशत् पुत्तलिका' का विश्वास किया जाये तो नन्द के समय तक वैशाली दूसरी राजधानी के रूप में बनी रही।

२. महावंशटीका (टर्नर का महावंश, xxxvii) के अनुसार, शिशुनाग वैशाली के लिच्छवि राजा का पुत्र था। किसी नगरशोभनी का पुत्र था तथा राज्याधिकारी द्वारा उसका पालन-पोषण हुआ था।

३. *Essay on Gunadhya*, p. 115. बृहत्कथा, स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण, मृच्छकटिक आदि में गोपाल एवं पालक का उल्लेख मिलता है। हर्षचरित से कुमारसेन नामक राजा का पता चलता है। नेपाली बृहत्कथा (कथा-सरित्सागर, XIX, 57) के अनुसार गोपाल महासेन का उत्तराधिकारी था, परन्तु (प्रद्योत ने उसके भाई पालक के लिये राज्य त्याग दिया) पालक ने गोपाल के पुत्र अवन्तिवर्धन के लिये राज्य त्यागा। आवश्यक कथानक (परिशिष्टपर्वन्, द्वितीय संस्करण, xii) में अवन्तिसेन को पालक का पौत्र कहा गया है।

४. *DKA*, 19 n, 29. कल्कि पुराण (I. 3. 32 f) में विशाखयूप नामक राजा का उल्लेख आया है, जो प्राचीन अवन्ती के निकट माहिष्मती में शासन करता था।

राज्य करता था (सम्भवतः माहिष्मती ज़िले में) या राजा आर्यक के पक्ष में यह राजसिंहासन से हट गया था । आर्यक, पालक के तुरन्त बाद गद्दी पर बैठा। पुराणों में आर्यक या अजक के बाद नन्दीवर्धन या वर्त्तिवर्धन का नाम आया है; और आगे कहा गया है कि शिशुनाग राजा होगा तथा प्रद्योत की मान-मर्यादा को धूल में मिला देगा । डॉ० जायसवाल के अनुसार अवन्ती-लिस्ट का अजक या नन्दीवर्धन ही अज-उदायिन था तथा पुराणों की सूची का नन्दीवर्धन ही राजा शिशुनाग था । इसके विपरीत डॉ० डी० आर० भण्डारकर का कहना है कि आर्यक या अजक, पालक के बडे भाई गोपाल[1] का पुत्र था । कथा-सरित्सागर[2] के अनुसार नन्दीवर्धन या वर्त्तिवर्धन शब्द अवन्तिवर्धन के ही बिगड़े हुए रूप हैं । बृहत्कथा[3] के अनुसार ये शब्द गोपाल के नाम हैं । 'आवश्यक कथानक'[4] के

१. *Carm. Lec.*, 1918, 64f. परन्तु जे० सेन ने ठीक ही कहा है (*IHQ*, 1930, 699) कि मृच्छकटिक में आर्यक को ग्वालपुत्र कहा गया है जो क्रूर पालक को हटा कर सिंहासनारूढ़ हुआ ।

२. देखिये टानी का अनुवाद, II, 485; *Cf. Camb. Hist. Ind.*, I, 311.

३. *Essay on Gunadhya*, 115.

४. परिशिष्टपर्वन्, द्वितीय संस्करण, p. xii.
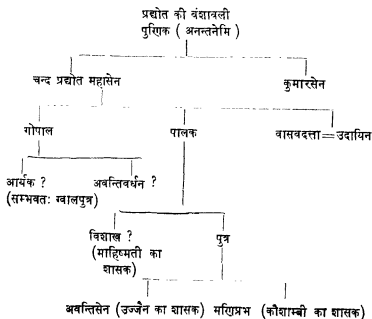
अनुसार ये नाम पालक के पौत्र अवन्तिसेन के पर्याय हैं। सम्भवतः अवन्तिवर्धन के काल में ही राजा शिशुनाग ने प्रद्योत-वंश का मान-मर्दन किया होगा। मगध की इस विजय के ही उपलक्ष्य में सम्भवतः एक क्रान्ति हुई, जिसके फलस्वरूप आर्यक उज्जैन के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था।

पुराणों के अनुसार शिशुनाग[1] के बाद उसका पुत्र काकवर्ण उसका उत्तराधिकारी हुआ। सीलोनीज़ क्रॉनिकल के अनुसार शिशुनाग का उत्तराधिकारी उसका लड़का कालाशोक था। जैकोबी और भण्डारकर के मतानुसार कालाशोक[2] (काल+अशोक) तथा काकवर्ण (कौए के वर्ण का) एक ही व्यक्ति के दो नाम थे। यह कथन अशोकावदान की इस उक्ति से मेल खाता है कि मुण्ड के बाद काकवर्णिन नामक राजा हुआ था। अशोकावदान में कालाशोक का नाम नहीं है। नये राजा ने सम्भवतः बनारस और गया में रहकर राजकाज के संचालन की शिक्षा पाई थी। इस राजा के जीवन में दो महत्त्वपूर्ण घटनाये घटीं। एक तो वैशाली में बौद्धों की सभा का दूसरा अधिवेशन हुआ; दूसरे, राजधानी पाटलिपुत्र को स्थानान्तरित की गई।

बाण ने अपने हर्षचरित[3] में राजा काकवर्ण की मृत्यु के बारे में एक उत्सुकतामूलक कहानी लिखी है। कहानी में कहा गया है कि राजधानी के समीप ही किसी ने राजा के गले में खंजर घुसेड़ कर उसे मार डाला। राजा के दुःखद अन्त की इस कहानी की पुष्टि तत्सम्बन्धी यूनानी सामग्री से भी हो जाती है।

कालाशोक के पश्चात् उसके दस पुत्र सिंहासन के उत्तराधिकारी हुए। सभी पुत्रों ने एक साथ राज्य किया। महाबोधिवंश के अनुसार इन पुत्रों के नाम भद्रसेन, कोरण्डवर्ण, मंगुर, सर्वञ्जह, जालिक, उभक, सञ्जय, कोरव्य, नन्दिवर्धन तथा पञ्चमक[4] थे।

---

१. काव्य-मीमांसा (तृतीय संस्करण, p. 50) की एक सूचना का उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार उसने अपने अंतःपुर में मस्तिष्क का प्रयोग बन्द कर रखा था।

२. दिव्यावदान, 369; गेगर, महावंश, p. xli.

३. K. p. Parab, चतुर्थ संस्करण, 1918, p. 199.

४. द्विव्यावदान (p. 369) में काकवर्णिन के उत्तराधिकारियों की एक दूसरी ही सूची दी गई है। उसके अनुसार वे सहालिन, तुलकुची, महामण्डल तथा प्रसेनजित थे। प्रसेनजित के पश्चात् सिंहासन नन्द के हाथों में चला गया।

इनमें से केवल नन्दिवर्धन का नाम पौराणिक सूची[1] में मिलता है। इस राजकुमार ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। उक्त राजा का नाम पटना में प्राप्त एक मूर्त्ति[2] पर लिखा मिला था। इसके अलावा हाथिगुम्फा के शिलालेख में भी इस नाम का उल्लेख है। यह भी प्रयास किया गया है कि खारवेल के रिकार्ड का नन्दराज ही नंदीवर्धन मान लिया जाय। इसके अलावा पूर्वनन्द का भी उल्लेख मिला है, किन्तु पूर्वनन्द को नवनन्द से अलग समझा

१. देखिये भंडारकर-कृत *Carm. Lec.*, 1918, 83.

२. डॉ० जायसवाल का कथन है कि जिस समय वे लिख रहे थे, भारतीय संग्रहालय के भरहुत गैलरी में जो 'पटना-मूर्त्ति' बिना सिर के थी, वह इसी राजा की थी। उनके अनुसार मूर्त्ति पर लिखा है "सप् (सव्) खते वत्त नंदी।" उनके अनुसार 'वत्त नंदी' वर्त्तिवर्धन (वायु-सूची में नंदीवर्धन) तथा नंदीवर्धन का सूक्ष्म रूप है। *Journal of the Bihar and Orissa Reserach Society*, 1919 के जून अंक में डॉ० आर० डी० बनर्जी लिखते हैं कि 'वत्त नंदी' पढ़ने में दो मत नहीं हो सकते। डॉ० चन्दा ने इसे यक्ष की मूर्त्ति बताया तथा उस पर पढ़ा 'यख स (?) रवत नंदी'। डॉ० मजूमदार कहते हैं कि लेख इस प्रकार पढ़ा जा सकता है – 'यखे सम् वजिनाम् ७०" उन्होंने इस लेख को दूसरी शताब्दी का बताया और कनिंघम एवं चन्दा के मत से सहमति प्रकट की कि यह यक्ष की मूर्त्ति है। वे इस विचार से सहमत नहीं हो सके कि वह मूर्त्ति शिशुनाग की थी तथा उस लेख में कुछ अक्षर ऐसे भी थे, जिनके आधार पर महाराजा शिशुनाग का नाम निकलता है। डॉ० जायसवाल के मत का उल्लेख करते हुए कि 'वत्त नदी' दो शब्दों (वर्त्तिवर्धन व नदीवर्धन) से बना है; उन्होंने कहा कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय को 'देवगुप्त' तथा विग्रहपाल को 'सूर्यपाल' कहा गया है, परन्तु चन्द्र-देव, देव-चन्द्र, सूर-विग्रह, विग्रह-सूर आदि दो शब्दों से मिलकर बना नाम किसी ने नहीं सुना है (*Ind. Ant.*, 1919)।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने 'वत्त नंदी' का अर्थ 'व्रात्य नंदी' लगाया और कहा कि उस मूर्त्ति में अनेक ऐसी वस्तुएँ तथा वस्त्र थे जो कात्यायन द्वारा व्रात्य क्षत्रियों को दिये गये। पुराण में शिशुनाग को क्षत्रबन्धु अर्थात् व्रात्य क्षत्रिय कहा गया है। इस प्रकार जायसवाल से सहमत होते हुए इनका भी यही मत है कि यह शिशुनाग की ही मूर्त्ति है।

श्री अर्धेन्दु कुमार गांगुली इसे यक्ष की मूर्त्ति बताते हुए हमारा ध्यान महा-मयूरी की ओर आकर्षित करते हैं कि उसमें लिखा है कि 'नंदी च वर्धन चैव नगरे नंदीवर्धने' (*Mod. Rev.*, Oct. 1919)। डॉ० बार्नेट भी इससे सहमत नहीं हैं कि यह मूर्त्ति शिशुनाग की है। डॉ० स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'अशोक' के द्वितीय संस्करण में स्वीकार किया है कि जायसवाल का मत सम्भवतः ठीक है। हम समझते हैं कि इस समस्या का अभी कोई हल नहीं है। अतः प्रमाणों को देखते हुए इसे फ़िलहाल शिशुनाग की ही मूर्त्ति कहेंगे।

जाना चाहिये तथा पुराणों[1] में वर्णित नन्दीवर्धन तथा महान्दिन के वंश का ही यह शासक था। क्षेमेन्द्र और सोमदेव ने पूर्वनन्द और नवनन्द को तो अलग-अलग नहीं किया, किन्तु पूर्वनन्द और योगनन्द को अलग-अलग ही लिखा है। पुराणों[1] तथा सीलोनीज़ क्रॉनिकल में सिर्फ़ एक नन्द के होने की बात कही गई है। जैन-ग्रन्थों में 'नव' शब्द का अर्थ नया नहीं वरन् नौ कहा गया है। इन ग्रन्थों में नन्दिवर्धन को शिशुनाग-वंश का कहा गया है। शिशुनाग-वंश नन्द-वंश से बिल्कुल अलग था। पुराणों के अनुसार नन्दिवर्धन का कलिंग[3] से कोई वास्ता नहीं था। इसके विपरीत हम यह भी जानते हैं कि जब मगध पर शिशुनाग का शासन था, उस समय कलिंग में ३२ राजा राज्य करते थे। नन्दिवर्धन नहीं, वरन् वह महापद्मनन्द था, जिसने सबों को अपने अधीन किया और क्षत्रियों का उन्मूलन किया। इसलिये हाथिगुम्फा के शिलालेखों के नन्दराज ने या तो महापद्मनन्द के साथ या अपने किसी लड़के के साथ कलिंग पर अधिकार किया था, यह माना जाना चाहिए।

७. हर्यंक-शिशुनाग राजाओं का तिथिक्रम

बिम्बिसार (हर्यंक) तथा शिशुनाग वंश के तिथिक्रम के सम्बन्ध में पुराणों तथा सीलोनीज़ क्रॉनिकल में काफ़ी विषमता है। यहाँ तक कि पुराणों[4] में दी गई तिथियों को स्मिथ और पार्जिटर जैसे इतिहासकारों ने भी एक ओर से स्वीकार नहीं किया है। सिंहली प्रमाणों के अनुसार बिम्बिसार ने ५२ वर्ष, अजातशत्रु ने ३२, उदयन ने १६, अनुरुद्ध और मुण्ड ने ८, नागदासक ने २४, शिशुनाग ने १८, कालाशोक ने २८ तथा कालाशोक के पुत्रों ने २२ वर्ष तक राज्य किया।

---

१. जायसवाल (आर० डी० बनर्जी द्वारा सहमति-प्राप्त), *The Oxford History of India*, संशोधित एवं परिवर्धित; *JBORS*, 1918, 91.

२. जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, VIII, 3, App. 2—नन्द वंशे नवमः नन्दराय।

३. Chanda, *Memoirs of the Archaeological Survey of India*, No. 1, p. 11.

४. पार्जिटर (*AIHT*, pp. 286-87) ने मत्स्य पुराण के आधार पर शिशुनाग-वंशजों को १६३ वर्ष से घटा कर १४५ वर्ष किया है। इस प्रकार हर एक का राज्य औसतन १४$\frac{1}{2}$ वर्ष था। वह शिशुनाग के वंश का आरम्भ (जिसमें बिम्बिसार के कुछ वंशज भी हैं) ई० पू० ५६७ को मान कर २८७ n को अस्वीकार किया है (देखिये भण्डारकर, *Carm Lec.*, 1918, p. 68)। "दश नरेशों के ३६३ वर्ष का लगातार राज्य, अर्थात् औसतन ३६.३ वर्ष का राज्य प्रत्येक राजा के लिये था।"

गौतम बुद्ध की मृत्यु अजातशत्रु[१] के शासन के आठवें वर्ष में हुई, अर्थात् (५२ +८) बिम्बिसार के सिंहासनासीन होने के ६० वर्ष (५६ से कुछ अधिक) बाद बुद्ध की मृत्यु हुई थी। सिंहली सकेत के अनुसार यह घटना ५४४ वर्ष ईसापूर्व की है। तत्त्व-सम्बन्धी कुछ रिकार्ड संघभद्र द्वारा चीन लाये गए थे। ५४४ वर्ष ईसापूर्व वाली बात सीलोनीज क्रॉनिकल की 'गाथा' से मेल नही खाती; जिसमें कहा गया है कि गौतम बुद्ध की निर्वाण-प्राप्ति के २१८ वर्ष बाद प्रियदर्शन (अशोक मौर्य) गद्दी पर बैठा था। उक्त तथ्य एव कुछ चोल तथा चीन सामग्री के अध्ययन से कुछ इतिहासकारों का यह मत हो गया कि ५४४ वर्ष ईसापूर्व महात्मा बुद्ध के निर्वाण की धारणा पुरानी नही, नई है। इन इतिहासकारों का एक यह भी मत है कि बुद्ध की मृत्यु ४८३ वर्ष[२] ईसापूर्व में हुई थी। किन्तु, इन इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत चोल-सामग्री को स्वीकार करना भी आसान नहीं है। सन् ४२८ ईसवी में सिंहल के सम्राट् महानामन ने इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री चीन के तत्कालीन सम्राट् के पास भेजी थी। यह सामग्री भी उपर्युक्त इतिहासकारों के मत का पूर्वसमर्थन नहीं करती। कुछ अन्य प्रमाणों के अनुसार ५४४ वर्ष ईसापूर्व में बुद्ध के निर्वाण की तिथि ही युक्तिसंगत लगती है। इन प्रमाणों में ४८३ या ४८६ वर्ष ईसापूर्व को जरा भी प्राथमिकता नहीं दी गई है। सिंहली प्रमाणों के आधार पर हिसाब लगाने से चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक ५४४-१६२ ३८२ वर्ष ईसापूर्व माना गया है तथा अशोक मौर्य का सिंहासनारोहण ३२६ वर्ष ईसापूर्व में निकलता है।

उपर्युक्त तिथियाँ यूनानी लेखकों तथा अशोक के अभिलेखों में प्राप्त सामग्री से पूरा-पूरा मेल नहीं खाती। प्राचीन विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त सिकन्दर-महान् (३२६ ईसापूर्व) तथा सेल्यूकस (३१२ वर्ष ईसापूर्व) का समकालीन था। इधर अशोक का तेरहवाँ अभिलेख प्राप्त हुआ है, जिसके आधार पर यह निश्चित है कि उक्त राजाओं में से एक की मृत्यु २५८ वर्ष ईसापूर्व के पहले ही हो चुकी थी। इससे यह भी स्पष्ट है कि अशोक का प्रतिष्ठापन २६६ वर्ष ईसापूर्व (कुछ के कथनानुसार २६१ वर्ष ईसापूर्व) के बाद का नहीं है। किसी भी हालत में अशोक का राज्याभिषेक २७७ वर्ष ईसापूर्व के पूर्व नही हो सकता, क्योंकि उसके पितामह चन्द्रगुप्त को ३२६ वर्ष ईसापूर्व के बाद सिंहासन प्राप्त हुआ था। साफ़ है कि

१. महावंश, Chap. 2, (अनुवाद. p. 12)।

२. महावंश, गेगर का अनुवाद, p. xxviii; *JRAS*, 1909, p. 1-34.

सिकन्दर-महान् से चन्द्रगुप्त ने एक सम्राट् के रूप में नहीं, वरन् एक मामूली नागरिक के रूप में भेंट की थी। चन्द्रगुप्त ने २४ वर्ष तक राज्य किया। उसके बाद २५ वर्ष तक अशोक के पूर्वज बिन्दुसार ने शासन किया ३२६ वर्ष ईसापूर्व—४६ २७७ वर्ष ईसापूर्व)। इससे तय हो गया कि अशोक का राज्याभिषेक २७७ तथा २६१ वर्ष ईसापूर्व के बीच ही हुआ है। चूँकि हम ऊपर देख चुके हैं कि अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध के निर्वाण के २१८ वर्ष बाद हुआ, इसलिये बुद्ध के निर्वाण की तिथि ४६५ तथा ४७६ वर्ष ईसापूर्व के बीच ही हो सकती है। इसलिये परिनिर्वाण की सिंहली तिथि (५४४ वर्ष ईसापूर्व) उपर्युक्त तथ्यों से मेल नहीं खाती; और कुछ इतिहासकारों द्वारा दी गई परिनिर्वाण की तिथि ४८६ वर्ष ईसापूर्व या ४८३ वर्ष ईसापूर्व ही सही मालूम होती है। राजा मेघवर्ण ने कुछ चीनी सामग्री समुद्रगुप्त को भेजी थी। इसके अलावा राजा कासप्पा (क्या-चे) ने कुछ लेख आदि ५२७ ईसवी में चीन भेजे थे। इन लेखों से भी बुद्ध के परिनिर्वाण की तिथि ४८६ या ४८३ वर्ष ईसापूर्व ही पुष्ट होती है। एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्ले[१] परिनिर्वाण की तिथि १ अप्रैल (मंगलवार) ४७८ वर्ष ईसापूर्व मानते हैं।

उपर्युक्त विविध तथ्यों एवं तर्कों से बिम्बिसार का राज्याभिषेक ५४५ वर्ष ईसा पूर्व (४८६+५६) में पड़ता है। यह तिथि निर्वाण-सम्बन्धी सिंहली तिथि (५४४ वर्ष ईसापूर्व) के काफ़ी समीप पड़ती है। किसी काल के प्रचलित नाम से उसकी उत्पत्ति के बारे में कोई निश्चय नहीं किया जा सकता। यह हो सकता है कि सिंहली तिथिक्रम बिम्बिसार के राज्याभिषेक से ही आरम्भ हुआ हो और बाद में उसका नामकरण महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के आधार पर हो गया हो।

बिम्बिसार के शासन के समय गांधार एक स्वतन्त्र राज्य था तथा पौष्करसारिन (पुस्कुसाति) यहाँ राज्य करता था। ५१६ वर्ष ईसापूर्व के पहले ही गान्धार ने अपनी स्वतन्त्रता खो दी और फ़ारस के अधीन हो गया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि पौष्करसारिन तथा उसके समकालीन बिम्बिसार, दोनों ५१६ वर्ष ईसापूर्व के पहले ही हुए रहे होंगे। इस तिथि के हिसाब से बिम्बिसार का राज्याभिषेक ५४५-५४४ वर्ष ईसापूर्व में ही पड़ता है।

---

१. *An Indian Ephemeris*, I, Pt. I. 1922, pp. 471 ff.

सम्भावित तिथिक्रम-चक्र

ई० पु०	घटना
५६५—	बुद्ध का जन्म
५६०—	बिम्बिसार का जन्म
५५८—	साइरस का राज्याभिषेक
५४५-५४४—	बिम्बिसार का राज्याभिषेक—सीलोन-काल
५३६—	बुद्ध का संन्यास लेना
५३०—२८—	बुद्ध का बिम्बिसार से मिलना
५२७—	महावीर का निर्वाण-काल
५२२—	दारा-प्रथम का राज्याभिषेक
४९३—	अजातशत्रु का राज्याभिषेक
४८६—	बुद्ध का महानिर्वाण, दारा की मृत्यु, राजगृह में सभा
४६१—	उदायिधद्रक का राज्याभिषेक
४५७—	पाटिलपुत्र का जन्म
४४५—	अनिरुद्ध तथा मुण्ड
४३७—	नागदासक
४१३—	शिशुनाग
३९५—	कालाशोक (काकवर्ण)
३८६—	वैशाली की सभा
३६७—	कालाशोक के पुत्र तथा महापद्मनन्द का राज्य
३४५—	शिशुनाग-वंश का अन्त

८. नन्द-वंश

शिशुनाग-वंश को गद्दी से उतार कर नन्द-वंश[1] मगध में सिंहासनासीन हुआ। मगध के इस नये राजवंश तक पहुँचने के बाद पूर्वी भारत के इतिहास के बारे में विविध शास्त्रीय स्रोतों से अपनी जानकारी को और समृद्ध करने के

१. जैनियों के अनुसार उदायिन की मृत्यु के पश्चात् तथा वर्धमान के निर्वाण के ६० वर्षों के पश्चात् नन्द को राजा घोषित किया गया (परिशिष्टपर्वन्, VI, 243)। नन्द के इतिहास के लिये देखिये *Age of the Nandas and Mauryas*, pp. 9-26, एन० शास्त्री, रायचौधरी तथा अन्य।

लिये हमें सामग्री मिल सकती है। खारवेल के हाथिगुम्फा रिकार्ड में जो प्रथम या द्वितीय शताब्दी के कलिग के प्रसंग में नन्दराज का नाम आया है, वह अंश इस प्रकार है –

पञ्चमे सेदानि वसे नन्दराज तिवस-सत ओघाटितम्
तनसुलिय-वाटा पनाडी(म्) नगरम पवेस (यति)......।

अर्थात् 'तब पाँचवें वर्ष राजा नन्द द्वारा ३०० वर्ष[1] पूर्व बनवाई गई नहर का खारवेल ने तनसुलिय-मार्ग से राजधानी की ओर मोड़ा।'

खारवेल के शासन के बारहवें वर्ष मे 'नन्दराज-नीतम् कलिग जिन सन्निवेशं'[2] में भी एक प्रसंग आया है, जिसमें कहा गया है कि

१. तिवस-सत का यह अर्थ, पुराण के अर्थ से मिलता है तथा नन्द एवं सातकर्णि, जो खारवेल के, उसके राज्य के द्वितीय वर्ष में, समकालीन थे, के वंश के बीच का था (१३७ वर्ष मौर्य+११२ शुंग+४५ कण्व २६४ वर्ष)। यदि इसका अर्थ, जैसा कि बहुत से विद्वान् मानते हैं, १०३ वर्ष से है तो खारवेल का राज्याभिषेक नन्दराज के १०३-५=९८ वर्ष के पश्चात् हुआ था। राज्याभिषेक के नौ वर्ष पूर्व (९८-९=८९ वर्ष) नन्द के पश्चात् वह युवराज हुआ था। इस प्रकार यह तिथि ३२४-८९=२३५ ई० पू० हुई। खारवेल का ज्येष्ठ साथी राजगद्दी पर था। परन्तु, अशोक के लेख से ज्ञात होता है कि उस समय कलिंग में मौर्य 'कुमार' का शासन था जो स्वयं अशोक के प्रति उत्तरदायी था। अतः तिवस-सत का अर्थ १०३ न होकर ३०० होना चाहिये। प्रो० एस० कोनोव (*Acta Orientalia, I*, 22-26) इसे ३०० ही पढ़ते हैं तथा उनके अनुसार यह नन्द तथा खारवेल के मध्यान्तर को न बता कर नन्द-वंश की किसी तिथि की ओर संकेत करता है, जिसकी गणना किसी अज्ञात तिथि से हुई है। परन्तु, इस प्रकार की किसी तिथि का उस युग तथा नगर में होना सिद्ध नहीं होता। अशोक के समान खारवेल ने भी अपने लिए उसी प्रकार की तिथि का प्रयोग किया है। अतः, इस पुस्तक में जो धारणा बनाई गई है उसकी पुष्टि पुराणों से भी होती है।

२. देखिये बरुआ, खारवेल के हाथिगुम्फा लेख (*IHQ*, XIV, 1938, pp. 259 ff.)। कोश के अनुसार सन्निवेश का अर्थ भीड़, ठहरने की जगह, अथवा किसी नगर के निकट का खुला मैदान है। एक आलोचक के अनुसार इसका अर्थ कारवाँ अथवा जलूस के ठहरने का स्थान है। विदेह में कुन्दग्राम सन्निवेश था (*SBE*, XXII, जैन सूत्र, Vol. 1, भूमिका)। इस लेख में नन्दराज द्वारा कलिंग में किसी स्थान की न तो विजय की गई और न किसी पवित्र वस्तु को वहाँ से हटाया गया। अतः यह सिद्ध होता है कि वह वहाँ का स्थानीय शासक नहीं था (*Camb. Hist. Ind.*, 538)।

कलिंग[१] में एक मंदिर या अड्डा ऐसा था जिसे नन्द ने अपने कब्जे में ले लिया था। 'नन्दराज-नीतम् कलिंग जिन सन्निवेशम्' को 'नन्दराज-जित कलिंग-जन-सं(नि)(वे)सम्' भी कहा गया है।

शिलालेख या अभिलेख यद्यपि शास्त्रीय स्रोतों से प्राप्त सामग्री के समान ही महत्त्वपूर्ण हैं, किन्तु वे समकालीन नहीं हैं। हमें समकालीन सामग्री के हेतु यूनानी लेखकों की कृतियों को देखना चाहिए। जिस ज़ेनोफ़न की मृत्यु लगभग ३५५ वर्ष ईसापूर्व के पश्चात् हुई, उसकी कृति सिरोपीडिया[२] में लिखा है कि भारतीय राजा बहुत धनी होता था। ज़ेनोफ़न की इस उक्ति से हमें उस राजा नन्द की याद आ जाती है जिसे संस्कृत, तमिल, सिंहली तथा चीनी सभी भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों में अत्यधिक धनी[३] कहा गया है। ३२६ वर्ष ईसापूर्व के आसपास मगध पर शासन करने वाले राजवंश ने भी सिकन्दर के समकालीन विद्वानों को काफ़ी सामग्री प्रदान की है। इसी ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर कर्टियस, डायोडोरस तथा प्लूटार्क ने अपनी-अपनी कृतियाँ तैयार की थी। दुर्भाग्यवश प्राचीन

१. डॉ० बरुआ के अनुसार, कलिंग के किसी भाग पर भी अधिकार नहीं था, क्योंकि अशोक के राज्य के ७वें वर्ष तक वह अविजित प्रांत था। परन्तु, जहाँगीर के समान मौर्य का कथन केवल उनके गर्व की घोषणा करता है कि "इस प्रान्त पर अब तक किसी भी नरेश का शासन नहीं हो सका था।" पुराणों के अनुसार, कलिंग शिशुनाग का समकालीन था तथा उस पर सर्व-क्षत्रानक नन्द का अधिकार हो गया था।

२. देखिये, III, ii, 25, वालटर मिलर द्वारा अनूदित।

३. देखिये, महापद्मपति तथा धननन्द के नाम। कथा-सरित्सागर में कहा गया है कि राजा के पास ६६ करोड़ सोने की सिलें थीं (देखिये त्वानी द्वारा अनूदित, Vol, I, p. 21)। डॉ० आयंगर कहते हैं कि एक तमिल कविता में नन्द राजाओं के धन के विषय में लिखा है कि "पाटली में सर्वप्रथम एकत्र हो उसने अपने को गंगा की बाढ़ में छिपा लिया।" (*Beginnings of South Indin History*, p. 89)। एन० शास्त्री के विचार जानने के लिये देखिये *ANM*, pp. 253 ff.

सीलोन की जनश्रुति के अनुसार, "उग्रसेन के पुत्रों में सबसे छोटा धननन्द था, और उसे धन एकत्र करने की आदत थी।...उसने ८० कोटि धन एकत्र कर गंगा की घाटी में एक पहाड़ी खुदवा कर वहीं दबा दिया। दूसरी वस्तुओं पर, जैसे खाल, गोंद, वृक्ष, पत्थर आदि पर कर लगा कर फिर धन एकत्र किया तथा उसी प्रकार उसे भी छिपा दिया (टर्नर, महावंश, p. xxxix)।

चीनी यात्री ह्वेनसांग राजा नंद के ५ कोषों का वर्णन करते हुए ७ अत्यन्त मूल्यवान् वस्तुओं का उल्लेख करता है।

लेखकों ने कहीं भी नन्द-वंश का नाम नहीं लिखा है। जस्टिन की कृतियों में जहाँ 'अलेक्ज़ेन्ड्रम' लिखा है, उसे 'नन्द्रम' पढ़ना सर्वथा अनुचित और निरर्थक है।

उक्त वंश के विशद अध्ययन के लिये हमें भारतीय शास्त्रों पर ही अधिक निर्भर करना होगा। भारतीय विद्वान् नन्द-वंश के प्रति और अधिक आकृष्ट मालूम होते हैं—कुछ तो इसलिये कि इस वंश ने तत्कालीन सामाजिक जीवन में एक नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी और साम्राज्य की एकता की भावना को एक नया रूप प्रदान किया था। दूसरे, इसलिये कि इसी समय से जन-जीवन में जैन-विचारधारा समाविष्ट होने लगी थी। इसके अतिरिक्त प्राचीन विद्वान् चन्द्रगुप्त की कथा में भी रुचि रखते थे। चन्द्रगुप्त-कथा के विभिन्न अंश विभिन्न स्थानों पर प्राप्त होते हैं। प्रायः मिलिन्दपञ्ह, महावंश, पौराणिक तिथिक्रम, बृहत्कथा, मुद्राराक्षस तथा अर्थशास्त्र के सूत्रों में चन्द्रगुप्त-कथा मिलती है।

पुराणों के अनुसार महापद्म या महापद्मपति[1] नन्द-वंश का प्रथम नन्द था। महाबोधि-वंश के अनुसार प्रथम नन्द का नाम उग्रसेन था। पुराणों में महापद्म को क्षात्रबन्धु का पुत्र कहा गया है। कहते हैं इस वंश का प्रथम राजा शूद्र-कन्या का पुत्र था (शूद्रा-गर्भोद्भव)। जैन-ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन्[2] के अनुसार नन्द वेश्या माँ तथा नाई पिता का पुत्र था। उक्त कथन की पुष्टि सिकन्दर के समकालीन मगध के शासकों की वंशावली से भी हो जाती है। यही लोग चद्रगुप्त मौर्य के पूर्वज थे। इस राजकुमार (Agrammes) की चर्चा करते हुए कर्टियस ने लिखा है कि "इसका पिता नाई था। बेचारा अपनी रोज़ाना की कमाई से किसी तरह जीवन-यापन करता था। लेकिन, चूंकि देखने-सुनने में काफ़ी खूबसूरत था, इसलिये महा-रानी उसे बहुत मानती थीं। रानी के प्रोत्साहन के फलस्वरूप ही वह राजा के भी समीप पहुँच गया और राजा का विश्वासपात्र बन गया। एक दिन उसने छल से राजा की हत्या कर दी। अपने को राजकुमारों का अभिभावक घोषित करते हुए उसने राजा के सभी अधिकार अपने हाथ में कर लिये, कई राजकुमारों की हत्या भी की और नया राजकुमार (Agrammes) पैदा किया।"

शास्त्रकारों का यह रिकार्ड कि नन्द-वंश का पूर्वज एक नाई था, नन्द-वंश-सम्बन्धी जैन-कथाओं से भी इसकी पुष्टि होती है। यह बात निर्विवाद है कि मगध

---

१. एक आलोचक के अनुसार वह 'अतुल धनराशि का स्वामी' था (देखिये विलसन, विष्णु पुराण, Vol. IX, 184n)। महाभारत (VII, 53. 1) के अनुसार महापद्मपुर नामक एक स्थान का पता चलता है।

२. P. 46; *Text*, VI, 231-32.

की गद्दी पर सिकन्दर तथा नवयुवक चन्द्रगुप्त के समय में नन्द राजा ही राज्य करता था। कठिनाई तो उसके बारे में कोई निर्णय लेने में होती है। किन्तु, सम्भवतः वह पहला नन्द राजा तो नहीं ही था। राजकुमार (Agrammes) की चर्चा करते हुए सिकन्दर के समकालीन कर्टियस ने कहा है कि "यह राजकुमार ऐसे पिता के पुत्र-रूप में पैदा हुआ था जिसने रानी का प्रेम प्राप्त कर पूरे साम्राज्य की अधिकार-सत्ता प्राप्त कर ली थी।" कर्टियस का यह कथन नन्द-वंश के उस संस्थापक के बारे में नहीं लागू होता, जो जैन-प्रमाणों के अनुसार एक साधारण वेश्या (गणिका) माँ तथा नाई पिता का पुत्र था, और जिसके नाई पिता को किसी भी प्रकार के शासकीय अधिकार प्राप्त नहीं थे।

वधित राजा सम्भवतः कालाशोक-काकवर्ण था, जैसा कि हर्षचरित में लिखा है। बाण ने लिखा है कि शिशुनाग-वंश के काकवर्ण राजा को राजधानी के समीप किसी ने उसके गले में खंजर चुभा कर मार डाला। जिन राजकुमारों का वर्णन इतिहासकार कर्टियस ने किया है, वे सम्भवतः काकवर्ण के ही पुत्र थे। राजकुमार Agrammes के उत्थान का जो रूप हमें यूनानी कृतियों में मिलता है, वह शिशुनाग-वंश के अंत तथा नन्द-वंश के उत्थान-सम्बंधी सिंहली वर्णन से बिलकुल मेल खाता है। लेकिन, यह कहानी पौराणिक स्वरूप से काफ़ी भिन्न है। पुराणों में कहा गया है कि शिशुनाग-वंश का अन्तिम राजा ही प्रथम नन्द था और वह शूद्र-कन्या का पुत्र था। उसके अलावा पुराणों में अन्य राजकुमारों की कोई भी चर्चा नहीं मिलती है। राजकुमार का नाम Agrammes भी सम्भवतः उग्रसेन[1] के पुत्र औग्रसैन्य (संस्कृत) का बिगड़ा हुआ रूप है। हम देख चुके हैं कि महाबोधिवंश के अनुसार उग्रसेन प्रथम नन्द राजा था। उसके लड़के का नाम स्वभावतः औग्रसैन्य हो सकता है, जिसका रूप यूनानी लेखकों ने बिगाड़ कर Agrammes कर दिया, और वही बाद में बिगड़ते-बिगड़ते Xandrames[2] हो गया।

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण (viii, 21) में औग्रसैन्य का उल्लेख मिलता है।

२. कुछ लेखकों के अनुसार Xandrames (संस्कृत रूप चन्द्रमस) मगध-अधिकारी सिकन्दर का समकालीन चन्द्रगुप्त बिलकुल ग़लत है। प्लूटार्क ने सिकन्दर की जीवनी में दोनों को स्पष्ट रूप से भिन्न-भिन्न बताया है। उसके कथन की पुष्टि जस्टिन ने भी की है। Xandrames अथवा Agrammes अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न हुआ तथा प्रासी का शासक बना, जबकि चन्द्रगुप्त अपने वंश का प्रथम शासक हुआ और उसने एक नये वंश की स्थापना की।

पुराणों में महापद्म को पहला नन्द राजा कहा गया है। पुराणों के अनुसार महापद्म ने सभी क्षत्रियों को समाप्त कर अपना एकछत्र (एकराट) राज्य स्थापित किया था। उसे 'सर्वक्षत्रान्तक' कहा गया है, अर्थात् महापद्म ने अपने समकालीन इक्ष्वाकु, पांचाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरु, मैथिलि, शूरसेन तथा वीतिहोत्र[1] आदि राज्यों को अपने अधीन कर लिया था। जैन-प्रमाणों के अनुसार भी नंद-राज्य बड़ा विस्तृत था। नन्द-वंश के अन्तर्गत भारत के अधिकांश भागों को एकताबद्ध किया गया। भारत के प्राचीन शास्त्रकार भी इस प्रश्न पर प्रायः एकमत हैं। इसके अतिरिक्त शास्त्रों में रेगिस्तानों के

Xandrames के पिता नाई थे, अतः किसी राजवंश से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था, जबकि बौद्ध एवं ब्राह्मण लेखकों ने एक स्वर से क्षत्रिय कहा है, यद्यपि उसके वंश के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं। जैनियों ने तो स्पष्ट लिखा है कि यह नाई नपितकुमार अथवा नपितस् था जिसने नन्द-वंश की स्थापना की थी (परिशिष्टपर्वन्, VI, 131, 244)।

१. जिन जातियों अथवा वंश का यहाँ उल्लेख हुआ है उनकी कुछ भूमि पर मगध-नरेशों ने अधिकार कर लिया था, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे प्राचीन वंश समाप्त हो गए थे। वास्तव में इससे उनका यश कम हो गया तथा विजेता की प्रभुता बढ़ गई थी। इससे वंश के सम्पूर्ण विनाश का अर्थ उस समय तक नहीं निकल सकता जब तक कि स्पष्ट शब्दों में यही न लिखा जाये। अतः यह कुछ अतिशयोक्ति मालूम होती है। यहाँ तक कि अजातशत्रु भी शक्तिशाली जाति वज्जियों को भी पूर्ण रूप से पराजित नहीं कर सका था तथा गुप्त-काल तक लिच्छवि-वंश चलता रहा। तीसरी-चौथी शताब्दी में कृष्णा के दक्षिण में इक्ष्वाकु-वंशज पाये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि इनकी एक शाखा इस ओर चली गई होगी। जिस राजकुमार को शिशुनाग ने बनारस का शासक बनाया था, उसी के उत्तराधिकारियों में काशीस रहा होगा, जिसे नन्द ने पराजित किया था। हैहयों के अधिकार में नर्मदा घाटी का एक भाग था। हाथिगुम्फा लेख के अनुसार नन्द ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी, साथ ही उसने अश्मक तथा गोदावरी की घाटी-स्थित नव-नन्द-देहरा पर भी अधिकार जमाया था (मैक्लिफ़, *Sikh Religion*, V, p. 236)। अवन्ती के प्रद्योतों के उदय के पूर्व ही वीतिहोत्रों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। परन्तु, यदि पुराणों को सत्य माना जाये तो इस वाक्य से, कि "उपर्युक्त राजा (शिशुनाग) के समकालीन वीत्तिहोत्र थे", सिद्ध होता है कि शिशुनाग ने कुछ प्राचीन राजाओं के लिये पुनः मार्ग बना दिया था। वायु पुराण (94, 51-52) के अनुसार वीत्तिहोत्र, हैहय के पाँच गणों में से एक थे। अजातशत्रु द्वारा विजित वज्जि राज्य के उत्तर में मैथिलों का राज्य था। पांचाल, कुरु तथा सूरसेन ने गंगा के मैदान तथा मथुरा पर अधिकार कर लिया था, परन्तु आगे चल कर उन पर मगध का अधिकार ई० पू० ३२६ में यूनानी प्रमाणों के अनुसार हुआ।

पार बहादुर जातियों के निवास का भी उल्लेख मिलता है। यह संकेत सम्भवतः राजपूताना व समीपवर्ती क्षेत्रों की ओर है। इन ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि प्रासी (पूर्वी प्रदेश के लोग) तथा गंगा की घाटी के निवासी एक ही सम्राट् द्वारा शासित थे। इनके साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र[1] (पालिबोथरो) थी। इतिहासकारों[2] के कथनानुसार पूर्वी प्रदेश के निवासी (प्रासी) बड़े ही शक्ति एवं वैभव सम्पन्न थे। किन्तु, इस उक्ति से ऐसा लगता है कि यह कथन नन्द-काल के बारे में नहीं, वरन् मौर्य-काल के सम्बन्ध में कहा गया है। पूर्वी प्रदेश ने जो उन्नति मौर्य-काल में की थी, वह मौर्यों के पूर्वज नन्दों के समय में संभव न थी। नन्द-काल की उन्नति तथा वैभव का रिकार्ड हमें सिकन्दर के समकालीन इतिहासकारों की कृतियों से प्राप्त होता है। कथा-सरित्सागर[3] के एक अनुच्छेद में नन्द वंश के किसी राजा का नाम आया है और कहा गया है कि उसने अयोध्या में पड़ाव डाला था। इसी आधार पर यह भी कल्पना की जाने लगी है कि मगध ने इक्ष्वाकु के राज्य कोशल को भी कभी अपने अन्तर्गत कर लिया था। मैसूर में प्राप्त कतिपय शिलालेखों में यह उल्लेख है कि कुन्तल प्रदेश में कभी नन्द-वंश का राज्य था।[4] कुन्तल प्रदेश में दक्षिणी बम्बई तथा उत्तरी मैसूर का भाग आता है। किन्तु, उपर्युक्त अभिलेख कुछ बाद के मालूम होते हैं, इसलिये इन पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण हाथिगुम्फा के शिलालेख हैं। इन लेखों में कलिंग में नन्द राजा के कार्यों की चर्चा मिलती है। नन्द राजा की अनेक जीतों का भी उल्लेख इनमें मिलता है। नन्द राजाओं द्वारा कलिंग विजय, अश्मक-विजय तथा दक्षिण भारत के अन्य छोटे-छोटे भागों की जीत कोई असम्भव बात न थी। गोदावरी के तट पर 'नौ-नन्द-देहरा' (नन्देर)[5] नामक एक नगर था। इससे लगता है कि नन्द राजाओं ने दक्षिण भारत का भी काफ़ी भाग अपने अधिकार में कर लिया था।

मत्स्य पुराण के अनुसार प्रथम नन्द ने ८८ वर्ष राज्य किया। इसके लिये अष्टाशीति (८८) शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु, ऐसा लगता है कि

१. देखिये *Inv. Alex.*, 221, 281; MacCrindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 67, 141, 161.

२. MacCrindle, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 141.

३. त्वानी का अनुवाद, p. 21.

४. Rice, *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 3; फ़्लीट, *Dynasties of the Kanarese Districts*, 284n. 2.

५. मैक्लिफ़, *Sikh Religion*, V, p. 266.

अष्टाविंशति (२८) को भूल से अष्टाशीति पढ़ लिया गया है। वायु पुराण में कहा गया है कि यह समय केवल २८ वर्ष का है। तारानाथ के अनुसार नन्द ने २६ वर्ष[1] राज्य किया। सिंहली अभिलेखों के अनुसार नन्दों का शासन सिर्फ़ २२ वर्ष चला। पुराणों में दी गई २८ वर्ष की अवधि में सम्भवतः वह काल भी मिला लिया गया है जबकि नन्द का सिंहासन नहीं छिना था और वे पूरे राज्य के वास्तविक शासक थे।

महापद्म उग्रसेन के बाद उनके आठ पुत्रों को उत्तराधिकार मिला, जो बारी-बारी गद्दी पर बैठे। पुराणों के अनुसार इन लोगों का शासन-काल १२ वर्ष का था। सिंहली प्रमाणों के अनुसार, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, पूरे नन्द-वंश का शासन केवल १२ वर्ष का रहा। पुराणों में महापद्म के एक पुत्र सुकल्प[2] का नाम विशेष रूप से आया है। महाबोधिवंश में कुछ और नाम मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं—पराडुक, पराडुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त तथा धन। सम्भवतः अन्तिम शासक ही Agrammes था, जो बाद में Xandrames के नाम से भी पुकारा गया है। जैसा कि हम देख चुके हैं, संस्कृत शब्द औग्रसैन्य ही सम्भवतः बिगड़ कर Agrammes हो गया है।

प्रथम नंद ने अपने उत्तराधिकारियों के लिये एक बड़ा साम्राज्य ही नहीं छोड़ा, वरन् एक बड़ी सेना तथा भारी खजाना भी छोड़ा। यदि प्राचीन ग्रन्थों पर विश्वास किया जाय तो प्रथम नन्द से उसके पुत्रों को सरकार चलाने की एक स्वस्थ मशीनरी, अर्थात् अच्छे कर्मचारी भी मिले। कर्टियस के कथनानुसार औग्रसैन्य (Agrammes) अपनी सीमाओं की रक्षा के लिये २० हज़ार घुड़सवार, २ लाख पैदल सेना तथा २००० रथों की सेना को तैनात किया था। इसके अलावा उन दिनों सशक्त मानी जाने वाली ३ हज़ार हाथियों की गजसेना भी देश की रक्षा के लिये तैनात की गई थी। डायोडोरस और प्लूटार्क ने भी इसी

1. *Ind. Ant.*, 1875, p. 362.

२. इस नाम के अनेक रूप हैं। उनमें से एक साहल्य है। डॉ० बरुआ का मत है कि वह दिव्यावदान (p. 369; पार्जिटर, *DKA*, 25 n, 24; बौद्धधर्म-कोश, 44) का साहलिन वही था। बौद्ध-ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में दिये गये तर्क, कि साहलिन और काकवर्ण के बीच सम्बन्ध था, को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें बहुधा ग़लती पाई गई है। इसमें पुष्यमित्र को अशोक का वशंज कहा गया है (p. 433)।

का वर्णन किया है। किन्तु, डायोडोरस ने गजसेना में गजों की संख्या ४००० तथा प्लूटार्क ने ६००० दी है। बौद्ध-ग्रन्थों[1] में एक सेनापति भद्दसाल का नाम भी आया है।

नन्द-वंश के अपार धन-वैभव के सम्बन्ध में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। कलिंग में सिंचाई-योजना चलाने का श्रेय नन्द-वंश को ही है। नन्द-वंश ने ही 'नन्दोपक्रमाणि मानानि'[2] का भी आविष्कार किया था। ब्राह्मण तथा जैन ग्रन्थों में कहा गया है कि नन्द के दरबार में एक से एक अच्छे और योग्य मन्त्री थे, किन्तु बाद में नन्द-वंश के राजा वैसे न रहे जैसे कि इस वंश के बाद के राजा थे। बाद के राजाओं का नाम भी नन्द-वंश से ही सम्बद्ध किया जाता है, किन्तु बाद के इस वंश में नन्द-वंश की अपेक्षा कहीं अधिक बहादुर एवं यशस्वी सम्राट् हुए हैं।

नन्द-वंश के बाद के नये वंश के उद्भव या इस सत्ता-परिवर्तन के बारे में अधिक विवरण नहीं मिल पाता। नन्द राजाओं के पास अकूत धनराशि थी। इससे सिद्ध होता है कि ये लोग जनता से काफ़ी धन ऐंठते थे। हमें अनेक ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है कि सिकन्दर का समकालीन नन्द-वंश के राजा औग्रसैन्य (Agrammes) से जनता घृणा करती थी और उसे ओछे क़िस्म का आदमी समझती थी। जनता की यह धारणा उसके सत्तारूढ़[3] होने के ढंग पर आधारित थी।

मगध की क्रान्ति[4] के बारे में पुराणों में अग्रलिखित पंक्तियाँ मिलती हैं--

---

१. मिलिन्द पन्ह, *SBE*, xxxvi, p. 147-48.

२. एम० सी० वसु द्वारा अनूदित अष्टाध्यायी (पाणिनि-कृत) में देखिये सूत्र II, 4,21.

३. देखिये, मैक्रिंडल-कृत, *The Invasion of India by Alexander*, p. 222; *Cf.* नन्द का लोभ. *DKA*, 125; परिशिष्टपर्वन्, vi, 244.

४. इस वंश-परिवर्तन का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कामंदकीय नीतिसार, मुद्राराक्षस, चन्द कौशिक तथा सिंहली कॉनिकल के विवरणों आदि में भी मिलता है।

उद्धरिष्यति तां सर्वान् कौटिल्यो वै द्विजर्षभः
कौटिल्याश्चन्द्रगुप्तम् तु ततो राज्ये भिषेक्ष्यते ।[1]

मिलिन्दपन्ह[2] में नन्दों तथा मौर्यों के बीच एक युद्ध की घटना की चर्चा की गई है । नन्द की सेना में भद्दसाल नामक एक सैनिक था, जिसने राजा चन्द्रगुप्त के विरुद्ध लड़ाई छेड़ी थी । कहते हैं इन लड़ाइयों में अस्सी बार युद्धक्षेत्र में 'शवों का नर्त्तन' हुआ था । यह भी कहा जाता है कि जब एक बार 'प्रचण्ड आहुति' (Holocaust) हो जाती थी तो वीरगति-प्राप्त योद्धाओं के सिरविहीन शव युद्धक्षेत्र में नाचने लगते थे । एक बार की 'प्रचण्ड आहुति' में दस हजार हाथियों, एक लाख घोड़ों, पाँच हजार रथों तथा सौ कोटि सैनिकों का सफ़ाया समझा जाता था । इस अनुच्छेद में पौराणिक अलंकार भी कहा जा सकता है । किन्तु, इससे हमें यह तो पता चल ही जाता है कि नन्द-वंश तथा मौर्य-वंश[3] के बीच जमकर घमासान युद्ध हुआ था ।

---

१. कुछ पाण्डुलिपियों में 'द्विजर्षभः' के स्थान पर 'द्विरष्टभिः' मिलता है । डॉ० जायसवाल (*Ind. Ant.*, 1914,124) इसे 'विरष्ट्राभिः' में परिवर्तित करना चाहते हैं । 'विरष्ट्रा' का अर्थ उन्होंने 'अरट्टा' से लगाया तथा कहा कि जस्टिन के 'डाकुओं के गिरोह' अरट्टा ने ही कौटिल्य की सहायता की थी (कनिंघम, *Bhilsa Topes*, pp. 88-89) । पार्जिटर का मत है कि द्विजर्शभः (दो बार जन्म लेने वालों में सर्वोत्तम, अर्थात् ब्राह्मण) ही द्विरष्टभिः का सही रूप है (*Dynasties of the Kali Age*, pp. 26, 35) ।

२. IV, 8.26; *Cf. SBE*, xxxvi, p. 147-48.

३. *Ind., Ant.* 1914, p. 124n.

६ | फ़ारस और मैसीडोनिया के आक्रमण

१. सिन्ध की ओर फ़ारस का प्रसार

इधर एक ओर भारत के अनेक राज्य और गणतन्त्र मगध के राज्य में विलय होते जा रहे थे, और उधर उत्तरी-पश्चिमी भारत (आधुनिक पश्चिमी पाकिस्तान) तरह-तरह की मुसीबतों का सामना कर रहा था। छठी शताब्दी ईसापूर्व के प्रथमार्ध में भारत के अन्य भागों की तरह देश का उत्तरी क्षेत्र अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित था। इन छोटे-छोटे राज्यों में कम्बोज, गान्धार और माद्रा के राज्य प्रमुख थे। भारत के इस भाग में पूर्वी भारत के उग्रसेन महापद्म की तरह कोई भी ऐसा न निकला जो आपस में कलहरत राज्यों को एकता के सूत्र में आबद्ध कर सकता। यह पूरा का पूरा क्षेत्र धनी, किन्तु बड़ा ही असंगठित था। दुर्बल व असंगठित होने के कारण यह भाग फ़ारस (ईरान) में उदय हो रहे शाहों का शिकार हो गया।

फ़ारस के साम्राज्य के संस्थापक कुरुश या सीरस (५५८-५३० ईसापूर्व)[१] ने एक बार भारत के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया, किन्तु उसे बाद में अपनी योजना स्थगित करनी पड़ी और वह बड़ी कठिनाई से ही अपने सात साथियों तथा अपने-आप को बचा सका।[२] किन्तु, उसे क़ाबुल की घाटी में अधिक सफलता मिली। सीरस द्वारा घोरबंद और पंजशिर के संगम पर बसे कापिशी के बरबाद किये जाने का उल्लेख इतिहास में मिलता है। एरियन[३] के कथनानुसार सिंध के पश्चिमी ज़िलों से लेकर कोफ़ेन (क़ाबुल) नदी तक कुछ भारतीय जातियाँ बसी थी, जिन्हें ऐस्टेसीनियन (आष्टकस)[४] और ऐस्सेसीनियन (अश्वकस)

---

१. *A Survey of Persian Art*, p. 64 के अनुसार ५५०-५२९ ई०पू० है।

२. H. and F., *Strabo*, III, p. 74.

३. Chinnock, *Arrian's Anabasis*, p. 399.

४. पतंजलि (IV. 2.2) ने इसे 'अष्टकम् नाम् धन्व' कहा है (देखिये ल्यूडर्स, 390 में हस्तनगर तथा अठकनगर)।

कहते थे। आरम्भ में ये लोग असीरियन के और बाद में मेदियों के तथा अन्त में फ़ारस के अधीन हो गये। ये लोग बादशाह सीरस की प्रशंसा करते थे और उसे अपने मुल्क का बादशाह मानते थे। स्ट्रैबो के कथनानुसार, एक बार फ़ारस वालों ने पंजाब की कुछ मज़दूर जातियों (क्षुद्रकों) को अपने यहाँ बुला लिया था।

डेरियस-प्रथम (५२२–४८६ ईसापूर्व) के बहिस्तान-शिलालेख में गांधार-वासियों को भी ईरान के साम्राज्य का बाशिन्दा या नागरिक माना गया है। किन्तु, इस लेख में हिन्दुओं का उल्लेख कहीं भी नहीं आया। सिन्धु की घाटी में रहने वालों का कहीं भी ज़िक्र नहीं है। 'हमदन' शिलालेख में इसके विपरीत उल्लेख है। उसमें गान्धारवासियों के साथ-साथ सिंधु की घाटी में रहने वालों (हिन्दुओं) को भी फ़ारस का नागरिक कहा गया है। डेरियस के मक़बरे नक़्श-ए-रुस्तम[1] पर भी ऐसा ही लेख मिलता है। इससे यह धारणा बनाई जा सकती है कि ५१६ वर्ष ईसापूर्व तथा ५१३ वर्ष ईसापूर्व[2] के बीच (बहिस्तान[3] के अनुसार) भारतीयों पर विजय प्राप्त की गई थी। इस जीत की बुनियादी बातों का इतिहासकार हेरॉडोटस[4] ने भी उल्लेख किया है—"सिंधु नदी में घड़ियाल बहुत होते हैं। इस दृष्टि से क्रम में वह दूसरी है। बादशाह डेरियस-प्रथम यह जानने का इच्छुक था कि यह नदी समुद्र में कहाँ गिरती है। इसके लिये उसने जहाज़ रवाना किये, ताकि उसे सही जानकारी मिल सके। ये लोग पकतीक

---

१. H. C. Tolman, *Ancient Persian Lexicon and the Text of the Achaemenidan Inscriptions*; Rapson, *Ancient India;* Herzfeld, *MASI*, 34, p. 1 ff.

२. जैक्सन (*Camb. Hist. Ind.*, I, 334) के अनुसार बहिस्तान-शिला-लेख, पाँचवें कॉलम को छोड़कर के, ई०पू० ५२० से ५१८ में लिखा गया था। रैप्सन के अनुसार यह तिथि ५१६ ई०पू० तथा हर्ज़फ़ेल्ड के अनुसार ५१६ ई०पू० थी (*MASI*, No. 34, p. 2)।

३. ऑमस्टेड, *History of the Persian Empire*, p. 145. हर्ज़फ़ेल्ड के अनुसार, प्राचीन फ़ारसी लेखों में 'थतगुश' का उल्लेख सिद्ध करता है कि पंजाब का कुछ भाग (जैसे गांधार) साइरस-महान् के समय से ही फ़ारस का अंग था।

४. मैक्रिंडल, *Ancient India as Described in Classical Literature*, pp. 4-5.

(पक्थस ?)[1] प्रदेश के कैस्पाटीरस[2] नगर से पूर्व की ओर, नदी के बहाव के साथ-साथ रवाना हुए। समुद्र से वे पश्चिम को चल पड़े और तीस महीने की यात्रा के बाद ऐसी जगह पहुँचे, जहाँ से मिस्र का राजा अपने कुछ आदमियों को लीबिया की यात्रा पर भेज रहा था। फिर, जब डेरियस के आदमी यात्रा से वापस लौट आये तो उसने भारतीय भागों पर कब्जा कर लिया।"

हेरोडोटस ने भारत के बारे में आगे लिखा है कि भारत, ईरानी साम्राज्य का बड़ी घनी आबादी वाला प्रदेश था तथा इसमें काफ़ी आय भी होती थी (सोने के ३६० सिक्के जो युद्ध के पूर्व के २ लाख ९० हज़ार पौंड के बराबर होते थे)। यह कहने में कोई तुक नहीं है कि यह सोना बेक्ट्रिया या साइबेरिया से आया था। भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर सोने की खानें थी। इसके अलावा नदी की बालू में भी सोना तैयार किया जाता था। कुछ मात्रा में तिब्बत[3] से आने वाले भोटिया व्यापारियों से भी सोना मँगाया जाता था। गान्धार ईरानी साम्राज्य का ७वाँ तथा भारत २०वाँ प्रान्त था। भारत के बारे में हेरोडोटस ने जो कुछ लिखा है, उससे स्पष्ट है कि सिंधु की घाटी और राजपूताना का पश्चिमी भाग भारत माना जाता था। इतिहासकार कर्टियस ने लिखा है कि "भारत के पूर्व में बालू ही बालू है। वे भारतवासी जिन्हें हम जानते है; एशिया-वासियों में सबसे पूर्व में बसने वाले लोग है।"

किसी भी साम्राज्य के प्रदेशों के विभाजनों को बाद के शाही वंशजों ने यथावत् ही रखा। बाद में शकों और कुशाणों ने तो भारत को प्रदेशों में विभाजित करके ही अपने-अपने राज्यों को संगठित किया। गुप्त-काल का 'देश-गोप्तृ' प्राचीन काल के सत्रप (क्षत्र-पावन) या सूबेदार का ही वंशज था।

ईरानी विजेताओं ने भौगोलिक अनुसन्धानों तथा व्यापारिक गतिविधियों को अधिक प्रोत्साहन दिया। इसी काल में ईरानी लोग यहाँ से काफ़ी मात्रा में सोना ही नहीं ले गये, वरन् वे क़ीमती लकड़ी व हाथीदाँत भी यहाँ से ले गये। इसके अलावा यहाँ की जनशक्ति से भी इन लोगों ने पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया।

---

१. देखिये *Camb. Hist. of India*, I, 336, सम्भवतः यह नगर प्राचीन गांधार में स्थित था (Herodotus, IV. 44)।

२. देखिये *Ibid.*, 82, 339. पकतीक आधुनिक पठान देश का प्राचीन नाम है। यह भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा पर था।

३. Crooke, *The North-Western Provinces of India*, p. 10; अमृत बाज़ार पत्रिका, 19-7-39, p. 6; Watters, *Yuan Chwang*, I. 225, 239.

विभिन्न जातियों से सैनिकों का भी काम लिया गया। पूर्व और पश्चिम के इस सम्पर्क से सांस्कृतिक क्षेत्र में भी काफ़ी विकास हुआ। यदि ईरान के लोग भारतीय लड़ाकुओं को भी अपने यहाँ ले जाते तो वे लड़ाई जीतने का अपना तरीक़ा भी प्रदर्शित करते।

क्षयार्षा या Xerxes (४८६–४६५ ईसापूर्व) डेरियस-प्रथम का बेटा तथा उत्तराधिकारी था। उसने भी भारतीय भूमि पर अपना कब्ज़ा क़ायम रक्खा। उसकी वृहत् सेना में गांधार और भारत का भी प्रतिनिधित्व था। हेरोडोटस के कथनानुसार, गांधार के सिपाही तीर-कमान और छोटे भाले अपने पास रखते थे। भारतीय सिपाही सूती वर्दी पहनते थे तथा बेंत का धनुष धारण करते थे। उनके तीरों के सिरों पर लोहा लगा रहता था। खुदाई से प्राप्त सामग्री से पता चलता है कि क्षयार्षा (Xerxes) ने कुछ देवताओं के मन्दिरों को खुदवा डाला था और यह आदेश दे दिया था कि देवताओं की पूजा नहीं की जायगी। जहाँ अभी तक देवताओं की पूजा होती थी, वहाँ राजा ने 'अहुरमज़्दा' (Ahura-mazda) और प्रकृति की पूजा आरम्भ करवा दी। भारत में उस समय ईरानी राजाओं में धार्मिक उन्माद लहरें लेता था।

क्षयार्षा (Xerxes) की मृत्यु के बाद बाद ईरानी साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया। किन्तु, यदि Artaxerxes II के दरबारी Ktesias (४०५–३५८ ईसापूर्व) पर विश्वास किया जाय तो चौथी शताब्दी[1] ईसापूर्व में भी ईरानी बादशाह को भारत से बहुमूल्य तोहफ़े मिला करते थे। South Tomb Inscription के अनुसार भी सत्तागीदियन (Sattagydians) के साथ गांधार-निवासियों का और ईरानियों के साथ भारत के हिन्दुओं का भी उल्लेख मिलता है। मीडियन और सूसियन (Medians and Susians) की भी चर्चा आई है।

तक्षशिला के शिलालेखों में भी भारत पर ईरानी शासन के महत्वपूर्ण प्रमाण मिलते हैं। ये प्रमाण चौथी या पाँचवीं[2] शताब्दी ईसापूर्व के बताये जाते हैं। लेकिन, हर्ज़फ़ेल्ड (Herzfeld)[3] के अनुसार उक्त रिकार्ड में 'प्रियदर्शन' शब्द भी आता है जो अशोक के शासन-काल की ओर संकेत करता है, न कि ईरानी शासन की ओर। खरोष्ठी लिपि का श्रेय भी ईरानियों को ही दिया

१. *Ind. Ant.*, Vol. X (1881), pp. 304–310.
२. *JRAS*, 1915, 1, pp. 340–347.
३. *Ep. Ind.*, XIX, 253.

जाता है। अशोक के शिलालेखों में 'दिपि' (rescript) और 'निपिष्ट' (written) शब्द भी मिलते हैं। इस प्रकार अशोक के अभिलेखों की पृष्ठभूमि या भूमिका में ईरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

२. अकीमेनिड्ज़ तथा अलेक्ज़ेण्डर का अन्त

आर्टाज़रक्सीज़ (Artaxerxes) की मृत्यु ३५८ वर्ष ईसापूर्व या इसके आसपास हुई। कुछ दिनों की अव्यवस्था तथा कुशासन के बाद डेरियस-तृतीय कोडोमेनस (३३५-३३० ई०पू०) गद्दी पर बैठा। यही वह राजा था जिसके विरुद्ध मैसिडन के राजा सिकन्दर ने चढ़ाई की थी। इस प्रकार कई लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें ईरानी फ़ौजें निरन्तर पराजित होती गईं। अतः सिकन्दर अपने दुश्मनों को दबाता हुआ बूमोडस नदी के मैदानी भाग तक पहुँच गया।

उन दिनों ईरानी शाह की फ़ौज में तीन भारतीय जातियाँ मुख्य रूप से थीं। उन दिनों बीसस (Bessus) नाम का सूबेदार ईरान की ओर से भारत के एक हिस्से पर शासन करता था। इसी के नेतृत्व में सोगडियनियन, बैक्ट्रियन तथा बैक्ट्रियन से मिलती-जुलती एक अन्य जाति के लोग ईरानी फ़ौज की मदद करने फ़ारस गये थे। इनके बाद सेसियन और सीथियन जाति के लोग भी फ़ारस की मदद को गये। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी गये, जिन्हें पहाड़ी भारतीय कहा जाता था। सिंधु के इस पार रहने वाले भारतीयों के पास केवल कुछ ही (लगभग पन्द्रह) हाथी थे। कुछ सेना डेरियस के नेतृत्व में भी गई थी। ये लोग अरबेला के निकट बूमोडस नदी से थोड़ी दूर गागमेला[1] नामक स्थान पर जा कर जम गए।

इस समय उत्तर-पश्चिमी भारत पर ईरानी साम्राज्य का प्रभाव काफ़ी कम हो गया था। उत्तर-पश्चिमी भारत अनेक रियासतों तथा गणतंत्रों में बँट गया था, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. **आस्पेसियन** (अलिशंग-कूनार-बाजौर घाटी)—यह राज्य क़ाबुल नदी के उत्तर के पहाड़ी भागों में फैला था। इसमें आधुनिक अलिशंग, यूअस्पला तथा कूनार के भाग शामिल थे। इस राज्य का नाम ईरानी शब्द 'अस्प' तथा संस्कृत शब्द 'अश्व' या 'अश्वक' (घोड़ा) से लिया गया है। आस्पेसियन लोग अश्वकों[2] की ही एक शाखा थे जो पश्चिमी हिस्से में थे। इस राज्य का सामन्त हाईपार्क, यूअस्पला नदी के तट पर बसे एक नगर में रहता था। इसी नदी को 'कूनार' भी कहते हैं। यह क़ाबुल नदी की सहायक नदी थी। अन्दक और ऐरीजिमन[3] आस्पेसियन राज्य के अन्य प्रमुख नगर थे।

१. Chinnock, *Arrian's Anabasis*, pp. 142-143.
२. *Camb. Hist. Ind.*, 352.n. 3; देखिये अस्सानम् आयतनम्, 1494, *ante*.
३. Chinnock, *Arrian*, pp. 230–231.

२. **गुरेअन्स प्रदेश**—इस प्रदेश में गुरेअस, गौरी या पंजकोरा नदी बहती है। मुख्यतः यह भाग आस्पेसियन और अस्सकेनियन (अश्वक) राज्यों के बीच स्थित है।

३. **अस्सकेनोस राज्य**—यह राज्य सिन्धु नदी तक फैला था और मेसागा इसकी राजधानी थी। यद्यपि मेसागा कहाँ पर था, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है, किन्तु सम्भवतः मालकन्द दर्रे के उत्तर में थोड़ी दूर पर ही यह नगर था। 'अस्सकेनियन' शब्द 'अश्वक' (या घोड़ों का देश) शब्द का ही रूपान्तर है। इससे 'अश्मक' (या प्रस्तर-देश) का बोध नहीं होता। इस प्रदेश में जो जाति निवास करती थी, उसे विभिन्न युगों में विभिन्न नामों से पुकारा गया है। अभी तक इस प्रदेश के निवासियों के 'सुवास्तु', 'उद्यान' तथा 'ओड्डियान' नाम मिल सके हैं। इन अश्वकों का दक्षिण के अश्मकों[1] से कोई सम्बन्ध था, इसका कोई आधार नहीं मिलता। पाणिनि ने अश्वक जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है। मार्कण्डेय पुराण तथा वृहत्संहिता के ग्रन्थकारों ने अश्वकों को उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश का निवासी बतलाया है। अस्सकेनियन राजा के पास २० हज़ार घुड़सवार तथा ३० हज़ार पैदल सेना थी। इसके अलावा गजसेना भी थी। सिकन्दर-महान् के आक्रमण के समय यहाँ पर जो राजा राज्य करता था, उसे यूनानियों ने अस्सकेनोस नाम से पुकारा है। क्लियोफ़िस उसकी माँ थी। अस्सकेनोस के एक भाई[2] था, जिसका नाम कर्टियस ने ईरिक्स (Eryx) और डायोडोरस[3] ने एफ्रिक्स (Aphrikes) लिखा है। महाकवि बाण ने दक्षिण भारत की गोदावरी के एक तटवर्त्ती अश्मक राजा शरभ के दुःखद अन्त की कहानी लिखी थी। किन्तु, उत्तरी-पश्चिमी अश्वकों व दक्षिण भारतीय अश्वकों का कोई सम्बन्ध था, यह निराधार है।

४. **नीसा**—यह पहाड़ी राज्य कोफ़ेन, या क़ाबुल और सिन्धु नदियों[4] के बीच मेरास पर्वत की तलहटी में आबाद था। यह गणतंत्रीय संविधान का राज्य था।

---

१. IV. I. 173.

२. *Invasion of Alexander*, p. 378.

३. प्रसिद्ध दुर्ग औरनस के भागते हुए रक्षकों का उसने यूनानियों के विरुद्ध नेतृत्व किया (*Camb. Hist Ind.*, I, 356)। सर औरेल स्टीन के अनुसार, औरनस स्वात तथा सिन्धु के मध्य ऊना पर्वत पर स्थित था (देखिये, *Alexander's Campaign on the Frontier, Benares Hindu University Magazine*, Jan., 1927)। इस दुर्ग के दक्षिणी भाग को सिन्धु नदी छूती थी (देखिये, *Inv. Alex.*, 271)।

४. *Inv. Alex.*, 79, 193.

कहते हैं कि सिकन्दर[1] के आक्रमण से भी पूर्व कुछ यूनानी उपनिवेशवादियों ने इसकी स्थापना की थी। एरियन[2] के कथनानुसार, नीसा राज्य के निवासी भारतीय नहीं थे, वरन् ये डायोनीसस के साथ इधर आयी जातियों के वंशज थे। मज्झिम निकाय[3] में लिखा है कि अस्सलायन व गौतम बुद्ध के समय कम्बोज तथा योन (यूनानी) राज्य तरक्क़ी कर रहे थे—'योन कम्बोजेसु द्वेव वण्णा अय्यो क्ऽएव दासोक' (योन तथा कम्बोज जातियों में दो ही सामाजिक वर्गीकरण थे—एक आर्य, और दूसरे दास)।

इतिहासकार होल्डिच के अनुसार, प्राचीन नीसा नगर स्वात देश के मूर पर्वत की तलहटी में बसा था।[4] सिकन्दर के आक्रमण के समय आकूफ़िस नीसा गण-तन्त्र का सभापति था तथा ३०० सदस्यों की एक शासक परिषद् थी।[5]

५. **प्यूकेलाओटिस**—यह राज्य क़ाबुल से सिन्ध जाने वाली सड़क के समीप-वर्ती प्रदेश में फैला था और आज के (पाकिस्तान के) पेशावर ज़िले में था। प्यूकेलाओटिस में मालन्तस, सोअस्तुस तथा गुरेअस भी शामिल थे। 'प्यूकेला-ओटिस' शब्द सम्भवतः संस्कृत के पुष्करावती का ही एक रूप है। यह पहले प्राचीन गान्धार राज्य का एक अंग था। इतिहासकारों ने इस क्षेत्र के रहने वालों को 'अस्तकेनाइ' नाम भी दिया है। पेशावर के उत्तर-पूर्व में लगभग १७ मील दूर मीर ज़ियारत तथा चारसद् नगर है जो पहले प्यूकेलाओटिस की राजधानी था, ऐसा अनुमान है। इतिहासकार एरियन का सोअस्तुस तथा वेदों में वर्णित सुवास्तु राज्य स्वात नदी के पास-पड़ोस में फैला था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय यहाँ पर आस्टेस नाम का राजा था, जिसे 'हस्ती' या 'अष्टक' भी कहा गया है। सिकन्दर के एक सेनापति हेफ़ीस्चन (Hephaestion) ने उक्त राजा को पराजित कर उसे जान से मार डाला था।

---

१. McCrindle, *Invasion of Alexander*, p. 79; Hamilton and Falconer, *Strabo*, Vol III, p. 76. डॉ० जायसवाल ने मुझे सूचित किया है कि उन्होंने न्यासियन भारतीय-यूनानियों का उल्लेख सन् १९१९ में अपने एक भाषण में किया था।

२. Chinnock, *Arrian*, p. 399.

३. II. 149.

४. Smith, *EHI*, 4th ed., p. 57; *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 353.

५. *Invasion of Alexander*, p. 81.

६. Chinnock, *Arrian's Anabasis of Alexander and Indica*, p. 403.

६. **तक्षशिला** (रावलपिंडी ज़िले में)—स्ट्रैबो[1] के कथनानुसार, तक्षशिला नगर सिन्धु और झेलम के बीच था, तथा यहाँ की शासन-प्रणाली बड़ी अच्छी थी। आसपास के प्रदेश बड़े ही घने आबाद तथा उपजाऊ थे। तक्षशिला राज्य भी प्राचीन गान्धार राज्य का पूर्वी भाग था।

३२७ ईसापूर्व में तक्षशिला में बेसीलियस राज्य करता था, जिसे यूनानियों ने टैक्साइल्स कहा है। जब मैसिडन का बादशाह सिकन्दर यहाँ आया तो उसने तक्षशिला के राजा को मिलने का संदेश भिजवाया। तक्षशिला का राजा बहु-मूल्य उपहारों के साथ सिकन्दर से मिला भी। राजा के मरने के बाद उसका बेटा मोफ़िस या ओम्फ़िस (आम्भी—संस्कृत) गद्दी पर बैठा। महावंशटीका के अनुसार कौटिल्य—अर्थशास्त्र का लेखक—भी तक्षशिला का ही रहने वाला था। उसने तक्षशिला में दर्शनशास्त्र के आम्भीय स्कूल का उल्लेख किया है। डॉक्टर एफ़० डब्ल्यू० थॉमस ने भी तक्षशिला[2] से इस नाम का सम्बन्ध जोड़ा है।

७. **अरसेक्स राज्य**—उक्त राज्य को संस्कृत में 'उरशा' कहते थे और यह कभी आजकल के हज़ारा ज़िले में पड़ता था। अबीसेयर्स प्रदेश भी इसी राज्य का एक भाग था, और कम्बोज राज्य का एक भाग कहा जाता था। कतिपय खरोष्ठी शिलालेखों में भी उरशा नाम का उल्लेख आया है। यह भी तक्षशिला राज्य का ही एक भाग कहलाता था।

८. **अभिसार**—स्ट्रैबो[3] के कथनानुसार, तक्षशिला के उत्तर की ओर के पहाड़ों के मध्यवर्ती प्रदेश को अभिसार राज्य कहते थे। स्टीन ने इस प्रदेश की चर्चा करते हुए 'दार्वाभिसार'[4] शब्द का प्रयोग किया है; और लिखा है कि यह प्रदेश झेलम और चिनाब के बीच में स्थित था। यह भाग आजकल के कश्मीर के पुंछ ज़िले तथा हज़ारा ज़िले में पड़ता है। सम्भवतः यह प्रदेश प्राचीन कम्बोज राज्य का एक भाग ही था। सिकन्दर का समकालीन राजा अबीसेयर्स सार्डी-निया के चार्ल्स-तृतीय की तरह बड़ा ही कूटनीतिज्ञ शासक था। ज्योंही सिकन्दर इस प्रदेश में पहुँचा, राजा ने उसे सन्देश भेजा कि वह अपने समूचे राज्य के साथ सिकन्दर-महान् के समक्ष आत्म-समर्पण कर दे। फिर भी, जब सिकन्दर और राजा पुरु के बीच युद्ध हुआ तो एक बार अबीसेयर्स ने भी राजा

---

१. हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 90.
२. बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, भूमिका, p. 15.
३. हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 90.
४. महाभारत, VII, 91, 43.

पुरु[१] के साथ सिकन्दर से मोर्चा लेने की सोची।

९. **ज्येष्ठ पुरु का राज्य**—यह प्रदेश झेलम और चिनाब के बीच पड़ता था। आजकल के गुजरात और शाहपुर के ज़िलों[२] में ही यह राज्य फैला हुआ था। स्ट्रैबो[३] के अनुसार, यह राज्य बड़ा ही उपजाऊ था तथा राज्य भर में लगभग ३ सौ नगर थे। डायोडोरस[४] के अनुसार, ज्येष्ठ पुरु के पास ५ हज़ार पैदल, ३ हज़ार घुड़सवार, १ हज़ार रथ तथा १३० हाथियों की सेना भी थी। ज्येष्ठ पुरु तथा अभिसार के राजा के बीच मैत्री-सम्बन्ध थे।

'पोरस' शब्द संस्कृत के पूरु या पौरव का ही एक रूप है। ऋग्वेद में सरस्वती के तट पर पूरुस के होने की बात आई है। सिकन्दर के समय में हम पुरुवंश को झेलम के तट पर पाते हैं। बृहत्संहिता[५] में पौरवों को माद्रक तथा मालवों से सम्बन्धित कहा गया है। महाभारत[६] में 'पुरम् पौरव रक्षितं' नगर का उल्लेख आया है, जो कश्मीर से दूर नहीं था। वैदिक सूची[७] में कहा गया है कि या तो पुरु लोग मूलतः झेलम के पास के ही रहने वाले थे और बाद में पूर्व की ओर चले गये थे, या वे पूर्व से ही पश्चिम की ओर गये थे।

१०. **ग्लौगनिकाय प्रदेश**—यह प्रदेश चिनाब नदी के पश्चिम में था और इसकी सीमा तथा पुरु-राज्य की सीमा एक ही थी।[८] इस देश के रहने वालों को इतिहासकार अरिस्टोबुलस ने ग्लौगनिकाय[९] (या ग्लागनीसियन) कहा है, तथा तालमी ने ग्लासियन भी कहा है। इस राज्य भर में ७३० नगर थे, जिनमें सबसे छोटे नगर की आबादी ५ हज़ार थी। इसके अलावा बहुत से नगर ऐसे थे जिनकी आबादी १० हज़ार से अधिक थी।

---

१. Chinnock, *Arrian*, p. 276; *Inv. Alex.*, p. 112.

२. इसमें प्राचीन केकय प्रदेश भी सम्मिलित था।

३. हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 91.

४. *Invasion of Alexander*, p. 274.

५. XIV, 27.

६. II, 27, 15-17.

७. Vol. II, pp. 12-13.

८. Chinnock, *Arrian*, p. 276; *Inv. Alex.*, p. 112. यह देश पोरस को राज्य करने के लिया दिया गया था।

९. इस नाम के दूसरे भाग अनीक से गुप्त-काल के सनकानीक की सेना का बोध होता है। डॉ० जायसवाल ने निस्संदेह वेबर को *IA* (ii, 1873, p. 147) में सही माना है और चाहा है कि यह नाम ग्लौचुकायनक पढ़ा जाये, परन्तु वे उपर्युक्त तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते।

११. **गान्दारिस** (रेचना दोआब में)—यह छोटा राज्य चिनाब और रावी के मध्य स्थित था। सम्भवतः यह राज्य गान्धार[1] महाजनपद का ही पूर्वी भाग था। इस प्रदेश में झेलम और चिनाब के मध्यवर्त्ती नगर पर शासन करने वाले राजा पुरु का कनिष्ठ भतीजा पुरु राज्य करता था।

१२. **अद्रेस्ताई** (बरी दोआब[2])—यह राज्य रावी के पूर्व की ओर था तथा पिम्प्रमा इसकी राजधानी थी।

१३. **कथाई या कैथियन्स**—इतिहासकार स्ट्रैबो[3] के अनुसार, यह राज्य भी झेलम और चिनाव के बीच में ही पड़ता था। कुछ भाग चिनाब और रावी के भी बीच में पड़ जाता था। यह प्रदेश राजा पुरु के उस भतीजे की राज्य-सीमा से मिला हुआ था, जिसे सिकन्दर ने क़ैद कर लिया था। कथाई शब्द संभवतः संस्कृत के ही कठ, काठक[4], कन्थ[5], क्राथ[6] आदि शब्दों का ही एक रूप है। ये सब उन प्रमुख जातियों के नाम हैं; जो इस प्रदेश में सांगल या सांकल के ही आसपास रहती थीं। यह नगर गुरुदासपुर ज़िले में पड़ता था। कुछ इतिहास-कारों के अनुसार, सांगल नगर अमृतसर के पूर्व में था।[7]

कथाई प्रदेश के रहने वाले अपने साहस तथा युद्धकला-प्रवीणता के लिए विख्यात थे। इतिहासकार ओनेसीक्रिटोस का कहना है कि कथाई प्रदेश में सबसे सुन्दर पुरुष को ही राजा चुना जाता था।[8]

१४. **सोफ़ाइटस** (सौभूति) **का राज्य**—यह राज्य संभवतः झेलम के तट पर ही था। स्मिथ के मतानुसार, यह राज्य ऐसी जगह था जहाँ नमक का एक ऐसा पहाड़ था, जिससे पूरे देश को नमक मिल सकता था। किन्तु, हमने यह भी देखा है कि प्राचीन ग्रन्थकारों ने सोफ़ाइटस के राज्य को झेलम के पूर्व की ओर बताया है।

---

१. देखिये *Camb. Hist. Ind.*, I, 37) n. 4. प्राचीन काल में इसका नाम माद्रा था।

२. अद्रिजों ? महाभारत, VII, 159. 5.

३. हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, III, p. 92.

४. Jolly, *SBE*, VII. 15; *Ep. Ind.*, III. 8.

५. देखिये पाणिनि, II, 4. 20.

६. महाभारत, VIII, 85. 16.

७. *Camb. Hist. Ind.*, I. 371.

८. McCrindle, *Ancient India as Described in Classical Literature*, p. 38.

इतिहासकार कर्टियस[1] के कथानुसार, यह प्रदेश सोफ़ाइटस द्वारा शासित था और बहुत ही व्यवस्थित था। परम्परा तथा क़ानून उत्तम कोटि के थे। इस प्रदेश में बच्चों का लालन-पालन केवल माँ-बाप की इच्छा पर ही नहीं निर्भर करता था, वरन् सरकार की ओर से डॉक्टर तैनात थे। वे बच्चों का मुआइना करते थे। यदि किसी बच्चे का कोई अंग भंग होता था बच्चे किसी दृष्टि से अपंग होते तो डॉक्टर उनको मार डालने तक का आदेश दे सकता था। विवाह के समय ये लोग जाति-पाँति या खानदान नहीं देखते थे। केवल सौन्दर्य ही विवाह का आधार होता था। सुन्दर व सुडौल बच्चों की बड़ी प्रशंसा की जाती थी। स्ट्रैबो[2] के कथनानुसार, इस प्रदेश के कुत्ते बड़े साहसी होते थे। सोफ़ाइटस के समय के जो सिक्के मिले हैं, उनमें एक ओर राजा का चित्र तथा दूसरी ओर मुर्ग[3] का चित्र मिलता है। स्मिथ के मतानुसार, पक्षी का होना सम्भवतः एथेन्स के उल्लुओं का प्रतीक था। स्ट्रैबो ने सोफ़ाइटस को 'नामार्क' कहा है, जिसका अभिप्राय होता है कोई स्वतंत्र राजा नहीं, वरन् किसी दूसरे राजा का वाइसराय या उपराजा।[4]

१५. **फेगेला**--यह राज्य रावी और व्यास[5] के मध्य स्थित था। राजा का नाम फ़ेगेला सम्भवतः संस्कृत शब्द भागल का ही रूपान्तर है, जो क्षत्रिय राजाओं की उपाधि होती थी, ऐसा गणपाठ[6] में लिखा है।

१६. **सिबोई**--ये लोग भांग जिले के शोरकोट-क्षेत्र के रहने वाले थे। यह भाग झेलम और चिनाब[7] के संगम के नीचे पड़ता था। शायद ये लोग

१. *Invasion of India by Alexander*, p. 219.

२. H. and F., II, p. 93.

३. ह्वाइटहेट (*Num. Chron.*, 1943, pp. 60-72) सोफ़ाइटस को सौभूति मानने से इन्कार करते है। कोई भी ऐसा ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है जिसके अनुसार कहा जा सके कि सौभूति नामक कोई स्थान भी था। सुभूति (कदाचित् सौभूति नाम पड़ा है) भारतीय साहित्य में अधिक प्रयुक्त हुआ है (*The Question of King Milinda*, Pt. II; *SBE*, XXXVI, pp. 315, 323; गेगर, महावंश, 151n, 275)। यह असम्भव नहीं है कि कोई हिन्दू राजा अपना नाम हेलन के अनुसार रखे। आगे चल कर बहुत से राजाओं ने इस प्रथा को अपनाया है।

४. क्या यह पश्चिमी एशिया अथवा भारत का कोई शक्तिशाली शासक था? अन्य राजाओं में बड़े पोरस के भतीजे तथा सामन्त Spitaces का भी उल्लेख आवश्यक है (*Camb. Hist. Ind.*, 36, 365, 367)।

५. *Inv. Alex.*, pp. 281, 401

६. *Invasion of Alexander*, p. 401; देखिये क्रमदीश्वर, 769

७. *Inv. Alex.*, p. 232.

ऋग्वेद[१] में वर्णित शिव जाति के ही लोग थे। इन्हें अलिनस, पक्थस, भलाना-सेज तथा विशाणिन भी कहते थे। सम्भवतः ये लोग सुदास[२] द्वारा पराजित थे। जातकों में शिवि देश की तथा उसके नगरों अरिट्ठपुर[३] और जेतुत्तर[४] की भी चर्चा आई है। सम्भवतः शिव, शिवि, शिबि तथा सिबोई एक ही जाति का नाम था। पाणिनि के एक भाष्यकार ने लिखा है कि उत्तरी क्षेत्र में शिवपुर एक स्थान था।[५] यह नगर निस्सन्देह वोगेल (Vogel) द्वारा सम्पादित शोरकोट के शिलालेखों में वर्णित शिबिपुर ही है। उक्त विद्वान् के मत से जहाँ आज शोर-कोट का टीला है, यही वह जगह है, जहाँ पुराना शिवि[६] नगर था।

सिबोई जाति के लोग जंगली जानवरों की खाल से अपनी वेशभूषा सुसज्जित करते थे तथा हथियारों में गदा धारण करते थे।

महाभारत[७] में भी शिवि का नाम एक राष्ट्र के रूप में आया है, तथा यहाँ उशीनर राजा राज्य करता था। यह प्रदेश यमुना[८] से दूर नहीं था। यह ऐसा कुछ अजब नहीं कि शिवि लोग कभी उशीनर[९] देश के भी निवासी रहे हों। हम उन्हें सिन्ध का भी निवासी पाते हैं। चित्तौड़[१०] (राजस्थान) के पास मद्यमिका (तम्बवती नगरी) तथा 'दशकुमारचरित' के अनुसार कावेरी[११] के तट पर भी शिवि लोग रहते थे।

१७. **अगलसोई**—ये लोग सिबोई देश के ही पड़ोसी थे। इनके पास ४० हज़ार की पैदल तथा ३ हज़ार घुड़सवारों की सेना थी।

---

१. VII. 18, 7.

२. *Vedic Index*, Vol. II, pp. 381-82. ऐतरेय ब्राह्मण (VIII. 23; *Vedic Index*, 31) में 'शैब्य' का उल्लेख मिलता है।

३. उम्मदन्ती जातक, No. 527; पाणिनि, VI, 2. 100.

४. वेस्सान्तर जातक, No. 547; *ante*, p. 198, n6.

५. पतञ्जलि, IV, 2. 2; *Vedic Index*, II, p. 382; *IHQ*, 1926, 758.

६. देखिये *Ep. Ind.*, 1921, p. 16.

७. III, 130-131.

८. देखिए सिबा (कनिंघम, *AGI*, संशोधित संस्करण, pp. 160-161)।

९. देखिये p. 65-66 *ante*.

१०. Vaidya, *Med. Hind. Ind.*, I, p. 162; *Carm. Lec.*, 1918, p. 173; Allan, *Coins of Anc. Ind.*, cxiii.

११. दक्षिण के शिवि सम्भवतः चोल-राजवंश के थे (Kielhorn, *List of Southern Inscripion*, No. 685)।

१८. **सूद्रक (या आक्सीड्रके)**—इतिहासकार कर्टियस और डायोडोरस[1] के कथनानुसार, ये लोग भी सिबोई देश वालों के ही पड़ोसी थे तथा झेलम और चिनाब के संगम के समीपवर्त्ती प्रदेश में रहते थे। इसी झेलम और चिनाब के संगम पर सिकन्दर अपनी फ़ौज की आपंक्ति को तैनात कर सूद्रक और मालव प्रदेश की ओर बढ़ा था। सूद्रक सम्भवतः झंग और लायलपुर जिलों में रहते रहे होंगे। सूद्रक या आक्सीड्रके शब्द संस्कृत के क्षुद्रक[2] का ही रूपान्तर है। ये लोग पंजाबवासी भारतीयों में सबसे अधिक लड़ाकू माने जाते थे। एरियन ने एक जगह इन लोगों के बारे में लिखा है कि यह जाति तथा इसके शासक देश के अगुआ है। इन शब्दों से इस जाति की अन्दरूनी खूबियों पर कुछ रोशनी पड़ती है।

१९. **मलोई**—ऐसा लगता है कि इन लोगों ने पहले रावी के दायें तट पर अधिकार जमाया था और बाद में ब्राह्मणों के नगर की ओर चले गये। इन्हीं के भूभाग में चिनाब नदी सिन्धु[3] में मिली है। सम्भवतः 'मलोई' शब्द संस्कृत के मालव का ही रूपान्तर है। वेबर और जायसवाल ने लिखा है कि आपिशलि और कात्यायन के अनुसार, क्षौद्रक और मालवों का एक संयुक्त राज्य था। महाभारत में भी कहा गया है कि कुरुक्षेत्र[4] के युद्ध में ये लोग कौरवों की ओर थे। कर्टियस[5] के कथनानुसार, सूद्रकों और मालवों के पास ९० हज़ार पैदल, १० हज़ार घुड़सवार तथा ९ सौ रथ सेना थी।

सर आर० जी० भण्डारकर ने लिखा है कि पाणिनि के अनुसार, मालव जाति का पेशा ही युद्ध था।[6] बाद में ये लोग राजपूताना में भी रहने लगे थे; यों ये लोग अवन्ती और मही घाटी में रहते थे।

२०. **आबस्टनोई**—इन लोगों को डायोडोरस सम्बस्टई,[7] एरियन

१. *Inv. Alex.*, 233-34, 286-87.

२. देखिये महाभारत, II. 52, 15; VII. 68. 9.

३. *Megasthenes and Arrian*, 2nd ed., p. 196. इस कथन की सत्यता में सन्देह है। मलोई राज्य में लायलपुर के दक्षिणी भाग, पश्चिमी माण्टगुमरी, तथा कदाचित् उत्तरी मुलतान के अतिरिक्त झांग जिला भी सम्मिलित था।

४. *EIII*, 1914, p. 94 n; महाभारत, VI, 59,135.

५. *Invasion af Alexander*, 234.

६. *Ind. Ant.*, 1913, p. 200.

७. *Inv. Alex.*, p. 292.

एम्स्टनोई, कर्टियस सब्रके तथा ओरोसियस सबग्रे कहता था। ये लोग मालव देश के नीचे तथा चिनाब और सिन्धु के संगम के ऊपरी प्रदेश में बसे थे। इनका नाम संस्कृत के 'अम्बष्ठ' या 'आम्बष्ठ'[1] शब्द का रूपान्तर है।[1] आम्बष्ठों की चर्चा कई पाली तथा संस्कृत ग्रन्थों में भी मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में एक आम्बष्ठ राजा की चर्चा है, जिसके पुरोहित नारद स्वयं थे। महाभारत[3] में उत्तर भारत की शिवि, क्षुद्रक, मालव और अन्य उत्तरी-पश्चिमी जातियों के साथ आम्बष्ठों का भी उल्लेख है। पुराणों में इन्हें आनव क्षत्रिय तथा शिवियों[4] का घनिष्ठ सम्बन्धी माना गया है। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र[5] में सिन्धु के पास ही आम्बष्ठ देश स्थित बताया गया है --

काश्मीर-हून्-आम्बष्ठ-सिन्धवः।

आम्बट्ठ सुत्त[6] में आम्बट्ठ को ब्राह्मण कहा गया है। इसके विपरीत स्मृति साहित्य में आम्बष्ठ को ब्राह्मण तथा वैश्य का संयुक्त वंशज माना गया है। चतुर्थ जातक ३६३ के अनुसार आम्बष्ठ लोग किसान थे। ऐसा लगता है कि पहले आम्बष्ठ जाति एक लड़ाकू जाति ही थी, किन्तु बाद में इन लोगों ने पुरोहित, किसान, स्मृतिकार तथा वैद्य का पेशा भी अपना लिया (अम्बष्ठानां चिकित्सितम्[7])।

---

१. डॉ० सूर्यकान्त आम्बष्ठ तथा अम्बष्ठ में यह कह कर अंतर बताते हैं कि प्रथम शब्द स्थान का तथा दूसरा जाति का नाम है। इसका अर्थ 'हाथी को चलाने वाले, क्षत्रिय, की एक मिश्रित जाति' है (*B. C. Law*, Vol. II, pp. 127 ff)। हमारे मत में यह अंतर केवल शब्द-भेद पर ही आधारित है।

२. VIII. 21.

३. II. 52. 14-15.

४. पार्जिटर, *AIHT*, pp. 108, 109.

५. एफ़० डब्ल्यू० थॉमस द्वारा सम्पादित, p. 21.

६. *Dialogues of the Buddha*, Vol. I, p. 109.

७. देखिये मनु, X. 47. डॉ० सूर्यकान्त का मत है कि इसको 'च हस्तिनाम्' पढ़ा जाये (*Law*, Vol. II, 134)। अपने इस विचार का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा है कि सम्भवतः 'अम्बष्ठ' शब्द संस्कृत से लिया गया है जिसका अर्थ कृषक है। यह भी सम्भव है कि इसका अर्थ महामात्र से हो, क्योंकि 'अम्भस्' का अर्थ 'बड़ी लम्बाई वाला', 'हाथी'; अतः 'अम्बष्ठ' का अर्थ 'हाथी पर बैठने वाला' अर्थात् महावत, स्वामी, सामन्त या क्षत्री। वे सदैव युद्ध में रहते थे तथा सम्भवतः गजारोह (पताका लेने वाले) थे। 'अम्बष्ठ' तथा 'आम्बष्ठ' में अंतर बताया गया है। आम्बष्ठ स्थान का नाम है तथा यहाँ पर अम्ब के वृक्ष अधिक मिलते हैं। इस विषय पर अन्य टिप्पणी के लिये देखिये प्रवासी, 1951 B.S.; I, 2.6; *JUPHS*, July-Dec., 1945, pp. 148 ff; *History of Bengal* (D.U.), pp. 568 ff.

सिकन्दर के समय में आम्बष्ठ बहादुर तथा लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली वाली एक जाति थी। इनके पास ६० हज़ार पैदल, ६ हज़ार घुड़सवार तथा ५ सौ रथों की सेना थी।[1]

बाद में आम्बष्ठ लोग दक्षिण-पूर्वी भारत की मेकल पर्वत-श्रेणी के पास तथा बिहार और बंगाल में भी पाये गये।[2]

२१-२२. **ज़ाथ्रोई या ओसेडिओई**—इतिहासकार मैक्रिंडल[3] के अनुसार, 'ज़ाथ्रोई' शब्द संस्कृत के 'क्षत्री' शब्द का ही एक रूप है। मनुस्मृति में वर्णसंकर जाति के लिये क्षत्री शब्द प्रयुक्त किया गया है। वी० डी० सेन्ट मार्टिन के कथनानुसार, ओसेडिओई शब्द महाभारत[4] में प्रयुक्त वसाति का ही रूप है तथा ये लोग शिवियों और सिन्धु-सौवीरों के मित्र थे। आब्सटनोई लोगों की तरह ये लोग भी पहले चिनाव के तटवर्ती भागों के निवासी थे। यह प्रदेश चिनाव व रावी तथा सिन्धु व चिनाव के संगमों के बीच फैला हुआ था।

२३-२४. **सोद्रई (सोगदोई) और मसनोई**—यह प्रदेश उत्तरी सिंध बहावलपुर राज्य तथा सिन्धु की सहायक नदियों के संगम के नीचे पड़ता है। उक्त दोनों जातियों के प्रदेश एक-दूसरे किनारों पर फैले हुए हैं। सोद्रई तो संस्कृत का सूद्र है और ये लोग (जो आभीर जाति से सम्बन्धित थे) सरस्वती[5] के तट पर बसने वाले

१. *Invasion of Alexander*, p. 252.

२. *Cf.* Ptolemy, *Ind. Ant.*, XIII, 361; बृहत्संहिता, XIV, 7. मार्कण्डेय का 'मेखलामुष्ट', (p. lviii, 14) वास्तव में मेकल-आम्बष्ठ का अशुद्ध रूप है। देखिये बिहार के अम्बष्ठ कायस्थ; अकबर के काल का मुर्जनचरित (*DHNI*, II, 1061,n 4) में गौड़ अम्बष्ठ तथा बंगाल के वैद्य, जिन्हें भरत-मल्लिका में अम्बष्ठ कहा गया है। भरत अथवा अन्य पुराणों में इस सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा गया है, उसके उचित-अनुचित पर तर्क करने का यह सही स्थान नहीं है। बगाल में वैद्यों की अथवा किसी भी जाति की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त जटिल है, तथा उस पर अलग से ही विचार किया जा सकता है। यहाँ पर लेखक का अभिप्राय केवल इस शब्द के सम्बन्ध में प्राप्त प्राचीन तथा अर्वाचीन मत देने का है। कुछ अम्बष्ठाओं तथा ब्राह्मणों ने वैद्यक का पेशा अपनाया, इसका प्रमाण मनु तथा अत्री (संहिता, 378) तथा बोपदव के लेखों में मिलता है। यह भी स्पष्ट है कि जिस ढंग से वैद्य की समस्या को कुछ आधुनिक पुस्तकों में हल करने का प्रयत्न किया गया है, वह सम्भव नहो। इससे सम्बन्धित ऐतिहासिक तथ्यों पर विचार करना ही पड़ेगा, जैसे मेगस्थनीज़, कुछ प्राचीन चालुक्य, पाण्ड्य तथा दूसरे लेख इत्यादि (देखिये तालमञ्ची पट्ट, *Ep. Ind.*, IX, 101; भण्डारकर की सूची, 1371, 2061 इत्यादि)।

३. *Invasion of Alexander*, p. 156n.

४. VII, 19. 11; 89, 37; VIII, 44, 99.

५. पतञ्जलि, 1.2.3; महाभारत, VII, 19. 6. ; IX. 37. 1.

कहे जाते थे। इनकी राजधानी सिन्धु के तट पर थी तथा सिकन्दर अपने आक्रमण के बाद लौटते समय सिकन्दरिया की स्थापना कर गया था।

२५. मोसिकनोस[1]—इस राज्य में आज का अधिकांश सिन्ध प्रदेश शामिल था। शक्खर (Sukkur) ज़िले के ऐलोर नामक स्थान पर इस राज्य की राजधानी थी। स्ट्रैबो के कथनानुसार इस प्रदेश के निवासियों की निम्न विशेषताएँ[2] थीं—

ये लोग सामूहिक रूप से भोजन करते थे। इनका यह सामूहिक भोजन सार्वजनिक भी होता था। ये शिकारी थे। इनके भोजन में मुख्यतया मांस आदि की प्रधानता रहती थी। यद्यपि इनके क्षेत्र में सोने-चाँदी की खानें थीं, किन्तु ये सोने-चाँदी का इस्तेमाल नहीं करते थे। ये लोग गुलामों के बजाय मेहनती नौजवानों को नौकर रखा करते थे। ये लोग वैद्की या डॉक्टरी[3] के अलावा और कोई भी विद्या नहीं पढ़ते थे। यदि किसी कला को कुछ महत्त्व देते थे तो वह थी युद्ध-कला। इनका स्वभाव अपराधशील था। इन लोगों के क़ानून में हत्या व बलात्कार के अलावा और किसी अपराध के लिये दण्ड नहीं था। इनके अनुसार चूँकि राज्य का विधान हर नागरिक के हित में होता है, इसलिये हर एक को अपने साथ की जा रही ग़लतियों को बर्दाश्त करना आवश्यक था। विश्वासघात से सावधान रहना आवश्यक था। यदि किसी पर विश्वास किया जाता है तो एहतियात भी रखनी चाहिए। नित्यप्रति छोटे-छोटे झगड़ों के साथ अदालत में पहुँचकर नगर की शांति-व्यवस्था नहीं भंग करनी चाहिए।

एरियन ने इन लोगों के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे पता चलता है कि देश में ब्राह्मणों का अच्छा प्रभाव था। ब्राह्मणों ने ही यूनानी हमलावर (सिकन्दर)[4] के खिलाफ़ जनता को उभाड़ा था।

---

१. *Camb. Hist. Ind.*, p. 377 में लॉसेन (*Inv. Alex.*, 157n) को मानते हुए बेवन 'मूषिक' नाम ही स्वीकार करते हैं। डॉ० जायसवाल ने 'हिन्दू पॉलिटी' में इस शब्द को 'मुचुकर्ण' कहा है। देखिये मौषिकार (पतञ्जलि, IV i, 4)।

२. H. & F., III, p. 96.

३. यह आदत उन्होंने अम्बष्ठों से ही सीखी थी (देखिये मनु, X, 47)।

४. Chinnock, *Arrian*, p. 319; *Cf.* स्ट्रैबो, xv, i, 66—"नेयरकॉस का कथन है कि ब्राह्मण राजा के मंत्री के रूप में दरबार में जाते थे।"

२६. **ऑक्सीकनोस**—कर्टियस ने ऑक्सीकनोस की प्रजा को प्रास्ती (प्रोष्यस ?)[१] नाम दिया है। स्ट्रैबो और डायोडोरस ने ऑक्सीकनोस स्वयं को पोर्टिकनोस कहा है। कनिंघम के कथनानुसार, उसका क्षेत्र सिन्ध के पश्चिम लरखान[२] के आसपास था।

२७. **सम्बोस**[३]—मोसिकनोस के पास के पहाड़ी इलाक़ों का शासक सम्बोस था। दोनों में परस्पर झगड़ा रहता था। सम्बोस की राजधानी सिन्दीमान थी। सिधु[४] के तट पर बसे सेहवान को ही पुराना सिन्दीमान कहा जाता है। डायोडोरस के अनुसार जब राजा सम्बोस पर आक्रमण हुआ[५] तो ब्राह्मणों के नगर (ब्राह्मणवाट) में भी उथल-पुथल-सी मच गई।

२८. **पटलेन** यह प्रदेश सिधु के डेल्टे में फैला था। बह्मणाबाद के निकट पाटल नगर ही पटलेन की राजधानी थी। डायोडोरस[६] ने लिखा है कि टाडला (अर्थात् पाटल) का संविधान वैसा ही था, जैसा कि स्पार्टा का। स्पार्टा में युद्ध-कालीन सत्ता वहाँ के पैतृक राजाओं के हाथ में रहती थी, तथा साधारण समय ज्येष्ठ जनों की परिषद् देश पर शासन करती थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय यहाँ के एक राजा का नाम मोरेस (Moeres)[७] था।

ऊपर जिन-जिन राज्यों की चर्चा की गई है, उनमें आपस में संगठित होने की प्रवृत्ति का अभाव था। कर्टियस[८] के कथनानुसार तक्षशिला का राजा आम्भी का, अबीसेयर्स और पुरु राज्य के शासकों के साथ, युद्ध चलता था। एरियन के कथनानुसार पुरु और अबीसेयर्स के राजा केवल तक्षशिला ही नहीं, वरन् अन्य

१. महाभारत, VI, 9. 61.

२. *Invasion of Alexander*, p. 158; *AGI*, संशोधित संस्करण, p. 300.

३. बेवन (*Camb. Hist. Ind.*, 377) ने शम्भु के स्थान पर शाम्ब का प्रयोग सम्भव माना है।

४. McCrindle, *Invasion of Alexander*, p. 404; *AGI*, संशोधित संस्करण, 302 ff.

५. डायोडोरस, XVII, 103, 1; देखिये अल्बेरूनी (I, 316; II, 262)।

६. *Inv. Alex.*, p. 296.

७. *Inv. Alex.*, p. 256—देखिये 'मौर्य'।

८. *Inv. Alex.*, p. 202.

पड़ोसी राज्यों के भी शत्रु थे। एक बार तो इन दोनों राजाओं ने क्षुद्रकों व मालवों[1] पर भी आक्रमण कर दिया था। एरियन ने यह भी बताया है कि राजा पुरु तथा उनके भतीजे के आपसी सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे। सम्बोस और मोसिकनोस से भी तनातनी ही थी। यहाँ की छोटी-छोटी रियासतों में इस प्रकार झगड़ा व कलह के कारण ही किसी भी बाहरी आक्रमणकारी का कभी भी संगठित विरोध नहीं हो सका। उल्टे, आक्रमणकारी को यही उम्मीद रहती थी कि इन रियासतों के सामन्त अपने पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी शासक को नीचा दिखाने के उद्देश्य से हमला करने वाले का ही साथ दे सकते हैं।

मगध में शासन कर रहे नन्द-वंश के लोगों ने उत्तरापथ (उत्तर-पश्चिमी भारत) की इन रियासतों को अपने अधीन करने का कभी प्रयास ही नहीं किया। इनकी संख्या कम करने का काम आक्रमणकारी सिकन्दर को ही करना पड़ा। एरियन के अलावा अन्य कई इतिहासकारों ने सिकन्दर के हमले की चर्चा की है। इन इतिहासकारों में कर्टियस, रुफ़स, डायोडोरस, सिकुलस, प्लूटार्क तथा जस्टिन प्रमुख हैं। कर्टियस ने लिखा है कि सीथियन (Scythions) और दाहे (Dahae) सिकन्दर की सेना में कर्मचारी थे। सिकन्दर-महान् को यह विजय-यात्रा शकों व यवनों का एक प्रकार से संयुक्त अभियान था। सिकन्दर के सामने ऐसी कोई भी संगठित शक्ति बाधा बनकर नहीं आई, जैसी ताक़त का मुक़ाबला कूणिक अजातशत्रु को करना पड़ा। इसके विपरीत तक्षशिला, पुष्करावती, और क़ाबुल के शासकों से सिकन्दर को सहायता ही मिली। आक्रमणकारी सिकन्दर के खिलाफ़ केवल पुरु राज्य, अवीसेयर्स, मालव, क्षुद्रक तथा इनके पड़ोसियों ने ही आगे आने की हिम्मत की। फिर भी इन लोगों के व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष के कारण कोई विशेष परिणाम न निकल सका। सिकन्दर को सबसे पहले आस्टेस (हस्ती या अष्टक), आस्पेशियन, आसकेनियन, ज्येष्ठपुर, कथाई, आक्सीड्रके तथा मोसिकनोस के ब्राह्मणों से लोहा लेना पड़ा। आसकेनियनों की राजधानी मसागा पर बड़ी कठिनाई से कब्ज़ा हो सका। ३२६ ई०पू० में झेलम के तट पर राजा पुरु परास्त हुए। मलोई और आक्सीड्रके के लोगों को भी सिकन्दर ने दबा दिया। लेकिन, सिकन्दर को भारतीय सिपाही थके हुए ईरानी सिपाहियों से कहीं अधिक अजेय मालूम पड़े। मसागा में सिकन्दर ने बड़ी धोखेबाज़ी से लोगों को क़त्ल किया। वहाँ उसने देखा कि यदि पुरुष युद्ध के मैदान

---

१. Chinnock, *Arrian*, p. 279.

२. *Inv. Alex.*, p. 208.

में मारे जाते और गिर जाते थे तो उनकी स्त्रियाँ उनके हथियार लेकर शत्रुओं से जूझ पड़ती थीं।[1] यह सूचना डायोडोरस के लेखों से प्राप्त होती है। राजा पुरु ने देखा कि उसकी सेना तितर-बितर हो गई, हाथियों की सेना मरने लगी या उनके सवार लड़ाई में काम आ गये, किन्तु फिर भी वह एक विशालकाय हाथी पर चढ़ा युद्ध करता ही रहा। क़ैद किये जाने के पूर्व तक पुरु[2] को ९ घाव लगे। मलोई की लड़ाई में तो सिकन्दर क़रीब-क़रीब मार ही डाला गया था। लेकिन, इतना होते हुए भी इस सारी मेहनत का कोई परिणाम नहीं निकला।

प्राचीन यूरोप के महान् योद्धा, सेनापति सिकन्दर के मुक़ाबले भारत की असंगठित फ़ौजें टिक न सकी। यद्यपि सिकन्दर ने ईरानी साम्राज्य के गान्धार और भारत कहे जाने वाले प्रान्तों को अपने अधिकार में कर लिया, किन्तु वह पूर्वी भारत के मगध या गंगा के तटवर्ती अन्य राज्यों की ओर न बढ़ सका। उस समय नंद-वंश का अन्तिम शासक औग्रसैन्य (Agrammes) मगध के सिंहासन पर राज्य कर रहा था। प्लूटार्क के कथनानुसार राजा पुरु से हुई लड़ाई में ही यूनानियों के छक्के छूट गये थे। यूनानी सिपाही थक गये थे और उन्होंने आगे बढ़ने से इनक़ार कर दिया था। इसके अलावा सिकन्दर का मुक़ाबला करने के लिये २ लाख पैदल, ८० हज़ार घोड़ों, ८ हज़ार रथों तथा ६ हज़ार हाथियों की एक और सेना भी सिकन्दर की प्रतीक्षा कर रही थी। यूनानी सिपाही काफ़ी भयभीत हो गये थे। सही बात तो यह है कि जब सिकन्दर करमानिया होते हुए वापस जा रहा था तो उसे रास्ते में ही खबर मिली थी कि उसके द्वारा नियुक्त उत्तर-पश्चिमी भारत का गवर्नर फ़िलिपोस मार डाला गया है (३२४ ई०पू०) और उसकी सेना भी हरा दी गई है। इसके बाद उत्तरी भाग के लिए एक और गवर्नर नियुक्त किया गया, जिसके बाद फिर किसी अन्य गवर्नर की नियुक्ति नहीं हो पाई। बाद में ३२१ ई०पू० में सिकन्दर के उत्तराधिकारों ने यह स्वीकार किया कि पंजाब के भारतीय राजाओं को बिना अच्छी सेना और योग्य सेनापति के हटाया नहीं जा सकता। भारतीय राजा पोरस को धोखा देकर हत्या कर दी गई। यह कार्य यहाँ पर टिके यूनानी अफ़सर यूडेमोस ने किया। बाद में ३१७ ई०पू० में यह अफ़सर यूनान बुला लिया गया। इस प्रकार यवनों द्वारा भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का पहला प्रयास असफल हो गया।

सिकन्दर-महान् के आक्रमण का स्थायी परिणाम यह हुआ कि उत्तरापथ में कुछ यवन-बस्तियाँ अवश्य बस गई, जो निम्न थीं—

१. *Inv Alex.*, p. 270.
२. देखिये बरी-कृत, *History of Greece for Beginners*, pp. 428-29.

१. क़ाबुल के क्षेत्र में सिकन्दरिया[1] शहर बस गया।

२. झेलम के पूर्वी तट पर बूकेफल नाम की बस्ती बस गई।

३. सिकन्दर व पोरस के बीच हुए युद्ध के स्थान पर निकाइया नामक बस्ती बसी।

४ सोद्रई और मसनोई के उत्तर-पूर्व में चिनाब और सिंधु के संगम के समीप सिकन्दरिया नाम की एक बस्ती और बसी।

५ सिन्ध तथा पंजाब की अन्य नदियों के संगम के नीचे सोग्डियन अलेक्ज़ेन्ड्रिया[2] की बस्ती बसी।

सम्राट् अशोक ने भी अपने साम्राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भाग में यवनों का अस्तित्व माना और (यवनराज तुषास्फ़ जैसे) कुछ यवनों को उसने ऊँचे पदों[3] पर भी नियुक्त किया। बूकेफल-सिकन्दरिया ने बाद में तरक़्क़ी की, ऐसा उल्लेख मिलता है। महावंश[4] में एक अलेक्ज़ेड्रिया (अलसन्द) की चर्चा आई है।

सिकन्दर के हमले का एक अप्रकट परिणाम भी हुआ। जिस प्रकार डैनिश आक्रमण से नार्थम्ब्रिया और मर्सिया की स्वतन्त्रता ख़त्म हुई और वेसेक्स के नेतृत्व में इंगलैण्ड संगठित हुआ, उसी प्रकार सिकन्दर के आक्रमण से उत्तरी-पश्चिमी भारत की छोटी-छोटी रियासतें भी समाप्त हो गईं, और इससे भारतीय एकता को काफ़ी बल मिला। पूर्वी भारत में यदि उग्रसेन महापद्म मगध की गद्दी पर चन्द्रगुप्त मौर्य का अग्रज रहा तो उत्तर-पश्चिमी भारत में सिकन्दर स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का अग्रज शासक।

१. टार्न (*The Greeks in Bactria and India* 1st. ed., 462) के अनुसार सिकन्दरिया नगर पंजषिर-घोरबंद के पश्चिमी तट पर था जिसके सामने पूर्वी तट पर 'कपिशा' बसी थी। आजकल इसका आधुनिक नाम 'बेग्राम' है।

२. *Inv. Alex.*, p. 293, 354; बरी, *History of Greece for Beginners*, p. 433; *Camb. Hist. Ind.*, I, 376 f.

३. तुषास्फ़ की राष्ट्रीयता एवं महत्त्व के लिये 'यवन' शब्द देखिये (राय चौधरी, *Early History of the Vaishnava Sect*, द्वितीय संस्करण, p. 28f. 314)।

४. गेगर का अनुवाद, p. 194.

७ | मौर्य-साम्राज्य : दिग्विजय का युग

१. चन्द्रगुप्त मौर्य

म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धु भृत्यश्चिरमवतु महीम् पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।

—मुद्राराक्षस

३२६ ईसापूर्व में मकदूनिया का राजा सिकन्दर-महान् पंजाब के छोटे-छोटे भारतीय राज्यों पर आक्रमण करके उन पर छा गया। मध्यदेश के राजाओं को भी धमकी मिल चुकी थी। मगध के राजा औग्रसैन्य (Agrammes) को इस समय आर्मीनियस और चार्ल्स मार्टेल की तरह ही संकट का सामना करना पड़ रहा था। समूचा भारत यूनान का ही एक हिस्सा बना लिया जाय या नहीं इस प्रश्न पर सिर्फ़ सिकन्दर के निर्णय भर की देर थी।

औग्रसैन्य का सौभाग्य था कि वह सिकन्दर के क़त्ले-आम से बच गया। किन्तु, यह सन्देहजनक था कि मौक़ा आ पड़ने पर भी औग्रसैन्य में आर्मीनियस या चार्ल्स मार्टेल का पार्ट अदा कर सकने की क्षमता है या नहीं, अथवा वह ऐसा करना पसन्द भी करेगा या नहीं। किन्तु, इसी समय एक अन्य भारतीय योद्धा भी मौजूद था जो किसी और धातु का बना था। यह योद्धा चन्द्रगुप्त था। इसे प्राचीन लेखकों ने 'सान्ड्रोकोप्टोस' का भी नाम दिया है। इतिहासकार जस्टिन[१] ने चन्द्रगुप्त के उत्थान की चर्चा इस प्रकार की है—

सिकन्दर-महान् की मृत्यु के बाद भारत ने एक बार पुनः करवट बदली, ग़ुलामी का जुआँ उतार फेंका तथा अपने गवर्नरों की हत्या कर डाली। इस स्वतन्त्रता-संग्राम का सूत्रधार सान्ड्रोकोप्टोस ही था। यद्यपि यह व्यक्ति एक निम्न

---

१ देखिये वॉटसन का अनुवाद, p. 142, तनिक संशोधन के साथ।

कुल में ही पैदा हुआ था तो भी देवी प्रेरणावश सिंहासनारूढ़ होने की महत्त्वाकांक्षा रखता था। एक बार सान्ड्रोकोप्टोस (चन्द्रगुप्त) की स्पष्टवादिता से सिकन्दर[1] नाराज हो गया और उसने चन्द्रगुप्त के वध किये जाने का आदेश दे दिया। पर, अपने पैरों की फ़ुर्ती की बदौलत चन्द्रगुप्त बच गया। एक बार चन्द्रगुप्त कहीं थका हुआ सो रहा था और उसका शरीर पसीने से लथपथ था कि एक दीर्घकार्य सिंह आकर उसके शरीर को चाटने लगा। ज्यों ही चन्द्रगुप्त की निद्रा टूटी, सिंह धीरे-धीरे टहलता हुआ एक ओर चला गया। इस विलक्षण कौतुक से भी प्रेरित होकर चन्द्रगुप्त ने सिंहासनारूढ़ होने की आकांक्षा मन में पाली। वह कुछ दस्यु-गिरोहों[2] के संसर्ग में आया। उसने भारतीय नागरिकों से अपनी सत्ता[3] स्वीकार करने का आग्रह किया। एक बार चन्द्रगुप्त सिकन्दर के सेनापतियों से युद्ध करने जा रहा था कि एकाएक एक जंगली हाथी उसके सामने आ गया। उसने बड़ी सरलता व विनम्रता से चन्द्रगुप्त को अपनी पीठ पर बिठाल लिया। फिर क्या? युद्ध में उसी हाथी ने चन्द्रगुप्त का मार्गदर्शन किया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त उस समय सिंहासनारूढ़ हुआ जबकि सिकन्दर का सेनापति सेल्युकस अपनी भावी महानता की नींव डाल रहा था।

---

१. कुछ आधुनिक विद्वान् अलेक्जेंड्रम के स्थान पर 'नन्दरम' (नन्द) पढ़ते हैं। आधुनिक विद्वानों के द्वारा इस प्रकार अर्थ किये जाने से विद्यार्थियों को बड़ी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि वे वास्तविक तथ्यों तक नहीं पहुँच पाते, और इस प्रकार चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन को और भी जटिल बना देते हैं (*Indian Cultrue*, Vol. II, No. 3, p. 558; 'साहस के साथ बोलने के लिये' देखिये Grote, XII, 141; क्लीटस का केस, तथा p. 147 ff. कैलिस्थनीज़ का केस)।

२. जस्टिन ने जिस मूल स्रोत से इसे लिया है, उसके अर्थ 'किराये के सैनिक' तथा 'दस्यु' दोनों ही हैं, जैसा कि हेमचन्द्र ने परिशिष्टपर्वन् (VIII, 253-54) में लिखा है। प्रथम अर्थ ही उचित मालूम होता है—

धात्वादोपार्जितेन द्रविणेन खणिप्रसूः
चक्रे परयादि सामग्रिं नन्दमुच्छेत्तुमुद्यतः।

अर्थात्, भूगर्भ से प्राप्त धन के द्वारा चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिये सेना एकत्र की, जिससे कि वह नन्द-राज्य का विनाश कर सके।

३. हल्ट्ज ने इसका जो अर्थ स्वीकार किया है, वह यह है कि उसने सरकार को पलट देने के लिये 'लोगों को उकसाया।'

उपर्युक्त अंश के महत्त्वपूर्ण अंग छिन्न-भिन्न हो गये हैं, पर यह इतना तो सिद्ध करता ही है कि चन्द्रगुप्त राजघराने का राजकुमार तो नहीं ही था। फिर भी, उसने अपने को सिकन्दर की दासता में पड़े लोगों का सम्राट् बना लिया। सिकन्दर की मृत्यु के बाद चन्द्रगुप्त ने उसके सेनापतियों को हराया। इस प्रकार भारत की दासता का बन्धन टूटा और झेलम के तट की पराजय विजय में बदल गई।[1]

चन्द्रगुप्त के पूर्वजों के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। हिन्दू-ग्रन्थों में चन्द्रगुप्त को मगध के नन्द-वंश[2] से ही सम्बन्धित बताया गया है। अभी तक प्राप्त मध्यकालीन शिलालेखों के अनुसार मौर्यवंश सूर्यवंशियों से संबन्धित था।[3] सूर्यवंशियों के एक राजकुमार मान्धातृ से मौर्यवंश का उद्भव हुआ। राजपूताना गजेटियर[4] में मोरिस (मौर्यों) को राजपूत-वंश का नाम दिया गया है। जैन-ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन[5] में कहा गया है कि चन्द्रगुप्त मयूर-पोषकों[6] के गाँव

---

१. चन्द्रगुप्त तथा जिन लोगों ने उसका साथ दिया, उन्होंने यूनानियों के विरुद्ध सर्वप्रथम विद्रोह सिन्ध में आरम्भ किया। ३२१ ई० पू० के पहले ही वहाँ के यूनानी क्षत्रप हट गये। पश्चिमी तथा मध्य पंजाब तथा ३२१ ई०पू० में हुए त्रिपरादेसोस-सन्धि के अनुसार आसपास की भूमि पर आम्भी तथा पुरु का शासन था।

२. मुद्राराक्षस (Act II, श्लोक ६) में उन्हें न केवल मौर्यपुत्र, वरन् नन्दनवय (Act IV) भी कहा है। क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव ने पूर्वनन्द-सुत कहा है, अर्थात् वे वास्तविक नन्द (योगनन्द के नहीं) के पुत्र थे। विष्णु पुराण के आलोचक (IV, 24—विलसन, IX, 187) ने कहा है कि चन्द्रगुप्त, नन्द तथा उसकी पत्नी मुरा का पुत्र था, अतः वह और उसके उत्तराधिकारी मौर्य कहलाये। मुद्राराक्षस के आलोचक धुन्धिराज ने बताया कि वह मौर्य [नन्द सर्वार्थसिद्धि तथा वृषल (शूद्र) की कन्या मुरा] का सबसे ज्येष्ठ पुत्र था।

३. देखिये *Ep. Ind.*, II, 222; महावंशटीका के अनुसार मौर्यों का सम्बन्ध शाक्यों से था जो आदित्य (सूर्य) के वंशज थे (देखिये अवदान-कल्पलता, संख्या ५६)।

४. III A, मेवाड़ रेजीडेन्सी मेजर के० डी० अर्सकीन द्वारा संकलित, p. 14.

५. P. 56; VIII, 229 f.

६. बौद्ध-जनश्रुति में भी मोरिय (मौर्य) तथा मोर या मयूर में कुछ

के मुखिया की पुत्री से उत्पन्न हुआ था। महावंश[1] के अनुसार चन्द्रगुप्त उस क्षत्रिय-वंश का था, जो बाद में मौर्य कहलाने लगा। दिव्यावदान[2] में चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार ने अपने को 'क्षत्रिय-मूर्धाभिषिक्त' घोषित किया है। उसी ग्रन्थ[3] में बिन्दुसार के पुत्र अशोक ने भी अपने को क्षत्रिय कहा है। महापरिनिब्बान सुत्त[4] में मौर्यों को पिप्पलिवन का शासक और क्षत्रिय-वंश माना गया है। चूँकि महापरिनिब्बान सुत्त सबसे प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थ है। इसलिए बाद के ग्रन्थों की अपेक्षा इसकी सामग्री पर अधिक भरोसा किया जा सकता है। इस प्रकार यह निश्चित हो गया कि चन्द्रगुप्त क्षत्रिय-वंश (मौर्य) का ही था।

छठवी शताब्दी ईसापूर्व में मौर्य लोग पिप्पलिवन गणतन्त्र राज्य के शासक थे। यह राज्य नेपाल की तराई के रुम्मिनिदेई और गोरखपुर के कसिया के बीच फैला हुआ था। पूर्वी भारत के अन्य राज्यों की तरह यह राज्य भी मगध के साम्राज्य में विलीन हो गया होगा। प्राचीन ग्रन्थ इस प्रश्न पर सहमत हैं कि चौथी शताब्दी ईसापूर्व में छोटे राज्यों की संख्या घट गई थी और चन्द्रगुप्त मयूर-पोषकों के वंश का था। ये मयूर-पोषक विन्ध्य-वनों के शिकारी या पशुपालक भी थे। शेर तथा हाथी से हुई चन्द्रगुप्त की लड़ाई की कहानी से चन्द्रगुप्त की जन्मभूमि के वातावरण की एक झलक मिलती है। औग्रसैन्य (Agrammes) के बदनाम शासन-काल में, जबकि उसकी प्रजा उससे असन्तुष्ट थी, चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में मौर्यवंश काफ़ी लोकप्रिय हुआ। उस समय ये लोग कहीं के शासक नहीं, वरन् मगध की ही प्रजा थे। इसलिए यदि इतिहासकार जस्टिन चन्द्रगुप्त को छोटे परिवार का कहता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। प्लूटार्क

सम्बन्ध दिखाई पड़ता है (टर्नर, महावंश, xxxix f.) एलियन (Aelian) कहते हैं कि पाटलिपुत्र के उद्यानों में पालतू मयूर रखे जाते थे। प्रो० मार्शल के अनुसार साँची के पूर्वी द्वार तथा अन्य भवनों को सजाने के लिये मोरों की तस्वीर बनाई गई थी (*A Guide to Sanchi*, p. 44,62)। फ़ूचर (*Monuments of Sanchi*, 231) का मत है कि ये पक्षी मौर्य-वंश के प्रतीक-चिह्न नहीं हैं। उसके अनुसार मोर जातक से ही ये अधिक सम्बन्धित हैं।

१. गेगर का अनुवाद, p. 27—'मौर्यनाम् क्षत्रियनाम् वंशे जात।

२. कॉवेल तथा नील का संस्करण, p. 370.

३. P. 409.

४. *SBE*, XI, p. 134-35.

और जस्टिन दोनों लिखते हैं कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर-महान् से भेंट की थी। प्लूटार्क[1] ने लिखा है—"एन्ड्रोकोटोस (चन्द्रगुप्त) ने सिकन्दर से मुलाक़ात की। उस समय वह बिल्कुल किशोर ही था। उसने सिकन्दर से कहा कि वह बड़ी आसानी से समूचे भारतवर्ष पर कब्ज़ा कर सकता है, क्योंकि यहाँ के राजा से उसकी प्रजा उसके दुर्गुणों के कारण नफ़रत करती है।" उक्त अंश से यह अनुमान लगाना ग़लत नहीं होगा कि चन्द्रगुप्त ने मगध के अत्याचार से भरे शासन को समाप्त करने के लिए सिकन्दर से अवश्य ही भेंट की होगी। यहाँ चन्द्रगुप्त के इस कार्य की तुलना राणा संग्रामसिंह से कर सकते हैं, जिसने इब्राहीम लोदी[2] की हुकूमत को ख़त्म करने के लिए बाबर को निमंत्रित किया था। किन्तु, चन्द्रगुप्त को सिकन्दर, औग्रसैन्य (Agrammes) जैसा ही सख्त शासक लगा, क्योंकि उसने भारत के इस किशोर सेनानी का वध किये जाने की आज्ञा में देर नहीं लगाई। बाद में चन्द्रगुप्त ने भारत को यूनान तथा भारत के अत्याचारियों (सिकन्दर और औग्रसैन्य) से मुक्त करने का निश्चय किया। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला के एक ब्राह्मण के पुत्र कौटिल्य की (जिसे चाणक्य या विष्णुगुप्त भी कहते हैं) सहायता से नदवंश के बदनाम राजा को गद्दी से उतार ही दिया। चन्द्रगुप्त तथा नंदवंश के अन्तिम राजा के बीच चला संघर्ष मिलिन्द-पञ्ह, मुद्राराक्षस, महावशटीका तथा जैन-परिशिष्टपर्वन् में मिलता है। मिलिन्द-पञ्ह[3] में लिखा है कि उस समय नन्द की सेना का कमाण्डर भद्दसाल था। काफ़ी खून-खच्चर के बाद नन्द की सेना परास्त हुई। मिलिन्दपञ्ह में इस लड़ाई का वर्णन बड़े ही अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से मिलता है।

सिंहासनारूढ होने के कुछ समय बाद चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर के सेनापतियों[4] से युद्ध छेड़ा और सबको पराजित कर दिया।

---

१. *Life of Alexander*, lxii.

२. संग्रामसिंह के व्यवहार के लिये देखिये टॉड-कृत 'राजस्थान', Vol. I, p. 240, n (२) A. S. Beveridge कृत 'बाबरनामा' (अंग्रेजी में), Vol. II, p. 529.

३. *SBE*, Vol. XXXVI, p. 147.

४. देखिए, स्मिथ-कृत 'अशोक', तृतीय संस्करण, p. 14 n; सत्ता ग्रहण करने तथा नायकों से युद्ध करने की वास्तविक तिथियों के लिए देखिये *Indian Culture*, II, No. 3, pp. 559 ff; and *Age of the Nandas Mauryas*, p. 137.

मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त को नंदवंश के उन्मूलन तथा पंजाब की मुक्ति का ही श्रेय नहीं मिला; बल्कि प्लूटार्क[1] ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने ६ लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। जस्टिन[2] के कथनानुसार भी समूचा भारत चन्द्रगुप्त के कब्ज़े में था। डॉ० एस० कृष्णस्वामी आयंगर ने एक जगह लिखा है कि उन्हें तमिल-ग्रन्थों में यह उल्लेख मिला है कि मौर्य लोग एक बड़ी सेना लेकर तिनवेली ज़िले की पोडियिल पहाड़ी तक पहुँचे। परनार या परमकोरनार तथा कल्लिल आत्तिरायनार भी उक्त लेखक के मत का समर्थन करते हैं। चन्द्रगुप्त की अग्रिम सेना में कोशर[3] कह जाने वाले लड़ाकू लोग रखे जाते थे। आक्रमणकारी एलिलमलाई से होते हुए कोंकण तक गये थे (यह स्थान कन्ननोर से १६ मील दूर है)। इसके बाद कोंगु (कोयम्बटूर) की ओर चले गये। अन्त में मौर्य-सेना पोडियिल पहाड़ो (मलय) की ओर मुड़ गई। दुर्भाग्यवश उपर्युक्त उल्लेख में मौर्य-सेना के सेनापति का नाम नहीं दिया गया। इन उल्लेखों में 'वम्ब-मोरियर'[4] या मौर्य शब्द मिलता है जिसका आशय चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके साथी हैं।[5]

१. *Inv. Alex.*, lxii.

२. Chap. II., Cf. *JRAS*, 1924, 666.

३. 'कोशर' के विषय में देखिए *Indian Culture*, I, p. 97 ff; देखिये कोशकार, *ANM*, 351 ff.

४. *Beginnings of South Indian History*, p. 89; देखिये, मुद्राराक्षस, Act. 4.

५. *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 596 में बार्नेट कहते हैं कि 'वम्ब-मोरियर' अथवा 'वर्णशंकर मौर्य' सम्भवतः कोंकणी मौर्य की एक शाखा थे। परन्तु, ऐसा कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं, जिससे सिद्ध हो सके कि कोंकण के मौर्य तमिल प्रदेश के दक्षिण में गये थे। अन्य सम्मतियों के लिये देखिये *JRAS*, 1923, pp. 93-96. कुछ तमिल विद्वानों का मत है कि मौर्यों को 'तमिलाकम' में घुसने नहीं दिया गया और वे वेंकट पर्वत तक ही पहुँच पाये (*IHQ*, 1928, p. 145)। वे कोशर से सम्बद्ध डॉ० आयङ्गर के कथन को भी अस्वीकार करते हैं। परन्तु, चन्द्रगुप्त की विजय-पताका सुदूर दक्षिण में हीरे-मोतियों से भरे देश पांड्य राज्य तक पहुँच चुकी थी, इसकी पुष्टि 'मुद्राराक्षस', अंक ३, श्लोक १६ से होती है। इससे अनुमान होता है कि मौर्यों की सत्ता हिमालय पर्वत पर गंगा से लेकर दक्षिण सागर-तट तक फैली थी। प्रो० एन० शास्त्री तमिल विवरण की आलोचना करते हैं (*ANM*, 253 f)।

मैसूर में प्राप्त कुछ शिलालेखों के अनुसार उत्तरी मैसूर में कभी **मौर्यों** का **शासन था**। यह उल्लेख भी मिला है कि शिकारपुर तालुक के नागर-खण्ड की **रक्षा मौर्यों के ज़िम्मे** थी। यह क्षत्रिय-परम्पराओं[1] का पोषक **क्षेत्र भी था**। **लेकिन, चूँकि यह** उल्लेख १४वी शताब्दी का है, इसलिए इस पर अधिक विश्वास **नहीं किया** जा सकता; किन्तु जब प्लूटार्क, जस्टिन, मामुलनार तथा मैसूर के **शिलालेखों** को एक साथ रखकर पढ़ा जाता है तो स्पष्ट लगता है कि प्रथम मौर्य-**सम्राट्** ने विन्ध्य के पार के भारत के काफ़ी हिस्से को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

चन्द्रगुप्त की दक्षिण भारत-विजय के बारे में हम चाहे जो कुछ सोचें, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि चन्द्रगुप्त ने पश्चिम में सौराष्ट्र तक को मगध-साम्राज्य में मिला लिया था। महाक्षत्रप रुद्रदमन के जूनागढ़-शिलालेख में इस बात का उल्लेख है कि चन्द्रगुप्त के 'राष्ट्रीय' (हाई कमिश्नर) पुष्यगुप्त (वैश्य) ने प्रसिद्ध सुदर्शन झील[2] का निर्माण कराया था।

तक्षशिला से प्राप्त एक शिलालेख का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। इस शिलालेख में अशोक मौर्य का सर्वप्रसिद्ध विशेषण 'प्रियदर्शन' लिखा हुआ मिला है। लेकिन, यह भी याद रखना उचित ही होगा कि मुद्राराक्षस में चंदमिरि या चन्द्रगुप्त स्वयं[3] के लिए भी 'पियदंसन' शब्द का प्रयोग हुआ है। आगे चलकर अशोक के आठवें शिलालेख (Rock Edict) में अशोक तथा उसके पूर्वजों के लिए समान रूप से 'देवानांपिय' शब्द आया है। इसलिए यह निष्कर्ष निकालना ग़लत न होगा कि अपने सुप्रसिद्ध पौत्र की तरह चन्द्रगुप्त को भी 'देवानांपिय पियदसी' (या प्रियदर्शन) कहा जाता रहा होगा। इसलिए यह ठीक नहीं है कि जहाँ कहीं भी 'प्रियदर्शन' शब्द मिले तथा अन्य तथ्य न दिये गये हों, वहाँ हम उस शब्द को अशोक के नाम के साथ जोड़ लें।

---

१. देखिये राइस-कृत *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 10. फ़्लीट जैन-परम्परा को स्वीकार नहीं करते (*Ind. Int.*, 1892, 156 ff)। देखिए, *JRAS*, 1911,814-817.

२. कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चन्द्रगुप्त के किसी मन्त्री का श्लोक दिया गया है, जिसके आधार पर कहा जाता है कि सम्भवतः उसका राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में सागर-तट तक फैला था।

३. देखिये, Act. 6.

सेल्युकस-युद्ध

इतिहासकार जस्टिन[1] के लेखों से हम जान चुके हैं कि जिस समय चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासनारूढ़ हुआ, उस समय सिकन्दर-महान् का सेनापति सेल्युकस भी अपनी महानता की नींव डाल रहा था। सेल्युकस के पिता का नाम एण्टिओकोस तथा माँ का नाम लियोडाइक था। सेल्युकस का पिता सिकन्दर के पिता और मैसीडन के राजा फ़िलिप का सेनापति था। सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों के बीच मैसीडोनियन साम्राज्य का विभाजन हो गया।

उस समय भी सेल्युकस को पूर्व में कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसने सबसे पहले बेबीलोन[2] पर अधिकार किया। इस सफलता के बाद उसकी शक्ति और बढ़ी तथा उसने बैक्ट्रियनों पर विजय पाई। उसके बाद वह भारत की ओर भी बढ़ा। अप्पिआनूस[3] के कथनानुसार सेल्युकस ने सिन्धु पार करके भारत के तत्कालीन सम्राट् चन्द्रगुप्त से युद्ध छेड़ा। बाद में चन्द्रगुप्त और सेल्युकस में मित्रता ही नहीं हो गई, वरन् उनके बीच वैवाहिक सम्बन्ध[4] भी स्थापित हो गया। जस्टिन के कथनानुसार चन्द्रगुप्त से सन्धि करके और अपने पूर्वी राज्य को शान्त करके सेल्युकस एण्टीगोनोस से युद्ध (३०१ ई०पू०) करने चला गया। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त ने सेल्युकस को ५०० हाथी दिये। इतिहासकार स्ट्रैबो[5] ने भी कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किये हैं—

"उन दिनों भारतीय सिन्धु नदी के आसपास रहते थे। यह भाग पहले ईरानी राज्य के अन्तर्गत था। सिकन्दर ने इस भूभाग की ईरानी अधीनता समाप्त करके उसे अपने राज्य के सूबों के रूप में संगठित किया। किन्तु, सेण्ड्रो-

१. वॉटसन का अनुवाद, p. 143.

२. सेल्युकस को बेबीलन का क्षत्रप सर्वप्रथम ३२१ ई०पू० में, त्रिपरादेसोस-सन्धि के अनुसार, फिर ३१२ ई०पू० में जब से उसका सम्वत् चला, मिला था; और ३०६ ई०पू० में उसने राजा की उपाधि धारण की (*Camb. Anc. Hist.* VII, 161; *Camb. Hist. Ind.*, I, 433)।

३. *Syr.*, 55; *Ind. Ant.*, Vol. VI, p. 114; हल्ट्ज, xxxiv.

४. अप्पियानस स्पष्ट रूप से 'केदो' (वैवाहिक सम्बन्ध) का प्रयोग करता है जबकि स्ट्रैबो (XV) केवल संकेत करता है। 'विवाह के बाद वे देश मिले' से स्पष्ट है कि विवाह हुआ था।

५. H. & F., III, p. 125.

कोट्टुस (चन्द्रगुप्त) से वैवाहिक सम्बन्ध के फलस्वरूप सेल्युकस ने इन प्रान्तों को उसे दे दिया; और बदले में ५०० हाथी प्राप्त किये। इस प्रकार अब ऐरियाना (ईरान के अधीनस्थ) का अधिकांश भाग भारतीयों को मिल गया, जो उन्होंने यूनानियों से प्राप्त किया।

पुराने ग्रन्थकार हमें सेल्युकस और चन्द्रगुप्त की लड़ाई का कोई विशेष विवरण नहीं देते। वे केवल लड़ाई का परिणाम बताते है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आक्रमणकारी (सेल्युकस) आगे नहीं बढ़ सका और उसने चन्द्रगुप्त से हुई सन्धि को वैवाहिक सम्बन्ध से और अधिक पुष्ट कर लिया। अपनी 'अशोक'[२] नामक पुस्तक में डॉ॰ स्मिथ ने कहा है कि सीरियाई राजा ने चन्द्रगुप्त के साथ अपनी लड़की की शादी की थी, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। केवल वैवाहिक सम्बन्ध की बात का ही उल्लेख मिलता है। चन्द्रगुप्त को सिन्धु का जो समीपवर्ती भूभाग मिला है, उसे कह सकते है कि वर को दहेज में दिया गया होगा। ये प्रान्त पहले ईरानी साम्राज्य के अन्तर्गत थे, किन्तु टार्न ने इस तथ्य की उपेक्षा कर दी है। इसके बदले में मौर्य-सम्राट् ने बहुत थोड़ा ही (५०० हाथी) दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सीरिया के राजा ने चन्द्रगुप्त को चार प्रान्त ऐरिया, अरकोसिया, गदरोसिया तथा परोपनिसदई, अर्थात् हेरात, कन्दहार, मकरान और क़ाबुल दिये। टार्न तथा कुछ अन्य लेखकों ने इस पर सन्देह प्रकट किया है। अशोक के शिलालेखों से भी सिद्ध है कि क़ाबुल की घाटी मौर्य-साम्राज्य के ही अन्तर्गत थी। इन लेखों के अनुसार योन तथा गान्धार भी मौर्य-साम्राज्य के ही अंग थे। स्ट्रैबो ने भी लिखा है कि सेल्युकस ने सिन्धु नदी के समीपवर्ती भागों के अलावा भी बहुत बड़ा भूभाग चन्द्रगुप्त को दिया है।

मेगास्थनीज़

ग्रन्थकारों के अनुसार युद्ध के बाद सीरियाई राजा तथा भारतीय सम्राटों के सम्बन्ध बड़े ही मैत्रीपूर्ण रहे। एथेनेओस कहता है कि चन्द्रगुप्त ने सीरियाई राजा[३] के पास उपहार में कई कामोद्दीपक सामग्रियाँ भेजीं। सेल्युकस ने चन्द्रगुप्त

१. H. & F., III, p. 78; Tarn, *Greeks in Bactria and India*, p. 100.

२. तृतीय संस्करण, p. 15.

३. देखिए *Inv. Alex.*, p. 405; स्मिथ, *EHI*, चतुर्थ संस्करण, p. 153; चन्द्रगुप्त तथा सेल्युकस के बीच जो सम्बन्ध स्थापित हुआ उसका फल आगे

के दरबार में अपने एक राजदूत मेगास्थनीज़ को भेजा। एरियन[1] के अनुसार मेगास्थनीज़ अरकोशिया (सम्भवतः कन्धार) का ही था। वहाँ से उसे पाटलिपुत्र भेज दिया गया, जहाँ वह मौर्य-सम्राट् से प्रायः मिला करता था। मेगास्थनीज़ ने भारत का एक इतिहास भी लिखा। उसकी इतिहास की पुस्तक लापता हो गई, किन्तु उसके कुछ अंश जो इधर-उधर बिखरे मिले, उन्हें शावनबेक ने संकलित किया तथा मैक्रिन्डल ने उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। स्ट्रैबो, एरियन, डायोडोरस जैसे महान् इतिहासकार, मेगास्थनीज़ द्वारा लिखे इन फुटकर अंशों का प्रायः उद्धरण के रूप में प्रयोग करते हैं। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने लिखा है कि मेगास्थनीज़ में समीक्षा की बुद्धि कम थी, इसलिए उसके निष्कर्ष आलोचनात्मक नहीं थे। वह दूसरों से प्राप्त जानकारी पर निर्भर करके गुमराह हो जाता था। लेकिन, जो बातें उसने अपनी आँखों से देखीं, उनका वह सबसे सच्चा साक्षी बना है। रीज़ डेविड्स के अनुसार मेगास्थनीज़ ने पाटलिपुत्र के वर्णन में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश कर रखा है। रीज़ डेविड्स ने यह बात अपनी इंडिका के दसवें अध्याय में लिखी है।

पोलिमब्रोएथ भारत का सबसे बड़ा नगर था, और यह एरनबाओस[2] तथा गङ्गा के संगम पर था। एरनबाओस भारत की तीसरे नम्बर की नदी थी।...... मेगास्थनीज़ के कथनानुसार यह शहर साढ़े नौ मील (८० स्टेड) लम्बा तथा पौने दो मील (१५ स्टेड) चौड़ा था। नगर के चतुर्दिक् ६०६ फ़ुट चौड़ी तथा ३० क्यूबिक गहरी खाई थी। नगर की चहारदीवारी में ५७० बुर्ज और ६४ दरवाजे थे।[3]

मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत पाटलिपुत्र के अलावा भी कई बड़े नगर थे। एरियन कहता है कि उस समय नगरों की अधिकता से इनकी संख्या ठीक-ठीक नहीं

वालों को मिला। बिम्बिसार तथा अशोक के समय में पश्चिम की यूनानी शक्ति के साथ न केवल राजदूतों का आदान-प्रदान हुआ, वरन् यहाँ के राजाओं ने उत्सुकतापूर्वक यूनान के दार्शनिकों तथा शासकों की सहायता भी ली।

१. देखिये Chinnock द्वारा किया गया अनुवाद, p. 254.

२. एरनबाओस-हिरण्यवाह, अर्थात् शोण (हर्षचरित, पारब द्वारा सम्पादित, 1918, p. 19)। देखिये 'अनुशोणाम् पाटलिपुत्रम्' [पतञ्जलि, II, 1 (२)]। तमिल साहित्य में पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में देखिये *Aiyangar. Com. Vol.*, 355 ff.

३. देखिये पतञ्जलि, IV. 3. 2.

बताई जा सकती। जो नगर नदियों या समुद्र के तट पर होते थे, उनमें घर प्राय: लकड़ी के होते थे, क्योंकि यदि यहाँ घर ईंटों के बनाये जाते तो अधिक दिनों तक चल न पाते। इसका मुख्य कारण यह था कि जब नदियों में बाढ़ आती थी तो पानी मैदानों में भी फैल जाता था। लेकिन, महत्त्वपूर्ण स्थानों के नगर काफ़ी ऊँचाई पर ईंट और गारे से बनाये जाते थे। राजधानी के अलवा तक्षशिला, उज्जैन, कौशाम्बी तथा पुण्ड्रनगर[1] चन्द्रगुप्त-काल के सबसे महत्त्वपूर्ण नगर थे।

इतिहासकार एलियन चन्द्रगुप्त के राजमहल का विवरण देते हुए कहता है—'भारतीय(मौर्य-साम्राज्य के) राजमहल[2] मे देश भर के शासक निवास करते है। इसके अलावा भी कई बाते हैं, जिनसे राजमहल की सराहना करने को जी चाहता है। इसकी शान-शौक़त का मुक़ाबला न तो 'सुस' और न 'एकबतन' ही कर सकते है। इसके अलावा भी अनेक आर्यमूलक बातें हैं। उपवनों में पालतू मोर और तोता कल्लोल करते रहते हैं। यहाँ पर सर्वत्र घने-घने कुंज तथा हरे-भरे मैदान हैं। वृक्षों की डाले एक दूसरे से गुँथी हुई-सी लगती हैं। कुछ वृक्ष मूलत: इसी देश के है और कुछ बाहर से लाये गये हैं। इनके समन्वय से समूचे भूभाग का सौन्दर्य बढ़ जाता है। तोतों को देखकर तो ऐसा लगता है जैसे कि यह देश उन्ही का है। वे राजाओं के इर्द-गिर्द मँडराते और उड़ानें भरते रहते हैं। यद्यपि यहाँ ये तोते बहुत अधिक होते हैं, तो भी कोई भी भारतीय इनका मांस नही खाता। शिकारी लोग भी इनका सम्मान करते हैं, क्योंकि यही एक ऐसा पक्षी होता है जो मनुष्य की बोली का अनुकरण कर सकता है। राजमहल के मैदानों में

१. पुण्ड्रनगर बंगाल के बोगरा जिले में महास्थानगढ़ का नाम था। मौर्य-काल में ब्राह्मी-लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। यह लेख महास्थान मे ही पाया गया है। पुण्डनागल, तथा यहाँ के कोष गण्डकों तथा काथनिकों से भरे थे, इसका उल्लेख मिलता है; तथा उसमें सद्वर्गिका जाति का भी उल्लेख है (बरुआ, *IHQ*, 1934, March, 57 ff; डी० आर० भण्डारकर, *Ep. Ind.*, April, 1931, 83ff; पी० सी० सेन, *IHQ*, 1933, 722ff)। डॉ० भण्डारकर सद्वर्गिका के स्थान पर उसे 'स (मृ) व (मृ) गीय' पढ़ते हैं। यदि यह लेख वास्तव में मौर्य-काल के प्रारम्भिक दिनों का है तो मुद्राओं का उल्लेख मजेदार है। डॉ० के० पी० जायसवाल के अनुसार मौर्य-काल की मुद्राओं में कुछ चिह्न है, जिनसे उन्हें पहचाना जा सकता है (*JRAS*, 1936, 437 ff)।

२. सुगांग महल में चन्द्रगुप्त को ठहरना प्रिय था (*JRAS*, 1923, 587)।

बड़े-बड़े सरोवर हैं, जिनमें बड़ी-बड़ी मछलियाँ पाली जाती हैं। इन तालाबों में केवल राजा के छोटे-छोटे बच्चे ही मछली मार सकते हैं बाक़ी लोग नहीं। राज-महल के ये नन्हे-नन्हे राजकुमार शान्त सरोवरों में मछली मारने तथा नौका-विहार[1] सीखने में बहुत प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

सम्भवतः मौर्य साम्राज्य का राजप्रासाद आजकल के गाँव कुम्रहार[2] के समीप था। डॉक्टर स्पूनर का कहना है कि मौर्य लोग जरथुस्त (Zoroastrians) थे। कुम्रहार गाँव के पास जो खुदाई हुई, उससे पता चला है कि मौर्यों का सिंहासन-कक्ष उसी ढाँचे का था, जिस ढाँचे का बादशाह डेरियस का। डॉक्टर स्मिथ के अनुसार मौर्य-कालीन इमारतों और ईरानी इमारतों की समानता संदिग्ध है। प्रोफ़ेसर चन्दा के अनुसार, किसी देश की भवन-निर्माण-कला उस जाति की कसौटी नहीं होती। विशेषज्ञों का कहना है कि बादशाह डेरियस की इमारतें पारसी ढंग की नहीं थीं। वे बेबीलोनियन डिज़ाइन की थीं तथा उन पर यूनान, मिस्र और एशिया माइनर की कला का भी प्रभाव था।

स्ट्रैबो[3] के अनुसार मौर्य-सम्राट् हमेशा राजप्रासाद के अन्दर महिला-पहरेदारों[4] के पहरे में रहता था (स्त्री गणैर्धन्विभिः-- अर्थशास्त्र से उद्धृत)। वह केवल चार अवसरों पर जनता के सामने आता था--युद्ध के समय, दरबार में न्यायाधीश के रूप में, बलिपूजा के समय, तथा शिकार खेलने के लिए जाते समय।

---

१. देखिये मैक्रिंडल का *Ancient India as Described in Classical Litt.*, pp. 141-12.

२. स्मिथ, *Oxford History of India*, 77.

३. देखिये हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, Vol. III, p. 106; स्मिथ, *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 123.

४. इसी लेखक के अनुसार स्त्रियों को उनके पिता से मोल ले लिया जाता था। परन्तु, मेगास्थनीज़ के अनुसार कोई भी भारतीय दासों को नहीं रखता था। इस सम्बन्ध में यह कथा भी उल्लेखनीय है कि बिम्बिसार ने अन्तियोको से प्रार्थना की थी कि वह उनके लिए एक प्राध्यापक ख़रीद कर भेज दे। (Monahan, *The Early History of Bengal*, pp. 146, 176, 179)।

चन्द्रगुप्त का शासन

चन्द्रगुप्त कोई बड़ा योद्धा या विजेता ही नहीं था, वरन् एक महान् प्रशासक भी था। चन्द्रगुप्त के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने उसके शासन-प्रबन्ध के बारे में काफ़ी विवरण दिया है। विद्वान् राजदूत द्वारा दिये गये विवरण की पुष्टि चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के शिलालेखों तथा उनके मंत्री कौटिल्य द्वारा लिखे गये अर्थशास्त्र से भी होती है। अर्थशास्त्र का अस्तित्व निश्चित रूप से बाण तथा जैनों के नन्दीसूत्र (सातवी शताब्दी) के पूर्व था। किन्तु उसके वर्त्तमान स्वरूप को देखते हुए सन्देह होता है कि यही अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त के समय में भी था अथवा नही। जहाँ तक चीनपट्ट (चीन का रेशम) के उल्लेख का प्रश्न है, वह हमारे संस्कृत-ग्रन्थों में मिलता है। लेकिन, मौर्य-काल के आरम्भ में चीन देश कल्पना से बाहर की वस्तु था। चीन का उल्लेख नागार्जुनिकुण्ड के पूर्व अनुपलब्ध था। यह भी उल्लेखनीय है कि मौर्य-काल में संस्कृत का व्यवहार राज-भाषा के रूप में होता था। गुप्त-काल के वर्णन में जहाँ सिक्कों और बाटों की चर्चा है; वहाँ बादशाह डैरियस का कोई उल्लेख नही मिलता। गुप्त-काल में लिखे गये जैन-ग्रन्थों में भी कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बारे में जो चर्चा आई है, वह भी उपर्युक्त दृष्टि से अनुकूल ही है। अर्थशास्त्र दूसरी शताब्दी से पूर्व[१] का ग्रन्थ है, इस सम्बन्ध में पहले ही प्रमाण दिये जा चुके हैं। वैसे, यद्यपि यह कुछ देर का ग्रन्थ है, पर विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सामग्री की पुष्टि करने में इसका प्रयोग वैसे ही किया जा सकता है जैसे कि रुद्रदमन के जूनागढ़-शिलालेखों का प्रयोग होता है।

देश की सरकार के दो मुख्य भाग होते थे—

१. राजा, और

२. महामात्र, अमात्य तथा सचिव।

राजा पूरे राज्य का प्रधान शासक होता था। यद्यपि वह मर्त्य या नाशवान् माना जाता था, किन्तु ईश्वर[२] से वरदान-प्राप्त तथा तथा उसका प्रियपात्र समझा जाता था। राजा राज्य के सभी भौतिक साधनो का अधिष्ठाता तथा साम्राज्य के समूचे भूभाग का स्वामी होने के कारण बड़ा ही सत्तासम्पन्न या शक्तिमान् होता था। लेकिन, उस समय कुछ प्राचीन नियम (पोराणा-पकिती) होते थे, जिनका सम्मान स्वेच्छाचारी से स्वेच्छाचारी राजा को भी करना पड़ता था; और वह करता था। जनता या प्रजा भी राज्य की महत्त्वपूर्ण इकाई (अंग) मानी

१. P. 9 f. *ante.*

२. देखिये, *ante*, 198n, 10.

जाती थी। प्रजा-रूपी शिशु के पालन के लिए राजा उत्तरदायी होता था और राजा द्वारा देश की सरकार के सुसंचालन से ही यह कर्त्तव्य पूरा माना जाता था। जहाँ तक स्थानीय शासन-व्यवस्था का प्रश्न है, उसमें कुछ हद तक विकेन्द्रीकरण भी था। समूचे साम्राज्य की राजधानी तथा प्रान्तों के प्रमुख केन्द्रों में कुछ मंत्रियों की एक परिषद् रहती थी जिससे समय-समय पर विचार-विमर्श होता रहता था। संकट-काल में इन लोगों से सलाह-मशविरा अनिवार्य हो जाता था; तथा इन मंत्रियों का अधिकार भी था कि इनसे सलाह ली जाय। यों राजा के अधिकार व्यापक होते थे--उसके सैनिक, न्यायिक, वैधानिक तथा कार्यकारी (military, judicial, legislative and executive) कर्त्तव्य होते थे। हम पहले ही देख चुके हैं कि युद्ध[1] के समय भी राजा अपने राजमहल से बाहर निकलता था। वह अपने प्रधान सेनापति[2] के साथ सामरिक दाँव-पेंच पर भी विचार-विमर्श करता था।

राजा अपने दरबार के समय न्यायिक कर्त्तव्यों का भी पालन करता था, और इसमें किसी तरह का कोई व्यवधान पसंद नहीं करता था। शरीर में खुजलाहट होने पर चार अनुचर[3] उसके शरीर को लकड़ी के टुकड़ों से खुजलाते थे, और वह अपना काम करता जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[4] में कहा गया है कि "जब राजा दरबार में बैठा हो तो प्रजा से बाहर प्रतीक्षा नहीं करवानी चाहिये, क्योंकि जब राजा प्रजा के लिए दुर्लभ हो जाता है और अपना काम अपने मातहत अधिकारियों के जिम्मे छोड़ देता है तो प्रजा की आस्था के समाप्त हो जाने तथा राजा के शत्रुओं के षड्यन्त्र-जाल में फँस जाने की आशंका पैदा हो जाती है। इसलिए देवताओं, प्राचीन विचारवालों, वेदों के विद्वान् ब्राह्मणों, तीर्थस्थानों, नाबालिग़ों, वृद्धों, पीड़ितों, असहायों तथा स्त्रियों से सम्बन्धित जो कर्त्तव्य हों, उन्हें राजा स्वयं पूरा करे; और सभी कुछ कार्य की अनिवार्यता तथा वरीयता के आधार पर करे।"

---

१. देखिये, स्ट्रैबो, XV, i; कौटिल्य, अर्थशास्त्र, X.

२. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, p. 38. मौर्य-काल के अंतिम दिनों में हमने देखा कि सेनापति राजा पर छा गया था, तथा सेना के समस्त अधिकार अपने हाथ में केन्द्रित कर लिये थे।

३. H. & F., स्ट्रैबो, III, p. 106-107.

४. शाम शास्त्री द्वारा अनुवाद, p. 43.

जहाँ तक राजा के संवैधानिक कर्त्तव्यों का प्रश्न है, कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] में राजा को धर्म-प्रवर्तक कहा गया है। राजशासन' को शासन-व्यवस्था (क़ानून) का स्रोत माना गया है। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के शिलालेखों को 'राजशासन' के उद्धरणों की संज्ञा दी जा सकती है।

राजा के कार्यकारी (executive) कर्त्तव्यों की चर्चा में विद्वानों ने संतरियों, हिसाब-किताब व आय-व्यय की जाँच करने वालों, मंत्रियों, पुरोहितों व निरीक्षकों की नियुक्ति को राजा का ही कार्य कहा गया है। राजा गुप्तचरों द्वारा प्राप्त शासन-सम्बन्धी रहस्यों पर मंत्रि-परिषद् से पत्र-व्यवहार करता था। इसके अतिरिक्त विभिन्न देश के राजदूतों का अपने देश में राजा ही स्वागत करता था।[2]

राजा ही राज्य की नीति के सिद्धान्त निर्धारित करता और अपने अधिकारियों को राजाज्ञाओं द्वारा समय-समय पर निर्देश दिया करता था। प्रजा के नाम भी उसकी राजाज्ञाएं जारी होती थी। चन्द्रगुप्त के समय में गुप्तचरों के माध्यम से दूरस्थ शासन कर रहे अधिकारियों पर सम्राट् का पूरा नियन्त्रण रहता था। अशोक के समय में पर्यटक न्यायाधीशों से इस कार्य में सहायता ली जाती थी। संचार-व्यवस्था के संचालन के हेतु सडके थी। सामरिक महत्त्व की जगहों पर सेना की टुकड़ियाँ तैनात रहा करती थी।

कौटिल्य का दृढ़ मत था कि राजत्व (प्रभुता) केवल सचिवों की सहायता[3] से ही संभव है। सिर्फ़ एक पहिया कभी नहीं चल सकती। इसलिए, राजा को सचिव की नियुक्ति करना चाहिये, तथा उनसे मन्त्रणा लेनी चाहिये। ये सचिव तथा अमात्य कदाचित् वही लोग हैं, जिन्हें मेगास्थनीज ने 'सातवी जाति' की संज्ञा दी है। ये लोग प्रजा-सम्बन्धी राजा के निर्णयों में राजा की सहायता करते थे। यद्यपि इस वर्ग के लोग बहुत थोड़े ही होते थे, किन्तु व्यावहारिक तथा न्यायिक बुद्धि में वे सबसे बढ़कर होते थे।[4]

१. Bk. III, Chap. I.

२. देखिये, कौटिल्य, Bk. I, Chap. xvi, xvii; Bk. VIII, Chap. I. देखिये अशोक-शिलालेख, No. III; V (उच्च अधिकारियों की नियुक्ति), VI (परिषद् से सम्बन्ध तथा पतिवेदक से सूचना प्राप्त करना) तथा XIII (विदेश के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करना)।

३. देखिये मनु, VII, 55.

४. Chinnock, *Arrian*, p. 413.

सचिवों तथा मन्त्रियों में महामन्त्री लोग (High Ministers) उच्च माने जाते थे। अशोक के शिलालेखों से शायद इन्हें महामात्र कहा गया है तथा डायोडोरस[1] ने इन्हें राजा का सलाहकार बताया है।

इन लोगों का चयन अमात्य-वर्ग के बीच से किया जाता था। इनके चरित्र[2] की जाँच भी की जाती थी कि ये लोग किसी लालच में तो नहीं फसेंगे। इस वर्ग को सबसे ऊँचा वेतन दिया जाता था। इनका वार्षिक वेतन[3] ४८ हज़ार पण होता था (जो आजकल के हिसाब से लगभग ४ हज़ार रुपये प्रति मास होगा)। विभिन्न विभागों में काम करने वाले अमात्यों[4] के चरित्र की जाँच करने में उपर्युक्त महामंत्री लोग सहायता करते थे। हर प्रकार की प्रशासकीय कार्यवाही पर पहले तीन या चार मंत्रियों[5] से विचार-विमर्श कर लिया जाता था। संकट के समय (आत्यायिक कार्य के लिए) मंत्रियों के साथ-साथ पूरी मंत्रि परिषद्[6] की बैठक बुलाई जाती थी। ये लोग युवराजों[7] पर भी थोड़ा-बहुत नियंत्रण रखते थे, राजा के साथ युद्धक्षेत्र में जाते थे और सैनिकों को उत्साहित करते थे।[8] ऐसे मंत्रियों में कौटिल्य प्रमुख थे। दूसरा मंत्री (प्रदेष्ट्रि) सम्भवतः मनियतप्पो था। यह जाटिलियन था। राजा लुटेरों[9] का उन्मूलन करके साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को शान्ति का वरदान देता था और मंत्री मनियतप्पो इस कार्य में राजा को सहायता करता था। कभी-कभी एक से अनेक मंत्री होते थे, क्योंकि "मन्त्रिणः" शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

---

१. II. 41.

२. अर्थशास्त्र, 1919, p. 17; उपधा के सम्बन्ध में स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ पर्वत का लेख भी देखिये।

३. कौटिल्य, p. 247; स्मिथ (*EHI*, चतुर्थ संस्करण, p. 149) के अनुसार चाँदी के एक पण का मूल्य १ शिलिंग से अधिक नहीं था।

४. *Ibid.*, p. 16.

५. *Ibid.*, p. 26. 28.

६. *Ibid.*, p. 29; देखिये अशोक-शिलालेख, VI.

७. *Ibid.*, p. 333.

८. *Ibid.*, p. 368; देखिये शाब का उदयगिरि-लेख।

९. देखिये, टर्नर का महावंश, p. xlii. यह प्रमाण बाद का है।

मंत्रियो के अलावा एक मंत्रि-परिषद् भी होती थी। मंत्रि-परिषद् का अस्तित्व मौर्य-संविधान का एक मुख्य तत्त्व था, अशोक के शिलालेखों[1] से भी यह सिद्ध होता है। मंत्रि-परिषद् के सदस्य तथा मंत्री लोग समान नहीं थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के कुछ अनुच्छेदों मे मंत्रियों तथा मंत्रि-परिषद् के बीच मामूली अन्तर बताया गया है। मंत्रि-परिषद् का दर्जा कुछ कम था। मंत्रियों का वेतन ४८ हज़ार पण तथा मंत्रि-परिषद् के सदस्यों का वेतन केवल १२ हज़ार पण वार्षिक होता था। मामूली अवसरों पर इनसे राय नहीं ली जाती थी, किन्तु 'आत्यायिक कार्यों'[2] के लिए मंत्रियों के साथ परिषद् के सदस्य भी बुलाये जाते थे। राजा बहुमत (भूयिष्ठाः) के निर्णय से कार्य करता था। राजदूतों के स्वागत[3] के समय भी कभी-कभी ये लोग उपस्थित रहते थे। एक अनुच्छेद में 'मंत्रि-परिषदां द्वादशामात्यान् कुर्वीत'[4]—मंत्रि-परिषद् में १२ अमात्य होने चाहिये—लिखा मिलता है। इससे लगता है कि परिषद् के लिए सभी प्रकार के अमात्यो के बीच से चयन किया जाता था। कौटिल्य राजा के लिए छोटी परिषद् (क्षुद्र परिषद्)[5] नहीं चाहता था। वह 'मानव', बार्हस्पत्य व औशनस के दृष्टिकोणों को भी ठीक नहीं समझता था। वह बड़ी (अक्षुद्र) परिषद् के साथ-साथ 'इन्द्र-परिषद्' (एक सहस्र ऋषियों की परिषद्) भी चाहता था। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कौटिल्य ने एक उदीयमान् साम्राज्य की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखा है। यह परिषद् निश्चय ही चन्द्रगुप्त की थी, जिसे उसके सलाहकारों ने बड़ी परिषद् के गठन की सलाह दी थी।[6]

१. इस सम्बन्ध में प्लिनी का वर्णन उल्लेखनीय है। उसके अनुसार अमीर तथा धनी वर्ग के लोग राजा के साथ परिषद् में बैठते थे (Monahan, *The Early History of Bengal*, 148); देखिये महाभारत, iii, 127. 8; आमत्य-परिषद्, xii, 320, 139 आमत्य-समिति।

२. देखिये, p. 20, 29, 247.

३. अर्थशास्त्र, 29; महाभारत, iv, 30. 8; अशोक का शिलालेख, VI.

४. अर्थशास्त्र, p. 45.

५. P. 259.

६. दिव्यावदान, p. 372 में बिम्बिसार के ५०० मंत्रियों का उल्लेख मिलता है। पतञ्जलि 'चन्द्रगुप्त-सभा' का उल्लेख करता है, परन्तु हमें इसके विधान आदि का पता नहीं है।

मंत्रियों तथा मंत्रि-परिषद् के अलावा भी अमात्यों का एक वर्ग और होता था जो प्रशासकीय एवं न्यायिक[1] स्थानों की पूर्ति करता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[2] में कहा गया है कि धार्मिक कसौटी से शुद्ध किये गये (धर्मोपधा शुद्ध) अमात्य को फ़ौजदारी[3] तथा दीवानी[4] अदालतों का काम सौंपना चाहिये। धन की कसौटी से शुद्ध किये गये (अर्थोपधा शुद्ध) अमात्य को वित्त, गृह या भंडार-मंत्री[5] बनाया जाना चाहिये। प्रेम (या वासना) की कसौटी पर शुद्ध किये गये (कामोपधा शुद्ध) अमात्य को क्रीड़ा-केन्द्रों का निरीक्षक बनाया जाना चाहिये। भय की कसौटी पर शुद्ध किये गये (भयोपधा शुद्ध) अमात्य को 'आसन्न कार्य' के लिए नियुक्त किया जाना चाहिये। जो इन कसौटियों पर खरे न उतरें, उन्हें खान, लकड़ी, और हाथियों के जंगल व कारखानों,[6] वगैरह में नौकरी देनी चाहिये। जिन अमात्यों की परीक्षा नहीं हुई रहती थी, उन्हें सामान्य विभागों में ही रखा जाता था। अमात्य-पद के लिए अपेक्षित योग्यता वालों (अमात्य-सम्पदोपेत) की नियुक्ति 'निसृष्टार्थाः' (साधिकार मंत्री), लेखक, पत्राचार-मंत्री तथा अध्यक्ष या निरीक्षक के रूप में की जाती थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि अमात्यों को कार्यकारी या न्यायिक पदों पर रखना चाहिये। अन्य ग्रन्थों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। स्ट्रैबो

१. रुद्रदमन-प्रथम के जूनागढ़-शिलालेख में देखिये 'कर्म-सचिव' का उल्लेख।

२. P. 17, देखिये मैक्रिडल-कृत *Megasthenes and Arrian*, 1926, 41, 42.

३. फ़ौजदारी न्यायालय (कंटक-शोधन) में ३ आमात्य अथवा ३ प्रदेष्ट्रि होते थे। प्रदेष्ट्रि के कार्यों की व्याख्या आगे की जायेगी।

४. दीवानी अदालत (धर्मस्थीय) संग्रहण (१० ग्रामों के बीच) में खोले गए थे। साथ ही इस प्रकार के न्यायालय द्रोणमुख (४०० ग्रामों के मध्य), स्थानीय (८०० ग्रामों के बीच) तथा ऐसे स्थानों में जहाँ ज़िले मिलते थे (जनपद-सन्धि ?) भी पाये जाते थे। इनमें ३ धर्मस्थ तथा ३ अमात्य हुआ करते थे।

५. इन अधिकारियों के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में कौटिल्य का अर्थशास्त्र, Bk. II, 5-6, 35; Bk. IV, 4; Bk. V. 2 देखिये। मौर्यों के शासन-काल में राजस्व के लिये घोषाल-कृत *Hindu Revenue System*, pp. 165 ff देखिये।

६. देखिये, स्तम्भ-लेख, V में नागवन।

ने लिखा है कि "सातवीं" जाति में राजा के सलाहकार तथा मंत्री-वर्ग के लोग आते है। इन लोगों के जिम्मे सरकारी दायित्व, अदालतों तथा समूचे प्रशासन का काम रहता था।"[1] इतिहासकार एरियन ने भी लिखा है कि "इन्हीं लोगों में से शासकों, गवर्नरों, कोषाध्यक्षों, सेनाध्यक्षों, नौसेना के कमाण्डरों, आय-व्यय-नियंत्रकों तथा कृषि-कार्य की देखरेख करने वालों का भी चयन किया जाता था।"

कौटिल्य के प्रशासकीय ढाँचे में अध्यक्षों को बड़ा महत्त्व दिया गया है। निम्नलिखित अनुच्छेद में इतिहासकार स्ट्रैबो के एक अनुवादक ने इन अध्यक्षों को मजिस्ट्रेट[2] कहा है

"इन मजिस्ट्रेटों में से कुछ को बाजार,[3] कुछ को नगर तथा कुछ को सैन्य-व्यवस्था-सम्बन्धी[4] दायित्व सौंप दिया जाता था। इनमें से कुछ[5] नदियों की देखरेख करते थे, कुछ जमीन की पैमाइश का काम करते थे, जैसा कि एक बार मिस्र में हुआ था। कुछ लोग बन्द तालाब के पानी पर निगाह रखते थे ताकि सब लोग समान रूप से तालाब के पानी का सदुपयोग कर सके। शिकार की देखरेख भी इन्हीं लोगों के जिम्मे होती थी, और ये लोग अपने कर्त्तव्य-पालन के सिलसिले में किसी को कोई पुरस्कार या दण्ड दे सकते थे। ये लोग टैक्स वसूलने के साथ-साथ भूमि, लकड़ी की कटाई, बढ़ईगीरी, पीतल के काम व खानों में काम करनेवालों की भी देखरेख करते थे। ये लोग सार्वजनिक मार्गों की देखभाल करते और मोड़ या जहाँ प्रमुख मार्ग से निकलने वाली कोई सड़क निकलती, ये वहाँ पत्थर गाड़ देते और उस पर दूरी व स्थान सम्बन्धी अपेक्षित सूचना अंकित कर देते। जिन लोगों के जिम्मे नगर का काम होता, वे ६ भागों

---

१. H. A. F., Vol. III, p. 103; देखिये, डायोडोरस, II. 41.

२. अशोक के लेखों में एक प्रकार के अध्यक्ष, जो स्त्रियों की देखभाल करते थे, को महामात्र कहा गया है।

३. *Cambridge History of India*, I, p. 417 के अनुसार इसका अर्थ जिले से है।

४. देखिये, कौटिल्य, Bk. XIII, Chap. 3, 5 में 'दुर्ग-राष्ट्र-दण्ड-मुख्य।'

५. अर्थात्, जिले के अधिकारी (अग्रोनोमोई)

मे विभाजित होते थे तथा प्रत्येक भाग में ५ सदस्य[१] होते थे। नगर के न्यायाधीशों के बाद गवर्नरों का ही पद आता था। इन लोगों के जिम्मे सामरिक मामलों की देखरेख होती थी। इस वर्ग मे भी ६ विभाग होते थे और प्रत्येक विभाग मे ५ सदस्य[२] होते थे।"

नगर के प्रशासन तथा सामरिक मामलों की देखरेख करने वाले गवर्नर प्रायः एक ही होते थे। अर्थशास्त्र[३] में इन्हें नगराध्यक्ष और बलाध्यक्ष कहा गया है। डॉक्टर स्मिथ[४] का कहना है कि "मेगास्थनीज़ के अनुसार जो लोग राजधानी तथा सेना के मामलो से सम्बन्धित होते थे, कौटिल्य इन्हें जानता तक नहीं था, यद्यपि इनके कर्त्तव्य वह स्वयं निर्धारित करता था। हो सकता है कि विभिन्न उपविभागों या बोर्डों का सगठन आदि चन्द्रगुप्त की अपनी स्वयं की सूझ हो।" किन्तु, इतिहासकार ने यह नही सोचा कि कौटिल्य ने साफ़-साफ़ कहा है—"बहु-मुख्यम् अनित्यम् चाधिकारिणम् स्थापयेत्।" अर्थात्, 'हर विभाग का अधिकारी

१. प्रत्येक समिति निम्नलिखित विभागो की देखभाल करती थी—जैसे (१) कलाकौशल; (२) विदेश-सम्बन्ध; (३ जन्म एवं मृत्यु लेखा-जोखा; (४) व्यापार तथा नाप-तौल की व्यवस्था; (५) तैयार माल की देखभाल तथा उसके विक्रय का प्रबन्ध, तथा (६) बिक्री-कर। सामूहिक रूप से वे सार्वजनिक भवनों, बाजारों, बन्दरगाहों तथा मंदिरों की देखभाल करते थे। वे ही मूल्य निर्धारित करते थे।

२. प्रत्येक बोर्ड निम्नलिखित विभागो की देखभाल करता था—जलसेना, रसद आदि; पैदल सेना; अश्वरोही सेना, रथ तथा हाथी। महाभारत के शान्ति-पर्व में इन बोर्डों की संख्या ६ (CIII. 38) अथवा ८ (LIX. 41-42) दी गई है।

"रथ, हाथी, अश्व, पैदल, भारवाहक, जलयान, गुप्तचर तथा स्थानीय मार्गदर्शक—ओ कुरु के उत्तराधिकारी सुनो! ये आठ सेना के अंग कहे जाते हैं।"

३. देखिये, मैसूर-संस्करण, 1919, p. 55—"नगर-धान्य-व्यावहारिक-कार्मान्तिक-बलाध्यक्षः।" देखिये महाभारत, V. 2. 6 बलप्रधान तथा निगमप्रधान।

४. देखिये, *EHI*, 1914, p. 141; 'देखिए मोनाहन-कृत, *Early History of Bengal*, pp. 157-64; स्टीन, *Megasthenes and Kautilya*, pp. 233 ff.

कोई अस्थायी अधिकारी[1] **ही बनाया जाय।**' "अध्यक्षाः संख्यापक-लेखक-रूपदर्शक-नीवी-ग्राहकोत्तराध्यक्ष-सखाः कर्माणि कुर्युः"--अर्थात्, 'राजकीय निरीक्षक एकाउण्टेण्ट, क्लर्कों, सिक्के के पारखियों तथा गुप्तचरों की सहायता से अपना काम चलाते थे।' डॉक्टर स्मिथ केवल अध्यक्षों के अस्तित्व को ही मान्यता देते है, उत्तराध्यक्षों तथा अन्यों की उन्होंने उपेक्षा की है। जहाँ तक अर्थशास्त्र का प्रश्न है, स्मिथ ने उसमें केवल अध्यक्षों तथा अन्य ग्रन्थों मे केवल मण्डलों (boards) को ही माना है। इसके अलावा स्मिथ ने उन प्रधानों की भी उपेक्षा की है, जिनका उल्लेख निम्न अनुच्छों[2] में आता है---

"एक डिवीजन प्रधान नौसेना-निरीक्षक के साथ रहता था। दूसरा डिवीजन उस व्यक्ति के साथ होता था जो वृषभ-दल का जिम्मेदार होता था। नौसेना-निरीक्षक तथा वृषभ-दल की देखरेख करने वाले को अर्थशास्त्र में क्रमशः 'नाव-अध्यक्ष' तथा 'गो-अध्यक्ष' कहा गया है। यह कहना भूल होगी कि प्राचीन काल नाव-अध्यक्ष एक असैनिक अधिकारी होता था, क्योंकि उसे हिंस्रिकों (समुद्री लुटेरों) के उन्मूलन का उत्तरदायित्व स्वीकार करना पड़ता था। महाभारत[3] में नौसेना को राजा की सेना का एक अंग माना गया है। मेगास्थनीज द्वारा दिये गये विवरण मे नाव-अध्यक्ष या एडमिरल के कुछ नागरिक कर्त्तव्य रखे गये हैं, जिनके अनुसार नाव-अध्यक्ष आवागमन तथा व्यापार के लिए जलयान किराये पर देता था।"[4]

"लिच्छवि, मल्ल, शाक्य तथा अन्य संघराज्यों की तरह मौर्य-साम्राज्य में केन्द्रीय लोकप्रिय जनसभा नाम की कोई संस्था नही थी। ऐसा लगता है कि यदा-कदा ग्रामिकों या गाँव के मुखियों को बुलाने तथा उनमे कुछ विचार-विमर्श की परम्परा भी मौर्य-काल में प्रयोग में नहीं लाई गई। राजा की परिषद् केवल एक आभिजात्य-वर्गीय संस्था मात्र थी, जिसमें देश के मुख्य-मुख्य लोग शामिल होते थे।"[5]

१. अर्थशास्त्र, 1919, p. 60. पृष्ठ ५७ पर लिखा है कि "हस्ती-अश्व-रथ-पदातम्--अनेक मुख्यम्--अवस्थापयेत्।"--अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सभी अनेक सरदारों के नीचे होंगे।

२. H. & F, स्ट्रैबो, III, p. 104.

३. XII, lix, 41-42.

४. स्ट्रैबो, XV, 1. 46.

५. मोनाहन-कृत, *Early History of Bengal*, p. 148 पर प्लिनी को उद्धृत किया गया।

न्याय-प्रशासन

समूचे न्याय-प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी ही राजा होता था। राजा के दरबार के अलावा साम्राज्य के विभिन्न नगरों तथा जनपदों में भी अदालतें क़ायम थीं। इन अदालतों में व्यावहारिक महामात्र (नगरों में) तथा 'राजूक' (देहातों में) न्याय-कार्य करते थे। यूनानी लेखकों ने ऐसे न्यायाधीशों की ही चर्चा की है जो उस समय भारत में रहने वाले विदेशियों के मामलों पर विचार करते थे। गाँव के छोटे-छोटे मुक़दमे गाँव के मुखियों या बुजुर्गों द्वारा ही तय कर लिये जाते थे। उस समय का इतिहास लिखने वाले सभी इतिहासकारों ने तत्कालीन दण्ड-व्यवस्था की कड़ाई का उल्लेख किया है। बाद में चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक ने न्याय-प्रशासन की कड़ाइयाँ काफ़ी कम कर दीं। उसके काल में प्रत्येक अपराधी को उतना ही दण्ड दिया जाता था जितना कि वह दण्ड के योग्य होता था। दूरस्थ प्रान्तों में पर्यटक महामात्रों के द्वारा भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखा जाता था, गाँवों के न्यायाधीश (राजूक) न्याय-प्रशासन में किसी हद तक काफ़ी स्वतंत्र होते थे। यूनानी लेखकों के लेखों से पता चलता है कि उन दिनों भारत में चोरी का नाम कभी-कभी ही सुनाई पड़ता था। भारतीयों के बारे मे यह उल्लेख कि कि वे लिखना नहीं जानते थे, सही नहीं मालूम होता। यूनानियों यह बात कदाचित् इस आधार पर लिखी कि उन्हें यहाँ कहीं भी लिखित क़ानून नहीं मिले। भारतीय लोग सारा काम स्मरण-शक्ति के बल पर करते थे। नियर्शस और कर्टियस ने लिखा है कि भारतीय रेशम के महीन कपड़ों तथा पेड़ों की कोमल छाल पर लिखा करते थे। स्ट्रैबो ने लिखा है कि जब कोई दार्शनिक समाज को कोई सलाह या सुझाव देना चाहता था तो उसे लिपिबद्ध कर देता था। मौर्य-कालीन भारतीयों के लिखने के ज्ञान के बारे में यह उल्लेखनीय है कि सड़कों के पास के मौर्य-कालीन स्तम्भों पर स्थानों की दूरी व अन्य निर्देश लिखे रहते थे।[1]

प्रान्तीय सरकारें

समूचा मौर्य-साम्राज्य कई प्रान्तों में विभाजित था। प्रान्त विभिन्न आहारों या विषयों (जिलों) में विभाजित होते थे, क्योंकि कोई भी प्रशासकीय इकाई इतना बड़ा बोझ बरदाश्त नहीं कर सकती थी। चन्द्रगुप्त के समय में प्रान्तों

१. देखिये, मोनाहन-कृत, *Early History of Bengal*, pp. 143, 157, 167 f.

की निश्चित संख्या क्या थी, यह ज्ञात नहीं। चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के समय में साम्राज्य भर में प्रान्त थे---उत्तरापथ[1] (तक्षशिला), अवन्तिरट्ठ[2] (उज्जयिनी), दक्षिणापथ (सुवर्णगिरि), कलिंग (तोसालि) तथा प्राच्य, प्राचीन या प्रासी[3] (पाटलिपुत्र)। कोष्ठकों में लिखे नगर प्रान्तों की राजधानियाँ थे।

उक्त पाँच प्रान्तों में से प्रथम दो तथा अन्तिम एक के बारे में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ये प्रान्त चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के भी अंग थे। किन्तु, यह बिल्कुल असम्भव नहीं है कि दक्षिणापथ भी चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का अंग रहा हो। राजधानी से दूरस्थ प्रान्तों का शासन, राजवंश के राजकुमारों द्वारा चलता था। इन राजकुमारों का 'कुमार' की पदवी प्राप्त होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[4] से हमें पता चलता है कि प्रत्येक कुमार को १२ हजार पण वार्षिक वेतन मिलता था।

प्राच्य प्रान्त तथा मध्यदेश पर सम्राट् स्वयं शासन करता था। सम्राट् इस कार्य में महामात्रों तथा पाटलिपुत्र और कौशाम्बी में रहने वाले उच्च अधिकारियों से सहायता ले लिया करता था।

सम्राट् द्वारा शासित प्रान्त के अलावा भी कई क्षेत्र मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत थे जो एक सीमा तक स्वशासित थे। एरियन ने कुछ ऐसे क्षेत्रों या राष्ट्रों का उल्लेख किया है जो स्वशासित थे तथा जहाँ लोकतांत्रिक सरकारें थी।[5] कौटिल्य के अर्थशास्त्र[6] में भी कई संघों की चर्चा की गई है। ये आर्थिक, सामरिक तथा राजनीतिक आधारों के संघ थे और स्वशासित थे। अर्थशास्त्र में कम्बोज और सुराष्ट्र का नाम आया है। अशोक के एक शिलालेख (Thirteenth Rock Edict) में साम्राज्य की पश्चिमी सीमा पर बहुत से राष्ट्रों के होने की

१. दिव्यावदान, p. 407.

२. देखिए, *The Questions of King Milinda*, Pt. II, p. 250n; महावंश, Chap. XIII, महाबोधिवंश, p. 98.

३. देखिये, *The Questions of King Milinda*, II, 250n.

४. P. 247.

५. मोनाहन-कृत, *The Early History of Bengal*, p. 150; Chinnock, *Arrian*, p. 413.

६. P. 378.

बात लिखी है। असम्भव नहीं कि सुराष्ट्र भी इन्हीं राष्ट्रों में से एक रहा हो और पर्याप्त सीमा तक स्वशासित रहा हो। पेतवत्थु की टीका में यहाँ के एक अशोक-काल के राजा का नाम पिंगल[1] कहा गया है। जूनागढ़ के रुद्रदामन-शिलालेख में अशोक के समकालीन यवन राजा तुषास्फ[2] का नाम मिलता है। उक्त यवन राजा सम्भवतः एक यूनानी था जिसे अशोक ने ही सुराष्ट्र प्रान्त व उत्तरी-पश्चिमी अन्य भागों की देखरेख के लिए नियुक्त किया था। अशोक द्वारा यह नियुक्ति उसी प्रकार की थी जैसे कि अरब द्वारा बंगाल के सूबेदार के रूप में मानसिंह की। अशोक और यवन राजा के बीच भी वही सम्बन्ध हो सकता है। मौर्य-कालीन सुराष्ट्र में पहले पुष्यगुप्त नाम का अधिकारी था। यह वैश्य था तथा चन्द्रगुप्त का 'राष्ट्रीय' कहा जाता था। बम्बई गजेटियर में 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ 'साला' या 'बहनोई' माना गया है। इतिहासकार केलहार्न (Kielhorn)[4] ने 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ 'प्रान्तीय गवर्नर' माना है। यह कथन ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मौर्य-काल में सौराष्ट्र में अनेक राजा थे। वहाँ नौकरशाही व्यवस्था के किसी मामूली व्यक्ति को गवर्नर नहीं बनाया जा सकता था। शिलालेखों में आया 'राष्ट्रीय' शब्द सम्राट् के राजदूत (Imperial High Commissioner)[5] का भी बोधक लगता है और सुराष्ट्र में पुष्यगुप्त की स्थिति सम्भवतः वही थी जो कि मिस्र में लार्ड क्रोमर की थी। इसके अतिरिक्त न तो

१. देखिये, लॉ-कृत, *Buddhist Conception of Spirits*, 17 ff.

२. आधुनिक काल में यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है कि तुषास्फ, अशोक के पूर्व हुआ था, परन्तु यह ग़लत है। जूनागढ़-लेख में राजा के नाम के साथ स्थानीय अधिकारी का नाम अवश्य आता है। ऐसा कोई कारण नहीं जिससे कहा जा सके कि अशोक तथा तुषास्फ के बीच वह सम्बन्ध नहीं था जो चन्द्रगुप्त, पुष्यगुप्त अथवा रुद्रदामन तथा सुविशाख के बीच था।

३. Vol. I, Part I, p. 13.

४. *Ep. Ind.*, Vol. VIII, p. 46.

५. प्रथम महायुद्ध के पश्चात् निकट पूर्व में मिले टाइप भी देखिये। हाई कमिश्नर वास्तविक शक्ति का उपयोग करता था, इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वहाँ पर स्थानीय शासक अथवा अधिकारी आदि नहीं होते थे। मिस्र-स्थित ब्रिटिश राजदूत के सम्बन्ध में वेंडेल विल्की का मत भी देखिये (*One World*, p. 13), जहाँ वह प्रत्येक दृष्टि से वास्तविक शासक है।

अर्थशास्त्र में और न अशोक के अभिलेखों में ही कहीं 'राष्ट्रीय'[1] की श्रेणी के किसी अधिकारी का उल्लेख आया है। ऐसा लगता है कि 'राष्ट्रीय' शब्द 'राष्ट्र-पाल' का ही समानार्थी था, जिसका वेतन प्रान्तों के शासक कुमारों[2] के बराबर होता था। ऐसा लगता है कि मौर्य-काल के आरम्भ में सुराष्ट्र में पैतृक नौकर-शाही अस्तित्व में नहीं आ पायी थी। स्थानीय राजाओं द्वारा राजा की उपाधि धारण कर लेने तथा राजूकों (देहात के न्यायालयों) द्वारा स्वशासन का दावा कर लेने के फलस्वरूप ही मौर्य-शासन की केन्द्रीय सत्ता कुछ-कुछ क्षीण पड़ने लगी।

गुप्तचर-विभाग

ग्रन्थकारों ने लिखा है कि मौर्य-काल में गुप्तचरों की भी एक श्रेणी हुआ

---

१. अशोक के लेखों में उसे 'रथिका' कहा गया है। रीज़ डेविड्स एवं स्टीड द्वारा सम्पादित 'पाली-इंगलिश डिक्शनरी' में 'रथिका' की तुलना 'राष्ट्रीय' से की गई है।

२. देखिये, अर्थशास्त्र, p. 247. 'राष्ट्रीय' के लिये देखिये, महाभारत, XII, 85. 12; 87. 9. अमर के अनुसार (V. 14) राष्ट्रीय का अर्थ 'राज-श्याल' (राजा का साला) है। परन्तु, क्षीरस्वामिन् के अनुसार एक नाटक को छोड़कर 'राष्ट्रीय' राष्ट्राधिकृत, अर्थात् वह अधिकारी जो राष्ट्र, राज्य, तथा प्रान्त की देखभाल के लिये नियुक्त हो, है। इस सम्बन्ध में पंजाब के भारतीय राजाओं के साथ यूदामों के सम्बन्ध, तथा दसवीं शताब्दी में प्रतिहारों के तंत्रपाल के विषय में देखिये। डॉ० बरुआ (*IC*, X, 1944, pp. 88 ff) ने अनेक पुस्तकों में बुद्धघोष का यह कथन भी सम्मिलित किया है कि राज्य में राष्ट्रीयों का स्थान महामात्र तथा ब्राह्मणों के बीच था। उनका पहनावा बड़ा शानदार था, तथा उनके हाथों में तलवार अथवा इसी प्रकार की कोई दूसरी वस्तु होती थी। यह कथन बहुत कुछ सत्य हो सकता है, परन्तु जो प्रमाण उन्होंने दिये हैं वे पर्याप्त नहीं है कि यह सिद्ध हो सके कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में राष्ट्रिक अथवा राष्ट्रीय और कोई न होकर बड़े-बड़े बैंकर्स तथा उद्योगपति होते थे। ये लोग 'मेयर्स', 'शेरिफ़' तथा 'जस्टिस ऑफ़ पीस' का भी कार्य करते थे। तुषास्फ़ तथा सुविशाख का उल्लेख सिद्ध करता है कि यहाँ पर राष्ट्रीय का कार्य अत्यन्त उच्च था। इसके साथ ही क्षीरस्वामिन् द्वारा दिये गये कार्यों की भी सफलता से उपेक्षा नहीं की जा सकती।

करती थी। राजाओं या मजिस्ट्रेटों द्वारा शासित मौर्य-साम्राज्य के विभिन्न प्रान्तों में ये गुप्तचर देखा करते थे कि कहाँ-क्या हो रहा है? लोकतांत्रिक ढंग[1] से शासित भागों में क्या हो रहा है, इसकी रिपोर्ट भी यही लोग लेते और सम्राट् तक पहुँचाते थे। इतिहासकार स्ट्रैबो ने इन लोगों को एफ़ोरी (Ephori) या 'इन्सपेक्टर' कहा है। उसके कथनानुसार, ये लोग पूरे साम्राज्य की गतिविधि पर निगाह रखने तथा सम्राट् तक पूरी रिपोर्ट पहुँचाने के लिए होते थे। यही कारण है कि सबसे अधिक विश्वस्त व कार्यकुशल लोगों को इन पदों पर नियुक्त किया जाता जाता था।[2] हो सकता है कि एरियन के गुप्तचर (overseers) तथा स्ट्रैबो के 'इन्सपेक्टर' जूनागढ़-शिलालेख के 'राष्ट्रीय' तथा अर्थशास्त्र के 'प्रदेष्ट्रि' या गूढ़पुरुष के ही पर्याय हों। 'प्रदेष्ट्रि' शब्द सम्भवतः प्रादिश् (संकेत या सूचना देना) शब्द से ही बना है।

स्ट्रैबो ने कई श्रेणी के इन्सपेक्टरों का उल्लेख किया है। इनमें एक तो नगर के गुप्तचर (City Inspector) होते थे, जो वेश्याओं को अपना सहायक तैनात रखते थे। इनके बाद महिलायें शिविर-गुप्तचरों की श्रेणी होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी साधारण गुणों वाली महिलाओं को गुप्तचर के रूप में नियुक्त करने का उल्लेख है। अर्थशास्त्र के अनुसार गुप्तचरों की दो श्रेणियाँ थी —

१. 'सस्था' या एक जगह नियुक्त किये जाने वाले गुप्तचर। इन्हें कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक या तापस कहा जाता था।

२. 'संचारा' या भ्रमणशील गुप्तचर[3]। इस श्रेणी में संदेशवाहक लोग भी आते थे। इन्हें सत्रि, तीक्ष्ण या रषद (सहपाठी, तीव्र या वैषैला) कहते थे। कुछ महिला-गुप्तचरों को भिक्षुकी, परिव्राजिका, मुंड (वैरागिन) और वृषली कहते थे। स्ट्रैबो[4] ने भी वृषली (गणिका) श्रेणी की महिला-गुप्तचरों का उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र[5] में हमें वेश्याओं (पुंश्चली या रूपजीवा) के गुप्तचर होने का उल्लेख मिलता है।

१. Chinnock, *Arrian*, p. 413.

२. H. & F., स्ट्रैबो, III, p. 103.

३. देखिये लूडर्स, लेख-संख्या, 1200.

४. वृषली का अर्थ गणिका बताया गया है। भागवदज्जुकीयम्, p. 94 के अनुसार इसका अर्थ दरबारी से है।

५. देखिये, अर्थशास्त्र (1919), p. 224, 316.

विदेशियों की निगरानी

स्ट्रेबो[1] और डायोडोरस[2] की कृतियों से पता चलता है कि मौर्य-काल में विदेशियों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। भारतीय अधिकारियों में विदेशियों को नियुक्त किया जाता था कि वे देखें कि किसी विदेशी के साथ किसी तरह का कोई दुर्व्यवहार न हो। यदि इन विदेशियों में से कोई कभी बीमार पड़ जाता तो अच्छे से अच्छे वैद्यों से इनकी चिकित्सा कराई जाती और काफ़ी तीमारदारी की जाती। मरने पर इन्हें दफ़न किया जाता तथा इनकी सम्पत्ति इनके सम्बन्धियों को दे दी जाती। जिन मुक़दमों में विदेशी फँसे होते थे, उनकी सुनवाई बड़े ध्यान से की जाती। यदि कोई इसका दुरुपयोग करके फ़ायदा[3] उठाना चाहता तो उसके प्रति सतर्कता बरती जाती।

गाँव का शासन

प्राचीन भारत में गाँवों को प्रशासकीय एवं न्यायिक व्यवस्था का संचालन ग्रामिक[4] लोग करते थे। इनके अलावा 'ग्रामभोजक' या 'आयुक्त' भी होते थे और गाँव के वृद्धजन[5] उनकी सहायता करते थे। अर्थशास्त्र[6] में ग्रामिकों का नाम वेतनभोगी कर्मचारियों में नहीं रखा गया है, और यह अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण बात है। इससे सिद्ध होता है कि अर्थशास्त्र के लेखक के काल में

---

१. XV, 1, 50.

२. II. 42.

३. देखिये, मैक्रिंडल-कृत, *Megasthenes and Arrian*, 1926, p. 42.

४. देखिये फिक-कृत, *Social Organisation*, 162; अर्थशास्त्र, p. 157, 172; देखिये लूडर्स, लेख-संख्या 48, 69 (a)। कलिंग-लेख में आयुक्तों का उल्लेख आया है जो राजकुमार वायसरायों तथा महामात्रों की सहायता राज्य-संचालन में करते थे। गत मौर्य तथा सीथियन काल के प्रारम्भिक युग में उन्हें स्पष्ट रूप से ग्राम-अधिकारी कहा गया है (लूडर्स, सूची-संख्या 1347)। गुप्त-काल में यह पद बहुतों को, जिसमें ज़िले के अनेक पदाधिकारी भी सम्मिलित थे, दिया गया था।

५. ग्राम-वृद्ध; अर्थशास्त्र, p. 48,161, 169, 178. देखिये लूडर्स, लेख-संख्या 1327. शिलालेख V तथा VIII में महालकों तथा वृद्धों का उल्लेख मिलता है।

६. Bk. V, Chap. III.

ग्रामिक वेतनभोगी नहीं होता था, वरन् गाँववालों द्वारा निर्वाचित[1] राज्य-कर्मचारी होता था। राजा की ओर से गाँवों में ग्रामभृतक[2] या ग्रामभोजक[3] नियुक्त होते थे। 'अर्थशास्त्र' के अनुसार ग्रामिकों के ऊपर 'गोप'[4] होते थे, जो ५ से १० गाँवों तक के इन्चार्ज होते थे। इसके अलावा एक अधिकारी 'स्थानिक' होता था और एक-चौथाई जनपद की देखभाल करता था। अर्थशास्त्र के अनुसार इन अधिकारियों के काम की देखरेख 'समाहर्त्तृ' या 'प्रदेष्ट्रि'[5] लोग करते थे। ग्रामीण प्रशासन का संचालन बड़ी कुशलता से किया जाता था। यूनानी लेखकों के लेखों से पता चलता है कि किसानों को राज्य का पूर्ण संरक्षण प्राप्त था तथा वे अधिक से अधिक समय खेती के काम में लगाते थे।

आय एवं व्यय के मुख्य स्रोत

मौर्य-साम्राज्य की केन्द्रीय सरकार को देश के नागरिक तथा सैन्य-प्रशासन पर भी काफ़ी धन व्यय करना पड़ता रहा होगा। राज्य की मुख्य आय मालगुज़ारी से होती थी। उस समय 'भाग' या 'बलि' के रूप में भू-राजस्व अदा किया जाता था। प्रायः पैदावार का छठवाँ अंश सरकार को 'भाग' के रूप में मिलता था। यह अंश कभी-कभी अष्ठांश या चतुर्थांश भी कर दिया जाता था। उक्त कर के अतिरिक्त भी कभी-कभी कुछ टैक्स लेकर किसान को अन्य करों से मुक्त कर दिया जाता था। इस अतिरिक्त टैक्स को 'बलि' कहते थे। यूनानी इतिहास-

१. इसको सिद्ध करने के लिये प्रमाण है कि प्राचीन काल में राजाओं द्वारा ग्रामों में अधिकृतों की नियुक्ति की जाती थी (प्रश्न उपनिषद्, III. 4)।

२. अर्थशास्त्र, p. 175, 248.

३. जातकों के ग्रामभोजक राजा के अमात्य होते थे (Fick, *Social Organisation in N. E. India*, p. 160)।

४. प्राचीन अभिलेखों में गोपों का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु लूडर्स, लेख-संख्या 1266 में सेन गोपों का उल्लेख अवश्य मिलता है।

५. हम कह नहीं सकते कि इसमें दिये गये नियमों का पालन मौर्य-काल के प्रारम्भिक दिनों में कहाँ तक होता था (अर्थ०, p. 142, 217)। अशोक के शासन-काल में देखभाल का कार्य अधिकतर महामात्रों के एक मुख्य वर्ग (शिलालेख, संख्या 5, तथा कलिंग-लेख), पुलिसा (एजेण्ट) तथा राजूक (स्तम्भ-लेख, संख्या 4) के द्वारा होता था।

कारों के अनुसार, कभी-कभी किसान पैदावार का चतुर्थांश देने के बाद भी कुछ भूमि त्याग देते थे, क्योंकि उस समय यह धारणा थी कि देश की समस्त भूमि सम्राट् की सम्पत्ति होती है तथा किसी भी नागरिक को भूमि के स्वामित्व का कोई अधिकार नहीं है। भू-राजस्व भी वही अधिकारी वसूल करते थे जो सिंचाई के साधनों की देखरेख करते थे। इसके अलावा सरकार को मवेशी पालनेवालों से पशु तथा व्यापारियों से भी कुछ सेवायें प्राप्त होती थीं। देहाती क्षेत्रों से भी सरकार को जन्म तथा मृत्यु-कर, अर्थदण्ड की रक़म तथा बिक्री का दशांश (sales tax) मिलता था। पतंजलि के महाभाष्य में इस बात का उल्लेख है कि मौर्य लोगों को सोना बहुत प्रिय था, तथा वे अपने देवताओं की मूर्त्ति सोने की बनवाते थे। अर्थशास्त्र में भी ग्रामीण तथा क़िलेबंदी के क्षेत्रों में लगाये जाने वाले टैक्सों के उल्लेख के साथ-साथ 'समाहर्त्तृ तथा 'सन्निधातृ' का उल्लेख आया है। लेकिन, मौर्य-कालीन शिलालेखों में इन अधिकारियों का कहीं कोई ज़िक्र नहीं है। इसके विपरीत यूनानी लेखकों ने राज्य के कोषाध्यक्षों या ख़ज़ाना के सुपरिण्टेण्डेण्टों की भी चर्चा की है।

राज्य की आय का बहुलांश सेना पर व्यय किया जाता था। कारीगरों व कलाकारों का गुज़ारा सरकारी ख़ज़ाने से होता था। राज्य के चरवाहों तथा शिकारियों को जंगलों से वन्य पशुओं का सफ़ाया करने के लिए अनाज दिया जाता था। राज्य के ख़ज़ाने से दार्शनिकों को भी धन दिया जाता था। इस वर्ग में ब्राह्मण, श्रमण तथा साधु-संन्यासी आते थे। चन्द्रगुप्त के पौत्र के समय में राज्य के धन की बड़ी मात्रा सिंचाई, सड़क-निर्माण, गृह-निर्माण, क़िलेबन्दी तथा औषधालयों की स्थापना पर भी ख़र्च की जाती थी।

चन्द्रगुप्त के अन्तिम दिवस

जैन-परम्परा की 'राजावली कथा'[1] में स्पष्ट लिखा है कि चन्द्रगुप्त जैन था, और एक बार जब उसके राज्य में अकाल पड़ा तो वह अपने पुत्र सिंहसेन के लिए सिंहासन रिक्त कर स्वयं मैसूर चला गया और वहीं उसकी मृत्यु हो गई। कावेरी के उत्तरी तट पर, सेरिंगपटम के समीप लगभग ९०० ईसवी के दो शिलालेख मिले हैं। इन शिलालेखों में कलबप्पु की पहाड़ी (चन्द्रगिरि) पर भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त मुनिपति[2] के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। डॉक्टर

१. *Ind. Ant.*, 1892, 157.

२. देखिये, राइस-कृत *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 3-4.

स्मिथ[1] ने भी कहा है कि "जैन-परम्परा के अतिरिक्त इस सम्बन्ध में और कोई सामग्री नहीं मिलती। २४ वर्ष[2] राज्य करने के बाद लगभग ३०० वर्ष ईसापूर्व में सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य का देहावसान हो गया।"

यदि हेमचन्द्र के 'परिशिष्टपर्वन्'[3] पर विश्वास किया जाय तो चन्द्रगुप्त की एक रानी का नाम दुर्धरा था, जिससे राजकुमार बिन्दुसार का जन्म हुआ था। पिता के बाद बिन्दुसार को ही सिंहासन प्राप्त हुआ। किसी अन्य सामग्री के अभाव में रानी के नाम को सन्देहास्पद कहा जा सकता है।

---

१ देखिये, *Oxford History of India*, p. 76. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, जैन-परम्परा के प्रति फ़्लीट के मन में द्वेष है (*Ind. Ant.*, 1892, 156 f)। ग्रीक-प्रमाणों के अनुसार चन्द्रगुप्त यज्ञ वाले धर्म का अनुयायी था (देखिये, p. 277 *ante*)। मुद्राराक्षस में आया हुआ शब्द 'वृषल' यही संकेत करता है कि कुछ बातों में वह कठोर कट्टरता से हट भी जाता था (देखिये, *Indian Culture*, II, No. 3, p. 558 ff; देखिये सी० जे० शाह-कृत *Jainism in Northern India*, 135n, 138)।

२. चन्द्रगुप्त की तिथि के लिये देखिये *Indian Culture*, Vol. II, No. 3, p. 560 ff. सीलोन की बौद्ध-परम्परा के अनुसार, यह तिथि बुद्ध के परिनिर्वाण के १६२ वर्ष पश्चात्, अर्थात् ३८२ ई०पू० थी, यदि हम निर्वाण-तिथि ५४४ ई०पू० मान लें तो; परन्तु यदि कन्टोनीज के अनुसार, यह तिथि ४८६ ई०पू० हो तो फिर ३२४ ई०पू० होगी। पहली तिथि के विरुद्ध यूनानी प्रमाण हैं, परन्तु वे ३२४ ई०पू० को स्वीकार करते हैं। यदि यह सही जनश्रुति पर आधारित हो और जैन-तिथि सही है तो उनके अनुसार चन्द्रगुप्त ३१३ ई०पू० में सिंहासनारूढ़ हुआ था क्योंकि एक श्लोक में मौर्य-शासक को पालक का उत्तराधिकारी बताकर उसका अवन्ती तथा मालवा पर अधिकार सिद्ध किया गया है (देखिये *IHQ*, 1929 p. 402) फ़्लोज़ोट तथा अन्य, जो जैनियों को सही मानते हैं, वे सीलोनीज़ के प्राचीन प्रमाणों को स्वीकार नहीं करते (देखिये रायचौधरी, *HCIP*, *AIU*, Vol. II, 92 ff.; *ANM*, 136 ff)। ३१३ ई०पू० की तिथि अशोक के लेख XIII में उल्लिखित यूनानी राजाओं से भी मेल नहीं खाती, क्योंकि सीरियन युद्ध से कहीं पूर्व (तोलेमी, तृतीय, 247-46 ई०पू०) कैलिमस हुआ था जिसका उल्लेख लेख में मिलता है।

३. VIII, 439-43; Bigandet, II. 128.

२. बिन्दुसार का शासन

चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात ३०० ईसापूर्व के आसपास अपने पिता की जगह सिंहासन पर बैठा। अमित्रघात (शत्रुओं का वध करने वाला) संस्कृत[1] शब्द है, और अथेनेओस के अमित्रचेत्स (Amitrachates) तथा स्ट्रैबो के अल्लित्रोशेड्स (Allitrochades) का ही पर्याय है। उक्त इतिहासकारों ने अमित्रचेत्स तथा अल्लित्रोशेड्स को सैण्ड्रोकोट्स (चन्द्रगुप्त) का पुत्र कहा है। फ्लीट ने 'अमित्रखाद' को प्राथमिकता दी है, जिसका अर्थ शत्रुओं का नाश करने वाला होता है तथा जो देवराज इन्द्र का एक विशेषण है।[2] 'राजावली कथा' में चन्द्रगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी का नाम सिंहसेन दिया गया है। अशोक के एक अभिलेख (Rock Edict, VIII) के अनुसार बिन्दुसार तथा अशोक के अन्य पूर्वज 'देवानांपिय' का नाम भी धारण करते थे।

यदि 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' के लेखकों हेमचन्द्र और तारानाथ पर विश्वास किया जाय तो बिन्दुसार[3] के सिंहासनारूढ़ होने के बाद भी कौटिल्य या चाणक्य

१. देखिये बेवर, *I.A*, (ii) (1873), p. 148; लासेन तथा कनिंघम (*Bhilsa Topes*, p. 92)। 'अमित्रघात' शब्द का उल्लेख पतञ्जलि के महाभाष्य (III. 2. 2) में भी मिलता है (देखिये महाभारत, 30. 19; 62. 8; VII, 22. 16)। यहाँ पर अमित्रघात का प्रयोग राजकुमारों तथा योद्धाओं के विशेषण के रूप में हुआ है। डॉ॰ जार्ल कारपेन्टियर का मत है कि ग्रीक शब्द Amitrachates बिन्दुसार का पर्यायवाची है, अतः यही अमित्रघात हो गया। यह तथ्य न केवल महाभाष्य से स्पष्ट होता है, वरन् राज-उपाधि भी बना। (देखिये, अमित्राणाम् हन्ता—ऐतरेय ब्राह्मण, VIII. 17)। *JRAS*, जनवरी 1928 में उसने Amitrachates को अमित्रखाद कहना अधिक उपयुक्त समझा (p. 135); (देखिये, ऋग्वेद, X, 152. 1)।

२. *JRAS*, 1909, p. 24.

३. देखिये जैकोबी, परिशिष्टपर्वन्, p. 62; VIII, 446 ff; *Ind. Ant.*, 1875, आदि। बिन्दुसार तथा चाणक्य का सम्बन्ध दूसरे मंत्री सुबंधु (वासवदत्ता नाट्यधारा के लेखक) के साथ कैसा था, इस सम्बन्ध में देखिये *Proceedings of the Second Oriental Conference*, p. 208-11 तथा परिशिष्टपर्वन्, VIII, 447. दिव्यावदान (p. 372) में 'खल्लाटक' को बिन्दुसार का अग्रामात्य अथवा मुख्य मंत्री कहा गया है।

कुछ समय तक मंत्रि-पद पर आसीन रहे। तारानाथ के अनुसार, "चाणक्य बिन्दुसार के संरक्षकों में से एक था और उसने १६ नगरों[1] के राजाओं व शासकों को समाप्त कराके राजा को पूर्वी व पश्चिमी घाटों के समस्त भूभाग का मालिक बना दिया था।" बहुत से इतिहासकार उक्त भूभाग पर विजय-प्राप्ति के प्रसंग में ही दक्षिण-विजय[2] का उल्लेख करते हैं। किन्तु, हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि चन्द्रगुप्त के समय में ही मौर्य-साम्राज्य का विस्तार सुराष्ट्र से बंगाल तक हो चुका था। तारानाथ द्वारा किये गये उल्लेख का केवल इतना ही अर्थ है कि मौर्यों ने विद्रोह का दमन किया था। इसके अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ में बिन्दुसार का नाम दक्षिण-विजय[3] के साथ सम्बद्ध नहीं मिलता। चाहे १६ नगरों को अपनी अधीनता में करने की बात सही हो या ग़लत, हमें दिव्यावदान[4] में यह उल्लेख मिलता है कि बिन्दुसार के समय में तक्षशिला में विद्रोह हुआ था और उसे दबाने के लिए सम्राट् (बिन्दुसार) ने अशोक को भेजा था।

राजकुमार अशोक जब अपनी सेना के साथ तक्षशिला के पास पहुँचा तो वहाँ के निवासी राजकुमार से मिलने आये और उन्होंने राजकुमार से कहा कि न तो आपसे, और न सम्राट् बिन्दुसार से ही हमारा कोई विरोध है। हम तो केवल उन दुष्ट मंत्रियों (दुष्टामात्याः) के विरोधी हैं जो कि हमारा अपमान करते हैं। अशोक के कलिंग-अभिलेख[5] में भी मौर्य-साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों में सरकारी अधिकारियों के अत्याचारों का उल्लेख है। महामात्रों को सम्बोधित करते हुए सम्राट् कहता है—

"सभी प्रजाजन मेरे शिशु हैं। जैसे मैं अपने बच्चों के बारे में इच्छा करता हूँ कि वे इहलोक तथा परलोक, दोनों में ही सभी प्रकार की समृद्धि का उपभोग

---

१. क्या ये नगर, १६ महाजनपदों की राजधानियाँ थे ?

२. देखिये स्मिथ, *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 149; *JRAS*, 1919, p. 598; जायसवाल-कृत *The Empire of Bindusar*, *JBORS*, II, 79 ff.

३. देखिये सुब्रामणियम्, *JRAS*, 1923, p. 96—"मेरे गुरु के गुरु ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'संगम' में लिखा है कि चन्द्रगुप्त के पुत्र ने 'तुलुनाद' की स्थापना की थी, कदाचित् तुलियन (तुलि-बिन्दु)।"

४. Cowell Neil का संस्करण, p. 371.

५. देखिये स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, p. 194-95.

करें, वैसे ही मैं अपने प्रजाजनों के बारे में भी सोचता हूँ। आप लोग इस सत्य को पूर्णरूपेण नहीं समझते।[1] कुछ लोग संयोगवश इसकी ओर ध्यान दे देते हैं, किन्तु वह भी पूर्णतः नहीं केवल आंशिक रूप से ही। साम्राज्य को पूर्ण व्यवस्थित रखने के लिए इस सिद्धांत की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये। पुनश्च—फिर यदि किसी को कारावास का दण्ड या अन्य यातनाएँ दी जाती हैं और वह कारावास अकारण ही रहता है तो इससे बहुत से दूसरे लोगों को भी दुःख होता है। ऐसे मामलों में आपको न्याय[2] करना चाहिए और वह भी धार्मिकता के नियमों के आधार पर होना चाहिए। मैं हर पाँचवें वर्ष ऐसे लोगों (महामात्रों) को भेजूंगा, जो सरल और नम्र प्रकृति के होंगे तथा जीवन की मान्यताओं का सम्मान करेंगे। ऐसे लोग मेरे आदेशों के अनुसार मेरे उद्देश्यों को कार्यान्वित करेंगे।[3] फिर भी जो लोग उज्जैन भेजे जायँगे, वे तीन वर्ष से अधिक वहाँ न रहेंगे। इसी प्रकार तक्षशिला में भी (३ वर्ष के लिये ही) महामात्र भेजे जायँगे।"

तक्षशिला ने राजकुमार अशोक की अधीनता स्वीकार कर ली। मौर्य-राजकुमार ने उसके बाद स्वाश राज्य (बर्नफ़ के अनुमार खश राज्य) में प्रवेश किया।[4]

---

१. "तुम नहीं समझते कि मेरा उद्देश्य कहाँ तक पहुँचा" (हल्ट्ज, *Inscriptions of Ashoka*, p. 95)।

२. "न्याय करते समय ऐसा भी होता है कि किसी एक व्यक्ति को कठोर दण्ड अथवा कारावास भी मिल जाता है। ऐसी दशा में उस आज्ञा को रद्द करते हुए एक दूसरी आज्ञा भी दे दी जाती है, जबकि अन्य व्यक्ति सजा काटते रहते हैं। ऐसी दशा मे आप सब लोगों को निष्पक्ष होकर कार्य करना चाहिये।" (हल्ट्ज, p. 96)।

३. "मै हर पाँचवें वर्ष एक महामात्य भेजा करूँगा जो भयंकर तथा कठोर न होकर नम्रतापूर्वक जाँच करेगा कि न्याय-अधिकारी इस ओर ध्यान देते हैं अथवा नहीं, तथा मेरी आज्ञानुसार ही काम होता है या नहीं।" (हल्ट्ज, p. 97)।

४ देखिये दिव्यावदान, p. 372. खश की पुष्टि तारानाथ से भी होती है (*IHQ*, 1930, 334)। खशों के लिये देखिये *JASB*, अतिरिक्त संख्या 2, 1899।

परराष्ट्र-नीति

यूनानियों के प्रति सम्राट् बिन्दुसार ने शान्तिपूर्ण नीति अपनाई। प्राचीन ग्रन्थकारों[1] के अनुसार सीरिया के राजा ने अपना राजदूत मौर्य-सम्राट् के पास भेजा था। राजदूत का नाम डेमेकस (Deimachos) था। इतिहासकार प्लिनी[2] के अनुसार मिस्र के राजा फ़िलाडेलफ़स (२८५-२४७ ई०पू०) ने भी अपना राजदूत यहाँ भेजा था। उसका नाम डायोनीसस था। डॉ० स्मिथ के अनुसार यह अनिश्चित है कि मिस्री राजदूत ने सम्राट् बिन्दुसार को अपना परिचय-पत्र आदि (Credentials) दिया, या राजकुमार अशोक को। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि यूनानी और लैटिन लेखकों ने चन्द्रगुप्त और अमित्रघात का नाम तो लिया है किन्तु इन लेखकों ने अशोक का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। यह एक दुर्बोध्य तथ्य है कि जिन बाहरी राजदूतों के लेखों का बाद के इतिहासकारों ने प्रयोग किया है, यदि वे अशोक के समय भी भारत आये थे तो उन्होंने इस तीसरे महान् मौर्य-सम्राट् का उल्लेख क्यों नहीं किया ? पैट्रोकिल्स[3] नामक व्यक्ति ने भारतीय समुद्रों में काफ़ी यात्रा की और काफ़ी भौगोलिक तथ्यों का संकलन किया, जिनका स्ट्रैबो तथा अन्य इतिहासकारों ने यथेष्ठ प्रयोग किया है। पैट्रोकिल्स—सेल्युकस तथा उसके लड़के के यहाँ राजकर्मचारी था। एथेनिओस ने सम्राट् बिन्दुसार तथा सीरिया के राजा एन्टिओकोस के बीच हुई एक घटना का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि बिन्दुसार अपने समकालीन यूनानी राजाओं से समता तथा मैत्री का व्यवहार करता था। हेजसैण्डर के आधार पर हमें पता चलता है कि एक बार बिन्दुसार ने एन्टिओकोस को पत्र लिखा—"मेरे लिए मीठी शराब, सूखा अंजीर तथा एक झूठा तार्किक क्रय करके भेज दो।" एन्टिओकोस ने जवाब दिया—"हम आपको अंजीर और शराब तो भेज देगें, किन्तु यूनान में तार्किकों को बेंचने पर प्रतिबन्ध है।"[4] इस सम्बन्ध में डायोडोरस

१. जैसे, स्ट्रैबो।

२. मैक्रिंडल-कृत *Ancient India as Described in Classical Literature*, p. 108.

३. स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, p. 19.

४. देखिये मैक्रिंडल-कृत *Inv. Alex.*, p. 409. हल्ट्ज-कृत, अशोक, p. xxxv. दर्शनशास्त्र में बिन्दुसार की रुचि थी, इसकी पुष्टि अजीव-परिव्राजक के सम्बन्ध से भी होती है (दिव्यावदान, 370 f)। देखिये स्तम्भ-लेख VII की प्रथम पंक्ति।

का यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि पाटलिपुत्र का राजा यूनानियों को बहुत चाहता था और एक बार आयम्बोलस नामक एक व्यक्ति राजा के दरबार में लाया भी गया था। डियोन क्रिसस्टम ने कहा है कि भारतीयों ने होमर की कविताओं का अपनी भाषा में अनुवाद[1] कर लिया है और उसे खूब डूबकर गाते हैं। बाद के युग में गर्ग और वराहमिहिर ने भी इस तथ्य की पुष्टि की है कि खगोल-विद्या[2] की जानकारी के लिए यूनानियों का भारत में सम्मान होता था।

बिन्दुसार का परिवार

अपने बाद सिंहासनारूढ़ होने वाले अशोक के अलावा भी राजा बिन्दुसार के कई लड़के थे। अशोक ने अपने जिस पाँचवें अभिलेख (Fifth Rock Edict) मे धर्ममहामात्रों[3] के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है, उससे यह भी पता चलता है कि अशोक के कई भाई और बहनें थीं। दो भाइयों, यथा सुसीम और विगतशोक[4] का नाम दिव्यावदान में आया है। सिंहली क्रॉनिकल में भी इन दोनों राजकुमारों का उल्लेख मिलता है, किन्तु भिन्न-भिन्न नामों के साथ। वहाँ पहले को सुमन तथा दूसरे को तिष्य कहा गया है। सुसीम (सुमन) सम्राट् बिन्दुसार का ज्येष्ठ पुत्र और अशोक का सौतेला भाई था। विगतशोक (तिष्य) बिन्दुसार का सबसे छोटा बेटा तथा अशोक का सगा भाई था। अशोक और तिष्य दोनो चम्पा[5] की एक ब्राह्मण-कन्या के पुत्र थे। ह्वेनसांग ने अशोक के एक भाई का नाम 'महेन्द्र' लिखा है। सिंहली सामग्री के आधार पर महेन्द्र

---

१. देखिये मैक्रिंडल-कृत, *Anc. Ind.*, p. 177; ग्रोट, XII, p. 169—सम्भवत: कोई नाटक झेलम-तट पर खेला गया था।

२. बृहत्संहिता, II, 14. Aristoxenus and Eusebius के अनुसार चौथी शताब्दी ई०पू० में ही यूनान में भारतीय मौजूद थे तथा उन्होंने सुकरात से दर्शनशास्त्र पर तर्क-वितर्क किया था (देखिये रॉलिन्सन की टिप्पणी जिसे 'अमृत बाजार पत्रिका' 22. 11. 36, p. 17 पर उद्धृत किया गया है)।

३. धर्म तथा कर्त्तव्य के प्रचार के लिये नियुक्त उच्च पदाधिकारी।

४. P. 369-73; देखिये अशोक, तृतीय संस्करण, p. 247 ff.

५. आर० एल० मित्रा (*Sanskrit Buddhist Literature of Nepal*, 8) तथा स्मिथ के अनुसार अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी था। Bigandet, II, 128 में अशोक तथा तिस्सा की माता का नाम धम्मा बताया है।

को अशोक का पुत्र कहा गया है। संभव है कि चीनी यात्री ने महेन्द्र[1] और विगतशोक, दोनों की ही कहानियों को एक में मिला दिया हो।

पुराणों के अनुसार २५ वर्ष के शासन के बाद बिन्दुसार की मृत्यु हुई। बौद्ध-ग्रन्थों[2] में इस अवधि को २७ या २८ वर्ष माना गया है। बिन्दुसार की मृत्यु २७३ वर्ष ईसापूर्व[3] में हुई।

३. अशोक-शासन के प्रारम्भिक वर्ष

दिव्यावदान तथा सिंहली क्रॉनिकल इस बात को स्वीकार करते हैं कि बिन्दुसार की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के लिए संघर्ष (भाइयों की हत्यायें तक) हुए हैं। कहा जाता है कि अशोक ने अपने सबसे बड़े सौतेले भाई को राधगुप्त की मदद से गद्दी से उतारा और गद्दी पर बैठने के बाद राधगुप्त को उसने अपना अग्रामात्य (प्रधान मंत्री) बनाया। डॉक्टर स्मिथ[4] का कहना है कि अशोक के राज्याभिषेक में चार वर्ष[5] (२६९ ई०पू० तक) का विलम्ब हुआ। इससे सिद्ध है कि उसका उत्तराधिकार विवादग्रस्त था और उसका बड़ा भाई सुसीम उसका प्रतिद्वन्द्वी था। अपने 'अशोक'[6] नामक ग्रन्थ में डॉ० स्मिथ लिखा है कि "यह सम्भव है कि अशोक का उत्तराधिकार विवादग्रस्त रहा हो और उसके लिए काफ़ी खून-खराबा हुआ हो, किन्तु उत्तराधिकार-सम्बन्धी संघर्ष का कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मिलता।" डॉक्टर जायसवाल[7] ने अशोक के राज्याभिषेक-सम्बन्धी विलम्ब के बारे में स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि "ऐसा लगता है कि मौर्य-काल में राज्याभिषेक के लिए युवराज का २५ वर्ष का होना

---

१. देखिये स्मिथ-कृत, अशोक, तृतीय संस्करण, p. 257.

२. हल्ट्ज़ का मत है कि बर्मी परम्पराओं के अनुसार बिन्दुसार ने २७ वर्षों तक राज्य किया, जबकि बुद्धघोष ने 'सामन्त-पासादिका' में महावंश से सहमत होते हुए राज्य की अवधि २८ वर्ष बताई है।

३. देखिये स्मिथ-कृत, अशोक, p. 73.

४. देखिये *Oxford History of India*, p. 93.

५. गेगर द्वारा अनूदित महावंश, p. 28.

६. तृतीय संस्करण।

७. *JBORS*, 1917, p. 438.

एक शर्त थी।[1] शायद इसीलिए अशोक के राज्याभिषेक में ३ या ४ वर्ष का विलम्ब हुआ।" किन्तु, यह दलील सीधे-सादे तौर पर नहीं स्वीकार की जा सकती। उदाहरणार्थ, महाभारत में लिखा है कि विचित्रवीर्य जब बालक ही था और युवक भी नहीं हो पाया था, तभी सिंहासनारूढ़ हुआ था।

विचित्रवीर्यञ्च तदा बालम् अप्राप्त यौवनम्
कुरुराज्ये महाबाहुर्भ्यषिचदनन्तरम्।[2]

डॉक्टर स्मिथ[3] उन सिंहली कथाओं को मूर्खतापूर्ण बताते हैं, जिनमें कहा गया है कि अशोक ने अपने कई भाइयों की हत्या की थी, क्योंकि उसके शासन में १७वें या १८वें वर्ष में भी उसके कई भाई-बहन जीवित थे। अशोक इन सबों की भी चिन्ता करता था। हमें स्मरण रखना चाहिये कि अशोक के पाँचवें अभिलेख में उसके जीवित भाइयों के परिवारों का उल्लेख मिलता है। कहने का मतलब यह नहीं कि उसके सभी भाई स्वतःजीवित थे, किन्तु इसके विपरीत इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उसके भाई मृत ही हो चुके थे। हमारी राय में पाँचवाँ अभिलेख सिंहली तथ्यों की प्रामाणिकता या उसकी अविश्वसनीयता, कुछ भी नही सिद्ध करता। चौथे अभिलेख में अशोक ने स्वयं अपने परिजनों के अप्रत्याशित व्यवहार तथा उनके द्वारा जीवों की हत्या का उल्लेख किया है।

डॉक्टर स्मिथ के शब्दों में "अशोक के शासन के प्रथम चार वर्षों को भारतीय इतिहास का अन्धकारमय काल कह सकते हैं। इस काल के कतिपय सीमित तथा कुछ असीमित तथ्यों के आधार पर निरर्थक अटकलबाजियों से कोई फ़ायदा नही है।"

अपने पूर्वजों[4] की तरह अशोक ने भी 'देवनांपिय' की उपाधि धारण की।

---

१. अन्य प्रकार के भी 'अभिषेक' थे, जैसे युवराज, कुमार, सेनापति आदि के देखिये महाकाव्य तथा कौटिल्य (अनुवाद, p. 377, 391)।

२. महाभारत (I. 101. 12) के आदि-पर्व के अनुसार सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग में दत्तामित्र तथा यवन का राज्य था, अतः इसकी तिथियाँ अशोक तथा खारवेल से अधिक दूर नही हो सकती। परिशिष्टपर्वन् (IX, 52) में देखिये सम्प्रति-द्वितीय तथा अमा-द्वितीय (पूर्वी चालुक्य) का उल्लेख।

३. देखिये *EHI*, तृतीय संस्करण, p. 155.

४. देखिये शिलालेख, VIII, कालसी, शाहबाजगढ़ी, तथा मानसहर-लेख।

उसने अपने को 'देवनांपिय पियदसि'[1] कहा है। अशोक का नाम प्रायः साहित्य में आता है। इसके अतिरिक्त नासिक-अभिलेख तथा जूनागढ़ के महाक्षत्रप रुद्रदामन (प्रथम) अभिलेख में भी 'अशोक' नाम मिलता है। मध्यकालीन शिलालेखों, जैसे कुमारदेवी के सारनाथ-शिलालेख में, 'धर्माशोक' शब्द मिलता है।

अपने शासन के प्रथम तेरह वर्षों में अशोक ने मौर्य-साम्राज्य की परम्परागत नीति का ही अनुसरण किया। अर्थात्, अशोक ने देश के अन्दर अपने साम्राज्य के विस्तार तथा विदेश में दूसरे देशों से मैत्रीपूर्ण व्यवहार की नीति अपनाई। सेल्युकस से हुए युद्ध के बाद से मौर्यों की परराष्ट्र-नीति प्रायः यही रही। चन्द्रगुप्त तथा बिन्दुसार की तरह अशोक भी देशी शक्तियों के लिए आक्रामक तथा विदेशी शक्तियों के लिए मित्र रहा है। राजदूतों के आदान-प्रदान तथा तुषास्फ़[2] जैसे यवनों को भी राजपद देने आदि के उदाहरण विदेशियों से मौर्यों की मैत्री के परिचायक हैं। भारत के अन्दर अशोक एक महान् विजेता था। दिव्यावदान में स्वश (खश ?) राज्य को हराने तथा तक्षशिला के विद्रोह का दमन करने का श्रेय राजकुमार अशोक को दिया गया है। अपने शासन के तेरहवें वर्ष (राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद) अशोक ने कलिंग पर विजय प्राप्त की। अशोक के समय में कलिंग राज्य का ठीक-ठीक विस्तार ज्ञात नही हो सका है। यदि संस्कृत महाकाव्यों तथा पुराणों पर विश्वास किया किया जाय तो कलिंग राज्य उत्तर में वैतरणी नदी[3], पश्चिम[4] में अमरकण्टक तथा दक्षिण[5] में महेन्द्रगिरि तक फैला हुआ था।

तेरहवे अभिलेख में कलिंग-युद्ध का विवरण तथा उसके परिणाम का उल्लेख मिलता है। हम पहले ही देख चुके है कि कलिंग का कुछ हिस्सा नन्द-काल में मगध राज्य का एक अंग था। तब फिर अशोक को इसे पुनः जीतने

१. हमने देखा है कि 'पियदर्शन' की उपाधि कभी चन्द्रगुप्त ने भी धारण की थी (देखिये भण्डारकर-कृत, अशोक, p. 5; हल्ट्ज, *CII*, Vol. I, p. xxx)।

२. योन (Yona) धम्मारक्खिता (Dhammarakthita) द्वारा किये गये कार्यों को भी देखिये (महावंश, अनुवाद, p. 82)।

३. महाभारत, III, 114, 4.

४. कूर्म पुराण, II, 39. 9; वायु पुराण, 77, 4-13.

५. रघुवंश, IV, 38-43; VI, 53-54.

की क्या आवश्यकता पड़ी ? इस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर हो सकता है, और वह यह कि नंद-वंश के पतन के बाद कलिंगवालों ने मगध से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। यदि बिन्दुसार के समय देश भर में व्यापक विद्रोह की बात सही है तो यह असम्भव नहीं कि तक्षशिला की तरह कलिंग ने भी मगध की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया हो। मेगास्थनीज़ द्वारा दिये गये विवरणों के आधार पर इतिहासकार प्लिनी[1] की पुस्तक में कहा गया है कि चन्द्रगुप्त के समय में भी कलिंग एक स्वतंत्र राज्य के रूप में था। ऐसी स्थिति में बिन्दुसार के समय में किसी विद्रोह का प्रश्न ही नहीं उठता। इतिहासकार प्लिनी के अनुसार, "कलिंग जाति के लोग समुद्रतटीय प्रदेश में रहते थे और कलिंग की राजधानी का नाम पार्थलिस था। युद्धकाल में कलिंग के राजा की ६० हज़ार पैदल, १ हज़ार घुड़सवारों तथा ७ सौ की गजसेना[2] राज्य की रक्षा करती थी।"

मेगास्थनीज़ के समय से लेकर अशोक के समय तक सम्भवतः कलिंग के राजा ने अपनी सेना काफ़ी बढ़ा ली थी, क्योंकि अशोक से हुई कलिंग की लड़ाई में हताहतों की संख्या ढाई लाख से अधिक पहुँच गई थी। यह हो सकता है कि इन हताहतों में केवल लड़ने वाले सिपाही ही न शामिल रहे हों, वरन् बहुत से सीधे-साधे लोगों की भी हत्यायें की गई हों। मगध की सीमाओं से जुड़ा हुआ कलिंग जैसा एक बड़ा राज्य हो और उसके पास युद्ध के लिए एक

१. देखिये *Ind. Ant.*, 1877, p. 338.

२. जैसा कि सम्भव है, यदि आसपास का प्रदेश अश्मक, कलिंग में सम्मिलित था तो पोतालो तथा परयाली एक ही थे। कलिंग तथा उसकी प्रारम्भिक राजधानी दन्तकूर तथा तोसाली के लिये देखिये सिलवेन लेवी-कृत *Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde*, जे० ए० जूलियट-सितम्बर 1923; तथा *Indian Antiquary*, 1926 (मई), p. 94, 98. कलिंग नाम सम्पूर्ण मलय में प्रयुक्त था; अतः इससे सिद्ध होता है कि कलिंग ने हिन्दू-सभ्यता फैलाने में बड़ी सहायता की थी। प्राचीन राजधानी (पलौरा-दन्तपुर-दन्तकूर) से *Apheterion* दूर नहीं था, जहाँ गोल्डेन पेनिनशुला को जाने वाले जलयान रुक कर समुद्र में जाया करते थे। चीनियों ने जावा को हेलिंग (पोलिंग, कलिंग) नाम दिया था (Takakusu, *I-tsing*, p. xlvii)। जावा एक द्वीप था, जिसे तोलेमी(150 ई०) संस्कृत नाम से जानता था तथा जिसका वर्णन रामायण में भी आया है। कलिंग का सीलोन के साथ क्या सम्बन्ध था, इस विषय में देखिये *IA*, VIII, 2, 225.

विशाल सेना भी हो—क्या मगध के शासक इस स्थिति के प्रति उदासीन रह सकते थे ? मगध ने अपने ऊपर भी खतरा मोल लेते हुए, खारबेल के समय में कलिंग की ताक़त आज़मायी।

तेरहवें अभिलेख में हमने जाना कि अशोक ने कलिंग पर चढ़ाई करके उसे अपने राज्य में मिला लिया था। "डेढ़ लाख आदमी क़ैद किये गये थे, एक लाख लोगों की हत्या की गई थी और इससे भी कई गुना आदमी मरे थे।" केवल लड़ाई करनेवालों को ही नहीं, वरन् ब्राह्मणों, साधुओं तथा गृहस्थों को भी इस युद्ध के फलस्वरूप हिंसा, हत्या तथा स्वजनों से वियोग का शिकार होना पड़ा था।

विजित राज्य कलिंग मगध का ही एक अंग हो गया तथा राजवंश का कोई राजकुमार वहाँ का वाइसराय (या उपराजा) नियुक्त कर दिया गया। कलिंग के लिए नियुक्त उपराजा पुरी ज़िले के तोसाली[1] नामक स्थान पर रहता था। सम्राट् की ओर से कलिंग की सीमा पर रहने वाले आदिवासियों तथा वहाँ के निवासियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, इस सम्बन्ध में दो आदेश भी जारी किये गये थे। ये दोनों आदेश (शिलालेख के रूप में) धौली[2] और जौगड़[3] नामक स्थानों पर सुरक्षित हैं। ये आदेश तोसाली और समापा[4] नामक स्थानों पर रहनेवाले महामात्रों तथा उच्च अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए लिखे गये थे। इन्हीं आदेशों में सम्राट् ने अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ की थीं—"सभी प्रजाजन मेरी सन्तान हैं।" उसने अपने अधिकारियों को निर्देश दिया था कि जनता के साथ न्याय किया जाना चाहिये।

१. तोसाली (तोसल) एक देश तथा एक नगर, दोनों का ही नाम था। लेवी का मत है कि गंडव्यूह का संकेत दक्षिणापथ में 'अमित-तोसल' के जनपद की ओर है। दक्षिणापथ में ही तोसल नगर है। ब्राह्मण-साहित्य में तोसल कोशल (दक्षिण) से सम्बन्धित बताया गया है तथा उसे कलिंग से भिन्न कहा गया है। तोलेमी के भूगोल में भी तोसलेई का उल्लेख मिलता है। कुछ मध्यकालीन लेखों (*Ep. Ind.*, IX, 286; XV, 3) में दक्षिण तथा उत्तर तोसल का भी उल्लेख मिलता है।

२. पुरी में।

३. गंजम में।

४. समापा की स्थिति जानने के लिये देखिये *Ind. Ant.*, 1923, p. 66, ff.

मगध तथा समस्त भारत के इतिहास में कलिंग की विजय एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके बाद मौर्यों की जीतों तथा राज-विस्तार का वह दौरा समाप्त हो गया जो बिम्बिसार द्वारा अङ्ग राज्य को जीतने के बाद से आरम्भ हुआ था। इसके बाद एक नये युग का सूत्रपात हुआ। यह युग शान्ति, सामाजिक प्रगति तथा धार्मिक प्रचार का युग था। इसके साथ-साथ इसी समय राजनीतिक स्थिरता तथा कदाचित् सेना की अकुशलता भी दिखाई पड़ने लगी। सैनिक-अभ्यासों तथा क़वायद-परेडों के अभाव में फ़ौज की सामरिक भावना दिन-ब-दिन मरने-सी लगी। यहीं से सैन्य-विजय तथा दिग्विजय[1] का युग समाप्त हुआ तथा आध्यात्मिक विजय और 'धम्म-विजय' का युग आरम्भ हुआ।

यहाँ अशोक के साम्राज्य तथा उसके विभिन्न भागों के प्रशासन के विषय में कुछ जानने के लिए हमें थोड़ा रुकना पड़ेगा। यहीं से अशोक ने नयी नीति अपनाई है।

अशोक के अनुसार मगध, पाटलिपुत्र, खलटिक-पवत (बाराबर हिल्स), कौशाम्बी, लुम्मिनी गाँव, कलिंग (तोसाली, समापा तथा खेपिंगल-पवत या जौगढ़ चट्टान भी), अटवी (मध्य भारत का वन्य प्रदेश जिसे बौद्ध-ग्रन्थों में आलवी भी कहा गया है), स्वर्णगिरि, इसिला, उज्जयिनी तथा तक्षशिला अशोक-कालीन मौर्य-साम्राज्य के अङ्ग थे।

तक्षशिला के आगे 'अन्तियको योन राजा' के देश तक मौर्य-राज्य फैला हुआ था। अन्तियको यवन राजा या एन्टिओकोस-द्वितीय सीरिया का राजा था। यही २६१-२४६ ई० पू० में सीरिया का राजा था। इसके अलावा यवनों, कम्बोजों, तथा गान्धारों से आबाद शाहबाजगढ़ी[2] तथा मानसहरा[3] तक मौर्य-साम्राज्य फैला था। अभी तक यवन राज्य की सही-सही सीमा ज्ञात नहीं हो सकी है। महावंश में इस राज्य का मुख्य नगर अलसन्द माना गया है। कनिंघम व अन्य इतिहासकारों ने इस शहर को अलेक्जेन्ड्रिया (कापिश के पश्चिम

---

१. देखिये, सर-सके विजये (बूहलर, हल्ट्ज़ की पुस्तक *Inscriptions of Ashoka*, p. 25 पर उद्धृत)।

२. पेशावर ज़िले में।

३. हज़ारा ज़िले में।

बेगराम) माना है, जो क़ाबुल[1] के पास यूनानी आक्रमणकारी सिकन्दर द्वारा बसाया गया था। कम्बोज देश कश्मीर के पुन्छ नामक स्थान के समीप राजापुर या राजौर प्रदेश में पड़ता था। इसी राज्य में काफ़िरिस्तान व आसपास के पड़ोसी क्षेत्र भी शामिल थे। मौर्य-काल में गान्धार देश सम्भवतः सिन्ध के पश्चिम में था। इसके अन्तर्गत उत्तरापथ[2] प्रान्त की राजधानी तथा मौर्य-उपराजा द्वारा शासित तक्षशिला नहीं आता था। स्वात और क़ाबुल नदियों[3] के संगम पर बसा पुष्करावती नगर गान्धार की राजधानी था। कुमारस्वामी ने मीर ज़ियारत या बला हिसार को ही प्राचीन पुष्करावती माना है।

ह्वेनसांग के लेखों[4] तथा कल्हण की राजतरंगिणी[5] से यह सिद्ध हो गया है कि कश्मीर अशोक के साम्राज्य के ही अन्तर्गत था। कल्हण ने कहा है— "धर्मात्मा अशोक ने पृथ्वी पर राज्य किया। इस राजा ने अपने को पापमुक्त करके जिन-मत ग्रहण किया। इसका राज्य शुष्कलेत्र और वितस्तात्र तक फैला हुआ था, जहाँ कि अशोक के अनेक स्तूप भी थे। वितस्तात्र नगर के धर्मारण्य-विहार में अशोक ने एक चैत्य बनवाया था, जिसकी ऊँचाई तक मनुष्य की दृष्टि जा न सकती थी। इसी तेजस्वी राजा ने श्रीनगरी बसायी। इस पापरहित सम्राट् ने विजयेश्वर के मंदिर के सीमेण्ट के बने अन्दरूनी हिस्से को हटवाकर उसकी जगह पत्थर जड़वाया। इसने विजयेश्वर के मंदिर में तथा उसके समीप दो मंदिर बनवाये, जो अशोकेश्वर कहलाते थे।" अशोक जिन अर्थात् बौद्धधर्म का अनुयायी था तथा उसने अनेक स्तूपों का निर्माण कराया था। इन तथ्यों से उसके अस्तित्व के बारे में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। कल्हण ने स्वयं लिखा है कि उसने उक्त विवरण अपने पहले के विद्वान् छविल्लाकर से प्राप्त किया है।

कालसी, रुमिन्देई तथा निगालि सागर के अशोक-स्तम्भों पर खुदे लेखों से

१. देखिये कनिंघम, *AGI*, 18; गेगर, महावंश, 194; सम्भवतः योन राज्य सम्पूर्ण अथवा *Paropamisadae* प्रान्त का कुछ भाग था।

२. देखिये कलिंग-लेख; दिव्यावदान, p. 407.

३. देखिये *Carm. Lec.*, 1918, p. 54; *Indian and Indonesian Art*, 55.

४. Watters, Vol. I, pp. 267-71.

५. I. 102-106.

सिद्ध है कि देहरादून ज़िला तथा तराई-क्षेत्र भी अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत था। ललितपाटन और रामपुरवा नामक स्थानों पर जो इमारतें मिलती हैं, उनसे सिद्ध होता है कि नेपाल की घाटी तथा चम्पारन ज़िला भी अशोक के अधीन था। अशोक के १३वें अभिलेख से हिमालय के क्षेत्रों में भी अशोक के शासन का उल्लेख मिलता है। इस अभिलेख में नाभक के नाभपंथियों की चर्चा आई है। सम्भवतः नाभक को ही फ़ाहियान[1] ने 'ना-पी-क्या' लिखा है। यह स्थान कपिलवस्तु[2] से दक्षिण-पश्चिम की ओर १० मील की दूरी पर है तथा क्रकुच्चनन्द बुद्ध का जन्म-स्थान है।

बूहलर के अनुसार तेरहवें अभिलेख में आदिवासियों की विश तथा वज्रि नामक दो जातियों का उल्लेख है। अन्य इतिहासकार बूहलर के मत से सहमत नहीं हैं। वे 'विसयम्ही' को 'राजा की भूमि' के रूप में स्वीकार करते है। इस लिए अशोक के अभिलेख में 'वज्रि' तथा 'विसात' के बारे में कोई ऐसा विवरण नहीं मिलता जो संशयरहित कहा जा सके।

प्राचीन इतिहासकारों की कृतियों से पता चलता है कि गंगारीद (Gandaridae), अर्थात् बंगाल भी औग्रमैन्य (Agrammes) के समय से ही मगध

१. Legge, 64.

२. ब्रह्म (वैवर्त ?) पुराण के अनुसार नाभिकपुर उत्तर कुरु प्रदेश में है (देखिये हुल्ट्ज़, *CII*, Vol. I, p. xxxixn)। श्री एम० गोविन्दपाई (*Aiyangar Com.*, Vol. 36) हमारा ध्यान नभकानन (दक्षिणी लोगों) की ओर आकर्षित करते हैं। इसका उल्लेख महाभारत (vi, 9, 59) में भी मिलता है। मौर्य-साम्राज्य की उत्तरी सीमा के सम्बन्ध में हमारा ध्यान दिव्यावदान (p. 372) के एक पैरा की ओर आकृष्ट है, जिसमें बताया गया है कि अशोक ने स्वश (खश ?) प्रदेश को विजय कर लिया था। चीनी यात्रियों की जनश्रुति के अनुसार (Watters, *Yuan Ghwang*, II, p. 29) अशोक के राज्य-काल में तक्षशिला से निर्वासित व्यक्ति खोतेन के पूर्व में जा बसे थे।

३. वंग के विषय में प्राचीन उल्लेख के लिये लेवी-कृत *Pre-Aryen et Pre-Dravidien dans l'Inde* देखिये। इसके अर्थ के लिये 'मानसी-ओ-मर्मवाणी', श्रावण, 1336 देखिये। बहुत से विद्वान् इसका उल्लेख ऐतरेय आरण्यक में भी पाते है, परन्तु इसमें संदेह है। बोधायन ने इसे अपवित्र देश कहा है तथा पतञ्जलि ने इसे आर्यावर्त्त से अलग किया है। परन्तु, मनुसंहिता के पूर्व ही इसे आर्य देश बना लिया गया था, क्योंकि आर्यावर्त्त की पूर्वी सीमा सागर तक जा चुकी थी। जैनियों के 'प्रज्ञापना' में अंग तथा वंग को आर्यों का ही एक वर्ग बताया गया है। वंग का सर्वप्रथम उल्लेख कदाचित् नागार्जुनिकुण्ड-लेख में मिलता है।

साम्राज्य का एक अङ्ग था । औग्रसैन्य नंदवंश[1] का अन्तिम राजा था । इतिहासकार प्लिनी के अनुसार गंगा का समस्त तटवर्ती भाग[2] पालिबोथ्रि, अर्थात् पाटलिपुत्र के शासकों के ही अधीन था । दिव्यावदान[3] में कहा गया है कि अशोक के समय तक बंगाल मगध-साम्राज्य का ही एक अङ्ग था । ह्वेनसांग को भी ताम्रलिप्ति और कर्णसुवर्ण (पश्चिमी बंगाल), समतट (पूर्वी बंगाल) तथा पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) में अशोक के स्तूप देखने को मिले हैं । कामरूप (असम) कदाचित् मौर्य-साम्राज्य के बाहर पड़ता था । चीनी यात्री ह्वेनसांग को उस देश में अशोक के स्तूप देखने को नहीं मिले ।

हमने ऊपर देखा है कि एक बार दक्षिण में तिनवेल्लो[4] ज़िले की पोदियिल पहाड़ियों तक मौर्य-सेनायें पहुँच गई थीं । अशोक के समय में मौर्य-साम्राज्य की सीमा नेल्लोर के पास पेनार नदी तक ही रह गई थी । तमिल राज्यों को मौर्य-साम्राज्य का 'प्रचन्त' या सीमावर्त्ती राज्य कहा गया है । यह राज्य मौर्य-साम्राज्य से अलग माना गया है । मौर्य-सीमा सम्भवतः दक्षिण में मैसूर के चितालद्रुग ज़िले तक ही थी । दक्षन का समूचा भाग इसिला और समापा के महामात्रों—सुवर्णगिरि[5] और तोसली द्वारा शासित था । इनके अतिरिक्त 'अटवि'

१. देखिये मैक्रिंडिल-कृत, *Inv. Alex.*, pp. 221, 281.

२. देखिये *Ind. Ant.*, 1877, 339; *Megasthenes and Arrian* (1926), pp. 141-42.

३. P. 427; देखिये स्मिथ-कृत, *Ashoka*, तृतीय संस्करण, p. 225. महास्थान-लेख में, जिसका सम्बन्ध मौर्य-काल से है, अशोक का कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

४. श्री एस० एस० देसीकर (*IHQ*, 1928, p. 145) का विचार है कि वेंकट पर्वत ही वह अंतिम स्थान था, जहाँ तक मौर्य पहुँचे थे । प्रो० एन० शास्त्री ने तमिल भाषा में प्रचलित जनश्रुति पर अधिक बल दिया है (देखिये *ANM*, pp. 253 ff) ।

५. इस नगर की स्थिति के सम्बन्ध में थोड़ा-सा संकेत कोंकण तथा खानदेश के अंतिम मौर्यों, जो कि दक्षिणी वायसराय के उत्तराधिकारी थे, के लेखों में मिलता है (देखिये *Ep. Ind.*, III, 136) । चूँकि ये मौर्य-लेख थाणा ज़िले (*Bomb. Gaz.*, Vol. I. Part II, p. 14) के उत्तर में 'वाद' नामक

या वन्य अधिकारी[1] भी शासन-संचालन में मदद करते थे। किन्तु, साम्राज्य के अन्दर नर्मदा, गोदावरी तथा महानदी के दोनों किनारों के आसपास के कुछ क्षेत्र ऐसे थे, जो मौर्य-साम्राज्य की सीमा के बाहर माने जाते थे। अशोक ने वनों, देश के भीतर (विजित) तथा सीमाओं पर रहनेवालों को वर्गीकृत किया था। सीमाओं को 'अन्ता-अविजित' माना जाता था और उनके बारे में विशिष्ट व्यवहार के शिला-लेख प्राप्त हुए हैं। इसके अलावा आन्ध्र, पालिदाम,(पालदास, पारिंदास) भोज, रठिक भी साम्राज्य के निवासी थे। इन लोगों के साथ 'विजितों' तथा 'अन्ता-अविजितों' के मध्य का व्यवहार किया जाता था। डॉ० डी० आर० भण्डारकर तथा अन्य विद्वानों का कहना है कि पाँचवें तथा तेरहवें अभिलेख में जो 'पितिनिक' या 'पेत्त-निक' शब्द आया है, उसे कोई स्वतन्त्र-सा नाम न समझकर रिष्टिक या रठिक (पाँचवें अभिलेख) व भोज का विशेषण मानना चाहिये। इन विद्वानों ने हमारा ध्यान अंगुत्तर निकाय[2] के उस अंश की ओर आकृष्ट किया है, जिसमें 'पेत्तनिक' शब्द आया है और इसका अर्थ वह व्यक्ति कहा गया है जो पिता[3] की सम्पत्ति का उपयोग करता हो। डॉक्टर बरुआ उक्त मत से सहमत नहीं हैं। वे पाली उद्ध-रणों व बुद्धघोष का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'रठिक' और 'पेत्तनिक' दो अलग-अलग उपाधियाँ थी।

स्थान पर तथा खानदेश (उपर्युक्त, 284) में बाघली नामक स्थान पर मिले हैं, अतः स्वर्णगिरि सम्भवतः उसी के आसपास कहीं था। आश्चर्य की बात है कि सोनगिर नामक स्थान खानदेश में है। हुल्ट्ज़ (*CII*, p. xxxviii) के अनुसार स्वर्णगिरि हैदराबाद राज्य में मस्की से दक्षिण तथा विजयनगर के भग्नावशेष के उत्तर में स्थित कनकगिरि ही है। 'इसिला' सम्भवतः 'सिद्दापुर' का प्राचीन नाम हो सकता है।

१. देखिये Edict XIII.

२. देखिये III, 76, 78 तथा 300 (P.T.S.)।

३. देखिये, *Ind. Ant.*, 1919, p. 80; हुल्ट्ज़, *Ashoka*, 10; *IHQ*, 1925, 387. अन्य विद्वान् पितिनिकों को पैठानक अथवा पैठन का निवासी बताते हैं। कुछ तो उन्हें पैठन के सातवाहन-शासकों की संतति बताते हैं (देखिये Woolner, *Ashoka Text and Glossary*, II, 113 तथा *JRAS*, 1923, 92; बरुआ, *Old Bramhi Inscriptions*, p. 211)।

ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्र लोगों का उल्लेख आया है। इस ग्रन्थ में भोजों का नाम दक्षिण[1] के शासक के रूप में आया है। इतिहासकार प्लिनी ने मेगास्थनीज के विवरण का हवाला देते हुए कहा है कि आन्ध्रों के राजा के पास १ लाख पैदल, २ हजार घुड़सवार तथा १ हज़ार गजसेना थी।[2] आन्ध्र की पहले की राजधानी (अन्धपुर) तेलवाह नदी के तट पर स्थित थी। डॉक्टर भण्डारकर के अनुसार मद्रास प्रेसीडेंसी का तेल या तेलंगिरि स्थान ही आन्ध्र की प्राचीन राजधानी थी। लेकिन, यह मत कोई सुनिश्चित नहीं है।[3] इतिहासकार बूहलर ने पुलिन्दों को ही पालिदास[4] माना है, क्योंकि नर्मदा (रेवा) तथा विन्ध्य-क्षेत्र से पुलिन्दों का सम्पर्क रहा—

पुलिन्द-राजा-सुन्दरी नाभिमण्डल निपीत सलिला (रेवा)।[5]
पुलिन्दाविन्ध्य पुषिका (?) वैदर्भा दण्डकैः सह।[6]
पुलिन्दाविन्ध्य मूलिका वैदर्भा दण्डकैः सह।[7]

१. भोज के दूसरे अर्थों के लिये देखिये महाभारत, आदि पर्व, 84, 22; *IA*, V. 177; VI, 25-28; VII. 36. 254.

२. *Ind. Ant.*, 1877, p. 339.

३. P. 92 *ante*; जैसा कि Mayidavolu तथा अन्य अभिलेखों से ज्ञात होता है, ऐतिहासिक काल में आंध्रों को कृष्णा तथा गुण्टूर जिले में पाया गया था। आंध्र अथवा आंध्रापथ की, प्राचीन लेखों में उल्लिखित, राजधानी धन्नकड़, अमरावती के निकट थी। भट्टिप्रोलू-लेख (२०० ई०पू०) के अनसार कुबिरक सर्वप्रथम ज्ञात शासक था। हाल ही में ब्राह्मी भाषा का एक लेख (R. E. of Ashoka) करनूल जिले में मिला है (*IHQ*, 791, 1931, 817 ff; 1933, 113 ff; *IA*, Feb., 1932, p. 39)। यह लेख मद्रास प्रेसीडेन्सी के आंध्र भाग में पड़ा है। हाल में ही प्राप्त अशोक के लेखों में करनूल जिले के येरागुडी लेखों के अतिरिक्त दो नये शिलालेख हैदराबाद राज्य के दक्षिण-पश्चिम कोने में स्थित कोपबाल में पाए गए हैं। ये लेख गवीमठ तथा पाल्किगुण्डु पर्वत पर मिले हैं। ये छोटे-छोटे शिलालेख की कोटि के हैं।

४. देखिये हल्ट्ज-कृत, अशोक, 48 (n 14)।

५. सुबन्धु-कृत 'वासवदत्ता'।

६. मत्स्य पुराण, 114, 48.

७. वायु पुराण, 55, 126.

पुलिन्दों की राजधानी पुलिन्दनगर भिल्सा से अधिक दूर नहीं थी। संभवतः पुलिन्द नगर ही मौजूदा रूपनाथ है, जहाँ अशोक का प्रथम अभिलेख (Minor Rock Edict I)[१] प्राप्त हुआ था।

इतिहासकार हल्ट्ज शाहबाजगढ़ी के पालिदास को पुलिन्द नहीं मानता, क्योंकि गिरनार और कालसी से हमें जो सामग्री प्राप्त हुई है, उसमें 'पालद' और 'पारिन्द' शब्द आये हैं। इनसे वायु पुराण[२] के पारदस याद आते हैं। यह शब्द हरिवंश[३] तथा बृहत्संहिता[४] में भी आया है। उक्त ग्रन्थों में उक्त जातियों को शक, यवन, कम्बोज, पह्लव, खश, माहिशिक, चोल तथा केरल जातियों की तरह जंगली जातियों की श्रेणी में रखा गया है। इन्हें 'मुक्तकेश' भी कहा गया है। ऊपर की जातियों में से कुछ उत्तर की हैं और शेष दक्षिण भारत की। अशोक के शिलालेखों में आन्ध्र-जाति का उल्लेख आया है। इससे लगता है कि मौर्य-काल में आन्ध्र लोग दक्कन में रहते थे। किन्तु, यही इस प्रश्न को सुलझा हुआ नहीं मान लेना चाहिये। इस संबंध में यह जान लेना जरूरी है कि पारदा नदी का उल्लेख नासिक के शिलालेख में मिलता है। इस नदी को सूरत जिले में पारदी या पार[५] नदी कहते हैं।

भोज और रठिक जाति के लोग सातवाहन-काल[६] के महारठी तथा महाभोज जाति के पूर्वज थे। भोज लोग बरार[७] तथा रठिक लोग महाराष्ट्र या

---

१. महाराज हस्तिन के नवग्राम-लेख (सन् ५१७ ई०) में 'पुलिंद-राज-राष्ट्र' का उल्लेख मिलता है। यह देश परिव्राजक राजाओं के राज्य, अर्थात् आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में दब्बाल राज्य में स्थित था (*Ep. Ind.*, xxi, 126)।

२. अध्याय ८८, 128; देखिये Paradene in Gedrolic (मैक्रिंडल, तोलेमी 1927), 320.

३. I, 14.

४. XIII, 9.

५. देखिये रैप्सन, *Andhra Coins*, lvi; पार्जिटर के अनुसार पारदस उत्तर-पश्चिम में था (*AIHT*, p. 268) देखिये परादेन, Gedrosia (Ptolemy, 1927 का संस्करण); 320 और परैतकाई (*Ind. Elex*, 44)।

६. स्मिथ-कृत, अशोक, तृ० सं०, pp. 169-70.

७. भोज-कथा, अमरावती में भातकुली।

समीपवर्त्ती क्षेत्रों[1] के रहने वाले थे। भोज का अस्तित्व बाद का है तथा तटवर्त्ती प्रदेश (कनारा देश) के सामन्तों से इनके वैवाहिक सम्बन्ध थे।

पश्चिम में अशोक का राज्य अरब सागर तक फैला हुआ था। साम्राज्य के अन्तर्गत सभी अपरान्त[2] (राज्यों के संघ) शामिल थे। इन संघों में सुराष्ट्र प्रमुख है, जिसका राज्य यवनराज तुषास्फ़ देखता था तथा गिरिनगर (गिरनार) जिसकी राजधानी थी। डॉक्टर स्मिथ का कहना है कि यवनराज का नाम ऐसा है कि वह फ़ारस का मालूम होता है। किन्तु, उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार तो यवन धम्मदेव, शक उषवदात (ऋषभदत्त), पर्थियन सुविशाख तथा कुशान वासुदेव सभी मूलतः भारत के ही थे, और हिन्दू थे। यदि यूनानियों तथा अन्य विदेशियों ने भारतीय नामों का अनुकरण किया तो इसमें ऐसा अजब क्या कि उनमें से कुछ ने ईरानी तौर भी अपना लिया; तब यह नहीं कहा जा सकता कि तुषास्फ़ यूनानी नहीं, वरन् फ़ारस का निवासी था।

इतिहासकार रैप्सन[4] के विचारानुसार गान्धार, कम्बोज, यवन, रिष्टिक, भोज, पितिनिक, पालदास तथा आन्ध्र लोग न तो अशोक के साम्राज्य के अन्तर्गत थे और न उनकी प्रजा थी। यह अवश्य था कि वे अशोक के प्रभाव में थे। किन्तु, यह तर्क इसलिए नहीं स्वीकार किया जा सकता कि अशोक के पंचम् अभिलेख[5] के अनुसार उपर्युक्त जातियों में से ही कई अशोक के यहाँ महामात्र के पद पर थे। अनेक की सज़ाएँ (कारावास या प्राणदण्ड) घटाये जाने के भी उल्लेख मिलते है। तेरहवें अभिलेख से ऐसा लगता है कि ये लोग राज-विषय (राजा के राज्य) के अन्तर्गत कर लिये गये थे तथा इन्हें सीमावर्त्ती जातियो

---

१. रामायण (IV, 41. 10) के अनुसार विदर्भ (बरार) तथा महिषक (मैसूर) या नर्मदा घाटी के बीच ऋष्टीका स्थान था। 'रठिका' उपाधि के रूप में भी प्रयुक्त होती थी। इस अर्थ में इसका प्रयोग येरगुड़ी-लेख में हुआ है (*Ind. Culture*, I, 310; *Aiyangar Com. Vol.*, 35; *IHQ*, 1933, 117)।

२. सूरपारक, नासिक आदि (मार्कण्डेय के अनुसार, pp. 57, 49-52)।

३. देखिये *IA*, 1919, 145, *EHVS*, द्वितीय संस्करण, p. 28-29.

४. *CHI*, pp. 514-15.

५. "वे बंदियों की (आर्थिक) सहायता करने, उनकी बेड़ियाँ तोड़ने तथा उन्हें मुक्त करने में लगे थे।" (देखिये हुल्ट्ज़-कृत, अशोक, p. 33)।

से अलग भी माना गया है। एन्टिओकोस के राज्य की यूनानी तथा दक्षिण की तमिल (नीच) जाति को सीमावर्त्ती जाति माना गया है। किन्तु, एक ओर जहाँ हम रैप्सन के विचारों को नहीं स्वीकार कर पाते, दूसरी ओर हमें डॉक्टर डी० आर० भण्डारकर[1] की यह बात भी स्वीकार करने में कठिनाई मालूम होती है कि अशोक के समय में भारत में यवन तथा अन्य जातियों के सामन्त नहीं थे। किन्तु, यवनराज तुषास्फ़ के उदाहरण से डॉक्टर भण्डारकर की बात तथ्य-हीन सिद्ध हो जाती है, क्योंकि अशोक के समय में अन्य धर्ममहामात्रों की तरह तुषास्फ़ भी एक अर्धस्वशासन-प्राप्त सामन्त था, यद्यपि उसके कार्यकलाप सम्राट् के ही अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत रहते थे।

अशोक के साम्राज्य-विस्तार की चर्चा के बाद हम उसके शासन-प्रबन्ध की ओर दृष्टि डालते हैं। अपने पूर्वजों की तरह अशोक ने भी मंत्रि-परिषदीय सरकार (council government) क़ायम रखी। तीसरे तथा छठे अभिलेख में परिषा या 'परिषद्'[2] शब्द का उल्लेख आया है। सेनार्ट ने 'परिषद्' का अर्थ संघ लगाया है, किन्तु बूहलर ने 'परिषद्' का अर्थ किसी जाति या सम्प्रदाय की कमेटी समझा है। किन्तु, डॉक्टर के० पी० जायसवाल ने अभिलेख में आये 'परिषा' शब्द का अर्थशास्त्र में आये 'मंत्रि-परिषद्' का समानार्थी कहा है। शिलालेखों से यह भी सिद्ध होता है कि अशोक ने अपने पूर्वजों की तरह प्रान्तीय सरकारों की व्यवस्था को भी क़ायम रखा। तोसली, स्वर्णगिरि, उज्जयिनी तथा तक्षशिला के प्रान्त राजवंश के युवराजों (कुमाल या अयपुत)[3] द्वारा शासित थे।

---

१. अशोक, 28.

२. 'महावस्तु' में इनकी तुलना 'सराजिका परिषा' से कीजिये (देखिये सेनार्ट, Vol. III, pp. 362, 392)। भिन्न-भिन्न प्रकार के परिषा के लिये अंगुत्तर निकाय (1, 70) देखिये।

३. 'आयपुत्त' अथवा 'आर्यपुत्र' का प्रयोग सम्भवतः राजवंश के लिए था। यह भास के 'बालचरित' से भी सिद्ध होता है, जहाँ किसी भाट ने वासुदेव को 'आर्यपुत्र' कह कर सम्बोधित किया है। पं० टी० गणपत्ति शास्त्री आगे कहते हैं कि 'स्वप्ननाटक' में महाराज उदयन को सम्बोधित करते समय वासवदत्ता के के पिता के सेवक ने आदर व्यक्त करने के लिये 'आर्यपुत्र' का प्रयोग किया है (*Introduction to the Pratima Natak*, p. 32)। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, अशोक ने अपने राज्य के एक प्रान्त में यवन को गवर्नर (*episkopos*) नियुक्त किया था।

सम्राट् तथा राजकुमारों की राजकाज में सहायता के लिए निम्न वर्ग की समितियाँ (निकाय) होती थीं—

१. महामात्र[1] तथा अन्य मुख्य
२–३. राजूक और रठिक
४. प्रदेशिक या प्रादेशिक
५. युत[2]
६. पुलिसा
७. पटिवेदका
८. वचभूमिका
९. लिपिकार
१०. दूत
११. आयुक्त और कारनक

साम्राज्य के प्रत्येक नगर या ज़िले[3] में महामात्रों की एक समिति रहती थी। शिलालेखों में पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, तोसली, समापा, स्वर्णगिरि और इसिला[4]

---

१. अर्थशास्त्र, pp. 16, 20, 58, 64, 215, 237-239; राजशेखर, *KM*, *XLV*, 53.

२. अर्थशास्त्र (pp. 59, 65, 199) मे 'युक्तों' का उल्लेख मिलता है। देखिये रामायण, VI, 217, 34; महाभारत, II, 56, 18; मनु, VIII, 34; शान्ति-पर्व (82, 9-15) मे 'राजयुक्तों' का उल्लेख भी मिलता है।

३. जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सम्पूर्ण राज्य अनेक प्रान्तों (दिशा, देश आदि) में विभाजित था। हर प्रान्त ज़िलों में विभक्त था, जहाँ ज़िला-अधिकारी देखभाल करता था। ज़िलों के अतिरिक्त दुर्ग के आसपास की भूमि को 'कोट्ट-विषय' कहते थे (हल्ट्ज, p. xl.)। प्रत्येक पुर या नगर में प्रशासकीय विभाग तथा देहातों मे जनपद होते थे, जो ग्रामों को मिला कर बनते थे। जनपद का मुख्य अधिकारी 'राजूक' कहलाता था। 'प्रादेशिक' तथा 'रठिक' उपाधि से ज्ञात होता है कि 'प्रदेश', 'रट्ठ' या 'राष्ट्र' भी होते थे।

४. कुछ विद्वानों के अनुसार श्रावस्ती के महामात्रों का उल्लेख गोरखपुर के निकट राप्ती के तट पर स्थित सोहगौरा-ताम्रलेख में मिलता है, परन्तु इसकी वास्तविक तिथि का बोध नही है (देखिये हार्नेल, *JASB*, 1894, 84; फ्लीट, *JRAS*, 1907, 523 ff; बरुआ, *Ann. Bhand. Or. Res. Inst.*, xi, i (1930), 32 ff; *IHQ*, 1934, 54 ff; जायसवाल, *Ep. Ind.*, xxii, 2)।

के महामात्रों का उल्लेख आया है। कलिंग के अभिलेख में हमें कुछ ऐसे महा-मात्र मिलते हैं जो 'नागलक' और 'नगल-वियोहालक' कहे जाते थे। अभिलेखों का 'नागलक' या 'नगल-वियोहालक' अर्थशास्त्र[१] के 'नागरक' व 'पौर-व्यावहारिक' के समान लगता है। इसमें सन्देह नहीं कि ये लोग न्याय-प्रशासन[२] का संचालन करते रहे होंगे। प्रथम स्तम्भ-अभिलेख में 'अन्त महामात्र' शब्द आया है, जो अर्थशास्त्र[३] के 'अन्तपाल' तथा स्कन्दगुप्त-कालीन 'गोप्तृ' शब्द के समक्ष लगता है। कौटिल्य के अनुसार अन्तपाल को कुमार, पौर-व्यावहारिक, मंत्रि-परिषद् के सदस्य या राष्ट्रपाल[४] के बराबर वेतन मिलता था। बारहवें अभिलेख में 'इथीभक महामात्र' शब्द का उल्लेख आया है जो महाकाव्यों[५] के स्त्री-अध्यक्ष (guards of ladies) शब्द से मेल खाता है।

जहाँ तक 'राजूक' शब्द का प्रश्न है, डॉक्टर स्मिथ के अनुसार यह पद कुमारों[६] के नीचे का होता था तथा इसका अर्थ तत्कालीन गवर्नर था।

अशोक-कालीन शिलालेखों के 'राजूक' शब्द को बूहलर ने जातकों[७] के रज्जूक तथा 'रज्जुगाहक अमच्च' (खेत नापने वाला या रस्सी पकड़ने वाला) का समानार्थी माना है। चतुर्थ स्तम्भ-अभिलेख के अनुसार राजूकों की नियुक्ति एक-दो लाख की जनसंख्या पर होती थी तथा इनका मुख्य कार्य जनपदों मे शांति व व्यवस्था क़ायम रखना था। अशोक ने राजूकों को किसी को दंडित या पुरस्कृत करने का अधिकार दे रखा था। राजूकों द्वारा अशोक को दिये गये अधिकारों से स्पष्ट है कि ये लोग न्याय-प्रशासन का काम देखते थे। तृतीय

---

१. pp. 20, 143f; देखिये अन्तिगोनिद-क्षेत्र में नगर-प्रमुख (टार्न, *CBI*, 24)।

२. देखिये नगर-धान्य व्यावहारिक, p. 55; नागलक का कार्य कार्यकारिणी का भी हो सकता है, जैसा कि अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है (II, अध्याय 36)।

३. P. 20, 247.

४. P. 247.

५. रामायण, II, 16, 3; महाभारत, IX, 29, 68, 90; XV, 22, 20; 23, 12; देखिये अर्थशास्त्र का अंतर्वंशिक।

६. अशोक, तृतीय संस्करण, pp. 94.

७. फ़िक-कृत तथा एस० मित्रा द्वारा अनूदित *The Social Organisation in North-East India*, p. 148-151.

अभिलेख तथा चतुर्थ स्तम्भ-अभिलेख के अनुसार इनका यूत तथा रठिक लोगों से भी सम्बन्ध था। इतिहासकार स्ट्रैबो[1] के कथनानुसार, अशोक के समय में न्यायाधीशों की एक ऐसी श्रेणी थी जो भूमि तथा नदियों की पैमाइश वग़ैरह करती-कराती थी। ये लोग शिकारियों पर भी नियंत्रण रखते थे और लोगों को उनके अपराध के अनुसार दण्डित करते थे। ऐसे लोगों की एक श्रेणी प्राचीन काल के मिस्र में भी थी। सम्भवतः जातकों[2] में इसी श्रेणी की ओर संकेत करते हुए 'रज्जुगाहक अमच्च' शब्द लिखा गया है। स्ट्रैबो के उपर्युक्त कथन का भी सम्भवतः यही आधार है। अर्थशास्त्र[3] में अफ़सरों की एक श्रेणी को 'चोर रज्जुक' कहा गया है, किन्तु केवल 'रज्जुक' शब्द का उल्लेख स्वतन्त्र रूप से कहीं नहीं मिलता।

सेनार्ट तथा बूहलर के अनुसार 'प्रदेशिक' या 'प्रादेशिक' उन अधिकारियों को कहा जाता था, जो विभिन्न स्थानों के स्थानीय शासक होते थे। डॉक्टर स्मिथ ने ज़िले के प्रधान अधिकारी को उक्त नाम दिया था। कल्हण की 'राजतरंगिणी'[4] में भी 'प्रादेशिकेश्वर' शब्द आया है। इतिहासकार हल्ट्ज़ ने 'प्रदेशिक' या 'प्रादेशिक शब्द की तुलना राजतरंगिणी के 'प्रादेशिकेश्वर' शब्द से की है। तृतीय अभिलेख में उक्त वर्ग को भी राजूकों में शामिल कर लिया गया है। उक्त अभिलेख में 'अनुसंयान अध्यादेश' का भी उल्लेख है। अर्थशास्त्र[5] में 'प्रदेष्ट्रि' शब्द आया है। थॉमस ने 'प्रदेशिक' या 'प्रादेशिक' शब्द को 'प्रदेश' से उद्भूत तथा 'प्रदेष्ट्रि' का ही एक पर्याय माना है। 'प्रदेष्ट्रि' नामधारी अधिकारियों का मुख्य कार्य बालि-प्रग्रह (कर वसूलना या हठी सामन्तों का दमन), कण्टक-शोधन (फ़ौजदारी मुक़दमों को देखना), चोर-मार्गण (चोरों का पता लगाना) तथा 'अध्यक्षानाम् अध्यक्ष पुरुषानाम् च नियमनम्' (सुपरिण्टेण्डेन्टों तथा उनके सहायकों की देखरेख) आदि था। इन लोगों का सम्पर्क एक ओर समाहर्तृ-वर्ग से होता था, तो दूसरी ओर ये गोपों, स्थानिकों व अध्यक्षों से भी

१. देखिये H. &. F., Vol., III, p. 103.

२. देखिये मित्रा, फ़िक, p. 148-149.

३. P. 234.

४. IV, 126.

५. संघमुख्य एवं अन्यों के साथ 'इरदा' लेख में 'प्रदेष्ट्रि' का भी उल्लेख मिलता है।

सम्बन्धित थे। यह भी बहुत उचित नहीं है कि 'प्रदेशिकों' या 'प्रादेशिकों' को एक मात्र 'संवाद-प्रेषक'[1] ही मान लिया जाय। सबसे सहज दृष्टि तो यह है कि इन लोगों को अधीनस्थ शासक (subordinate governors) मान लिया जाय। कुछ इसी प्रकार के अधिकारी (Nomarchs, Hyparchs and Meridarchs) यूनानी राज्य-प्रशासन की व्यवस्था में भी होते थे।

जहाँ तक 'युत' या 'युक्त' वर्ग के लोगों का प्रश्न है, मनु[2] ने इन्हे 'प्रण-ष्टाधिगत द्रव्य' (lost property which was recovered) का सुपुर्दगार कहा है। अर्थशास्त्र में इसे 'समुदय' या राजकीय धन[3] कहा गया है, जिसे वे लोग अनुचित ढंग से हस्तगत कर रहे हों। हुल्ट्ज़ के अनुसार ये लोग एक प्रकार के सचिव थे जो महामात्रों के कार्यालयों में सरकारी आदेशों को क़ानून-बद्ध करने के लिए नियुक्त किये जाते थे। 'पुलिसा' (या एजेंट) शब्द भी अर्थ-शास्त्र[4] के पुरुष या राजपुरुष शब्द का समानार्थी है। हुल्ट्ज़ इन लोगों को 'गूढ़ पुरुष' कहता है तथा इनकी तीन श्रेणियाँ—उच्च, निम्न तथा मध्यम[5]—निश्चित करता है। इन लोगों के अधिकार में काफ़ी जनता[6] तथा राजूक लोग होते थे। 'पटिवेदका' (या रिपोर्टर) शब्द अर्थशास्त्र[7] के १६ वें अध्याय के 'चर' शब्द का समानार्थी लगता है। 'वचभूमिक' शब्द सम्भवतः अर्थशास्त्र के २४ वे अध्याय[8] में आये 'व्रज' के इन्सपेक्टर या निरीक्षक के अर्थ में आता था। लिपि-कार लोग राजाज्ञाओं के लेखक होते थे। द्वितीय अभिलेख में 'चापड़' नामक एक लिपिकार का भी नाम आता है। तेरहवें अभिलेख में 'दूत' शब्द आया है

---

१. देखिये अर्थशास्त्र, pp. 142, 200, 217, 222. जैसा कि ऊपर बताया गया है, 'प्रदेष्ट्रि' का उल्लेख 'इरदा' लेख मे भी मिलता है (देखिये *Ep. Ind.*, xxii, 150 ff.

२. VIII, 34.

३. देखिये महाभारत, ii, 5, 72

४. P. 59, 75.

५. महाकाव्य में भी तीन प्रकार के पुरुषो का उल्लेख मिलता है (देखिये महाभारत, ii, 5, 74)।

६. देखिये स्तम्भ-लेख, VII.

७. P. 38

८. P. 59-60.

जो आजकल के राजदूत का ही समानार्थी रहा होगा। यदि कौटिल्य पर विश्वास किया जाय तो दूतों को तीन श्रेणियों में विभाजित माना जाना चाहिये—

निसृष्टार्थाः (Plenipotentiaries), परिमितार्थाः (Charges d'Affaires) तथा शासनहार (Conveyor of royal writ)[१] ये, दूतों की तीन श्रेणियाँ थीं। कलिंग के अभिलेख में 'आयुक्त' शब्द का भी उल्लेख आया है। मौर्य-शासन के बाद के युग तथा सीथियन काल में 'आयुत्त' गाँवों के एक प्रकार के अधिकारी[२] हुआ करते थे। गुप्त-काल में ये लोग एक विषय या ज़िले[३] के इन्चार्ज होते थे। इसके अलावा ये लोग राजा द्वारा जीते गये धन के संग्रहकर्त्ता भी होते थे। इस अधिकारी का पूरा नाम 'आयुक्त पुरुष'[४] था। इसी को 'पुलिसा' भी कहा गया होगा। अशोक के येरागुड़ी-अभिलेख में मिलने वाला 'कारणक' शब्द शायद तत्कालीन न्याय-अधिकारी, अध्यापक तथा क्लर्कों के लिए प्रयुक्त होता था।

---

१. इसी के साथ (हर्षचरित, उच्छ्वास, II, p. 52) 'शासनहार' की तुलना 'लेखहारक' से की जाये।

२. लूडर्स, सूची-संख्या 1347.

३. *Ep. Ind.*, XV, No. 7, 138.

४. फ़्लीट, CII, pp. 8, 14.

५. देखिये करणिक, अभिलेख तथा लेखाकर्म अधिकारी (*IHQ*, 1935, 586)। सातवीं शताब्दी के लेखों में 'करण' शब्द का अर्थ 'अधिकरण' (विभागीय) या (प्रवासी, 1350, B.S. श्रावण, 294)। महाभारत, (ii, 5, 34) में करणिक का अर्थ एक आलोचक के अनुसार 'अध्यापक' है। लेख में यह अधिकारी कुमारों को आदेश देता हुआ कहता है—'तुम्हें धर्म के प्रति जागरूक रहना चाहिए।'

८ | मौर्य-साम्राज्य : धम्म-विजय का युग और उसका ह्रास

१. कलिंग-युद्ध के बाद अशोक

चक्कवत्ती अहुं राजा जम्बुसण्डस्स इस्सरो
मुद्धाभिसित्तो खत्तियो मनुस्साधिपति अहुं
अदण्डेन असत्थेन विजेय्य पठविम् इमम्
असाहसेन धम्मेन समेन मनुसासिया
धम्मेन राज्जम् कारेत्वा अस्मिम् पठविमण्डले

—अंगुत्तर निकाय ।

हम पहले ही देख चुके हैं कि कलिंग के युद्ध ने मगध तथा भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया है। अपने शासन के प्रारम्भिक १३ वर्षों तक अशोक ने अपने पूर्वजों, यथा बिन्दुसार, महापद्म तथा चन्द्रगुप्त की नीति का ही अनुसरण किया। इसके शासन में भी आरम्भ में देशों को जीतने, अपने राज्य में मिलाने तथा विद्रोहों के दमन का सिलसिला चलता रहा। किन्तु, कलिंग के युद्ध ने नया पट-परिवर्त्तन किया। इस नये युग में वस्सकार और कौटिल्य का राजदर्शन अधिक दिनों तक जीवित न रह सका और देश की राजनीति शाक्य ऋषि के उपदेशों से अनुशासित होने लगी। उक्त नये पट-परिवर्त्तन के बारे में कुछ भी कहने के पूर्व तत्कालीन भारत की धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के पूर्वपट एक दृष्टि डाल लेना जरूरी है।

अशोक के समय में भारत की जनता विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त थी। मुख्य-मुख्य सम्प्रदाय इस प्रकार थे—

१. रूढ़िवादी देवपूजक।[1]

१. मौर्य-काल में पूजे जाने वाले देवताओं मे पतंजलि ने मुख्य रूप से शिव, स्कन्द तथा विशाख का उल्लेख किया है।

२. आजीविक या गोसाल मंखलिपुत्त के अनुयायी।[1]

३. निर्ग्रन्थ या जैन, ये लोग निगण्ठ नाटपुत्त के अनुयायी थे। निगण्ठ नाटपुत्त को महावीर या वर्द्धमान भी कहा जाता है।

४. शाक्यमुनि गौतम बुद्ध के अनुयायी।

५. दूसरे सम्प्रदाय, जिनका उल्लेख सातवें स्तम्भ-अभिलेख में मिलता है।

भारत के तत्कालीन समाज के बारे में चतुर्थ अभिलेख में निम्न विवरण मिलता है—"बहुत पहिले से या कई सौ वर्ष पूर्व से पशुबलि में वृद्धि थी। सम्बन्धियों, ब्राह्मणों तथा साधुओं के साथ भी अप्रत्याशित व्यवहार किया जाता था।"[2] राजा लोग कहने के लिए तो विहार-यात्राओं पर निकलते थे, किन्तु इन यात्राओं के दौरान उनकी आखेट-क्रीड़ायें तथा अन्य प्रकार के मनोरंजन सम्पन्न होते थे।[3]

---

१. मंखलिपुत्त नामक गुरु का जन्म सावत्थी या श्रावस्ती के निकट सरवण में हुआ था। जैन-ग्रन्थकार इस गुरु को अकुलीन परिवार तथा निकृष्ट चरित्र का मानते हैं। बौद्ध-ग्रन्थकार भी इसके अनकूल नहीं लिखते। वस्तुतः वह छठी शताब्दी ईसापूर्व का एक प्रमुख सोफ़िस्ट तथा महावीर का सहयोगी था। समरणफल सुत्त में 'आजीविक' ने कहा है कि किसी भी चीज़ की प्राप्ति मानवी प्रयास पर ही नहीं निर्भर करती। कोई भी शक्ति ऐसी नहीं है। सभी जीव नियति के आश्रित है (*Dialogues of the Buddha*, I, p. 71; Barua, *The Ajivikas*, 1920, p. 9)। दिव्यावदान के अनुसार एक 'आजीव परिव्राजक' बिन्दुसार का ज्योतिषी था (pp. 370 ff)। बारहवीं शताब्दी के एक शिलालेख में आजीविकों पर टैक्स का उल्लेख मिलता है। शिलालेख में यह भी कहा गया है कि उस काल में भी दक्षिण भारत में आजीविक होते थे (See also A. L. Basham; *The Ajivikas*)।

२. देखिये, बिन्दुसार के साथ अजातशत्रु का व्यवहार, विडूडभ द्वारा शाक्यों की हत्या, पिंडोल के प्रति उदयन की निर्दयता तथा नन्दों द्वारा चाणक्य के प्रति दुर्व्यवहार।

३. Tours of Pleasure, Cf. कौटिल्य, p. 332; महभारता,XV. 1. 18.

विहारयात्रासु पुनः कुरुराजो युधिष्ठिरः
सर्वान् कामान् महातेजाः प्रददाव-अम्बिकासुते।

लोग बीमार होने पर तरह-तरह की मनौतियाँ मनाया करते थे।[1] पुत्रों व पुत्रियों के विवाह[2], बच्चों के जन्म तथा यात्राओं के पूर्व लोग कुछ न कुछ मंगल-आयोजन (उत्सव के रूप में) किया करते थे।[3] औरतें तरह-तरह के व्रत, पूजा तथा त्योहार मनाती थीं, जिनमें से अनेक निरर्थक और सारहीन होते थे।[4]

अभिलेखों के अनुसार उस समय ब्राह्मण, कैवर्त्त (केवट भोग) और श्रमण, भिक्षु और भिक्षुणी-संघ तथा वर्ण और आश्रमों की व्यवस्थायें व्यापक रूप से प्रचलित थीं। गुलामों तथा श्रम करने वाले वर्ग की स्थिति कुछ अर्थों में कोई बहुत अच्छी नही थी। स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। बहुविवाह-प्रथा चालू थी। शाही ज़नानख़ानों की महिलाओं के लिए विशेष पहरेदार (स्त्री-अध्यक्ष) होते थे। हम आगे चलकर यह भी देखेंगे कि एक विशेष प्रकार के समाज तथा कुछ त्याज्य कुरीतियों के अलावा, अशोक की राजनीति सफल रही; और मुख्यतया शांति की ही रही, किसी प्रकार के क्रान्तिकारी परिवर्त्तन की नहीं।

अशोक का धर्म-परिवर्त्तन

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने पूर्वजों की तरह अशोक भी देवताओं तथा ब्राह्मणों के प्रति निष्ठावान् था। यदि कल्हण के 'कश्मीर-क्रॉनिकल' पर विश्वास किया गया तो अशोक के इष्ट देवता भगवान् शिव थे। सम्राट् अशोक की नरबलि या पशुबलि में ज़रा भी रुचि नही थी। इसके पूर्व उसके भोजनालय में नित्य स्वादिष्ट खाद्य तैयार करने के लिए पशुओं की हत्या की जाती थी। कलिंग के युद्ध में भारी पैमाने पर नर-संहार की बात हम ऊपर ही पढ़ चुके है। उस महायुद्ध के विषाद एवं रक्तपूर्ण दृश्य से सम्राट् द्रवित हो गया और उसके हृदय में 'अनुशोचन', अर्थात् घृणा, शोक एवं पश्चात्ताप की भावनाएँ पैदा हो गई। इसी समय वह बौद्धधर्म की शिक्षाओं से भी प्रभावित

१. *R. Edict*, VIII.

२. मंगल-उत्सवों के हेतु देखिये जातक नं० 87 तथा 163 (हत्थिमंगल); हर्षचरित, II (p. 27 of Parab's Edition, 1918)।

३. 'आवाह' और 'विवाह' के लिये देखिये महाभारत, V 141. 14; कौटिल्य, VII, 15.

४. R. Edict IX.

हुआ। हमने तेरहवें अभिलेख में पढ़ा है कि कलिंग के साम्राज्य में मिला लिये जाने के बाद सम्राट् ने क़ानूनों का कड़ाई से पालन आरम्भ कर दिया। इस दिशा में उसने 'धर्मशीलन', 'धर्मकमत' (क़ानून के प्रति आस्था) तथा 'धर्मनुशस्ति' का पालन आरम्भ किया।[1]

यद्यपि अशोक ने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया, किन्तु वह देवताओं व ब्राह्मणों का कभी भी विरोधी नहीं था।[2] अन्त समय तक उसने अपने को 'देवानांपिय'—

---

१. महावंश के उल्लेख के अनुसार कुछ इतिहासकारों का कहना है कि अशोक का धर्म-परिवर्त्तन कलिंग-युद्ध के पूर्व ही हो गया था। यह भी हो सकता है कि युद्ध के पूर्व अशोक बुद्ध का एक साधारण उपासक रहा हो, और बाद में उसकी धर्म के प्रति तीव्र आस्था हो गई हो। किन्तु, इस सम्बन्ध में दूसरे सिद्धान्त के प्रतिपादकों का कहना है कि यदि युद्ध के पूर्व अशोक बौद्ध हो गया होता तो यह नया बौद्ध कलिङ्ग के युद्ध में, जहाँ कि असंख्य लोग मारे गये, अपने को न फँसाता। कतिपय अभिलेखों में अशोक को कलिङ्ग के युद्ध से 'संघ' से संबद्ध कहा गया है। कलिङ्ग-युद्ध के बाद तो धर्म में उसकी आस्था और प्रगाढ़ हो गई। इन अभिलेखों में 'ततो पछा अधुना' का उल्लेख आया है। 'पछा' और 'अधुना' के प्रयोग से स्पष्ट है कि कलिङ्ग-युद्ध तथा उसके धर्म-परिवर्त्तन में थोड़े ही समय का अन्तर था। माइनर एडिक्ट्स तथा छठे स्तम्भ-अभिलेख से पता चलता है कि अशोक के राज्यारोहण के १२ वर्ष के बाद तथा उपासक होने के २½ वर्ष से राजाज्ञायें धर्मप्रधान होने लगी थी। इससे सिद्ध होता है कि अशोक का धर्म-परिवर्त्तन राज्याभिषेक के ९½ वर्ष बाद तथा कलिङ्ग-युद्ध के १½ वर्ष के बाद हुआ।

२. शाक्य (रूपनाथ), बुद्ध शाक्य (मस्की), उपासक (सहस्राम्)—See, Hultzsch, *CII*, p. xliv. देखिये कल्हण, राजतरंगिणी I. 102 ff. अशोक निःसन्देह एक बौद्ध था, भाब्रू-अभिलेख से इसकी पुष्टि होती है। अशोक, बुद्ध को 'भगवत' कहता था। अशोक ने बुद्ध की जन्मभूमि तथा उनकी तपोभूमि की तीर्थयात्रा भी की थी। अशोक का कहना था कि बुद्ध ने जो कुछ कहा है, ठीक ही कहा है।...............अशोक सदा 'विनय-समुत्कर्ष' का उपदेशक था।

देवताओं का प्रिय—कहलाने में गर्व का अनुभव किया। उसने ब्राह्मणों के साथ किये गये अत्याचारों को अनुचित बतलाया और उनके साथ उदारता का व्यवहार करने की शिक्षा दी। वह बड़ा ही सहिष्णु था। सम्राट् सभी सम्प्रदाय के लोगों का सम्मान करता था। उसने 'आत्मपासण्ड-पूजा' (अपने ही सम्प्रदाय का सम्मान) के सिद्धान्त को मानने से इनकार कर दिया—विशेष कर जब उससे दूसरे सम्प्रदाय की अवहेलना करने को कहा गया। उसने अपने को 'आजीविक' साधुओं को समर्पित कर अपनी ईमानदारी सिद्ध की। वह देवों, ब्राह्मणों तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था का नहीं, वरन् नर-संहार, उत्सवों की भीड़-भाड़, मित्रों व परिचितों के साथ दुर्व्यवहार का विरोधी था। वह साथियों, सम्बन्धियों, गुलामों, नौकरों, आदि के प्रति अनुदारता का भी कट्टर विरोधी था। वह नहीं चाहता था कि पशुबलि आदि करके अश्लील, निरर्थक तथा उत्तेजना-मूलक समारोह मनाये जायँ।

परराष्ट्र-नीति में परिवर्त्तन

अशोक के धर्म-परिवर्त्तन का प्रभाव उसकी विदेश-नीति पर भी पड़ा। राजा ने घोषणा की कि कलिंग के युद्ध में जितने लोगों की हत्यायें हुई हैं, या जो क़ैद कर लिये गये हैं, यदि उसका सौवाँ या हज़ारवाँ भाग भी अब मारा गया या क़ैद किया गया तो यह सम्राट् के लिए खेद का विषय होगा। यदि किसी के साथ भी किसी तरह की ज़्यादती होती है तो राजा यथासम्भव उसकी सहायता करेगा और उसे आश्रय देगा। कलिंग के प्रथम अभिलेख में अशोक ने अपनी इच्छा प्रकट की है कि साम्राज्य की सीमा पर अभी जो 'अन्ता-अविजित' (स्वाधीन जातियाँ) हैं उन्हें भयभीत नहीं होना चाहिये। उन पर विश्वास किया जाना चाहिये। उनको दुःख नहीं, वरन् सुख दिया जाना चाहिये। सम्राट् के दृष्टिकोण से सत्य की जीत (धम्म-विजय) सबसे बड़ी जीत है। चतुर्थ अभिलेख में सम्राट् ने बड़ी प्रसन्नता से कहा है कि "नगाड़े की प्रतिध्वनि (भेरी-घोष) अब क़ानून की प्रतिध्वनि (धर्म-घोष) के रूप में बदल गई है।" पर, उसने जो कुछ किया, उससे ही वह सन्तुष्ट न हो सका। उसने अपने पुत्रों, पौत्रों आदि से भी युद्धों या विजयों से विरत रहने को कहा (पुत्र पपोत्र मे असु नवम् विजयम् म विजेतवियम्)। यहाँ पर हम देखते हैं कि लड़ाइयों या जीतों (दिग्विजय) की पुरानी नीति छोड़ दी गई और 'धम्म-विजय'

की नीति अपनाई गई।[1] अशोक का यह नीति-परिवर्तन उसकी मृत्यु के बाद पूर्णरूपेण प्रकाश में आया, या उसके राज्याभिषेक के २७वें वर्ष में उसकी नई नीति से स्पष्ट हो सका। बिन्दुसार से लेकर कलिंग के युद्ध तक मगध-साम्राज्य के विकास का युग था। मगध दक्षिणी बिहार में एक छोटा-सा राज्य था और बाद में उसकी सीमाएँ बढ़कर हिन्दूकुश पर्वत और तमिल देश को स्पर्श करने लगी थीं। कलिंग के युद्ध के बाद एक स्थिरता का युग आया, जिसके अन्त में पुनः पट-परिवर्तन हुआ। धीरे-धीरे साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ और वह पुनः उसी स्थिति में पहुँच गया, जहाँ से बिन्दुसार और उनके उत्तराधिकारियों ने उसे आगे बढ़ाया था।

अपने सिद्धान्तों के प्रति पूर्ण निष्ठावान् होने के कारण उसने सीमावर्त्ती प्रदेशों (प्रचन्त, अन्त, सामंत तथा सामीप) को अर्थात् चोल, पांड्य, सतिय-पुत्र, केरलपुत्र, तम्बपन्नि (लंका) और अन्तियको योनराज के राज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाने का प्रयास नहीं किया। अन्तियको योनराज को सीरिया (पश्चिम एशिया) का राजा एन्टिओकोस-द्वितीय थियोस माना गया है। इसके विपरीत अशोक इन राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध ही बनाये रहा।

चोल देश में त्रिचनापल्ली और तंजोर के ज़िले शामिल थे। इस देश से होकर कावेरी नदी बहती थी। एक दक्षिण भारतीय शिलालेख[2] में कहा गया है कि एक बार शिव ने पल्लव-वंश के महेन्द्रवर्मन-प्रथम से प्रश्न किया कि

१. अशोक के अनुसार राजनीति या तलवार की नहीं, वरन् सत्य की विजय ही वास्तविक 'धम्म-विजय' कही जानी चाहिए (*Dialogues of the Buddha*, III, p. 59)। महाभारत में वर्णित विजय की कल्पना कुछ और है (महाभारत, 59, 38-39); हरिवंश (I. 14 21); कौटिल्य (p. 382) और रघुवंश (IV. 43)। एरियन के अनुसार भारतीय राजा न्याय-बुद्धि के कारण भारत की सीमाओं से आगे नहीं बढ़ते थे (*Camb. Hist. Ind., I.* 321)। मेगास्थनीज़ ने भी ऐसा ही मत प्रकट किया है। यहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि 'धम्म-विजय' के समर्थक चक्रवर्त्ती सम्राट् की राजधानी सारनाथ का मुख्य राजचिह्न 'चक्र तथा चिंघाड़ता सिंह' उसकी महत्ता का प्रतीक है (*Cf.* also रामायण, II. 10. 36 : यावदावर्त्तते चक्रम् तावती मे वसुन्धरा, *IC*, XV. 1-4, p. 179 f)।

२. Hultzsch, *SII*, Vol. I, p. 34।

"धरती के एक मंदिर में खड़ा होकर समस्त चोल देश या कावेरी नदी की शक्ति का अवलोकन करना, क्या यह सम्भव है ?"

जब चालुक्य-वंश के पुलकेसिन-द्वितीय ने चोलों को जीतने का प्रयास किया तो कावेरी की लहरों ने आक्रामक के मार्ग में बाधा खड़ी कर दी। चोल प्रदेश की राजधानी उरइयूर (संस्कृत में उर्गपुर) या पुरानी त्रिचनापल्ली थी।[१] इस देश का प्रमुख बन्दरगाह कावेरी के उत्तरी तट पर स्थित था, जिसका नाम काविरीपट्टिनम या पुगार था।[२]

आजकल के मदुरा और तिन्नवेली जिला ही सम्भवतः उस समय का पाण्ड्य देश था। त्रिवांकुर कोचीन राज्य के रामनाड का कुछ दक्षिणी हिस्सा भी इस राज्य में था। पाण्ड्य की राजधानी, कोलकई और मदुरा (दक्षिणी मथुरा) में थी। इस देश से होकर ताम्रपर्णी और कृतमाला या वैगई नदियाँ बहती थीं। कात्यायन ने 'पाण्डु' शब्द से ही 'पाण्ड्य' शब्द की उत्पत्ति माना है। महाभारत तथा कुछ अन्य जातकों में पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ का राजवंश कहा गया है। इतिहासकार तोलेमी के अनुसार 'पाण्डुवी' नाम का देश पंजाब में था। इसमें कोई शक नहीं कि उत्तरी भारत में 'पाण्डु' नाम का एक राजवंश था। 'पाण्ड्य' और 'पाण्डु' के बीच कुछ सम्बन्ध था, इस बात की पुष्टि इस तथ्य से

१. सोरस (चोल) तथा इसके मुख्य शासक के बारे में एलियन का उल्लेख है—"जब यूक्राटीड्स बैक्ट्रियनों पर शासन करते थे, उस समय एक नगर में सोरस नामक एक राजा राज्य करता था। नगर का नाम पेरिमुदा (पीरूमल का शहर) था। इसमें वे मछुए रहते थे, जो प्रातःकाल नौका और जाल लेकर शिकार को निकल जाते थे। उर्गपुर के लिए चोलिक विषय (*Ep. Ind.*, X. 103) देखिए।

२. चोल राज्य तथा अन्य तमिल राज्यों के लिये देखिये—*CHI*, Vol. I, Ch. 24; Smith, *EHI*, Ch. XVI; कनक सभाई पिल्ले, *Tamils, Eiggheen Hundred Years Ago*; कृष्णस्वामी आयंगर, *Beginning of the South Indian History and Ancient India*; के० ए० नीलकंठ शास्त्री, *The Pandyan Kingdom, the Cholas etc*.

३. मैं डॉक्टर बरुआ (*Inscription of Asoka*, II, 1943, p. 232) के मत से सहमत नहीं हूँ कि युधिष्ठिर का वंश, जो कुरु प्रदेश के इन्द्रप्रस्थ पर शासनारूढ़ रहा, उसका पाण्डु के बड़े पुत्र से कोई सम्बन्ध नहीं है।

भी हो जाती है कि उत्तर भारत के शूरसेन राज्य का नगर 'मथुरा' तथा 'पाण्ड्य' की राजधानी 'मदुरा' के नामों में काफ़ी समानता है। मथुरा के राजवंश (शूरसेन) और इन्द्रप्रस्थ के 'पाण्डु' नामक राजवंश के बीच वैवाहिक सम्बन्ध थे और दोनों में काफ़ी घनिष्ठता थी। हेराक्लीज़ और पण्डैया के बारे में मेगास्थनीज़ ने जो कुछ लिखा है उससे भी पाण्डु, शूरशेन तथा पाण्ड्य वंश के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कुछ संकेत मिलता है।[1]

श्री वेंकटेश्वरैयर[2] के मतानुसार, "सत्यव्रत-क्षेत्र" या काँचीपुर ही पुराना सतियपुत्र प्रदेश था। किन्तु, डॉक्टर आयंगर के अनुसार काँचीपुर नगर को ही सत्यव्रत-क्षेत्र कहा जाता था, न कि समूचे देश को। और एक बात यह है कि 'व्रत' शब्द 'क्षेत्र' में नहीं बदल सकता। डॉक्टर आयंगर डॉ० भंडारकर के विचार से सहमत हैं और सतपुत (Satpute) तथा सतियपुत्र के नाम में समानता मानते हैं। इनके मतानुसार मलाबार के तुलु और नायर जैसे मातृ-प्रधान परिवारों की जातियों का ही सामूहिक नाम सतियपुत्र है।[3] डॉक्टर स्मिथ[4] के अनुसार कोयम्बटूर के सत्यमंगलम लोग ही प्राचीन सतियपुत्र के आज प्रतिनिधि बचे हैं। श्री टी० एन० सुब्रामणियम[5] का कहना है कि कोंगु-नाडु प्रदेश कोशर लोगों के शासन में था। ये लोग बड़े ही सत्यप्रिय होते थे। श्री के० जी० शेष अय्यर[6] के अनुसार सतियपुत्र तथा अतियमान का प्रायः एक ही अर्थ है। यह कुटीरैमलाई का प्रधान था और राजधानी तकडूर (मैसूर) में रहता था। श्री पी० जे० थोमा के अनुसार केरलोत्पत्ति के सत्यभूमि-क्षेत्र को ही 'सतियपुत्र' कहते थे। आज के दक्षिण कनारा के केसरगोड तालुक़ तथा मलाबार के कुछ भाग को ही सम्भवतः 'सत्यभूमि' कहा जाता रहा।[7]

---

१. *Ind. Ant.* 1877, p. 249.

२. *JRAS*, 1918, p. 41-42.

३. *JRAS*, 1919; pp. 581-84.

४. *Ashoka*, third ed., p. 161.

५. *JRAS*, 1922, 86.

६. *Cera Kings of the Sangam Period*, 17-18; *Cf.* N. Shastri, *ANM*, 25.

७. *JRAS* (1923, p. 412) में B. A. Saletore किसी भी प्रकार 'केरलोत्पत्ति' के शासन की उपेक्षा करने में प्रवृत्त हैं (*Indian Culture*, I, p.

केरलपुत्र (केटलपुतो या केरा) कूपक (सत्य) के दक्षिणी प्रदेश को कहते हैं। यह प्रदेश मध्य त्रिवांकुर कोचीन (करुनगपल्ली तालुक़) तक फैला हुआ है। इसके दक्षिण में मूषिक[1] का राजनीतिक भाग है। इस भाग में परियार नदी बहती है, जिसे अर्थशास्त्र[2] में सम्भवतः चुरनी नदी कहा गया है। इसी नदी के तट पर कोचीन के पास इस प्रदेश की राजधानी वाञ्ची थी। नदी के मुहाने पर मुज़ीरिस (क्रङ्गनूर) नाम का बन्दरगाह था।

प्राचीन काल में लंका को पारसमुद्र[3] कहा जाता था। इसे ताम्रपर्णी[4] भी

---

668)। लेकिन, Kirfel (*Die Cosmogaphie Der Inder*, 1920, p. 78) का कहना है कि महाभारत (Bk. VI) के 'जम्बूखण्ड' अनुभाग में मूषकों के साथ; और दक्षिणी जनपदों की सूची में भी सतीय (सतीरथ, सनीप) का उल्लेख आया है। दूसरों के विचार के लिए देखिये—*Ind. Cult.*, Vol. II, pp. 549ff; *Aiyangar Com. Vol*, 45-47. M. G. Pai का कहना है कि 'सतिय', और बृहत्संहिता (xiv. 27) और मार्कण्डेय पुराण (58. 37) के 'शान्तिक' एक ही हैं। प्लिनी का 'Setae' (*Bomb. Gaz.*, Gujrat, 533) भी देखिये।

१. *JRAS*, 1923, p. 413.

२. Pp. 75; *Cf.* शुक-संदेश (Aia; *Cera Kings*, 94)।

३. Greek Palaesimundu; रायचौधरी, *Ind. Ant.*, 1919. pp. 195-96; कौटिल्य के अर्थशास्त्र की टीका, Ch. XI; रामायण, VI, 3.21; लंका को 'पारे समुद्रस्य' स्थित कहा गया है।

लॉ की *Ancient Hindu Polity* (p. 87 n.) पढ़ने से मुझे यह पता चलता है कि इस नाम का समुदाय एन० एल० डे ने भी दिया था। 'सातवाहन= शालिवाहन; कताह कडारम किडारम=कन्टोली' निरुक्ति के स्थान पर 'पार-समुद्र=पैलीसिमून्दु (Palaesimundu) कम महत्त्वपूर्ण नहीं है (Dr. Majumdar, सुवर्णद्वीप, 56, 79. 168)।

४. लंका के अन्य नामों के लिये और चक्रवर्ती द्वारा १६२६ में प्रकाशित *Megasthenes and Arrian* (p. 60 n) देखिये। द्वीप के इतिहास के लिये देखिये *Camb. Hist. Ind.*, Ch. XXV; *IHQ*, II. 1, pp. 1 ff. दीपवंश और महावंश के अनुसार, महाराज विजय के साथ भारतीय आर्य यहाँ आये। विजय बंगाल की राजकुमारी का नाती था। विजय लाल देश का राजकुमार था। यह राज्य गुजरात में तथा कुछ के मतानुसार राढ़ या पश्चिमी बंगाल में था। बार्नेट के अनुसार, दोनों ग्रन्थों का सारांश विजय की कहानी में मिलता है। (*IHQ*, 1933, 742 ff.)।

कहते थे। सम्राट् अशोक के दूसरे तथा तेरहवें अभिलेख में ताम्रपर्णी का उल्लेख मिलता है। डॉक्टर स्मिथ[1] के अनुसार ताम्रपर्णी का अर्थ लंका नहीं, वरन् तिन्नवेल्ली था। उन्होंने गिरनार-टेक्स्ट का उल्लेख करते हुए कहा है कि तम्बपन्नी, देश या द्वीप के लिए नहीं, वरन् नदी के लिए आया है। दूसरे अभिलेख में 'तम्बपन्नी' शब्द पाडा के बाद नहीं, वरन् केटलपुतो के बाद आया है। केटलपुतो के साथ ताम्रपर्णी नदी का नाम उतना संगत नहीं पड़ता, क्योंकि ताम्रपर्णी नदी पांड्य[2] देश की है। इसलिए, हम ताम्रपर्णी से लंका का अर्थ समझते हैं। अशोक के समय में देवानांपिय तिस्स था जिसका राज्याभिषेक-काल २५० या २४७ ईसापूर्व के आसपास माना जाता है।

अशोक का मैत्री-सम्बन्ध दक्षिण के तमिल देशों से ही नहीं था, वरन् यूनानी नरेशों, जैसे सीरिया के राजा एन्टिओकोस-द्वितीय थियोस तथा पश्चिम एशिया के अन्य देशों से भी था। इसके अलावा मिस्र के राजा फ़िलाडेल्फ़स (२८५-२४७ ई०पू०) से भी इसकी मैत्री थी। उत्तरी अफ्रीका के मग (Maga) राजा से भी अशोक के सम्बन्ध थे। यह राजा २५८ ई०पू०[3] के पहले ही मर चुका था। नोरिस, वेस्टरगार्ड, लैसेन, सेनार्ट तथा मार्शल[4] के अनुसार २७२ तथा २५५ ई० पू० के बीच एपीरस में राज्य करने वाले सिकन्दर से भी उसकी दोस्ती थी। फिर भी बेलक और हल्ट्ज़ संकेत करते हैं[5] कि तेरहवें अभिलेख का अलिकसुदर, कोरिन्थ का सिकन्दर तथा क्रैटेरस का लड़का कोई बहुत जाना-माना राजा नहीं था। यह पीरस (Pyrrhus) का लड़का तथा एपीरस (Epirus) का सिकन्दर नहीं था।

यद्यपि अशोक अपने पड़ोसी राज्यों की भूमि पर कब्ज़ा नहीं करता था तो भी समय-समय पर उन्हें सलाह देता था कि वे अपने यहाँ अमुक-अमुक

---

१. *Ashoka*, third ed., p. 162.

२. ऐसे लोग जो ताम्रपर्णी नदी की घाटी में किसी राज्य के बारे में उल्लेख देखना चाहते हैं, उन्हें मौर्य-काल में ऐसे राज्य के अस्तित्व को सिद्ध भी करना होगा, और उसी ढंग से स्पष्टीकरण करना होगा जैसा कि द्वितीय अभिलेख में दिया गया है।

३. Tarn, *Antigonos Gonatas*, p. 449 f.

४. *Monuments of Sanchi*, I, 28 n.

५. *JRAS*, 1914, pp. 943. ff; *Ins. of Ashoka*, xxxi.

संस्थाएँ खोलें। दूसरे शब्दों में यही उसकी आध्यात्मिक विजय का भी तात्पर्य था। आध्यात्मिक विजय को ही अशोक 'धम्म-विजय' मानता था।

"मेरे पड़ोसियों को भी यही पाठ पढ़ना चाहिये।"

"साम्राज्य के पड़ोसियों—चोल, पांड्य, सत्यपुत्र, केटलपुत्र, ताम्रपर्णी तथा एन्टिओकोस तथा उसके पड़ोसी सभी राज्यों में महामहिम सम्राट् की इच्छानुसार ही धार्मिक व्यवस्थाएँ होती थीं।"

तेरहवें अभिलेख में अशोक ने घोषणा की है—"सम्राट् के साम्राज्य में सर्वत्र दया के विधान की विजय व्याप्त है। इसके अलावा साम्राज्य के जिन सभी पड़ोसी देशों (६ सौ लीग दूर तक) में एन्टिओकोस तथा अन्य राजागण रहते हैं वहाँ भी यही क़ानून है। इतना ही नहीं, जहाँ सम्राट् के दूत भी नहीं पहुँच सके है,[2] वहाँ भी सम्राट् की दयालुता के क़ानून की आज्ञाओं के आधार पर ही व्यवहार किया जाता है।" निस्सन्देह बौद्धधर्म पश्चिमी सीमा तक पहुँच गया था और लोग प्रभावित हुए थे।[3] किन्तु, यूनानी लोग अहिंसा से अधिक प्रभावित नहीं हुए थे। जब अशोक ने शस्त्र-त्याग कर दिया तो एक बार पुनः यवन लोग क़ाबुल की घाटी में घुस आये थे। उन्होंने पंजाब अथवा मध्यदेश तक पहुँच कर सभी प्रदेश को असमंजस की स्थिति में डाल दिया। दक्षिण की धार्मिक यात्राएँ अधिक सफल रहीं। यद्यपि सिंहली क्रॉनिकल में तमिल तथा यवन प्रदेशों में भेजे गये दूतों[4] का उल्लेख नहीं है तो भी लंका तथा सुवन्न-

१. M. R. Edict I.

२. यहाँ हमारा तात्पर्य उन देशों से है, जहाँ महावंश के अनुसार सम्राट् के प्रतिनिधि गये थे। ऐसे देशों में 'सुवन्नभूमि' भी है।

३. Buddhism in Western Asia, see Beal, *Si-yu-ki*, II. 378; Alberuni, p. 21; *JRAS*, 1913, 76; Mc'Crindle, *Ancient India as Described in Classical Literature*, p. 185; Eliot, *Hinduism and Buddhism*, Vol. III, pp. 3,450 f; *Cf.* Smith, *EHI*, 4th ed., 197; Burlingame, trans., *Dhammapada Commentary*, Introduction.

४. कश्मीर, गान्धार और हिमालय के साथ योन का भी नाम आया है। (Geiger, 82)। यह योन प्रदेश सम्भवतः क़ाबुल की घाटी में था। अशोक के शिलालेखों में यह नाम कम्बोज और गान्धार के साथ आया है। Levantine

भूमि (दक्षिणी वर्मा और सुमात्रा) को भेजे गये प्रतिनिधियों के नाम हैं। लंका भेजे गये प्रतिनिधियों का नेतृत्व राजकुमार महेन्द्र ने किया और वह देवनांपिय तिस्स तथा उसकी प्रजा का धर्म-परिवर्त्तन करने में क़ामयाब रहा। अभी तक प्राप्त अभिलेखों में सुवन्नभूमि का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता।

आन्तरिक नीति में परिवर्त्तन

कलिंग की लड़ाई के बाद अशोक के धर्म-परिवर्त्तन का प्रभाव केवल उसकी परराष्ट्र-नीति पर ही नहीं, वरन् घरेलू नीति पर भी पड़ा। चौथे अभिलेख तथा कलिंग-अभिलेख के अनुसार सम्राट् की दृष्टि से समाज में निम्न दोष थे—

१. जीवित पशुओं का बलिदान (आरम्भो)

२. प्राणियों में प्रतिहिंसा (विहिंसा)

३. बन्धु-बान्धवों के प्रति दुर्व्यवहार (असम्प्रतिपति)

४. ब्राह्मणों तथा साधुओं के प्रति दुर्व्यवहार, तथा

५ विभिन्न प्रान्तों में कुशासन

प्रथम अभिलेख के अनुसार अशोक केवल पशुओं के बलिदान को ही नहीं, वरन् राजाओं तथा सम्राटों[1] द्वारा मनाये जाने वाले कुछ उत्सवों का भी विरोधी था। ऐसा उल्लेख हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र[2] में भी मिलता है। डॉक्टर स्मिथ के अनुसार ऐसे उत्सव दो प्रकार के होते थे —एक जिनमें जानवरों की लड़ाई, सुरापान तथा मांस-भक्षण होता था। अशोक इस प्रकार के उत्सवों को बुरा समझता था। दूसरे वे जो आधे धार्मिक और आधे कलात्मक होते थे। ऐसे आयोजन प्रायः सरस्वती के मन्दिर में भी किये जाते थे और अशोक के सिद्धान्तों के उतने प्रतिकूल नहीं पड़ते थे। डॉक्टर थॉमस[3] के अनुसार खुले स्थानों या

World के उल्लेख की भी एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। अशोक-युग के धर्मप्रचार-कार्य में दक्षिणी प्रदेशों का भी नाम आया है। ये प्रदेश महिषमण्डल, वनवास (कनारा क्षेत्र मे), अपरान्तक (पश्चिमी तट) तथा महारट्ठ (महाराष्ट्र) हैं।

१. मगध और पड़ोस के उत्सवों के लिये विनय (IV. 267) तथा महावस्तु (III, 57 और 383) देखिये।

२. P. 45.

३. *JRAS*, 1914, pp. 392 ff.

प्रेक्षागृहों (स्टेडियम या आडेटोरियम) में आयोजित खेलकूद के आयोजनों या प्रतियोगिताओं की उस समय मनाही थी। महाभारत के बिराट-पर्व में इन आयोजनों के बारे में लिखा है—

ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः ।[1]

"वे प्रतियोगी जो ऐसे उत्सवों में कुश्ती में भाग लेते हैं।"

तत्रमल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन् सहस्रसः
समाजे ब्राह्मणो राजन् तथा पशुपतेर्डपि
महाकायाः महावीर्याः कालकंजा इवासुराः ।[2]

"हे राजन् ! वहाँ ब्राह्मण तथा पशुपति (शिव) के सम्मान में आयोजित उत्सव में विभिन्न स्थानों से हजारों की संख्या में मल्ल लोग (पहलवान) आये थे। वे कालकंजा के समान विशाल शरीर तथा प्रभूत शक्ति वाले थे।"

सबसे सादा उत्सव सरस्वती के मन्दिरों में सम्पन्न होता था। इसका उल्लेख वात्स्यायन के कामसूत्र में है (पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यम् समाजाः)। हल्ट्ज[3] के अनुसार अभिनय-प्रदर्शन आदि के उत्सव सादे उत्सव थे।

सम्राट् अशोक जिन उपर्युक्त उत्सवों को नापसन्द करता था, उन्हें समाप्त कर देना चाहता था। इसके साथ-साथ अशोक प्रजाजनों की इतनी नैतिक और भौतिक उन्नति चाहता था कि मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाय।[4] वह चाहता था कि यदि प्रजाजन इस लोक में सुख और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति कर लेंगे तो वह उनके ऋण से मुक्त हो जायेगा। उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त प्रयोग में लाये जाने वाले साधन चार वर्गों में विभाजित थे—

---

१. बिराट, 2.7.

२. बिराट, 13, 15-16.

३. देखिये *IHQ*, 1928, मार्च, 112 ff.

४. *Cf.* Minor Rock Edict I. हरिवंश पुराण में एक ऐसे देश का उल्लेख है जिसमें देवता और मनुष्य साथ-साथ रहते थे (भविष्य पर्व, Ch. 32.1—'देवतानां मनुष्याणां सहवासोऽभवत्तदा।') हल्ट्ज ने चतुर्थ अभिलेख के 'देव' तथा 'दिव्यानि-रूपाणि' की तुलना की है।

१. प्रशासकीय सुधार
२. धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार
३. दयालुता के कार्य (मनुष्यों तथा जीवों का कल्याण)
४. धार्मिक सहिष्णुता तथा बौद्ध-मठों में अनुशासन।

(१) **प्रशासकीय सुधार**—सर्वप्रथम, अशोक ने युत, राजूक, प्रादेशिक तथा महामात्रों के त्रिवर्षीय तथा पंचवर्षीय अनुसम्यान (सरकिट) की स्थापना की। जायसवाल तथा डॉक्टर स्मिथ[1] के अनुसार राजूक और प्रादेशिक से लेकर युतों तक समस्त प्रशासकीय स्टाफ़ एक साथ हर पाँचवें वर्ष सरकिट में नहीं जा पाता था। इन लोगों ने इसे इस रूप में ग्रहण किया है कि प्रशासकीय कार्यकर्त्ताओं का एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र में स्थानान्तरण सदा ही होता रहता था। किन्तु, विविध ग्रन्थों में यह कहीं नहीं मिलता कि सभी अधिकारियों को सरकिट में एक साथ कार्य करने की आवश्यकता कभी पड़ी। अधिकारियों की पंचवर्षीय सरकिट प्रायः प्रचार-कार्यों के लिए गठित होती थी। महामात्रों के सरकिट का उद्देश्य होता था कि न्याय-प्रशासन अथवा सुसंचालन की देखरेख कि कहीं कोई अधिकारी किसी को ज़बरदस्ती और अनायास ही बन्दी बनाकर प्रताड़ित तो नहीं करता; इसके अतिरिक्त कलिंग, उज्जैन तथा तक्षशिला में कोई किसी को सताता तो नहीं ? यह देखना भी सरकिट का ही काम था।

दूसरे, अशोक ने कुछ नये ओहदे भी क़ायम किये। उदाहरणार्थ, धर्ममहामात्र तथा धर्मयुत।[2] धर्ममहामात्रों पर ब्राह्मणों, यवनों, कम्बोजों गान्धारों, रिस्टिकों तथा अपरान्तकों की रक्षा का भार होता था।

भृत्यों और स्वामियों, ब्राह्मणों और धनिकों[3], बुड्ढों और असहायों को ये

१. *Ashoka*, 3rd edition, p. 164; Mr. A. K. Bose (*IHQ*, 1933, 811) ने 'अनुसम्यान' को एक दरबार माना है। किन्तु, महाभारत (2,123) में 'पुण्यतीर्थसम्यानम्' के उल्लेख से लगता है कि इस सम्बन्ध में कर्न और बूहलर की उक्तियाँ निरापद हैं (See also, Barua, *Ashoka Edicts in New Light*, 83 ff.)।

२. 'धम्मयुत' हो सकता है कोई सरकारी पद न हो। इसका अर्थ केवल 'धर्म में आस्थावान्' भी हो सकता है (*Cf.* Bhandarkar, *Ashoka*, 2nd ed., pp. 311, 343.)।

३. यहाँ हमें यह भी उल्लेख मिलता है कि उस समय समाज चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—में विभाजित था।

लोग सांसारिक कष्टों, यातनाओं व चिन्ताओं से मुक्त रखने के कार्य करते थे और मुक़दमों की पुनःसुनवाई तथा दी गई सज़ाओं को कम करने का भी काम करते थे। ये उत्तेजना, उद्देश्य तथा पारिवारिक स्थिति को देखकर प्राणदण्ड तक को घटा सकते थे और पाटलिपुत्र, उसके बाहर, दूर के राज्यों, तथा राजवंश के परिवारों में, सर्वत्र रहते थे। इस प्रकार धर्ममहामात्र लोग साम्राज्य में मिलाये गये (विजित) तथा साम्राज्य के बाहर (पृथ्वी) भी फैले रहते थे। इसके विपरीत धर्मयुत लोग केवल क़ानूनी कार्यों तक ही अपने को सीमित रखते थे। सीमावर्त्ती देशों की देखरेख 'आवुतिक' लोग करते थे।[1]

सम्राट् हमेशा प्रजाजनों के सुख-दुःख को जाने के लिए आतुर रहता था। वह विशेष रूप से महामात्रों के कार्यों को जानना चाहता था जिस पर कि उसकी इच्छाओं की पूर्त्ति निर्भर करती थी। इसलिए उसने पटिवेदकों या संवाददाताओं को बन्द रखा था कि जब कभी भी महामात्रों की परिषद् में कोई संकट, मतभेद या कार्य-स्थगन हो जाय, तो मुझे अविलम्ब सूचना दी जाय।[2]

कलिंग-अभिलेख तथा छठवे अभिलेख से यह स्पष्ट है कि अशोक महामात्रों पर सदैव अपनी निगाह रखता था। नगरों के न्याय-विभाग में कार्य करने वाले महामात्रों पर तो उसकी विशेष दृष्टि रहती थी, किन्तु वह राजूकों से विशेष दिलचस्पी रखता था और उनका वह काफ़ी आदर भी करता था। राजूकों की नियुक्ति लाखों प्रजाजनों के ऊपर की जाती थी और सम्राट् की ओर से उन्हें अधिकार होता था कि वे किसी को उपाधियाँ अथवा दण्ड दे सके। उन्हें ऐसा अधिकार इसलिए होता था कि सम्राट् जानते थे कि राजूक लोग अपना काम आत्म-विश्वास और निर्भीकता पूर्वक करते हैं। फिर भी सम्राट् दण्डों तथा दण्ड देने की विधियों में एकरूपता चाहता था, इसीलिए उसने आदेश जारी कर रखा था कि "जिन्हे प्राणदण्ड मिल चुका हो और जो क़ारावासों मे बन्द हो, उन्हें तीन दिन का समय विश्राम करने के लिए दिया जाय।"

---

१. *Cf.* Hultzsch, *Ashoka*, 100 n 7.

२. असेम्बली के विवादों के लिये देखिये जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण, III. 7. ७. ब्राह्मण ग्रन्थों में जो 'उपदृष्टि' शब्द आया है, क्या उसे 'निभ्रती' समझा जाय। कुरु-पांचालों ने 'उपदृष्टि' की सहायता से आपसी झगड़ों का समझौता किया (*Cf.* बरुआ, *Ashoka Edicts in New Light*, p. 78)।

अन्ततः सम्राट् ने पशु बलि को रोकने तथा उनके अंग-भंग किये जाने के बारे में भी कुछ निर्देश जारी कर रखे थे। अपने राज्याभिषेक के २७वें वर्ष तक सम्राट् २५ व्यक्तियों को कारामुक्त कर चुका था। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि सम्राट् अपने राज्याभिषेक की हर जयन्ती पर एक-एक अपराधी को क्षमादान देता था।

(२) **धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार (अपराधों का क़ानून)**—यद्यपि सम्राट् अशोक बुद्ध के उपदेशों की सत्यता से आश्वस्त, बौद्ध-मठों की पूजा की महत्ता से अवगत, बुद्ध के तीनों सिद्धान्तों से विश्वस्त तथा बौद्ध-भिक्षुओं और साधुओं में अनुशासन और एकता का समर्थक था, फिर भी वह अपनी आस्थाओं को किसी पर लादना नहीं चाहता था। वह आधारभूत नैतिकता के विरोधी रिवाजों और वैसी संस्थाओं को समाप्त करने का भी प्रयास करता था। वह अपनी प्रजा के समक्ष 'सम्बोधि' या 'निर्वाण' के लक्ष्य को नहीं रखता था, वरन् वह स्वर्ग तथा मनुष्यों के देवोपम हो जाने के लक्ष्य का आराधक था। उसके अनुसार स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता था, तथा मनुष्य देवताओं से साक्षात्कार कर सकते थे। किन्तु, यह केवल विधियों के पूरा करने से ही नहीं, वरन् पराक्रम या लगन से ही सम्भव था। यह भारतीय परम्पराओं के पालन से ही साध्य था। माँ-बाप का आज्ञापालन, जीवों से सहानुभूति तथा सत्य भाषण आदि गुणों के ग्रहण करने से ही उक्त लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती थी। इसी प्रकार उसकी धारणा थी कि शिष्यों को गुरु का आदर करना चाहिये तथा सम्बन्धियों के प्रति मन में सम्मान की भावना होनी चाहिये। तेरहवें अभिलेख में गुरुजनों, माता-पिता तथा शिक्षकों के नाम-स्मरण तथा मित्रों, परिचितों, साथियों, सम्बन्धियों तथा सेवकों के साथ स्नेहयुक्त सद्व्यवहार का भी उल्लेख मिलता है। सातवें अभिलेख में इन्द्रियों पर विजय, मानसिक शुद्धता, कृतज्ञता तथा आस्था पर अधिक बल दिया गया है। द्वितीय स्तम्भ-अभिलेख में घोषित किया गया है कि "दण्ड-विधान में थोड़ी पवित्रता (अपासिनवे), अधिकाधिक

---

१. मौर्य-कालीन भारत में दासता के लिये देखिये Monahan, *Early History of Bengal*, pp. 164-65. यह बात उल्लेखनीय है कि अशोक ने जिस तरह जाति-प्रथा और परदा-प्रथा को समाप्त नहीं किया, उसी प्रकार दास-प्रथा भी समाप्त हो नहीं सकी। उसका सिलसिला चलता रहा। वह केवल तत्कालीन सामाजिक यातनाओं का उन्मूलन करना चाहता था।

सद्कार्य (बहुकयाने), दयालुता (दयादाने) स्वतंत्रता, सत्यता तथा शुद्ध के अंश अपेक्षित हैं।"

स्तम्भ-अभिलेखों में आत्म-चिन्तन तथा आन्तरिक दिव्यदृष्टि पर अधिक बल दिया गया है। अपने जीवन के अन्तिम बर्षों में सम्राट् अशोक अनुभव करने लगा कि नैतिकता के नियमों के बजाय आत्म-दर्शन और आत्म-चिन्तन अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु, इसकी सबसे अधिक अपेक्षा उसे राज्य प्राप्त करने के बाद राज्य-भोग के आरम्भ में ही थी।

प्रथम माइनर-शिलालेख से हमें पता चलता है कि आरम्भ के ढाई वर्षों तक अशोक उपासक हो रहा। पहले वर्ष में उसने कोई सक्रिय रुचि नहीं ली। उसके बाद वह संघ में प्रविष्ट हो गया[1] और काफ़ी दिलचस्पी लेने लगा।[2] बाद

---

१. इतिहासकार हल्ट्ज के अनुसार, अशोक के उपासकत्व में ढाई वर्ष में उसका वह समय भी शामिल है जब संघ में प्रविष्ट हुआ था। अशोक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के प्रमाण में उसकी उस मूर्ति का भी उल्लेख किया जाता है जिसमें कि उसे बौद्ध-भिक्षु के वेश में दिखाया गया है (Taka Kusu, *I tsing*, 73)। प्राचीन काल में शासक तथा राजनीतिज्ञ लोग साधु हो जाते थे, इसका उल्लेख Luders Ins., No. 1144 में भी है। इसमें यह लिखा है कि सातवाहन राजा कृष्ण के समय में नासिक में कोई श्रमण महामात्र था (मिलिन्दपञ्ह, IV. 6. 49—'एक श्रमण राजा का सन्दर्भ'; Geiger, Trans, महावंश, 240—'कुटकरण्ण तिस्स')।

२. चतुर्थ अभिलेख से विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अशोक दैवी चमत्कार के हवाई रथों (विमानदसना), हाथियों के रथों (हस्तिदसना) तथा अग्निकुण्ड (अगिखम्धानि) का प्रदर्शन कराकर जनता के बीच बौद्धधर्म का प्रचार करता था। डॉक्टर भण्डारकर (*Ind. Ant.*, 1912, p. 26) ने पाली 'विमानवत्थु' का उल्लेख किया है जिसमें बहुत से विमानो के प्रदर्शन से यह चेष्टा की गयी है कि लोग अच्छा और निष्पाप जीवन व्यतीत कर उक्त पदार्थों की प्राप्ति करें। अशोक इन विमानों का प्रदर्शन और परेड करवाता था। डॉक्टर भण्डारकर ने 'हस्ति' का अर्थ श्वेत हाथी माना है। बुद्ध स्वयं गजात्मा या गजोत्तम (सर्वश्रेष्ठ हाथी) माने जाते थे। 'अगिखन्ध' या 'अग्निस्कन्ध' के प्रसंग में डॉक्टर भण्डारकर ने ४०वें जातक की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। इसके अनुसार एक बार आग के ढेर पर से बोधिसत्व गुज़रे थे, और भूखे 'पच्छेक

में उसने घोषणा की सभी बड़े-छोटे यह धर्म स्वीकार करें। उसने अपने राज्य में चट्टानों तथा पाषाण-स्तम्भों पर जगह-जगह अपने उद्देश्यों को अंकित कराया।

सर्वप्रथम सम्राट् अशोक ने अपने प्रशासन के ढाँचे का धार्मिक प्रचार के लिए प्रयोग किया।[1] उसने अपनी परिषद् का सदैव धर्म की शिक्षा देने का

बुद्ध' को भिक्षापात्र दिया था। हल्ट्ज़ के अनुसार 'हस्ति' का तात्पर्य चार महा-राजाओं (लोकपालकों) की सवारी से है और 'अगिखन्ध' से परलोक के प्राणियों का अर्थ द्योतित होता है। Jari Charpentier (*IHQ*, 1923, 87) इस शब्द से 'तप्त ताम्र-नर्क' का आशय निकलता है। किन्तु, हल्ट्ज़ा की व्याख्या रामायण (II. 68. 16) की साक्षी के आधार पर अधिक सटीक लगती है, जिसमें 'दिव्यम्' को 'विशिष्ट देवताधिष्ठितम्' कहा गया है। कथासरित्सागर (Penzer, VIII. 131) की 'तारावलोक' नामक कहानी में स्वर्गिक हाथी और अग्नि पर्वत का जिक्र बड़ी प्रमुखता से आया है (*Ibid.*, 50-51; III. 6.17)। *Cf. also Aggi-khando in Jatak*, VI. 330, Coomaraswami in B. C. Law, Vol. I. 469; गेगर द्वारा अनूदित महावंश (pp. 85, 110) में 'सुत्त' का उल्लेख।

जिन अनुच्छेदों में 'विमानदसना', 'हस्तिदसना' आदि शब्द आये हैं, उनकी व्याख्या *A Volume of Indian Studies presented to Professor E. J. Rapson*, I. p. 546 f में अलग तरीक़े से की गयी है। कुछ व्याख्याओं के अनुसार, उपर्युक्त प्रकार के प्रदर्शन अशोक द्वारा नहीं, वरन् उसके पूर्व के शासकों द्वारा नगाडे की ध्वनि के साथ कराये जाते थे। अशोक को इसका श्रेय है कि भेरी की ध्वनि बाद में धर्म-ध्वनि हो गयी। अर्थात्, धार्मिक उपदेशों ने सैनिक-गीतों का रूप ले लिया, और वे उपदेश बड़े-बड़े उत्सवों के समय गाये जाने लगे। जो काम पूर्व सम्राट् नहीं कर पाये, उसे अशोक ने सीधे-सादे ढंग से, उपदेश के द्वारा कर दिखाया, और अब राजाज्ञाओं की घोषणा के लिए भेरी का उपयोग किया जाने लगा। Minor Rock Edict में 'राजुके आनपितविये भेरिना जानपदम् आनापयिसति रठिकानम् च' (*Ind. Cult.*, I, p. 310; *IHQ*, 1933, 117)।

१. एक उल्लेख के अनुसार अशोक ने अपने यहाँ से कुछ ऐसे धर्मप्रचारकों को इधर-उधर भेजा, जिन्हें 'व्युथ' श्रेणी का कहा गया है। यह संकेत सेनार्ट ने किया है तथा स्मिथ ने उसे स्वीकार किया है (*Ashoka*, 3rd.; p. 153)।

निर्देश दिया। युतों, राजूकों तथा प्रादेशिकों को आदेश था कि वे अपने दौरे के समय भी सदैव ही धर्म की शिक्षा दें।

और जिस धर्म का उन्हें प्रचार करना था वह इस प्रकार था—"माता-पिता का स्मरण करना सबसे भली बात है।¹ मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों तथा ब्राह्मणों को स्वतंत्रता देना बड़ी अच्छी चीज़ है। पशुबलि न करना भली बात है, तथा थोड़ा संचय और थोड़ा व्यय बड़ी अच्छी चीज़ है।"

जिस समय सम्राट् अशोक का राज्याभिषेक हुआ, उसने धर्ममहामात्र नाम का एक पद स्थापित किया, जिसे 'धम्माधिथान' तथा 'धम्मवधि' का कार्य सौंपा गया।

जिस समय अशोक के अधिकारीगण धर्म-प्रचार का कार्य कर रहे थे, उस समय भी वह हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठा रहा। उसने अपने शासन के ११वें वर्ष में सम्बोधि² का मार्ग ग्रहण किया और विहार-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्रायें आरम्भ कीं। अपनी धर्म-यात्राओं के दौरान अशोक ब्राह्मणों तथा साधुओं का बड़ी आदर-भावना के साथ दर्शन करता था और गुरुजनों के पास स्वर्ण-मुद्राओं की भेंट लेकर जाता था।

अशोक अपने राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों (जनपदों) में भी अपने धर्म के उप-देशकों को लेकर जाता था। डॉक्टर स्मिथ के अनुसार अशोक ने अपने शासन

डॉक्टर भण्डारकर ने 'व्युथ' या 'विवुथ' का अर्थ 'दौरे पर निकला अधिकारी' माना है। हल्ट्ज़ के अनुसार जब अशोक दौरे पर रहता था, तो उसे व्युथ कहा जाता था (p. 169, note 8)। इस शब्द का अर्थ प्रातःकाल या सूर्योदय भी होता है; अर्थात्, यह तिथिसूचक शब्द है। इसके अलावा डॉक्टर बरुआ (*Bhandarkar Vol.*, 369) के अनुसार आदेशों की जो प्रतिलिपियाँ राजधानी से रवाना की जाती थीं, उनके लिये भी यह शब्द प्रयुक्त होता था।

१. देखिये सिगलोवाद सुत्तन्त (*Dialogues af the Buddha*, III, 173 ff)।

२. कुछ इतिहासकारों ने 'सम्बोधि' का अर्थ 'सर्वोच्च ज्ञान' माना है। किन्तु, डॉक्टर भण्डारकर 'सम्बोधि' को बोधिवृक्ष या गया के महाबोधि-मन्दिर का समानार्थी मानते हैं। दिव्यावदान (p. 393) के अनुसार अशोक ने स्थविर उप-गुप्त के साथ बोधि की यात्रा की थी (Hultzsch, *CII*, xliii)।

के २१वें वर्ष में (२४९ ई०पू०)[1] नेपाल की तराई की ओर बड़ी धार्मिक आस्था से यात्रा की थी जिसके चिह्न अभी भी रुम्मिनदेई तथा निगालि-सागर आदि स्थानों पर उपलब्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि अशोक ने गौतम की जन्म-भूमि की यात्रा की थी और कोनाकमन-स्तूप भी देखा था।[2]

डॉक्टर स्मिथ के अनुसार २४२ ई०पू० में सम्राट् अशोक ने सात स्तम्भ-अभिलेख जारी किये, जिनमें उन कार्यों का संक्षिप्त विवरण था, जो अशोक ने नैतिक कर्त्तव्यों के महत्ता-प्रदर्शन तथा धर्म के उत्थान के लिए किये।

(३) **दयालुता के कार्य (मनुष्यों तथा जीवों का कल्याण)**—अपने शासन-काल में अशोक ने पशुबलि बन्द करा दी। उत्तेजनकारी उत्सव भी बन्द हो गये। अशोक के राजसी भोजनालय में स्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए भी जीवों की हत्या बन्द कर दी गयी। आठवें अभिलेख में इस बात की चर्चा है कि आखेट-क्रीड़ा तथा अन्य मनोरंजन कीड़ाओं वाली विहार-यात्राएँ भी बन्द कर दी गई। पाँचवें स्तम्भ-अभिलेख में कुछ नियमों[3] को अंकित किया गया है जिनके अनुसार पशुओं की हत्या करने तथा उनका अंग-भंग करने पर रोक लगाई गई थी।

डॉक्टर स्मिथ ने इस बात का संकेत दिया है कि इस अभिलेख में पशु-वध पर प्रतिबन्ध का उल्लेख अर्थशास्त्र में तत्सम्बन्धी उल्लेख से मिलता-जुलता है।

सम्राट् की ओर से की गई चिकित्सा-व्यवस्था दो प्रकार की थी—एक पशुओं के लिए तथा दूसरी मनुष्यों के लिए। औषधालय भी पशुओं व मवेशियों के लिए अलग-अलग थे। इन औषधालयों में जिस चीज की भी कमी पड़ जाती, वह बाहर से मँगा ली जाती थी; तथा जड़ी-बूटियों के पौधे भी लगाये जाते थे।[4] अशोक के समय में राजमार्गों पर आठ-आठ कोस के अन्तर पर कुएँ खोदे जाते। इन कुओं में पानी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ होतीं और पशु-पक्षियों तथा मनुष्यों के आमोद-प्रमोद के लिए केले तथा आम के बाग़ लगाये जाते।

---

१. क्या ये यात्रायें दसवर्षीया थीं ?

२. छः वर्ष पूर्व उसने कोनाकमन स्तूप की मरम्मत करायी थी, किन्तु इस मौक़े पर उसकी उपस्थिति सुनिश्चित नहीं है।

३. धम्म-नियम, देखिये पतंजलि, I, I, I.

४. Cf. एन्टिओकोस को बिन्दुसार द्वारा लिखे गये पत्रों में इसका उल्लेख मिलता है।

सातवें स्तम्भ-अभिलेख के अनुसार सम्राट् और रानियों की ओर से दान-वितरण के लिए अधिकारी नियुक्त होते थे। एक माइनर स्तम्भ-अभिलेख में अशोक की दूसरी रानी तीवर की माँ कारुवाकी[१] के दान का उल्लेख मिलता है। चर्चा है कि दूसरी रानी की ओर से आम्रकुन्ज, प्रमोदवन या दानगृह बनवाये गये थे।

यहाँ पर सम्राट् द्वारा करों की माफ़ी का भी उल्लेख आवश्यक है। लुम्मिनि-गाम में वृद्धजनों को कुछ अनुदान प्राप्त थे। विभिन्न जनपदों (ज़िलों) तथा गाँवों[२] को स्वशासन का अधिकार प्राप्त था। दण्डविधान (दण्डसमता तथा व्यवहारसमता) में भी एकरूपता थी। इसके अतिरिक्त नैतिक निर्देशों (धर्म-नुशस्ति) में समानता बरती जाती थी।

(४) **धार्मिक सहिष्णुता तथा बौद्ध-मठों में अनुशासन**—बारहवें अभिलेख में सम्राट् अशोक ने घोषणा की है कि सम्राट् हर धर्म के अनुयायियों का सम्मान करता है, चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। यह सम्मान, दान तथा अन्य रूपों में प्रदान किया जाता था। बाराबर गुफा से प्राप्त उल्लेख के अनुसार सम्राट् ने आजीविक संन्यासियों को बहुत-सा दान दिया था। इससे पता चलता है कि अशोक अपने सिद्धान्तों का कितना पक्का था। ये संन्यासी बौद्ध-धर्म के नहीं, वरन् जैनधर्म के थे।

सम्राट् हर धर्म की आत्मा के विकास पर अधिक से अधिक बल देता था। सम्राट् का कहना था कि जो व्यक्ति अपने धर्म की ओर आँख मूंदकर दूसरे धर्मों की अवहेलना करते हुए, अपने धर्म का सम्मान करता है और इस प्रकार अपने धर्म की उन्नति चाहता है वह वास्तव में अपने धर्म का सबसे बड़ा अहित करता है। अशोक धार्मिक सम्मेलनों का प्रशंसक था।

अशोक सदैव इस बात का प्रयत्न करता था कि विभिन्न धर्मों के बीच कोई न कोई समझौता हो जाय, या कोई समान सिद्धान्त प्रतिपादित हो जाय। ठीक इसी प्रकार वह बौद्ध-मठों के मत-मतान्तर या गुटबन्दियाँ पसन्द नहीं करता

---

१. डॉक्टर बरुआ के अनुसार यह रानी सम्भवतः महावंश और सुमंगल-विलासिनी की आसन्धिमित्ता ही थी (*Indian Culture*, I, 123)। डॉक्टर बरुआ का यह कथन अधिक विश्वसनीय नहीं है।

२. अशोक के समय के लुम्मिनगाम तथा आमकपोत दो गाँवों का उल्लेख मिलता है (पंचम् स्तम्भ-अभिलेख)।

था। विविध सामग्रियों से इस बात की पुष्टि होती है कि उसके शासन के सत्रहवें वर्ष में पाटलिपुत्र में एक बौद्ध-परिषद् की स्थापना हुई थी। इस परिषद् का का मुख्य उद्देश्य बौद्धधर्म की अटकलों व रूढ़ियों को समाप्त कर वास्तविक बौद्ध-सिद्धान्तों (सद्धम्म संघ) का प्रणयन था। सारनाथ-अभिलेख तथा इसी प्रकार के अन्य अभिलेखों में सम्भवतः इसी बौद्ध-परिषद्[1] के अन्य प्रस्ताव अंकित कराये गये थे।

निर्माता अशोक

अशोक ने गुफाओं के आवास को अजीविक संन्यासियों को दे दिया था। इससे उसके कार्यों के एक दूसरे पक्ष का परिचय मिलता है। पाँचवीं शताब्दी में जो पर्यटक पाटलिपुत्र आये, वे सम्राट् अशोक के समय की भवन-निर्माण-कला देखकर दंग रह गये। विविध ग्रन्थों में राजमहल, अनेकानेक मठों व मंदिरों के सुन्दर निर्माण का श्रेय अशोक को दिया गया है। अशोक ने ही कोनाकमन के स्तूप को और विकसित कराया था। कोनाकमन (पूर्व बुद्ध) शाक्यमुनि के पूर्वज माने जाते हैं। उसने ही धर्म-स्तम्भों की स्थापना कराई थी। आजकल के इतिहासकार भी अशोक-कालीन भव्य शिल्पकला की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।[2]

अशोक का चरित्र—उसकी सफलतायें एवं व असफलतायें

अशोक भारतीय इतिहास के महान्तम व्यक्तित्वों में से एक रहा है। वह चन्द्रगुप्त का-सा शक्तिमान्, समुद्रगुप्त का-सा बहुमुखी प्रतिभावाला तथा अकबर का-सा धर्मप्रेमी था। वह श्रम से थकता नहीं था और उसका उत्साह अक्षुण्ण था। वह प्रजा के लिए किये जाने वाले कल्याण-कार्यों में उत्साह दिखाता था। अपनी प्रजा को वह सन्तानवत् मानता था। सम्राट् अशोक का यशस्वी पितामह अपने शरीर में मालिश कराते समय भी मुक़दमो की मिस्लें देखता जाता था। इसी प्रकार अशोक भी राजमहल में भोजन करते समय या आराम करते समय अपनी प्रजा के समाचारों, संवादों या उसकी शिक़ायतों को सुनता था। सम्राट् अशोक ने अपने पितामह की तरह लड़कर नहीं, वरन् अपने

१. Smith, *Ashoka*, 3rd ed., p. 55.

२. अशोक की कलात्मक सफलताओं के लिये देखिये *HFAIC*, 13, 57 ff; *Ashoka*, pp. 107 ff; *CHI*, 618 ff; Havell, *ARI*, 104 ff. etc.

प्रभाव से बहुत बड़ा भूभाग अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया था, पर इस पर भी वह पराक्रमी शूरवीर था। वह विभिन्न धर्मों के साधुओं-संन्यासियों से धार्मिक वर्त्तालाप करना बहुत पसन्द करता था। युद्ध के बल पर पूरे साम्राज्य के संचालन की अभूतपूर्व क्षमता रखनेवाला योद्धा सेनानी अशोक विभिन्न देशों को धर्मदूत भी बड़ी सफलता और दूरदर्शिता के साथ भेजता था। उसके धर्म-दूत तीन महाद्वीपों में फैले हुए थे। अशोक का गंगा की घाटी को आलोकित करने वाला बौद्धधर्म विश्व के महान् धर्मों में से एक हो गया। सम्राट् अशोक ने महात्मा बुद्ध की जन्मभूमि का भी दर्शन किया। यह स्थान नेपाल की तराई के जंगलों में है। उसके हृदय में किसी भी धर्म के प्रति दुर्भावना नहीं थी। उसने दूसरे धर्मों के विचारकों एवं साधुओं के लिए गुफायें बनवाईं। सम्राट् प्रायः दूर-दूर की यात्राएँ करता था और ब्राह्मणों तथा श्रमणों को भारी संख्या में सोने के सिक्के दान देता था। वह यवनों को भी सरकारी पदों पर नियुक्त करता था। सम्राट् अशोक ने उस समय विभिन्न धर्मों के प्रति प्रेम तथा सहिष्णुता का उपदेश दिया जब चतुर्दिक् धर्म की भावनाओं का बोलबाला था तथा विघटनात्मक प्रवृत्तियाँ जैन-मन्दिरों तथा बौद्ध-मठों में सक्रिय थीं। जब युद्धों में भयानक हिंसा होती थी, तब अशोक अहिंसा का उपदेशक था। वह धार्मिक विधि-विधानों तथा धार्मिक महोत्सवों का बड़ा समर्थक था। हारने के बाद नहीं, वरन् अपनी शानदार जीतों के बाद अशोक ने सैनिक-अभियान का परित्याग करके सन्तोष तथा मानवता की नीति अपनाई। उसके पास बलपूर्वक विजय प्राप्त करने के प्रभूत साधन थे और उसमें क्षमाशीलता तथा सत्यप्रियता के गुण समान रूप से विद्यमान थे। कलिंग देश पर संकट की घटा का उसने जिन ज्वलंत शब्दों में वर्णन किया है, वैसा कदाचित् कलिंग के किसी भी देश-भक्त योद्धा ने नहीं किया। धर्मप्राण सम्राट् अशोक के आदर्श का प्रभाव उसके बाद भी यथेष्ठ रहा। दूसरी शताब्दी में रानी गौतमी बलश्री को इस बात पर गर्व था कि उसका पुत्र अपने शत्रु राजाओं के प्रति भी मैत्रीभाव रख सकता था (कितापराधे पि सतुजने अपानहिसारुचि)। पाँचवीं शताब्दी तक मगध राज्य के विश्रामगृह तथा औषधालय विदेशियों के आश्चर्य तथा प्रशंसा के विषय बने रहे। गाहड़वाल-वंश के राजा गोविन्दचन्द्र को धर्मप्राण अशोक के आदर्शों से बड़ी प्रेरणा मिली।

हम पहले ही देख चुके हैं कि मौर्यवंशी राजाओं के शासन के प्रारम्भिक काल की राजनीतिक उपलब्धियाँ काफ़ी शानदार रहीं। इस युग में उन केन्द्रोन्मुखी

प्रवृत्तियों का चरम विकास हुआ जो बिम्बसार के समय में अस्तित्व में आई थीं। कलिंग-विजय के बाद तमिल देश को छोड़कर सम्पूर्ण भारत मगध-राज्य के अन्तर्गत आ गया था और लगभग सम्पूर्ण जम्बूद्वीप के एक संगठित राज्य के रूप में ढल जाने का सपना साकार हो गया था।

कलिंग-युद्ध के बाद सम्राट् अशोक ने जिस धम्म-विजय का सिद्धान्त अपनाया, उस सिद्धान्त से वे परम्परायें आगे नहीं बढ़ सकीं, जिनका सृजन बिम्बिसार से बिंदुसार तक के राजाओं ने किया था। अभी तक जो प्रशासकीय अधिकारी थे, वे धर्म-प्रचारक के रूप में बदल गये। सशस्त्र द्वन्द्व-युद्ध बन्द हो गये। उत्तरी-पश्चिमी सीमा के हिंसक, आदिवासियों तथा दक्षिण भारत के जंगली पशुओं से मोर्चा लेने वाले लोग अब दयालुता और अहिंसा के संरक्षक बन गये। आखेट-कीड़ायें बन्द हो गईं। अशोक के समय मे पूरे साम्राज्य की नीति ऐसी हो गई जिसे यदि चन्द्रगुप्त जीवित होता तो वक्र दृष्टि से ही देखता। उस समय देश के उत्तरी-पश्चिमी क्षितिज पर काले बादल दिखाई पड़ने लगे। ऐसे में भारत को एक बार फिर पुरु तथा चन्द्रगुप्त जैसे पौरुष के सेनापतियों की अपेक्षा थी जो यवनों के उपद्रव से देश की रक्षा कर सकते। किन्तु, इस समय तो देश में एक स्वप्नद्रष्टा राज्य कर रहा था। कलिंग की लड़ाई के बाद से मगध के युद्ध-संचालन की शक्ति धीरे-धीरे समाप्त-सी होने लगी और अब पूरी की पूरी शक्ति देश में धार्मिक क्रान्ति के रूप में लगने लगी। इख्नातून के समय में एक बार मिस्र देश की भी ऐसी ही दशा हो गई थी। परिणाम अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण हुआ, जिसकी चर्चा हम अगले पृष्ठों मे करेंगे। सम्राट् अशोक के युद्ध की समाप्ति के प्रयासों का अन्ततः वही परिणाम निकला, जो अमेरिकी राष्ट्रपति विल्सन के प्रयासों का निकला है।

डॉक्टर स्मिथ के कथनानुसार सम्राट् अशोक ४० वर्षों तक राज्य करने के बाद २३२ ईसापूर्व में दिवंगत हुआ। तिब्बती ग्रन्थों के अनुसार महान् सम्राट् अशोक का देहावसान तक्षशिला में हुआ।[१]

२. बाद के मौर्य-शासक तथा उनकी शक्ति का ह्रास

सम्राट् अशोक के समय में मगध का साम्राज्य उत्तर में हिन्दूकुश पर्वत से लेकर दक्षिण में तमिल देश की सीमा तक फैला हुआ था। किन्तु, जब से

१. *The Oxford History of India*, p. 116. तिब्बती ग्रन्थ की प्रामाणिकता के बारे में लेखक अपनी ओर से कुछ विशेष नहीं कह सकता।

अशोक ने दूरस्थ प्रान्तों से अपनी शक्तिशाली सेनाओं को वापस बुलाना आरम्भ किया, साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया। उसकी शान-शौकत महान् यूलिसिस (Ulysses) के उस धनुष के समान थी, जिसे कोई अन्य कमजोर हाथ नहीं छू सकता था। फलत: एक के बाद एक प्रान्त अलग होने लगे। साम्राज्य के उत्तरी-पश्चिमी द्वार से विदेशी लड़ाकू जातियाँ देश में घुसने लगी और एक समय ऐसा आ गया कि पाटलिपुत्र और राजगृह के गर्वीले सम्राट् कलिंग और आन्ध्र के सामने भी घुटने टेकने लगे।

दुर्भाग्यवश मेगास्थनीज या कौटिल्य जैसे किसी भी इतिहासकार ने मौर्यवंश के अन्तिम राजाओं का वर्णन नहीं किया है। ऐसी स्थिति में कतिपय शिलालेखों तथा कुछेक जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर ही मौर्यवंश के अन्तिम राजाओं का विस्तृत तथा क्रमबद्ध इतिहास लिख सकना कुछ असम्भव-सा ही है।

अशोक के कई लड़के थे। सातवें स्तम्भ-अभिलेख में अशोक ने अपने बच्चों द्वारा—विशेष रूप से रानी के राजकुमारों द्वारा—किये गये दान का उल्लेख कराया है। कुछ सम्भवतः अन्तिम श्रेणी के राजकुमार तक्षशिला, उज्जैन तथा तोसली में सम्राट् की सत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे। शिलालेखों में महारानी कारुवाकी के पुत्र तीवर[1] का नाम आता है। किन्तु, यह राजकुमार कभी सिंहासनासीन नहीं हो सका। इसके अलावा अशोक के तीन अन्य पुत्रों—महेन्द्र, कुणाल तथा जालौक—के नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। यह अभी अनिश्चित है कि महेन्द्र, सम्राट् अशोक का पुत्र था अथवा उसका भाई।

वायु पुराण के अनुसार अशोक की मृत्यु के बाद उसके पुत्र कुणाल ने आठ वर्ष तक राज्य किया। कुणाल का पुत्र बन्धुपालित उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके बाद (दायाद) इन्द्रपालित राज्य-सिंहासन पर बैठा। इन्द्रपालित के बाद देववर्मन, शतधनुस और बृहद्रथ हुए।

मत्स्य पुराण में अशोक के उत्तराधिकारियों की सूची इस प्रकार है—दशरथ, सम्प्रति, शतधन्वन और बृहद्रथ।

विष्णु पुराण में यह सूची इस प्रकार है—सुयशस, दशरथ, संगत, शालिशूक, शोमशर्मन, शतधन्वन तथा बृहद्रथ।

१. तीवर नाम के लिए देखिये *The Book of Kindred Sayings*, II, pp. 128-30.

दिव्यावदान[1] के अनुसार सम्पादी, बृहस्पति, वृषसेन, पुष्यधर्मन तथा पुष्यमित्र अशोक के बाद हुए। जैन-ग्रन्थकारों ने लिखा है कि राजगृह में बलभद्र[2] नाम का एक जैन राजा राज्य करता था।

'राजतरंगिणी' में कहा गया है कि कश्मीर में अशोक का उत्तराधिकारी जालौक राज्य करता था। तारानाथ ने लिखा है कि गांधार में वीरसेन का राज्य था। डॉ॰ थॉमस के अनुसार वीरसेन सम्भवतः पोलिबियस[3] (Polybius) के सुभागसेन का पूर्वज था।

विभिन्न ग्रन्थों के तथ्यों में एकरूपता लाना कोई सहज कार्य नहीं है। पुराणों तथा बौद्ध-ग्रन्थों की संयुक्त प्रामाणिकता से कुणाल का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। वह सम्पादी का पिता था। यह बात हेमचन्द्र तथा जिनप्रभासूरि जैसे जैन-ग्रन्थकारों के मत से भी पुष्ट होती है। सम्भवतः दिव्यावदान का धर्मवर्मन (जिसका उल्लेख फ़ाहियान ने भी किया है) तथा विष्णु और भागवत पुराण में आया है; सुयशस नाम उपर्युक्त राजकुमार का ही विशेषण था। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थों में भी कुणाल के राज्याभिषेक पर भी इतिहासकार एकमत नहीं है। कहा जाता है कि वह राजकुमार अन्धा था। इस प्रकार कुणाल की स्थिति प्रायः धृतराष्ट्र के समान थी। वह नाम मात्र के लिए शासक था। शरीर से तो वह राजकाज के योग्य था ही नहीं। उसका प्रिय पुत्र सम्प्रति उसके स्थान पर राजकाज सँभालता था। जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों में सम्प्रति को ही अशोक का उत्तराधिकारी कहा गया है।

वायु पुराण के अनुसार बन्धुपालित तथा दिव्यावदान और पाटलिपुत्र-कल्प[4] के अनुसार सम्पादी (सम्प्रति) कुणाल का पुत्र था। तारानाथ[5] के अनुसार कुणाल के पुत्र का नाम विगतशोक था। या तो ये सभी राजकुमार भाई-भाई थे, या ये सब नाम एक ही राजकुमार के थे। यदि बाद का मत सत्य माना जाय तो राजकुमार बन्धुपालित का ही नाम दशरथ था। दशरथ का नाम नागार्जुनी पहाड़ियों की गुफाओं के शिलालेखों में मिलता है। इन्हीं

१. P. 433.

२. Jacobi, *Introduction to the Kalpasutra of Bhadrabahu*.

३. *Ind. Ant.*, 1875, p. 362; *Camb. Hist. Ind.*, I, p. 512.

४. परिशिष्टपर्वन्, IX, 51-53.

५. *Ind. Ant.*, 1857, 362.

गुफ़ाओं को अशोक ने आजीविकों को दान कर दिया था। मत्स्य तथा विष्णु पुराण के अनुसार, शिलालेखों में अशोक के पौत्र दशरथ को 'देवानांपिय' भी लिखा गया है। विभिन्न प्रमाणों के अनुसार यह सम्प्रति का पूर्वज था।

इन्द्रपालित को हम सम्प्रति या शालिशूक कह सकते हैं, क्योंकि बन्धुपालित को हम दशरथ मान रहे हैं। जैन-ग्रन्थों में जैनधर्म के प्रचार के प्रसंग में सम्प्रति का नाम उसी सम्मान के साथ दिया गया है, जिस आदर के साथ बौद्ध-ग्रन्थों में सम्राट् अशोक का नाम मिलता है। जिनप्रभासूरि[1] के पाटलिपुत्रकल्प के अनुसार भारत का सम्राट् तथा कुणाल का पुत्र सम्प्रति पाटलिपुत्र में ही हुआ था। उसके अधीन तीन महाद्वीप (त्रिखण्डम् भारत क्षेत्रम् जिनायतन मण्डितम्) थे। इस महान् राजा ने विहारों तथा श्रमणों की स्थापना अनार्य क्षेत्रों में भी की थी।

डॉक्टर स्मिथ ने इस बात का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत किया है कि सम्प्रति का राज्य अवन्ती तथा पश्चिमी भारत[2] तक फैला हुआ था। अपने ग्रन्थ 'अशोक'[3] में उन्होंने कहा है कि यह कथन केवल अनुमान ही नहीं है कि अशोक के दो पौत्र थे, जिनमे से एक (दशरथ) राज्य के पूर्वी भाग मे तथा दूसरा (सम्प्रति) राज्य के पश्चिमी भाग में राज्य करता था।[4] जैन-ग्रन्थकारों ने सम्प्रति को पाटलिपुत्र तथा उज्जयिनी दोनो का शासक कहा है। पुराणों मे इसे मगध में अशोक का उत्तराधिकारी कहा गया है।

शालिशूक का अस्तित्व केवल विष्णु पुराण से ही नहीं, वरन् गार्गी संहिता[5] तथा पार्जिटर द्वारा उल्लिखित वायु-पाण्डुलिपि से भी प्रमाणित

---

१. *Bom. Gaz.*, I. i. 6-15; परिशिष्टपर्वन्, XI. 65.

२. परिशिष्टपर्वन्, XI. 23—इतश्च सम्प्रति नृपो ययाव उज्जयिनीम् पुरोम्।

३. तृतीय संस्करण, p. 70.

४. जैन-सामग्री के बावजूद प्रोफ़ेसर ध्रुव का मत है कि "इतिहासकारों का कहना है कि कुणाल की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों—दशरथ और सम्प्रति—के बीच में मौर्य-राज्य बँट गया (*JBORS*, 1930, 30)।" प्रो० ध्रुव द्वारा बताई गई युग पुराण की सामग्री अधिक प्रामाणिक नहीं है।

५. Kern, बृहत्संहिता, p. 37. गार्गी संहिता में आया है कि शालिशूक नाम का राजा बड़ा ही धूर्त तथा झगड़ालू था। वह धार्मिक के रूप में अधा-

हो गया है। उसे सम्प्रति का पुत्र वृहस्पति भी माना जा सकता है। दिव्यावदान के अनुसार भी वृहस्पति जब तक दूसरे राजवंश का नहीं सिद्ध होता, उसे सम्प्रति का पुत्र ही मानना होगा।

देववर्मन तथा सोमशर्मन कदाचित् एक ही नाम के दो रूप हैं। इसी प्रकार शतधनुस[1] तथा शतधन्वन भी एक ही नाम के दो स्वरूप हैं। वृषसेन और पुष्यधर्मन का भी अधिक परिचय प्राप्त नहीं है। हो सकता है कि ये दोनों नाम देववर्मन और शतधन्वन के ही दूसरे नाम हों। किन्तु, यह भी सम्भावना है कि ये लोग मौर्यवंश की किसी अन्य शाखा से सम्बन्धित रहे हों।

पुराणों में ही नहीं, वरन् बाण के हर्षचरित में भी, मगध के अन्तिम मौर्यवंशी राजा बृहद्रथ का नाम आया है। उसके सेनापति पुष्यमित्र ने उसे दबा दिया था, जिसे कि दिव्यावदान में मौर्यवंशी कहा गया है जो ग़लत है। राजवंश की हत्या करने वालों ने मौर्य-राज्य के एक मंत्री को भी क़ैद कर लिया था, ऐसा कहा जाता है।

मगध मे राजवंश के समाप्त हो जाने के बाद भी बहुत दिनों तक पश्चिमी भारत में छोटे-छोटे मौर्य-राजे राज्य करते रहे थे। ७३८ ईसवी[2] के कणस्व-शिलालेख में मौर्यवंशी राजा धवल का नाम आया है। डॉक्टर भण्डारकर ने इस राजा का नाम धवलप्पदेव भी लिखा है। ७२५ ईसवी[3] के

मिक (धर्मवादि अधार्मिकः) था, और बड़ी निर्दयता से प्रजा का दमन करता था।

१. शतधनु नामक राजा का महत्त्वपूर्ण वर्णन विष्णु पुराण (III. 18. 51) तथा भागवत पुराण (II. 8. 44) में देखिये। उसका शेष परिचय अनिश्चित-सा ही है।

२. *Ind. Ant.*, XIII. 163; *Bomb. Gaz.*, I. Part 2, p. 284. कणस्व राजपूताना के कोंग राज्य में है। यह असम्भव नहीं कि धवल उज्जैन के उपराजा के वंश का रहा हो। मौर्यों के उल्लेख के लिये देखिये नवसारिका (Fleet, *DKD*, 375)।

३. *Ep. Ind.*, XII. p. 11. But see *Ep.*, XX. 122. दूसरे विद्वान् ८१३ ईसवी के मुक़ाबले ७२५ ईसवी को ठीक नहीं समझते।

दाबोक (मेवाड़) शिलालेख में इसका नाम आया है। आरम्भ के चालुक्य तथा यादव-वंशियों के इतिहास में मौर्यों के कोंकण तथा खानदेश स्थित सेनापतियों का उल्लेख आया है।[1] ह्वेनसांग ने मगध के मौर्य-शासक पूर्णवर्मन का भी उल्लेख किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मौर्य-वंश के अन्तिम राजाओं के शासन-काल में मौर्य-साम्राज्य अपने पतन का अनुभव करने लगा था। अशोक की मृत्यु २३२ ईसापूर्व में या इसके आसपास हो गई। इसके २५ वर्ष के अन्दर ही यूनानी फ़ौजें हिन्दूकुश पर्वत को पार करने लगी थीं। हिंदूकुश पर्वत सम्राट् चन्द्रगुप्त या उसके पौत्र अशोक के साम्राज्य की सीमा थी। गार्गी संहिता के युग पुराण नामक अंश में लिखा है कि शालिशूक के शासन के बाद से मध्यदेश में मौर्यों का पतन होने लगा था।

ततः साकेतम् आक्रम्य पंचालान् मथुरांस्तथा
यवना दुष्टविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते
आकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः।[2]

"तब यूनानी योद्धा साकेत (अवध में) को जीतकर पांचाल तथा मथुरा पहुँचेंगे और कुसुमध्वज को जीतेंगे। पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) पहुँचते-पहुँचते समस्त राज्यों में अराजकता-सी फैल जायेगी।"

अब वह शक्ति कहाँ चली गई, जिसने सिकन्दर के प्रतिनिधियों को खदेड़ दिया था और सेल्युकस की फ़ौजों के दाँत खट्टे कर दिये थे।

महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री[3] के कथनानुसार ब्राह्मणों द्वारा पैदा की गई प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मौर्य-वंश की नींव हिल गई और समूचा साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

---

१. *Bomb. Gaz.*, I. Part 2, pp. 283, 284. बूहलर (*Ep. Ind.*, III, p. 136) ने संकेत किया है कि कोंकण के ये मौर्य-सेनापति दक्कन के उपराजा के वंशज थे। उसने पाठकों का ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है कि महाराष्ट्र देश में भी 'मोर' नाम का राजवंश है। सम्भवतः यह नाम 'मौर्य' का ही एक बिगड़ा हुआ रूप है।

२. Kern, बृहत्संहिता, p. 37.

३. *JASB*, 1910, pp. 259 ff.

ब्राह्मणों के विरोध का मुख्य कारण यह बताया जाता है कि अशोक ने अपने अभिलेखों में पशुबलि के विरोध में उपदेश दिया था। पंडित शास्त्री के कथनानुसार अभिलेखों में समूचे ब्राह्मण-वर्ग के विरुद्ध लेख अंकित थे और ब्राह्मणों के चिढ़ने की बात यह भी थी कि एक शूद्र राजा ने ये आदेश जारी किये थे। जहाँ तक पहली बात का सम्बन्ध है, पशुबलि के विरुद्ध दिये गये उपदेशों से ब्राह्मणों के प्रति कोई दुर्भावना प्रकट नहीं होती। अशोक के बहुत पहले ही ब्राह्मणो ने अपने सर्वाधिक पवित्र साहित्य—श्रुतियों—में घोषणा कर दी थी कि पशुबलि के विषय में उनकी धारणा अनिश्चित नही है। वे निश्चित रूप से अहिंसा मे विश्वास करते हैं। मण्डक उपनिषद्[1] में निम्न श्लोक मिलता है —

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तम् अवरम् येषु कर्म
एतत्श्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।

"अर्थात्, पशुबलि निम्न कोटि का कार्य है। वे लोग जो इसकी सतत प्रशंसा करते है, नितान्त मूर्ख हैं। वे वृद्धावस्था तथा मृत्यु के पराधीन हैं।" छांदोग्य उपनिषद्[2] मे घोर अंगिरस ने अहिंसा पर बल दिया था।

जहाँ तक दूसरी बात का प्रश्न है, हमें यह याद रखना चाहिये कि मौर्यों को शूद्र कहने के सम्बन्ध में परम्परा-साहित्य एकमत नही है। कुछ पुराणों में यह अवश्य कहा गया है कि महापद्म के बाद उनके राज्य पर शूद्र-वश का अधिकार हो जायेगा।[3] इससे यह नही समझा जा सकता कि महापद्म के बाद सभी राजा शूद्र ही हुए थे। जहाँ तक शुंगों और कण्व-वंश का प्रश्न है, वे लोग भी शूद्रों की ही श्रेणी में रखे जायेंगे। मुद्राराक्षस जो बाद की रचना है, उसमें भी चन्द्रगुप्त को शूद्र सिद्ध किया गया है।[4] पहले प्रमाणों से इसका

---

१. I. 2. 7; *SBE*, *The Upanishads*, *Pt.* II, p. 31.

२. III. 17. 4.

३. ततः प्रभृतिराजनो भविष्याः शूद्रयोनयः। दूसरे ग्रन्थों में कहा गया है— ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्व धार्मिकाः (*DKA*, 25)।

४. इस नाटक में चन्द्रगुप्त को 'नन्दान्वय' तथा 'वृषल' कहा गया है। पहले नाम के अनुसार, नन्द लोग 'अभिजन' थे। बाद में इसमें चन्द्रगुप्त को 'मौर्यपुत्र' भी कहा गया है, यद्यपि टीकाकारों ने नन्दान्वय तथा मौर्यपुत्र को एक में बाँधने की कोशिश की है। बौद्ध-ग्रन्थकारों के अनुसार, चन्द्रगुप्त माता या पिता के नाम पर मौर्य नही कहा जाने लगा था, वरन् मौर्य एक प्राचीन वंश का नाम था।

विरोधी तथ्य मिलता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है[1] कि परिनिब्बान सुत्त में मोरिय (या मौर्य) को क्षत्रिय-वंश का कहा गया है। महावंश[2] में भी मौर्यों को क्षत्रिय ही कहा गया है तथा चन्द्रगुप्त को इस वंश का प्रथम राजा माना गया है। दिव्यावदान[3] में चन्द्रगुप्त के पुत्र बिन्दुसार ने एक लड़की से कहा—"त्वं नापिनी अहं राजक्षत्रियो मूर्द्धाभिषिक्तः कथम् मया सार्धम् समागमो भविष्यति ?" अर्थात्, "तुम नाई की लड़की हो। मैं अभिषिक्त क्षत्रिय हूँ। मैं कैसे तुम्हारे साथ हो सकता हूँ ?" दिव्यावदान[4] में ही अशोक ने अपनी एक रानी (तिष्यरक्षिता) से कहा है—"देवि अहं क्षत्रियः कथम् पलाण्डुम् परिभक्षयामि ?" अर्थात्, "मैं क्षत्रिय हूँ। प्याज कैसे खा सकता हूँ ?" मैसूर के शिलालेख में चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय-परम्पराओं का भण्डार कहा गया है।[5] कौटिल्य ने अभिजात वर्ग के राजा को प्राथमिकता दी है। इससे भी सिद्ध होता है कि उसका राजा भी एक उच्च वंश का ही था।[6]

यूनानियों ने भी 'मोरी' (Moricis) जाति की चर्चा की है (Weber, *IA*, II (1873), p. 148; Max Muller, *Sans. Lit.*, 280; Cunningham, *JASB*, XXIII, 680)। 'वृषल' शब्द के बारे में कहा गया है कि अन्ध्र-वंश की स्थापना करने वाला को वृषल था (Pargiter, *DKA*, 38)। एक समकालीन ग्रन्थ में इस वंश को 'बम्हन' कहा गया है। मनु (X. 43) के अनुसार निम्न क्षत्रियों के लिये भी वृषल कहा जा सकता है (*Cf. IHQ*, 1930, 271 ff; *Cf.* also महाभारत, XII, 90, 15 ff.)। सद्धर्म ही वृष है (वृषोहि भगवान् धर्मो यस्तस्य कुरुते ह्यलम्)। मौर्य लोगों का यूनानियों से सम्पर्क था। उनके जैन और बौद्ध विचारों के कारण भी ब्राह्मण उनमें धर्मच्युत् कहने लगे। ब्राह्मणों ने भगवान बुद्ध तक को 'वषलक' (वृषल) कहा है (Mookerji, *Hindu Civilization*, 264)।

१. P. 267 सुप्र।

२. Geiger's translation, p. 27.

३. P. 370.

४. P. 409.

५. Rice, *Mysore and Coorg from the Inscriptions*, p. 1 .

६. *Cf.* अर्थशास्त्र, p. 326; See also *Supra*, 266 f (चन्द्रगुप्त का शासन)।

पंडित शास्त्री ने पशुबलि के प्रसंग में कहा है कि अपने एक अभिलेख में अशोक ने प्रभावशाली शब्दों में कहा है कि जो अपने को पृथ्वी का देवता कहा करते थे, उन्हें मैंने नक़ली देवता के रूप में ला दिया। यदि इसका कुछ अर्थ हो सकता है, तो यही कि ब्राह्मण लोग 'भूदेव' कहे जाते थे। उन्हें ही अशोक ने नीचा दिखाया है। उपर्युक्त कथन का मूल रूप इस प्रकार है—

"यिमाय कालाय जम्बूदीपसि अमिसा देवा हुसु ते दानि मिस्कटा।"

पंडित शास्त्री ने सेनार्ट की व्याख्या को सही माना है। किन्तु, सिलवेन लेवी' ने कहा है कि 'अमिसा' शब्द संस्कृत के अमृषा के लिए नहीं है, क्योंकि भाब्रू-अभिलेख में 'मृषा' (असत्य) के लिए 'मिसा' नहीं, वरन् 'मुसा' शब्द आया है। मास्की के अनुसार 'मिसंकटा' के लिए 'मिसिभूता' शब्द आया है जो मूलतः 'मिश्रीभूता' है। संस्कृत के 'मृषा' शब्द को 'मिसिभूता' कर देना व्यकरण की दृष्टि से ग़लत होगा। 'मिश्र' शब्द का अर्थ है मिला-जुला हुआ। 'मिश्रीभूता' का अर्थ होता है मिलने के लिए ही बना हुआ। पूरे अनुच्छेद का अर्थ है कि तत्कालीन भारत के वे वासी जो पहले देवताओं से अलग थे और बाद मे उनसे हिलमिल गये थे।[2] इसलिए अब किसी को दिखाने का प्रश्न ही नहीं रहा।[3]

पंडित शास्त्री ने आगे कहा है कि सम्राट् अशोक द्वारा धर्म-महामात्रों की नियुक्ति ब्राह्मणों के अधिकारों का स्पष्ट अपहरण था। धर्ममहामात्र नैतिकता के ही रक्षक (Superintendent of Morals) नहीं थे, वरन् उनके कार्यों में

---

१. Hultzsch, *Ashoka*, 168.

२. *Cf.* आपस्तम्ब धर्मसूत्र, II, 7. 16. 1—"पहले इस ससार में मनुष्य और देवता साथ-साथ रहते थे। अपनी तपस्या के फलस्वरूप देवता स्वर्ग चले गये और मनुष्य यहीं रह गये। जो मनुष्य देवताओं की तरह ही तपस्या करते थे, वे भी देवताओं के ही साथ या ब्रह्म के साथ निवास करने लगे थे।" इस ओर सबसे पहले डॉ॰ भण्डारकर ने लोगों का ध्यान खींचा। *Cf.* also हरिवंश (III. 32. 1)—"देवतानाम् मनुष्यानांम् सहवासोभवत्तदा।" और *SBE*, XXXIV (p. 222-23) में वेदान्त सूत्र पर शंकर की टीका। "अपने तपोबल से प्राचीन काल के मनुष्य देवताओं से बातें किया करते थे। स्मृतियों में कहा गया है कि वेदों के पाठ से अपने इष्ट से बातचीत की जा सकती है।"

३. सर्वप्रथम डॉक्टर भण्डारकर ने इस अनुच्छेद को उद्धृत किया (*Indian Antiquary*, 1912, p. 170)।

क़ानून की व्यवस्था (जिसमें ब्राह्मणों के साथ उदारता भी शामिल है), यवन, कम्बोज, ब्राह्मणों, गान्धारों रिष्टिकों आदि के कल्याण-कार्यों में वृद्धि, वैद व प्राणदण्ड की सजाओं की निगरानी राजपरिवार तथा राजा के सम्बन्धियों की पारिवारिक व्यवस्था, दान-प्रशासन आदि के कार्य भी शामिल थे।[1] यह नहीं कहा जा सकता कि उनका कर्त्तव्य केवल नैतिकता की रक्षा ही था, न ही उनकी नियुक्ति ब्राह्मणों के अधिकारों पर प्रत्यक्ष आघात ही था। इसके अतिरिक्त इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि धर्ममहामात्रों के पद के लिए ब्राह्मण लोग ही भर्ती किये जाते थे।

इसके बाद हमारा ध्यान उस अनुच्छेद की ओर आकृष्ट होता है जिसमें अशोक ने दण्डसमता और व्यवहारसमता के सिद्धान्तो पर बल दिया है। पण्डित शास्त्री ने अशोक के इन सिद्धान्तों को दण्डसमता और विधि-समता के रूप में माना है। ये समानताएँ जाति, धर्म तथा वंश से परे थी। यह आदेश भी ब्राह्मणों के अधिकारों पर एक आघात था। ब्राह्मणों को अभी तक बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त थीं, जैसे कि उन्हें प्राणदण्ड नही दिया जाता था।

इस अनुच्छेद में दण्डसमता और व्यवहारसमता के जो शब्द आये है, प्रसग से हटाकर उनका अर्थ नही निकाला जा सकता। उक्त अनुच्छेद का भाषान्तर इस प्रकार है—

"सैकड़ों और हजारों पर नियुक्त अपने राजूकों को मैने किसी को भी सम्मान या दण्ड प्रदान करने के विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है। किन्तु, यह आवश्यक है कि ये लोग व्यवहारसमता और दण्डसमता के सिद्धान्तो का पालन करें। मेरा यह सिद्धान्त है जिस मनुष्य को प्राणदण्ड मिल चुका हो, या वह जो कारावास में हो, उसे तीन दिन का विश्राम अवश्य ही दिया जाना चाहिये।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि व्यवहारसमता और दण्डसमता के सिद्धान्त को ध्यान से समझा जाय, जिसे कि सम्राट् ने विकेन्द्रीकरण की आम नीति के साथ सम्बद्ध कर दिया था। अशोक ने राजूकों को दण्ड-विधान में स्वतन्त्रता दे दी थी, परन्तु अर्थ यह नही था कि एक राजूक के क्षेत्र का दण्ड तथा व्यवहार, दूसरे क्षेत्र के दण्ड और व्यवहार से भिन्न हो। अशोक चाहता था कि दण्ड और व्यवहार में सहज समता रहे।[2] उदाहरण के रूप में, उसने प्राणदण्ड-

१. *Ashoka*, 3rd ed., pp. 168-69.
२. एस० एन० मजूमदार का सुझाव।

प्राप्त व्यक्ति के लिए तीन दिन के विश्राम की व्यवस्था की है। अशोक द्वारा प्रचारित समता की नीति से राजूकों के स्वशासन में कुछ कमी आ जाती थी। इसके अलावा ब्राह्मणों के प्राणदण्ड की छूट के अधिकार पर भी जानबूझ कर कहीं भी हस्तक्षेप नहीं किया जाता था।

किन्तु, क्या प्राचीन भारत में ब्राह्मण सभी परिस्थितियों में प्राणदण्ड से बरी रहते थे? पंचविंश ब्राह्मण[1] में लिखा है कि एक पुरोहित यदि अपने स्वामी को धोखा देगा तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा। कौटिल्य[2] ने लिखा है कि जो ब्राह्मण देशद्रोह का दोषी होता था, वह पानी में डुबा दिया जाता था। महाभारत के पाठकों को मालूम है कि माण्डव्य और लिखिता[3] को दिये गये दण्ड की कहानियाँ लिखी हुई हैं। मध्यकालीन तथा आधुनिक भारत के मुक़ाबले प्राचीन कालीन भारत में ब्राह्मण का जीवन धार्मिक दृष्टि से अधिक अवध्य था। ऐतरेय ब्राह्मण से हमें पता चलता है कि इक्ष्वाकु-वंशी राजा हरिश्चन्द्र ब्राह्मण बालक के बलिदान के प्रश्न पर तनिक भी नहीं हिचकिचाए थे।

अशोक की ब्राह्मण-विरोधी नीति के विरुद्ध उसके शिलालेखों में ऐसी पर्याप्त सामग्री मिलती है जिससे उसकी ब्राह्मणों की भलाई में दिलचस्पी की ही पुष्टि होती है। अपने तीसरे अभिलेख में अशोक ने ब्राह्मणों के प्रति उदारता का उपदेश अंकित कराया है। चतुर्थ अभिलेख में उसने ब्राह्मणों के प्रति अभद्र व्यवहार की निन्दा की है। अपने पंचम् अभिलेख में अशोक ने कहा है कि ब्राह्मणों के कल्याण के हेतु ही धर्ममहामात्रों की नियुक्ति हुई है।

पंडित शास्त्री ने आगे कहा है कि ज्यों ही अशोक का शासन-काल समाप्त हुआ, ब्राह्मणों ने उसके उत्तराधिकारियों के विरोध में आवाज़ उठाई। अशोक के पुत्रों तथा ब्राह्मणों के बीच इस प्रकार के किसी संघर्ष का प्रमाण नहीं मिलता। इसके विपरीत यदि कश्मीरी इतिहासकारों पर विश्वास किया जाय तो अशोक के पुत्रों तथा उत्तराधिकारियों में से एक जालौक और ब्राह्मणों के सम्बन्ध

१. *Vedic Index*, II, p. 84. पुरोहित कुत्स और शिष्य कलन्द की कथा—*Punch. Br.*, XIV. 6. 8; *Cf.* बृहदारण्यक उपनिषद्, III. 9, 26.

२. P. 229.

३. आदि पर्व, 107 और शान्ति पर्व, 23, 36.

नितान्त मैत्रीपूर्ण थे।[1]

अन्त में पंडित शास्त्री ने मगध के राजा तथा मौर्यवंश के अन्तिम शासक की हत्या पुष्यमित्र शुंग के हाथों किये जाने का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस महान् क्रान्ति में ब्राह्मणों का स्पष्ट हाथ दिखाई पड़ता है। किन्तु. भरहुत के **बौद्ध-अवशेषों में** 'शुंगवंश की प्रभुता का समय' लिखा है, किन्तु इससे यह सिद्धांत **न निकालिये** कि शुंग लोग इन कट्टर ब्राह्मणों के नेता थे। तो, क्या तत्कालीन **अवशेषों** के मुक़ाबले दिव्यावदान के संग्रहकर्त्ता-जैसे क्रमहीन सामग्री प्रस्तुत करने वाले विद्वानों के लेखों को अधिक प्रामाणिक माना जाय ? यदि यह मान भी लिया जाय कि पुष्यमित्र कट्टर ब्राह्मण-समर्थक था तो भी यह नहीं समझा जा सकता कि मौर्य-साम्राज्य का पतन तथा उसका विघटन केवल उसी के बल या उसके समर्थकों के बल से ही हो गया। १८७ ईसापूर्व के आसपास पुष्यमित्र द्वारा की गई सैनिक-क्रान्ति के बहुत पहले से ही मौर्य-शासन की नीव हिल रही थी। राजतरंगिणी में कहा गया है कि सम्राट् अशोक की मृत्यु के तुरन्त बाद ही उसका पुत्र जालौक स्वतन्त्र हो गया और कश्मीर पर राज्य करने लगा था। उसने मैदानी क्षेत्रों (कन्नौज तक) पर अपना आधिपत्य जमा रखा था। यदि तारानाथ पर विश्वास किया जाय तो एक अन्य राजा वीरसेन ने अशोक के पाटलिपुत्र में रहने वाले निर्बल उत्तराधिकारी से गान्धार छीन दिया था। विदर्भ और बरार के हाथ से निकलने की बात कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् में अंकित है। यूनानी लेखक भी साम्राज्य से पश्चिमी भारत के भागों के निकल जाने की

१. ब्राह्मण अफ़सरों का उल्लेख भी ध्यान में रखिये। उदाहरणार्थ, बाद के मौर्यों का अधिकारी पुष्यमित्र। कल्हण ने तो अशोक की प्रशंसा ही की है। दूसरे ग्रन्थकार बाण ने मौर्यों को नहीं, वरन् मौर्यों के अन्तिम शासक को पदच्युत् करने वाले ब्राह्मण सेनापति को अनार्य कहा है। विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त की तुलना 'भगवान के शूकर अवतार' से की है। कुछ पौराणिक ग्रन्थकारों ने मौर्यों को असुर कहा है, और अन्तिम मौर्य-राजाओं की नृशंसता की ओर गार्गी संहिता में संकेत किया गया है। किन्तु, इस बात के प्रमाण बहुत ही कम हैं कि मौर्य-दमन के शिकार ब्राह्मण ही थे। इसके विपरीत, ब्राह्मण लोग ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त किये जाते थे, जैसे पुष्यमित्र। 'सुर-द्विष' या 'असुर' शब्द मौर्यों के ही लिये नहीं, वरन् सभी ऐसे लोगों के लिए आया है, जो बौद्धमत के अनुयायी थे। इसके अलावा पुराणों के उल्लेख अन्य विभिन्न उल्लेखों से भिन्न हैं। **अशोक के बाद राजा 'देवनांपिय' की उपाधि भी नहीं धारण करते थे।**

पुष्टि करते हैं। पोलिबयस ने लिखा है कि २०६ ईसापूर्व के आसपास वीरसेन का उत्तराधिकारी सोफ़ागेसेनस (सुभागसेन) राज्य करता था। इस राजा के उल्लेख का अंश इस प्रकार है —

"उसने (एन्टिओकोस-महान् ने) काकेशस (हिन्दूकुश) को पार कर भारत में प्रवेश किया, और सुभागसेन से मुलाक़ात की। उसे अनेकानेक हाथी भेंट में मिले। उसने पुनः अपनी सेना को सुसंगठित किया और स्वयं सेना का नेतृत्व करते हुए आगे बढ़ा। यही नहीं, उसने एण्ड्रोस्थनीज़ को पीछे छोड़ दिया और वह सुभागसेन से प्राप्त धन को लेकर घर वापस लौट गया।"

हमें यह देखना है कि सुभागसेन एक प्रभुतासम्पन्न राजा था, न कि क़ाबुल की घाटी का मात्र एक सामन्त, जैसा कि डॉक्टर स्मिथ ने कहा है। वह भारतीयों के राजा की उपाधि का अधिकारी था जो कि भारतीय ग्रन्थकार चन्द्रगुप्त-जैसे राजा को ही मानते थे। पोलिबियस ने यह कहीं नहीं लिखा है कि सीरिया के राजा ने उसे हरा दिया या उसने सीरिया की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके विपरीत यह कथन कि एन्टिओकोस ने सुभागसेन से अपनी मैत्री को नया रूप दिया, यह सिद्ध करता है कि दोनों समता के धरातल पर ही एक दूसरे से मिले तथा आपस में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध क़ायम किया। यूनानी राजा द्वारा मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध क़ायम करना तथा भारतीय राजा द्वारा हाथियों की भेंट से हमें चन्द्रगुप्त और सेल्युकस की ही मित्रता याद आती है। इसके बाद 'मैत्री को नया रूप देने' की शब्दावली से लगता है कि राजा सुभागसेन और एन्टिओकोस के पहले भी पारस्परिक सम्बन्ध थे। सम्भवतः वह २०६ ईसापूर्व के पहले ही शासनारूढ़ हुआ। २०६ ईसापूर्व के पहले दक्षिणी-पश्चिमी भारत में स्वतंत्र राज्य के अस्तित्व से लगता है कि मौर्य-साम्राज्य का विघटन पुष्यमित्र की सैनिक-क्रान्ति के २५ वर्ष पूर्व से ही होने लगा था।

हमें ऐसा लगता है कि मौर्य-काल का विघटन पुष्यमित्र के नेतृत्व में चलाये गये ब्राह्मण-आन्दोलन से ही हुआ, इस निष्कर्ष की अच्छी तरह जाँच नहीं की गयी। क्या यूनानियों के आक्रमण से मौर्यों का ह्रास आरम्भ हुआ ? अशोक के बाद तो सबसे पहला यूनानी आक्रमण ऐन्टिओकोस ने ही २०६ ईसापूर्व में किया। इस प्रकार कल्हण और पोलिबियस के अनुसार यूनानी आक्रमण के बहुत पहले से ही मौर्यों का पतन आरम्भ हो गया था।

तब मौर्यों के इतने शक्तिशाली साम्राज्य से मूल कारण क्या थे ? इसका एक युक्तियुक्त कारण तो यह है कि मौर्यों के दूरस्थ प्रान्तों के शासक बड़े ही अन्यायी

थे। बिन्दुसार के समय में भी तक्षशिला के निवासियों ने अत्याचारों से पीड़ित होकर विद्रोह कर दिया था। दिव्यावदान[1] में कहा गया है—

"अथ राज्ञो बिन्दुसारस्य तक्षशिला नाम नगरम् विरुद्धम्। तत्र राज्ञा बिन्दुसारेन अशोको विसर्जितः...यावत् कुमारश्चतुरंगेज वालकायेन तक्षशिलाम् गतः, श्रुत्वा तक्षशिला निवासिनः पौराः......प्रत्युद्गम्य च कथयन्ति 'न वयं कुमारस्य विरुद्धाः नापि राज्ञो बिन्दुसारस्य अपि तु दुष्टामात्या अस्माकम् परिभवम् कुर्वन्ति।'" अर्थात्, "अब राजा बिन्दुसार के नगर तक्षशिला में विद्रोह हुआ। राजा ने अशोक को उधर भेजा। अशोक ज्यों ही तक्षशिला के समीप पहुँचा, तक्षशिलावासियों को समाचार मिला। अशोक की सेना चतुरंगिणी थी। तक्षशिलावासी नगर से निकल कर उससे मिलने आये। उन लोगों ने कहा कि न तो हम राजकुमार के विरोधी हैं और न राजा बिन्दुसार के। किन्तु, ये दुष्टमंत्री हमारा अपमान करते हैं।"

एक बार अशोक के समय में भी तक्षशिला में विद्रोह हुआ और इस बार भी दुष्ट मंत्रियों के व्यवहार के कारण ही ऐसा हुआ। "राज्ञोऽओकस्यत्तरापथे तक्षशिला नगरम् विरुद्धम्।"[2] राजकुमार के हवाले नगर का प्रशासन सौंपा गया। जब राजकुमार नगर में पहुँचा तो प्रजा ने कहा—"न वय कुमारस्य विरुद्धान राज्ञोऽशोकस्यापि तु दुष्टात्मनोऽमात्या आगत्यास्माकम् अपमानम् कुर्वन्ति।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दिव्यावदान बाद का ग्रन्थ है, किन्तु इसमें लिखी गई मंत्रियों की दुष्टता की पुष्टि अशोक के कलिंग-अभिलेख से भी होती है। उच्च अधिकारियों (महामात्रों) को सम्बोधित करते हुए अशोक ने कहा है—"सभी प्रजाजन मेरी सन्तानें है। मैं चाहता हूँ कि मेरी सन्तानें इहलोक तथा परलोक दोनों ही लोकों में सुखी और समृद्ध रहें। मानव मात्र के लिए मेरी यही कामना है। तुम लोग इस सत्य को पूरी तरह नहीं समझते। यदि कोई इस ओर ध्यान भी देता है तो वह भी आंशिक रूप से। इसलिए सरकार की सुव्यवस्था के लिए इस ओर सभी ध्यान दें। पुनः जब किसी व्यक्ति को कारावास या कोई यातना दी जाती है और यदि वह दण्ड अकारण होता है तो अन्य प्रजाजनों को भी दुःख होता है। इसलिए अधिकारियों द्वारा कर्त्तव्यों के अनुचित ढंग से पालन से राजा का सम्मान कभी नहीं बढ़ता। नागरिकों की नज़रबन्दी या उनको दी जाने वाली कोई अन्य यातना अकारण नहीं होनी चाहिये। इस उद्देश्य की

१. P. 371.
२. दिव्यावदान, 407f.

पूर्ति के लिए में पाँचवें वर्ष बारी-बारी से ऐसे अधिकारियों को प्रान्तों में भेजूँगा जो नम्र और सन्तुलनशील स्वभाव के होंगे। उज्जैन से हर तीसरे वर्ष ऐसे अधिकारी भेजे जाते रहेंगे। ऐसा ही तक्षशिला में भी होगा।"[1]

अभिलेख के अन्त में लिखे अंश से स्पष्ट है कि कलिंग में भी अधिकारियों का कुप्रशासन व्याप्त था। उज्जैन और तक्षशिला की स्थिति प्रायः समान थी। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि पुष्यमित्र की सैनिक-क्रान्ति (१८७ इसापूर्व से)[2] के बहुत पहले से ही मौर्य-साम्राज्य के दूरस्थ प्रान्तों की वफ़ादारी में कमी आ गयी थी। इसमें कोई शक़ नहीं कि २०६ ईसापूर्व के यूनानी आक्रमण का अशोक मुक़ाबला करना चाहता था, पर उसके सहायक अधिकारी ठीक नहीं थे। यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमोत्तर के जिन प्रान्तों में बिन्दुसार के समय से ही जनता दुष्ट मंत्रियों के कुशासन से परेशान थी, वे प्रान्त सबसे पहले मौर्य-साम्राज्य से अलग हुए।

अशोक के उत्तराधिकारियों में साम्राज्य के विघटन को रोकने की न शक्ति थी और न इच्छा। साम्राज्य की सामरिक शक्ति, कलिंग के युद्ध में ही अपना दम तोड़ चुकी थी। अशोक ने अपने पूर्वजों की युद्ध-विजय की नीति को त्याग कर धम्म-विजय की नीति अपना ली थी। इससे भी साम्राज्य की सैन्य-शक्ति क्षीण हुई।[3] उसने अपने पुत्रों और पौत्रों को रक्तपात न करने तथा सब्र से आनन्द

१. Smith, *Ashoka*, 3rd ed., pp. 194-96.

२. जैन-ग्रन्थों में पुष्यमित्र के शासनारूढ़ होने की तिथि ३१३-१०८ = २०५ ईसापूर्व दी गई है, जो पुष्यमित्र के अवन्ती में शासनारूढ़ होने की तिथि हो सकती है, क्योंकि मगध-क्रान्ति का समय तो १८७ ईसापूर्व दिया गया है। इसके विपरीत यदि गार्गी संहिता पर विश्वास किया जाय तो उत्तराधिकारी शालिशूक ने अपने अत्याचारों से पतन को और भी समीप ला दिया था—सराष्ट्र मर्दते घोरम् धर्मवादि अधार्मिकः (*sic*)। अशोक के कुछ उत्तराधिकारियों (जलौक) ने स्वतंत्र राज्य क़ायम कर लिया था। इस प्रकार मौर्य-साम्राज्य के विघटन के लिए वे स्वयं ज़िम्मेदार हैं।

३. *Cf. ante*, p. 353 f. गर्ग ने अशोक की धम्म-विजय की नीति की आलोचना की है। सम्भवतः शालिशूक के ही कारण ऐसा किया गया है, क्योंकि इस लेखक के मतानुसार अशोक ने अपने पुत्रों को धम्म-विजय का उपदेश दिया था। जायसवाल ने भी गार्गी संहिता के इस अनुच्छेद की ओर ध्यान आकर्षित

प्राप्त करने का उपदेश दिया था। उसके उत्तराधिकारी 'धम्म-घोष' की अपेक्षा 'भेरी-घोष' से कम परिचित थे, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठने वाले बाद के सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के संगठित साम्राज्य की समता को विघटित होने से न बचा सके।

२०६ ईसापूर्व से मौर्य-साम्राज्य का विघटन आरम्भ हुआ। गार्गी संहिता और पतंजलि के महाभाष्य के अनुसार यवनों के आक्रमण के समय वह और स्पष्ट हो गया। अन्ततः पुष्यमित्र ने मौर्यों के हाथ से सिंहासन छीन ही लिया।

किया है कि––स्थापयिष्यति महात्मा विजयम् नाम धार्मिकम्, "धम्म-विजय का राज्य बेवकूफ ही स्थापित करते है।" *JBORS*, IV, 261)। इस सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों के लिए *Cal. Rev.*, Feb. 1946, p. 79 ff और *Cal. Rev.*, 1943, April 39 ff देखिये।

इसके आलावा अशोक के उत्तराधिकारियों में आखेट-क्रीड़ा और युद्ध आदि के उत्सव भी वर्जित से हो गये थे। अशोक के समय में भी साम्राज्य की सेना २६ वर्ष तक निष्क्रिय पड़ी रही थी। चीनी Hou Hanshu के अनुसार, भारतीय बौद्ध धर्म के मानने वाले थे, इसलिये किसी का वध या किसी से युद्ध न करना उनकी आदत बन गई थी। जिस समय पुष्यमित्र ने क्रान्ति की—मौर्य, जनता के सम्पर्क में नही थे। दान से उनका कोष खाली हो गया था।

मौर्य-वंशावली

पिप्पलिवन के मौर्य
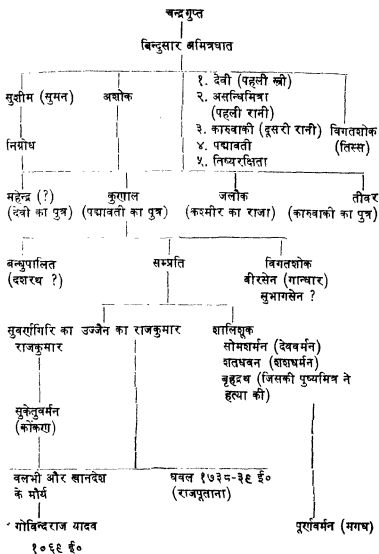
९ | वैम्बिक-शुंग शासन और बैक्ट्रियन यूनानी

१. पुष्यमित्र का शासन

सततम् कम्पयामास यवनानेक एव यः
बलपौरुष-सम्पन्नान् कृतास्त्रानमितौजसः
यथासुरान् कालकेयान् देवो वज्रधरस्तथा
—महाभारत[1]

औद्भिज्जो भविता कश्चित् सेनानीः काश्यपो द्विजः
अश्वमेधम् कलियुगे पुनः प्रत्यहरिष्यति ।
—हरिवंश[2]

मौर्यों ने भारत का इस अर्थ में बड़ा उपकार किया कि समूचे देश को एकता के सूत्र में बाँध दिया। सिकन्दर और सेल्युकस के सैनिकों से देश की रक्षा तथा देश की शासन-प्रणाली में एकरूपता, उनके सराहनीय कार्यों में मानी जायेगी। मौर्यों ने प्राकृत को सारे देश की राजभाषा बनाया और समूचे राष्ट्र को एक सर्वमान्य धर्म के सूत्र में बाँधा। मौर्य-वंश के पतन से, कुछ ही दिनों के लिए सही, भारत की एकता समाप्त हो गई। मौर्यों के बाद हिन्दूकुश से लेकर बंगदेश तथा कर्नाटक प्रदेश तक कोई ऐसी राजसत्ता न रह गई, जिसे सभी स्वीकार करते। भारत के उत्तरी-पश्चिमी द्वार से लड़ाकू जातियाँ देश में प्रविष्ट होने लगी तथा गांधार प्रान्त में अपने राज्य क़ायम करने लगी। ये लोग पश्चिमी मालवा और पड़ोसी क्षेत्रों की ओर भी बढ़े। धीरे-धीरे पंजाब में विदेशी तथा दकन में स्थानीय राजघरानों ने प्रभुता क़ायम कर ली, फिर धीरे-धीरे सिंधु और गोदावरी की घाटियों का आपसी सम्पर्क छिन्न-भिन्न हो गया तथा शाकल, विदिशा और प्रतिष्ठान आदि नये नगरों के उद्भव से पाटलिपुत्र

१. II. 4. 23.
२. III. 2. 40.

की रौनक जाती रही। एक ओर गंगा की घाटी तथा दक्कन में ब्राह्मण-धर्म प्रबल हुआ और दूसरी ओर उड़ीसा में जैनधर्म का ज़ोर बढ़ा। माहेश्वर और भागवत सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। मध्यप्रदेश के वैयाकरणों के प्रभाव से संस्कृत भाषा को काफ़ी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इसके विपरीत दक्षिण भारत के प्रतिष्ठान और कुन्तल राज्यों में प्राकृत का ही बोलबाला रहा।

पुराणों तथा हर्षचरित के अनुसार मौर्य-वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ की, उसके सेनापति पुष्यमित्र ने हत्या कर दी और स्वयं सिंहासन पर आरूढ़ हो गया। यहीं से एक नये राजवंश का आरम्भ हुआ।

पुष्यमित्र के खानदान के बारे में अनेक अनिश्चित धारणाएँ हैं। दिव्यावदान के अनुसार पुष्यमित्र भी मौर्यों के वंश से ही सम्बन्धित था। इसके विपरीत पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र को 'मालविकाग्निमित्रम्' में बैम्बिक वंश[1] का कहा गया है, किन्तु पुराणों और हर्षचरित[2] में इन राजाओं को शुङ्गवंशी बताया गया है। एक इतिहासकार ने संकेत किया है कि जिन शुंगों के नाम के अन्त में 'मित्र' रहता था, वे ईरानी थे तथा सूर्य के पुजारी थे।[3] दूसरे लोग शुंगों को

---

१. मालविकाग्निमित्रम् में अग्निमित्र अपने को बैम्बिक-कुल का बताता है। (Act IV, Verse 14; Tawney's Translation, p. 69) । *The Ocean of Story*, Penger, I, 112, 119 में बैम्बिक राजा का नाम आया है। श्री एच० ए० शाह (*Proceedings of Third Oriental Conference*, Madras, p. 379) के संकेतानुसार बैम्बिक, बिम्बिसार के परिवार से सम्बन्धित था। यह भी हो सकता है कि बैम्बिक नाम 'बिम्बिका' नाम की वनस्पति से कुछ सम्बन्धित हो (दाक्षिण्यम् नाम बिम्बोष्ठि बैम्बिकानाम् कुलव्रतम्)। यह भी हो सकता है कि भरहुत-शिलालेख के अनुसार, बैम्बिक का सम्बन्ध बिम्बिका नदी से हो (Barua and Sinha, p. 8) । *Cf. Padma Bhumikhanda*, 90, 24; Baimbaki in Patanjali, IV, 1. 97. हरिवंश (भविष्य, II. 40) में कलियुग में भी अश्वमेध करने वाले ब्राह्मण सेनानी को 'औभिज्ज' कहा गया है। जायसवाल ने पुष्यमित्र को ही वह सेनानी माना है। बौद्धायन श्रौत सूत्र में 'बैम्बकयः' को 'कश्यप' कहा गया है।

२. यह उल्लेखनीय है कि हर्षचरित के पुष्यमित्र को शुंग नहीं कहा गया है। हो सकता है पुराणों में बैम्बिक और शुंग राजाओं को एक ही बताया गया हो।

३. *JASB*, 1912, 287; *Cf.* 1910, 260.

भारतीय ब्राह्मण मानते हैं। पाणिनि[1] ने शुङ्गों तथा ब्राह्मण-कुल के भारद्वाज को एक दूसरे से सम्बन्धित कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद्[2] में शुङ्गों की महिला-उत्तराधिकारिणी के पुत्र शौंगीपुत्र को एक शिक्षक ही माना गया है। बंश पुराण में भी शौंगायनी नामक एक शिक्षक की चर्चा है। मैकडानेल और कीथ के अनुसार आश्वलायन श्रौत सूत्र[3] में भी शुङ्गों को अध्यापक कहा गया है। मालविकाग्निमित्रम् और पुराणों के विरोधी कथनों को देखते हुए यह कहना कठिन है कि पुष्यमित्र भारद्वाज-गोत्रीय शुङ्ग था, या कश्यप-गोत्र का बैम्बिक। विद्वान् इतिहासकारों ने धनभूति के समय के शुङ्गों का समय १००-७५ ईसा-पूर्व कहा है। हर्षचरित में यद्यपि पुष्यमित्र के वंश की उपाधि को अस्वीकार किया गया है तो भी उसे वासुदेव कण्व का पूर्वज तथा पौराणिक सूची का अन्तिम राजा बताया गया है।

यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि कब और क्यों बाद में कदम्बों की तरह पुष्यमित्र ने लेखनी छोड़ कर तलवार हाथ में ली। यह सोचना अकारण होगा कि अशोक ने ब्राह्मणों पर इतना अत्याचार किया कि ब्राह्मणों को अपना पौरोहित्य-कार्य छोड़ना पड़ा। प्राचीन भारत में ब्राह्मण सेनापतियों की कमी नहीं रही।[4] बाद के मौर्यों के संरक्षण में ब्राह्मण-वर्ग के लोगों को नौकरी मिलती थी। इससे सिद्ध है कि बाद के मौर्य लोगों की नीति ब्राह्मण-विरोधी नही थी।

पुष्यमित्र का साम्राज्य दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ था। पाटलिपुत्र, अयोध्या तथा विदिशा उसके राज्य के नगर थे। यदि दिव्यावदान और तारानाथ पर विश्वास किया जाय तो पुष्यमित्र का राज्य जालन्धर और

---

१. In Sutra IV, 1, 117; क्रमदीश्वर, 763.

२. VI. 4. 31

३. XII. 13.5, etc. वंश-ब्राह्मण में शुंगों को माद्रा देश का बताया गया है (*Ved. Index*, II, p. 123)। पुष्यमित्र के सन्दर्भ में तारानाथ के उल्लेख के लिये देखिये *JBORS*, IV; Pt. 3,258. भारद्वाज उच्चवंशी शासन के पक्षपाती थे (देखिये कौटिल्य, 31, 316)।

४. महाभारत में द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा मिलते हैं। यादव-वंश में लोलेश्वर तथा पाल-वंश में सोमेश्वर ब्राह्मण सेनापति थे (रतिदेव, *Indian Antiquary*, VIII. २०)।

शाकल तक था।[1] दिव्यावदान[2] में लिखा है कि पुष्यमित्र पाटलिपुत्र में रहता था। मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार विदिशा (पूर्वी मालवा) पर उपराजा[3] के रूप में अग्निमित्र शासन करता था। जो दूसरा उपराजा कोशल में शासन करता था, सम्भवतः राजा का रिश्तेदार ही था। अग्निमित्र[4] की रानी का भाई वीरसेन नीची जाति का था। उसकी नियुक्ति नर्मदा के तटवर्ती प्रदेशों में हुई थी—अत्थिदेवीए वराणावरो भादा वीरसेनो नाम, सो भट्टिणा अन्तव (प) आलदुग्गे नम्मदातीरे[5] ठाविदो।

१. मेरुतुङ्ग-जैसे जैन-ग्रन्थकार अवन्ती को पुष्यमित्र का प्रान्त मानते हैं। बाद में अवन्ती पर सातवाहनों का तथा शाकल पर यवनों का अधिकार हो गया।

२. P. 434.

३. जी० विद्यानिधि द्वारा सम्पादित मालविकाग्निमित्रम्, Act V, pp. 370, 91, esp. Verse 20—सम्पद्यते न खलु गोप्तरि ना अग्निमित्रे।

४. उपराजाओं के होने की बात का उल्लेख अयोध्या में प्राप्त एक शिलालेख में मिलता है। इस शिलालेख के अनुसार सेनापति पुष्यमित्र का छठा भाई 'कोशलाधिप' के रूप में, यहाँ शासन करता था। इसने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे (नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वैशाख, सम्वत् १९८१, *SBORS*, X (1924), 203; XIII (1927) facing 247; *Mod. Review*, 1924, Oct., p. 431; *IHQ*, 1929, 602 f; *Ep. Ind.*, XX. 54 ff)। यह दिलचस्प है कि पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध किये जाने के बाद भी उसे सेनापति की उपाधि प्राप्त थी। महाभारत में विराट राजा को 'वाहिनीपति' तथा कुशान-सम्राट् को 'यावुग' कहा जाता था। 'महाराजा महासेनापति' तथा 'महामण्डलेश्वर' विज्जल राजाओं को कहा जाता था जबकि वे पूर्ण रूप से सिंहासनारूढ़ हो चुके थे (*Bomb. Gaz.*, II. ii. 474 ff)।

५. अंक प्रथम—कुछ ग्रन्थकार मंदाकिनी नाम नदी का लिखते हैं (*Cf. IHQ*, 1925, 214)। ताप्ती से ५ मील दक्षिण में मंदाकिनी नाम की एक छोटी-सी नदी है (*Ind. Ant.*, 1902, 254)। दूसरी मंदाकिनी चित्रकूट के समीप बहती है (रामायण, 92. 10-11)। ल्यूडर्स-लेख, संख्या ६८७-६८८ के अनुसार भरहुत (बघेलखण्ड के पास) में शुङ्गों का राज्य था। यदि पुष्यमित्र शुङ्ग था तो बघेलखण्ड निश्चित रूप से उसके राज्य का एक हिस्सा रहा होगा। *Monuments of Sanchi* (I, iv. 271) में लेखक इस शिलालेख को द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व के मध्य का नहीं मानता। उसके अनुसार, ये शिलालेख १००-

दक्षिण भारत की स्थिति

ऐसा लगता है कि पुष्यमित्र के राजवंश की स्थापना के समय में ही दक्षिण में भी विदर्भ-जैसे राज्य क़ायम हो गये थे। मालविकाग्निमित्रम् का भी यही कहना है। अग्निमित्र के मन्त्री ने इस राज्य को 'अचिराधिष्ठित' (established not long ago) कहा है तथा इस राज्य के राजा की तुलना उसने ऐसे वृक्ष से की है जो थोड़े दिनों का ही लगाया हुआ था और कमज़ोर था (नवसंरोपण शिथिलस्तरुः)। विदर्भ के राजा को मौर्यों के एक मन्त्री का रिश्तेदार (बहनोई) तथा पुष्यमित्र के राजवंश का कट्टर शत्रु कहा गया है। इससे लगता है कि बृहद्रथ मौर्य के शासन-काल में मगध-राज्य के दो गुट हो गये थे। एक दल का नेतृत्व मन्त्री लोग करते थे तथा दूसरे का नेतृत्व राज्य के सेनापति लोग। मन्त्रियों के प्रतिनिधि या कृपापात्र यज्ञसेन को विदर्भ का राज्य मिला तथा सेनापति के पुत्र अग्निमित्र को विदिशा का उपराजा-पद प्राप्त हुआ। जब सेनापति पुष्यमित्र ने राज्य-क्रान्ति की और राजा की हत्या की तो उसने मन्त्री को भी जेल में डाल दिया। फिर तो यज्ञसेन ने अपने को विदर्भ का शासक घोषित करते हुए पुष्यमित्र का शत्रु भी घोषित किया। इसी कारण उसे निर्बल राजा तथा अग्निमित्र का शत्रु माना गया है।

मालविकाग्निमित्रम् के अनुसार यज्ञसेन का भतीजा तथा अग्निमित्र का हितैषी कुमार माधवसेन चुपचाप विदिशा की ओर जा रहा था कि यज्ञसेन के सिपाहियों (अन्तपालों) ने उसे गिरफ़्तार कर लिया। अग्निमित्र ने उसे रिहा कर देने को कहा। विदर्भ के राजा ने इस शर्त पर उसे छोड़ना स्वीकार किया कि अग्निमित्र की क़ैद में मौर्य-मन्त्री को छोड़ दिया जाय। विदिशा का राजा इस पर अप्रसन्न हो गया और उसने वीरसेन को विदर्भ पर चढ़ाई की आज्ञा दे दी। यज्ञसेन पराजित हो गया। माधवसेन कारामुक्त कर दिया गया तथा विदर्भ का राज्य दो भतीजों में बाँट दिया गया। वरधा नदी दोनों राज्यों की सीमारेखा बनी तथा दोनों राज्यों ने पुष्यमित्र की सत्ता स्वीकार की।

कुछ विद्वानों के मतानुसार कलिंग (उड़ीसा) से भी पुष्यमित्र का एक विरोधी

---

७५ ईसापूर्व के, अर्थात् इन्द्राग्निमित्र, ब्रह्ममित्र तथा विष्णुमित्र के समय के हैं।

राजा उठा था। डॉक्टर स्मिथ (Oxford History of India[1]) के अनुसार कलिंग के खारवेल राजा ने पुष्यमित्र को हराया था। इसको बहृपतिमिता या बहसतिमिता भी कहा गया है। कलिंग के इस राजा का नाम हाथीगुम्फा-शिलालेख में भी मिलता है। प्रोफ़ेसर डुब्रील (Dubreuil) भी इस राजा को पुष्यमित्र का विरोधी मानते हैं। प्रोफ़ेसर डुब्रील के अनुसार हाथीगुम्फा-शिलालेख की तिथि खारवेल-शासन के १३वें वर्ष में पड़ती है।

डॉ० आर० सी० मजूमदार[2] के कथनानुसार हाथीगुम्फा-शिलालेख में ६ लेख या पत्र थे जिन्हें 'बहसतिमितम' की संज्ञा दी गयी थी। यदि बहसतिमितम या बहपतिमितम को शुद्ध मान भी लिया जाय तो पुष्यमित्र को बृहस्पतिमित्र या बृहस्पति कहा जा सकता है, किन्तु पर्याप्त तथा अन्य प्रामाणिक सामग्री के अभाव में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।[3] इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि दिव्यावदान[4] में बृहस्पति या पुष्यमित्र[5] को अलग-अलग माना गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार पुष्यमित्र के विरोधी खारवेल-वंश की राजधानी राजगृह थी।[6]

हाथीगुम्फा-शिलालेख से 'मुरिय-काल के १६५वें वर्ष' का पता चलता है।

---

१. Additions and corrections, p. 58n. *Cf.* also S. Konow in *Acta Orientalia,* I. 29. S. Konow accepts Jaiswal's identification; Bahsatimita=Pushyamitra.

२. *Ind. Ant.*, 1919, p. 189. *Cf.* Allan, *CICAI*, p. xcviii.

३. *Cf.* Chand in *IHQ*, 1929, pp. 594ff.

४. Pp. 433-34.

५. ऐसा सुझाव नहीं है कि दिव्यावदान के बृहस्पति को शिलालेख का बृहस्पतिमित्र ही मान लिया जाय, यद्यपि यह हो भी सकता है। प्राचीन साहित्य में बृहस्पति, पुष्यधर्मन तथा पुष्यमित्र अलग-अलग लोगों के नाम हैं। पुष्यमित्र को ही बृहस्पतिमित्र मानने के सम्बन्ध में *IHQ*, 1930. p. 23 देखिये।

६. *Cf.* Luders' reading, *Ep. Ind.*, X, App. No. 1345. डॉ० जायसवाल के सहित एस० कोनोव 'राजगहम् उपपीडापयति' पढ़ते हैं, यद्यपि वह यह भी मानता है कि 'राजगहनप(म्) पीडापयति' भी हो सकता है।

लेख का पाठ इस प्रकार है'–'पानंतरिय-सथि-वस-सते राजमुरिय-काले वोच्छिने !' उसी लेख का एक दूसरा अनुच्छेद इस प्रकार है—'पंचमे च (या चे) दानी वसे नन्दराज तिवस-सत(मृ?)—ओघाटितम् तनसुलियम् वाटा पनाडीम् नगरम् पवेसयति।'[२] यदि पानंतरिय-सथि वस-सते' को १६५वाँ वर्ष माना जाय तो 'तिवस-सत' को १०३वाँ वर्ष मानना होगा। यदि इसे सही माना जाय तो मौर्य-राजाओं के १६५वें वर्ष में खारवेल राजा हुए थे। इन राजाओं का नन्द-राज के १०३वें वर्ष में भी उल्लेख है, जो कि असम्भव है, क्योंकि नन्द लोग मौर्यों से पहले हुए थे। इसके विपरीत यदि तिवस-सत को ३०० वर्ष माना जाय तो 'पानंतरिय-सथि वस-सते' को १६५ वर्ष नहीं, वरन् ६५०० वर्ष मानना होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि खारवेल लोग मौर्यों के ६५०० वर्ष बाद हुए थे। किन्तु, यह भी असम्भव है। जायसवाल ने इस अनुच्छेद का उल्लेख किया है—'पानंतरिय सथि-वस-सते राजमुरिय-काले वोच्छिने च छेयठि अगसि ति कन्तारियम् उपादियति।' इसी के साथ यह अनुच्छेद भी है-–'पटालिको चतरे च वेदुरियगभे थम्भे पतिठापयति पानतरिया सत-सहसेहि। मुरिय-कालम् वोच्छिन्नम् च चोयठि-अगसतिकन्तरियम् उपादायति।' जायसवाल ने इस अनुच्छेद का अनुवाद इस प्रकार किया है—"On the lower-roofed terrace (*i.e.*, in the Verandah) he establishes columns inlaid with beryl at the cost of 75,00,000 (*Panas*) he (the king) completes the Muriya time (era), counted and being of an interval of 64 with a century."[३] इस अनुवाद के अनुसार डॉक्टर आर० सी०

१. *Cf.* भगवानलाल इन्द्रजी, *Actes du sixieme congres international des orientalistes*, Pt. III, Section 2, pp. 133 ff; Jaiswal, *JBORS*, 1917, p. 459.

२. *Ibid.*, p. 455. उक्त अनुच्छेद के विश्लेषण के लिए देखिये सुप्र, p. 229. एस० कोनोव ने इसका कुछ दूसरा ही अर्थ किया है—

"And now in the fifth year he has the aqueduct which was shut (or opened) in the year 103 (during the reign of the Nanda king, conducted into the town from Tanasuliya Vata."

३. *JBORS*, Vol. IV Part. iv, p. 314 f. डॉ० बरुआ द्वारा दिये गये सुझाव के लिए *IHO*, 1938, 269 देखिये।

चदा[1] का मत है कि 'वोच्छिन्न च' शब्दावली से 'मुरिय-काल' का ही बोध नहीं होता। यदि 'वोच्छिन्न' शब्द निकाल दिया जाय तो अनुच्छेद और भी अजीब-सा लगने लगता है। इसके अलावा कभी-कभी प्रशस्ति में तिथि बताने का तरीक़ा और भी अजीब है। फ़्लीट के अनुसार पवित्र ग्रंथों में मिलने वाला 'वोच्छिन्न' शब्द किसी भी तिथि की ओर संकेत नहीं करता। यह कहा जा सकता है कि प्रथम मौर्य-राजा द्वारा संस्थापित 'राजमुरिय-काल' नाम का कोई सम्वत् नही मिलता है। अशोक द्वारा प्रयोग किये जाने वाले संवत् से भी यही निष्कर्ष निकलता है।[2] जायसवाल के Epigrapia Indica[3] में भी कहा गया है कि मौर्यों का कोई संवत् नहीं था। हाथीगुम्फा-शिलालेख में भी कोई ऐसा संकेत नही है।[4]

१. *MASI*, No. 1., p. 10. *Cf.* also S. Konow in *Acta Orientalia*, I. 14-21. फ़्लीट की तरह एस० कोनोव उक्त अनुच्छेद में किसी निश्चित तिथि का उल्लेख नही पाता, किन्तु वह 'राज-मुरिय-काल' निरुक्ति को निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण समझता है। उसके अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्य के काल के कुछ अप्राप्य ग्रन्थों को खारवेल ने प्राप्त किया। किन्तु, डॉक्टर बरुआ उक्त निरुक्ति के अध्ययन से पूर्णरूपेण सहमत नही हैं।

२. प्राचीन जैन-ग्रन्थ (*EHI*, 4, p. 202 n) में अशोक के पौत्र सम्प्रति के संवत् की चर्चा मिलती है। यदि इस संवत् से १६४वें वर्ष का हिसाब लगाया जाय तो खारवेल का कोल (*Cir* 224-164) ६० वर्ष ईसापूर्व निकलता है। बार्नेट ने अपने *A note on Hathigumpha Inscriptions of Kharvela* में संकेत किया है कि कलैण्डर के संशोधन के हेतु ६४ वर्षों का एक समय-चक्र चालू किया था, जिसमें सात-सात वर्ष के ९ युग थे। डॉ० एफ़० डब्ल्यू० थॉमस (*JRAS*, 1922, 84) के अनुसार अन्तर=अन्तर्गृह=प्रकोष्ठ (कोठरी), अर्थात् जिन कोठरियो (cells) को मौर्य अधूरा छोड़ गये थे, उन्हें खारवेल ने पूरा किया है।

३. XX. 74.

४. शिलालेख का अद्यतन अध्ययन इस प्रकार है—"पटलको चतुरो च वेडूरिय गभे थंभे पतिठापयति, पानातरीय सतसहसे (हि); मुरिय-काल-वोच्छिनं च चोय(ठि)ठ अंग सतिक(मृ) तुरियम् उपादयति।"

"Palaka (?)........(he) sets up four columns inlaid with beryl at the cost of seventy five hundred thousand;...(he) causes to be compiled expeditiously the (text) of sevenfold *Amgas* of the sixty four (letters)." (*Ep. Ind.*, XX, pp, 80, 89)।

डॉक्टर जायसवाल ने तिवस-सत का अर्थ ३ सौ वर्ष लगाया है और खारवेल और पुष्यमित्र को नन्दराज या नन्दवर्द्धन के ३ सौ वर्ष बाद माना है। किन्तु, हम पहले ही देख चुके हैं कि नन्दवर्द्धन या नन्दीवर्द्धन शिशुनाग राजा था और शिशुनाग राजाओं का कलिंग से कोई सम्बन्ध नहीं था। नन्दीवर्द्धन नहीं, वरन् महापद्मनन्द ने सभी राज्यों को अपने अधीन कर सभी पुराने क्षत्रिय-राजवंशों का उन्मूलन किया। इसलिए हाथीगुम्फा-शिलालेख के नन्दराज को हमें या तो महापद्मनन्द को समझना चाहिये या उसके पुत्रों को।[1] प्रोफ़ेसर बरुआ को नन्दराज को कलिंग का विजेता कहने में एतराज है, क्योंकि अशोक के समय के शिलालेखों में कहा गया है कि अशोक के पूर्व कलिंग अविजित देश रहा था। किन्तु, इसके विपरीत गुप्तकालीन शिलालेखों में समुद्रगुप्त को 'अजित राजजेता' कहा गया है, अर्थात् अविजित राजाओं को भी जीतने वाला।[2] इसके बाद अश्वमेध यज्ञ भी पुनः होने लगे। हम जानते हैं कि यदि इन शिलालेखों के दावों पर अक्षरशः विश्वास किया जाय तो भी इनसे काम का मसाला थोड़ा ही मिलता है। Cambridge History of Ancient India में हाथीगुम्फा के शिलालेखों का हवाला देते हुए इस बात से इनकार किया गया है कि नन्दराज कलिंग का ही स्थानीय राजा था।[3] अशोक के बाद मगध के राजवंश की चर्चा किसी भी गम्भीर इतिहास में अनुपलब्ध-सी ही रहती है।[4]

जैसा कि महापद्मनन्द और उसके पुत्रों का शासन ईसापूर्व चौथी शताब्दी में था, उसके हिसाब से खारवेल का समय ईसापूर्व की तीसरी शताब्दी में (यदि 'तिवस-सत' का अर्थ १०३ माना जाय)[5] पड़ता है या पहली शताब्दी (यदि

---

१. *MASI*, No. I., p. 12.

२. Allan, *Gupta Coins*, p. ex. *Cf.* जहाँगीर का दावा था कि किसी ने भी काँगड़ा पर विजय नहीं प्राप्त की थी (*ASI. AR*, 1905-6, p. 11)। 'अविजित' का अर्थ केवल यही हो सकता है कि कलिंग अशोक के साम्राज्य में नहीं मिलाया गया था।

३. उक्त अनुच्छेद देखिये—"नन्दराज नीतम् च कलिंग जिनसन्निवेसम्"—इससे सिद्ध है कि नन्द एक बाहरी राजा था।

४. See R. D. Banerjee, *Orissa*, I. 202. Kumar Bidyadhar Singh Deo, *Nandapur*, I. 46; *Ep. Ind.*, xxi, App. Ins., No. 2043.

५. एस० कोनोव (*Acta Orientalia*, Vol. I, pp. 22-26) को १०३

'तिवस-सत' का अर्थ ३०० माना जाय) में पड़ेगा । किसी भी स्थिति में वह १८७ से १५१ ईसापूर्व तक राज्य करने वाले पुष्यमित्र का समकालीन नहीं कहा जा सकता ।

यवनों का आक्रमण

१८७ ईसापूर्व की राज्य-क्रान्ति तथा विदर्भ के युद्ध के अलावा पुष्यमित्र के समय हुए यवनों के आक्रमण भी एक शंकारहित ऐतिहासिक तथ्य रहे हैं । उत्तर-पश्चिम से यवनों के आक्रमण की चर्चा पतंजलि या उनके एक पूर्ववर्त्ती एवं कालिदास ने भी की है । इस काल में दो अश्वमेध यज्ञ भी हुए थे ।

पतंजलि को सामान्यतया पुष्यमित्र का समकालीन माना जाता है । सर आर० जी० भण्डारकर पाठकों का ध्यान महाभाष्य के 'पुष्यमित्रं याजयामः' अनुच्छेद की ओर आकृष्ट किया है । अनुच्छेद में पुष्यमित्र के लिए किये गये बलिदान की ओर संकेत है । अनुच्छेद वर्त्तमानकालिक क्रिया के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।[1] पतंजलि ने उक्त उदाहरण इसलिए दिया कि सभी लोग इसे जानते थे । आगे यह भी अनुच्छेद मिलता है--- अरुनद् यवनः साकेतम्: अरुनद् यवनो मध्यमिकम् ।' इस अनुच्छेद के आधार पर सर भण्डारकर का कहना है कि किसी यवन ने साकेत या अयोध्या को जीत लिया था । यह भी हो सकता है कि वैयाकरण पंतजलि का यह उदाहरण पुस्तकों से ही लिया गया हो ।[2] सम्भव है ये मूर्द्धाभिषिक्त उदाहरण रहे हों । किन्तु, पुष्यमित्र के काल में यूनानियों से युद्ध का उल्लेख कालिदास ने भी किया है । मालविकाग्नि-मित्रम् में कवि ने पुष्यमित्र के पौत्र तथा सेनापति वसुमित्र और (सिन्धु के दायें तट पर)[3] एक यूनानी सेना के बीच लडाई का उल्लेख किया है । दुर्भाग्यवश न

ईसापूर्व की तिथि मंजूर है । वह जैन-काल का उल्लेख करते हुए इसे महावीर-निर्वाण का वर्ष मानता है । डॉक्टर के० पी० जायसवाल (*Ep. Ind.*, XX. 75) १०३ ईसापूर्व को नन्द-काल में माना है, जबकि तनसुलिया नहर खोदी गई जिसे खारवेल ने अपने शासन-काल में विस्तृत रूप दिया ।

१. *Ind. Ant.*, 1872, p. 300.

२. Nagari near Chitor, *Cf.* महाभारत, II. 32. 8; *Ind. Ant.*, VII. 267.

३. सिन्धु या उसी नाम की मध्यभारत की दूसरी नदी (*Cf. IHQ*, 1925, 215) ।

तो महाभाष्य में और न मालविकाग्निमित्रम् में ही आक्रमणकारी का नाम दिया गया है। यद्यपि इस सम्बन्ध में बहुत मतमतान्तर हैं, किन्तु इस बात पर सभी एकमत हैं कि आक्रमणकारी बैक्ट्रियन यूनानी था।

बैक्ट्रियन यूनानी सेल्युकस के सीरियन राज्य के रहने वाले थे। स्ट्रैबो, ट्रोगस और जस्टिन के कथनानुसार बैक्ट्रिया के गवर्नर ने विद्रोह करके अपने को राजा घोषित कर दिया था। इतिहासकार जस्टिन[1] ने इसके उत्तराधिकारी का नाम डायोडोटस-द्वितीय दिया है।

डायोडोटस-द्वितीय का उत्तराधिकारी यूथीडेमस था। स्ट्रैबो के अनुसार वह भी कभी-कभी विद्रोह का झण्डा उठाता था। पोलिबियस और एन्टिओकोस ने यूथीडेमस से सन्धि की थी। स्ट्रैबो ने आगे कहा है—"एन्टिओकोस-महान् ने यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रिआस का स्वागत किया। उसके व्यक्तित्व, तौर-तरीक़े तथा बातचीत से लगता था कि वह राजसम्मान का अधिकारी था। उसने सर्वप्रथम अपनी एक लड़की[2] से उसका विवाह करने का वचन दिया तथा उसके पिता को राजकीय उपाधि प्रदान की। उसके बाद उसने एक लिखित सन्धि की तथा सन्धि की शर्तों पर शपथ ले ली। उसके बाद अपनी सेना को सुसंगठित करके यूथीडेमस के हाथियों की व्यवस्था की। इसके बाद वह काकेशस (Caucasus) अर्थात् हिन्दूकुश को पार करके भारत पहुँचा। यहाँ पर तत्कालीन भारतीय नरेश सोफ़ागेसेनास (सुभागसेन) से सन्धि की और उससे हाथियों का उपहार स्वीकार किया। ये हाथी संख्या में १५० थे। अब अपनी सेना को एक बार पुनःसगठित कर वह विजय-यात्रा पर निकला। उसने भारत में उपहार-स्वरूप मिले खजाने को अपने देश ले जाने का काम एन्ड्रोस्थेनीज़ के जिम्मे कर दिया।"

एन्टिओकोस-महान् की इस विजय-यात्रा के बाद बैक्ट्रियन यूनानियों ने भी हिन्दूकुश के दक्षिण के भूभाग को अपने राज्य में मिलाने का इरादा किया। स्ट्रैबो के कथनानुसार बैक्ट्रिया के कभी-कभी विद्रोह करने वाले यूनानी अब इतने शक्तिशाली हो गये कि वे एरियाना (Ariana) और भारत के स्वामी हो गये।

१. हैमिल्टन एवं फ़ाल्कनर का अनुवाद, Vol. II, p. 251.

२. विवाह के सम्बन्ध में टार्न का सन्देह कोई निश्चित प्रमाण नहीं है (*Greeks in Bactria and India*, 82, 201)। उसके तर्क नकारात्मक प्रकार के हैं। पोलीबियस के साक्ष्य पर, वह आग्थोक्लिज़ (Agathokles) के सिक्कों के बारे में भी अपने ही मत को प्रमुखता देता था।

आर्टेमिटा के अपोलोडोरस का भी यही मत है ।[1] उनके सेनापति मेनान्डर (if he really crossed Hypanis[2] to the east and reached the Isamus[3]) ने सिकन्दर-महान् से अधिक भूभागों पर कब्जा किया था । उसकी जीतों में से कुछ तो मेनान्डर स्वयं की थीं और कुछ बैक्ट्रियन राजा यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रिओस की । इन लोगों ने केवल पैटलीन (Patalene) अर्थात् सिन्धु के डेल्टे के भाग को ही नहीं, वरन् सौराष्ट्र या काठियावाड़ (Saraostos) तथा समुद्र-तटवर्त्ती प्रदेश (Sigerdis)[4] को भी जीता । अपोलोडोरस के अनुसार बैक्ट्रियाना समूचे एरियाना का आभूषण-प्रदेश था । इन लोगों ने सीरिज और फिरनी (Seres and Phryni)[5] तक अपना राज्य-विस्तार कर लिया ।

स्ट्रैबो के अनुसार यूनानियों का राज्य पूर्व में भारत तक फैला था, जिसका कुछ श्रेय तो मेनान्डर को था और कुछ एन्टिओकोस महान् के दामाद तथा यूथीडेमस के पुत्र डेमेट्रिओस को ।

मेनान्डर को 'मिलिन्द' कहा गया है । इसका उल्लेख बुद्धकालीन मिलिन्दपञ्ह में मिलता है । बौद्ध 'थेर' में इसे नागसेन का समकालीन कहा गया है । अवदान-कल्पलता में क्षेमेन्द्र[6] शब्द का उल्लेख भी मेनान्डर के ही अर्थ में माना

१. आर्टेमिटा(Artemita) टिगरिस (Tigris) के पूर्व में था । अपोलोडोरस की पुस्तकों की तिथि १३० और ८७ ईसापूर्व के बीच की मानी जाती है (Tarn, *Greaks in Bactria and India*, 44 ff) ।

२. *i.e.*, the Typhasis or Vipasha (The Beas)

३ भागवतपुराण में त्रिसामा नामक नदी कौशिकी, मन्दाकिनी और यमुना नदियों से मिली हुई बताई गई है । सरकार इस नदी को इक्षुमती नाम से मानते हैं ।

४. महाभारत, II. 31, कच्छ ?; *Bom. Gaz.*, I. i. 16f; *Cf.* Tarn, *GBI*, 2nd. ed., 527.

५. Hamilton and Falconer, *Strabo*, Vol. II, pp. 252-53. चीनी तथा तारिम के बेसिन के निवासियों से अभिप्राय है ।

६. स्तूप-अवदान (No. 57); Smith, *Catalogue of Coins, Indian Museum*, p. 3; *SBE*, 36, xvii.

जाता है। यह राजा अलसन्दा (Alexandria)[१] के कसली ग्राम[२] में पैदा हुआ था और उसकी राजधानी सागल या शाकल में थी, जो सम्भवतः अब पंजाब का स्यालकोट है।[३] डॉक्टर स्मिथ उसकी राजधानी को क़ाबुल में बताते थे, किन्तु वैसी बात नहीं थी।[४] उसके राज्य-विस्तार का एक प्रमाण तो उसके समय के सिक्के भी हैं जो कि पूर्व में क़ाबुल और मथुरा तक पाये गये हैं।[५] पेरिप्लस (Periplus) के लेखक के अनुसार उसके समय तक चाँदी के ऐसे छोटे-छोटे सिक्के मिलते थे, जिन पर यूनानी अक्षरों में मेनान्डर का नाम खुदा होता था। इस लेखक का समय ६०-८० ईसवी था। प्लूटार्क के कथनानुसार मेनाण्डर अपनी नामप्रियता के लिए प्रसिद्ध था और अपने प्रजाजनों में इतना लोकप्रिय था कि उसके मरने पर राज्य के विभिन्न नगरों के अलग-अलग लोग उसके अस्थि-अवशेषों को प्राप्त करने का दावा करते रहे थे। प्लूटार्क के अनुसार मेनान्डर के राज्य में बहुत से नगर थे। हाल में प्राप्त बाजौर-अवशेषों से स्पष्ट है कि उसका राज्य पश्चिम की ओर काफ़ी विस्तृत था।[६]

कुछ लोगों के अनुसार डेमेट्रिओस राजा महाभारत[७] का दत्तमित्र ही था। सम्भवतः यही इन्डे (Inde) का राजा एमेट्रिअस था, तथा चासर (Chaucer) लिखित Knightes Tale तथा बेसनगर का तिमित्र भी सम्भवतः

१. Trenckner, मिलिन्दपञ्ह, p. 83.

२. *Ibid.*, p. 82 (*CHI*, 550)। इस 'अलेक्ज़ेन्ड्रिया' का सही पता अनिश्चित है। Tarn (p. 141) 'अलेक्ज़ेन्ड्रिया' को क़ाबुल की घाटी में मानते है। मिलिन्दपञ्ह (VI. 21) में 'अलेक्ज़ेन्ड्रिया' को समुद्र के किनारे स्थित कहा गया है।

३. मिलिन्दपञ्ह, pp. 3, 14.

४. *EHI*, 1914, p. 225.

५. *SBE*, Vol. XXXV, p. xx; Tarn, 228.

६. *Ep Ind.*, XXIV. 7 ff, XXVII, 318f, XXVII, ii. 52f. राजा का नाम Mina-edra दिया गया है।

७. I, 139, 23. कृमिसा (वक्ष) जिससे डॉक्टर बागची ने मेनाण्डर की तुलना की है। वह क़िस्से-कहानियों में अधिक मिलता है।

यह था।[1] भारत और अफ़ग़ानिस्तान में भी बहुत से ऐसे नगर थे जिनका नाम उसके या उसके पिता के नाम पर था। इससे भी उसकी विस्तृत राज्य-सीमा का प्रमाण मिलता है। चारक्स[2] (Charax) के इसीदोर (Isidore) में भी अरकोशिया के एक नगर का नाम डेमेट्रिआस्पोलिस मिलता है। क्रमदीश्वर के व्याकरण में सौवीर के एक नगर का नाम दत्तामित्री आया है।[3] भूगोलवेत्ता तोलेमी के अनुसार यूथिमीडिया[4] (यूथिडीमिया ?) नामक नगर ही शाकल[5] कहा जाता था और यह मेनाण्डर के समय में इण्डो-ग्रीक राज्य की राजधानी था।

अनुमान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मेनाण्डर या डेमेट्रिओस इन्हीं दो विजेता राजाओं में से एक ने पुष्यमित्र के समय में अवध में साकेत; चित्तौर में मध्यमिका तथा सिन्धु नदी की ओर आक्रमण किया था। गोल्डस्टूकर, स्मिथ तथा अन्य लोगों के अनुसार वह आक्रमणकारी मेनाण्डर ही था। उसने ही व्यास नदी को पार किया था और आगे त्रिसामा[6] (Isamus) तक बढ़ आया था। भण्डारकर ने अपनी पुस्तक Foreign Elements in the Hindu Population में कहा है कि वह आक्रामणकारी डेमेट्रिओस था। पोलिबियस के

---

१. *EHI*[4], p. 255n.

२. *JRAS*, 1915, p. 830; *Parthian Stations*, 19.

३. *Ind. Ant.*, 1911, *Foreign Elements in the Hindu Population*; *Bombay Gaz.*, I. ii, 11, 176; क्रमदीश्वर, p. 796. यहाँ सम्भवतः सिंधु की घाटी के डेमेट्रिआस का उल्लेख है। जॉन्सटन का मत भिन्न है (*JRAS*, April, 1939; *IHQ*, 1939)। महाभारत (I, 139, Verses 21-23) में सौवीर के प्रसंग में 'यवनाधिप' तथा 'दत्तामित्र' का नाम आया है। यदि दत्तामित्र ही Demetrios नहीं है और Dattamitri उसी का बसाया हुआ नगर नहीं है तो यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि महाभारत में यही नाम किसके लिए आया है। कुछ भी हो, संस्कृत के व्याकरणवेत्ताओं तथा अन्य शास्त्रीय प्रमाणों के अनुसार यवनों का सम्बन्ध दत्तामित्री तथा सौवीर से था।

४. See Tarn, p. 486; and see also Keith in *D. R. Bhandarkar Volume*, 221f.

५. *Ind. Ant.*, 1884, pp. 349-50.

६. भागवत पुराण में त्रिसामा एक नदी का नाम है। मेनाण्डर की विजय-यात्रा में स्ट्रैबो ने गंगा का उल्लेख नहीं किया है।

अनुसार डेमेट्रिओस, २११ ईसापूर्व और २०६ ईसापूर्व में एन्टियोकोस-तृतीय के हमले के समय एक तरुण था। जस्टिन के अनुसार डेमेट्रिओस भारतीयों का राजा था। उस समय यूक्राटीड्स बैक्ट्रियनों का तथा मिथ्राडेट्स पार्थियनों का राजा था। सम्भवतः इसी समय यूक्राटीड्स और मिथ्राडेट्स राजाओं का शासन-काल आरम्भ हुआ था। दोनों महान् योद्धा थे और अनेक लड़ाइयाँ लड़ चुके थे। यद्यपि यूक्राटीड्स की ताक़त घट चुकी थी, फिर भी जिस समय डेमेट्रिओस ने ३ सौ सिपाहियों के साथ उस पर आक्रमण किया, उस समय भी यूक्राटीड्स ने ६० हजार की सेना के साथ अपने शत्रु का मुक़ाबला किया था। डॉक्टर स्मिथ ने मिथ्राडेट्स को १७१ ईसापूर्व से १३६ ईसापूर्व के बीच कहा है (डेबेवोइस के अनुसार १३८ व १३७ ईसापूर्व के बीच)। यूक्राटीड्स और डेमेट्रिओस सम्भवतः दूसरी शताब्दी के मध्य में ही हुए थे।[१]

हम पहले देख चुके हैं कि २०६ ईसापूर्व के आसपास डेमेट्रिओस तरुण था। अब हम यह देखते हैं कि डेमेट्रिओस ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के मध्य में हुआ था। अतः डेमेट्रिओस पुष्यमित्र (१८७ ईसापूर्व से १५१ ईसापूर्व) का समकालीन सिद्ध होता है। संभवतः मेनाण्डर इस समय के बहुत बाद हुआ रहा होगा, जैसा कि अधोलिखित तथ्यों से सिद्ध होता है। जस्टिन के अनुसार यूक्राटीड्स[२] ने डेमेट्रिओस से उसका भारतीय भूभाग छीन लिया था। यूक्राटीड्स को उसके लड़के ने मार डाला था जिसके साथ वह राज्य करता था।[३] पर, अपने पिता को मारने वाला यह कौन था? यही मेनाण्डर[४] था, इस सम्बन्ध में किसी इतिहास-कार ने कुछ नहीं कहा, इसलिए पिता का वध करने वाले इस राजा का परिचय अनिश्चित है।

---

१. एन्टियोकोस-चतुर्थ की मृत्यु के बाद मिथ्राडेट्स के कार्य शुरू होते हैं। मिथ्राडेट्स १३८-१३७ ईसापूर्व में मरा था (Tarn, pp. 197 ff.)। Debevoise के मत के लिए देखिये *A Political History of Parthia*, p. 20 ff. See *Cambridge History of India*, p. 64)।

२. Watson's tr., p. 277.

३. *Ibid.*, p. 277.

४. कनिंघम और स्मिथ के अनुसार, पिता की हत्या करने वाला अपोलोडोटस था। किन्तु, रैप्सन ने लिखा है कि अपोलोडोटस, यूक्राटीड्स-परिवार का नहीं था, वरन् इसके विपरीत उसने यूक्राटीड्स को निकाल दिया था। अपोलोडोटस कपिशा का राजा था (*JRAS*, 1905, pp. 784-85)। रॉलि-

जस्टिन ने लिखा है कि जिस राजकुमार ने यूक्राटीड्स को मारा था, वह उसके पिता का सहयोगी था। हम जानते हैं कि जो यूनानी एक साथ राज्य करते थे वे अपने संयुक्त सिक्के भी जारी करते थे। लीसियस और एन्टियलकिडस के संयुक्त सिक्के भी मिले हैं। इसी प्रकार आग्थोक्लिया और स्ट्रैटो, स्ट्रैटो-प्रथम और स्ट्रैटो-द्वितीय तथा हर्मेओस और कैलिओप के भी सिक्के प्राप्त हुए हैं। यूक्राटीड्स के सिक्कों पर हेलियोक्लीज़ तथा उसकी रानी के चित्र मिलते हैं। कनिंघम और गार्डनर के अनुसार हेलियोक्लीज़ और उसकी पत्नी लियोडाइक यूक्राटीड्स के माँ-बाप थे। किन्तु, वॉन सैलेट (Van Sallet)[1] ने इन सिक्कों से बिल्कुल भिन्न निष्कर्ष निकाला है। उसके मतानुसार ये सिक्के यूक्राटीड्स ने ही अपने माता-पिता की याद या सम्मान में नहीं, वरन् अपने पुत्र हेलियोक्लीज़ की, राजकुमारी लियोडाइक के साथ हुई शादी के अवसर पर जारी किये थे। वान सैलेट के अनुसार राजकुमारी लियोडाइक राजा डेमेट्रिओस तथा एण्टियोकोस की पुत्री (जो कि सम्भवतः डेमेट्रिओस की रानी थी) की पुत्री थी। यदि सैलेट का कहना सही माना जाय तो यह भी कहा जा सकता है कि जस्टिन के अनुसार हेलियोक्लीज़ ही अपने पिता का सहयोगी राजा तथा उसका हत्यारा राजकुमार था।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे सिद्ध है कि डेमेट्रिओस के बाद यूक्राटीड्स हुआ था, और उसके बाद हेलियोक्लीज़ गद्दी पर बैठा था। इस स्थिति में मेनाण्डर को हेलियोक्लीज़ के पहले का राजा नहीं कहा जा सकता। यह कहा जा सकता है कि डेमेट्रिओस के बाद इण्डो-ग्रीक राज्य दो टुकड़ों में बँट गया। पहला भाग जो झेलम का समीपवर्ती भाग था, उस पर यूक्राटीड्स और उसका लड़का राज्य करता था; तथा दूसरा भाग जिसमें यूथिमीडिया (यूथिडीमिया ?) अथवा शाकल प्रदेश आता था, उस पर मेनाण्डर शासन करता

न्सन के अनुसार, अपोलोडोटस 'फ़िलापेटर' की उपाधि धारण करता था (*Intercourse between India and the Western World*, p. 73)। यह हो सकता है कि पिता को मारने वाला अपोलोडोटस फ़िलापेटर नहीं, वरन् अपोलोडोटस सोटर रहा हो। लेकिन, कभी-कभी एक ही सिक्के पर फ़िलापेटर और सोटर नाम भी लिखे मिलते हैं, इसलिए अपोलोडोटस फ़िलापेटर और अपोलोडोटस सोटर को दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति समझना ठीक नहीं जँचता।

१. *Ind. Ant.*, 1880, p. 256.

था। यह सम्भवतः यूक्राटीड्स से उम्र में कम, किन्तु उसका समकालीन था। मेनाण्डर को ही पुष्यमित्र का भी समकालीन माना जा सकता है।

डेमेट्रिओस के बाद इण्डो-ग्रीक राज्य का विघटन एक ऐतिहासिक तथ्य माना जा सकता है। भारत मे दो विरोधी राज्यों का होना तथा उनका विघटन विभिन्न प्रमाणों से भी प्रमाणित होता है। पुराणों में कहा गया है—

भविष्यन्तीः यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः
नैव मूर्धाभिषिक्तास् ते भविष्यन्ति नराधिपा
युगदोष-दुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते
स्त्रीना बाल-वधेनैव हत्वा चैव परस्परम्।

'धार्मिक भावना या शक्ति-प्रभाव से यवन लोग राजा हो सकते हैं, किन्तु उनका विधिवत् राज्याभिषेक नही हो सकता था। आशंका थी कि वे लोग युग से प्रभावित भ्रष्ट रीति-रिवाज चलायेंगे और स्त्रियों और बच्चों की हत्या करेंगे।[१] ये लोग एक दूसरे की भी हत्या करेंगे तथा कलियुग[२] के अन्त में इनका शासन होगा।'

गार्गी संहिता में लिखा है—

मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्ध धर्मदाः
तेषां अन्योन्य सम्भावा (?) भविष्यन्ति न संशयः
आत्मा-चक्रोत्थितं घोरम् युद्धम् परम दारुणम्।

'भयंकर लड़ाई लड़नेवाले यूनानी लोग मध्यदेश (मध्य भारत) में नहीं टिक सकेंगे। उनके स्वयं के राज्य में एक भयंकर युद्ध होगा। यह युद्ध उन्ही लोगों के बीच होगा।'[३]

सिक्के तत्कालीन यूक्राटीड्स तथा यूथिडेमस राजवंशों के बीच हुए युद्ध की सत्यता प्रमाणित करते हैं। लेकिन, हमारे पास जो अन्य प्रमाण उपलब्ध हैं उनसे अपोलोडोटस, आग्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम भी यूक्राटीड्स के समकालीन

१. *Cf.* Cunningham, *AGI*, Revised Ed. 274; *Camb. Hist. Ind.* I. 376. "The Macedonians......gave away to a fury of blood-lust, sparing neither women nor child."

२. Pargiter, *Dynasties of the Kali Age*, p. 56, 74.

३. Kern, बृहत्संहिता, p. 38.

और प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध होते हैं। ये मेनाएडर के समकालीन नही थे। यूक्राटीड्स के समय के ताँबे के वर्गाकार सिक्के[1] की एक ओर एक राजा की मूर्त्ति भी बनी है। इसके अतिरिक्त 'Basileus Megalou Eukratidou' भी अंकित है। दूसरे, ज्यूस (Zeus) के चित्र के साथ 'Kavisiye Nagaradevata' अंकित मिलता है। ये सम्भवतः अपोलोडोटस के समय के सिक्के थे।[2] इससे यह भी लग सकता है कि अपोलोडोटस यूक्राटीड्स का समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी था तथा बाद में कपिशा का शासक रहा था। काफ़िरिस्तान, गोरबन्द और पंजषिर की घाटी ही सम्भवतः कपिशा राज्य था। रैप्सन[3] ने सकेत किया है कि हेलियोक्लीज ने इन सिक्कों को पुनः चलाया। आन्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम के संयुक्त शासन तथा अलग-अलग राज्य करने के भी प्रमाण मिलते हैं। बाद में तो आन्थोक्लिया और स्ट्रैटो-प्रथम ने नहीं, वरन् हेलियोक्लीज ने ही सिक्के चलवाये। उपर्युक्त तथ्यों से सिद्ध है कि आन्थोक्लीज और स्ट्रैटो-प्रथम इएडो-ग्रीक प्रदेशों पर राज्य करने थे और वे या तो हेलियोक्लीज के समकालीन थे या किसी पूर्ववर्त्ती के, बाद के कदापि नही।

हमने देखा कि जस्टिन के प्रमाण और कपिशा के सिक्कों से यही सिद्ध होता है कि यूक्राटीड्स ने अपने दो प्रतिद्वन्द्वियों अपोलोडोटस तथा डेमेट्रिओस से युद्ध किये थे। इसी प्रकार हेलियोक्लीज़ को भी आन्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम से युद्ध करना पड़ा था। डेमेट्रिओस तथा अपोलोडोटस, दोनों यूक्राटीड्स के विरोधी थे। दोनों के सिक्के भी समान थे। इनसे दोनों का समय एक ही प्रतीत होता है, तथा लगता है कि दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित थे। वैसे दोनों एक दूसरे के बाद भी हो सकते हैं। अब प्रायः निश्चित हो गया कि डेमेट्रिओस यूथिडेमोस का तथा अपोलोडोटस डेमेट्रिओस का उत्तराधिकारी था।

सम्भवतः हेलियोक्लीज़ यूक्राटीड्स का लड़का था। यूक्राटीड्स अपोलोडोटस का प्रतिद्वन्द्वी था। इससे सिद्ध है कि हेलियोक्लीज अपोलोडोटस से उम्र में कम तथा उसका समकालीन था। फलस्वरूप आन्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम, अपोलो-

---

१. *CHI*, 555, 690; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 26.

२. Rapson, *JRAS*, 1905, p. 785. सिक्कों के पुनः चालू किये जाने से विजय नहीं, वरन् उनके व्यापारिक संबंधों का अभास मिलता है (*JAOS*, 1950, p. 210)।

३. *JRAS*, 1905, pp. 165 ff; *CHI*, p. 553.

डोटस के समय से अधिक नजदीक थे। स्ट्रैटो-प्रथम तथा उसका पौत्र स्ट्रैटो-द्वितीय, दोनों एक साथ शासन करते थे। इसलिए डेमेट्रिओस तथा स्ट्रैटो-प्रथम के बीच के समय में मेनाएडर के समृद्ध शासन-काल के लिए कोई गुंजाइश नहीं मालूम होती। 'मिलिन्दपञ्ह' नामक बौद्ध-ग्रन्थ में मिलिन्द या मेनाएडर '५०० वर्ष' माना गया है, पाँचवी शताब्दी[1] के पूर्व नहीं, वरन् परिनिर्वाण 'परिनिब्बानतो पंचवस्स सते अतिक्कन्ते एते उपज्जिस्सन्ति' के बाद।[2] इस बौद्ध-ग्रन्थ में मेनाएडर के कार्यकाल के बारे में १४३-४४ वर्ष ईसापूर्व दिया गया है। इसी प्रकार सिंहली (Ceylonese) प्रमाणों में भी यह समय ८६ वर्ष ईसापूर्व दिया गया है। कैन्टोनीज़ (Cantonese) परम्परा के अनुसार यह समय १४ ईसवी था। इस प्रकार ग्रन्थों तथा सिक्कों दोनों आधारों के अनुसार, मेनाएडर को पुष्यमित्र का समकालीन नहीं कहा जा सकता।[3] इसलिए, कालिदास और पतंजलि ने जिस यवन-आक्रमणकारी का वर्णन किया है और जिसकी सेना को वसुमित्र ने परास्त किया था, वह यवन डेमेट्रिओस ही रहा होगा।[4]

१. फ्रैंक (Franke) और फ़्लीट (Fleet) ने भी कुछ इसी प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की है (*JRAS*, 1914, pp. 400-1; and Smith, *EHI*, 3rd ed., p. 328.

२. Trenckner, मिलिन्दपञ्ह, p. 3. टार्न (134 n) का यह कहना ठीक नहीं है कि अपोलोडोरस के अनुसार मेनाएडर डेमेट्रिओस, ट्रोगस तथा अपोलोडोटस का समकालीन था और कुछ सिक्कों के प्रमाणस्वरूप वह यूक्राटीड्स का भी समकालीन था (*CHI*, p. 551)। स्ट्रैबो ने भी इन्हीं प्रमाणों के आधार पर कहा है कि मेनाएडर और डेमेट्रिओस ने मिलकर थोड़ा-बहुत भारतीय प्रदेश जीता था। किन्तु, कहीं भी यह स्पष्ट नहीं है कि दोनों विजेता समकालीन थे। ट्रोगस की पुस्तक अब उपलब्ध नहीं है तथा सिक्कों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष उतने स्पष्ट नहीं है।

३. *Cf.* 445n *infra*.

४. एस० कोनोव (*Acta Orientalia* 1.35) के अनुसार न तो मेनाएडर ने यमुना नदी पार किया था, और न डेमेट्रिओस ने साकेत और मध्यमिका पर अधिकार किया था। आर० पी० चन्दा (*IHQ*, 1929, p. 403) का मत है कि स्ट्रैबो को भी डेमेट्रिओस की भारत-विजय पर सन्देह था। किन्तु, पंजाब तथा सिन्धु-घाटी के कुछ नगरों के नाम डेमेट्रिओस और सम्भवतः उसके पिता के नाम पर थे। इससे स्ट्रैबो का सन्देह निर्मूल लगता है।

अश्वमेध यज्ञ

यवनों तथा विदर्भ (बरार) से हुए सफल युद्धों के बाद पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किये। कुछ विद्वानों के अनुसार ये यज्ञ समुद्रगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों के काल के पाँच सौ वर्ष बाद हुए थे। लगभग इसी समय ब्राह्मणों के प्रभुत्व का उदय माना जा सकता है। बौद्ध-ग्रन्थों में पुष्यमित्र को शाक्यमुनि के धर्म का कट्टर विरोधी कहा गया है। किन्तु, जिस दिव्यावदान पर आजकल विद्वान् अधिक विश्वास करते हैं, वे शाक्य-धर्म के कट्टर विरोधी मौर्य राजा, अर्थात् स्वयं अशोक के ही उत्तराधिकारी थे।[1] किन्तु, बौद्ध-ग्रन्थों में पुष्यमित्र के धर्म-विरोध के विषय में यह भी कहा गया है कि उसका धर्म-विरोध किसी धार्मिक भावना के कारण नहीं, वरन् व्यक्तिगत ऐश्वर्य के निमित्त ही अधिक था। पुष्यमित्र ने बौद्ध-मंत्रियों को नौकरी से अलग नहीं किया। उसके बेटे के दरबार में पंडित कौशिकी[2] का बड़ा सम्मान था। महावंश[3] में लंका के 'दुत्थगामणी' के समय तक बिहार, अवध, मालवा तथा अन्य प्रान्तों में भी अनेक बौद्ध-मठ थे तथा उनमें हजारों साधु निवास करते थे। यह सम्भवतः १०१ से ७७ ईसापूर्व के बीच का समय था। भरहुत के बौद्ध-अवशेषों में यद्यपि शुंग-काल का उल्लेख मिलता है, तथापि उनमें यह कहीं भी नहीं कहा गया कि जो पुष्यमित्र पुराणों के अनुसार शुंगों में शामिल किया गया है, वह कभी कट्टर ब्राह्मण-धर्म का अनुयायी था। यद्यपि पुष्यमित्र के वंशज कट्टर हिन्दू थे, किन्तु वे असहिष्णु नहीं थे, जैसा कि कुछ लेखकों ने कहा है।

पुष्यमित्र-कालीन मंत्रि-परिषद्

पतंजलि ने पुष्यमित्र की सभा का उल्लेख किया है। किन्तु, यह स्पष्ट नहीं है कि पतंजलि ने जिसे राजदरबार कहा है, वह राजा की न्याय-परिषद् थी या मंत्रि-परिषद्। कालिदास ने भी परिषद् तथा मंत्रि-परिषद् का उल्लेख किया है। यदि कालिदास के उल्लेखों पर विश्वास किया जाय तो तत्कालीन राज-व्यवस्था के अन्तर्गत परिषद् (Council) एक महत्त्वपूर्ण संस्था थी। कालिदास

---

१. *IHQ*, Vol. V, p. 397; दिव्यावदान, 433-34.

२. मालविकाग्निमित्रम्, Act I.

३. Geiger, Trans., p. 193.

के अनुसार युवराज की सहायता भी परिषद् करती थी।[1] मालविकाग्निमित्रम् में विदिशा का उपराजा युवराज अग्निमित्र परिषद् से मंत्रणा करता था, ऐसा उल्लेख है।

"देव एवम् अमात्य-परिषदो विज्ञापयामि।"[2]
"मन्त्रि-परिषदोऽप्येताव्-एव दर्शनम्
द्विधा विभक्ताम् श्रियम्-उद्वहन्तौ
धुरम् रथास्वाविव संग्रहीतुः
तौ स्थास्यतस्-ते नृपतेर निदेशे
परस्पर-आवग्रह-निर्विकारौ[3]
राजा—तेन हि मन्त्रि-परिषदम् ब्रूहि सेनान्ये
वीरसेनाय लिख्यताम् एवं क्रियताम् इति।"[4]

इससे स्पष्ट है कि विदेश-नीति से सम्बन्धित कोई जटिल समस्या सामने आने पर मंत्रि-परिषद् या अमात्य-परिषद् से मंत्रणा की जाती थी।

२. अग्निमित्र और उसके उत्तराधिकारी

सम्भवतः ३६ वर्ष[5] तक राज्य करने के बाद पुष्यमित्र की १५१ ईसापूर्व में

---

१. बूहलर (*Ep. Ind.*, III. 137) के संकेतानुसार अशोक के राजकुमारों की सहायता के लिये महामात्र लोग होते थे। संभवतः इन्हें ही गुप्त-काल में कुमारामात्य कहा जाता था।

२. 'राजन्! यह निर्णय में मंत्रि-परिषद् को सुनाऊँगा।'

३. 'यही मंत्रि-परिषद् का भी विचार है। वे दोनों राजा अपने महाराजा के हित के प्रश्न को लेकर आपस में ही एकमत नही थे, आदि (Act V. Verse 14)।

४. "राजा—मंत्रि-परिषद् से कहो कि वह सेनापति वीरसेन को इस आशय का लिखित आदेश दे।"

५. जैन-परम्परा के अनुसार केवल ३० वर्ष—"अट्ठसयम् मुरियाणम् तिस च्चिआ पूसमित्तस" (*I.A*, 1914, 118 ff. मेरुतुङ्ग)।

मृत्यु हो गई। पुष्यमित्र के बाद अग्निमित्र गद्दी पर बैठा।[1] रुहेलखण्ड में प्राप्त ताँबे के सिक्कों पर भी अग्निमित्र का नाम खुदा मिला है। कनिंघम[2] के अनुसार इस राजा को पुष्यमित्र का पुत्र नहीं समझना चाहिये, बल्कि वह उत्तरी पांचाल (रुहेलखण्ड) के स्थानीय राजवंश का ही कोई राजा था। कनिंघम के उक्त निष्कर्ष के दो कारण थे—

१. अग्निमित्र ही एक ऐसा नाम है जो सिक्कों तथा पौराणिक सूची दोनों में मिलता है। सिक्कों में अन्य 'मित्र' राजाओं के जो नाम मिलते हैं, वे पांचाल-राजवंश के ही थे। इनका पुराणों में आये नामों से मेल नहीं बैठता।

२. इस प्रकार के सिक्के उत्तरी पांचाल-क्षेत्र के अलावा दूसरी जगह मिलते भी नहीं।

जहाँ तक पहले कारण का प्रश्न है, रिवेट-कारनैक (Rivett-Carnac)[3] तथा जायसवाल[4] का कथन है कि अग्निमित्र के अलावा भी कई एक सिक्कों पर खुदे नाम शुङ्ग तथा कण्व राजाओं की पौराणिक सूची में है। उदाहरणार्थ, भद्रघोष को 'घोष' माना जा सकता है। यह शुङ्ग-वंश (पौराणिक सूची में) का सातवाँ राजा था। भूमिमित्र नाम का एक कण्व राजा था। जेठमित्र को अग्निमित्र का उत्तराधिकारी माना जा सकता है, क्योंकि उसे वसुज्येष्ठ या सुज्येष्ठ कहा जाता था,[5] फिर भी यह अग्निमित्र से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध था। कुछ नाम

---

१. अमरकोश की टीका में कहा गया है कि अग्निमित्र शूद्रक राजा था (Oka, p. 122; *Ann. Bhand. Or. Res. Inst.*, 1931, 360)। इसके विपरीत कीथ ने 'वीरचरित' और राजशेखर का उल्लेख करते हुए शूद्रक को सातवाहन राजा का मंत्री कहा है। एक अन्य लेखक के अनुसार, शूद्रक ने स्वाति राजा को हराकर कई वर्ष राज्य किया था। हर्षचरित के अनुसार, वह चन्द्रकेतु राजा (दक्षिण भारत) का शत्रु था (Kieth, *The Sanskrit Drama*, p. 129. *Sanskrit Literature*, p. 292; Ghosh, *History of Central and Western India*, p. 141 f.)।

२. *Coins of Ancient India*, p. 79. *Cf.* Allan, *CICAI*, p. cxx.

३. *JASB*, 1880, 21 ff; *Ind. Ant.*, 1880, 311.

४. *JBORS*, 1917, p. 479. *Cf.* 1934, pp. 7 ff.

५. *Dynasties of the Kali Age*, p. 31, n. 12. Pace Allan, *CICAI*, p. xcvi.

ऐसे अवश्य हैं जिनकी समानता दुर्लभ-सी है। ये सम्भवतः वही शुङ्ग राजा होंगे जो कण्व राजा 'वसुदेव कण्व' के राज्य-ग्रहण के बाद बच रहे होंगे। बचे हुए शुङ्ग राजाओं को बाद में आन्ध्रवंशियों तथा शिशुनन्दियों ने समाप्त कर दिया।[१]

जहाँ तक दूसरे कारण का सम्बन्ध है, हमें याद रखना चाहिये कि पांचाल देश के माने जाने वाले 'मित्र' राजाओं के सिक्के पांचाल के आलावा अवध, बस्ती ज़िला तथा पाटलिपुत्र तक में मिले हैं। ब्रह्ममित्र तथा इन्द्रमित्र नामक दो 'मित्र' राजाओं में से इन्द्रमित्र तो निश्चित रूप से पांचाल देश का था। ये नाम बोधगया के स्तम्भों में भी मिले हैं। इसके अलावा मथुरा, पांचाल और कुम्रहार के सिक्कों में भी ये नाम उत्कीर्ण मिलते हैं।[२] इन तथ्यों के कारण यह कहना कुछ कठिन-सा मालूम होता है कि 'मित्र' नाम के राजाओं का एक मात्र स्थान उत्तरी पांचाल ही था। फिर भी, अभी इस विषय को विवादास्पद ही समझना चाहिये।

जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं, अग्निमित्र का उत्तराधिकारी ज्येष्ठ था। सम्भवतः ज्येष्ठ ही सिक्कों में जेठमित्र के रूप में लिखा हुआ मिलता है।[३]

दूसरा राजा वसुमित्र भी अग्निमित्र का ही पुत्र था। उसने अपने पितामह

---

१. *Dynasties of the Kali Age*, p. 49.

२. Cunningham, *Coins of Ancient India*, pp. 84-88; Allan, *CICAI*, pp. cxix, cxx; Marshall, *Archaeological Survey Report for* 1907-8, p. 40; Bloch, *ASR*, 1908-9, p. 147; *IHQ*, 1930, pp. 1ff. '*Im.. ....tra*' नाम बोधगया के स्तम्भ में मिलता है। इसके पूर्व '*Rano*' भी लिखा हुआ है। Bloch ने इसे कौशिकी-पुत्र इन्द्राग्निमित्र कहा है। Bloch, Rapson और Marshall तीनों इस विषय में एकमत हैं। इसी इन्द्राग्निमित्र से आर्या कुरंगी का विवाह हुआ था। 'कौशिकी-पुत्र' शब्द से पंडित कौशिकी का भी भ्रम होता है। 'मालविकाग्निमित्रम्' की कौशिकी, बरार के मंत्री की बहन थी। बरार राज्य के राजकुमार की एक बहन अग्निमित्र की पत्नी थी। राजा ब्रह्ममित्र की रानी का नाम नागदेवी था।

३. *Coins of Ancient India*, p. 74; Allan, *CICAI*, xcvi. जेठमित्र और अग्निमित्र का सम्बन्ध देखिये। ज्येष्ठमित्र का नाम ब्राह्मी लिपियों में भी मिलता है। (*Amrita Bazar Patrika*, July 11, 1936. p. 5)।

के समय में ही राज्य की सेना का सेनापतित्व करके यवनों को सिन्धु नदी के तट पर हराया था। सम्भवतः सिन्धु नदी ही पुष्यमित्र के राज्य और इण्डो-ग्रीक साम्राज्य के बीच की सीमारेखा थी।

भागवत पुराण में भद्रक को वसुमित्र का उत्तराधिकारी बताया गया है, यही नाम सम्भवतः विष्णु पुराण में आर्द्रक और ओद्रक, वायु पुराण में आन्ध्रक तथा मत्स्य पुराण में 'आन्तक' के रूपों में आया है। जायसवाल ने पभोसा-लेख के 'उदाक' शब्द को भी उपर्युक्त नाम का ही एक रूप माना है। लेखों का एक अंश इस प्रकार है: "आषाढ़सेन, गोपाली वैहिदरी के पुत्र तथा राजा बहसतिमित्र के मामा गोपाली के पुत्र। उदाक के दसवें वर्ष में कस्सपिय अर्हत् के हेतु एक गुफा तैयार की गई थी।" एक अन्य पभोसा-लेख से हमें पता चलता है कि आषाढ़सेन अधिछत्र (अहिछत्र) राजवंश का था। अधिछत्र उत्तरी पांचाल की राजधानी था। जायसवाल के अनुसार ओद्रक शुङ्ग राजा था, जबकि आषाढ़सेन मगध-साम्राज्य के अधीन एक शासक मात्र था। मार्शल[1] के अनुसार पाँचवें शुङ्ग राजा को ही 'काशीपुत्र' कहा जाता था। प्राचीन नगर विदिशा (आज के बेसनगर) में प्राप्त गरुड़-स्तम्भ-लेख में भागभद्र नाम आता है। जायसवाल ने 'भागभद्र' की समानता शुङ्ग राजा 'भाग' से की है। किन्तु, यह सिद्धान्त इसलिए ठीक नहीं जँचता कि बेसनगर के एक अन्य स्तम्भ-लेख से सिद्ध होता है कि विदिशा में भी भागवत नाम का एक राजा राज्य करता था और वह काशीपुत्र भागभद्र से भिन्न था। किसी स्पष्ट प्रमाण के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि उदाक, अग्निमित्र या भागवत के वंश का था। इस सम्बन्ध में मार्शल[2] का कथन अधिक विश्वसनीय है।

ऐसा लगता है कि विदिशा का राजा अग्निमित्र पश्चिमी पंजाब के यूनानी शासकों से मैत्री-सम्बन्ध क़ायम किये हुए था। हम जानते हैं कि सर्वप्रथम सेल्युकस ने मगध के साम्राज्य को जीतना चाहा, किन्तु जब उसका प्रयास असफल सिद्ध हुआ तो उसने यही बुद्धिमानी समझी कि मौर्य-राजा से मित्रता कर ली जाय। बैक्ट्रियन शासक भी पुष्यमित्र द्वारा परास्त हुए थे। इसके अतिरिक्त वे गृह-कलह से भी कुछ निर्बल हो गये थे। कुछ समय तक इन लोगों की गंगा की घाटी के

---

१. *A Guide of Ancient India*, p. 11n.

२. डॉक्टर बरुआ के अनुसार, उदाक पता नहीं किसी राजा का नाम था, या किसी स्थान-विशेष का।

राजवंश से भी शत्रुता थी। बेसनगर के लोगों से भागभद्र और हेलिओद्रा शासकों के बारे में भी कुछ पता चलता है। हेलिओडोरा (हेलिओडोरस) तक्षशिला का रहने वाला था तथा महाराज अंतलिकित की ओर से राजदूत होकर वह राजम् काशीपुत्र भागभद्र के यहाँ आया था। राजा भागभद्र अपने शासन के १४वें वर्ष में अपने ऐश्वर्य की चरम सीमा पर था। उक्त राजदूत यद्यपि यूनानी था, किन्तु उसने भागवत-धर्म का प्रचार किया था, तथा उसने वासुदेव (कृष्ण) के सम्मान में 'गरुड़ध्वज' की स्थापना की थी। राजदूत हेलिओडोरस महाभारत का भी ज्ञाता था। उसने अपनी जन्मभूमि तक्षशिला के आवास-काल में महाभारत[1] का अध्ययन किया था।

भद्रक के बाद हुए उसके तीन क्रमशः उत्तराधिकारियों के बारे में कुछ भी ज्ञात नही है। नवम् राजा भागवत ने काफ़ी दिनों तक, यानी लगभग ३२ वर्षों तक राज्य किया था। डॉक्टर भण्डारकर ने इस राजा की समानता महाराजा भागवत से की है, जिसका उल्लेख बेसनगर-शिलालेखों के सिलसिले में ऊपर किया जा चुका है। भागवत का उत्तराधिकारी देवभूति या देवभूमि एक तरुण तथा प्रतापी राजा था। पुराणों के अनुसार वह दस वर्ष के शासन के बाद अपने अमात्य वसुदेव द्वारा गद्दी से उतार दिया गया था। बाण ने अपने 'हर्षचरित' में कहा है कि अतिकामी शुंग के जीवन का अन्त उसके अमात्य वसुदेव ने देवभूमि की दासी की पुत्री, जिसने शुङ्ग की रानी का छद्मवेष धारण किया था, की सहायता से किया। बाण के कथन का यह मतलब नहीं होता कि यही देवभूति राजा शुंग था जिसकी हत्या कर दी गई थी। इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि सम्भवतः वसुदेव ने पिता के पतन के लिए षड्यन्त्र किया था ताकि वह स्वयं गद्दी पर बैठ सके। किन्तु, पुराणों से प्राप्त अन्य सामग्री को देखते हुए बाण के उक्त कथन को सत्य नहीं माना जा सकता।

देवभूति के पतन के बाद ही शुङ्ग का ऐश्वर्य समाप्त नहीं हो गया। शुंग का प्रभाव आन्ध्रों के उदय तक मध्यभारत[2] में था। शुंग-प्रभाव का अन्त

---

१. महाभारत, V. 43. 22; XI. 7. 23—दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्राह्मणो हयाः। देखिये गीता, XVI. 1. 2; See *JASB*, 1922, No. 19, pp. 269-71; *ASI*, 1908-9, p. 126; *JRAS*, 1909, 1055, 1087f, 1093f; 1910, 815; 1914, 1031f; *IHQ*, 1932, 610; *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1918-19, p. 59.

२. *Cf. Dynasties of the Kali Age*, p. 49.

करने वाले आन्ध्र-भृत्यों या सातवाहनों ने विदिशा का शासन चलाने के लिए शिशुनंदी[1] को नियुक्त किया था। शिशुनंदी के एक नाती (दौहित्र) था, जो बाद में पुरिका[2] का शासक हुआ था। इसका नाम शिशुक था।

३. भारतीय इतिहास में बैम्बिक-शुङ्ग-काल का महत्त्व

यों तो समूचे भारतीय इतिहास में, और विशेषकर मध्यभारत के इतिहास में, पुष्यमित्र-वंशी राजाओं का विशेष महत्त्व है, पर बारबार होने वाले यवनों के आक्रमरण से पूरे मध्यप्रदेश के लिए खतरा उत्पन्न हो गया था और मध्यप्रदेश अब कुछ नियन्त्रित हो गया था। सीमावर्त्ती यूनानी राजाओं ने अपनी नीति में परिवर्त्तन कर दिया था और वे सेल्युकस-कालीन नीति का अनुसरण करने लगे थे। इस काल में साहित्य, कला और धर्म के क्षेत्रों में गुप्त-वंशी 'स्वर्णकाल' जैसे पुनरुत्थान की लहर-सी आ गई थी। इन कार्य-कलाप के इतिहास में मध्यभारत के तीन स्थानों का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। वे हैं विदिशा (बेसनगर), गोनार्ड और भरहुत। फ़ाउशर ने लिखा है कि "विदिशा के ही शिल्पकारों ने साँची के फाटक पर अपनी खुदाई की कला दिखाई थी।" विदिशा और समीपवर्त्ती शिलालेखों से स्पष्ट है कि उस समय भागवत-धर्म का बोलबाला था। यद्यपि इस धर्म के प्रचारार्थ कोई अशोक नहीं हुआ था, फिर भी यवन-राजकुमारों तथा यवन-राजदूतों पर इसका पूर्ण प्रभाव था। तत्कालीन साहित्य के विख्यात व्याकरणवेत्ता पतंजलि गोनार्ड[3] में ही पैदा हुए थे। भरहुत शुङ्गकालीन राजसत्ता का अक्षुण्ण स्मारक हो गया था।

---

१. *Ibid.*, 49.

२. पुरिका की स्थिति के लिए देखिये *JRAS*, 1910, 446; *Cf. Ep. Ind.*, xxvi. 151.

३. See *IHQ*, 1926, 267. सुत्त निपात के अनुसार गोनार्ड—विदिशा और उज्जैन के बीच स्थित था (*Carm. Lec.*, 1918, 4; *Journal of Andhra Historical Research Society*, Jan. 1935, pp. 1 ff.)। (Sircar's trans. of S. Levi's note on Gonard.)।

१० | मगध तथा भारत-यूनानी राज-सत्ताओं का पतन

१. कण्व, उत्तर शुङ्ग तथा उत्तर मित्र वंश

वसुदेव के इशारे पर विलासी शुंग को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। वसुदेव ने ७५ ईसापूर्व में एक नये राजवंश की स्थापना की, जिसे कण्व या काण्वायन-वंश कहा गया है। पुराणों में भी इस वंश के सम्बन्ध में निम्न उल्लेख मिलता है--"वह (वसुदेव) अर्थात् काण्वायन ९ वर्षों के लिए राजा होगा। उसका पुत्र भूमिमित्र १४ वर्ष तक शासन करेगा। उसका पुत्र नारायण १२ वर्ष तक राज्य करेगा। उसका पुत्र सुशर्मन १० वर्ष तक सिंहासनारूढ़ रहेगा। ये सभी शुङ्ग-भृत्य काण्वायन राजा के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। ये चार कण्व ब्राह्मण धरती का राज्य-सुख भोगेंगे।[1] ये लोग सत्यव्रती होंगे। इन लोगों के बाद पृथ्वी का राज्य आन्ध्र-वंश के हाथ में चला जायेगा।" सम्भवतः यह भूमिमित्र राजा वही था जिसके नाम के सिक्के उपलब्ध होते हैं।[2]

---

१. सम्भवतः पूर्वी मालवा में विदिशा या बेसनगर अथवा पड़ोस का ही कोई अन्य नगर शुङ्गों की राजधानी था।

२. श्री जे० सी० घोष सर्वतात को भी कण्व-राजाओं में शामिल करने के पक्ष में हैं। सर्वतात को शंकर्षण और वसुदेव का पुजारी तथा अश्वमेध यज्ञ करने वाला भी कहा गया है (गोसुन्दी के शिलालेख, (*Ind. Ant.*, 1932, Nov., 203 ff; *Ep. Ind.*, xxii, 198) के अनुसार यह राजा गाजायन-वंश का माना जाता है। गाजायन-वंश गादायन या गोदायन-वंश था (*Cf. IHQ*, 1933. 797 ff), यह कहना अधिक युक्तियुक्त नहीं लगता। इससे अधिक तो गाजायन का सामीप्य शौनक और कश्यप वंश के गाह्यन या गाङ्गायन से ही प्रतीत होता है (Caland, **बौद्ध स्रौत सूत्र**, III, 423-454)। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हरिवंश में कहा गया है कि कलियुग में अश्वमेध को पुनः प्रचारित करने वाले कश्यप द्विज ही थे। 'गाङ्गायन' शब्द से निस्सन्देह मैसूर के

कण्व-वंश के राजाओं से सम्बन्धित तिथियाँ काफ़ी विवादग्रस्त हैं। सर आर० जी० भण्डारकार ने अपनी पुस्तक Early History of Deccan में कहा है--आन्ध्र-भृत्य के संस्थापकों ने कण्व-वंश का ही उन्मूलन नहीं किया, वरन् शुङ्गों के अवशेष को भी समाप्त कर दिया। कण्व लोगों का शुङ्ग-भृत्य या शुंगों के नौकर के रूप में भी उल्लेख आया है। अतः इससे यह स्पष्ट है कि जब शुङ्ग-वंश के राजा शक्तिहीन हो गये तो कण्व लोगों ने पूरी राजसत्ता अपने हाथ में ले ली और पेशवा के रूप में राजकाज चलाने लगे। इन लोगों ने अपने स्वामी का उन्मूलन नहीं किया, वरन् उन्हें नाम मात्र के लिए राजा बना रहने दिया। इस प्रकार ये सभी वंश समकालीन ही लगते हैं। शुङ्गों के तथाकथित ११२ वर्ष के शासन-काल में कण्वों के ४५ वर्ष का काल भी सम्मिलित है।

अब केवल पौराणिक सामग्री से ही सिद्ध होता है कि कुछ राजा शुङ्ग-वंश के कहे जाते थे। वे आन्ध्र-भृत्यो की विजय के समय तक शासन करते रहे थे। ये लोग कण्व लोगों के समकालीन कहे जाते हैं। किन्तु, यह दिखाने के लिए कि शुङ्ग-वंश के उपर्युक्त राजा ही दस प्रसिद्ध शुङ्ग-शासक थे, कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होता। दस प्रसिद्ध शुंग-शासकों का नाम पौराणिक सूची में मिलता है, तथा यह भी लिखा मिलता है कि इन लोगों ने ११२ वर्ष तक राज्य किया था। इसके विपरीत कुछ पुराणों में दसवें शुंग राजा देवभूति के बारे में कहा गया है कि प्रथम कण्व वसुदेव ने उसकी हत्या की थी। इससे सिद्ध है कि जो शुंग राजा केवल नाम मात्र के लिए ही थे, वे वसुदेव तथा उसके उत्तराधिकारियों के समकालीन थे, किन्तु इतने महत्वपूर्ण नहीं थे कि उनके नामों का उल्लेख किया जाय। इससे यह भी सारांश निकलता है कि पुष्यमित्र से देवभूति तक दस शुङ्ग-राजाओं का ११२ वर्ष का जो शासन-काल स्थापित किया गया है, उसमें कण्वों के ४५ वर्ष शामिल नहीं किये गये हैं। इसलिए इस राजवंश के बारे में डॉक्टर स्मिथ के तिथि-सम्बन्धी मत को थोड़े हेरफेर के साथ स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं है। इन पृष्ठों में जिस तिथिक्रम को आधार माना गया है, उसके अनुसार कण्व-राजाओं का शासन-काल ७५ ईसापूर्व से ३० ईसापूर्व तक माना गया है।

गङ्गों का स्मरण हो आता है, जो अपने को काण्वायन-गोत्र का कहते थे (*A New History of the Indian People*, Vol. VI, p. 248)। किन्तु, गाजायन और गाङ्गायन की समानता नहीं सिद्ध होती।

कण्व-वंश के बाद मगध-विशेष के बारे में बहुत थोड़ी जानकारी ही मिल पाती है। मगध में कण्व-वंश के पतन से गुप्त-वंश के उत्थान के बीच के इतिहास का पुनर्गठन अपने आप में कठिन कार्य है। जिस आन्ध्र या सातवाहन वंश के बारे में कहा जाता है कि इस वंश के लोगों ने ही कण्व-वंश का शासन समाप्त किया था, वे भी मगध के शासक नहीं थे।[1] इन लोगों में जो सबसे महान् राजा हुए थे उन्हें 'दक्षिणापथपति' कहा जाता था। इन राजाओं के नाम के साथ 'तिसमुद-तोयपीतवाहन' विशेषण भी प्रयोग में लाया जाता था। इसके अतिरिक्त इन्हें 'त्रिसमुद्राधिपति' भी कहा जाता था। अर्थात्, इन राजाओं की सेना तीन समुद्रों का जल पीती थी, अर्थात् इन राजाओं की सैनिक व राजनीतिक गतिविधि तीन समुद्रों के बीच के भूभाग में फैली हुई थी। जहाँ तक गुप्त-वंश के शासकों का सम्बन्ध है, उनका राज्य चार समुद्रों के बीच के भूभाग में विस्तृत था।

खुदाई में मिली एक मिट्टी की मुहर से पता चलता है कि गया के क्षेत्र में कभी मौखरी-सामन्तों का प्रभुत्व था।[2] किन्तु, उनके बारे में कोई निश्चित तिथि नहीं ज्ञात हो सकी है। इसी प्रकार महाराज त्रिकमल की तिथि भी अनिश्चित है। महाराज त्रिकमल ईसवी सन् के ६४वें वर्ष या ईसापूर्व के ६४वें वर्ष में राज्य करते थे। कुछ तिथिक्रमों के अनुसार लिच्छवियों और पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) के बीच भी कुछ सम्बन्ध का आभास मिलता है। ईसवी सन् के आरम्भ होने के पूर्व की शताब्दी में सम्भवतः मगध तथा समीपवर्ती भूभागों पर मित्र-वंशों का शासन था। जैन-ग्रन्थों में बलमित्र और भानुमित्र राजाओं को पुष्यमित्र का उत्तरा-

१. Nurruvar Kannar (सिलप्पदिकरम, xxvi, Dikshitar's trans. 299f.) को शातकर्णि या मगध से जोड़ना तर्कसंगत नहीं है। Nurruvar केवल विशेषण है, नाम का अंश नहीं। गङ्गा नदी चाहे उक्त वंश से सम्बन्धित गौतमी गङ्गा या गोदावरी न हो, किन्तु वह गङ्गा मगध के आलावा अन्य भूभागों से भी होकर बहती है। इससे स्पष्ट है कि उक्त राजाओं तथा मगध को एक दूसरे संबंधित करना कोई आवश्यक नहीं है।

२. Fleet, *CII*, 14. उक्त मुहर की लिखावट मौर्य-कालीन ब्राह्मी लिपि में है। हो सकता है मौखरी लोग मौर्यों या कण्व-राजवंश के अधीन ही किसी छोटे भूभाग के राजा रहे हों। राजस्थान के कोटा राज्य में भी कुछ शिलालेख मिले हैं, जिनमें मौखरी महासेनापतियों द्वारा यज्ञ-स्तम्भों की स्थापना के उल्लेख मिलते हैं। इन स्तम्भों की स्थापना तीसरी सदी में की गई बताई जाती है (*Ep. Ind.*, XXIII, 52)।

धिकारी कहा गया है। इससे मित्र-वंश के शासन का अस्तित्व प्रमाणित होता है। डॉक्टर बरुआ ने मित्र-राजाओं की एक सूची तैयार की है। इस सूची में बृहत्स्वातिमित्र, इन्द्राग्निमित्र, ब्रह्ममित्र, बृहस्पतिमित्र, विष्णुमित्र, वरुणमित्र, धर्ममित्र तथा गोमित्र[1] राजाओं के नाम मिलते हैं। इनमें से इन्द्राग्निमित्र, ब्रह्मित्र तथा बृहस्पतिमित्र निश्चित रूप से मगध के राज्य से सम्बन्धित थे। शेष कौशाम्बी और मथुरा से सम्बन्धित थे। किन्तु, इससे यह पता नहीं चलता कि ये मित्र-वंशी राजा आपस में, या कण्व तथा शुङ्ग वंशों से किस रूप में सम्बन्धित थे।

पाटलिपुत्र तथा मथुरा में कालान्तर में मित्र-राजाओं के बाद सीथियन तथा सत्रप (क्षत्रप) राजा आ गये। उसके बाद ही नागवंश तथा गुप्तवंश का भी आविर्भाव हुआ। कुछ विद्वानों के अनुसार गुप्तवंश के पूर्व कोटवंश के लोग पाटलिपुत्र के शासक हुए थे।[2]

२. सातवाहन और चेत

जबकि शुङ्ग तथा कण्व वंशी आपसी कलह में फँसे हुए थे, समूचे विन्ध्य-क्षेत्र में कुछ नयी शक्तियों का उदय हो रहा था। ये थे सातवाहन[3] (इन्हें आन्ध्र या

---

१. Allan के अनुसार ब्रह्ममित्र, दृढ़मित्र, सूर्यमित्र और विष्णुमित्र ने गोमित्र के समान सिक्के जारी किये थे। इनके बाद दत्त, भूति और घोष नामधारी राजा हुए थे।

२. इस सम्बन्ध में देखिये—*Ep. Ind.*, VIII. 60ff; हर्षचरित, VIII, p. 251; Cunningham, महाबोधि; *ASI*, 1908-9, 141; *IHQ*, 1926, 441; 1929, 398, 595 f; 1930, 1 ff, 1933, 419; Kielhorn, N. I. Inscriptions, No. 541; *Indian Culture*, I, 695; *EHI*, 3rd ed., 227 n; *JRAS*, 1912, 122; Smith, *Catalogue of Coins in the Indian Museum*, 185, 190, 194; Allan, *CICAI*, pp. xcvi-xcviii, cx, 150 ff, 169 ff, 173 ff, 195 ff, 202 ff.

३. Bhagalpur Grant of Narayanapala में 'सातिवाहन' शब्द भी मिलता है। साहित्य में 'शालिवाहन' शब्द मिलता है। Sir R. G. Bhandarkar, *EHD*, Section VII. भी देखिये।

आन्ध्र-भृत्य'[1] भी कहा गया है), जिनके राज्य का नाम दक्षिणापथ था । दूसरी शक्ति थी, कलिंग का चेत या चेति राज्य ।

सातवाहन-वंश की स्थापना सिमुक ने की थी । पुराणों में यही नाम शिशुक, सिन्धुक, तथा शिप्रक के रूपों में आया है । इन ग्रन्थों के अनुसार आन्ध्र 'सिमुक' काणवायन तथा सुशर्मन वंशों को परास्त कर तथा शुङ्गों को नष्ट कर पृथ्वी का राज्य हस्तगत करेगा । यदि यह कथन सही है तो इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सिमुक ४० ईसापूर्व तथा ३० ईसापूर्व के बीच सुशर्मन का समकालीन था और पहली शताब्दी में इसका उत्थान हुआ था । रैप्सन, स्मिथ तथा अन्य कई विद्वान् एक मत से इस सम्बन्ध में पुराणों की प्रामाणिकता मानने से इनकार करते हैं । ये लोग इस कथन को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते है कि आन्ध्र-वंश ने साढ़े चार सौ वर्ष राज्य किया था । किन्तु, इस सम्बन्ध में अन्य विद्वान् एकमत नहीं है । ये लोग सिमुक को तृतीय शताब्दी ईसापूर्व के अन्त का बताते हैं और इनका कथन है कि ईसापूर्व की तीसरी शताब्दी के अन्त में ही इस वंश का अन्त हुआ था ।

सिमुक की तिथि के सम्बन्ध में कुछ सोचने या विचार करने के पूर्व निम्नलिखित बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है—

१. नायनिका के नानाघाट-रिकार्ड की लिखावट किस समय की है ?

२. खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेखों की वास्तविक तिथि क्या है ? इन शिलालेखों में शातकर्णि का उल्लेख है जो कि सम्भवतः सिमुक का उत्तराधिकारी था ।

३. आन्ध्र-वंश में कितने राजा हुए थे, तथा कितने वर्षों तक उनका शासन रहा ?

जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, श्री आर० पी० चन्दा के अनुसार नायनिका के शिलालेख भागवत के बेसनगर के लेखों के बाद के हैं । सम्भवतः पुष्यमित्र के वंश के अन्तिम राजा से पूर्व के राजा का उल्लेख पुराणों में किया

१. पुराणों में 'आन्ध्र-जातीय' या 'आन्ध्र' लिखा मिलता है, जिसकी स्थापना कण्व-राजाओं के नौकरों या भृत्यों ने की थी । सर भण्डारकर विष्णु पुराण की चर्चा करते हुए सिमुक को आन्ध्र-भृत्य-वंश का संस्थापक मानते हैं (Pargiter, *Dynasties of the Kali Age*; *Cf.* विष्णु पुराण, IV. 24. 13) ।

गया है।[1] फलस्वरूप सिमुक को कण्व-काल में रखा जा सकता है, अर्थात् ईसापूर्व की पहली शताब्दी में। यह समय पुराणों में दिये गये समय से मेल खाता है।[2]

श्री आर० डी० बनर्जी के दूसरे तर्क से लगता है कि हाथीगुम्फा-शिलालेखों के 'पंचमे चे दानि वसे नन्दराज तिवस-सत' अनुच्छेद में 'तिवस-सत' शब्द का अर्थ १०३ नहीं, वरन् ३०० ही है।[3] यही मत श्री चन्दा का भी है। एक बार डॉक्टर

१. *MASI*, No. 1, pp. 14-15. श्री चन्दा (*IHQ*, 1929, p. 601) के अनुसार नानाघाट तथा बेसनगर के शिलालेखों में तथ्यों की समानता मिलती है। बेसनगर के लेख Antialkidas के समय के हैं, जिसका समय अनिश्चित है। वह सम्भवतः दूसरी शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्ध में रहा होगा, या बाद की शताब्दी के प्रथमार्द्ध में।

श्री चन्दा के मत के विरुद्ध श्री आर० डी० बनर्जी ने कहा है कि नानाघाट के लेखों में क्षत्रप तथा आरम्भ के कुषाण की चर्चा अधिक है (*Mem. Asiat. Soc. Bengal*, Vol. XI. No. 3. p. 145)। रैप्सन (*Andhra Coins*, lxxvii के अनुसार नानाघाट के रिकॉर्ड में अक्षर 'द' जिस रूप में मिलता है, वह ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के आरम्भ का ही हो सकता है।

श्री बनर्जी या रैप्सन, किसी ने भी नानाघाट के रिकॉर्ड को पहली शताब्दी का नहीं बताया है। ये रिकॉर्ड दूसरी शताब्दी के हैं—यह कथन पहले के विद्वानों के इस मत पर आधारित मालूम होता है कि खारवेल का १३वाँ वर्ष मौर्य-राजाओं के शासन का १६५वाँ वर्ष था (Buhler, *Indian Palaeography*, 39; Rapson, xvii)।

२. बूहलर (*ASWI*, Vol. V, 65) के अनुसार नानाघाट-अभिलेख के के अक्षर गौतमी-पुत्र शातकर्णि तथा उसके पुत्र पुलुमावि के भी १०० वर्ष पूर्व के हैं। जो विद्वान् नानाघाट-रिकॉर्ड को ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के प्रथमार्द्ध में मानते हैं; और गौतमी-पुत्र शातकर्णि से सम्बन्धित सामग्री को दूसरी शताब्दी का मानते हैं, उन्हें सातवाहनों के रिकॉर्ड की प्रामाणिकता पर ध्यान देना होगा (यदि यही नागनिका के पति तथा बलश्री के पुत्र के शासन के बीच का समय है)। श्री एन० जी० मजूमदार ने नानाघाट-रिकॉर्ड को १००-७५ ईसापूर्व के बीच का माना है (*The Monuments of Sanchi*, Vol. I, Pt. IV, p. 277)।

३. *JBORS*, 1917, 495-497.

जायसवाल[1] ने भी ऐसा ही मत व्यक्त किया था। यदि 'तिवस-सत' का अर्थ ३०० है तो खारवेल तथा उसका समकालीन शातकर्णि नन्द से ३ वर्ष बाद ही हुए रहे होंगे, अर्थात् २४ ईसापूर्व में। यह तिथि पुराणों के उल्लेख से मेल खाती है, जिसके अनुसार शातकर्णि के पिता या चाचा सिमुक ने अन्तिम कण्व राजा सुशर्मन का अन्त किया था (सी० ४०–३० ईसापूर्व)।[2]

अब हम तीसरे प्रश्न को लेते हैं कि सातवाहन-वंश के राजाओं की संख्या क्या थी तथा उनका शासन-काल कितने वर्षों तक रहा? इस सम्बंध में हमें जो सामग्री पुराणों से मिलती है वह कुछ भिन्न प्रकार की है। पहले प्रश्न पर मत्स्य पुराण में कहा गया है—'एकोन विंशतिह्येते[3] आन्ध्र भोक्ष्यन्ति वै महीम्,।' किन्तु, इसके अन्तर्गत ३० नाम दिये गये हैं।[4]

---

१. *JBORS*, 1917, 432; *Cf.* 1918, 377, 385. पुरानी धारणा १९२७, २३८, २४४ में संशोधित कर दी गई है। हाथीगुम्फा-लेखों के उक्त अनुच्छेद की स्वीकृत व्याख्या के अनुसार यदि 'तिवस-सत' का अर्थ १०३ माना जाय तो खारवेल का शासन-काल नन्दराज के १०३-५= ९८ वर्ष बाद पड़ता है। वह ९८-९ अर्थात् नन्दराज के ८९ वर्ष बाद युवराज बनाया गया था (३२४ ईसापूर्व-८९=२३५ ईसापूर्व के बाद नहीं)। इस समय खारवेल का पिता सिंहासन पर था। किन्तु, अशोक के एक शिलालेख के अनुसार, इस समय कलिंग पर एक मौर्य-कुमार शासन करता था, और वह अशोक के ही मातहत था। इसलिए, 'तिवस-सत' का अर्थ ३०० ही है, न कि १०३। नन्दों और शातकर्णि के बीच ३०० वर्षों का अन्तर था, इस सम्बन्ध में पुराण भी एक-मत हैं। १३७ (मौर्यों का समय) + ११२ (शुङ्गवंश का समय) + ४५ (कण्व-वंश का समय) + २३ (सिमुक का समय) + १० (कृष्ण का समय) = ३२७ वर्ष।

२. हो सकता है कि सिमुक ४०-३० ईसापूर्व के कुछ वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा हो, जबकि उसने मध्यभारत के काण्वायन-वंश का अन्त किया था। कण्वों की हार के बाद सम्भव है कि सिमुक ने २३ वर्ष से कम ही राज्य किया हो। इस प्रकार शातकर्णि और नन्दों के बीच का समय ३२७ वर्ष से कुछ कम भी हो सकता है।

३. Variant—एकोण-नवति (*DKA*, 43)।

४. पार्जिटर के संकेतानुसार तीन मत्स्य-पाण्डुलिपियों में ३० नाम दिये गये हैं जबकि पाण्डुलिपियों में यह संख्या २८ से २१ के बीच अलग-अलग दी गई है।

वायु पुराण में 'इत्येते वै नृपास् त्रिशद् आन्ध्र भोक्ष्यन्ति ये महीम्' (ये तीस आन्ध्र-वंशी राजा धरती का राजसुख भोगेंगे)। किन्तु, वायु पुराण की अधिकांश पांडुलिपियों में १७-१८ या १९ नाम ही दिये गये हैं।

जहाँ तक आन्ध्र-राजाओं के शासन-काल का प्रश्न है, कतिपय मत्स्य-पांडुलिपियों के अनुसार यह समय ४६० वर्ष का था।

"तेषां वर्ष शतानि स्युश चत्वारि षस्टिर् एव च।"

एक अन्य मत्स्य-पाण्डुलिपि में कुछ भिन्न मत प्रकट किया गया है, वह इस प्रकार है—

"द्वादशाधिकम् एतेषां राज्यम् शत-चतुष्टयम्।"

अर्थात्, आन्ध्र-प्रभुता का समय ४१२ वर्ष का था। इसके विपरीत, सर भंडारकर के अनुसार कुछ वायु पुराण की पाण्डुलिपियों में यह समय केवल २७२½ वर्षों का रहा।

अन्ततः एक मत के अनुसार इस वंश में १७, १८ या १९ राजा हुए थे, जिनका शासन-काल लगभग तीन शताब्दियों तक रहा। दूसरे मत के अनुसार इस वंश में तीस राजा हुए, जिनका शासन-काल लगभग ४०० वर्षों तक रहा। सर आर० जी० भण्डारकर के मतानुसार जो सूची लम्बी है, उसमें आन्ध्र-भृत्य-परिवार के शासक भी सम्मिलित कर लिये गये है तथा उनके शासन-काल के वर्षों में इन आन्ध्र-भृत्य-शासकों का शासन-काल भी शामिल है। वायु पुराण में दिया गया ३ सौ वर्ष का काल तथा १७, १८ या १९ राजाओं की सूची केवल एक ही राजवंश से सम्बन्धित ज्ञात होती है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि सातवाहन-शातकर्णि अलग-अलग राजवंश थे तथा गोदावरी की घाटी में इनकी राजधानी थी। राजशेखर-कृत 'काव्य-मीमांसा' तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में सातवाहन तथा शातकर्णि राजवंशों का उल्लेख आया है, तथा उन्हें कदम्बों के पूर्व कुन्तल[1] का राजा माना गया है। मत्स्य पुराण की पूर्ण सूची में कुछ अन्य राजाओं (नं० १०-१४) के नाम भी हैं, जिनमें 'कुंतल' शातकर्णि भी एक नाम है। वायु पुराण इस सम्बन्ध में बिलकुल

१. काव्य-मीमांसा (1934, Ch. X, p. 50) में कुन्तल के सातवाहनों का नाम आया है। इसके अन्तःपुर में प्राकृत भाषा के प्रयोग का ही आदेश था। शायद यह राजा हाल (Hala) ही रहा हो (*Cf. Kuntala-janavayaınena Halena, Ibid.*, Notes, p. 197)।

मौन है।[1] पूर्ण सूची में स्कन्दस्वाति नाम आया है। कन्हेरी-शिलालेख में शातकर्णि-वंश में स्कन्दनाग-शतक भी एक नाम मिलता है। जहाँ तक कुंतल का प्रश्न है,[2] वात्स्यायन के कामसूत्र की टीका में यह नाम (नं० १३) 'कुन्तल शातकर्णि शातवाहन' के रूप में आया है। उल्लेख 'कुन्तल-विषये जातत्वात्तत समाख्य:'[3] के रूप में आया है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मत्स्य पुराण की जिस सूची में ३० नाम दिये गये है, उसमें ३० सातवाहन राजाओं के अलावा कुन्तल से संबन्धित अन्य वंशो के राजाओं के नाम भी है।

इसके विपरीत वायु, ब्रह्माण्ड तथा कुछ मत्स्य पांडुलिपियों में कुन्तल के सातवाहनों के नाम नहीं दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त रुद्रदामन-प्रथम के अधीन शक-उत्थान के शासकों के भी नाम नहीं है। इनमें केवल १६ नाम उन्हीं राजाओं के हैं जो मुख्य वंश से सम्बन्धित थे और जिनका शासन-काल ३ सौ वर्षों तक ही चला। यदि सातवाहन-वंश में केवल १६ शासक ही हुए थे तथा उनका शासन-काल केवल ३०० सौ वर्षों तक ही चला था तो यह स्वीकार कर लेने में कोई अड़चन नही होनी चाहिये कि सिमुक अन्तिम कण्व-राजाओं के समय, अर्थात् ईसापूर्व की पहली शताब्दी में हुआ था। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि सिमुक का शासन तीसरी सदी तक उत्तरी दक्कन से उठ चुका था। सातवाहन तथा कुन्तल के शातकर्णियों का शासन-काल अधिक दिनों तक रहा, तथा सम्भवतः चौथी शताब्दी के पूर्व तक समाप्त नहीं हुआ। इसका अन्त कदम्बों ने किया। इस प्रकार शातकर्णि-राजवंश की सभी शाखाओं का शासन-काल ४०० वर्षों

---

१. वायु पुराण (*DKA*, p. 36) तथा ब्रह्माण्ड पुराण (Rapson, *Andhra Coins*, lxvii) में हाल (No. 17) का नाम भी नहीं है।

२. Rapson, *Andhra Coins*, liii. इस नाम का कोई राजपुत्र था, यदि यह सिद्ध हो जाय तो यह सिद्ध करने की आवश्यकता नही रह जाती कि वह गद्दी पर बैठा या नही। पौराणिक सूची में ऐसे राजाओं के उल्लेख मिलते है, जो गद्दी पर नही बैठे. जैसे अर्जुन, अभिमन्यु तथा सिद्धार्थ। मत्स्य पुराण की पाण्डुलिपियों में स्कन्दस्वाति से सम्बंधित भी कुछ नाम आये है, जैसे चन्दश्री (*DKA*, p. 36)।

३. उसका नाम 'कुन्तल' इसलिए पड़ा कि वह कुन्तल प्रदेश में पैदा हुआ था। इसी तरह के नाम देखिये—उरुवेल नदि और गया कस्सप (*Dialogues of the Budha*, I, 194)।

से भी अधिक था।[1] कुन्तल-वंश के सभी राजा (Nos. 10-14 of the DKA list) गौतमी-पुत्र तथा उसके उत्तराधिकारियों के पूर्व माने जाते हैं। किन्तु, पार्जिटर के संकेतानुसार कुछ मत्स्य-पाण्डुलिपियों में संख्या १०-१५ तक के लोगों को संख्या २६ के बाद रखा गया है।[2] जहाँ तक हाल (संख्या १७) का सम्बन्ध है, यदि यही 'गाथा सप्तशती' का प्रणेता है तो चौथी शताब्दी के पूर्व इसका आविर्भाव कठिन ही लगता है। विक्रमादित्यचरित, अंगारकवार और राधिका के उल्लेखों के फलस्वरूप उक्त राजवंश की तिथि को गौतमी-पुत्र से पहले रखना और भी दुष्कर प्रतीत होता है। पुराणों में इन राजाओं के क्रम के सम्बन्ध में भिन्न प्रकार का उल्लेख मिलता है।[3] शिव श्री आपिलक के सिक्कों से ऐसा लगता है कि पुराणों में प्रायः ऐतिहासिक राजवंशों का कालक्रम इधर-उधर कर दिया गया है। इन सिक्कों को श्री दीक्षित ने बाद के सातवाहनों से सम्बद्ध किया है, जबकि पुराणों मे इन्हें और पहले रक्खा गया है।[4] जहाँ तक सातवाहन-वंश के मूल स्थान का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में

१. ३०० वर्ष की अवधि (वायु पुराण) में श्रीपर्वतीय आन्ध्र (*DKA*, 46) का भी उल्लेख मिल सकता है। फिर भी आन्ध्र-वंश का अन्त तीसरी शताब्दी में कहा जाता है। कदम्बों के अभ्युदय तक शातकर्णि-राजवंश कुन्तल में रहा। इस प्रकार पुराणों का यह उल्लेख ठीक मालूम होता है कि इस समूचे राजवंश में ३० राजा हुए थे तथा उन्होंने चार या साढ़े चार सौ वर्ष तक राज्य किया था।

२. *DKA*, p. 36. पार्जिटर ने पृ० २०-२५ में पुराणों में राजाओं के इधर-उधर रक्खे जाने के अन्य उदाहरण भी दिये है।

३. See pp. 104, 115 f. *ante.*

४. See '*Advance*' Marh 10, 1935, p. 9. ये सिक्के महाकोशल सोसायटी ऑफ़ रायपुर (C.P.) के हैं। इनमें एक ओर हाथी का चित्र तथा ब्राह्मी अक्षर हैं, और दूसरी ओर बिलकुल सादा है। इन सिक्को के आधार पर इस राजा का शासन-काल श्री के० एन० दीक्षित के अनुसार उक्त राजवंश के बाद के राजाओं के समय में हो सकता है, न कि आरम्भ के राजाओं के समय में। कुन्तल के हाल के समय के लिये देखिये, *R. C. Bhandarkar Com. Vol.*, 189. राधा के उल्लेख के लिए देखिये सप्तशतकम् (*Ind. Ant.*, III. 25 n)।

श्री० के० पी० चट्टोपाध्याय ने मत्स्य तथा वायु पुराणों की क्रमहीनता आदि के आधार पर निम्नलिखित तथ्य दिये हैं—(१) पिता एवं पुत्र, दो

काफ़ी मतभेद है। कुछ विद्वान् ऐसा समझते हैं कि सातवाहन लोग आन्ध्र-वंश के नहीं थे, वरन् वे आन्ध्र-भृत्य-वंश या आन्ध्र-वंश के राजाओं के नौकर-चाकरों

सातवाहन-शासकों का एक ही समय में शासन, (२) चचेरे भाई-बहनों में विवाह; तथा (३) उत्तराधिकार के प्रश्न पर मातृपक्ष की प्रधानता (इसके लिये देखिये *JASB*, 1927, 503 ff and 1939, 317-339)। श्री के० पी० चट्टोपाध्याय की राय में पुराणों में इस सम्बन्ध में जो भूलें रह गई हैं, वे इनके सम्पादकों की ग़लती से नहीं रही हैं (1927, p. 504)। पुराणों की सूची की व्याख्या, मत्स्य पुराण के मूल उल्लेख की सहायता से ही की जानी चाहिए। मत्स्य पुराण के उल्लेख में गौतमी-पुत्रों तथा वाशिष्ठी-पुत्रों की सूची दी गई है। संशोधित पाठ (वायु तथा ब्रह्माण्ड) में गौतमी-पुत्रों की पूरी सूची रखी ज़रूर गई है, किन्तु कुछ नाम हटा दिये गये हैं। शायद पुराणों का संशोधित पाठ तैयार करने वालों ने हटाये गये नामों को इस योग्य नहीं समझा कि वे सूची में रहने दिये जायँ (*Ibid.*, p. 505)। जिन राजाओं के नाम (जैसे, वाशिष्ठी-पुत्र पुलुमावि) वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों से हटा दिये गये हैं, वे सम्भवतः गौतमी-पुत्र वर्ग के हैं। जिन राजाओं के नाम रखे गये हैं, उनके उत्तराधिकार तथा कालक्रम में परस्पर विरोधाभास-सा है। उदाहरणार्थ, गौतमी-पुत्र शातकर्णि के बाद उसका पुत्र पुलुमावि गद्दी पर नहीं बैठा था, वरन् एक दूसरा गौतमी-पुत्र गद्दी पर बैठा था, और वह था यज्ञश्री (p. 509)। सातवाहनों के सिक्कों से राजा की उपाधि तथा मातृपक्ष की सूचना प्राप्त होती है। इस वंश का तीसरा राजा नानाघाट के शिलालेख वाला श्री शातकर्णि था। इसलिये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सिर्फ़ तीसरे राजा को छोड़कर बाक़ी सभी के सिक्कों में राजा की उपाधि तथा मातृ-सम्बन्ध का उल्लेख साथ-साथ मिलता है। दूसरे शब्दों में उस समय उत्तराधिकार मातृपक्ष को प्रधानता देकर निश्चित किया जाता था (p. 518)। लड़के का लड़का विजित देशों का अधिकारी तथा बहन का लड़का पैतृक राजपाट का अधिकारी होता था।

इस टिप्पणी में इतना स्थान नहीं मिल सकता कि श्री चट्टोपाध्याय के कथन की विशद व्याख्या की जा सके; और न तो यहाँ यही सम्भव है कि माता-पिता के अधिकारों, वैवाहिक सम्बन्धों तथा सातवाहन-वंश के उत्तराधिकार-संबन्धी नियमों को ही विस्तृत रूप से दिया जाय। यहाँ केवल इस प्रसिद्ध राजवंश की मुख्य-मुख्य बातें ही दी जा सकती हैं। पार्जिटर (*Dynasties of the Kali Age*, pp. 35 ff) द्वारा व्याख्या की गई पुराणों की सूची के अध्ययन से स्पष्ट

के वंश से ही सम्बन्धित थे । इन्हें मूलतः कनेरी (Kanarese) भी कहा जाता है ।

हो जायगा कि पुराणों की सूची में जो कमियाँ रह गई हैं, उन्हें श्री चट्टोपाध्याय के सुझावों के आधार पर बड़ी आसानी से दूर या हल किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, यह नहीं कहा जा सकता कि गौतमी-पुत्र (No. 23) का नाम सभी मत्स्य-पाण्डुलिपियों तथा वायु पुराण की पाण्डुलिपियों में रखा ही गया है । यह भी नहीं कहा जा सकता कि गौतमी-पुत्र के लड़का पुलुमावि (No. 24) जो कि वाशिष्ठी-पुत्र भी माना जाता है, का नाम मत्स्य पुराण में है, किन्तु वायु पुराण के संशोधित पाठों में नहीं है । पुलुमावि एक ओर मत्स्य की e, f और l पाण्डुलिपियों में नहीं हैं, किन्तु विष्णु पुराण और भागवत पुराण की सूचियों में हैं । वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों के संशोधित पाठों में बहन के लड़के के उत्तराधिकार के सम्बन्ध मे भी नकारात्मक उल्लेख ही मिलते हैं । पुराणों में प्रथम श्री शातकर्णि, शातकर्णि-द्वितीय, लम्बोदर तथा यज्ञश्री के भी उल्लेख है (*DKA*, p. 39, fn. 40, 44; p. 42, fn. 12) । मत्स्य पुराण में 'ततो' (*DKA*, 39) शब्द आया है । इस शब्द के द्वारा शातकर्णि-प्रथम तथा पूर्णोत्संग का सम्बन्ध दिखाया गया है । इस शब्द के साथ ही साथ 'तस्यापि पूर्णोत्संगः' शब्द (विष्णु पुराण, IV. 24, 12) भी आया है । इसके अलावा 'पौर्णमासस्तु तत सूतः' (भागवत पुराण, XII. 1. 21) भी आया है । इससे सिद्ध है कि पूर्णोत्संग-पौर्णमास, शातकर्णि-प्रथम का ही पुत्र तथा तत्कालीन उत्तराधिकारी था, न कि यह कि वह इसी वंश के किसी बहुत बाद या दूर के राजा से सम्बन्धित था । यहाँ पर चट्टोपाध्याय का यह मत नहीं स्वीकार किया जा सकता कि वह नानाघाट-रिकॉर्ड का 'वेदिश्री' था । किन्तु, के० शास्त्री के अनुसार, 'वेदिश्री' नाम भी ग़लत है । शुद्ध नाम है—'खन्दसिरि' या 'स्कन्दश्री' । यह राजकुमार सम्भवतः पुराणों की सूची के पाँचवें राजा पूर्णोत्संग का उत्तराधिकारी था । इसलिये यह नहीं माना जा सकता कि यह राजा कभी गद्दी पर बैठा ही नहीं था (*JASB*, 1939, 325) । पूर्णोत्संग कोई दूसरा राजकुमार भी हो सकता है । सातवाहन-वंश में एक राजकुमार ऐसा था जो नामरहित था, या उसे 'हकुसिरि' (शक्तिश्री) कहा जाता था । यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि मत्स्य पुराण के एक अनुच्छेद में इस वंश में १९ राजा बताये गये हैं ।

गौतमी-पुत्र तथा वाशिष्ठी-पुत्र राजाओं ने अलग-अलग भूभागों पर राज्य नहीं किया । गौतमी-पुत्र शातकर्णि को 'मूलक का राजा' (Raja of Mulak)

श्री ओ० सी० गांगुली[१] ने संकेत किया है कि कुछ प्रकार के तत्कालीन साहित्यों

कहा जाता था। इसी भूभाग पर पुलुमावि ने भी शासन किया था। गौतमी-पुत्र तथा उसके उत्तराधिकारी 'दक्षिणापथपति' को उपाधि भी धारण करते थे।

इस वंश के तीसरे राजा के अलावा सभी राजाओं के सिक्कों में शाही उपाधि तथा मातृपक्ष का परिचय रहता था, इसकी पुष्टि अन्य उपलब्ध सामग्रियों से नहीं हो पाती। म्याकदोनी (Myakadoni) शिलालेखों में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता (*Ep. Ind.*, XIV, pp. 153 ff.)। पर हमें 'रञो सातवाहनानंसिरिपुलुमऽविस' तथा 'रञो सिरि चउसातिस' (Rapson, *Andhra Coins*, p. 32) के उद्धरण भी प्राप्त हैं। जहाँ तक वैवाहिक संबंधों का प्रश्न है, श्री शातकर्णि-प्रथम की पत्नियों और कन्हेरी-शिलालेख के वाशिष्ठी-पुत्र श्री शातकर्णि के उल्लेखों मे श्री चट्टोपाध्याय के मत की पुष्टि नहीं होती। यह अवश्य है कि उस समय के राजा कई विवाह करते थे। किन्तु, कई रानियों में कोई न कोई चचेरी बहन भी हो सकती है, ऐसा केवल अनुमान मात्र है। विवाहों की ओर केवल संकेत मात्र किया गया है तथा इन उल्लेखों के इस प्रसंग में इक्ष्वाकु का नाम भी लिया गया है। भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ कि रानियाँ या शाही परिवार के अन्य व्यक्ति मातृपक्ष के साथ अधिक महत्त्व जोड़ते थे (*Cf.* उभयकुलालंकारभूता, प्रभावती, *JASB*, 1924, 58)। क्या सातवाहन से नायनिका का कोई सम्बन्ध मिलता है? *JASB* (1939, p. 325) में विवाहों से सम्बन्धित जो तालिका दी गई है, उससे शातकर्णि (No. 6 of the list) नायनिका का भाई, शातकर्णि (No. 3 of the list) का Brother-in-law तथा महारथी त्रनकयिरो का लड़का सिद्ध होता है। किन्तु, नानाघाट-रिकॉर्ड से इसका खण्डन हो जाता है और महारथी का अंगिय (या आंभीय) कुलवर्धन के रूप में उल्लेख किया गया है।

पुराणों के अनुसार, दोनों शातकर्णि, सिमुक सातवाहन के ही वंश के थे। गौतमी बलश्री, जो कि बाद में शिवस्वाति की बहन सिद्ध होती है (*JASB*, 1927, 590), उसने अपनी स्थिति 'वधू-माता' या 'पितामही' के रूप में ही बतलाई है। उसने अपने को एक बार भी नहीं कहा कि वह किसी राजवंश से सम्बन्धित है।

१. *JAHRS*, XI, pp. 1 and 2, pp. 14-15. आन्ध्र-वंश ने संगीत की एक लय का आविष्कार किया था, जिसे 'आंध्री' कहते हैं। सातवाहनों द्वारा आविष्कृत लय का नाम 'सातवाहनी' है। इनका उल्लेख 'बृहद्देशी' में मिलता है।

में आन्ध्र तथा सातवाहन वंश के बीच अन्तर स्पष्ट किया गया है। Epigraphia Indica[1] में डॉक्टर सुकथांकर ने सातवाहनों के राजा सिरि-पुलुमावि के शिला-लेख का सम्पादन किया है। इसमें 'सातवाहनिहार'[2] नामक स्थान का उल्लेख आया है। पल्लव राजा शिवस्कन्दवर्मन के एक ताम्रपत्र पर अंकित एक लेख में भी उक्त स्थान का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह लेख 'साताहनि रट्ठ' लेख से कुछ भिन्न है। डॉक्टर सुकथांकर का कहना है कि सातवाहनि-साताहनि राज्य में सम्भवतः मद्रास प्रेसीडेंसी का बेलारी जिला रहा होगा और सम्भवतः यही सातवाहन-वंश का मूल स्थान भी था। कुछ अन्य संकेतों के अनुसार सातवाहन-शातकर्णि-राजवंशों का मूल स्थान मध्यप्रदेश के दक्षिण में रहा होगा। 'विनय-पाठ'[3] (Vinaya Text) में 'सेतकन्निका' नाम के एक नगर का उल्लेख आया है। यह नगर मज्झिम-देश की दक्षिणी सीमा पर स्थित था। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि शातकर्णि-वंश के समय के कुछ रिकार्ड उत्तरी दक्कन और मध्यभारत में प्राप्त हुए हैं। हाथीगुम्फा-शिलालेखों में भी इसका कुछ उल्लेख मिलता है। यह राजवंश बिहार या 'पश्चिम के भी रक्षक' माने जाते थे। इस वंश का नाम सम्भवतः आन्ध्र तभी पड़ा, जबकि इसके उत्तरी और पश्चिमी भूभाग छिन गये और यह केवल आन्ध्र तक ही सीमित रह गया। यह भूभाग कृष्णा नदी[4] के तट पर स्थित था। सातवाहनों ने कभी भी अपने को आन्ध्र-वंश का नहीं कहा।

१. Vol. XIV. (1917)।

२. See also *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1918-19, p. 21, '*On the Home of the so-called Andhra Kings*.'—V.S. Sukthankar. *Cf. JRAS*, 1923, 89f.

३. *SBE*, XVII, 38.

४. जब कुलोत्तुंग-प्रथम चोल-सिंहासन पर बैठा तो पूर्व के चालुक्य, चोल बन गये। शातकर्णि और सातवाहन के नाम और उनकी उत्पत्ति के लिए देखिये *Camb. Hist. Ind.*, Vol. I, p. 599n; *JBORS*, 1917, December, p. 442n; *IHQ*, 1929, 338; 1933, 88, 256; and *JRAS*, 1929, April; and *Bulletin of the School of Oriental Studies*, London, 1938, IX, 2. 327f. बार्नेट और जायसवाल ने इन दोनों को एक में करने का प्रयास किया है। इन सब के लिए देखिये—Aravamuthan, *The Kaveri, the Maukharis*, p. 51n. (*Karni*=ship; *Vahana*=Oar or Sail); Dikshitar, *Indian Culture*, II, 549 ff.

इस धारणा के पीछे भी पर्याप्त आधार है कि आन्ध्र, आन्ध्र-भृत्य या सातवाहन वंश के लोग ब्राह्मण थे। निस्सन्देह उनमें नाग-रक्त भी था। 'द्वात्रिंशत पुत्तलिका' में सालिवाहन (या सातवाहन) को ब्राह्मण और नागवंश[1] का मिश्रण कहा गया है। इन लोगों का नाग-सम्बन्ध नागनिका[2] तथा स्कन्द-नाग-शतक नामों के कारण ही सम्भवतः बताया जाता है जबकि ब्राह्मणों का उल्लेख भी एक शिलालेख में मिलता है। गौतमी-पुत्र शातकर्णि की 'नासिक-प्रशस्ति' में राजा को 'एक बम्हण', अर्थात् 'अद्वितीय ब्राह्मण' कहा गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार ब्राह्मण केवल हिन्दुओं की एक जाति मात्र थे; किन्तु यह कथन स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि गौतमी-पुत्र को 'खतिय-दप-मान-मदन' अर्थात् 'क्षत्रियों का मान मर्दन करने वाला' कहा जाता है। यदि 'एक बम्हण' वाले उद्धरण के साथ ''खतिय-दप-मान-मदन' का उल्लेख भी पढ़ा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन-वंश का गौतमी-पुत्र केवल ब्राह्मण[3] ही नहीं था, वरन् वह ऐसा ब्राह्मण था, जैसे कि परशुराम। परशुराम ने भी क्षत्रियों

---

१. *Cf. EHD*, Sec. VII.

२. Buhler, *ASWI*, Vol. V, p. 64 n 4.

३. *Indian Culture*, I, pp. 513 ff; and *Ep. Ind.*, XXII. 32ff. कुमारी भ्रमर घोष तथा डॉक्टर भण्डारकर 'एक बम्हण' तथा 'खतिय-दप-मान-मदन' की वह व्याख्या नहीं स्वीकार करते जो कि सेनार्ट और बूहलर (Senart & Buhler) ने प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि 'बम्हण' शब्द 'ब्रह्मण्य' भी हो सकता है। 'खतिय' शब्द क्षत्रियों के लिए नहीं, वरन् किसी खत्रिओई (Xathroi or Khatriaioi) नामक जाति के लिए आया है। इसी प्रकार इन विद्वानों के मतानुसार, गौतमी बलश्री को 'राजर्षि-वधू' भी कहा गया है, जिससे सिद्ध होता है कि सातवाहन राजाओं ने स्वयं भी कभी अपने को 'ब्रह्मर्षि' नहीं कहा। यह कोई भी नहीं कहता कि सातवाहन राजा केवल ब्राह्मण साधु ही थे। यह कहना भी कि 'ब्राह्मण' और 'क्षत्रिय' शब्द किन्हीं अब्राह्मण और गैर-क्षत्रिय जातियों को कहा जाता था, अनुमान से परे लगता है। जहाँ तक 'राजर्षि-वधू' का सम्बन्ध है, इस शब्द के कारण ही किसी राजवंश को ब्राह्मण या अब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। 'राजर्षि' शब्द केवल अब्राह्मण राजाओं के लिए ही प्रयोग में आता रहा हो, यह भी साधारणतया नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ, पद्म पुराण (पाताल-खण्डम्, 61-73) में दधीचि को 'राजर्षि' कहा गया है। वायु पुराण में 'ब्रह्म-क्षत्रमया नृपाः' (ब्रह्म-क्षत्रादयो

के अभिमान को चूर किया था। जिस प्रशस्ति की ऊपर चर्चा की गई है; उसमें तत्सम्बन्धी राजा को राम के समान ही शक्तिमान् बताया गया है।[1]

पुराणों के अनुसार सिमुक (सी० ६०-३७ ईसापूर्व) ने ही शुङ्ग-कण्व-सत्ता को अन्तिम रूप से समाप्त किया है। सिमुक के बाद उसका भाई कृष्ण गद्दी पर बैठा था (सी० ३७-२७ ईसापूर्व)। इस राजा के नाम की एकरूपता सातवाहन-कुल के राजा 'कान्ह' से की गई है। यह नाम नासिक-शिलालेख में मिलता है। रिकार्डों से यह पता चला है कि राजा कान्ह के समय में नासिक के किसी ऊँचे अधिकारी (श्रमण महामात्र) ने एक गुफा बनवायी थी।

पुराणों के अनुसार कान्ह-कृष्ण के बाद शातकर्णि (सी० २७-१७ ईसापूर्व) गद्दी पर बैठा। इस शातकर्णि के बारे में निम्न तथ्य विचारणीय हैं--

नृपाः—मत्स्य-लेख (143, 37 : 40) के पाठ के अनुसार) का उल्लेख है। मत्स्य पुराण (50, 57) में राजर्षि की उपाधि मौद्गल्य-वंशी राजाओं को मिलती है। इन राजाओं को 'क्षत्रोपेता द्विजातयः' भी कहा जाता था। इनमें से एक को 'ब्रह्मिष्ठः' कहा जाता था।

पुराणों में यह भी कहा गया है कि आन्ध्र-वंश की स्थापना करने वाले लोग 'वृषल' थे (*DKA*, 38)। इसकी व्याख्या महाभारत में भी मिलती है। महाभारत (XII, 63. 1ff.) में कहा गया है कि शत्रु के विनाश के लिए ब्राह्मण को धनुष-वाण नहीं उठाना चाहिए। ब्राह्मण को राजसेवा नहीं स्वीकार करनी चाहिए। जो ब्राह्मण 'वृषली' से विवाह करता है, या राजसेवा स्वीकार करता है, वह 'ब्रह्म-बन्धु' हो जाता है। वह शूद्र हो जाता है, सातवाहनों ने शत्रु के विनाश के लिए शस्त्र भी उठाया था और साथ ही साथ शकों व द्रविड़ों से ही नहीं, वरन् मौर्यों की तरह यवनों से भी विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया था।

१. यहाँ बलदेव के प्रसंग में 'राम' शब्द का प्रयोग करके अभिव्यक्ति को अलंकृत किया गया है। 'बल' के स्थान पर 'राम' का प्रयोग विचारणीय है (*Cf.* नलकेशव—हरिवंश पुराण; विष्णु पर्व, 52, 20)। 'एक बम्हण' शब्द को इस प्रसंग में लाने का अर्थ सम्भवतः भृगुराम और परशुराम की तुलना थी। शस्त्रधारी राजा अपने को ब्राह्मण कहे और क्षत्रियों से युद्ध करे, इसका अर्थ परशुराम से तुलना ही है—प्रशस्ति—देखिये 'भृगुपतिरिव क्षत्र-संहारकारिन्' के लेखक का भी यही उद्देश्य रहा होगा। यह कथन चित्तौरगढ़-शिलालेख (१२७४ ई० पू०) के अम्बाप्रसाद पर भी लागू होता है।

१. यह शातकर्णि, नायनिका के नानाघाट-शिलालेख में आया सिमुक का लड़का या भतीजा तथा दक्कन का राजा 'दक्षिणापथपति' शातकर्णि था।[1]

२. यह शातकर्णि पश्चिम का राजा था तथा इसकी रक्षा कलिंग के राजा खारवेल ने की थी।

३. यह साँची-शिलालेख वाला राजन् श्री शातकर्णि था।

४. पेरिप्लस (Periplus) में भी इस राजा का उल्लेख है।

५. भारतीय साहित्य में इस शातकर्णि को प्रतिष्ठान का राजा तथा शक्ति-कुमार का पिता कहा गया है।

६. सिक्कों में 'सिरि-सात' के रूप में इसका उल्लेख आया है।[2]

उपर्युक्त प्रथम, पंचम् तथा षष्ठम् से प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं। दूसरा तथ्य भी सम्भव हो सकता है, क्योंकि पुराणों में इस शातकर्णि को कण्व के बाद कृष्ण का उत्तराधिकारी कहा गया है। इसका समय ईसापूर्व की पहली शताब्दी बताया गया है। हाथी गुम्फा-शिलालेख में खारवेल का समय नन्द राजा से ३०० वर्ष पूर्व निश्चित किया गया। यह समय भी ईसापूर्व की पहली शताब्दी में ही पड़ता है।

ऊपर दिये गये तथ्यों में से मार्शल को साँची के शिलालेखों के बारे में इस आधार पर आपत्ति है कि जिस श्री शातकर्णि का उल्लेख नानाघाट और हाथी-गुम्फा के शिलालेखों में है, उसने ईसापूर्व को दूसरी शताब्दी के मध्य में राज्य किया था। उस समय साँची (पूर्वी मालवा) उसके राज्य में नहीं था, क्योंकि दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में साँची के समीपवर्त्ती क्षेत्र में शुङ्ग-वंश का राज्य था, न कि आन्ध्र-वंश[3] का। किन्तु, हम यह भी जानते हैं कि हाथीगुम्फा-शिलालेख ईसापूर्व की पहली शताब्दी का है, या यों कहिये कि नन्दराज के तीन सौ वर्ष

१ विद्वानों की सामान्य धारणा है कि शातकर्णि-प्रथम सिमुक का ही पुत्र था। पुराणों के कथनानुसार यदि वह सिमुक का भतीजा या कृष्ण का पुत्र था, तो यह बताना कठिन हो जाता है कि आखिर इस वंश की वंशावली में कृष्ण का नाम क्यो नहीं रखा गया, जबकि वंशावली में सिमुक और शातकर्णि की रानी के पिता का नाम तक लिखा मिलता है। इस सम्बन्ध में भावी अनुसंधानों के आधार पर ही कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

२. Rapson, *Andhra Coins*, p.xcii; CHI, 531.

३. *A Guide to Sanchi*, p. 13.

बाद का है। पुराणों में भी नानाघाट-शिलालेख में उल्लिखित राजाओं को कण्व-वंश के पूर्व का कहा गया है, अर्थात् ईसापूर्व की पहली शताब्दी में रक्खा गया है। इस समय तक शुङ्ग-वंश का शासन समाप्त हो चुका था। इसलिए ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के पूर्वी मालवा के इतिहास से इस कथन का कोई विरोध नहीं प्रतीत होता है कि सातवाहन-वंश के राजा कृष्ण का उत्तराधिकारी शातकर्णि राजा वही है जिसका साँची के शिलालेख में उल्लेख आया है। इसलिए अब यह स्वाभाविक हो गया कि प्रथम शातकर्णि को केवल शातकर्णि या पूर्व-शातकर्णि कहा जाय। इसी प्रकार बाद के शातकर्णि राजाओं के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपना नामकरण क्षेत्रीय आधार पर करें। कुन्तल, गौतमी-पुत्र तथा वाशिष्ठी-पुत्र आदि नाम इसी आधार पर रखे गये हैं।

नानाघाट-शिलालेख[१] से हमें यह भी पता चलता है कि सिमुक के लड़के शातकर्णि ने अंगिय या आंभीय वंश से वैवाहिक सम्बन्ध किया था। इस वंश के राजाओं को महारथी कहा जाता था। कुछ दिन बाद तो वे पूरे दक्षिणापथ के अधिपति हो गये थे। ऐसा लगता है कि इस वंश के लोगों ने पूर्वी मालवा पर भी अपना अधिकार कर लेने के बाद अश्वमेध यज्ञ किया था। इस वंश द्वारा पूर्वी मालवा विजय करने का निष्कर्ष कदाचित् सिक्कों तथा साँची के लेखों के फलस्वरूप ही निकाला गया है। पुराणों में कहा गया है कि 'शुङ्ग-भृत्य' काण्वायन-वंश के शासन-काल के बाद धरती[२] का राज्य आन्ध्र-वंश के हाथ चला जायेगा। तत्सम्बन्धी शिलालेख में राजन् श्री शातकर्णि[३] के एक कलाकार वसीठि के पुत्र आनन्द को दिये गये दान की चर्चा की गई। सातवाहन-वंश में शातकर्णि कदाचित् पहला शासक था जिसने सातवाहनों को समूचे विन्ध्य-क्षेत्र का एकछत्र शासक बना दिया। इस प्रकार गोदावरी की घाटी में सातवाहनों का पहला राज्य स्थापित हुआ, और गंगा की घाटी के शुङ्ग-साम्राज्य तथा

१. *ASI*, 1923-24, p. 88.

२. उदाहरणार्थ, पूर्वी मालवा में विदिशा-क्षेत्र। विदिशा और शुङ्ग के सम्बन्ध के लिए Pargiter, *DKA*, 49 देखिये। शुङ्गों में काण्वायन लोग राजा हो गये थे (Shungeshu, *DKA*, 34), विदिशा-क्षेत्र में ही (*Cf.* also Tewar Coins, *IHQ*, XXVIII, 1952, 68 f)।

३. श्री सात के गोल सिक्कों से ही पश्चिमी मालवा की जीत का आभास मिलता है (Rapson, *Andhra Coins*, xcii-xciii)।

पंजाब की पंचनद भूमि के अधिष्ठाता यवनों के समकक्ष शक्तिशाली माना जाने लगा। भारतीय शास्त्रकारों[1] के अनुसार सातवाहनों की मुख्य राजधानी प्रतिष्ठान थी [आजकल इस स्थान का नाम पैठाना (Paithan) है] तथा यह स्थान औरंगाबाद ज़िले (हैदराबाद) में गोदावरी के उत्तरी तट पर बसा हुआ था।

शातकर्णि की मृत्यु के बाद, महारथी त्रनकयिरो कललाय की पुत्री उसकी पत्नी नायनिका (नागनिका) अपने नाबालिग़ राजकुमार वेदश्री की अभिभावक (regent) नियुक्त हुई थी। सम्भवतः वेदश्री को ही खण्डश्री या स्कन्दश्री कहा जाता है। इस राजकुमार के अलावा भी शक्तिश्री तथा हकुश्री दो और राजकुमार थे। जैन-ग्रन्थों[2] में सम्भवतः शक्तिश्री को ही शालिवाहन-पुत्र शक्तिकुमार भी कहा गया है।

पूर्ववर्त्ती सातवाहन

सातवाहन-कुल
- राया (राजा) सिमुक सातवाहन
  - पुत्र या भतीजा शातकर्णि-प्रथम, दक्षिणापथ का राजा
- कृष्ण

अंगिय (आंभीय) कुल
- कललाय महारथी अंगिय (आंभीय) कुल वर्धन महारथी त्रनकयिरो[3]
  - देवी नायनिका
    - कुमार सातवाहन, और भाय
    - वेदश्री (खण्डश्री या स्कन्दश्री)[4]
    - शक्ति श्रीमत
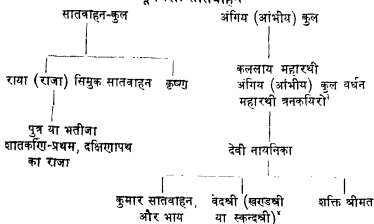
१. जिनप्रभासूरि, तीर्थकल्प, *JBBRAS*, X, 123; Ptolemy, *Geography*, XII, 1. 82; देखिये 'आवश्यक सूत्र' भी, *JBORS*, 1930, 290; Sir R. G. Bhandarkar, *FHD*, See VII.

२. वीरचरित, *Ind. Ant.*, XIII, 201; *ASWI*, V, 62n.

३. Rapson, *Andhra Coins*, p. 57 में कललाय महारथी को सदकन (या शातकर्णि) कहा गया है। उसका एक नाम त्रनकयिरो था, जिससे 'तनक' शब्द याद आता है, जो आन्ध्र के १८वें राजा का नाम था (Pargiter's list, *DKA*, 36, 41)।

४. *ASI. AR.*, 1923-24, p. 83; A. Ghosh, *History of Central and Western India*, 140. श्री घोष के अनुसार, वह पौराणिक सूची का पाँचवाँ राजा था।

ईसापूर्व की पहली शताब्दी में सातवाहन-वंश ही अकेला मगध-साम्राज्य का शत्रु नहीं था। हाथीगुम्फा-शिलालेख से पता चलता है कि जब पश्चिम में शातकर्णि शासन कर रहा था तो इधर कलिंग के राजा खारवेल ने उत्तर भारत की ओर अपनी सेना को बढ़ाया और राजगृह के राजा को पराजित किया।

खारवेल, चेतवंश से सम्बन्धित था। श्री आर० पी० चन्दा के अनुसार वेस्सन्तर जातक (Vessantara Jataka)[1] में चेतवंशी राजकुमारों का उल्लेख मिलता है। मिलिन्दपञ्ह में ऐसा उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि चेत लोग चेति या चेदि वंश से सम्बन्धित थे। इस ग्रन्थ में चेत लोगों के बारे में जो तथ्य दिये गये हैं, वे चेत राजा सुर परिचर के बारे में उपलब्ध तथा चेदि राजा उपरिचार के सम्बन्ध में मिले विवरण ने काफ़ी मेल खाते हैं।[2]

अशोक की मृत्यु के बाद से पहली शताब्दी ईसापूर्व तक चेतवंश का उदय हुआ और इस काल के कलिंग के बारे में बहुत थोड़े तथ्य मिल सके हैं। यह काल नन्द के समय से तीन सौ वर्ष बाद का समय था। हाथीगुम्फा-शिलालेख में चेतवंश के प्रथम दो[3] राजाओं का नाम साफ़-साफ़ नहीं मिलता। लूडर्स-लेख, संख्या १३४७ में वक्रदेव (वकदेपसिरि या कूदेपसिरि ?) नाम के राजा का उल्लेख आया है। किन्तु, इसके बारे में हम यह नहीं जानते कि यह राजा खारवेल के बाद हुआ था, या उसके पहले।

दूसरे राजा ने लगभग ६ वर्ष (सी० ३७-२८ ईसापूर्व) तक राज्य किया। उसके बाद खारवेल युवराज-पद पर आसीन हुआ था। जब वह २४ वर्ष की आयु का हो गया तो उसे कलिंग के महाराज के रूप में (सम्भवतः सी० २८ ईसापूर्व में) सिंहासनारूढ़ कर दिया गया। हस्थिसिंह के प्रपौत्र ललाक की

१. No. 547.

२. Rhys Davids, मिलिन्द; *SBE*, XXXV, p. 287; महाभारत, I. 63. 14; Sten Konow (*Acta Orientalia*, Vol. I. 1923, p. 38) का मत है कि हाथीगुम्फा-शिलालेख के अनुसार, *Ceti* (not *Ceta*) खारवेल-वंश की उपाधि थी।

३. 'पुरुष-युग' के लिए हेमचन्द्र का परिशिष्टपर्वन्, VII. 326—'गामी पुरुषयुगानि नव यावत्तवान्वयः' देखिये।

पुत्री खारवेल की मुख्य रानी या महारानी थी। अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में उसने अपनी राजधानी कलिंग नगर के फाटक और उसकी चहारदीवारी की मरम्मत करायी थी। दूसरे वर्ष (सी० २७ ईसापूर्व) में बिना शातकर्णि का ध्यान रखे हुए, उसने पश्चिम की ओर एक बड़ी सेना भेजी और सेना की सहायता से कृष्णवेणा पहुँच कर मुसिक (असिक) नगर पर अपना आतंक जमा लिया।[1] वह शातकर्णि के रक्षार्थ गया और सफलता के साथ वापस आकर उसने बड़ा उत्सव मनाया। अपनी इस सफलता के बाद उसने पश्चिम की ओर अपना प्रभुत्व और बढ़ाया। अपने शासन के चौथे वर्ष में उसने 'रठिकों' और 'भोजकों' को अपनी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य कर दिया। शासन के पाँचवें वर्ष में नंदराज द्वारा बनवाये गये उस जलमार्ग (या पुल) पर भी उसका अधिकार हो गया जो कि उसकी राजधानी की ओर जाता था।

अपनी दक्षन की सफलताओं से उत्साहित होकर कलिंगराज ने उत्तर की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई। यही नहीं, अपने राज्य-काल के आठवें वर्ष में उसने गोरथगिरि (गया के पास की पहाड़ियों) में तूफान-सा मचा दिया। उसने राजगृह[2] के राजा को भी आतंकित किया। यदि डॉक्टर जायसवाल के अनुसार इस राजा का नाम बृहस्पतिमित्र था तो इस बृहस्पति ने कण्व-वंश के बाद मगध पर राज्य किया था। अपने शासन के दसवे और बारहवें वर्ष में भी उत्तरी भारत पर उसके हमले होते रहे। कुछ विद्वानों के मत से अपने शासन के दसवें वर्ष में उसने भारतवर्ष के प्रदेशों का दमन किया। भारतवर्ष के देशों में मुख्यतः उत्तरी भारत के प्रदेश माने जाते थे। अपने राज्य-काल के १२वें वर्ष में

---

१. *Cf. Ep. Ind.*, XX. 79-87. डॉ० बरुआ इसको 'अश्वक' या '*Rsika*' पढ़ते हैं (*Old Brahmi Ins.*, p. 176., Asika, *IHQ*, 1938, 263)। डाक्टर थॉमस को भी मुसिक राजधानी का उल्लेख नहीं मिलता (*JRAS*, 1922, 83)। *Cf.* Buhler, *Indian Palaeography*, 39.

२. कुछ विद्वानों को हाथीगुम्फा-शिलालेख में यवनराज Demetrios का उल्लेख मिलता है। यह मथुरा के राजाओं का संकट दूर करने वहाँ गया था (*Acta Orientalia*, I. 27; *Cal. Rev.*, July, 1926, 153)। हो सकता है कि उक्त उल्लेख Demetrios के बारे में न होकर Diyumeta या Diomedes के बारे में हो (उदयगिरि और खण्डगिरि गुफाओं के शिलालेख, pp. 17-18; *IHQ*, 1929, 594, and Whitehead, *Indo-Greek Coins*, p. 36)।

उसने उत्तरापथ के राजाओं को परेशान करना आरम्भ किया और अपनी गज-सेना को गंगा में कुदा ही दिया।[1] उसके उत्तरी-पश्चिमी अभियानों का प्रायः कोई स्थायी परिणाम नहीं निकला। किन्तु, उत्तरी-पूर्वी अभियानों में कलिंग का राजा अधिक सफल हुआ। बार-बार के आक्रमणों से मगध भी काफ़ी त्रस्त था और अन्ततः मगध के राजा बृहस्पतिमित्र ने घुटने टेक ही दिये।

मगध-नरेश को पराधीन करने तथा अंग को हराने के बाद इस राजा ने एक बार फिर दक्षिण की ओर निगाह की। कहते हैं अपने शासन के ११वें वर्ष में उसने गधों से हल जुतवाया।[2] मसुलीपट्टम (मैसोलाइ) की राजधानी पिहुण्ड बताई गई है।[3] इस बात के उल्लेख भी मिलते हैं कि उसने और दक्षिण में, अर्थात् तमिल देश तक आक्रमण किया। उन दिनों उस देश के सबसे प्रसिद्ध राजा पांड्य-वंश के लोग थे। अपने शासन के १३वें वर्ष में खारवेल ने कुमारी (उड़ीसा में उदयगिरि) की पहाड़ी पर अपने स्तम्भ स्थापित किये। यह पहाड़ी खण्डगिरि के समीप ही थी।

३. उत्तर भारत में यूनानी प्रभुत्व का पतन

एक ओर सातवाहन व चेत राजवंशों के आक्रमणों व आतंक से मगध का साम्राज्य क्षीण हो रहा था तो दूसरी ओर उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानी शासकों का प्रभुत्व भी अस्ताचलगामी हो रहा था। डेमेट्रिओस तथा युक्राटीड्स के आपसी झगड़ों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। इन दो शासकों के फल-स्वरूप उत्तराधिकारियों की दो शाखायें भी साथ-साथ चलीं। डेमेट्रिओस के उत्तराधिकारी कपिशा के अधिकारी थे। इसके अलावा शाकल (सियालकोट) पर तथा अन्दरूनी भारत के काफ़ी हिस्से पर इन्हीं लोगों का प्रभुत्व था। इसके साथ-साथ नीसिया (Niceae)[4], तक्षशिला, पुष्करावती तथा अपोलोडोटस से जीती

१. कुछ विद्वानों को इसी स्थल पर 'मृगंगीय' राजमहल का उल्लेख भी मिलता है (*Ep. Ind.*, xx, 88)।

२. Barua Interprets the passage differently. But *Cf.* Nilakantha Shastri, *The Pandyan Kingdom*, p. 26.

३. *Ind. Ant.*, 1926, 145. महावीर के समय में समुद्र से यात्रा करने वाले व्यापारी नावों द्वारा चम्पा से 'पिहुण्ड' आते-जाते थे (*Cf.* महाभारत, I. 65, 67, 186; VII. 50)।

४. यह सम्भवतः झेलम नदी पर झेलम और चेनाब के मध्य स्थित था। इसे स्ट्रैटो-प्रथम से हेलियोक्लीज़ ने जीता था (*CHI*, 553, 699)।

गयी कपिशा पर यूक्राटीड्स के उत्तराधिकारियों का अधिकार था। रैप्सन और गार्डनर के अनुसार अपोलोडोटस, एन्टीमेकोस, पेन्टालिओन, आग्थोक्लीज, आग्थोक्लिया,[1] स्ट्रैटोस, मेनाण्डर, डायोनीसियस, जोइलोस[2], हिप्पोस्ट्रैटोस तथा अपोलोफ़ेन्स[3] सम्भवतः यूथीडेमोस और डेमेट्रिओस के वंश के थे। इनमें से अधिकांश राजाओं ने एक ही प्रकार के सिक्के चलाये थे।[4] विशेषतः एथीन (Athene) नाम की देवी का चित्र तो प्रायः सभी सिक्कों में मिलता था। पेन्टालिओन तथा आग्थोक्लीज के सिक्के भी प्रायः इसी प्रकार के थे।[5] इन दोनों के सिक्के निकिल धातु के होते थे। इसके अतिरिक्त ये लोग ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करते थे। इसलिए ऐसा लगता है कि ये आपस में भाई-भाई ही थे। यह भी असम्भव नहीं है कि आग्थोक्लिया इनकी बहन ही रही हो।[6] आग्थो-

१. आग्थोक्लिया सम्भवतः मेनाण्डर की रानी थी (*CHI*, 552)। किन्तु, इसके समर्थन में प्राप्त सामग्री स्पष्ट नहीं है (*Contra* Heliokles and Leodike, Hermaios and Kalliope)। *Cf.* Whitehead in *Numismatic Chronicle*, Vol. XX, (1940), p. 97; 1950, 216.

२. अपोलोडोटस फ़िलोपेटर, डायोनीसियस, और जोयलोस के एक ही प्रकार के चिह्न सिक्कों पर मिलते हैं। इनके तमाम सिक्के सतलज-क्षेत्र में मिलते है। पठानकोट और शाकल में जोयलोस के सिक्के मिले हैं। (*JRAS*, 1913, 645nl; *JASB*, 1897, 8; Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 316 f)।

३. अपोलोफ़ेन्स, जोडलोस और स्ट्रैटो के राजचिह्न प्रायः एक ही थे (Tarn, *Greeks*, 317)। पोलीज़ेनोस भी इसी वर्ग से सम्बद्ध है (p. 318)। ह्वाइटहेड, पोलीज़ेनोस को स्ट्रैटो-प्रथम का सम्बन्धी मानता है (*Indo-Greek Coins*, 54n)। इसके बाद के शासक पूर्वी पंजाब से सम्बन्धित थे (*EHI*, 4th ed., pp. 257-58)। See also Tarn, *Alexander the Great*, Sources and Studies, 236.

४. See H. K. Deb, *IHQ*, 1934, 509 ff.

५. Dancing girl in oriental costume according to Whitehead; Maya, mother of the Buddha, in the nativity scene according to Foucher (*JRAS*, 1919. p. 90)।

६. आग्थोक्लिया सम्भवतः स्ट्रैटो-प्रथम की माँ रही हो या रानी। यह भी हो सकता है कि वह स्ट्रैटो-द्वितीय की दादी रही हो (*JRNS*, 1950, 216)।

क्लीज (सम्भवतः एन्टीमेकोस) ने सिकन्दर, एन्टियोकोस, निकेटर डायोडोटस सोटर, यूथीडेमोस तथा डेमेट्रिओस एनिकेटोस की स्मृति में भी सिक्के जारी किये थे।[१]

अपोलोडोटस, स्ट्रैटोस, मेनाण्डर तथा बाद के कुछ राजाओं ने एथीन (Athene) देवी के चित्रों वाले सिक्के जारी किये थे। अपोलोडोटस तथा मेनाण्डर का नाम विभिन्न ग्रन्थों में भी मिलता है। Periplus of the Erythraean Sea के लेखक के अनुसार भारत में यूनानी शासन-काल के शिलालेखों में सिकन्दर, अपोलोडोटस और मेनाण्डर का मुख्य रूप से उल्लेख मिलता है। इसके बाद जस्टिन की विलुप्त ४१वीं पुस्तक में मेनाण्डर और अपोलोडोटस को भारतीय राजा कहा गया है।[२] मिलिन्दपञ्ह में कहा गया है कि जिस वंश का मेनाण्डर था, उस राजवंश की राजधानी शाकल या सागल थी।[३] भूगोलवेत्ता तोलेमी के अनुसार इस नगर का नाम यूथिमीडिया या यूथिडीमिया था। यह नाम सम्भवतः यूथिडीमियन-वंश के नाम पर ही रखा गया था। शिनकोट का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसमें महाराजा मिनाद्र (या मेनाण्डर) के शासन-काल के ५वें वर्ष का उल्लेख मिलता है। उक्त उल्लेख में कहा गया है कि अपने शासन-काल के ५वें वर्ष में मेनाण्डर ने सिन्ध नदी के पार भी भारत के एक बड़े भूभाग पर कब्जा कर लिया था। कपिशा और नीसिया (Nicaea) के सिक्कों से इस बात का संकेत मिलता है कि यूथिमीडियन-वंश के शासकों ने किस प्रकार धीरे-धीरे भारत के अन्दरूनी भागों पर अधिकार जमा लिया था। ये लोग अपनी राजधानी शाकल ले आये थे।

यूथिमीडियन-वंश के प्रतिद्वन्द्वी यूक्राटीड्स लोग थे। इस वंश के मुख्य शासकों में हेलियोक्लीज तथा एन्टियलकिडस का नाम मुख्य है। ये लोग लीसिया

---

१. Acoording to Tarn (447 f) the fictitious Seleukid pedigree is the key to the (pedigree) coin series of Agathokles, the Just.

२. Rhys Davids, मिलिन्द; *SBE*, 35, p. xix; *Cf. JASB*, Aug., 1833,

३. "अत्थि योनकानम् नानापुटभेदनम् सागलन्नाम नगरम्," "जम्बूदीपे सागल नगरे मिलिन्दो नाम राजा अहोसि"। "अत्थि खो नागसेन सागलम् नाम नगरम्, तत्थ मिलिन्दो नाम राजा रज्जम् कारेति।" देखिये पाणिनि, IV. 2. 131.

प्रदेश पर संयुक्त रूप से शासन करते थे। इस तथ्य की पुष्टि में काफ़ी सामग्री मिली है कि एन्टियलकिडस यूक्राटोड्स-वंश से सम्बन्धित था। गार्डनर के अनुसार उसका चित्र हेलियोक्लीज़ से मिलता-जुलता है। यह भी असम्भव नहीं कि हेलियोक्लीज़ के बाद एन्टियलकिडस हुआ था।[१] बेसनगर के शिलालेख के अनुसार उसे विदिशा के काशीपुत्र भागभद्र का समकालीन भी माना जाता है। सम्भवतः इस राजा ने अग्निमित्र के बाद ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शासन किया था। तक्षशिला एन्टियलकिडस की सम्भावित राजधानी मानी गई है। इस राज्य से राजा भागभद्र के राज्य में एक राजदूत भेजा गया था। इस राज्य में कदाचित् कपिशी या कपिशा भी शामिल कर लिया गया था।[२] इस राजा की मृत्यु के बाद यूनानी राज्य तीन हिस्सों में विभाजित हो गया था। पहले हिस्से तक्षशिला पर आर्केबिओस राज्य करता था।[३] दूसरे हिस्से का नाम पुष्कलावती था; और इस हिस्से पर डायोमेडीज़, इपैण्डर[४], फ़िलोक्सीनोस आर्टीमिडोरस और प्यूकोलाओस ने राज्य किया था। तीसरा हिस्सा कपिशी था, जो क़ाबुल तक फैला हुआ था। इस हिस्से पर अमिन्तास तथा हर्मेओस (Hermaios, Hermaeus) ने राज्य किया था। हर्मेओस के साथ उसकी रानी कैलिओप (Kalliope) नाम भी मिलता है। चीनी प्रमाण के अनुसार इस भूभाग पर कभी शक राजा सै-वांग का राज्य था। वह सम्भवतः ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। यह हो सकता है कि इस बर्बर तानाशाह ने यूनानी शासक बेसीलियस (Basileas)

---

१. Gardner, *Catalogue of Indian Coins in the British Museum*, p. xxxi

२. *Camb. Hist. Ind.*, 558.

३. A copper piece of this king is restruck, probably on a coin of Heliokles (Whitehead, p. 39)।

४. अपने सिक्कों से वह शाकल से सम्बद्ध लगता है (*Ibid.*, 64)। गांधार-क्षेत्र के राजाओं में टेलीफ़ोस को भी शामिल किया जा सकता है। उसके सिक्के Maues के सिक्कों से मिलते-जुलते थे (*Ibid.*, 80)। झेलम के एक राजकुमार नीकियस (Nikias) के नाम का भी पता चला है। Maues पर नीकियस की जलसेना की विजय का उल्लेख भी मिलता है (*EHI*, 4th ed., 258, *Num. Chron.*, 1940, p. 109)।

की अधीनता नाम मात्र के लिए स्वीकार कर ली हो, जैसे कि पाँचवीं शताब्दी में यूरोप के सामन्तों ने रोमन शहंशाह की अधीनता स्वीकार कर रखी थी।

यूनानी राजवंशों यथा डेमेट्रिओस और यूक्राट्रीड्स के पारस्परिक कलह से, बाद में यूनानी राजसत्ता कुछ निर्बल हो गई थी। इस आन्तरिक कलह को बाहरी आक्रमणों से भी काफ़ी बल मिला था। स्ट्रैबो[१] के अनुसार एक बार पार्थियनों ने यूक्राटीड्स लोगों से बलपूर्वक उनके शस्त्रास्त्र ले लिये थे। इस बात का आधार है कि पार्थियन शासक मिथ्राडेट्स-प्रथम भारत के अन्दरूनी भूभागों में प्रविष्ट हो चुका था। चौथी शताब्दी के रोमन इतिहासकार ओरोसियस (Orosius) ने इस आशय का स्पष्ट उल्लेख किया है कि मिथ्राडेट्स (सी० १७१-१३८ ईसापूर्व) ने सिन्धु और Hydaspes[२] नदियों के बीच रहनेवालों को अपने अधीन कर लिया था। इस शासक की जीत से यूक्राटीड्स और यूथिडीमोस के राज्यों की एक निश्चित सीमा भी निर्धारित हो गई थी, ऐसा कहा जाता है।

जस्टिन ने बैक्ट्रियन यूनानियों के पराभव के प्रसंग में कुछ मुख्य तथ्य दिये है, जो इस प्रकार हैं—"बैक्ट्रियन राजाओं के राज्य पर बार-बार होने वाले हमलों से उनकी स्वतन्त्रता छिन-सी गयी थी। वे लोग सोग्डियन, ड्रेन्जियन तथा इण्डियन या भारतीयों से संत्रस्त से रहने लगे थे। बाद में पार्थियन राज्य के अपेक्षाकृत कमज़ोर लोग इन पर हावी हो गये।"[३]

सोग्डियन लोग (Sogdians) उस क्षेत्र के लोग थे, जिसे अब समरकंद और बोखारा कहते हैं। इस क्षेत्र को बैक्ट्रियन से Oxus ने तथा शकों से Jaxartes या Syr Daria[४] ने अलग कर दिया था। जस्टिन ने 'सोग्डियन' शब्द से केवल किसी जाति विशेष का अर्थ निकालना ठीक नहीं समझा, बल्कि

१. हैमिल्टन एवं फाल्कनर का अनुवाद, Vol. II, pp. 251-53.

२. *Cambridge History of India* (Vol. I, p. 568) में इस नदी को ईरान की एक नदी कहा गया है, और इसका नाम Medus Hydaspes of Virgil बताया गया है।

३. Sten Konow ने इस अनुच्छेद को इस प्रकार स्वीकार किया है—"The Bactrians lost both their empire and their freedom being harassed by the Sogdians (beyond the Oxus), the Arachoti (of the Argandab valley of S. Afghanistan), the Drangae lake-dwellers, (near the Hamun lake) and the Arei (of Herat), and finally oppressed by the Parthians (*Corpus*, II, 1, xxi-xxii)।

४. Strabo, XI, 8. 8-9.

उसके मतानुसार वे लोग भी सोग्डियन ही थे जिन्होंने यूनानियों से बैक्ट्रियाना ले लिया था। इस नाम के अन्तर्गत स्ट्रैबो[१] के अनुसार Asii, Pasiani, Tochari, Sacarauli और Sacae या शक जातियाँ आ जाती हैं। शकों द्वारा भारतीय-यूनानी भूभागों पर कब्जा करने की कहानी अगले अध्याय में मिलेगी। लैटिन इतिहासकार Pompeius Trogus के अनुसार डायोडोटस को सीथियन, सरांसी (Sarancae) तथा Asiani जातियों से लोहा लेना पड़ा था। इन्हीं लोगों ने यूनानियों से सोग्डियाना और बेक्ट्रियाना छीना था। सम्भवतः सोग्डियाना में रहने के कारण ही इन लोगों की जाति का नाम 'सोग्डियन' पड़ गया। Sten Konow[२] के अनुसार Tochari नाम को ही चीनी इतिहासकारों ने Tohia नाम दिया था। Asii, Asioi या Asiani को चीनी इतिहासकारों ने Yue-chi कहा है। तोलेमी ने भी Tochari जाति को एक महान् जाति बताया है।[३] ये लोग बैक्ट्रियाना में ही रहते थे, और Peripus के समय के बैक्ट्रियाना की लड़ाकू जाति के रूप में भी इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

दूसरी जाति का नाम 'ड्रैन्जियन' था। इस नाम का अर्थ है—'झील के निकट का रहने वाला।'[४] ये लोग हमून (Hamun) झील के आसपास Areia (Herat), Gedrosia (Baluchistan) तथा Archosia (Kandahar) और पूर्वी फ़ारस के बीच के इलाक़े में रहते थे। इस क्षेत्र की राजनीतिक सीमा में कभी-कभी सीस्तान (Seistan) या (शकस्थान)[५] भी शामिल हो जाता था।

१. H. and F's Tr., Vol. II, pp. 245-46; *Cf. JRAS*, 1906, 193f; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 171; Bachhofer, *JAOS*, 61 (1941), 245 (Criticism of Tarn)।

२. *Modern Review*, April, 1921, p. 464; *Corpus*, II. 1, xxii, lvii f.

३. *Ind. Ant.*, 1884, pp. 395-96.

४. Schoff, *Parthian Stations*, 32.

५. *Corpus*, xl; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 92; *MASI*, 34. 7. Isidore के अनुसार शकस्थान इस क्षेत्र की सीमा से बाहर था (Schoff, 9)। लेकिन, Herzfeld ने भी इस संबन्ध में कहा है कि सीस्तान या शकस्थान Achaemenian 'Zrang' था।

प्राप्त सिक्कों के आधार पर एक और जाति का अस्तित्व प्रमाणित होता है, जो कि वोनोन्स (Vonones) कही जाती थी। वोनोन्स पार्थियन (Parthian) नाम है। इस शाही वंश के साथ हेलमण्ड घाटी में यूनानी शासन का भी उल्लेख मिलता है। ग़ज़नी और कन्दहार का भी काफ़ी भाग इन्हीं लोगों से सम्बद्ध था। बहुत से परिवार इस जाति या वंश को 'पार्थियन' कहते हैं। कुछ विद्वान् तो यहाँ तक कहते हैं कि 'वोनोन्स' एक राजा का नाम था, जिसका शासन ८ से १४ ईसवी सन् तक था।[1] किन्तु, किसी नाम को राष्ट्रीयता का प्रमाण नहीं कहा जा सकता। सर आर० जी० भण्डारकर ने इस जाति को 'शक' ही कहा है।[2] वैसे इस वंश को Drangian कहना ही सबसे अच्छा है; क्योंकि इसके प्रभाव का मुख्य क्षेत्र हेलमण्ड की घाटी तथा Arachosia ही था।[3] सिक्कों में वोनोन्स के साथ दो राजाओं का भी उल्लेख मिलता है। वे निम्न हैं—

१. स्पलहोरा (Spalyris)। इसे 'महाराजा-भ्राता (king's brother) भी कहा जाता है।

२. स्पलगदम, स्पलहोरा का लड़का। इधर एक ऐसा सिक्का मिला है जिसके बारे में थॉमस और कनिंघम का कहना है कि यह वोनोन्स और एज़ेस-प्रथम के समय का है। किन्तु, सिक्का वास्तव में माऊस[4] से सम्बन्धित है। एक और चाँदी का सिक्का प्राप्त हुआ है, जिसकी एक ओर 'Basileus Adelphoy Spalirisoy' तथा दूसरी ओर 'Maharaja bhrata dhramiasa Spalirisasa' के आशय के उल्लेख मिलते हैं। इस राजा को कुछ लोग वोनोन्स तथा कुछ लोग

---

१. *Camb. Short Hist.*, 69.

२. See Schoff, *Parthian Stations*, pp. 5, 13 ff, 17; *JRAS*, 1904, 706; 1906, 180; 180; 1912, 990; See also *Parthian Stations*, 9, para 18; *ZDMG*, 1906, pp. 57-58; *JRAS*, 1915, p. 831; Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 53.

३. *Corpus*, xlii.

४. Whitehead, *Catalogue of Coins in the Punjab Museum* (*Indo-Greek Coins*), p. 93; *Num. Chron.*, *JRNS* (1950), p. 208 n; Smith, *Catalogue*, 38; Bachhofer (*JAOS*, 61, 239); See also Tarn, *Greeks*, 344 n. 2.

Maues कहते हैं।[1] वोनोन्स के बाद Spalirises[2] का शासन आया। Spalirises के सिक्कों से दो तथ्यों का निरूपण होता है—

१. ऐसे सिक्के जिनमें एक ही राजा के नाम का उल्लेख है; तथा

२. ऐसे सिक्के जिनमें एक ओर एक शासक का नाम यूनानी में तथा दूसरी ओर दूसरे राजा का नाम खरोष्ठी लिपि में मिलता है।

दूसरे प्रकार के सिक्कों से लगता है कि राजा Spalirises के साथ उनका एक सहयोगी भी था, जिसका नाम Azes था और उसका ऐसे भूभाग पर शासन था जहाँ कि खरोष्ठी लिपि ही प्रयोग में आती थी। Azes के बारे में कहा जाता है कि वह पंजाब का राजा था। पंजाब के इस राजा का वर्णन आपको अगले अध्याय में मिलेगा।

बैक्ट्रियन यूनानी राजाओं के भारतीय शत्रुओं के प्रसंग में सबसे पहले पुष्यमित्र के राजवंश का उल्लेख आवश्यक है। कालीदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' में कहा गया है कि पुष्यमित्र-वंश के राजाओं ने यूनानी राजाओं को सिन्धु नदी के तट पर पराजित किया था। पूर्वी पंजाब में यूनानी शासकों का प्रभुत्व था, जिसको समाप्त करने में भद्रयशस नामक व्यक्ति ने बड़ी सहायता की थी। गौतमीपुत्र शातकर्णि की 'नासिक-प्रशस्ति' में इस राजा के विषय में कहा गया है कि इसने ही पश्चिमी भारत के यवन-प्रभुत्व को समाप्त किया था।

जस्टिन के अनुसार भारत से यूनानी राज्य को अन्तिम रूप से पार्थियन ने समाप्त किया था। मार्शल[3] के कथनानुसार सबसे बाद में समाप्त होने वाला राज्य[4] क़ाबुल की घाटी में स्थित हर्मेओस (Hermaios) था। इस राज्य को

१. Herzfeld ने Maues को ही Spalirises का भाई माना है (*Camb. Short History*, 69)।

२. यह उल्लेखनीय है कि Spalirises के कुछ सिक्के वोनोन्स (Vonones) के सिक्कों पर ही पुनः ढाले गये हैं (*CHI*, 574)। इसी प्रकार Spalyris और Spalagdama के सिक्कों के सम्बन्ध में भी कहा जाता है (*Corpus*, II. 1. xli)। इससे सिद्ध है कि 'Spalirises' Vonones, और Spagaladama के बाद हुआ था (Tarn, *Greeks*, 326)।

३. *A Guide to Taxila*, p. 14.

४. Bajaur Seal Inscription के अनुसार क़ाबुल की घाटी पर शासन करने वाले यूनानी राजाओं में थियोडेमस (Theodamas) भी एक था (*Corpus*, II, i. xv, 6)।

पार्थियन राजा गोण्डोफ़र्न्स (Gondophernes) ने समाप्त किया था।[1] चीनी इतिहासकार फ़ान-ई ने भी पार्थियनों के क़ाबुल पर अधिकार का उल्लेख किया है।[2] Tien-tchou (भारत), Kipin (कपिशा) तथा न्गान्सी (Ngansi—Parthia), इन तीन राज्यों में से जब भी कोई राज्य शक्तिशाली होता था, वह क़ाबुल को अपने में मिला लेता था। जब वह राज्य निर्बल हो जाता था तो क़ाबुल उसके हाथ से निकल जाता था। अन्त में क़ाबुल का शासन पार्थियनों के हाथ आ गया।[3] क़ाबुल पर पार्थियनों का वास्तविक अधिकार Isidore के बाद ही, अर्थात् ईसापूर्व की २५-१ शताब्दी[4] के बाद ही हो सका, क्योंकि पार्थियन साम्राज्य के इतिहासकारों ने क़ाबुल को राज्य के पूर्वी हिस्से में नहीं शामिल किया। Philostratos के अनुसार ४३-४४ ईसवी में पार्थियनों का राज्य क़ाबुल तक आ गया।

---

१. मार्शल ने *ASI*, *AR* (1921-30, pp. 56 ff) में यूनानी राजाओं द्वारा क़ाबुल को जीतने के बारे में अपने कथन को संशोधित करते हुए कहा है कि पार्थियन तथा कुशाण, दोनों राजवंशों के लिए क़ाबुल की घाटी का शासन अपने-आप में एक बहुत बड़ा आकर्षण था। इन दोनों राजवंशों की यह प्रतिद्वन्द्विता तब तक चलती रही जब तक कि पार्थियनों का अन्तिम रूप से पतन नहीं हो गया।

२. *JRAS*, 1912, 676; *Journal of the Department of Letters*, Calcutta University, Vol. 1, p. 81.

३. *Cf.* Thomas, *JRAS*, 1906, 194; Bhandarkar, '*Foreign Elements in the Hindu Population*' (*Ind. Ant.*, 1911); Raychaudhary, '*Early History of Vaishnava Sect*,' *Ist ed.*, p. 106; Foucher, 'The *Beginnings of Buddhist Art*, pp. 9, iii f; Coomaraswami, '*History of Indian and Indonesian Art*', pp. 41 f; Hopkins, '*Religion of India*', pp. 544 f; Keith, '*The Sanskrit Drama*,' pp. 57 f; Keith, '*A History of Sanskrit Literature*,' pp. 352 f; Max Muller, '*India—What can it teach us*,' pp. 321 f; Smith, *EHI*, pp, 251-56; '*A History of Fine Art in India and Ceylon*,' Chap. XI; '*Imp. Gaz.*, *The Indian Empire*,' Vol. II, pp. 105 f, 137 f, etc.

४. Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 53; Schoff, *The Parthian Stations of Isidore of Charax*, 17.

११ | उत्तर भारत में सीथियन-शासन

१. शक

ईसापूर्व की दूसरी और पहली शताब्दी में काफ़िरिस्तान, गान्धार तथा सम्भवतः हज़ारा देश में शकों का राज्य था। फ़ारस के राजा डेरियस (५२२-४८६ ईसापूर्व) के समय में शक लोग सोग्डियन के बाहर ही थे। वे सम्भवतः Syr Darya के मैदानी भूभाग के निवासी थे, जिसकी आधुनिक राजधानी तुर्किस्तान कही जाती है।[१] किन्तु, पहली शताब्दी ईसापूर्व के अन्तिम दिनों में वे सिगल (या आधुनिक सीस्तान)[२] के निवासी हो गये थे। चीनी इतिहासकारों ने शकों के मध्य एशिया से निष्क्रमण का उल्लेख भी किया है। History of the First Han Dynasty (Ts'ien Han-Shu) में कहा गया है—"पहले जब हियूंगनू (Hiung-nu) ने ता-यू-त्शी (Ta-Yue-tchi) पर विजय प्राप्त की तो ता-यू-त्शी पश्चिम की ओर चला गया,[३] और ताहिया (Tahia) पर हावी हो गया। फिर सै-वांग (Sai-wang) दक्षिण की ओर चला गया और किपिन पर अधिकार जमा लिया।"[४]

एस० कोनोव के अनुसार सै-वांग ने उन्हीं जातियों का उल्लेख किया, जिनका ज़िक्र भारतीय ग्रन्थों में मिलता है, जैसे शक-मुरुण्ड।[५] शकों का रूप

१. E. Herzfeld, *MASI*, 34, 3.

२. Schoff, Isidore, *Stathmoi Parthikoi*, 17.

३. C. 174-160 B. C. according to some scholars.

४. शक लोगों ने सम्भवतः किपिन पर यूक्राटीड्स के बाद या तुरन्त बाद अधिकार जमाया (*JRAS*, 1903, p. 22, 1932, 958, *Modern Review*, April, 1921, p. 464)।

५. प्रोफ़ेसर हर्मन (Hermann) ने सै-वांग (Sai-wang) को स्ट्रैबो का Sakarauloi या Sakaraukoi कहा है (*Corpus*, II. 1, xxf)। For Murunda, See pp. xx.

बाद में बदलकर 'मुरुण्ड' कहलाने लगा। इस शब्द का वही अर्थ होता है जो चीनी शब्द 'वांग' का होता है। 'मुरुण्ड' का अर्थ राजा या स्वामी होता है। भारतीय शिलालेखों तथा सिक्कों में इस शब्द का अनुवाद प्रायः स्वामी शब्द के अर्थ में किया गया।

जिस शक राजा ने किपिन पर अधिकार किया, उसका नाम ज्ञात नहीं हो सका है। इसके पूर्व जिस राजा ने शासन किया था, चीनी ग्रन्थों के अनुसार उसका नाम वू-तू-लू (Wu-t'ou-lao) था। उसके लड़के को युङ्ग-कू (Yung-k'u) के पुत्र यिन-मो-फ़ू (Yin-mo-fu) ने चीनी मदद से निष्कासित कर दिया था।[1] यिन-मो-फ़ू ने सम्राट् सूआन-ती (Hsuan-ti) के समय में ही अपने को राजा घोषित किया। यह राजा ७३-४८ ईसापूर्व तक रहा। इसने यूआन-ती(Yuan-ti) के एक राजदूत के नौकर की हत्या कर दी थी। चेंग-ती (Cheng-ti) के समय में किपिन के राजा ने चीन से सहायता माँगी थी, किन्तु वह असफल रहा था। ईसापूर्व की प्रथम शताब्दी के अन्त में चीनी अधिकारियों को कोई बौद्ध-ग्रन्थ[2] मिला, जिसमें तत्सम्बन्धी कुछ संकेत मिलते हैं। किपिन-राजा, यिन-मो-फ़ू का उत्तराधिकारी था। इस राजा पर यू-ची (Yue-chi) ने आक्रमण किया, जिसका चीन से आपसी सम्बन्ध था।

एस० लेवी के अनुसार आज का कश्मीर ही प्राचीन किपिन राज्य था। किन्तु, एस० कोनोव[3] ने इस मत का खण्डन किया है। एस० कोनोव के मतानुसार, कपिशा का दूसरा नाम किपिन प्रदेश था।[4] किसी समय में गान्धार

१. 'युङ्ग-कू' को योनक (Tarn, 297) तथा 'यिन-मो-फ़ू' को Hermaios माना जाता है (Tarn, 346)। इस सम्बन्ध में *JASB*, 1895, 97 भी देखिये। इस दिशा में अभी शोधकार्य की अपेक्षा है।

२. *Cal. Rev.*, Feb., 1924, pp. 251-252, Smith, *EHI*, 3rd ed., p. 258 n; *JRAS*, 1913, 647; *Ind. Ant.*, 1905—कण्गर एवं खरोष्ठी।

३. *Ep. Ind.*, XIV. 29.

४. यह प्रदेश जिसमें से होकर क़ाबुल नदी की उत्तरी सहायक नदियाँ बहती हैं (*Ibid.*, p. 290, *Cf.* Watters, *Yuan Chwang*, Vol. I, pp. 259-60)। कपिशी नगर सम्भवतः घोरबन्द और पंजषिर के मिलन-बिन्दु पर था (Foucher, *Indian Studies Presented to Prof. Rapson*, 343)। Tsien Han-shu के अनुसार किपिन 'वू-ई-शान-ली' से जुड़ा हुआ था। दक्षिण-पश्चिम में अर्कोशिया और फ़ारस था (Schoff, *Parthian Stations*, 41)। डॉ० हर्मन

किपिन राज्य का पूर्वी भाग था। हेमचन्द्र की 'अभिधान-चिन्तामणि' में एक अनुच्छेद से संकेत मिलता है कि सै-वांग (या शक-मुरुण्ड) की राजधानी लम्पाक या लघमान (लम्पाकास्तु मुरुण्डाः स्युः)[१] थी। एम० कोनाव का कहना है कि Ts'ien Han-shu या Annals of the First Han Dynasty के अनुसार शकों ने हिएन्तु (Hientu) को पार किया था। किपिन की यात्रा के सिलसिले में वे स्कर्दु के पश्चिम से गुज़रे थे।[२] यद्यपि शकों ने किपिन (कपिशा-गान्धार) के कुछ भाग को वहाँ के यूनानी शासकों से छीन लिया तो भी वे क़ाबुल को स्थायी रूप से अपने अधीन नहीं कर सके।[३] क़ाबुल में वहाँ के राजा की ही प्रधानता बनी रही। वे (शक) भारत में अधिक सफल हुए थे।

मथुरा और नासिक में मिले शिलालेखों से ऐसा लगता है कि शक लोग पूर्व में यमुना और दक्षिण में गोदावरी तक फैल गये थे। इन लोगों ने मथुरा के मित्रों तथा पैठन के सातवाहनों की प्रभुता विनष्ट की थी।[४]

शकों के किपिन में प्रभावशाली शासकों के बारे में कोई संगठित विवरण नहीं मिलता। रामायण[५] में शकों का नाम यवनों के साथ आया है। महाभारत[६], मनुसंहिता[७] तथा महाभाष्य[८] में भी ऐसे ही उल्लेख हैं। हरिवंश[९] मे कहा गया के अनुसार गान्धार ही किपिन था (*JRAS*, 1913, 1058n)। किपिन में चाँदी और सोने के सिक्के चलते थे (*Corpus*, II, 1, xxiv); *JRAS*, 1912, 684n)। पुष्कलावती में सोने और चाँदी के सिक्कों के लिए देखिये *CHI*, 587, and the coin of Athama (442 *infra*)।

१. लम्पाक (Lampaka or Laghman) कपिसेन (Kapisene) से १०० मील पूर्व में है (*AGI*, 49)।

२. *Ep. Ind*, XIV, 291, *Corpus*, II, xxiii; see also *JRAS*, 1913, 929, 959, 1008, 1023.

३. *Journal of the Departmet of Letters*, Vol. I, p. 81.

४. कुछ शक सम्भवतः दक्षिण भारत तक चले गये थे। नागार्जुनिकोण्डा-शिलालेख में एक शक मोद तथा उसकी बहन बुधि का उल्लेख मिलता है (*Ep. Ind.*, xx. 37)।

५. I, 54. 22; IV. 43, 12.

६. II, 32. 17.

७. X, 44.

८. *Ind. Ant.*, 1875, 244.

९. Chap. 14, 16; *JRAS*, 1906, 204.

है कि ये लोग अपने आधे सिर के ही बाल बनवाते थे। जैन-ग्रन्थ 'कालकाचार्य कथानक' के अनुसार शकों के राजा को 'शाही'[1] कहते थे। इनमें से कुछ राजा जैन-उपदेशकों के निर्देशों पर सुरट्ठ (सुराष्ट्र) विषय (देश) तथा हिन्दूकुश में उज्जैन (India) तक भी गये। वहाँ इन्होंने स्थानीय शासकों को पदच्युत् किया और चार वर्ष तक वहाँ राज्य भी किया। बाद में ५८ ईसापूर्व में ये वहाँ से भगा दिये गये हैं।

गोतमी पुत्र शातकर्णि और समुद्रगुप्त की प्रशस्तियों में भी शकों का उल्लेख आया है। मथुरा के एक शिलालेख, 'कदम्ब मयूरशर्मन' के चन्द्रावल्लि-शिलालेख तथा 'महामायूरी' (९५) में शकों के राज्य का उल्लेख 'शकस्थान' के नाम से किया गया है।

मथुरा के शिलालेख के जिस अंग में शकस्थान का उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

सर्वस सकस्तनस पुयए।

कनिंघम और बूहलर का कहना है कि यह अंग समूचे शकस्थान के प्रति सम्मान प्रकट करने के प्रसंग में आया है। डॉक्टर फ़्लीट के मतानुसार इस बात का पर्याप्त आधार नहीं है कि शकों ने कभी उत्तरी भारत (काठियावाड़ के उत्तर) और मालवा के पश्चिमी व दक्षिणी हिस्से पर आक्रमण किया था। डॉक्टर फ़्लीट ने 'सर्व' शब्द को व्यक्तिवाचक संज्ञा माना है और उपर्युक्त अंग का अर्थ 'अपने देश के सम्मान में दान' कहा है।[2]

फ़्लीट की आपत्ति कोई बहुत सशक्त नहीं है। चीनी ग्रन्थों में साफ़ लिखा है कि शक लोग किपिन देश, अर्थात् कपिशा-गान्धार में थे।[3] जहाँ तक शकों के मथुरा में होने की बात है, मार्कण्डेय पुराण[4] का यह उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि मध्यदेश शकों की निवास-भूमि रही है। डॉक्टर थॉमस[5] ने संकेत किया है कि मथुरा के

१. *ZDMG*, 34. pp. 247 ff, 262; *Ind. Ant*; x. 222.

२. *JRAS.*, 1904, 703., 1905, 155, 643 f. श्री मजूमदार शक-स्थान को शक्रस्थान कहते हैं, जिसका अर्थ है 'इन्द्र का स्थान' (*JASB*, 1924, 17; *Cf.* Fleet in *JRAS*, 1904, 705.

३. See *CHI*, 560n, 562, 591; and *Corpus*, ii. 1. 150 f.

४. Chap. 58.

५. *Ep. Ind.*, IX, pp. 138 ff; *JRAS*, 1906, 207 f, 215 f.

शिलालेख में शक और फ़ारसी दोनों प्रकार के नाम मिलते हैं। उदाहरण के लिए, इस शिलालेख में 'मेवाकी' (Mevaki) शब्द आया है जो सम्भवतः सीथियन नाम मेआक[1] (Mauakes) शब्द का ही रूपान्तर है। 'कोमूसा' और 'शमूसो' शब्द के अन्तिम अंश '-ऊस' कुछ सीथियन ढंग के ही लगते हैं। डॉक्टर थॉमस ने आगे संकेत किया है कि शक राज्य के प्रति आदर या सम्मान की बात को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि सुई-विहार (Sui Vihar) तथा वर्डक (Wardak) शिलालेखों में हमें 'सर्व सत्वनम्' जैसे उल्लेख मिलते है। फ़्लीट ने 'स्वक' तथा 'शकट्ठान' शब्दों का उल्लेख किया है। इसके बारे में डॉक्टर थॉमस का कहना है कि यह अस्वाभाविक-सा मालूम होता है कि कोई अपने ही परिवार की प्रशंसा के शब्द पत्थरों पर खुदवाये। यद्यपि देश की 'पूजा का सम्बोधन' कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है, किन्तु शक-प्रदेशों में ऐसे सम्बोधनों के शिलालेख मिलते हैं।

शकस्थान में सीथिया जिला भी शामिल था। इसी जिले से सिन्धु नदी निकलती है। हिन्द महासागर में गिरने वाली नदियों में सिन्धु सबसे बड़ी है।

तक्षशिला, मथुरा तथा पश्चिमी भारत में ऐसे शिलालेख मिले है, जिनमे शक-राजकुमारों के नाम मिलते हैं। डॉक्टर थॉमस के मतानुसार, पंजाब या भारत में चाहे जो भी शक-वंश प्रभावशाली रहा हो, पर उसके बारे में यह निश्चित है कि वह अफ़ग़ानिस्तान या कश्मीर से होकर भारत नहीं आया था। सम्भवतः ये लोग सिन्धु नदी तथा सिन्धु की घाटी से होकर भारत आये थे।[2] चूँकि शक-सिक्कों में सिन्धु-सम्बन्धी अधिक प्रमाण नहीं मिलते, इसलिए उपर्युक्त मत को पूरी तौर से स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसके अलावा चीनी ग्रन्थों में भी किपिन पर शकों के अधिकार, कपिशी में सीथियन प्रभाव तथा हज़ारा में शकों के आधिपत्य का कोई महत्वपूर्ण उल्लेख नहीं मिलता।[3] वैसे,

१. Maues, Moya और Mavaces, ये शक-सेनापति डेरियस की सहायता में गये थे (Chinnock, *Arian*, p. 142)। *Cf.* S. Konow, *Corpus*, xxxiii n. १११-१०६ ईसापूर्व में फ़रग़ना (Ferghana) के शक-शासक का नाम Mu-ku'a था (Tarn, *Greeks*, 308 f.)।

२. *JRAS*, 1906, p. 216.

३. *CHI*, 569 n; *JASB*, 1924, p. 14; S. Konoor, *Corpus* II, 1, 13f. शकों द्वारा किपिन-विजय का यह अर्थ नहीं है कि काबुल-क्षेत्र से यूनानी-प्रभाव ख़त्म हो गया था। *The History of the Later Han Dynasty*

हम इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं कर सकते कि खोज के बाद, सोग्डियनोई[1] के समीप उत्तर में रहने वाले शकों के कई नाम सामने आये हैं। इन शक नामों में माऊस (Maues), मोगा[2] (Moga) तथा मेवाकी[3] (Mevaki) प्रमुख हैं। एरियन के अनुसार 'मेवाक' नाम ऐसा है जो एशिया में रहने वाले शकों, मुख्यतया सीथियनों, से सम्बद्ध मालूम होता है। ये लोग सोग्डियन तथा बैक्ट्रियन गवर्नरों के क्षेत्र से बाहर रहते थे। फ़ारस के राजाओं से इनकी संधि थी। छहरत, खखरात या क्षहरात सम्भवतः तक्षशिला, मथुरा, पश्चिमी भारत तथा दक्षिण के राजवंशों की ही उपाधियाँ थीं। ये सभी नाम उत्तरी शक जाति के कराताई (Karatai) नाम के ही समानार्थी से लगते हैं।[4]

सिन्धु की घाटी, कच्छ तथा पश्चिमी भारत पर हुई जीतें भी पश्चिमी शकस्थान के शकों से प्रभावित मालूम होती हैं। Isidore of Charax में भी इन जीतों का उल्लेख है। सीथिया राज्य सिन्धु की घाटी तक फैला हुआ था। मम्बरस या मम्बनस का राज्य भी सीथिया से जुड़ा हुआ था। इसके अलावा मिन्नगर नाम भी आया है जो सम्भवतः 'मिन' नामक तत्कालीन नगर से बना था। इसीदोर[5] ने शकस्थान में 'मिन' नगर के अस्तित्व का उल्लेख किया है। रैप्सन ने चाश्तान-वंश के पश्चिमी क्षत्रपों के नामों की चर्चा करते हुए 'डामन' शब्द का उदाहरण दिया है, और कहा है कि वोनोन्स जाति के इ ैन्जियन-वंश (A.D. 25-220) में इस बात का उल्लेख है कि किपिन-विजय के पूर्व क़ाबुल में पार्थियन लोगों का प्रभाव था। हो सकता है कि सातवाहनो की तरह यूनानियों ने भी कुछ हद तक अपना खोया राज्य वापस लौटा लिया हो। यह भी हो सकता है कि सीथियन सामन्तों ने कुछ समय के लिये यूनानी राजाओं की अधीनता भी स्वीकार कर ली हो।

१. *Ind. Ant.*, 1884, pp. 399-400.

२. Taxila Plate.

३. Mathura Lion Capital.

४. Ind. Ant., 1884, p. 400; *Cf. Corpus*, II, I. xxxvi. खरोष्ट और माऊस (Maues) किपिन के उत्तरी-पश्चिमी शकों से सम्बन्धित थे, न कि उस वंश से जो कि सीस्तान (Seistan) से भारत आया था। *Cf.* xxxiii (Case of Liaka)

५. *JRAS*, 1915, p. 830.

के एक राजकुमार के नाम में यह शब्द आया है। अन्त में कार्दम-वंश वर्ग का उदाहरण लीजिये। कन्हेरी-शिलालेख के अनुसार महाक्षत्रप रुद्र की पुत्री इसी वंश से उत्पन्न हुई थी। इसका नाम सम्भवतः कार्दम नदी के नाम पर रखा गया था। यह नदी फ़ारस-क्षेत्र से होकर बहती थी।[1]

भारतीय शिलालेखों में आरम्भिक काल के शकों—दमिजद[2] और माऊस—के नाम आये हैं। बाद वाला नाम Taxila Plate के मोगा नाम का ही एक रूप कहा जाता है। सम्भवतः इसका उल्लेख मैर-शिलालेख[3] में भी आया है। माऊस-मोग सम्भवतः एक बड़ा ही शक्तिशाली राजा (महाराज) था। इसका राज्य तक्षशिला के निकट चुक्ष तक फैला हुआ था। यहाँ एक विशेष क्षत्रपाल राज्य करता था; और सिक्कों से प्रमाणित होता है कि इस शासक ने कपिशी,[4] पुष्करावती तथा तक्षशिला[5] तक अपनी राज्य की सीमा बढ़ा ली थी। इस शासक के क्षत्रपों ने सम्भवतः मथुरा से भारतीय और यूनानी सत्ता समाप्त कर दी थी। पूर्वी पंजाब के कुछ भागों तथा आसपास के क्षेत्रों में औदुम्बर, त्रिगर्त, कुनिन्द, यौधेय तथा आर्जुनायन जैसी कुछ ऐसी जातियाँ रहती थीं, जिन्होंने यूथिडीमियन साम्राज्य के पतन के बाद अपनी स्वतंत्रता की आवाज़ उठाई। माऊस राजा ने यूक्राटीड्स तथा डेमेट्रिओस की तरह के सिक्के भी चला दिये।

---

१. अर्थशास्त्र का शामशास्त्री द्वारा अनुवाद, p. 86, n.6. *Cf.* Artemis (Ptolemy, 324), Gordomaris, Loeb, Marcellinus (ii 389)। See also *Ind. Ant.*, XII, 273n. महाभाष्य में 'कार्दमिक' शब्द आया है (IV. 2. I. *World Index*, p. 275); क्रमदीश्वर 747, और 'कार्दमिल' (महाभारत, III, 135. I)। कार्दम नदी सम्भवतः ज़रफ़शान (Zarafshan) की वही नदी है जो बल्ख से होकर बहती थी। रामायण के उत्तरकाण्ड में कार्दम राजाओं को बाह्मी या बाह्लिक से सम्बद्ध किया गया है (*IHQ*, 1933, Pp. 37 ff)।

२. Or Namijada, Shahdaur Ins., *Corpus* II. i, 14, 16.

३. Maira में एक शिलालेख मिला है, जिसकी लिपि खरोष्ठी है तथा जो सम्भवतः ५८ ईसवी का है। इसमें Moasa 'of Moa or Moga शब्द मिलते हैं।

४. *Camb. Hist. Ind.*, I. 590 f.

५. *Ibid.*, 701.

इन सिक्कों से विद्वानों ने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि माऊस ने मेनाण्डर के राज्य, अर्थात् शाकल[1] जिले को अछूता छोड़ रखा था।

विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार माऊस राजा १३५ ईसापूर्व और ९५४ ईसवी से बीच प्रभाव में रहा। उसके सिक्के सामान्यतः पंजाब तथा मुख्यतः उस प्रान्त के पश्चिमी भागों में मिलते हैं, जिसकी प्राचीन राजधानी तक्षशिला थी। इस प्रकार यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि माऊस गान्धार देश का राजा था। इसलिए, पंजाब के इतिहास में यूनानी राजा एन्टियलकिडस के पूर्व माऊस का होना प्रमाणित नहीं किया जा सकता। जब भागभद्र मध्यभारत के विदिशा राज्य में शासन करता था, उसी समय यूनानी राजा एन्टियलकिडस तक्षशिला में राज्य करता था। भागभद्र का शासन १४ वर्ष तक चला। यद्यपि भागभद्र के समय का निर्धारण नही हो सका या अनिश्चित-सा है, तो भी उसे पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र के बाद ही रखा जावेगा। अग्निमित्र ने १५१ ईसापूर्व से १४३ ईसापूर्व तक राज्य किया। इसलिए भागभद्र के शासन-काल का १४वाँ वर्ष १२६ ईसापूर्व के पहले नहीं हो सकता, और एन्टियलकिडस ईसापूर्व की दूसरी शताब्दी उत्तरार्द्ध से पहले हुआ नहीं कहा जा सकता।[2] गान्धार पर शकों का आधिपत्य भी १२६ ईसापूर्व के बाद ही हो सकता है। फ्लीट के अलावा अन्य विद्वान् माऊस को महाराय मोगा मानते है। इसके समय के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सामान्यतः इस राजा को शक-सम्बत् के ७८वें में रखा जाता है। चूंकि शक-सम्वत् केवल उत्तरी भारत तथा सीमावर्त्ती प्रदेशों में प्रचलित है, इसलिए ऐसा समझा जाता है कि इन प्रदेशों पर शकों के राज्य के बाद से यह सम्वत् चला है। हम पहले देख चुके है कि इन प्रदेशों पर शकों का अधिकार १२६ ईसापूर्व के पहले नही हुआ था, इसलिए Taxila Plate में जो समय दिया गया है, १२६ ईसापूर्व के पहले का नहीं हो सकता। इस सम्वत् का ७८वाँ वर्ष (१२६-७८ =५१) माऊस-मोगा का शासन ५१ ईसापूर्व के पहले समाप्त नहो माना जा सकता, बल्कि इस राजा को इसके बाद ही रखा जाना चाहिए। चीनी रिकार्डों से हमें पता चलता है कि ४८-३३ ईसापूर्व

१. Tarn, *The Greeks in Bactria and India*, 322-330; Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 112; Tarn, *GBI*, 349; or By Rajuvula, *CICAI*, 185.

२. *Cf.* Marshall, *Monuments of Sanchi*, I, 268n.

के आसपास कपिशा-गान्धार प्रदेश पर यिन-मोफ़ू का अधिकार था। यह चीनी शासक माऊस तथा उसके पुत्रों के पहले हुआ था। चूँकि माऊस को उक्त चीनी शासक के उत्तराधिकारियों में गिनने का कोई आधार नहीं है, इसलिए उसे ३३ वर्ष ईसापूर्व के बाद ही रखा जा सकता है, फिर भी उसे पहली शताब्दी के प्रथमार्ध से आगे नही रखा जा सकता। हमें विभिन्न स्रोतों (Philostratos) से यह भी ज्ञात हुआ है कि जिस समय सोथिया की राजधानी तक्षशिला और मिन्नगर थी, उसी समय या उसके थोड़े दिन बाद सिन्धु की घाटी का शक-राज्य पार्थियनों के अधिकार में चला गया था। इसलिए यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि माऊस-मोगा का शासन ३३ वर्ष ईसापूर्व के बाद, किन्तु पहली शताब्दी के प्रथमार्ध के अन्दर ही अस्तित्व में रहा है। फ़्लीट के अनुसार मोगा का उदय २२ ईसवी में हुआ। यही शक-सम्वत् का संभवतः ७८वाँ वर्ष था। यह सम्वत् ५८ ईसापूर्व में आरम्भ हुआ होगा। बाद में यही बदलकर 'कृत-मालव-विक्रम-सम्वत्' हो गया होगा। किन्तु, अभी सवाल को पूरी तरह हल नहीं समझा जाना चाहिये, क्योंकि अनेक सामग्रियाँ ऐसी मिली हैं जिनसे संकेत मिलता है कि यह सम्वत् ५८ ईसापूर्व के पहले ही आरम्भ हुआ होगा। इन सामग्रियों में बीमा का खलात्सी-अभिलेख एवं Taxila Silver Vare Inscription आदि मुख्य है।

सिक्कों से ज्ञात तथ्यों के आधार पर गान्धार के सिंहासन पर माऊस के बाद एज़ेस बैठा और उसने हिप्पोस्ट्रेटोस के राज्य को जीतकर पूर्वी पंजाब से यूनानियों के प्रभुत्व का अन्त कर दिया। मार्शल के कथनानुसार, उसने जमुना की घाटी पर अपना अधिकार जमा लिया, जहाँ विक्रम-सम्वत् प्रयोग में आता था।[1] शासक एज़ेस के सिक्के वोनोन्स-वंश के शासकों के उत्तराधिकारियों से सम्बद्ध थे। यह भी धारणा है कि पंजाब का राजा एज़ेस यही एज़ेस था। यह Spalirises का भी साथी था। वैसे एज़ेस नाम के दो शासक थे—एज़ेस-प्रथम Spalirises का उत्तराधिकारी था, तथा एज़ेस-द्वितीय भी राजा माऊस के पहले ही हुआ था। लेकिन, इस मत के बाद के अंश को सही नहीं माना जा सकता। गोण्डोफ़र्न्स तथा एज़ेस-द्वितीय के सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री से सिद्ध होता है कि अस्पवर्मन इन दोनों राजाओं का सेनापति था।[2] गोण्डोफ़र्न्स के शासन का समय १०३[3] था,

---

१. *JRAS*, 1947, 22.

२. Whitehead, *Catalogue of Coins in Punjab Museum*, p. 150.

३. देखिये, तख्त-ए-बाही-शिलालेख।

जबकि माऊस-मोगा ७८वें[1] वर्ष में शासक था। इन दोनों तिथियों का उल्लेख बड़े-बड़े विद्वानों ने किया है। इसलिए गोण्डोफर्न्स तथा एज़ेस-द्वितीय दोनों माऊस-मोगा के बाद ही हुए रहे होंगे। माऊस-मोगा एज़ेस-प्रथम और द्वितीय के बीच हुआ हो, यह हो नहीं सकता; क्योंकि एज़ेस-प्रथम के बाद ही एज़ेस-द्वितीय आया। यह तथ्य तत्कालीन सिक्कों से प्रमाणित हो चुका है। माऊस या तो एज़ेस-प्रथम के पहले हुआ या एज़ेस-द्वितीय के बाद आया। किन्तु, यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि वह एज़ेस-द्वितीय के बाद नहीं हुआ। इसलिए वह सम्भवतः एज़ेस-प्रथम के पहले ही हुआ होगा। हो सकता है कि जब सीस्तान में वोनोन्स का शासन रहा हो, उस समय, माऊस पंजाब का शासक रहा हो। जब वोनोन्स के बाद Spalirises आया, तभी माऊस के बाद एज़ेस-प्रथम आ गया। यह तो हम पहले ही देख चुके हैं कि एज़ेस-प्रथम तथा Spalirises ने संयुक्त सिक्के चलवाये थे।[2] यों दोनों राजाओं का आपसी सम्बन्ध ज्ञात नहीं है। हो सकता है कि उनके बीच रक्त-सम्बन्ध रहा हो या वे एक दूसरे के मित्र रहे हों, जैसे कि Hermaios तथा Kujula Kadaphises थे।[3]

राजा एज़ेस-प्रथम ने अपने समय में जो सिक्के ढलवाये थे उनमें एक ओर यूनानी भाषा में अपना नाम तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में Azilises का

१. *Cf.* The Taxila Plate of Patika.

२ Rapson ने *CHI* (pp. 573, 574) में Spalirises के सहयोगी एज़ेस-प्रथम की समानता एज़ेस-द्वितीय से की है, और उसे Spalirises का लड़का कहा है। इसके अलावा ५७२वें पृष्ठ पर यह भी कहा गया है कि एज़ेस-द्वितीय Azilises का पुत्र और उत्तराधिकारी था। यह कहना कठिन है कि रैप्सन के ये दोनों मत किस प्रकार सही हो सकते हैं? इसके लिए शिवरक्षित का शाहदौर-शिलालेख भी देखिये (*Corpus*, II. i. 17)। एज़ेस (Aja या Aya) को कुछ विद्वानों ने ईसवी सन् १३४ के कलवान-शिलालेख में मान्यता दी है। किन्तु, इस उल्लेख में नाम के आगे या पीछे किसी प्रकार की उपाधि के अभाव में यह कहना कठिन है कि यह किसी राजा का उल्लेख है या नहीं; या है तो एज़ेस-प्रथम का या एज़ेस-द्वितीय का है? इसके अलावा यह भी निश्चित नहीं है कि एज़ेस मात्र एक शाही उपाधि ही थी या और कुछ। कुछ विद्वानों के अनुसार, यह कोई शासक नहीं था। कलवान-शिलालेख के लिए देखिये *Ep. Ind.*, XXI. 251 ff; *IHQ*, 1932, 825; 1933, 141; *India* in 1932-33, p. 182.

३. *Cf.* Whitehead, p. 178; Marshall, *Taxila*, p. 16.

नाम था ।[1] साथ ही एक दूसरे प्रकार के सिक्के भी प्राप्त हुए, जिनमें एक ओर यूनानी में Azilises का नाम तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में एज़ेस का नाम मिलता है। डॉक्टर भण्डारकर तथा स्मिथ दोनों ने इस प्रकार के सम्मिलित सिक्कों से यह निष्कर्ष निकाला है कि स्वतंत्र रूप से शासक बनने के पूर्व Azilises एज़ेस का सहायक तथा उसके ही अधीन था। इसी प्रकार यह भी हो सकता है कि शासक बनने के पूर्व एज़ेस Azilises का सहायक और उसके अधीन रहा हो। इसलिए एज़ेस नाम के जिन राजाओं का उल्लेख ऊपर आया है, वे दो ही रहे होंगे, एक नहीं हो सकते। इन दोनों का उल्लेख एज़ेस-प्रथम और एज़ेस-द्वितीय के रूप में ही युक्तियुक्त है। ह्वाइटहेड के अनुसार Azilises के चाँदी के सिक्के अधिक अच्छे तथा एज़ेस के समय की प्रणाली से कहीं पुरानी प्रणाली के मालूम होते है। एज़ेस के कुछ अन्य धातुपत्रों की तुलना Azilises के उन सिक्कों से की गई है, जिनमें एक ओर Zeus और दूसरी ओर Dioskouroi है। यदि Azilises एज़ेस के पहले हुआ था तो हमें एज़ेस-प्रथम और एज़ेस-द्वितीय के बजाय Azilises प्रथम या द्वितीय कहा जाना ही ज्यादा ठीक मालूम होता है। ह्वाइटहेड ने अन्त में कहा है कि एज़ेस के वंशजों में जो भेद या अन्तर पाये जाते है वे स्थानान्तरण के फलस्वरूप कहे जा सकते हैं। इन लोगों का काफ़ी समय तक शासन रहा।[2] मार्शल[3] के अनुसार तक्षशिला में प्राप्त सिक्कों से तो स्मिथ का यह कथन

१. महादेव धरघोष औदुम्बर ने Azilises के सिक्कों की नक़ल की थी (*CHI*, 529; *ASI. AR*, 1934-35, pp. 29, 30)। हमारे पास Maues और Azes राजाओं को नये कालक्रम में भी रखने के लिए कुछ तथ्य हैं। Kadphises I ने अपने सिक्कों पर Augustus या उसके उत्तराधिकारियों के सिक्कों पर अंकित मूर्त्ति की नकल की थी। शासक Azilises को भी इस प्रकार Julian Emperors या कुषाण के हमलों के बहुत पहले या बहुत बाद का नहीं कहा जा सकता।

२. निम्न कोटि की कारीगरी का अर्थ है गान्धार से दूर होना न कि पुरातापन (*Cf CHI*, 569 f.)। Hoffmann और Sten Konow दो एज़ेस को नहीं मानते और एज़ेस को Azilises ही कहते हैं। मार्शल के अनुसार Azilises उत्तरी-पश्चिमी भाग तथा कपिशी पर शासन करता था (*JRAS*, 1947, 25 ff)।

३. स्मिथ जिन सिक्कों को एज़ेस-द्वितीय का कहता है, वे और बाद के ही मालूम होते हैं (*JRAS*, 1914, 976)। एस० कोनोव के मत के लिए *Ep. Ind.*, 1926, 274 और *Corpus*, II, i. xxxix-xl देखिये। एज़ेस का नाम अन्य बाद के शासकों के साथ भी मिलता है, जबकि Azilises का नाम केवल Azes के ही साथ मिलता है। इससे सिद्ध है कि Azes नाम के अनेक राजा हुए थे।

ही सत्य मालूम होता है कि Azilises प्रथम और द्वितीय एज़ोस-प्रथम के बाद ही हुए थे ।

आठम नामक राजा के सोने के सिक्कों के मिलने से एक और नई खोज का मार्ग प्रशस्त होता है । ह्वाइटहेड इस राजा को Azes और Azilises के ही वंश का मानता है । फिर भी, राजा आठम के समय का निर्धारण अनिश्चित ही है ।

यद्यपि भारतीय-यूनानी शासक[1] ऐसा नहीं करते थे, तो भी शक-शासक अपने सिक्कों पर अपने को Basileus Basileon या प्राकृत में दूसरी ओर "महाराजस राजराजस' लिखवाते थे । वे 'महतस' विशेषण भी धारण करते थे, जिसका यूनानी रूपान्तर Megaloy होता है । यूनानी सिक्कों पर हमें यह यूनानी रूपान्तर ही मिलता है । 'राजराज' अर्थात् 'राजाओं के राजा' की उपाधि केवल कोरे बड़प्पन की उपाधि मात्र नहीं थी । मोगा के अधीन लिआक और पटिक, दो क्षत्रप या वाइसराय थे, और ये पश्चिमी पंजाब पर शासन करते थे । एज़ेस राजा के अधीन भी स्ट्रैटेगोस अस्पवर्मन नामक शासक था, ऐसा उल्लेख मिलता है । फ़ारस के बेहिस्तुन-शिलालेख में 'सत्रप' या 'क्षत्रप' उपाधि का उल्लेख 'क्षत्रपावन' के रूप में मिलता है, जिसका अर्थ 'राज्य का रक्षक' होता है ।[2] स्ट्रैटेगोस' शब्द यूनानी है, जिसका अर्थ 'जनरल' होता है । इससे स्पष्ट है कि सीथियन लोग उत्तर-पश्चिमी भारत पर अपने क्षत्रपों तथा सैनिक गवर्नरों के माध्यम से राज्य करते थे । ऊपर के क्षत्रपों के अतिरिक्त भी सिक्कों तथा शिला-लेखों मे अन्य अनेक क्षत्रप-वंशों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है ।

उत्तरी भारत के क्षत्रपों या अन्य क्षत्रपों को भी मुख्यतया तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है—

१. कपिशी, पुष्पपुर तथा अभिसारप्रस्थ के क्षत्रप,

२. पश्चिमी पजाब के क्षत्रप, तथा

३. मथुरा के क्षत्रप ।

माणिकिआला-शिलालेखों में केवल कापिशी के क्षत्रप का ही उल्लेख मिलता है ।

---

१. इस सम्बन्ध में युक्राटीड्स के सिक्के अपवादस्वरूप हैं । उसके एक सिक्के में 'महाराज राजतिराजस' Evukratidasa मिलता है (*Corpus*, II, i, xxix n) । See also Whitehead, p. 85.

२. *Cf.* ऋग्वेद का 'क्षपावन्' (*Vedic Index*, I. 208) । 'राष्ट्रपाल' अर्थ-शास्त्र में, तथा मालविकाग्निमित्रम् या गुप्त-कालीन शिलालेखों का 'गोप्तृ' या 'देश-गोप्तृ' ।

कपिशी का क्षत्रप ग्रनवृयक (Granavhryaka)[1] का पुत्र था। क़ाबुल-म्युज़ियम में रखे सन् ८३[2] के एक शिलालेख में पुष्पपुर के क्षत्रप का नाम अंकित मिलता है। इस क्षत्रप का नाम तिरुवर्ण (Tiravharna) था। पुष्पपुर, अर्थात् 'फूलों का नगर' से पुष्करावती का संकेत मिलता है। पंजाब में मिली एक ताँबे की मुहर में अभिसारप्रस्थ के क्षत्रप का नाम शिवसेन है।[3] इन तीनों क्षत्रपों द्वारा शासित प्रदेश सम्भवतः अशोक के समय के योन, गान्धार और कम्बोज प्रदेश थे।

पंजाब के क्षत्रप तीन वंशों के कहे जाते हैं—

१. **कुसुलुआ या कुसुलुक-वंश**—इस वंश में लिआक तथा उसके पुत्र पटिक (छहरत या क्षहरात-वंश के) शामिल थे। ये सम्भवतः चुक्ष (Chuksha)[4] ज़िले पर शासन करते थे। फ़्लीट के अनुसार पटिक[5] नाम के दो व्यक्ति थे। किन्तु, मार्शल के अनुसार पटिक नाम का केवल एक ही व्यक्ति वाइसराय या क्षत्रप था।[6] कुसुलुक का सत्रपाल-वंश मथुरा के क्षत्रपों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित था।[7] लिआक कुसुलुक के सिक्कों से लगता है कि ये लोग जिस ज़िले के थे, वह पूर्वी गान्धार का एक भाग था, और यूक्राटीड्स (यूनानी शासक) के हाथ से शकों के हाथ आ गया था।[8] तक्षशिला से प्राप्त सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि लिआक राजा मोगा का क्षत्रप था। उसका लड़का पटिक 'महादानपति' था।[9]

१. Rapson, *Andhra Coins*, ci; *Ancient India*, 141; *JASB*, 1924, 14; *Corpus*, II. i. 150-51.

२. *Acta Orientalia*, xvi; Pars. iii, 1937, pp. 234 ff.

३. *Corpus*, II. i. 103.

४. Buhler, *Ep. Ind.*, IV, p. 54; S. Konow, *Corpus*, II. i. 25-28. स्टीन (Stein) के अनुसार चुक्ष आजकल के Chach का ही पुराना नाम था। यह सम्भवतः अटक (Attock) ज़िले में था।

५. *JRAS*, 1907, p. 1035. तक्षशिला के लेखों में से लायक (Liaka) के होने का संकेत मिलता है (*Corpus*, II. i. 145)। एक लिआक का उल्लेख मानसेहरा (Mansehra) शिलालेख में मिलता है। हो सकता है कि यही लिआक पटिक (Patika) का पिता रहा हो (*Ep. Ind.*, XXI, 257)।

६. *JRAS*, 1914, pp. 979 ff.

७. *Cf.* Inscription G. on the Mathura Lion Capital.

८. Rapson, *Ancient Indian*, p. 154.

९. *Ep. Ind.*, XXI, 257; *JRAS*, 1932, 953n.

२. **मनिगुल और उसका पुत्र जियोनिसेस या जिहोनिक**—सिक्कों के आधार पर इसे एज़ेस-द्वितीय के समय में पुष्करावती का क्षत्रप माना जा सकता है। किन्तु, मार्शल की १६२७[1] की एक खोज के अनुसार जिहोनिक (Jihonika) शक-सम्वत् के १६१वें वर्ष में तक्षशिला के समीप चुक्ष का क्षत्रप था। इसका वास्तविक कार्यकाल अज्ञात है।[2] जियोनिसेस (Zeionises) का उत्तराधिकारी सम्भवतः कुजुल-कर (Kuyula Kara) था।[3]

३. **इन्द्रवर्मन का वंश**[4]—इस वंश में इन्द्रवर्मन, उसका लड़का अस्पवर्मन तथा अस्प का भतीजा शश आते हैं। अस्पवर्मन एज़ेस-द्वितीय तथा गोण्डोफ़र्न्स का गवर्नर था,जबकि शश गोन्डोफ़र्न्स तथा पाकोर(Pakores) का सहायक शासक था।

मथुरा के क्षत्रप

इस वंश के आरम्भिक शासकों के बारे में विश्वास किया जाता है कि वे हगान और हगामश के शासक थे। इसके बाद राजुवुल ने शासन सँभाला। सम्भवतः इसने पहले शाकल प्रदेश पर भी शासन किया था। एलन[5] के अनुसार उसने बाद में मथुरा में अपने राज्य की स्थापना की थी। राजुवुल या राजुल को एस० कोनोव[6] द्वारा तैयार की गई वंश-परम्परा पाद-टिप्पणी में दी जा रही है।

१. *JRAS*, 1928, January, 137 f; *Corpus*, II. i. 81 f.

२. *Ep. Ind.*, XXI, 255 f.

३. *CHI*, 582 n, 588.

४ कुछ विद्वानों के अनुसार, 'इन्द्रवर्मन' विजयमित्र का पुत्र इत्रवर्म था। विजयमित्र को वियकमित्र का उत्तराधिकारी माना गया है। अधिक विवरण के लिए Majumdar, *Ep. Ind.*, xxvi, 1 ff; Sircar, *Select Inscriptions*, 102 ff; *Ep. Ind.*, xxvi, 321; Mookerjee, *IC*, XIV, 4, 1948, 205 f. देखिये।

५. *CIC. AI.*, CXV.

६. *Corpus*, II, 74.
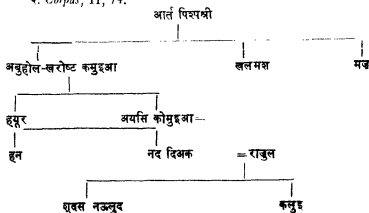
तत्कालीन शिलालेखों तथा सिक्कों से राजुवुल या राजुल का अस्तित्व प्रमाणित होता है। मथुरा के निकट मोरा (Mora) में ब्राह्मी लिपि में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिसमें उसे 'महाक्षत्रप' कहा गया है। किन्तु, यूनानी रिकार्डों में कुछ ऐसे सिक्कों का उल्लेख है जिसमें इस महाक्षत्रप को 'राजाओं का राजा' कहा गया है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि कदाचित् उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था।

राजुवुल के बाद उसका पुत्र शुदस, सोमदास या शोडास उत्तराधिकारी हुआ था। मथुरा के एक शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) में उसे 'क्षत्रव' (क्षत्रप) कहा गया है जो कि 'महाक्षत्रव' राजुल का पुत्र भी था। किन्तु, मथुरा वाले लेख के बाद प्राप्य ब्राह्मी लिपि के लेखों में उसे 'महाक्षत्रप' कहा गया है। ऐसे ही एक शिलालेख में उसका समय भी ७२वाँ वर्ष दिया गया है, किन्तु सम्वत् अज्ञात है। इससे यह स्पष्ट है कि अपने पिता के काल मे वह केवल 'क्षत्रप' ही था। किन्तु, उसकी मृत्यु के बाद, अर्थात् ७२वें वर्ष के कुछ पूर्व वह 'महाक्षत्रप' हो गया था। एस० कोनोव का यह भी मत है कि शोडास ने अपने शिलालेख में विक्रम-सम्वत्[1] के ७२वें वर्ष की तिथि स्वयं डलवायी थी। इस प्रकार उसके मत से यह ७२वाँ वर्ष ईसवी सन् का १५वाँ वर्ष है।

डॉक्टर आर० सी० मजूमदार ने उत्तरी भारत, अर्थात् तक्षशिला और मथुरा के क्षत्रपों को शक-सम्वत् से सम्बन्धित माना है और इनका समय ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के मध्य में रखा है। किन्तु, लगभग इसी काल में हुए तोलेमी ने तक्षशिला या मथुरा को इण्डोसीथियन, अर्थात् शक-राज्य के अन्तर्गत नहीं रखा है। उसके अनुसार दूसरी शताब्दी में न तो मथुरा ही और न तक्षशिला ही शक-राज्य के अन्तर्गत था। तोलेमी के समय में Patolene (सिन्धु का डेल्टा), Abiria (पश्चिमी भारत का आभीर प्रदेश) तथा Syrastrene (काठियावाड़) इण्डोसीथियन राज्य के अन्तर्गत पड़ता था। यह तथ्य

किन्तु, इस वंश-वृक्ष को विद्वान् प्रामाणिक नहीं मानते। पुराने मत के अनुसार खरोष्ट, राजुल की पुत्री का लड़का था। इसके लिए Allan, *CCAI*, 185, 138 *Ante*.

१. रैप्सन के अनुसार ४२, किन्तु अधिक विद्वान् ७२ को उचित समझते हैं।

२. *Ep. Ind.*, Vol. XIV, pp. 139-141.

शक-शासक रुद्रदामन-प्रथम के जूनागढ़-शिलालेख में भी मिलते हैं। रुद्रदामन सम्भवतः ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी के मध्य में हुआ था। तोलेमी के समय में तक्षशिला अर्स (संस्कृत-उरशा)[1] राज्य के तथा मथुरा कस्पेरेओई (Kaspeiraioi)[2] राज्य के अन्तर्गत था। डॉक्टर मजूमदार का कहना है कि तोलेमी ने सम्भवतः माऊस और उसके उत्तराधिकारियों के समय के शक-राज्य का उल्लेख किया है, जिसमें मथुरा, तक्षशिला तथा उज्जयिनी को भी शामिल कर लिया गया था।[3] किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तोलेमी ने शक-राज्य के मुख्य भूभागों[4]— इण्डोसीथिया तथा कस्पेरेओई— में अन्तर बताया है। फिर भी तत्कालीन कस्पेरेओई क्षेत्र में झेलम, रावी और चिनाब के उद्गम का निचला प्रदेश भी अवश्य सम्मिलित रहा होगा। कश्मीर और उसका समीपवर्ती भाग इसके अन्तर्गत रहा होगा।[5] किन्तु, इस बात का प्रमाण नहीं उपलब्ध हो सका है कि माऊस के वंशजों ने कश्मीर पर भी कभी राज्य किया था। कनिष्क तथा उसके राजवंश के शासन-काल में ही कश्मीर और मथुरा केवल एक ही राज्य के अन्तर्गत रहे है। Abbe Boyer ने कहा है कि तोलेमी का 'कस्पेरेओई' सम्भवतः कुषाण राज्य की ओर संकेत करता है।

हमें मथुरा के शिलालेख (Mathura Lion Capital Incriptions) से पता चलता है कि शोडास 'क्षत्रप' तथा कुसुलुक पटिक 'महाक्षत्रप' था। शोडास ७२वे वर्ष के आसपास महाक्षत्रप था। इस हिसाब से ऐसा लगता है कि इस वर्ष के पहले ही वह महाक्षत्रप हो गया था। इसी प्रकार क्षत्रप शोडास का सम-

---

१. *Ind. Ant.*, 1884, p. 348.

२. *Ind. Ant.*, 1884, p. 350.

३. *Journal of the Department of Letters*, University of Calcutta, Vol. I, p. 88n.

४. *Cf.* Ptolemy, *Ind. Ant.*, 1884, p. 354 तथा शक-शासक रुद्रदामन का जूनागढ़-शिलालेख।

५. कश्यप देश ? राजतरंगिणी, 1.27; *IA*, 227. विल्सन के अनुसार कश्यपपुर ही कश्मीर का पुराना नाम था (*JASB*, 1899, Extra 2, pp. 9-13)। किन्तु, स्टीन (Stein) ने इसको अस्वीकार किया है, और कहा है कि कश्मीर ही पुराना कस्पेरेओई (Kaspeiraioi) प्रदेश रहा है। तोलेमी के साक्ष्य पर यह ज्ञात होता है कि Kaspeira प्रदेश मुल्तान के समीप स्थित था। अल्बेरूनी (I. 298) ने मुल्तान को ही कश्यपपुर कहा है।

कालीन कुसुलुक पटिक भी ७२वें वर्ष के पूर्व ही महाक्षत्रप हो गया रहा होगा। ७८वें वर्ष के तक्षशिला के धातुपत्र में पटिक को 'क्षत्रप' या 'महाक्षत्रप' नही कहा गया है। इसमें उसे 'महादानपति' तथा उसके पिता लिआक को छत्रपाल' (Satrapal) कहा गया है। डॉक्टर फ़्लीट[1] ने दो पटिक का उल्लेख किया है। इसके विपरीत, मार्शल और एस० कोनोव का मत है कि तक्षशिला-शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) लिखवाने वाला महादानपति पटिक मथुरा का महाक्षत्रप कुसुलुक पटिक ही है। किन्तु ७२वें वर्ष के तथा ७८वें वर्ष के शिलालेख में एक ही सम्वत् का प्रयोग नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में जहाँ फ़्लीट दो व्यक्तियों की ओर संकेत करते हैं, वहाँ मार्शल और एस० कोनोव दो सम्वत् बताते हैं। किन्तु, इस सम्बन्ध में सचमुच इतनी कम सामग्री मिलती है कि कोई निष्कर्ष निकाल सकना बहुत ही दुष्कर कार्य है। फिर, चूँकि लिआक नाम के दो व्यक्ति मिलते हैं, इसलिए फ़्लीट के मत को निरर्थक भी नही कहा जा सकता। किन्तु, पटिक नाम के दो राजाओ के होने की बात को मान्यता देना कोई आवश्यक नही है, क्योंकि तक्षशिला-शिलालेख मे पटिक के महाक्षत्रप होने की सम्भावना पर प्रतिबन्ध नही लगता। दूसरे हमें यह भी याद रखना चाहिये कि इस सम्बन्ध मे चाश्तान-वंश के उदाहरण मिलते है कि किसी महाक्षत्रप को उसके पद से अलग करके उसे नीचे का ओहदा भी दिया जा सकता था, जबकि परिवार के अन्य लोग ऊँचे पदों पर रहते थे।[4] कभी-कभी 'क्षत्रप' का उल्लेख बिना उसकी उपाधि के भी हो सकता था।[5] इसलिए यह भी असम्भव नहीं कि ऊपर आये ७२वें तथा ७८वें वर्ष एक ही सम्वत् के रहे हों। फिर भी दोनों पटिक सम्भवतः एक ही थे।[6] यदि एस० कोनोव तथा मार्शल ने १३४वे

---

१. Stein Konow, *Corpus*, Vol. II, Pt. I,28; *Ep. Ind.*, XIX, 257.

२. *JRAS*, 1913, 1001 n.

३. *Cf.* Majumdar, *The Date of Kanishka*, *Ind. Ant.*, 1917.

४. Rapson, *Coins of Andhra Dynasty*, etc. cxxiv f.

५. Andhau Inscriptions.

६. राजतरंगिणी में एक ऐसा उदाहरण है जिसके अनुसार पुत्र के बाद पिता उसका उत्तराधिकारी राजा हुआ था (राजा पार्थ)। एक राजा ने अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन छोड़ दिया था, किन्तु फिर राजा बन गया था। राजा कलश ने अपने पिता के साथ-साथ राज्य किया था। जोधपुर के राजा मानसिंह

वर्ष के कलवान-ताम्रपत्र तथा १३६वें वर्ष के तक्षशिला शिलालेख को ठीक-ठीक पढ़ा है तो हमें इस तथ्य का और उदाहरण मिल जाता है कि इस समय के शासकों का उल्लेख कभी-कभी बिना उसकी उपाधि के भी होता था।

एस० कोनोव के अनुसार खरोष्ट (Kharaosta) राजुवुल का श्वसुर तथा फ़्लीट के अनुसार, उसकी लड़की का लड़का यानी नाती था। इस प्रकार वह शोडास का भतीजा हुआ।[1] मथुरा के शिलालेख (Mathura Lion Capital Inscription) में खरोष्ठ को 'युवराय खरोष्ठ' भी कहा गया है। एस० कोनोव[2] के विचार से वह मोगा के बाद 'राजाओं के राजा' के पद पर आया था। उसके दो प्रकार के सिक्के भी मिले हैं जिनमें एक ओर यूनानी लिपि तथा दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि मिलती है। खरोष्ठी लिपि इस प्रकार है—'क्षत्रप प्रखरोष्टस अर्टस पुत्रस।' एस० कोनोव के अनुसार ऊपर के 'प्र' से 'प्रचक्षस' का संकेत मिलता है।[3]

राजुवुल-वंश के सिक्कों में स्ट्रैटोस तथा मथुरा के हिन्दू-राजाओं के सिक्कों की नक़ल मिलती है। इससे यह भी लगता है कि यूनानियों तथा हिन्दू-राजाओं को समाप्त करके सीथियन-शासक यमुना की घाटी की ओर पहुँचे।

वोगेल (Vogel) ने मथुरा के समीप गणेश्रा स्थान से एक अधूरे शिलालेख का पता लगाया है जिसमें क्षहरात के क्षत्रप-वंश का नाम 'घटाक' दिया गया है।[4]

उत्तरी क्षत्रपों की राष्ट्रीयता

कनिंघम का कहना है कि मथुरा के शिलालेख (Mathura Lion Capilal Inscription) में 'सर्वस सकस्तनस पुयए' से राजुल, शोडास तथा शक-

---

का भी उदाहरण हमारे सामने है। इस संबंध में विजयादित्य-सप्तम् (*Eastern Chalukya*, D. C. Ganguli, p. 104) तथा गुजरात के जाफ़रखाँ का भी उदाहरण दिया जा सकता है (*Camb. Hist. Ind.*, III. 295)।

१ *JRAS*, 1913. 919, 1009.

२. *Corpus*, 36.

३. *Corpus*, xzxv. प्रचक्षस (=epiphanous, "of the gloriously menigest one") स्ट्रैटो-प्रथम तथा Polyxanos के सिक्कों पर भी मिलता है। हो सकता है कि 'सत्रप' (क्षत्रप) शब्द का संस्कृत रूपान्तर 'प्रखर ओजस' (of burning effulgence) रहा हो।

४. *JRAS*, 1912, p. 121.

क्षत्रपों के बारे में एक निश्चित प्रमाण मिल जाता है। डॉक्टर थॉमस का कथन है कि उत्तरी भारत के क्षत्रप लोग पार्थियन तथा शक राज्यों के प्रतिनिधि थे। तक्षशिला के पटिक से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि उसका फ़ारसी नाम है, और उसने मोगा को अपना राजा कहा है जिसका नाम शक था। Lion Capital में फ़ारसी तथा शक, दोनों प्रकार के नाम मिलते हैं।[1] किन्तु, यह भी ध्यान में रखने की बात है कि हरिवंश[2] के एक अनुच्छेद में पह्लवों या पार्थियनों को 'श्मश्रुधारिणः' भी कहा गया है।[3] इस कसौटी पर कसने पर राजुल और नहपान-वंश के शासक पार्थियन कहे जा सकते हैं। वे उसी राष्ट्रीयता के भी हो सकते हैं। किन्तु, सिक्कों पर दी गई मूर्ति में दाढ़ी-मूछों के चिह्न नहीं मिलते, इसलिए यह प्रायः निश्चय हो जाता है कि ये लोग शक ही थे।[4]

२. पह्लव या पार्थियन[5]

यूक्राटीड्स के समय में ही पार्थिया के राजा मिथ्राडेट्स ने सम्भवतः पंजाब और सिन्ध को अपने राज्य में मिला लिया था। शक-राजाओं के समय में जबकि माऊस और मोगा राजाओं के वंश के राजा लोग राज्य कर रहे थे, शक-पह्लव-रक्त के लोग उत्तरी भारत में क्षत्रप के रूप में शासन करते थे। परन्तु, यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि चारक्स के इसीदोर (Isidore of Charax) ने क़ाबुल की घाटी, सिन्ध तथा पश्चिमी पंजाब को पार्थियन तथा पह्लव राज्य में नहीं मिलाया था। इसीदोर सम्भवतः आगस्टस का अल्पवयस्क समकालीन था, और वह २६ वर्ष ईसापूर्व के पहले नहीं हुआ था। उसका उल्लेख प्लिनी ने भी किया है। विद्वानों ने पार्थियन-राज्य के पूर्वी हिस्सों में हेरात (Arca), फ़राह

१. *Ep. Ind.*, Vol. IX. pp. 138 ff; *JRAS*, 1906, 215 f. For Sten Konow's viewes, see *Corpus*, II, i. xxxvii.

२. I. 14, 17.

३. यह अनुच्छेद वायु पुराण (Ch. 88, 141) में भी मिलता है।

४. *JRAS*, 1913, between. pp. 630-631.

५. पार्थियन (पार्थव या पह्लव) ईरानी थे, तथा आजकल के मजन्दरान तथा खुरासान ज़िलों की सीमा पर बसे थे। २४९-२४८ ईसापूर्व के लगभग इन लोगों ने सीथियन अर्षक के नेतृत्व में विद्रोह भी किया था (Pope and Ackerman, *A Survey of Persian Art*, p. 71)।

(The fountry of the Anauoi, a segment of Aria, *i.e.*, the Herat Province), हेमन झील के जिले के और हेलमण्ड (Helmund-Drangiane Sakaothane) के बीच के जिले तथा कन्दहार (Arachoria or 'White India') का भी उल्लेख किया है। पहली शताब्दी के मध्य में या इसी के आस-पास पार्थियनों ने स्वयं गान्धार में शक-सत्ता की स्थापना की थी। सन् ४३-४ ईसवी में जबकि टीना का अपोलोनियस (Apollonios of Tyana) तक्षशिला आया था, यहाँ एक पार्थियन राजा फ्रेओटोस (Phraotos)[१] राज्य करता था। वह पार्थिया तथा बेबीलोन के सम्राटों के अधीन नहीं था (सी० ३६-४७/४८ ईसापूर्व) और स्वयं इतना शक्तिशाली था कि सिन्धु के क्षत्रप उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। ईसाई विद्वानों ने गुन्दफ़र या गुदनफ़र (Gundaphar or Gudnaphar) नामक एक भारतीय राजा का उल्लेख किया है। उपर्युक्त पार्थियन राजा के भाई का 'गद' नाम से उल्लेख आया है। ये लोग पहली शताब्दी में हुए थे तथा सेन्ट टॉमस ने सम्भवतः इनका धर्म-परिवर्तन भी कराया था। हमें अपोलोनियस के जीवन-चरित्र के लेखक के सम्बन्ध में कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं मिलता। अज्ञात सम्वत् के १०३सरे वर्ष के प्रतीत होने वाले रिकार्ड 'तख्त-ए-बाही' से स्पष्ट होता है कि पेशावर जिले में गुदुवर (Guduvhara) या गोण्डोफ़र्न्स नाम का एक राजा हुआ। कुछ सिक्कों पर भी कुछ विद्वानों के अनुसार गोण्डोफ़र्न्स तथा उसके भाई 'गद' का नाम मिलता है?[२] रैप्सन के अनुसार दोनों भाई आर्थन्स (Orthagnes or Verethragna) के अधीन थे। एस० कोनोव ने गोण्डोफ़र्न्स को ही आर्थन्स नामधारी भी कहा है। हर्ज़फ़ेल्ड के मतानुसार आर्थन्स, वार्डेन्स का लड़का था तथा उसने वोलेस (Volagases)

१. अप्रतिहत (Gondophernes) according to Herzfeld and Farn (*Gereeks*, 341)।

२. Debevoise, *A Political History of Parthia*, 270.

३. सेन्ट थॉमस की मूल पुस्तक तीसरी शताब्दी की मालूम होती है (*JRAS*, 1918, 634); *Cf. Ind. Ant.*, 3. 309.

४. Whitehead, pp. 95, 155. Gondophernes—Vindapharna, "Winner of glory" (Whitehead, p. 146, Rapson and Allan)। इस राजा ने 'देवव्रत' की उपाधि भी धारण की थी। S. Konow ने फ्लीट की तरह सिक्कों पर मिले 'गुडन' शब्द को 'गोण्डोफ़र्न्स' वंश के ही किसी राजा का नाम माना है।

प्रथम (५५ ईसवी) के सिंहासन के अधिकारी होने का दावा किया था।[1] इसका उल्लेख टेसीटस ने भी किया है। डॉक्टर फ़्लीट ने तख्तवारी की तिथि के सम्बन्ध में मालव-विक्रम सम्वत् का उल्लेख किया है। इस रिकार्ड का समय इस इतिहास-कार ने ४७ ईसवी माना है।[2] डॉक्टर फ़्लीट के मतानुसार उपर्युक्त १०३ सरे वर्ष को विक्रम संवत् का ५८वाँ वर्ष मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये। इस मत के अनुसार गोण्डोफ़र्न्स का समय ईसवी सन् का ४७वाँ वर्ष पड़ता है तथा गोण्डोफ़र्न्स टॉमस का समकालीन सिद्ध हो जाता है।

आरम्भ में गोण्डोफ़र्न्स का राज्य-विस्तार गान्धार तक नहीं था। ऐसा लगता है कि आरम्भ में उसका शासन केवल दक्षिणी अफ़गानिस्तान[3] तक ही सीमित था। अपने शासन-काल के २६ वर्ष पहले ही उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया था। यद्यपि उसने राजा एज़ेस के कुछ प्रान्तों पर अधिकार कर रक्खा था तो भी उसके पूर्वी गान्धार के जीतने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अस्पवर्मन के सिक्कों से प्रकट होता है कि एज़ेस-द्वितीय से भी इसने शासन हस्तगत किया था। पहले अस्पवर्मन ने एज़ेस-द्वितीय की अधीनता स्वीकार की थी, किन्तु बाद में वह गोण्डोफ़र्न्स का मातहत शासक हो गया था। सिन्धु की घाटी से पार्थियनों द्वारा शक-प्रभाव समाप्त किये जाने का प्रमाण ६०-८० ईसवी के रिकार्ड 'Periplus' में मिलता है। सीथिया का एक नगर मिन्नगर था। सिन्धु की घाटी में शक-राज्य पार्थियनों के अधीन था, तथा दोनों ही एक दूसरे को सत्ताच्युत् करने का प्रयास सदैव ही करते रहते थे। यदि १३४वें वर्ष के कलवान तथा १३६वें वर्ष के तक्षशिला-लेखों को एम० कोनोव तथा सर जान मार्शल ने सही-सही पढ़ा है (Aja, Aya etc.) तो यह हो सकता है कि जब सिन्धु की घाटी (lower) का शासन शकों के हाथ से पार्थियनों के

१. *Corpus*, xlvi; *The Cambridge Shorter History of India*, 70.

२. *JRAS*, 1905, pp. 223-235; 1906, pp. 706-710; 1907, pp. 169-172; 1013-1040; 1913, pp. 999-1003. कनिंघम और डॉसन (*IA*, 4. 307) के तत्सम्बन्धी मतों तथा खलात्सी (Khalatse) और तक्षशिला के शिलालेखों की प्राप्ति से फ़्लीट का कथन तब तक अर्द्धसत्य प्रतीत होगा, जब तक कि हम दो शक-पह्लव-संवतों का अस्तित्व न मानें। डॉक्टर जायसवाल के अनुसार गोण्डोफ़र्न्स का समय २० ईसापूर्व हो सकता है। किन्तु, यह तिथि ईसवी सन् से मेल नहीं खाती।

३. *JRAS*, 1913, 1003, 1010.

हाथ में गया हो, उसी समय पूर्वी गान्धार[1] में शक-प्रभाव का पुनरोदय हुआ हो, किन्तु Aja Aya, या Azes के साथ कोई प्रतिष्ठासूचक शब्द नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त १३६वें वर्ष में तक्षशिला में बुद्ध के अवशेषों की स्थापना के उल्लेख के साथ 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कुषाण' का भी उल्लेख मिलता है। इससे लगता है कि १३४वाँ तथा १३६वाँ—दोनों ही वर्ष एज़ेस के 'प्रवर्द्धमान विजय-राज्य' (increasing and victorious region) से बिलकुल सम्बन्ध नही रखते, बल्कि उस समय से सम्बन्धित हैं जबकि एज़ेस का राज्य इतिहास की सामग्री (अतीत राज्य) बन चुका था। जानीबिघा-शिलालेख के उल्लेख 'लक्ष्मणसेनस्य-अतीत राज्ये सं ८३' से भी प्रायः उसी समय का बोध होता है।[3]

जब अपोलोनियस ने भारत की यात्रा की थी, उस समय क़ाबुल की घाटी का यूनानी राज्य प्रायः समाप्त हो चुका था। जस्टिन के अनुसार पार्थियनों ने यूनानी बैक्ट्रियनों को हराया था। मार्शल[2] के अनुसार पार्थियन तथा कुषाण दोनों क़ाबुल की घाटी को हथियाना चाहते थे। यह कथन फ़िलोस्ट्रैटो के कथन से काफ़ी साम्य रखता है। उसके अनुसार ४३-४४ ईसवी में भारत की सीमा पर रहने वाले बारबेरियन तथा पार्थियन राजाओं में काफ़ी ज़ोर की लागडाँट रहा करती थी।

गोण्डोफ़र्न्स के साथ उसका भतीजा अब्दगसेस (Abdagases) (दक्षिणी अफ़ग़ानिस्तान में), उसके सेनापति अस्पवर्मन और सस तथा गवर्नर सपेदन (Sapedana) तथा सतवस्त्र (Satavastra), ये सब के सब उसके सहायक शासक थे।

---

१. फ़्लीट द्वारा 'स १३६ अयस अषडस मसस, आदि' की व्याख्या के लिए देखिये *JRAS*, 1914, 995 ff; Also *Calcutta Review*, 1922, December, 493-494. एस० कोनोव के अनुसार, किसी समय 'आद्यस्य' के स्थान पर 'अयस' का ही प्रयोग होता था। यह यहाँ पर 'अषडस' का विशेषण है। किन्तु, कलवान-शिलालेखों की प्राप्ति के बाद उसने अपना मत बदल दिया और अब उसका मत है कि 'अयस', 'अजस' से एज़ेस के संवत् का कोई संबंध नहीं है। यह पार्थियन शासकों से संबंधित है (*Ep. Ind.*, xxi. 255 f.)। उसने १३४वें तथा १३६वें वर्ष का, ५८ ईसापूर्व के साथ, उल्लेख किया है।

२. Raychaudhuri, *Studies in Indian Antiquities*, pp. 165 f.

३. *ASI. AR*, 1929-30, 56 ff.

पार्थियन सम्राट् की मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया था। इनमें से एक राज्य, सम्भवतः सीस्तान पर सनबरस, दूसरे (कन्धहार और पश्चिमी पंजाब के समीपवर्त्ती भाग) पर पकोरस तथा अन्य राजकुमार विभिन्न भागों पर राज्य करने लगे थे। राजकुमारों का उल्लेख मार्शल द्वारा तक्षशिला में प्राप्त सिक्कों में मिलता है। 'पेरीप्लस' के निम्न अनुच्छेद में पार्थियन राजाओं के आपसी झगड़ों का कुछ संकेत मिलता है—

"बारबैरिकम के पूर्व में एक छोटा-सा द्वीप है, जिसके बाद सीथिया का प्रमुख नगर मिन्नगर है। यह नगर पार्थियन राजाओं के अधिकार में था जो कि आपस में ही एक दूसरे को सत्ताच्युत् करने के चक्कर में रहा करते थे।"

कुछ सिक्कों तथा अन्य माध्यमों से प्राप्त सामग्री के संकेतानुसार पह्लव या पार्थियन लोग अफ़ग़ानिस्तान में राज्य करते थे। पंजाब और सिन्ध की स्थापना कुषाण राजाओं ने की थी। इस वंश का नाम गुषाण, खुषाण या कुषाण था।[1] हमें ज्ञात है कि १०३वें वर्ष में (जो कि फ्लीट के अनुसार ईसवी सन् का ४७ वर्ष था) गोन्डोफ़र्न्स पेशावर पर राज्य करता था। पंजतर-शिलालेख से पता चलता है कि १२२वे वर्ष में इस भाग की प्रभुसत्ता गुषाण या कुषाण वंश के हाथों में चली गई।[2] १३६वें वर्ष में कुषाण-प्रभुसत्ता का विस्तार तक्षशिला तक हो गया। उस समय के कुछ प्रमाण तक्षशिला के मन्दिर में प्राप्त हुए हैं। कुछ बुद्ध के अवशेष भी वहाँ मिले हैं। इनके साथ 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कुषाण' शब्दावली का उल्लेख भी मिलता है। मुई-विहार तथा मोहन-जोदड़ो के खरोष्ठी-शिलालेखों से भी यह सिद्ध होता है कि कुषाण-वंश ने सिन्धु की निचली घाटी पर भी अधिकार कर लिया था। ६२ ईसवी में मृत चीनी लेखक पान-कू ने लिखा है कि यू-ची ने काओ-फू या क़ाबुल पर आक्रमण किया था और उसका क़ाबुल पर अधिकार भी था। इससे लगता है कि जिस जाति से ये कुषाण

---

१. इस वंश के नामों के लिए R. Schafer, *JAOS*, 67. 4, p. 296 ff; *Cf. AOS*, 65. 71 ff देखिये।

२. फ़िलोस्ट्रेटोस (Philostratos) से हमें पता चलता है कि अपोलोनियस (Appollonios) (43-44 ईसवी) के समय में तक्षशिला के पार्थियन राज्य के सीमावर्त्ती निवासी बारबैरियन (कुषाण) लोग पहले से ही फ्रोटेस (Phraotes) से लड़ते-झगड़ते रहते थे, तथा उसके राज्य पर आक्रमण करते रहते थे (*The Life of Appolonius*, Loeb Classical Library, pp. 183 ff)।

लोग सम्बन्धित थे, उस जाति का सन् ६२ ईसवी के पहले क़ाबुल पर कब्ज़ा रहा होगा। इसमें कोई शक नहीं कि 'काओ-फू' "ताँउ-मी" शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है। किन्तु, केनेडी के मतानुसार यह ग़लती सम्भव न हुई होती, यदि पान-कू के समय में यू-ची का काओ-फू पर अधिकार न रहा होता।[१] उल्लेखनीय बात यह है कि ६२ ईसवी के चीनी लेखक के अनुसार इस समय से पूर्व ही यूची का काओ-फू पर अधिकार था। यदि एस० कोनोव पर विश्वास किया जाय तो कुषाण-वंश का भारतीय सीमा के प्रदेशों से संबंध तब था जबकि गोण्डोफ़र्न्स राज्य करता था। 'तख्त-ए-बाही' शिलालेख में 'एर्भुण कपस पुयए'[२] का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख राजकुमार कप के सम्मान में आया है। कुषाण-वंश के कुजुल काडफ़िसेस (Kuyula Kadphises) के बारे में कहा जाता है कि हर्मेभ्रोस के बाद क़ाबुल की घाटी का राज्य उसके हाथ में आ गया था। कहते हैं कुजुल राजा ही कुइ-शुआंग या कुषाण-वंशी राजा था जिसका क़ाबुल पर अधिकार था। इससे स्पष्ट है कि यह कुषाण राजा[३] हर्मेभ्रोस का मित्र राजा ही रहा होगा। इन दोनों राजाओं ने अपने सिक्के भी संयुक्त रूप में जारी किये थे।[४] सम्भवतः राजा कुजुल काडफ़िसेस गान्धार के पार्थियन राजा का भी मित्र ही था। इसके अतिरिक्त यह भी अनुमान लगाया जाता है कि पार्थियन लोगों ने ही हर्मेभ्रोस का राज्य भी छिन्न-भिन्न किया था। उसने पार्थियनों पर आक्रमण किया था और पार्थियनों के उत्तरी-पश्चिमी भारत के सीमावर्ती प्रभाव को समाप्त किया था।

१. *JRAS*, 1912, pp. 676-678; *JRAS*, 1912, p. 685 n.

२. *Ep. Ind.*, XIV, p. 294; XVIII (1926), p. 282; *Corpus*, II,i, 62. इस सम्बन्ध में यह याद रखना आवश्यक है कि ४३-४४ ईसवी में तक्षशिला के पार्थियन राजा ने कुछ बारबैरियनों की भी सहायता ली थी। ये देश की चौकसी का काम करते थे। हो सकता है, बारबैरियन लोग कभी-न-कभी कुषाणों के मित्र भी रहे हों। इस राजा के समय को 60 ईसवी के बाद नहीं रखा जा सकता (*JRAS*, 1913, 918)।

३. या इस राजा का कोई पूर्वज रहा होगा (*Cf.* Tarn, *The Greeks*, pp. 339, 343)।

४. Pedigree coins accoruing to Tarn.

५. पार्थियनों की विजय के पूर्व कपिशी राज्य Maues और Spalirises की अधीनता स्वीकार करता था (*CHI*, 590 f)। फ्रोटेस (Phraotes) के शत्रु कुषाण लोगों ने सम्भवतः क़ाबुल से अपने प्रभुत्व को नष्ट होते देखकर वहाँ यूनानी शासन की पुनर्स्थापना कर दी थी।

३. महान् कुषाण

चीनी इतिहासकारों द्वारा हमें ज्ञात होता है कि कुइ-शुआंग देश के शासक कुषाण यूची जाति के ही अंग थे। किंग्स मिल (Kingsmill) के अनुसार 'यूची' शब्द का आधुनिक उच्चारण 'यूती' होना चाहिए। एम० लेवी (M. Levi) तथा अन्य फ्रांसीसी विद्वानों के अनुसार यह शब्द 'यूची' न होकर 'यूत्वी' है।

प्रसिद्ध राजदूत चांग-कीन की यात्रा का सविस्तार वर्णन लिखने वाले चीनी इतिहासकार सू-म-चीन (Ssu-ma-ch'ien) के मतानुसार यूची जाति के लोग तुन-ह्वांग (Tun-huang) अथवा Tsenn-hoang तथा चीनी तुर्किस्तान[1] स्थित इसीकुल झील के पूर्वी-दक्षिणी किनारे पर स्थित कीलिन पर्वत के मध्य ई०पू० १७४ से ई०पू० १६५ में रहते थे। उन्हीं दिनों यूचियों को ह्यंग-नू ने न केवल हरा कर देशनिकाला दे दिया, वरन् उनके सम्राट् की हत्या कर उसके कपाल का मधुपात्र बना डाला। पति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा रानी ने समस्त शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली। उसके नेतृत्व में यूची पश्चिम की ओर धीरे-धीरे बढ़े तथा वु-सुन (Wu-sun) पर आक्रमण करके वहाँ के राजा का वध कर दिया।[2] यहाँ की लूटमार के बाद उन्होंने इली के किनारे तथा सीर दरया (नदी) (Syr Darya) के मैदान में बसने वाले शकों पर आक्रमण करके उनके शासक को किपिन (कपिशा-लम्पाक-गान्धार) में शरण लेने पर विवश कर दिया।[3]

---

१. स्मिथ (*EHI*, p. 263) का कहना है कि उन लोगों ने उत्तर-पश्चिम चीन के कन्सुह (Kansuh) प्रान्त पर अधिकार कर लिया था। देखिये *CHI*, 565; Halfen, *J. Am. Or. Soc.*, 65, pp. 71 ff. For the Hiung-nu-Hun Problem, *cf.* Stein, *IA*, 1905, 73 f, 84.

२. यूचियों की मुख्य शाखा इसीकुल झील को पार कर पश्चिम की ओर बढ़ी, बाक़ी लोग दक्षिण की ओर जाकर तिब्बत की सीमा पर बस गए। इन लोगों को 'Little Yueh-chi' के नाम से पुकारा जाने लगा। इन्होंने गान्धार में स्थित पुरुषपुर को अपनी राजधानी बनाया (Smith, *EHI*,[4] 264; S. Konow, *Corpus*, II. i. lxxvi)।

३. घुमक्कड़ शक की एक शाखा ने फ़रग़ना को घेर लिया—*c.* 128 B. C. (Tarn, *Greeks*, 278 n. 4, 279)।

इसी बीच वु-सुन के वधित राजा का पुत्र वयस्क हो चुका था, अतः उसने ह्युंग-नू की सहायता से यूचियों को सुदूर पश्चिम में ताहिया (Ta-hia) राज्य तक भगा दिया। ताहिया के निवासी शान्तिप्रिय व्यापारी थे, और युद्धविद्या में दक्ष न होने के साथ-ही-साथ पारस्परिक एकता के सूत्र में न बँधे रहने के कारण यूचियों द्वारा सरलतापूर्वक पराजित कर दास बना लिये गये थे। साथ ही उन्होंने वेयी (Wei) के उत्तर में सोग्डियाना (आधुनिक बुखारा) के भूभाग में अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। ई०पू० १२८-१२६ में जब चांग-कीन ने इधर का दौरा किया, उस समय भी यह राजधानी अपनी प्राचीन अवस्था में ही विद्यमान मिली।[१]

सू-मचीन की (ई०पू० ९१ के पूर्व लिखी) पुस्तक 'से-के' अथवा 'शी-की' में चांग-कीन की रोमांचकारी यात्रा का पूर्ण वर्णन है। इसी कथा को पान-कू (Pan-Ku) ने अपनी पुस्तक 'तीन हॉन-शू' (*Ts'ien Han-shu*) अथवा *Annals of the First Han Dynasty* में फिर से लिपिबद्ध किया। इस पुस्तक में हमें ई०पू० २०६ से लेकर सन् ९ अथवा २४ ई० तक का वर्णन मिलता है। सन् ९२ ई० में पान-कू की मृत्यु के बाद उसकी बहन ने यह पुस्तक पूरी की और इसमें निम्नलिखित तीन महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश किया—

(१) ऑक्सस[२] के उत्तर में स्थित कीन-ची अथवा कीन-शी नामक नगर को ता-यूची (Ta-Yueh-chi) ने अपने साम्राज्य की राजधानी बनाई। इसी की दक्षिणी सीमा पर किपिन (Kipin) नामक नगर स्थित था।

(२) यूची जाति वाले खानाबदोश अथवा घुमक्कड़ जाति के नहीं थे।

(३) यूची-साम्राज्य का विभाजन अब पाँच प्रदेशों में हो चुका था। वे पाँचों प्रदेश थे—(i) **हीउ-मी** (Hi (eo)-umi)—यह प्रदेश सम्भवतः पामीर तथा हिन्दूकुश के मध्य स्थित वाकहान[३] देश था; (ii) **चॉऊआंग्मी अथवा शुआंग्मी**

---

१. *JRAS*, 1903, pp. 19-20; 1912, pp. 668 ff; *PAOS*, 1917, pp. 89 ff; Whitehead, 171; *CHI*, 459, 566, 701; Tarn, *Greeks*, 84, 274 n, 277; S. Konow, *Corpus*, II. i. xxii-xxiii, liv, lxii.

२. *Cf. Corpus*, II. i. liv.

३. सम्भवतः वॉकहान के शासक बकनपति का वर्णन 'महाराज राजातिराज देवपुत्र कुषाणपुत्र शाहि वामतक्ष (म)' (जिसकी तिथि अज्ञात है) के लेखों में मिलता है। देवपुत्र की उपाधि से ही स्पष्ट है कि उनका सम्बन्ध कुषाण-वंश के राजकुमारों से है, न कि काडफ़िसेस-वंश के राजाओं से (*ASI*, 1911-12, Pt. I. 15; 1930-34, Pt. 2. 288)।

(Chouangmi or Shuangmi)—यह प्रदेश वाकहान तथा हिन्दूकुश के दक्षिण में स्थित चितराल था; (iii) **कुइ-चुआंग** अथवा **कुइ-शुआंग**—कुषाण-वंश का मुख्य प्रदेश, जो चितराल तथा पंजिषर देश के मध्य स्थित था। (iv) **हितहुम** (Hithum) (पंजिषर-स्थित परवान); और (v) **कॉउ-फ़ॉउ** (**क़ाबुल**)।[1]

आगे चलकर यूचियों के सम्बन्ध में, फ़ॉनई द्वारा रचित पुस्तक (*Hou Han-shu or Annals of the Later Han Dynasty*) से बहुत कुछ ज्ञात होता है। इसमें सन् २५ ई० से सन् २२० ई० तक का वर्णन है। फ़ॉनई ने पान-यंग (*Cir.* A. D. 125) तथा अन्य व्यक्तियों[2] के आधार पर अपनी पुस्तक की रचना की थी। सन् ४४५ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय लानशी (चिनशी)[3] नगर का प्राचीन रूप ताहिया संभवतः यूचियों की राजधानी था। ताहिया नगर ऑक्सस के उत्तर में स्थित था। फ़ॉनई ने यूचियों द्वारा इस नगर के विजित होने का वर्णन इस प्रकार किया है—

"प्राचीन काल में हूयुग-नू ने यूचियों को पराजित किया। इसके उपरान्त वे ताहिया पहुँचे, जहाँ उसे आपस में पाँच शी-हॉउ (*Hsi-h* (*e*) *ou*) अथवा यावगूस[4] में बाँट लिया। ये पाँचों थे—शिउमी, शुआंग्मी, कुइ-शुआंग, सीतुन और तूमी। लगभग १०० वर्षों के बाद शी-हॉउ कुई-शुआंग (कुषाण) वंश के क्यु-ज्यु-कियो ने आक्रमण करके और अन्य चार को पराजित कर अपने आप को वहाँ का नरेश (वांग) घोषित किया। उसने न्गान्सी (आर्सेकिड देश

१. आगे चलकर एक इतिहासकार ने लिखा कि ताँउ-मी को ग़लती से कॉउ-फ़ॉउ कहा गया है, यद्यपि यह क़ाबुल से अधिक दूर नहीं है (*JRAS*, 1912, 669)। उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिये देखिये, *Corpus*, II, i. lvi; *Cf. JRAS*, 1903, 21; 1912, 669. एस० कोनोव का कहना है कि कुइ-शुआंग गांधार अथवा इसी के उत्तर-स्थित देश से सम्बन्धित है (*Ep. Ind.*, XXI, 258)।

२. *Cf.* S. Konow, *Corpus*, liv—"यह घटना सन् २५-१२५ ई० के बीच की है, जिसका वर्णन फ़ॉन-ई ने किया है। राजा न्गान (Ngan) (१०७-२५) की मृत्यु के उपरान्त जो राज्य चीन के अधिक सम्पर्क में थे, उनका वर्णन आगे चल कर भी किया गया है (*Ep. Ind.*, XXI, 258)।

३. **अलेक्ज़ेंड्रिया=ज़रिआस्पा** (Zariaspa) **अथवा** Bactria (*Tarn, Greeks*, 115, 298; *JAOS*, 61 (1941), 242 n.)।

४. एक मत के अनुसार जब यूचियों ने बैक्ट्रिया पर आक्रमण किया, उस समय ताहिया में पाँचों शी-हॉउ विद्यमान थे (*JAOS*, 65. 72 f.)।

अर्थात् पार्थिया) पर आक्रमण कर कॉउ-फ़ॉउ (क़ाबुल) पर अधिकार कर लिया । उसने पोता[1] और किपिन राज्यों को पराजित कर इन समस्त देशों पर अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया । क्यु-ज्यु-कियो अस्सी वर्ष से अधिक आयु तक जीवित रहा । उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र येन-काऊ-चेन सिंहासनारूढ़ हुआ । उसने अपने शासन-काल में तीन-चाऊ (बड़ी नदी के तट पर स्थित भारत, स्पष्ट है कि इसका संकेत फ़िलोस्ट्रैटो द्वारा इंगित तक्षशिला राज्य की ओर है) को जीत कर शासन के लिये अपना प्रतिनिधि छोड़ दिया । अब यूची अत्यन्त शक्तिशाली जाति बन गई, और अन्य सभी देश वहाँ के लोगों को उनके राजा के नाम पर, कुषाण कहने लगे । परन्तु, हान ने उनको उनके प्राचीन नाम ता-यूची के नाम से ही सम्बोधित किया है ।

क्यु-ज्यु-कियो और कोई न होकर कुजुला[2] काडफ़िसेस[3]-प्रथम अथवा कोज़ोला काडाफ़ीज़, कुषाण-वंश का प्रथम शासक था और उसने हिन्दूकुश के दक्षिण मे अपनी मुद्रा चलाई थी । इन्हीं सिक्कों द्वारा यह प्रमाणित होता है कि क़ाबुल की घाटी का अंतिम यूनानी राजा हर्मेओस का मित्र[4] था और आगे चल कर उसका

१. सम्भवतः यही पोताई नगर था जहाँ के राजा शुंग-युन ने गांधार के राजा के पास शेर के दो बच्चे उपहारस्वरूप भेजे थे (Beal, *Records of the Western World*, Vol. I, ci) । एस० कोनोव (*Ep. Ind.*, XVIII) ने पूता को 'ग़जनी' कहा, परन्तु आगे चल कर क़ाबुल से दस मील पूर्व की ओर स्थित बुतखाक से सम्बन्धित किया (*Ep. Ind.*, XXI, 258) ।

२. *Cf.* Kusuluka. इसका अर्थ सम्भवतः 'सुन्दर' अथवा 'शक्तिशाली' है (S. Konow, *Corpus*, I) । बरो (*The Language of the Kharoshthi Documents*, 82, 87) के अनुसार कुजुल=गुशुर=वज़ीर । डॉ० थॉमस का विचार है कि इस शब्द का अर्थ 'Saviour' है ।

३. पह्लवी में कद=मुख्य+पिसेस या पेस=रूप, *JRAS*, 1913, 632 n.

४. फ्लीट और थॉमस, *JRAS*, 1913, 967, 1034. कुछ विद्वानों के अनुसार कुषाण-आक्रमण के समय हर्मेओस की मृत्यु हो चुकी थी, पर उसकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक भी उसके नाम की मुद्रायें चलती रहीं । इनके अनुसार हर्मेओस-काडफ़िसेस की मुद्रायें 'वंश-मुद्रायें' थीं, किन्तु बैचोफ़र (*JAOS*,61.240 n) इससे सहमत नहीं है । मित्रता के सिद्धान्त में विश्वास रखने वाले विद्वान् अपने कथन की पुष्टि में मार्शल चांग-काई शेक तथा अमेरिका के सोने की डालर पर अंकित प्रेसीडेन्ट रूज़वेल्ट की मूर्त्तियों का उदाहरण दे सकते हैं (*A. B. Patrika*, 29. 3. 1945) ।

उत्तराधिकारी बना था। मार्शल के अनुसार, यह मत कि काडफ़िसेस ने हर्मेओस को पराजित किया, सर्वथा भ्रामक है। एस० कोनोव के अनुसार गोण्डोफ़र्न्स के शासन-काल में, सन् १०३ ई० के 'तख्त-ए-बाही' लेख में भी इसका उल्लेख है।[1] यह लेख सम्भवत: उस युग का है जब कुषाण एवं पार्थियन शासकों में मित्रता थी। परन्तु, जब पार्थियनों ने हर्मेओस के राज्य पर आक्रमण किया तो मित्रता का नाता टूट गया और अंत में दोनों के बीच युद्ध हुआ। परिणामस्वरूप काडफ़िसेस-प्रथम ने पार्थियनों को पराजित कर निष्कासित कर दिया।

मार्शल के अनुसार काडफ़िसेस-प्रथम और कोई न होकर सन् १२२ ईसवी के पंजतर-रिकॉर्ड में, और सन् १३६ ई० के तक्षशिला-रिकॉर्ड में पाया जाने वाला कुषाण शासक ही है।[2] हमें यह बात स्पष्ट रूप से स्मरण रखना है कि सन् १३६ ई० में तक्षशिला में पाये जाने वाले लेख में जिस कुषाण शासक का नाम आया है, उसे 'देवपुत्र' की उपाधि प्राप्त थी। यह उपाधि काडफ़िसेस प्रथम अथवा द्वितीय के उत्तराधिकारियों की न होकर कुषाण-वंश वालों की थी। यदि हम काडफ़िसेस-प्रथम को कुयुल-कर-कफ़स[3] मान लें तो यह उपाधि काडफ़िसेस-वंश वालों की मानी जा सकती है। इस लेख में जो मोनोग्राम हमें मिलता है, वह केवल काडफ़िसेस-वंश के शासकों की मुद्राओं में ही अंकित नहीं है, वरन् मार्शल और एस० कोनोव के अनुसार कुयुल-कर-कफ़स आदि की मुद्राओं पर भी अंकित है। यदि सन् १८४ ई० अथवा १८७ ई० में प्राप्त खलात्से (Khalatse) शिला-लेख में आये हुए नाम 'विमा कवथिशा' (Uvima Kavthisa) को मार्शल तथा एस० कोनोव ने ठीक पढ़ा है, यदि सन् १२२ ई० तथा १३६ ई० में पाये जाने वाले पंजतर और तक्षशिला लेखों में आये हुए 'विमा काडफ़िसेस' से सम्पर्क ठीक जोड़ा है; और, यदि वे वीमा के पूर्वज ही थे (Wema or Wima) तो उसे काडफ्सिेज-प्रथम ही होना चाहिये। परन्तु, 'विमा कवथिशा' नाम पढ़ना और फिर उसे 'काडफ़िसेस-द्वितीय' बताना न्यायोचित नहीं जान पड़ता है।

१. S. Konow द्वारा की गई व्याख्या प्रो० रैप्सन को मान्य नहीं (*JRAS*, 1930, pt 189)।

२. सन् १३६ ई० के कुषाण राजा को विमा, अर्थात् काडफ़िसेस-द्वितीय बताया गया है (*JRAS*, 1914, pp. 977-78; *Rapson*, *CHI*, 582)।

३. आर० डी० बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन मुद्रा' में पृ० ८५ पर इसका उल्लेख किया है। परन्तु, इसका पाठ ठीक किया गया है। मैं इसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि काडफ़िसेस-प्रथम ने सोने की मुद्रा न चला कर केवल ताँबे की मुद्रायें ही चलायी थीं। निस्संदेह ही उसके ऊपर रोम राज्य का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है।[1] इस दिशा में उसने सम्राट् ऑगस्टस अथवा उसके उत्तराधिकारियों और मुख्य रूप से सम्राट् क्लॉडियस (सन् ४१ ई० से सन् ५४ ई०)[2] की मुद्राओं की नक़ल की थी। साथ ही उसने 'यवुग' (शासक) 'महाराज', 'राजातिराज' और 'सचध्रम थित' की उपाधि धारण की थी।[3]

क्यु-ज्यु-कियो अथवा काडफ़िसेस-प्रथम की मृत्यु के पश्चात्, उसका पुत्र येन-कॉव-चेन—मुद्राओं में विमा या वीमा काडफ़िसेस के नाम से प्रसिद्ध—काडफ़िसेस-द्वितीय की उपाधि धारण कर सिंहासनारूढ़ हुआ। यह तो हमने पहले ही जान लिया है कि उसने तीन-चाऊ (भारतीय भूभाग, सम्भवतः तक्षशिला) को जीत कर वहाँ का शासन-भार यूची नाम से शासन करने वाले अपने एक सरदार पर छोड़ दिया था। स्मिथ[4] और स्टेन कोनोव[5] के अनुसार काडफ़िसेस-द्वितीय ने

---

१. उसके एक प्रकार के ताँबे के सिक्कों पर रोमनिवासी का सिर अंकित है, जो सम्भवतः सम्राट् ऑगस्टस (ई०पू० २७ से सन् १४ ई०), टिबेरियस (सन् १४ से ३७ ई०) अथवा क्लॉडियस (सन् ४१ से ५४ ई०) की नक़ल है (*JRAS*, 1912, 679; 1913, 912; Smith, *Catalogue*, 66; *Camb. Short Hist.*, 74)। रोम और उसके निवासी, रोमकों, आदि का वर्णन सर्व-प्रथम महाभारत (II. 51, 17) में आया है; और, फिर उसके बाद की अन्य सामग्रियों में भी उसका उल्लेख मिलता है। रोम और भारत के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध ऑगस्टस के शासन-काल में ही स्थापित हो गया था। उसके दरबार में राजा 'पांडियन' का राजदूत था (*JRAS*, 1860, 309 ff; *Camb. Hist. Ind.*, I, 597)। ६६ ई० के लगभग ट्रेजन (६८ ई० से ११७ ई०) के दरबार मे भारतीय राजदूत निवास करता था। स्ट्रैबो, प्लिनी और पेरिप्लस ने भारत तथा रोम के बीच होने वाले व्यापार का भी उल्लेख किया है। यह व्यापार प्रथम शताब्दी में होता था (देखिये *JRAS*, 1904, 591; *IA*, 5, 281; 1923 50)।

२. *The Cambridge Shorter History*, 74, 75.

३. Smith, *Catalogue*, 67 n; S. Konow, *Corpus*, II, i, lxiv f; Whitehead, 181.

४. *The Oxford History of India*, p. 128.

५. *Ep. Ind.*, XIV, p. 141.

सन् ७८ ई० में शक-सम्वत् आरम्भ किया। यदि इस विचार को हम सत्य मान लें तो कह सकते हैं कि शायद वह नहपाण का शासक था, और कदाचित् वही कुषाण-सम्राट् था, जिसे चीनी सम्राट् होती (सन् ८९ ई० से सन् १०५ ई० तक) ने सन् ७३ से सन् १०२ ई० के मध्य न केवल पराजित किया था, वरन् वार्षिक कर देने पर भी बाध्य किया था। परन्तु, हमारे पास ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है जिससे सिद्ध किया जा सके कि काडफ़िसेस-द्वितीय ने कोई सम्वत् चलाया। इसके विपरीत हमारे पास पूरा प्रमाण है कि कनिष्क ने नया सम्वत् चलाया था जिसे उसके उत्तराधिकारियों ने भी प्रचलित रखा। आज भी हमारे पास सन् १ से लेकर सन् ९९ तक की तिथियाँ हैं।[1]

काडफ़िसेस सम्राटों द्वारा विजय करने के पश्चात् भारतवर्ष, चीन एवं रोम साम्राज्य के बीच व्यापार आदि में पर्याप्त उन्नति तथा वृद्धि हुई। सिल्क, मसाले तथा हीरे-जवाहरात के मूल्य के रूप में रोम-साम्राज्य का स्वर्ण भारतवर्ष में प्रचुर मात्रा में निरन्तर आने लगा। स्वर्ण की अधिकता से प्रभावित होकर काडफ़िसेस-द्वितीय ने सोने के सिक्के प्रचलित कराये।[2] उसने सोने और ताँबे के मिश्रण से भी बनी मुद्रायें चलायी।[3] मुद्रा के एक ओर सम्राट् का सजीव चित्रण किया गया था और दूसरी ओर केवल शिव की उपासना दिखाई गई थी। पतंजलि[4] के कथनानुसार 'शिव-भागवतों' के समय से ही, शिव की उपासना बढ़ती जा रही थी। खरोष्ठी-शिलालेख में काडफ़िसेस-द्वितीय को "महाराजा, राजा-

१. 'सैकड़ों छोड़े गये सिद्धान्त' की आलोचना के लिये देखिये *JRAS*, 1913, 980 f.

२. विमा (*NC*, 1934, 232) की एक स्वर्ण-मुद्रा में उसकी उपाधि इस प्रकार है—*Basileus Basilewn Soter Megas* (Tarn, *Greeks*, 354 n 5)। इस उपाधि के द्वारा अनामधारी राजा सोतर मेगास के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

३. विमा काडफ़िसेस द्वारा चलाई गई साधारण ताँबे की छोटी-सी मुद्रा से मिलती-जुलती चाँदी की एक दूसरी मुद्रा पाई गई है (Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 174)। इसी सम्राट् की चाँदी की अन्य मुद्राओं के सम्बन्ध में मार्शल ने कनिष्क का हवाला दिया है (*Guide to Taxila*, 1918, 81)। देखिये *ASI. AR*, 1925-26, pl. lxf. स्मिथ (*EHI*[4], p. 270) और अन्य लोगों ने हुविष्क की चाँदी की मुद्राओं का हवाला दिया है।

४. V. 2. 76 ; देखिये पाणिनि-कृत 'शैव', IV. 1. 112.

धिराजा, सम्पूर्ण विश्व का स्वामी, महेश्वर एवं रक्षक"[१] आदि उपाधियों से सम्बोधित किया गया है।

Yu-Houan की पुस्तक वी-लिओ (*Wei-lio*)[२] (२३९-२६५ ई०) में महाराजा वी (Wei) के शासन-काल से लेकर सम्राट् मिंग[३] (२२७-२३९ ई०) के शासन-काल तक हमलों का वर्णन मिलता है। उक्त लेखक ने लिखा है कि यूची की शक्ति किपिन (कपिशा-गांधार), ताहिया (ऑक्सस घाटी), क़ॉउ-फ़ॉउ (क़ाबुल) तथा तीन-चाऊ (भारतवर्ष) में निरंतर बढ़ती जा रही थी। यह शक्ति तीसरी शताब्दी के द्वितीय चरण में भी स्पष्ट थी। परन्तु, प्राचीन काल के चीनी इतिहासकार येन-कॉव-चेन (काडफ़िसेस-द्वितीय) के उत्तराधिकारियों के नाम के सम्बन्ध में पूर्णतया मौन हैं वैसे चीनी सूत्रों से यह अवश्य ज्ञात होता है कि ता-यूची को, जिस शासक का नाम पोति-ऑव (Po-tiao), पूआ-डीउ (Pua-di'eu), या सम्भवतः वासुदेव था, उसने चीनी सम्राट् के दरबार में सन् २३० ई० में अपना राजदूत भेजा था।[४] भारतवर्ष मे पाये जाने वाले लेखों के आधार पर कुषाण-वंश के राजाओं के बारे में पूरा-पूरा परिचय ज्ञात है। इस आधार पर काडफ़िसेस-वंश के अतिरिक्त कनिष्क-प्रथम (१-२३),[५] वासिष्क (२४-२८),[६]

१. जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, स्टेन कोनोव ने, विमा(Uvima) कवथिशा (काडफ़िसेस ?) का नाम खलात्से (लद्दाख) के सन् १८७ (?) के लेख में पढ़ा था (*Corpus*, II, i. 81)। यह राजा कौन था, इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक ढंग से कुछ नहीं कहा जा सकता।

२. *A History of the Wei Dynasty* (A. D. 220–264)।

३. *Corpus*, II, i. lv.

४. *Corpus*, II, i. lxxvii.

५. देखिये *JRAS*, 1913, 980; 1924, p. 400; देखिये दयाराम साहनी, *Three Inscriptions and Their Bearings on the Kushan Dynasty*; *IHQ*, Vol. II, 1927, p. 853; Sten Konow, *Further Kanishka Notes*; and *Ep. Ind.*, XXIV, 210.

६. यदि वासिष्क शासक वही है जिसका उल्लेख साँची-लेखों में वास कुषाण के नाम से किया गया है, तो उसका शासन-काल सन् २२ के बाद किसी भी प्रकार से आरम्भ नहीं माना जा सकता, जैसा कि उसी वर्ष की बनी भगवान् बुद्ध की मूर्ति के लेख से स्पष्ट है (*Pro. of the Seventh Session of the I. H. Congress*, Madras, p. 135)।

हुविष्क (२८-६०)[१], वाभेष्क के पुत्र कनिष्क-द्वितीय (४१) और वासुदेव[२] (६७-६८)[१] का पता चलता है। मिलकर राज्य करने वाले हुविष्क, वाभेष्क और कनिष्क-द्वितीय को कल्हण ने हुष्क, जुष्क और कनिष्क के नाम से सम्बोधित किया है। हम देखेंगे कि कनिष्क-द्वितीय सन् ४१ में राज्य करता था। यह तिथि हुविष्क के राज्य-काल (२८-६०) में पड़ती है। इस प्रमाण के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ कल्हण ने लिखा है, वह सर्वथा सत्य एवं प्रामाणिक है।

जिस तथ्य की सत्यता क्रमबद्ध रूप में मुद्रा के द्वारा भी प्रमाणित होती है, उसी के आधार पर कहा जा सकता है कि काडफ़िसेस-वंश के उत्तराधिकारी कनिष्क-वंश के शासक थे। परन्तु, बहुत से विद्वान् इस मत से सहमत नहीं हैं। इसके अतिरिक्त कनिष्क-वंश को काडफ़िसेस-वंश के बाद का बताने वाले लोग भी इस विषय में एकमत नहीं हो पाये हैं। कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध में दिये गये मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है—

१. डॉ० फ्लीट के मतानुसार काडफ़िसेस-वंश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था। ई०पू० ५८ में उसने विक्रम-सम्वत्[३] की स्थापना की। यह सिद्धान्त (जिसे

---

१. *Cf. Ep. Ind.*, XXI, 55 ff—*Mathura Brahmi Inscription of the Year 28*. *Ep. Ind.*, XXIII 35—Hidda *Inscription of* 28.

२. *Hyd. Hist. Congress*, 164.

३. विक्रम-सम्वत् का आरम्भ कब से हुआ, इस सम्बन्ध में देखिये *JRAS*, 1913, pp. 637, 994 ff; Kielhorn, *Ind. Ant.*, xx (1891), 124 ff, 397 ff; *Bhand. Com. Vol.*, pp. 187 ff; *CHI*, pp. 168, 533, 571; *ZDMG*, 1922, pp. 250 ff; *Ep. Ind.*, xxiii. 48 ff; xxvi. 119 ff. कीलहार्न और अब अल्तेकर ने उपलब्ध सूत्रों, तिथियों आदि से जो निष्कर्ष निकाला है, उससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सम्वत् का प्रयोग केवल दक्षिणी-पूर्वी राजपूताना, मध्यभारत तथा गंगा के उत्तरी मैदान में ही प्रचलित था। अत्यन्त प्राचीन लेखों में जहाँ इस सम्वत् का उल्लेख मिलता है, वहाँ हमें पेन्ज़र के 'कृत' राजा की उपाधि का स्मरण भी हो आता है (*The Ocean of Story*, III. 19)। फ्लीट ने भी कृतीय शासकों का उल्लेख *JRAS* (1913, 998 n) में किया है। युद्ध एवं अशान्ति के पश्चात् जो स्वर्ण-युग आया, उसका सम्बन्ध भी 'कृत' से है। पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक इस सम्वत् का उपयोग मुख्य रूप से मालव-नरेशों ने ही किया है। इस सम्वत् के साथ 'विक्रम' शब्द धीरे-धीरे नवीं शताब्दी के पश्चात् ही जुड़ पाया। अगली शताब्दी की कविताओं तथा लेखों को

कभी कनिंघम और डॉउसन ने भी स्वीकार किया तथा फ्रेंक ने प्रतिपादित किया था) कैनेडी द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। परन्तु, डॉ० थॉमस द्वारा जिसकी

आदि में सम्वत् के स्थान पर 'विक्रम-सम्वत्', 'श्रीनृप विक्रम-सम्वत्' आदि का प्रयोग होने लगा। यह परिवर्त्तन सम्भवतः मालवा के शत्रु गुजरात-नरेशों एवं निवासियों के सतत् परिश्रम के कारण ही सम्भव हो सका था। सातवाहनों को इस सम्वत् अथवा किसी अन्य सम्वत् का पता नहीं चल पाया, इसीलिये उन्होंने सन् का ही प्रयोग किया है, भारतीय साहित्य में 'विक्रम' एवं 'शालिवाहन' सम्वत् में विशेष अंतर पाया जाता है। एज़ेस के कथन के सम्बन्ध में देखिये *Calcutta Review*, 1922, December, pp. 493-494. फ्लीट का मत है कि यद्यपि यह सही है कि इसके साथ किसी वास्तविक राजा का नाम सम्बद्ध है, और अनुवाद करने पर इसका अर्थ 'अमुक राजा का शासन-काल' में होता है। फिर भी, इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसी राजा ने इस सम्वत् को प्रचलित किया था। एक शताब्दी तक चल लेने के पश्चात् जिस प्रकार सम्वत् का नामकरण हुआ, वही इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि इसका स्रोत और मूल वह नहीं हो सकता। अतः सन् १३४ तथा सन् १३६ के कलवान तथा तक्षशिला शिलालेखों के लेखों में 'अयस' अथवा 'अजस' शब्दों का जो प्रयोग हुआ है, उससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि इसको एज़ेस ने प्रचलित कराया था। हो सकता है कि आगे आने वाली पीढ़ियों ने ही उसका नाम सम्वत् के साथ जोड़ दिया हो, जैसे कि वलभी-नरेश का नाम गुप्त-काल के साथ, सातवाहन का शक-सम्वत् के साथ और विक्रम का 'कृत' सम्वत् के साथ जोड़ा गया है। इस सम्बन्ध में 'विक्रम' का अधिकार कहाँ तक है, देखिये *Bhand. Com. Vol.* and *Ind. Ant.* पुराणों में यद्यपि हमें 'गर्दभिल्ल' का उल्लेख मिलता है, परन्तु विक्रमादित्य के सम्बन्ध में वे भी मौन हैं। जैन श्रुति के अनुसार विक्रमादित्य का स्थान नहवाहन अथवा नहपाण के बाद ही आता है। फ्लीट के इस कथन के सम्बन्ध में, कि विक्रम-सम्वत् उत्तर में ही सीमित था, मैं आप का ध्यान कीलहार्न के लेख *'Chola-Pandya Institutions'* तथा प्रो० सी० एस० श्रीनिवासचारी के *'The Young Men of India'*, जुलाई १९२६ में प्रकाशित, की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। प्रोफ़ेसर महोदय के अनुसार ५वीं शताब्दी में इस सम्वत् का प्रयोग 'मदुरा' में किया जाता था। कीलहार्न ने स्पष्ट रूप से प्रमाणित कर दिया है कि इस सम्वत् का प्रचलन केवल उत्तर-पश्चिम भारत तक ही सीमित नहीं था।

विद्वतापूर्ण आलोचना की गई थी और जो अब मार्शल[1] द्वारा अनुसंधान करने के उपरान्त कदापि ग्राह्य नही रहा। लेखों, मुद्राओं तथा ह्वेनसांग के वर्णन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कनिष्क के राज्य में गांधार देश सम्मिलित था। परन्तु, हमने यह भी लक्ष्य किया है कि चीनी प्रमाण के आधार पर किपिन (कपिशा-गांधार) में कुषाणों का राज्य न होकर ई०पू० प्रथम शताब्दी के द्वितीय चरण में, इनमो-फू (Yin-mo-fu) का राज्य था। एलन का मत है कि "कनिष्क के युग की सोने की मुद्राओं की प्रेरणा सम्राट् को रोमन-सोलिडस से मिली थी।" साथ ही हम कुषाण-सम्राटों की तिथि टाइटस (७८-८१ ई०) तथा राजा ट्रेजन (९८-११७ ई०) के पूर्व किसी प्रकार भी नहीं रख सकते।

२. मार्शल, स्टेन कोनोव, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क सन् १२५ ई० अथवा १४४ ई०[3] में सिंहासनारूढ हुआ और उसका राज्य दूसरी शताब्दी के द्वितीय चरण[4] में समाप्त हुआ। सुई-विहार में पाये जाने वाले लेखों से ज्ञात होता है कि कनिष्क के राज्य में सिन्धु-घाटी के निचले भाग का थोड़ा-बहुत अंश भी सम्मिलित था। जूनागढ़ में पाये जाने वाले रुद्रदामन के लेखों से

१. Thomas, *JRAS*, 1913; Marshal, *JRAS*, 1914.

२. *Cambridge Short History*, p. 77.

३. अभी हाल में ही Ghirshman ने कनिष्क की तिथि सन् १४४–१७२ ई० निर्धारित की है (*Begram, Recherches Archaeologique et Historiques sur les Kouchans*)। सन् १२५ ई० में भारत पर कनिष्क अथवा हुविष्क का राज्य न होकर एक वायसराय का राज्य था, यह विचार थॉमस द्वारा *JRAS* (1913, 1024) में पूर्ण रूप से खण्डित किया जा चुका है। उनका मत है कि बाद के हान-इतिहासकारों ने विमा-काडफ़िसेस के आक्रमण के समय की दशा का वर्णन किया है, न कि सन् १२५ ई० की दशा का।

४. डॉ० स्टेन कोनोव के विचारों को समझ लेना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। *Indian Studies in Honour of C. R. Lanman* (Harvard University Press) में पृष्ठ ६५ पर वे लिखते हैं कि उनके तथा डॉ० वान विज्क के अनुसार कनिष्क-युग का आरम्भ सन् १३४ ई० से हुआ है (*Acta Orientalia*, III, 54 ff)। उन्होंने डॉ० वान विज्क के साथ सन् १२८-२९ को ही मान्यता दी है (*IHQ*, III, 1927, p. 851; *Corpus*, lxxvii; *Acta Orientalia*, V, 168 ff)। दोनों मतों में पाये जाने वाले इस भेद का उल्लेख प्रो० रैप्सन ने किया है (*JRAS*, 1930, 186 ff)। उनका कथन है कि "सन् ७९ ई० अविश्वसनीय प्रतीत होती है जब कि सभी सन् १२८-१२९ को ही स्वीकार करने के पक्ष में हैं।"

ज्ञात होता है कि महाक्षत्रप ने सिन्धु तथा सौवीर (पुराण तथा अल्बेरूनी के अनुसार मुलतान भी सम्मिलित था) पर विजय प्राप्त की थी, साथ ही सतलज के ओर की भूमि भी जीत ली थी। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि रुद्रदामन ने सन् १३० से १५० ई० तक राज्य किया। महाक्षत्रप के रूप में वह किसी अन्य के प्रति उत्तरदायी नहीं रहा (स्वयं अधिगत महाक्षत्रप नाम)[1]। यदि हम यह स्वीकार करें कि कनिष्क द्वितीय शताब्दी के मध्य में शासन करता था तो हम सुई-विहार तथा सिन्धु-घाटी के निचले भाग पर उसका तथा उसके समकालीन रुद्रदामन[2] का राज्य एकसाथ किस प्रकार न्यायोचित ठहरा सकेंगे ? साथ ही कनिष्क की तिथि १-२३, वासिष्क की तिथि २४-२८, हुविष्क की तिथि २८-६० और वासुदेव की तिथि ६७-९८ इस बात को सिद्ध करती है कि इनमें एक प्रकार का क्रम पाया जाता है। दूसरे शब्दों में कनिष्क एक नवीन युग का स्रष्टा था। परन्तु, हमें कहीं से किसी प्रकार का भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि दूसरी शताब्दी में उत्तर-पश्चिम भारत में किसी नवीन युग का उदय हुआ था।

३. डॉ० आर० सी० मजूमदार का मत है कि कनिष्क ने सन् २४८ ई० में 'त्रैकुटक-कलचुरि-चेदि-सम्वत्' की स्थापना की थी।[3] परन्तु, प्रो० जूब्यू डुब्रील (Jouveau-Dubreuil) का विचार है कि ऐसा कदापि सम्भव नहीं हो सकता।[4] "वास्तव में कुषाण-वंश के अंतिम शासक वासुदेव का अंत कनिष्क का राज्य आरम्भ होने के ठीक सौ वर्ष के पश्चात् हुआ था। अनेक लेखों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि वासुदेव मथुरा पर भी शासन करता था। यह भी निश्चित है कि वह देश, जहाँ वासुदेव का राज्य था, यौधेयों तथा नागों द्वारा लगभग ३५० ई० में जीत लिया गया था। साथ ही साथ यह भी सम्भवतः सत्य है कि समुद्रगुप्त द्वारा पराजित किये जाने के पूर्व लगभग एक शताब्दी तक यहाँ पर इन लोगों का शासन चलता रहा। नागों की राजधानी मथुरा, कान्तिपुर तथा पद्मावती थी।" सन् ३६० ई० में भारतीय सीमा पर कुषाणों की ओर से ग्रमबेटस[5] शासक था। डॉ० मजूमदार का यह कथन तिब्बती परम्पराओं से बिल्कुल

---

१. *Ep. Ind.*, VIII, 44.

२. *IHQ*, March, 1930, 149.

३. इस सम्वत् के लिये देखिये *JRAS*, 1905, pp. 566-68.

४. *Ancient History of the Deccan*, p. 31.

५. *EHI*[4], p. 290. The Chionitai identified by Cunningham with Kushans.

मेल नहीं खाता, क्योंकि उसमें कहा गया है कि कनिष्क खोतान[1] के राजा विजय-कीर्त्ति के समकालीन थे। साथ ही भारतीय परम्परा के अनुसार हुविष्क नागार्जुन के समकालीन थे। ये सातवाहन-वंश के थे, अतः इनकी तिथि दूसरी शताब्दी के बाद किसी प्रकार भी नहीं रखी जा सकती। हुविष्क को 'तीन सागर का शासक' तथा उत्तरी दक्षिण[2] में कोशल का सम्राट् बताया जाता है। अंत में चीनी त्रिपिटक के सूचीपत्र से विदित होता है कि कनिष्क के पुरोहित अन-शिह-काव[3] (सन् १४८-१७० ई०) ने संघरक्ष के 'मार्गभूमि-सूत्र' का अनुवाद किया था। इससे यह बात निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाती है कि कनिष्क की तिथि सन् १७० ई०[4] के पूर्व ही होनी चाहिये। जितने भी तर्क डॉ० मजूमदार के कथन के विरोध में दिये गये हैं, वे सभी सर आर० जी० भंडारकर के इस निष्कर्ष के विरुद्ध भी दिये जा सकते हैं कि कनिष्क का राज्याभिषेक सन् २७८ ई० में हुआ था।

४. फ़र्गुसन, ओल्डेनबर्ग, थॉमस, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० वॉन लोहुइज़ेन-डी लीऊ, बैचोफ़र तथा अन्य दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क ने ७८ ई० में शक-सम्वत्[5] का प्रचलन किया। प्रो० जूव्यू डुब्रील (Prof. Jouveou-Dubreuil) इस मत के विरोध में अग्रलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

---

१. *Ep. Ind.*, XIV, p. 142.

२. राजतरंगिणी, I, 173; हर्षचरित (Cowell), p. 252; Watters, *Yuan Chwang*, II.p. 200. हर्षचरित (Book VIII) में आये हुए 'त्रिसमुद्राधिपति' का प्रयोग नागार्जुन के मित्र सातवाहन के लिये किया गया है। इससे हमें गौतमीपुत्र शातकर्णि की याद आ जाती है, जिन्होंने तीन सागरों का जल पी लिया था। (तिसमुदतोयपितवाहन), अथवा इससे उनके बाद के ही उत्तराधिकारी का आभास होता है।

३. Eliot, *Hinduism and Buddhism*, II, p. 64 n. Bunyiu Nanjio's *Catalogue*, App. II, 4.

४. डॉ० मजूमदार के कथनानुसार वासुदेव-प्रथम ने सन् (२४६+७४) ३२३ ई० से लेकर सन् (२४६-९८) ३४७ ई० तक राज्य किया। परन्तु, चीनी सूत्रों से ज्ञात होता है कि पोतिआव (वासुदेव ?) सन् २३० ई० में राज्य करते थे। यों खलात्से-अभिलेख से भी इस सम्बन्ध में कठिनाई बढ़ती ही है।

५. शक-सम्वत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देखिये, Fleet, *CII*, preface 56; *JRAS*, 1913, pp. 635, 650, 987 ff; Dubreuil, *AHD*, 26; Rapson, *Andhra Coins*, p. cv; S. Konow, *Corpus*, *II*, i. xvi f. **जो नहपाण सन्**

(अ) यदि हम यह स्वीकार करें कि कुजुल-काडफ़िसेस और हर्मेओस सम्भवतः सन् ५० ई० में शासन करते थे, और कनिष्क ने ७८ ई० में शकसम्वत् की स्थापना की, तो काडफ़िसेस-प्रथम और काडफ़िसेस-द्वितीय के सम्पूर्ण राज्य की समाप्ति के लिये हमारे पास २८ वर्ष कठिनता से ही शेष बचते हैं।

(परन्तु, काडफ़िसेस-प्रथम के लिये सन् ५० ई० की तिथि अनिश्चित-सा प्रतीत होती है। यदि इसे हम सही मान लें तो काडफ़िसेस-द्वितीय के लिये २८ वर्ष का समय कुछ कम नहीं है, क्योंकि ८० वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के बाद ही वह सिंहासनारूढ़ हुआ था। काडफ़िसेस-प्रथम अपनी मृत्यु के समय ८० वर्ष

४२-४५ में महाक्षत्रप भी नहीं था तथा जो कभी भी स्वतंत्र शासक नहीं था, वह इस युग का प्रवर्त्तक किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता। सन् ४२-४६ के जिस लेख के आधार पर उसे हम इसका जनक कहते हैं, वह जैन-परम्परा के द्वारा (जिसका विश्वास स्टेन कोनोव ने *Corpus*, II, i, xxxviii में किया है) भी खंडित की गई है, क्योंकि इसके अनुसार वह केवल ४० वर्षों तक ही रहा। चाष्टान का इस दिशा में किया गया अधिकार उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि 'पेरीप्लस' के अनुसार ७८ ई० में वह उज्जैन का शासक नहीं हो सकता था। यदि हम काडफ़िसेस-द्वितीय को इसका जनक मानते हैं, तो इस सम्बन्ध में हमें केवल इतना ही कहना है कि उस युग के किसी भी लेख अथवा मुद्रा से इसका प्रमाण नहीं मिलता। केवल कनिष्क ही एक ऐसा सम्राट् है जिसने एक नये सम्वत् को चला कर उसे अपने उत्तराधिकारियों द्वारा मान्यता दिलाई। साथ ही भारतीय लेखकों ने भी चालुक्य-काल से लेकर सर्वप्रथम ७८ ई० में ही शक-सम्वत् को मान्यता प्रदान की।

जहाँ तक इस आक्षेप का सम्बन्ध है कि शक-सम्वत् उत्तर वालों के लिये विदेशी है, यह कहा जा सकता है कि ई० पू० ५८ सुदूर उत्तरी-पश्चिमी भारत के लिये पूर्णतया विदेशी है। यह कहना कि शक-सम्वत् का प्रयोग उत्तरी-पश्चिमी भारत में कभी हुआ ही नहीं, भ्रमात्मक है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कनिष्क-वंश के द्वारा जिस सम्वत् का प्रयोग हुआ, वह शक-सम्वत् नहीं है। 'शक' नाम से ही प्रतीत होता है कि यह विदेशी है और इसकी उत्पत्ति उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश में हुई, क्योंकि इसी क्षेत्र में शक-राजाओं का निवास था। मालवा, काठियावाड़ तथा दक्षिण में केवल उनके प्रतिनिधि वाइसराय (उपराजा) शासन करते थे। प्राचीन परम्पराओं के आधार पर कहा जा सकता है कि शक-सम्वत किसी वाइसराय के द्वारा न चलाया जाकर राजा के द्वारा ही चलाया गया।

से अधिक आयु का था, अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि उसका पुत्र अपने राज्याभिषेक के समय बूढ़ा था। इसी से यह असम्भव प्रतीत होता है कि उसने अधिक समय तक राज्य किया होगा।)

(ब) मार्शल का कथन है कि प्रो० जी० जूव्यू डुब्रील ने तक्षशिला-स्थित चिर-स्तूप में एक ऐसे पत्र का पता लगाया है, जो सन् १३६ ई० का है। विक्रम-सम्वत् के अनुसार यह ७९ ई० का है। इसमें सम्भवतः काडफ़िसेस-प्रथम का भी उल्लेख है, परन्तु इतना अवश्य निश्चित है कि कनिष्क का उल्लेख कहीं नहीं है।

(सन् १३६ ई० में तक्षशिला में पाये जाने वाले लेख के अनुसार 'देवपुत्र' की उपाधि काडफ़िसेस-वंश' के सम्राटों के लिये प्रयोग में न आकर कनिष्क-वंश वालों के द्वारा प्रयोग की जाती थी। अतः, जिन लोगों को यह विश्वास है कि सन् ७८ ई० कनिष्क-युग है, उनके विश्वास को इससे तनिक भी आघात नहीं पहुँचता। कुषाण-वंश के नरेशों का व्यक्तिगत रूप से नाम होने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि उनका अभिप्राय कुषाण-वंश के प्रथम सम्राट् से है। उदाहरण के लिये, कहा जा सकता है कि कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के समय के अनेक ऐसे लेख पाये जाते हैं जिनमें सम्राट् को केवल 'गुप्त-नृप' कह कर ही सम्बोधित किया गया है।)

(स) प्रो० डुब्रील का कथन है कि "स्टेन कोनोव के अनुसार तिब्बत तथा चीन में उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि दूसरी शताब्दी में महाराज कनिष्क राज्य करते थे।"

(जिस कनिष्क का उल्लेख यहाँ किया गया है, वह सम्भवतः ४१वें वर्ष के पाये जाने वाले आरा-शिलालेख में उल्लिखित कनिष्क है। शक-सम्वत् के अनु-

---

१. मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि कुछ इसी प्रकार का विचार डॉ० थॉमस (*B. C. Law*, *Vol.*, II, 312) ने व्यक्त किया है। पर, यह बात स्पष्ट नहीं होती कि यह क्यों कहा गया कि इस बात की भी सम्भावना है कि 'देवपुत्र' की उपाधि कनिष्क-वंश के लिये होते हुए भी उसे अनदेखा कर दिया गया है। यहाँ पर उल्लिखित काडफ़िसेस से अभिप्राय कुजुल (काडफ़िसेस-प्रथम) तथा विमा (वीमा) से है न कि कुयुल-कर-कफ़स से है। कदाचित् 'कर' या 'कल' का अर्थ 'महाराजपुत्र' अथवा 'राजकुमार' से है (Burrow, *The Language of Kharosthi Documents*, 82)। और यदि कयुल-कर का अर्थ कुजुल (*Corpus*, II, i, lxv) और तक्षशिला-लेख १३६ में आये हुए कुषाण राजा से है, तो भी यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि १३६ तिथि का अभिप्राय विक्रम-सम्वत् से है।

सार यह राजा दूसरी शताब्दी में राज्य करता था। स्टेन कोनोव[1] ने जिस पोतिऑव राजा का उल्लेख किया है, वह सम्भवतः वासुदेव-प्रथम का उत्तराधिकारी तथा यूची-वंश का वह राजा था जिसने सन् २३० ई० में चीन के राजा के यहाँ अपना राजदूत भेजा था। "वासुदेव की मृत्यु के पश्चात् बहुत दिनों तक उसके नाम की मुद्रायें प्रचलित थी।"[2] स्मिथ, श्री आर० डी० बनर्जी तथा स्वयं एम० कोनोव ने यह स्वीकार किया है कि एक से अधिक राजा वासुदेव के नाम से राज्य कर चुके हैं।[3])

(द) स्टेन कोनोव ने यह भी सिद्ध किया है कि कनिष्क-युग तथ शक-युग में पाई जाने वाली तिथियाँ एक ही ढंग से नहीं लिखी गयी हैं ।

(परन्तु उसी विद्वान् ने यह भी सिद्ध किया है कि कनिष्क-युग में पाये जाने वाले सभी लेखों की तिथियाँ एक जैसी नहीं हैं। खरोष्ठी-लेखों में कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियोंने तिथि उस विधि से लिखी है, जिस विधि का प्रयोग उनके पूर्वज शक-पह्लव नरेशों ने किया था, अर्थात् उन्होंने महीने के नाम के साथ दिन का नाम भी दिया है। दूसरी ओर, ब्राह्मी-लेखों में कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारियों ने प्राचीन भारतीय ढग[4] से ही तिथि दी है। तो क्या अब हम इससे यह निष्कर्ष निकाले कि खरोष्ठी भाषा में लिखे गये कनिष्क के लेखों की तिथि वह नहीं है, जो ब्राह्मी भाषा के लेखों की है? और यदि हम यह स्वीकार करें कि कनिष्क ने तिथि लिखने के दो ढग अपनाये थे तो पश्चिमी भारत में प्रयोग होने वाले ढंग को हम तीसरा ढंग क्यों न स्वीकार कर लें! स्वयं स्टेन कोनोव ने बताया है कि खरोष्ठी भाषा में पाई जाने वाली तिथियों की तरह शक-तिथियाँ भी दी गई है, केवल उनमें 'पक्ष' का उल्लेख और कर दिया गया है। "पश्चिमी क्षत्रपों ने शक-सम्वत् का प्रयोग इसलिये किया कि उत्तर-पश्चिम में उनके भाई इसी का प्रयोग कर रहे थे। साथ ही देश की परम्परा को मान्यता प्रदान करते हुए उन्होंने 'पक्ष' का भी उल्लेख किया।" जहाँ कनिष्क ने सीमा-प्रान्तों में शक-पह्लव की तरह, तथा भारत में प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार, तिथि लिखने की कला को अपनाया, वहाँ

१. वासुदेव ? *Ep Ind*, WIV, p. 141; *Corpus*, II, i, lxxvii, *Cf. Acta* II, 133.

२. *EHI*, 3rd Ed., p. 272.

३. *Ibid.*, pp. 272-278; *Corpus*, II, i, lxxvii.

४. *Epa, Ind.*. XIV, p. 141. इसके अपवाद के लिये देखिये *Ibid.*, XXI, 60.

यह किसी प्रकार भी असम्भव नहीं कि उसके अधिकारियों ने प्रदेश की परम्परा के प्रति आदर प्रकट करते हुए इन तिथियों में 'पक्ष' शब्द का भी समावेश कर दिया हो।[1])

स्टेन कोनोव के अनुसार कनिष्क छोटे यूची-वंश से सम्बन्धित था और खोतान[2] से यहाँ आया था। इस सिद्धान्त को मान लेने पर अनेक कठिनाइयाँ[3] हमारे सामने आ जाती हैं। यह तो निश्चित ही है कि सन् २३० ई० में उसके उत्तराधिकारी ता (महान् ?)-यूची की उपाधि से सम्बोधित किये जाते थे। कुमारलता की कल्पना-मण्डिटीका के अनुसार वंश का नाम क्यु-शा[4] था।

उत्तरी भारत को विजय करके कनिष्क ने कपिशा[5], गांधार तथा कश्मीर

---

१. जहाँ तक यह कथन है कि उत्तरी भारत में शक-सम्वत् विदेशी था, इसकी पुष्टि एस०कोनोव ने भी की है (*Corps*, lxxxvii), किन्तु इस सम्बन्ध में कीलहार्न (*List of Ins. of Northern India*, Nos. 351, 352, 362,364, 365, 368, 379) के मन्तव्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है। जहाँ तक उत्तरी-पश्चिमी भारत का प्रश्न है, हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर हम कह सकें कि ७८ ई० के सम्वत् के समान विक्रम-सम्वत् का भी प्रयोग होता था। गंगा के उत्तरी मैदान में इस प्रकार के लेख केवल इसीलिये नहीं पाये जाते, क्योंकि वह क्षेत्र ई०पू० ५८ से प्रभावित था। इसके बाद के अन्य काल, जैसे गुप्त-काल, हर्ष-काल आदि, यद्यपि भुलाये जा चुके हैं, फिर भी ई०पू० ५८ का काल अब भी प्रचलित है। दक्षिणी भारत की दशा कुछ दूसरी ही है। मौर्य (इनमें से बहुत से दक्षिण में पाये जाते थे), सातवाहन, चेत आदि ने शक-क्षत्रपों द्वारा प्रचलित सम्वत् को केवल इसीलिये स्वीकार किया, क्योंकि उसकी पूर्वगणना के लिये अन्य कोई साधन प्रचलित नहीं था। चालुक्य-नरेशों द्वारा विक्रम-सम्वत् के अपनाये जाने का मुख्य कारण यह था कि वे लोग शक-सम्वत् को अपनाना नहीं चाहते थे, क्योंकि उसकी उत्पत्ति विदेशी थी। यह बात उत्तर एवं दक्षिण दोनों ही स्थानों पर है।

२. *Corpus* II, i, lxxvi; *of.* lxi; *JRAS*, 1903, 334.

३. *Ibid*, p. ıxxvii.

४. देखिये कणिक-लेख का कुश और पुराणों का कुशद्वीप; Shafer, *Linguistics in history*, *JAOS*, 67, No. 4, pp. 296 ff.

५. Cf. The Story of the Chinese hostage mentioned by H. Tsang.

से लेकर बनारस तक के विस्तृत क्षेत्र पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। चीन तथा तिब्बत के लेखकों[1] ने पूर्वी भारत में साकेत तथा पाटलिपुत्र के नरेशों के द्वारा किये गये युद्ध का पूर्ण विवरण अपने-अपने लेखों में दिया है। अन्य लेखों के द्वारा उसके समकालीन विवरणों, तिथियों का ज्ञान हमें न केवल पेशावर, युज़ुफ़्ज़ाई देश में स्थित ज़ेदा, (कदाचित् उरण्ड) से ही होता है, वरन् रावलपिंडी के निकट माणिकिआल, उत्तरी सिंध में बहावलपुर से १६ मील दूर, दक्षिण-पश्चिम कोने में स्थित सुई-विहार, मथुरा, श्रावस्ती, तथा बनारस के निकट स्थित सारनाथ आदि से भी होता है।[2] पूर्व में गाज़ीपुर और गोरखपुर में भी उसकी मुद्रायें भारी संख्या में पाई गई हैं।[3] उसके साम्राज्य के पूर्वी भाग में महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप वनष्पर का शासन था। उत्तरी भाग में सेनापति लाल तथा क्षत्रप वेस्पसी तथा लिआक शासक थे। उसने पेशावर (पुरुषपुर) को अपना निवास-स्थान बनाया तथा कदाचित् कश्मीर में कनिष्कपुर[4] नामक नगर की भी स्थापना की। आरा-लेख के अनुसार यह और भी सम्भव है कि उसने अपने नाम पर कनिष्कपुर बसाया। दक्षिण (भारत) में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद उसने अपना ध्यान पश्चिम की ओर दिया और पार्थियन नरेशों[5] को पराजित कर दिया। अपनी वृद्धा-वस्था में सेना लेकर वह उत्तर की ओर बढ़ा और पामीर की चट्टान तथा खोतान के मध्य स्थित जुंगलिंग पर्वत (तागदुम्बाश पामीर) को पार करते समय परलोक सिधार गया। इस उत्तरी अभियान की चर्चा ह्वेनसांग ने भी की है, क्योंकि

१. *Ep. Ind., XIV*, p. 142; *Ind. Ant.*, 1903, p. 382; *Corpus*, II, i, pp, lxxii and lxxv. सम्भवतः कनिष्क-द्वितीय की ओर संकेत है।

२. अभी हाल में श्री के० जी० गोस्वामी ने हमारा ध्यान कनिष्क के युग के एक ब्राह्मी-लेख की ओर आकृष्ट किया है। इसका समय २ वर्ष (?) दिया है और इसे उन्होंने इलाहाबाद म्युजियम से प्राप्त किया है (*Calcutta Review*, July, 1934, p. 83)।

३. महास्थान (बोगरा) में पायी गयी सोने की एक मुद्रा में कनिष्क की खड़ी मूर्त्ति है। इसमें उनके दाढ़ी भी है—कदाचित् यह महान् कुषाण सम्राट् की नक़ल है।

४. कनिंघम इसे श्रीनगर के निकट बताते हैं (*AGI*[2], 114)। स्टीन और स्मिथ के अनुसार यह आधुनिक कांसीपुर है, "जो वितस्ता नदी तथा वराहमूल से कश्मीर जाने वाली सड़क के बीच स्थित है।"

५. *Ind. Ant.*, 1903, p. 382.

उसके अनुसार उसका राज्य जुंगलिंग पर्वत पर भी था। साथ ही उसने एक चीनी राजकुमार को अपने दरबार में बन्दी भी बना रखा था।

महाराज हो-ती (सन् ८९–१०५ ई०) के सेनापति पानचॉऊ द्वारा पराजित राजा कदाचित् स्वयं कनिष्क ही था। निःसंदेह यह तर्क दिया जाता है कि "कनिष्क एक उच्च राजा था और यदि चीनी सेनापति द्वारा वह पराजित किया गया होता तो इसका उल्लेख चीनी इतिहासकार अवश्य ही करते।" परन्तु, यदि हम पानचॉऊ के समकालीन को काडफ़िसेस-द्वितीय स्वीकार करते हैं तो उससे भलीभाँति परिचित चीनी इतिहासकारों का मौन रहना अत्यन्त रहस्यमय हो जाता है। दूसरी ओर वे कनिष्क को बिलकुल ही नहीं जानते थे। अतः, यदि वही पानचॉऊ का समकालीन है तो उसका उल्लेख न कर इतिहासकारों के चुप हो जाने में कोई विचित्रता दिखाई नहीं देती। कनिष्क ही पानचॉऊ का विरोधी था, इस सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि उसने ही चीन से युद्ध किया था। परन्तु, चीमा के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती, क्योंकि चीनी इतिहासकारों ने ऐसे किसी भी युद्ध का उल्लेख नहीं किया है। एस० लेवी ने कनिष्क की मृत्यु के सम्बन्ध में जो लोककथा प्रकाशित की है, उसमें एक महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार दिया गया है— "मैंने तीन प्रदेशों को जीत लिया है; सभी मेरी शरण में हैं, परन्तु केवल उत्तरी प्रदेश के लोगों ने मेरी अधीनता स्वीकार नहीं की है।"[1] इस घटना से क्या हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि उसके उत्तरी पड़ोसी ने ही उसे हराया था ?

शाक्यमुनि के धर्म को संरक्षण देने के कारण जितनी प्रसिद्धि उसकी है, उसके विजयों के कारण कदापि नहीं है। मुद्राओं एवं पेशावर में पाये जाने वाले लेख के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्भवतः अपने राज्य-काल के प्रारम्भिक दिनों में ही उसने बौद्धधर्म अंगीकार कर लिया था। उसने पुरुषपुर अथवा पेशावर में संघाराम-स्तम्भ बनाकर धर्म के प्रति अपनी निष्ठा एवं उत्साह का परिचय दिया है। स्तम्भ की सुन्दरता की चीनी तथा मुसलिम यात्रियों[2] ने भूरि-भूरि प्रशंसा की

१. देखिये *EHI*[4], p. 285; *JRAS*, 1912, 674.

२. जैसा कि देवपाल के समय के गोश्रावरण-अभिलेख से पता चलता है, कनिष्क द्वारा निर्मित महाविहार की प्रसिद्धि बंगाल के पाल-नरेशों के काल तक फैली थी। अल्बेरूनी ने भी कनिष्क के चैत्य का उल्लेख किया है।

है। कश्मीर अथवा जालन्धर[1] में उसने बौद्धधर्म की अंतिम महान् सभा का आयोजन किया था। यद्यपि कुषाण बौद्धधर्म के अनुयायी थे, फिर भी ग्रीक, सुमेरियन इलामाइट, मिथ्रैइक फ़ारसी तथा हिन्दू धर्म के देवताओं की उपासना उसके दूर-दूर के प्रदेशों में होती थी, तथा वह स्वयं भी उनका आदर-सम्मान करता था। कनिष्क के दरबार में पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष[3], चरक, नागार्जुन[4], संघरक्ष, माठर, ग्रीक-निवासी एजिसीलाओस तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्ति थे, जिनकी देख-रेख[2] में धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं कलात्मक कार्य उसके शासन-काल में निरंतर होते थे। मथुरा के निकट माट में जो खुदाई हुई है, उसमें इस महान् राजा की कद्देआदम (उसकी वास्तविक लम्बाई की) मूर्ति मिली है।[5]

---

१. एक लेख से पता चलता है कि सम्भवतः गांधार में सभा बुलाई गई थी। परन्तु, प्राचीनतम आधार पर कश्मीर को ही सभा-स्थान माना गया है। वसुमित्र के सभापतित्व में कदाचित् सभी बौद्ध-भिक्षुक कुण्डलवन-विहार में एकत्र हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मुख्य उद्देश्य मूल नियमों को एक जगह रख कर उन पर की गई आलोचनाओं को लिपिबद्ध करना था (Smith, *EHI*[4], pp. 283 ff; Law, *Buddhistic Studies*, 71)।

२. देखिये *JRAS*, 1912, pp. 1003, 1004. सम्भवतः इलामाइट (सुमेरियन ? Hastings, 5, 827) देवी नाना के नाम पर ही उसने प्रसिद्ध नाणक मुद्राएँ प्रचलित की थीं (देखिये *Bhand. Carm. Lec.*, 1921., p. 161)। भारत में कुषाणों पर मिहिर (मिहर,) का क्या प्रभाव पड़ा, इसके लिये देखिये आर० जी० भण्डारकर, *Vaishnavism, Saivism and Minor Religious Systems*, p. 154. प्रो० रैप्सन के अनुसार नाना प्रकार की मुद्राओं का अर्थ धार्मिक उत्साह नहीं है। इससे तो केवल इतना ही ज्ञात होता है कि उसके विशाल साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में नाना प्रकार के धर्म प्रचलित थे। देखिये असावरी तथा इल्तुत्मिस एवं हैदरअली के समय में प्रचलित बेदनूर प्रकार की मुद्रायें।

३. कनिष्क तथा अश्वघोष के सम्बन्ध में एक नवीन लेख की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया जाता है, जिसे H. W. Bailey (*JRAS*, 1942, Pt. 1) ने खोतान पाण्डुलिपि के एक भाग का अनुवाद कर तैयार किया है। उसमें राजा के नाम का उच्चारण 'चन्द्र कनिष्क' दिया गया है।

४. यह भी सम्भव है कि नागार्जुन कनिष्क-प्रथम के समकालीन न होकर कनिष्क-द्वितीय अथवा हुविष्क के समकालीन रहे हों।

५. *EHI*[4], p. 272; *Cf.* Coin-portrait, *JRAS*, 1912, 670.

कनिष्क के पश्चात् वासिष्क, हुविष्क और आरा-लेख में उल्लिखित कनिष्क एक के पश्चात् एक सिंहासनारूढ़ हुए। हमें वासिष्क की २४ तथा २८ तिथि के जो लेख उपलब्ध हैं, उनके आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि उसका राज्य मथुरा तथा पूर्वी मालवा तक फैला हुआ था।[१] कुछ लोगों का मत है कि आरा-लेख में आये, कनिष्क के पिता वाझेष्क तथा श्रीनगर[२] के उत्तर में स्थित आधुनिक जुकुर जिसे जुष्कपुर भी कहते थे, के जन्मदाता तथा राजतरंगिणी में वर्णित जुष्क और कोई व्यक्ति न होकर स्वयं वासिष्क ही थे।

हुविष्क की तिथि सन् २८ से लेकर ६० ई० तक फैली लगती है। मथुरा में पाये जाने वाले एक अभिलेख[३] के अनुसार वह किसी ऐसे राजा का पौत्र था जिसे 'सचध्रम थित' की उपाधि मिली थी। कुयुल कफ़स[४] में पायी जाने वाली एक मुद्रा पर यह उपाधि अंकित थी। कल्हण के वर्णन से ज्ञात होता है कि वह जुष्क और कनिष्क, अर्थात् सन् ४१ के आरा-लेख में आये वाझेष्क और कनिष्क का समकालीन था। वारडाक में मिले पात्र-अभिलेख के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है, मानो क़ाबुल उसके साम्राज्य का ही एक अंग रहा है। हाँ, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो सके कि सिन्धु-घाटी के उस निचले भाग पर उसका अधिकार रहा हो जिसे रुद्रदामन ने कनिष्क-प्रथम के उत्तराधिकारियों से छीन लिया था। कश्मीर में हुविष्क ने 'हुष्कपुर'[५] नामक नगर की स्थापना की थी। कनिष्क-प्रथम के समान वह भी बौद्धधर्म का संरक्षक था और मथुरा[६] में उसने अत्यन्त सुन्दर विहार का निर्माण कराया था। विभिन्न मुद्राओं के चलाने का उसे भी कनिष्क-प्रथम के समान ही चाव था। उन मुद्राओं पर जहाँ ग्रीक, फ़ारसी एवं भारतीय देवताओं की मूर्त्तियाँ अंकित हैं, वहीं एक मुद्रा पर रोमा[७] की सुन्दर मूर्त्ति भी है।

१. सम्भवतः साँची की मूर्त्तियाँ मथुरा से लाई गई हैं, अतः जहाँ-जहाँ वे मूर्त्तियाँ पाई गई हैं, सब स्थान उसी के साम्राज्य के अंग थे, कहना असंगत होगा।

२. *EHI*[4], p. 275.

३. *JRAS*, 1924, p. 402.

४. खरोष्ठी-लेख में पाये गये लेख 'अंगोक' के सम्बन्ध में भी यही सत्य है (Burrow, p. 128)।

५. बारामूला दर्रे के भीतर पाई जाने वाली उष्कूर से इसका अभिप्राय है (*EHI*[4], p. 287)।

६. देखिये Luders, List No. 62.

७. देखिये *Camb. Short Hist.*, 79. मुद्रा के आधार पर कहा जा सकता है कि महान् कुषाण के लिये 'सिंह-पताका' का वही महत्व था जो गुप्त-राजाओं के लिये 'गरुड़ध्वज' का (देखिये Whitehead, 196)।

मथुरा-लेख से ज्ञात होता है कि अपने बाबा के युग के टूटे-फूटे 'देवकुल' को पुनः निर्मित कराने का श्रेय उसको ही प्राप्त था।

स्मिथ महोदय इस बात से सहमत नहीं हैं कि ४१वें वर्ष के आरा-लेख के कनिष्क और कनिष्क-महान्, दो अलग-अलग व्यक्ति थे। लूडर्स, फ्लीट, कैनेडी, स्टेन कोनोव आदि के अनुसार दोनों कनिष्कों[१] में महान् अंतर है। लूडर्स के अनुसार आरा-लेख के कनिष्क के पिता का नाम वासिष्क और पितामह का नाम कनिष्क-प्रथम था। कनिष्क-द्वितीय ने 'महाराज', 'राजाधिराज,' 'देव-पुत्र' और सम्भवतः 'कैसर' (Caesar) की उपाधि धारण की थी। इस बात की भी अधिक सम्भावना है कि कश्मीर में 'कनिष्कपुर' बसाने वाला कनिष्क-प्रथम न होकर वह स्वयं रहा हो।

कनिष्क-वंश का अंतिम महान् राजा वासुदेव-प्रथम था। इस पुस्तक में जिस तिथि-तालिका को अपनाया गया है, उसके अनुसार वह सन् १४५[२] से १७६ ई० के बीच हुआ था। वह बौद्धधर्म का अनुयायी नहीं प्रतीत होता। उसकी मुद्रा में शिव एवं नन्दी की मूर्त्ति है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने पूर्वज काडफ़िसेस-द्वितीय के शैवधर्म को उसने भी अपना लिया था। काव्य-मीमांसा में वासुदेव को 'कवियों का संरक्षक' तथा 'साहित्यकारों का सभापति' कह कर सम्बोधित किया गया है। अश्वघोष, नागार्जुन आदि अन्य विद्वानों की साहित्यिक कृतियों से यह सिद्ध होता है कि कुषाण-काल साहित्यिक युग था। इस युग में धार्मिक क्षेत्र में भी काफ़ी कार्य हुआ, और शैवधर्म के अधीन कार्त्तिकेय-सम्प्रदाय की, बौद्धधर्म के अधीन महायान तथा मिहिर एवं वासुदेव कृष्ण सम्प्रदाय की भी उन्नति हुई। कश्यप मातंग (सी० ६१–६८ ई०) ने चीन में बौद्धधर्म का प्रचार किया। "इस प्रकार कनिष्क के राज्य-काल ने पूर्व तथा मध्य एशिया में भारतीय सभ्यता का द्वार खोल दिया।"

१. देखिये *Corpus*, II. i, lxxx. 163; *Ep. Ind.*, XIV, p. 143; *JRAS*, 1913, 98. २४ से ४० सम्वत् के बीच का कोई भी ऐसा लेख नहीं मिलता, जिसे कनिष्क का कहा जा सके। इस काल में कुषाण-राजवंश वासिष्क, और सम्भवतः हुविष्क (द्वितीय साझीदार) के हाथों में था। अतः, यह सिद्ध हो जाता है कि सम्वत् ४१ के कनिष्क का सम्वत् १-२३ के कनिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

२. पालिखेड़ा (मथुरा-म्युजियम नं० २६०७) में पाई गई भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति के निचले भाग के लेख का हवाला देते हुए श्री एम० नागोर कहते हैं कि यह मूर्त्ति वासुदेव के शासन-काल में, सम्वत् ६७ में, बना कर स्थापित की गई थी।

वासुदेव के लेख केवल मथुरा-क्षेत्र में ही पाये गये हैं। अत: इससे यदि हम यह निष्कर्ष निकालें कि धीरे-धीरे कुषाण-साम्राज्य के उत्तरी-पश्चिमी भाग से उसका अधिकार मिटता रहा, तो अनुचित नहीं होगा। तीसरी शताब्दी के मध्य में हम देखते हैं कि यूचियों के अधीन चार राज्य हो गये थे, और सम्भवत: यूची-राजवंश[1] के राजकुमारों का चारों पर राज्य था।

१.देखिये कैनेडी, *JRAS*, 1913, 1060 f. वासुदेव-प्रथम के उत्तराधिकारियों में कनिष्क-तृतीय का भी नाम आता है (देखिये Whitehead. *Indo-Greek Coins*, pp. 211. 12; *Cf. RDB, JASB*, vol. IV (1908), 81 ff; Altekar, *NHIP*, VI. 14 n)। वसु अथवा वासुदेव-द्वितीय को पोतिआव (सन् २३० ई०)(*Corpus*, II,i, lxxvii) और ग्रमबेटस (Grumbates) (सन् ३६० ई०) (Smith, *EHI*[4], p. 290) कहा गया है। राजा अपने को कनिष्क के वंशज कहते हैं। वे किपिन तथा गांधार पर, उनकी मृत्यु के बहुत दिनों बाद तक शासन करते रहे (*Itinerary of Oukong*, Cal. Rev., 1922, Aug-Sept,. pp. 193, 489)। परम्परा तथा जनश्रुति के अनुसार कनिष्क-वंश का अंतिम राजा लगतूर्मान था, जिसे अल्बेरूनी के अनुसार, उसके ब्राह्मण-मंत्री कल्लार ने पदच्युत कर दिया था। कुषाण-वंश के अंतिम काल में ससानियन-राज्य के जन्म-दाता अर्देसिर बाबगान (Ardeshir Babagan, A. D. 226-41) के तथा-कथित भारत-आक्रमण के लिये देखिये, फ़रिश्ता (Elliot and Dowson, VI. p. 557)। वर्ह्रान-द्वितीय ने सम्पूर्ण शकस्थान को जीत कर अपने पुत्र वर्ह्रान-तृतीय को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। शापूर-द्वितीय के समय तक शकस्थान ससानियन-राज्य का अंग बना रहा। पर्सीपोलिस के एक पह्लवी लेख में शकस्थान के शासक को 'शकान्साह' तथा हिन्द, शकस्थान तथा तुखारिस्थान के शासक को 'दबिरान' दबीर (मंत्रियों का मंत्री) कहा गया है (*MASI*, 38, 36)। इस लेख को सन् १९२३ ई० में हर्जफ़ेल्ड ने पढ़ा। लेख कदाचित् सन् ३१०-११ ई० का है, जब शापूर-द्वितीय का राज्य था। तीसरी शताब्दी के अंतिम चरण के पैकुली-लेख से ज्ञात होता है कि उत्तरी-पश्चिमी भारत के शक-नरेश, वर्ह्रान-तृतीय, शकस्थान के राज्यपाल के दरबारियों में से थे (*JRAS*, 1933, 129)। पश्चिमी भारत के आभीरों ने भी कदाचित् ससानियों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था (Rapson, *Andhra Coins*, cxxxvi)। J. Charpentier (*Aiyangar Com. Vol.*, 16) का मत है कि कोसमास के काल में सिंधु नदी के दक्षिण में स्थित डेल्टा (Indiko pleustos, C. 500 A.D.) फ़ारस के अधीन था। कालिदास के 'रघुवंशम्' तथा चालुक्यों के शासन-काल में भी फ़ारसवासियों का उल्लेख मिलता है।

इनमें ताहिया (ऑक्सस-प्रदेश), किपिन (कपिशा) कॉउ-फ़ॉउ (क़ाबुल) और तीन-चॉऊ (भारतवर्ष, कदाचित् इससे उनका अर्थ सिन्धु नदी के दोनों ओर फैले हुए विस्तृत भाग से था) आदि आते हैं। सन् २३० ई० में 'ता-यूची' अर्थात् महान् यूची राजा पोतिआव ने चीन-सम्राट् के यहाँ अपना राजदूत भेजा था। इसके पश्चात् धीरे-धीरे भारतवर्ष में उसका यूची-साम्राज्य नष्ट होने लगा और चौथी शताब्दी में उसका वह महत्वपूर्ण स्थान खो-सा गया। नागों ने दूर के कुछ प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा लिया था। सिन्धु नदी के पास अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो चुके थे। वर्ह्रान-द्वितीय (सन् २७६-२९३ ई०) के शासन-काल में शकस्थान तथा उत्तरी-पश्चिमी भारत पर ससानियन-वंश का आधिपत्य हो गया था। शापूर-द्वितीय (सन् ३०९-३७९ ई०) के प्रारम्भिक काल में इन प्रदेशों पर ससानियन-वंश का ही अधिकार था।

४. नाग तथा अन्तिम कुषाण

मथुरा तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में कुषाणों के उत्तराधिकारी नाग जाति[1] के शासक थे। तीसरी तथा चौथी शताब्दी में उत्तरी तथा मध्य भारत के एक विशाल भूखण्ड पर नागों का राज्य था। इसका प्रमाण कई जगह से मिलता है। लाहौर में प्राप्त चौथी शताब्दी के ताम्र-सील के लेख के अनुसार वहाँ नागभट्ट का पुत्र महेश्वर नाग[2] राज्य करता था। इलाहाबाद के स्तम्भ-लेख राजा गणपति नाग का उल्लेख मिलता है। वाकाटक-विवरणों से ज्ञात होता है कि भारशिव के शासक भवनाग के पौत्र का पौत्र रुद्रसेन-द्वितीय चन्द्रगुप्त-द्वितीय का समकालीन था, और वह गुप्त-साम्राज्य के उत्थान के पूर्व से ही था। भवनाग के वंशज कितने शक्तिशाली शासक थे, इसका अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि उन लोगों ने दस बार अश्वमेध यज्ञ किया, अपने बाहुबल एवं शक्ति के द्वारा गंगाजल[3] प्राप्त कर उसे वहाँ छिड़का और स्थान को पवित्र बनाया। दस बार अश्वमेध यज्ञ से ही यह बात प्रमाणित हो जाती है कि वे

१. जयपुर राज्य में स्थित बरनाला में पाये गये यूपा-लेख से, राजाओं की एक लम्बी सूची का पता चलता है, जिनके नाम के अंत में 'वर्द्धन' का प्रयोग हुआ है। वे सोहर्त्त अथवा सोहर्त्तृ गोत्र के थे, परन्तु उनके राजवंश का ज्ञान नहीं है (*Ep. Ind.*, xxvi. 120)। इसकी तिथि कृत २८४, अर्थात् सन् २२७-२२८ है।

2. फ्लीट, *CII*, p. 283.

3. *CII*, p. 241; *AHD*, p. 72.

किसी के अधीन न हो कर स्वतंत्र शासक थे। पुराणों से हमें ज्ञात होता है कि नागों ने अपने को विदिशा (भिलसा के निकट बेसनगर), पद्मावती (सिन्धु और पार के संगम पर स्थित पदम-पवाया)[1], कान्तिपुरी (जिसका ठीक से पता नहीं चल पाया है)[2] और कनिष्क और उसके उत्तराधिकारियों की दक्षिणी राजधानी[3] मथुरा में मिला लिया था। कदाचित् नागों के महान् राजा का नाम चन्द्रांश[4] 'नखवन्त-द्वितीय' था। दिल्ली के लौह स्तम्भ-लेख में यही नाम आया है। परन्तु, यह बात पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाई कि दोनों चन्द्र एक ही व्यक्ति हैं।[5]

१. इस स्थान पर महाराज अथवा अधिराज भवनाग की मुद्रायें पाई गई हैं। डॉ० अल्तेकर का कथन है कि ये वाकाटक-लेख के भवनाग ही थे (*J. Num. S. I*, V. pt. II)। ये तथ्य भविष्य में और अधिक खोज हो जाने पर ही माना जा सकता है।

२. स्कन्द-पुराण (नागरखण्ड, Chap. 47, 4 ff) में कान्तिपुरी का वर्णन आया है। मेघदूत के समय में पूर्वी मालवा में विदिशा भी सम्मिलित था। वहाँ की घाटी धसान या (दशार्ण) की राजकुमारी से कान्तिपुरी के राजकुमार ने विवाह किया था। अतः कान्तिपुरी सम्भवतः विदिशा के निकट ही थी।

3. *JRAS*, 1905, p. 233.

४. नृपान् विदिशकांश च: ग्रपि भविष्यांस्तु निबोधत
शेषस्य नागराजस्य पुत्रः पर पुरंजयः
भोगी भविष्यते (?) राजा नृपो नाग-कुलोद्भवः
सदाचन्द्रस् तु चन्द्रांशो द्वितीयो नखवांश तथा।
—*Dynasties of the Kali Age*, p.49.

५. विष्णु की उपासना से प्रतीत होता है कि वह चन्द्रगुप्त-प्रथम अथवा चन्द्रगुप्त-द्वितीय था। यदि हम इसे स्वीकार करते हैं तो फिर हमें यह सिद्ध करना होगा कि 'धाव' शब्द का प्रयोग गुप्त के लिये क्यों हुआ, क्योंकि चन्द्रगुप्त-द्वितीय को 'धाव' न कह कर 'देवगुप्त' या 'देवराज' कहा जाता था। इस सम्बन्ध में हमें यह भी नही भूलना चाहिये कि उसने सिन्धु-पार के लोगों पर अपनी शक्ति के द्वारा विजय प्राप्त की थी। इस सम्बन्ध में उसके पूर्वजों की ख्याति का कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा था। विष्णु की उपासना के कारण अब इस बात की कोई भी सम्भावना नहीं रह जाती कि यही राजा चन्द्र कनिष्क था। इसको प्रथम मौर्य राजा बताना भी नितान्त पागलपन ही है, क्योंकि जो तिथि इत्यादि दी गई है, उस में विशेष रूप से अंतर है। साथ ही जो विवरण उपलब्ध है, उसमें न तो नन्द-राजाओं की पराजय का ही उल्लेख है, और न ही कहीं यवनों के साथ होने वाले युद्ध का। अतः यह भी हमें किसी प्रकार मान्य नहीं है।

यदि गुप्त-साम्राज्य के उत्थान के पूर्व ही चन्द्र राजा थे, तो स्वाभाविक है कि हम उनके सम्बन्ध में पुराणों में खोज करें, क्योंकि गुप्त-वाकाटक-काल तक इस पुस्तक का संकलन नहीं हो पाया था।

चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने नाग-राजकुमारी के साथ विवाह करना चाहा था तथा स्कन्दगुप्त[1] के शासन-काल में गंगा तथा दोआब के क्षेत्र में नाग राजा अपने अधिकारियों के माध्यम से राज्य करते थे। क़ाबुल की घाटी तथा भारतीय सीमा के कुछ प्रदेशों पर कुषाण राजा राज्य कर रहे थे। उनमें से एक शासक ने फ़ारस के ससानियन-वंश के राजा होरमिसदास (अथवा होरमुज्द) द्वितीय (सन् ३०१-३०६ ई०) के साथ अपनी पुत्री का विवाह भी किया था। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, वह्रान-द्वितीय (सन् २७६-२६३ ई०) और उसके उत्तराधिकारी शापूर-द्वितीय के समय तक अपने पड़ोसियों पर राज्य करते रहे। "सन् ३५० ई० में जब शापूर-द्वितीय ने अमिदा पर आक्रमण किया, उस समय उसकी सेना में हाथी भी थे।"[2] इसके कुछ समय के बाद ससानियन-वंश को पराजित कर गुप्त-सम्राटों ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। साथ ही उत्तर-पश्चिम प्रदेश के कुषाण शासकों ने, जिनकी उपाधि 'देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि' थी, समुद्रगुप्त[3] के पास अनेक मूल्यवान् उपहार भी भेजे। पाँचवीं शताब्दी[4] में किदार कुषाण ने कश्मीर[5] तथा गांधार पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। छठी शताब्दी में कुषाणों को हूणों के साथ भयंकर युद्ध करना पड़ा और फिर उसके बाद की शताब्दियों में मुसलमानों से बराबर लोहा लेना पड़ा। नवीं शताब्दी में सीस्तान में सफ़ारिद-वंश के मुसलमानों का राज्य

---

१. बाद के नाग-राज्य के विषय में जानने के लिये देखिये, *Bom. Gaz.*, I. 2, pp, 281, 292, 313, 574; *Ep. Ind.*. IX 25.

२. *JRAS*, 1913, p. 1062. Smith (*EHI*[4], p. 290) and Her zfeld (*MASI*, 38, 36) give the date A. D. 360.

३. *Cf.* also *JASB*, 1908, 93.

४. और, सम्भवतः इससे भी पूर्व (अल्तेकर, *NHIP*, VI, 21 के अनुसार चौथी शताब्दी के मध्य में)।

५. *JRAS*, 1913, p. 1064, Smith, *Catalogue*, 64, 89; R. D. Banerji, *JASB*, 1908, 91,

स्थापित हुआ। धीरे-धीरे इनका प्रभुत्व गज़नी, ज़ाबुलिस्तान, हेरात, बल्ख, तथा **बामियान** प्रदेशों में भी फैल गया।[1] कनिष्क-वंश के अंतिम राजाओं ने अपना निवास-स्थान गांधार प्रदेश के नगर उराड, ओहिन्द, वैहन्द अथवा सिन्धु के किनारे स्थित उदभाराड को बनाया। उनकी दूसरी राजधानी क़ाबुल की घाटी में थी। अंत में कल्लार या लल्लिय नामक ब्राह्मरा ने इस वंश का सम्पूर्ण विनाश कर दिया तथा नवी शताब्दी के अंतिम काल में उसने हिन्दू-साम्राज्य की नीव डाली। दसवीं शताब्दी में क़ाबुल के राज्य का एक भाग अलप्तगीन (Alptigin) के हाथों में आ गया।[2]

---

१. Nazim, *The Life and Times of Sultan Mahmud*, 186.

२. *Nazim*, *op. cit*, p. 26.

दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत में सीथियन शासन | १२

१. क्षहरात

पिछले अध्याय में हमने देखा कि ई०पू० की द्वितीय एवं प्रथम शताब्दियों में सीथियनों ने किपिन (कपिशा-गांधार) तथा शकस्थान (सीस्तान) पर अपना आधिपत्य जमा कर धीरे-धीरे उत्तरी भारत के एक बड़े भूभाग पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। इस वंश की मुख्य शाखा उत्तर में ही राज्य करती रही। क्षत्रपाल-वंश के क्षहरातों ने अपनी शक्ति पश्चिमी भारत तथा दक्षिण की ओर बढ़ा कर सातवाहन-नरेशों से महाराष्ट्र की कुछ भूमि भी छीन ली। सातवाहन-शासक अपने राज्य के दक्षिणी भाग, सम्भवतः सातवाहनिहार जनपद जो आधुनिक बेलारी जिले में पड़ता था, और जो किसी समय सैनिक राज्यपाल (महासेनापति) स्कन्दनाग[1] के शासन में था, में चले गये। पेरीप्लस के निम्नलिखित गद्यांश से स्पष्ट हो जायेगा कि उस समय किस प्रकार दक्षिण के नरेशों की शक्ति घटती जा रही थी तथा आक्रमणकारियों की शक्ति प्रबलतर होती जा रही थी। "सरगनुस (कदाचित् शातकर्णि-प्रथम) के शासन-काल में कल्याण नगर शान्तिप्रिय बाजार के रूप में उन्नति कर रहा था। परन्तु, जब से यह नगर सन्दनेस (कदाचित् मुनन्दन शातकर्णि)[2] के अधिकार में आया, उस समय से यह बन्दरगाह प्रायः अरक्षित हो गया तथा ग्रीस (यूनान) के जो जलयान यहाँ आते थे, उन्हे रक्षकों की देखरेख में बरिगाज़ा (बरौच) भेजा जाने लगा।"

---

१. *Ep. Ind.*, XIV, 155.

२. विलसन, *JASB*, 1904, 272; Smith, ZDMG, Sept., 1903; *IHQ*, 1932, 234; *JBORS*, 1932, 7f. जब तक किसी 'छोटे सरगनुस' का उल्लेख नहीं होता, तब तक 'बड़े' शब्द का कोई महत्व नहीं है। अतः यह शब्द 'सन्दनेस' के लिये ही हो सकता है, क्योंकि वहाँ एक "छोटे सन्दनेस" का भी उल्लेख मिलता है।

महाराष्ट्र प्रदेश के बरौच क्षेत्र में जिस सीथियन राजा क्षहरात का राज्य था, वह सम्भवतः कराताई (Karatai) था। भूगोलवेत्ता तोलेमी[1] के अनुसार यह जाति उत्तर में पाई जाने वाली शक जाति की ही एक शाखा थी।

क्षहरात, खखरात अथवा छहरात वंश के मुख्य व्यक्तियों के नाम लिआक, पतिक, घटाक, भूमक तथा नहपाण थे। इनमें से लिआक, पतिक तथा घटाक क्रमशः तक्षशिला तथा मथुरा के निवासी थे। भूमक काठियावाड़ के क्षत्रप थे। रैप्सन के अनुसार, भूमक नहपाण का पूर्वज था। उसकी मुद्राओं में 'तीर, ढाल और बिजली' बनी मिलती है। इनकी तुलना मुद्राओं की दूसरी ओर बने 'ढाल, तीर और धनुष' से की जाती है। दूसरी ओर की वस्तुएँ ताँबे की उन मुद्राओं में मिलती हैं, जिन्हें स्पैलिरिसेस तथा एज़ेस-प्रथम ने मिल कर बनवाया था।

क्षहरात-क्षत्रपों में सबसे महान् राजा नहपाण था। पूना ज़िले में नासिक, जुन्नार और कार्ले के निकट पाण्डुलेन में पाये जाने वाले आठ गुफ़ालेखों से सिद्ध होता है कि उसके साम्राज्य में महाराष्ट्र प्रदेश का एक बहुत बड़ा भाग भी सम्मिलित था। इनमें से सात लेख उसके दामाद शक उशवदात (ऋषभदत्त) की दानकथा तथा आठवाँ अयम अथवा अमात्य (ज़िला-अधिकारी) की महिमा का वर्णन करता है। उशवदात के लेख से ज्ञात होता है कि नहपाण का राजनीतिक प्रभाव पूना (महाराष्ट्र) और सूरपारक (उत्तरी कोंकण में) से लेकर प्रभास (काठियावाड़ में), मन्दसौर (दशपुर) और उज्जैन (मालवा में) तथा प्रसिद्ध तीर्थस्थान पुष्कर समेत अजमेर के कुछ ज़िलों तक फैला हुआ था। मालयों अथवा मालवों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पवित्रीकरण के लिए स्वयं उशवदात आये थे

नासिक में प्राप्त होने वाले लेखों में किसी अज्ञात सम्वत् के ४१, ४२ तथा ४५ वर्षों का तथा नहपाण के क्षत्रप होने का उल्लेख है, जबकि अयम द्वारा लिखवाये गये जुन्नार-लेख में ४६ सम्वत् का विशेष तौर पर उल्लेख है, और उसमें नहपाण को महाक्षत्रप बताया गया है। अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि जो तिथियाँ इनमें दी गई हैं, वे सब सन् ७८ ई० के शक-सम्वत् की ओर ही संकेत करती हैं। निस्संदेह ही 'नहपाण' नाम फ़ारसी है, और वह इसलिए

---

१. *Ind. Ant.*, 1884, p. 400. वाई० आर० गुप्ते (*Ind. Ant.*, 1926, 178) का कथन है कि दक्षिण के गड़रियों में कुछ की उपाधि 'खरात' है जो कदाचित् खखरात (क्षहरात) शब्द का ही संक्षिप्त रूप है।

कि नहपाण शक-वंश का था। इसका प्रमाण हमें उसके दामाद उशवदात से मिलता है। उशवदात अपने आप को शक-वंश का बताता है। अतः, यह भी सम्भव है कि सन् ७८ ई० का सम्वत् शक-सम्वत् हो, जिसे कदाचित् नहपाण के उत्तराधिकारियों में से किसी एक ने चलाया हो। प्रो० रैप्सन इस मत से सहमत हैं कि नहपाण की जो तिथियाँ दी गई हैं, वे सन् ७८ ई० से प्रारम्भ होने वाले शक-सम्वत् से ही सम्बन्धित हैं। इसी आधार पर वे नहपाण की तिथि सन् ११६ से १२४ ई०[1] के बीच आँकते हैं। बहुत से विद्वानों[2] का विचार है कि नहपाण और कोई न हो कर 'मम्बरुस' अथवा 'नम्बनुस' है।[3] यह नाम 'पेरीप्लस' का दिया हुआ है। उसकी राजधानी मिन्नगर अरियक (Minnagara in Araike) में थी। एक मत के अनुसार मिन्नगर आधुनिक मंदसौर[4] है और 'अरियक' अपरान्तिक[5] का ही नाम है।

---

१. एलन का मत है कि नहपाण की मुद्राओं को दूसरी शताब्दी का कहना उचित नहीं होगा। वे नहपाण की चाँदी की मुद्राओं पर पाये जाने वाले सिर की तुलना राजुवुल की मुद्राओं से करते हैं। परन्तु, वे यह भी स्वीकार करते है कि यह सम्भवतः इसलिए है कि दोनों का स्रोत स्ट्रैटो-प्रथम की मुद्रायें हैं (*Camb. Short Hist.*, 80f)।

२. उदाहरण के लिये, M. Boyer in *Journal Asiatique*, 1897; *JASB*, 1904, 272. कैनेडी (*JRAS*, 1918, 108) कहते हैं कि नाम के अंत में 'बनोस' न आकर 'बरेस' अथवा 'बरोस' आता है।

३. *JRAS*, 1912, p. 785.

४. यही विचार डी० आर० भण्डारकर का भी है। वे बाम्बे-गजेटियर (I. 1. 15 n) को मानते हैं। देखिए *Ind. Ant.*, 1926, p. 143—*Capital of Nahapana* (= Junnar)। फ्लीट के अनुसार, मिन्नगर पंचमहाल के दोहद का नाम है (*JRAS*. 1912, p. 788; 1913, 993 n)। पटना के ओरियंटलिस्ट के छठे सम्मेलन में एक पत्र पढ़ते हुए डॉ० जायसवाल ने जैन सामग्री का उल्लेख किया है, जिसमें ब्रोच को नहपाण की राजधानी बताया गया है (देखिये आवश्यक सूत्र, *JBORS*, 1930, Sept., Dec. 290)। एक अन्य मत के लिये देखिये *IHQ*, 1929, 356—वसुधर (?) नगरी।

५. देखिये *IA*, 7, 259, 263—अरियक सम्भवतः वराहमिहिर की 'बृहत् संहिता' में आये हुए 'आर्यक' का ही दूसरा नाम है।

आर० डी० बनर्जी तथा जी० जूव्यू डुब्रील (G. Jouveau Dubreuil) के अनुसार, नहपाण की तिथियों का शक-सम्वत् से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका कथन है कि यदि हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि नहपाण के लेख शक-सम्वत् के अनुसार ही हैं, तो इस राजा के लेख में जो सम्वत् ४६ है, और रुद्रदामन के लेखों में जो सम्वत् ५२ मिलता है, केवल पाँच वर्षों का ही अंतर मिलेगा। तब इन्हीं पाँच वर्षों में निम्नलिखित बातें अवश्य घटित हुई थीं—

(१) नहपाण के राज्य का अंत।

(२) क्षहरातों का विनाश।

(३) क्षत्रप चाश्तान का क्षत्रप-राज्य आरम्भ होकर उसका 'महाक्षत्रप' की उपाधि धारण करना तथा राज्य का महाक्षत्रप-राज्य कहलाना।

(४) जयदामन का 'क्षत्रप' की उपाधि से सिंहासनारूढ़ होना तथा 'महा-क्षत्रप' की उपाधि धारण करना।

(५) रुद्रदामन का सिंहासनारूढ़ होना तथा अपना शासन आरम्भ करना।

इतनी घटनाओं की भीड़ पाँच वर्षों के छोटे-से दायरे (सम्वत् ४६ जो कि नहपाण के राज्य की अन्तिम जानी हुई तिथि है और सम्वत् ५२ जो कि रुद्रदामन के राज्य-काल की जानी हुई पहली तिथि है) में इकट्ठा करने की कोई विशेष आवश्यकता दिखाई नहीं पड़ती। हमारे पास ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि चाश्तान-वंश का राज्य क्षहरात-वंश के विघटन के बाद ही आरम्भ हुआ। जैसा कि सम्वत् ५२ के आंधव-अभिलेख से ज्ञात होता है, सम्भव है चाश्तान-नरेश कच्छ तथा उसके आसपास के देशों पर राज्य करते रहे हों और क्षहरात-वंश वालों का राज्य मालव तथा महाराष्ट्र में रहा हो। साथ ही इस बात को भी स्वीकार करने का कोई बड़ा कारण नहीं है कि चाश्तान तथा रुद्रदामन के राज्याभिषेक की तिथियों में कोई बहुत अधिक अंतर था। डॉ० भण्डारकर तथा डॉ० आर० सी० मजूमदार का मत है कि आंधव-अभिलेख से स्पष्ट हो जाता है कि चाश्तान तथा रुद्रदामन दोनों ही सम्वत् ५२ में साथ-साथ राज्य कर रहे थे। प्रो० जे० डुब्रील इस मत से बिलकुल ही सहमत नहीं होते, क्योंकि अभिलेख में रुद्रदामन के बाद 'च' (और) संयोजक शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है—'राज्ञ चाश्तानस यशामोतिक-पुत्रस राज्ञ रुद्रदामस जयदाम-पुत्रस वर्षे द्विपचासे, ५०, २।' इसका अनुवाद प्रो० डुब्रील ने इस प्रकार किया है, "५२वें वर्ष में जयदामन के पुत्र, चाश्तान के पौत्र तथा यशामोतिक के प्रपौत्र रुद्रमादन के राज्य-काल में...।"

वैसे प्रोफ़ेसर महोदय 'च' शब्द पर आपत्ति करते हैं, परन्तु स्वयं उन्होंने 'और', 'पौत्र' तथा 'प्रपौत्र' शब्दों का प्रयोग किया है, जो कि मूल पाठ में नहीं पाये जाते। यदि उनका अनुवाद आंधव-अभिलेख के लेखक महोदय की इच्छानुसार ही होता तो यशामोतिक का नाम पहले आता, और फिर चाश्तान के नाम के बाद जयदामन और रुद्रदामन का नाम आता—"यशामोतिक-प्रपौत्रस चाश्तान-पौत्रस जयदाम-पुत्रस रुद्रदामस।"[1] साथ ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह भी है कि प्रो० ह्यूल के अनुसार जो जयदामन, चाश्तान तथा रुद्रदामन के बीच में राज्य करता था, मूल पाठ में उसके नाम के साथ किसी प्रकार की उपाधि नहीं मिलती। दूसरी ओर, चाश्तान तथा रुद्रदामन, दोनों को 'राजा' कहा गया है। दोनों ही नामों के पूर्व आदरसूचक एक ही शब्द 'राजा' का प्रयोग हुआ है। अतः लेख का शाब्दिक अनुवाद इस प्रकार होगा—'सम्वत् ५२ में यशामोतिक के पुत्र राजा चाश्तान, जयदामन के पुत्र राजा रुद्रदामन···।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि सम्वत् ५२ में चाश्तान तथा रुद्रदामन[2] दोनों का ही शासन था। प्राचीन हिन्दू-समाज के लेखकों द्वारा इस प्रकार सहशासन[3] के वर्णन अक्सर मिलते हैं। चाश्तान तथा उसके प्रपौत्र के सहशासन का सिद्धान्त इसलिये भी माना जा सकता है कि जयदामन 'महाक्षत्रप' नहीं बन पाये थे, कदाचित् इसलिए कि उनकी मृत्यु उनके पिता के सामने ही हो गई थी; क्योंकि चाश्तान तथा रुद्रदामन के समान ही उसके नाम के भी पहले केवल 'क्षत्रप' का ही प्रयोग हुआ है। 'महाक्षत्रप' अथवा

१. देखिये जूनागढ़, गुण्ड तथा जसधन अभिलेख।

२. देखिये, मुद्रा-सम्बन्धी कथा "हेरमयस कलियपय", "गुदुफरस ससस", "स्वतपान हगानस हगामषस" आदि। इनमें भी दूसरे नाम के अंत में 'च' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। देखिये, Whitehead, *Indo-Greek Coins*, 86, 147; *CHI*, 538.

३. देखिये, अथर्ववेद (V. 20,9) में द्विराज; कौटिल्य के अर्थशास्त्र (p.325) में द्वैराज्य; आयारंग सुत्त का दोरज्ज। पटलीन के वर्णन में देखिये p.259 *ante*; महाभारत में देखिये---धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन का राज्य; जस्टिन की पुस्तक में यूक्राटीड्स तथा उसके पुत्र का राज्य, स्ट्रैटो प्रथम तथा द्वितीय; एज़ेस तथा एज़िलिसेस आदि-आदि। महावस्तु (III. 432) में तीन भाइयों के एकसाथ राज्य करने का उल्लेख मिलता है—"कलिंगेषु सिंहपुरम् नाम नगरम् तत्र भ्रयोभ्रातरो एकमात्रिका राज्य कारयन्ति।" देखिये *IA*, 6, 29; *Cf.* Nilkanta Shastri, *Pandyan Kingdom*, 120, 122, 180.

'भद्रमुख' का प्रयोग जयदामन के लिए उसके उत्तराधिकारों के लेखों में भी नही मिलता। हमने इस बात का उल्लेख पहले ही कर दिया है कि आंधव-लेख में चाश्तान तथा रुद्रदामन को 'राजा' की उपाधि दी गई थी, परन्तु इसका प्रयोग जयदामन के नाम के पहले नहीं हुआ है।

श्री आर० डी० बनर्जी का कथन है कि जो सम्वत् चाश्तान के सम्बन्ध में मुद्राओं तथा लेखों में मिलता है, वही नहपाण के लेखों का नही बताया जा सकता, क्योंकि यदि हम यह मान लें कि नहपाण को सम्वत् ४६ में ही राज्यच्युत् कर दिया गया था, तो ऐसी स्थिति में नासिक सम्बत् ५२ में (२४वें वर्ष तक) गौतमीपुत्र तथा सम्वत् ७४ में पुलुमायि के (अपने राज्य के २२वें वर्ष तक) अधिकार में रहा होगा। परन्तु, कुछ सूत्रों से ऐसा ज्ञात होता है कि इस तिथि से पूर्व ही रुद्रदामन ने पुलुमायि को पराजित कर नासिक पर अधिकार कर लिया था। बनर्जी की भूल यह है कि उन्होंने यह कल्पना कर ली है कि शक-संवत् ७३ के पूर्व रुद्रामन ने नासिक पर दो बार अधिकार किया था, भले ही उसने सातवाहनों से मालव तथा कोंकण छीन लिये हों। परन्तु, हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नही है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उसका अधिकार पूना तथा नासिक पर भी हो गया था। बनर्जी की दूसरी ग़लत परिकल्पना यह है कि राजा रुद्रदामन सम्वत् ५२, अर्थात् सन् १३० ई० के पूर्व ही अपनी विजय-यात्रा समाप्त कर चुका था। परन्तु, आन्धव-लेख से ज्ञात होता है कि चाश्तान-वंश का राज्य केवल कच्छ तथा उसके आसपास के प्रदेशों तक ही सीमित था।

जिन लोगों का यह मत है कि नहपाण की तिथि शक-सम्वत् से मेल खाती है, उनकी पुष्टि प्रो० रैप्सन तथा डॉ० भण्डारकर ने भी की है। उनके इस मत का आधार नहपाण का नासिक-अभिलेख है, जहाँ सोने के एक ऐसे सिक्के का उल्लेख मिलता है, जिसमे सिद्ध होता है कि प्रथम शताब्दी के पूर्व भारत में कुषाण-वंश का राज्य था।[२]

१. *Cf.* The Gunda and Jasdhan Inscriptions.

२. Rapson, *Coins of the Andhra Dynasty*, etc. pp. lviii, clxxxv; Bhandarkar, *Ind. Ant.*, 1918-1919; *Deccan of the Satavahana Period.*

नहपाण तथा उसके मित्र उत्तमभद्रों[1] की शक्ति को उत्तर में मालवों से तथा दक्षिण में सातवाहनों से भयंकर खतरा था। उशवदात ने मालवों के आक्रमण को तो पीछे ढकेल दिया था, परन्तु महाराष्ट्र में सातवाहनों द्वारा किया गया आक्रमण शकों के लिए घातक सिद्ध हुआ।

पुराणों में उल्लिखित चकोर और शिवस्वाति राजाओं के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। पुराणों के अनुसार ये मुनन्दन के उत्तराधिकारी थे। इनके शासन-काल में शातकर्णि सातवाहनों की शक्ति इतनी क्षीण हो गयी थी कि 'बरिगाजा' का बन्दरगाह, जिसकी सुरक्षा कभी सातवाहन राजा शातकर्णि-प्रथम के हाथ में थी, अब समुद्री लुटेरों का अड्डा बन गया था। लेकिन, इस सूची में आये हुए दूसरे राजा गौतमीपुत्र ने अपने वंश की शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनः-स्थापित किया और उत्तर से आने वाले हमलावरों के दाँत खट्टे कर दिये। नासिक-प्रशस्ति में उसे 'क्षहरात-वंश का विनाशक तथा सातवाहन-वंश की प्रतिष्ठा को पुनः लाने वाला' कहा गया है। नासिक ज़िले में स्थित जोगलथेम्बी में पाई जाने वाली मुद्राओं से सिद्ध हो जाता है कि नहपाण को गौतमीपुत्र ने पराजित किया था। गौतमीपुत्र ने नहपाण द्वारा चलाये गये सिक्कों पर, उसे पराजित करने के बाद, अपना विरुद पुनः अंकित करवाया। इन पुनर्मुद्रित मुद्राओं में नहपाण के अलावा किसी भी दूसरे राजा की मुद्राएँ बिल्कुल नहीं मिलतीं। अतः स्पष्ट है कि नहपाण और गौतमीपुत्र के बीच होने वाले संघर्ष में किसी ने भी बीच-बचाव नहीं किया।

२. सातवाहन-राज्य का पुनर्स्थापन

क्षहरातों पर विजय प्राप्त करके गौतमीपुत्र ने पुनः महाराष्ट्र तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में सातवाहनों की प्रतिष्ठा स्थापित की। नासिक में प्राप्त सम्वत्

---

१. सम्भवतः रोहितकों (देखिये Rohtak in south-east Punjab) के साथ एक सूची में 'गणों' का उल्लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि उत्तमभद्र भद्र जाति के ही अंग थे। ये आग्रेयों (आगरा के ?) और मालवों (महाभारत, III. 253. 20) में थे। महाभारत (VI. 50, 47) में प्रभद्रों को गणों से या राजपूताना के रेगिस्तानी क्षेत्र के दासेरकों के संघ से सम्बद्ध माना गया है। (Monier Williams, Dic. 405)।

१८[1] के एक अभिलेख से तथा कार्ले में स्थित मामाल में प्राप्त अमात्य के नाम के एक आदेश-पत्र से सिद्ध होता है कि महाराष्ट्र पर पुनःविजय प्राप्त कर ली गई थी। गौतमीपुत्र का केवल यही एक महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं था। नासिक में पाये जाने वाले, रानी गौतमी बलश्री के, रिकार्डों से यह ज्ञात होता है कि उनके पुत्र ने शक (सीथियन), यवन (ग्रीक) और पह्लवों (पार्थियन) को नष्ट कर दिया। उसके राज्य की सीमा न केवल असिक[2], असक (गोदावरी-तट पर स्थित महाराष्ट्र[3] का एक भाग, सम्भवतः अश्मक) और मूलक (पैठन के आसपास का भूभाग) तक ही बढ़ी, वरन् सुरथ (दक्षिणी काठियावाड़), कुकर, पारियात्र अथवा पश्चिमी विन्ध्य[4] के निकट पश्चिमी अथवा मध्य भारत में अपरान्त (उत्तरी कोंकण), अनूप (नर्मदा के किनारे माहिष्मती के आसपास का भूभाग), विदर्भ (बृहत्तर बरार) और आकर-अवन्ती (पूर्वी[5] तथा पश्चिमी मालव) तक फैल गई थी। विन्ध्य से लेकर मलय पर्वत अथवा ट्रावनकोर की पहाड़ियों तक जितने भी पर्वत थे, उन सब का अधीश्वर वह स्वयं था।

संवत् १८ के नासिक-अभिलेख में कनेरी देश में वेजयन्ती के ऊपर अधिकार का संकेत किया गया है। मगर आन्ध्र प्रदेश (आंध्रपथ) तथा दक्षिणी कोशल का उल्लेख न होना अत्यन्त आश्चर्यजनक है। मुद्राओं, लेखों तथा ह्वेनसांग के विवरणों से ज्ञात होता है कि कभी न कभी दोनों देशों पर सातवाहन-वंश का आधि-

१. नासिक का आज्ञापत्र वेजयन्ती सेना की विजय के उपलक्ष्य में निकाला गया था (*Ep. Ind.*, VIII. 72), तथा उसमें गोवर्धन (नासिक) के अधिकारी अमात्य को सम्बोधित किया गया था। सरकार के अनुसार वेजयन्ती किसी नगर का नाम न होकर, सेना की ही एक उपाधि थी।

२. कृष्णवेणा, अर्थात् कृष्णा नदी के तट पर। देखिये खारवेल के लेख, *IHQ*, 1938, 275; *Cf. Arshika, Patanjali*, IV, 2.2.

३. देखिये शामशास्त्री द्वारा अनूदित अर्थशास्त्र, p. 143, n 2. इसकी राजधानी पोतन सम्भवतः निज़ाम राज्य मे पाया जाने वाला नगर बोधन है।

४. बृहत्संहिता, XIV, 4.

५. कुषाण-सम्वत् के २८वे वर्ष में, अर्थात् सन् १०६ ई० में सम्भवतः पूर्वी मालव में वासिष्क का राज्य था। यह तिथि इस पुस्तक में दी गई तिथि-पट्टिका के आधार पर है। उज्जैन से ३५ मील उत्तर-पूर्व में स्थित आगर ही आकर है। देखिये *Bomb. Gaz.*, Gujrat, 540; *Ep. Ind.*, xxiii, 102.

पत्य अवश्य था। सातवाहन-नरेशों में से सबसे पहला अभिलेख हमें आन्ध्र-प्रदेश में गौतमीपुत्र पुलुमायि का प्राप्त हुआ है। यह भी सम्भव हो सकता है कि केवल डींग हाँकने के लिये ही यह कह दिया गया हो कि गौतमीपुत्र का राज्य विन्ध्य तथा पूर्वी घाट (महेन्द्र) तक फैला था तथा उसके अश्व तीनों समुद्रों का पानी पीते थे। साथ ही यह भी अनुमान लगाया जाता है कि असिक में कृष्णा की घाटी का एक बड़ा भूभाग भी सम्मिलित था।

नासिक-प्रशस्ति से विदित होता है कि गौतमीपुत्र को केवल विजेता ही नहीं, एक समाज-सुधारक भी बताया गया है। "उसने क्षत्रियों के झूठे अभिमान तथा गर्व को कुचल कर द्विज (ब्राह्मणों) तथा 'द्विजावर-कुटुब विविधान'[१] का उत्थान कर चतुर्वर्णों में पायी जाने वाली कुरीतियों को दूर किया था।"

सर आर० जी० भण्डारकर तथा डॉक्टर डी० आर० भण्डारकर के अनुसार गौतमीपुत्र अपने पुत्र पुलुमायि के साथ-साथ राज्य करता था। अपने इस कथन की पुष्टि में वे निम्नलिखित प्रमाण देते हैं—

(१) गौतमी के अभिलेख (जो उसके पौत्र के राज्य के १९वें वर्ष का है) से यह विदित होता है कि वे महाराज की माता तथा महाराज की दादी भी थीं। यदि वे एक ही समय में माता और दादी न होती तो यह लेख व्यर्थ हो जाता।

(२) यदि यह तथ्य स्वीकार कर लिया जाये कि राजमाता का यह लेख जब लिखा गया था, तब तक गौतमीपुत्र की मृत्यु हो चुकी थी, तथा पुलुमायि अकेला ही राज्य कर रहा था तो उसकी विजय की चर्चा का इस लेख में होना आवश्यक है। किन्तु, उसकी प्रशंसा में एक शब्द भी इसमें नहीं कहा गया है। परन्तु १९ वर्ष पूर्व मृत राजा की प्रशंसा तो की जाये और शासन करने वाले राजा के बारे में कुछ न कहा जाये, यह समझ में नहीं आता।

(३) नासिक की गुफा नं० ३ के बरामदे की पूर्वी दीवाल पर जो लेख है, वह सम्वत् २४ का है। उससे ज्ञात होता है कि राजमाता ने गुफा में रहने वाले कुछ बौद्ध-भिक्षुओं को अपने तथा अपने जीवित पुत्र की ओर से एक पवित्र उपहार दिया था। संभवतः पुलुमायि के राज्य के १९वें वर्ष में 'नासिक गुफा नं० ३' ही उपहार में दी गई थी।

---

१. 'कुटुम्ब' का अर्थ 'परिवार' से है, तथा 'अवर कुटुब' का अर्थ कदाचित् समाज में हीन लोगों के कुटुम्ब से है। 'कुटुब' शब्द का अर्थ 'समाज में हीन' व्यापारी अथवा किसान आदि वर्ग के लोगों से है। ऐसे लोगों को कुटुम्बिक कहते थे।

जहाँ तक पहले तर्क का प्रश्न है, बहुधा रानी अपने पति अथवा पुत्र को ही सिंहासन पर देखती थीं; परन्तु यह रानी गौतमी बलश्री का सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य ही था कि वह उन थोड़ी-सी रानियों में से एक थी जिन्होंने अपने पौत्रों को भी राजसिंहासन पर आरूढ़ देखा। इसीलिये तो उसने अपने आपको महाराज की माता तथा महाराज की दादी कह कर सम्बोधित किया।

जहाँ तक दूसरे तर्क का प्रश्न है, क्या एकसाथ राज्य करने की बात से इस चुप्पी का कोई समाधान निकल आता है? जो इसके विपरीत सोचते हैं, वे यह तर्क दे सकते हैं कि यद्यपि यह सही है कि किसी नागरिक का इतना साहस नहीं हो सकता कि वह शासन करने वाले राजा के बारे में कुछ न कहे और मृत राजा का गुणगान करता रहे। लेकिन, राजमाता के लिये यह स्वाभाविक भी हो सकता था कि अपने वृद्धावस्था में वे अपने पुत्र के समृद्ध अतीत का गुणगान करें।

तीसरे तर्क में यह स्पष्ट नहीं है कि सम्वत् २४ में जिस उपहार का उल्लेख आया है, वह वही था जो पुलुमायि ने अपने राजत्व-काल के १९वे वर्ष में दिया था। यह उपहार गौतमीपुत्र तथा राजमाता की ओर से दिया गया था। स्पष्ट है कि यह राजमाता गौतमी बलश्री ही थी, जबकि पुलुमायि के १९वें वर्ष मे दिया गया उपहार केवल राजमाता ने ही दिया था। सम्वत् २४ के अभिलेख में राजमाता को 'महादेवी जीवसुता राजमाता' के नाम से पुकारा गया है और यह कहा गया है कि उनका पुत्र सम्राट् अभी जीवित है। पुलुमायि के अभिलेख में यद्यपि 'महा-देवी' तथा 'राजमाता' शब्द आये हैं, तो भी 'जीवसुता' अर्थात् 'जिसका पुत्र जीवित हो', शब्द का प्रयोग न होना, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पहले अभिलेख के अनुसार यह दान 'तेकिरसि' अथवा 'त्रिरश्मि' साधुओं को साधारणतया मिला था, जबकि दूसरे लेख के अनुसार दान प्राप्त करने वाले भदवानीय सम्प्रदाय के बौद्ध-भिक्षु थे। पहले उपहार में गुफा नम्बर ३ का केवल बरामदा ही दान में दिया गया था, क्योंकि इसी में सम्वत् २४ लिखा हुआ है। साथ ही पुलुमायि के १९वें वर्ष के शासन-काल के पूर्व भी यह बरामदा था, क्योंकि गौतमीपुत्र के १८वें वर्ष के लेख से यह स्पष्ट ही है। दूसरी ओर, हमें भली भाँति ज्ञात है कि भदवा-नीय भिक्षुकों को सम्पूर्ण फगुा नम्बर ३ दान में दी गयी थी।

यदि गौतमीपुत्र तथा उसका पुत्र साथ-साथ ही शासन करते थे, तथा उसका पुत्र पुलुमायि महाराष्ट्र में अपने पिता के साथ एक सहशासक था तो यह सम-झना अत्यन्त कठिन हो जायेगा कि गौतमीपुत्र ने अपने लिये 'गोवधनस बेनाकटक-

स्वामि' अर्थात् 'गोवर्धन (नासिक)[1] में बेनाकटक के राजा' की उपाधि क्यों धारण की थी ? साथ ही यह बात भी समझ में नहीं आती कि उसने गोवर्धन के अधिकारी को सीधे आदेश क्यों दिया जबकि उसका पुत्र उसके साथ शासन करता था तथा वह (पुलुमायि) अपने राज्य के १९वें वर्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली शासक स्वीकार किया जाता था। यही नहीं, यद्यपि उसके पिता उसके पहले से शासन करते आ रहे थे, फिर भी शासन में तिथि पुलुमायि के नाम से ही दी गई।[2]

लगभग सर्वस्वीकृत धारणा यह है कि गौतमीपुत्र के पश्चात् ही पुलुमायि शासक बना था।

गौतमीपुत्र शातकर्णि की तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत अधिक मत-भेद पाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसके लिये जो उपाधियाँ 'वरवारण-विक्रम, चारु-विक्रम', अर्थात् 'उसकी चाल एक सुन्दर हाथी के चाल के समान थी' तथा 'शक-निशूदन', अर्थात् 'शकों का विनाश करने वाला' दी गई हैं, उनसे विदित होता है कि पौराणिक कथाओं में आने वाला राजा विक्रमादित्य वही था, जिसने ई०पू० ५८ वाला विक्रम-सम्वत् चलाया। परन्तु, जैसा-कि पहले ही बताया जा चुका है, गौतमीपुत्र अथवा उसके उत्तराधिकारियों ने किसी सम्वत् अथवा काल को जन्म नहीं दिया। इसके अतिरिक्त, भारतीय साहित्य में उज्जैन के विक्रमादित्य तथा प्रतिष्ठान के सातवाहन अथवा शालिवाहन में दोनों को पृथक्-पृथक् बताया गया है। अतः इस पुस्तक में हम इस मत को स्वीकार करते हैं कि गौतमीपुत्र ने नहपाण को पराजित किया था तथा उनका १८वाँ वर्ष शक-सम्वत् ४६ के पश्चात् ही पड़ता है, जो उनके शत्रु नहपाण के

१. 'गोवधनस' शब्द के प्रयोग से यह स्पष्ट है कि इसके अतिरिक्त और भी दूसरे स्थान थे, जैसे कि बेनाकटक, जिससे 'गोवर्धन' को अलग बताया गया है। प्रवरसेन-द्वितीय (? तृतीय) के तिरोदि-प्लेट के अनुसार वाकाटक राजा के पूर्वी भाग में बेनाकटक नामक एक स्थान का उल्लेख आता है (*IHQ*, 1935, 293; *Ep. Ind.*, XXII, 167 ff)। 'बेणा' अथवा 'बेन्ना' का अर्थ किसी भी स्थिति में एक छोटी धारा ही से है।

२. देखिये आर० डी० बनर्जी, *JRAS*, 1917, pp. 281 *et seq.* १९वें वर्ष की प्रशस्ति में पुलुमायि को 'दक्षिण-पथेश्वर'—'दक्षिण का सम्राट्' कहा गया है।

विनाश की अन्तिम तिथि है। दूसरे शब्दों में गौतमीपुत्र ने नासिक को सन् ७८+४६=१२४ ई० के लगभग जीता होगा, और इस प्रकार वह सन् १२४ – १८= १०६ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ होगा। चूंकि उसने लगभग २४ वर्षों तक राज्य किया, अतः उसके राज्य का अंत सन् १३० ई० के बाद ही हुआ होगा।

पाजिटर द्वारा संकलित पुराणों की सूची में गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारी का नाम पुलोमा, जो उसका पुत्र था, तथा शातकर्णि बताया गया है। निस्संदेह पुलोमा और कोई न होकर तोलेमी द्वारा बताया गया बैठान के सिरो-पोलिमेओस तथा अभिलेखों एवं मुद्राओं में उल्लिखित वासिष्ठीपुत्र स्वामी श्री पुलुमावि ही हैं। शातकर्णि सम्भवतः कन्हेरी-गुफालेख मे उल्लिखित वासिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि ही हैं, अथवा नानाघाट में पाये जाने वाले विवरण में आये हुए वासिष्ठीपुत्र क्षत्रपाण (क्षत्रपाणि ?) शातकर्णि है। यह आधिकारिक रूप से नहीं कहा जा सकता कि वंशावली में उनका उचित स्थान क्या है ? कन्हेरी-लेख से विदित होता है कि वासिष्ठीपुत्र श्रीशातकर्णि ने महाक्षत्रप रुद्र की लड़की के साथ विवाह किया था। रैप्सन के अनुसार, यह महाक्षत्रप रुद्र और कोई न होकर रुद्रदामन-प्रथम थे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि कन्हेरी-लेख में वर्णित सातवाहन-नरेश अथवा इसी नाम के उनके एक सम्बन्धी और कोई न होकर दक्षिण के शातकर्णि ही थे, जिन्हे रुद्रदामन ने युद्ध मे दो बार पराजित किया था, परन्तु निकटतम सम्बन्ध होने के कारण जिनका सम्पूर्ण विनाश नहीं किया था। डॉ० भण्डारकर ने कन्हेरी में वर्णित वासिष्ठीपुत्र श्री-शातकर्णि, और मुद्राओं के वासिष्ठीपुत्र शिव श्रीशातकर्णि तथा मत्स्य पुराण में आये हुए शिवश्री को एक ही बताया है। परन्तु, यह तो उनका अनुमान मात्र है, वास्तविकता नहीं। हो सकता है कि जिस शासक का उल्लेख कन्हेरी-लेख मे किया गया है, वह पुलुमायि का भाई रहा हो।

हमने यह भी देखा है कि पुलुमायि की राजधानी पैठान (बैठान) थी। पैठान अथवा प्रतिष्ठान गोदावरी के तट पर स्थित था और जिसे भण्डारकर ने नवनर अथवा नवनगर (नया नगर) बताया है। अभिलेखों तथा मुद्राओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाराष्ट्र एवं कृष्णा-गोदावरी क्षेत्र दोनों ही उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। यह बात भी पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि गौतमीपुत्र के साम्राज्य में जिन प्रदेशों का उल्लेख मिलता है, उनमें आन्ध्र-देश को शामिल नहीं किया गया है। अतः यह असम्भव नहीं कि उक्त क्षेत्र में सातवाहन-वंश की शक्ति को सर्वप्रथम वासिष्ठीपुत्र पुलुमायि ने ही स्थापित किया हो। बेलारी जिले के अदोनी तालुक में पाये जाने वाले एक अभिलेख में सातवाहन-नरेश श्री पुलुमायि का उल्लेख आया है। सुक्थांकर के अनुसार यह पुलुमायि

वही गौतमीपुत्र पुलमायि है। परन्तु प्रामाणिक आधार के अभाव में ऐसा अनुमान किया जाता है कि अभिलेखों में आया हुआ यह नाम पुराणों में वर्णित पुलुमायि-प्रथम अथवा इसी वंश का उसी नाम का कोई अन्य राजकुमार हो सकता है। डी० सी० सरकार के अनुसार पार्जिटर की सूची में दिया गया अंतिम नाम इसी राजा का है। मुद्राओं के आधार पर कहा जा सकता है कि 'पुलुमायि' का राजनैतिक प्रभाव कारोमण्डल-तट से लगाकर मध्यप्रदेश के चण्ड प्रदेश तक फैला हुआ था। परन्तु, इस बात का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है, अतः इसको प्रामाणिक रूप से सिद्ध नहीं किया जा सकता। साथ ही प्रामाणिक तिथि के सामने न होने से कभी-कभी यह पता नहीं चल पाता कि 'वासिष्ठीपुत्र' से अभिप्राय महान् पुलमायि (गौतमीपुत्र की संतान) से ही है।

वास्तव में वासिष्ठीपुत्र पुलुमायि १३० ई० के बाद ही सिंहासनारूढ़ हुआ होगा। कार्ले-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने लगभग २४ वर्षों तक राज्य किया, अतः उसका शासन-काल सन् १५४ ई० तक रहा होगा। पार्जिटर ने राजाओं की जो पौराणिक सूची बनाई है, उसके अनुसार पुलोमा के उत्तराधिकारी शिवश्री[1] पुलोमा तथा शिवस्कन्द (अथवा शिवस्कन्ध)[2] शातकर्णि थे।

यज्ञश्री शातकर्णि[3]

पार्जिटर के अनुसार शिवस्कन्द के उत्तराधिकारी यज्ञश्री थे। यदि पुराणों पर विश्वास किया जाये तो उनका राज्याभिषेक गौतमीपुत्र शातकर्णि के राज्य के

१. *Journal of the Num. Soc.*, II (1940), p. 88 में मिराशी का कथन है कि तरहाल में मुद्राओं का जो ढेर मिला है, उसमें प्राप्त शिवश्री पुलुमायि-तृतीय के सिक्के उसी शिवश्री पुलोमा के थे। इस राजा (पुलुमायि) तथा रैप्सन द्वारा बताये हुए राजा वासिष्ठीपुत्र शिवश्री शातकर्णि में विशेष अंतर था। लेकिन, विष्णुपुराण में शिवश्री को शातकर्णि कहा गया है, पुलुमायि नहीं।

२. मिराशी (*Ibid.*, 89) के अनुसार अकोला जिले में पाये गये तरहाल सिक्कों के ढेर में उल्लिखित राजा सिरिखद अथवा स्कन्द शातकर्णि यही था। स्मिथ ने चड शातकर्णि तथा रैप्सन ने 'रुद्र शातकर्णि' भूल से पढ़ लिया था। इस रुद्र को आंध्र देश का राजा बताया गया है।

३. *JRAS*, July, 1934, 560 ff. में डॉ० डी० सी० सरकार का कहना है कि इस राजा का नाम 'श्रीयज्ञ शातकर्णि' था जोकि मुद्राओं पर लिखा है, न कि 'यज्ञश्री' जो पुराणों में मिलता है। यह स्मरणीय है कि 'श्री' शब्द का प्रयोग आदरसूचक है, तथा सातवाहन-वंश के नरेशों के नाम के पूर्व इसका

३५वें वर्ष के उपरान्त, अर्थात् सन् १६५ ई० के बाद हुआ होगा तथा शासन सन् १९४ ई० के बाद समाप्त हुआ होगा।

महाराष्ट्र में नासिक, अपरान्त में कन्हेरी, तथा कृष्णा जिले में चीन आदि स्थानों पर ऐसे अभिलेख प्राप्त हुए हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि यज्ञश्री ने २७ वर्षों तक राज्य किया। गुजरात, काठियावाड़, अपरान्त, मध्यप्रदेश के चराड जिले तथा वर्तमान मद्रास प्रान्त के कृष्णा जिले में उसके राज्य-काल की मुद्रायें प्राप्त हुई है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यज्ञश्री का शासन महाराष्ट्र तथा आन्ध्र प्रदेश पर भी था और उसने रुद्रदामन-प्रथम के उत्तराधिकारियों से अपरान्त (उत्तरी कोंकरा) को पुनः जीत लिया। स्मिथ के अनुसार उज्जैन के शक-नरेशों की चाँदी की मुद्राओं के समान उसने भी अपनी मुद्रा चलवाई। इससे अनुमान लगाया जाता है कि कदाचित् उज्जैन के शक-राज्य पर उसने अपना अधिकार कर लिया था। कुछ मुद्राओं पर जहाज भी अंकित है, जिससे अनुमान लगाया जाता है कि उसके साम्राज्य का विस्तार समुद्र पर भी था। उसे गोवा के कदम्बों, शिवाजी तथा अंगरीस[1] आदि की ओर से समुद्री आक्रमण का भय भी था।

यज्ञश्री अपने वंश का अंतिम महान् शासक था। उसकी मृत्यु के पश्चात् कदाचित् आभीर-वंश के राजा ईश्वरसेन[2] ने उत्तरी-पश्चिमी महाराष्ट्र को सातवाहनों के हाथ से छीन लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन-वंश के अंतिम

प्रयोग होता था। (देखिये वेद में स्कन्दश्री, हकुश्री, बलश्री, शिवश्री आदि, रैप्सन, *Andhra Coins*, pp. xlvi, l, lii)। कुछ पत्रों में राजा के नाम के पूर्व 'श्री' आने का अर्थ यह नहीं कि 'श्री' शब्द का प्रयोग आदरसूचक नहीं था। खारवेल के प्रसिद्ध अभिलेख में राजा को 'सिरि खारवेल' तथा 'खारवेल-सिरि' दोनों ही कहा गया है। मुद्राराक्षस में श्रीमत् चन्द्रगुप्त को 'चन्द-सिरि' कह कर सम्बोधित किया है (देखिये परिशिष्टपर्वन् में अशोक-श्री, IX, 14)।

१. *Coins of the Andhra Dynasty*, p. 22 में रैप्सन कहते हैं कि कोरोमण्डल-तट पर कुछ मुद्रायें जस्ते की मिली हैं। इनमें से हर मुद्रा के एक ओर दो मस्तूलों वाला जलयान है। यद्यपि उस पर का लेख ठीक से पढ़ा नहीं जाता, तो भी उस पर अंकित 'सिरि पु (लुमा) विस' स्पष्ट समझ में आता है।

२. पतञ्जलि के महाभाष्य में सर्वप्रथम आभीर-वंश का उल्लेख मिलता है। महाभाष्य तथा महाभारत दोनों ही उनका सम्बन्ध शूद्रों से बताते हैं। सिकन्दर के इतिहासकारों ने उन्हें सोद्रई कहा है। उनके देश अबीरिया का उल्लेख पेरीप्लस तथा

राजकुमार विजय, चण्डश्री (चन्द्रश्री) तथा पुराणों में वर्णित पुलुमावि—का राज्य मात्र बरार, पूर्वी दक्षिण तथा कनेरी प्रदेश तक ही सीमित रह गया था।[1] मुद्राओं के द्वारा भी प्रमाणित होता है कि विजय नाम का एक शासक था।[2] चण्डश्री और कोई न होकर वासिष्ठीपुत्र 'सामि-सिरि चंड सात' ही था। इसका ज्ञान हमें गोदावरी प्रान्त में स्थित पिठापुरम के निकट प्राप्त कोदावली-चट्टान-लेख से होता है। डी० सी० सरकार के अनुसार बेलारी ज़िले में प्राप्त म्यकदोनी-लेख में उल्लिखित राजा पुलुमावि ही पुलमायि है। हमें मुद्राओं के द्वारा कुछ दूसरे राजाओं का भी पता चलता है, जो सम्भवतः अंतिम सातवाहन-काल के रहे

तोलेमी दोनों ने किया है। दूसरी शताब्दी के तीसरे चरण में पश्चिमी भारत के शक-नरेशों के यहाँ आभीर लोग सेनापति के रूप में काम करते थे। कुछ समय पश्चात् एक आभीर योद्धा ईश्वरदत्त महाक्षत्रप बन गया। इसमें अभी सन्देह है कि उसका सम्बन्ध शिवदत्त के पुत्र आभीर राजा माथरीपुत्र ईश्वरसेन से था अथवा नहीं। कुछ विद्वान् दोनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि अपरान्त का त्रैकुटक-वंश यही वंश था। त्रैकुटक-संवत् २४८ का आरम्भ उसी समय से होता है जब उत्तरी महाराष्ट्र तथा उसके आसपास के प्रदेशों की सत्ता आभीर-वंश ने सातवाहनों से ग्रहण की। त्रैकुटक-वंश के अंतिम राजा का नाम इन्द्रदत्त था। उसका पुत्र धरसेन (४५५-४५६ ई०) और उसका पुत्र व्याघ्रसेन था जिससे वाकाटक राजा हरिसेण ने राज्य-सत्ता हस्तान्तरित कर ली।

१. बरार (अकोला) की सूची में कुछ ऐसे राजकुमारों के नाम भी आये हैं जिनका उल्लेख पुराणों में नहीं है, जैसे श्री कुम्भ शातकर्णि, श्री कर्ण शातकर्णि (यदि इसे पार्जिटर की सूची के १४वें राजा स्वातिकर्ण से न मिलाया जाय) तथा श्री शक शातकर्णि (मिराशी, *J. Num. Soc.*, II, 1940)। चण्ड में मिले सिक्कों में आये कृष्ण-द्वितीय का वास्तविक नाम मिराशी के अनुसार कर्ण था। जिन राजाओं के सम्बन्ध में अभी तक प्रायः ज्ञात नहीं हो सका है, वे अमरावती-लेख के श्री सिव-मक सात तथा कन्हेरी के माथरीपुत्र श्री सात हैं।

२. मिराशी, *Journal of the Num. Soc. of India*, II (1940), p. 90. स्पष्ट रूप से पढ़े जाने वाले शब्द केवल 'य-शातकर्णि' हैं। अतः 'विजय' शब्द का केवल अनुमान ही लगाया गया है।

होंगे। कृष्णा, गुण्टूर तथा बेलारी ज़िले में सातवाहनों का राज्य धीरे-धीरे इक्ष्वाकुओं तथा पल्लवों के हाथ में आ गया।

---

१. कृष्णा ज़िले के जगय्यपेत-स्तूप के अवशेष से प्राप्त अभिलेख तथा गुण्टूर ज़िले के गुर्ज़ल तथा नागार्जुनिकोण्ड अभिलेखों से इक्ष्वाकुओं का पता चलता है (*Ep. Ind.*, 1929, 1 f; 1941, 123 f)। सम्भवतः प्राचीन मैसूर के शासक कैकेयों से इनका वैवाहिक सम्बन्ध भी था (Dubreuil, *AHD*, pp. 88, 101)। पूर्वी दक्षिण में इक्ष्वाकु-वंश के प्रसिद्ध शासक चांतमूल, श्री वीरपुरुषदत्त, एहुवल चांतमूल-द्वितीय, और कदाचित् रुलुपुरिसदात थे (*Ep. Ind.*, xxvi, 125)। इक्ष्वाकु के पश्चात् गुण्टूर के राजा आनन्द, कुदुराहार (मछलीपट्टम के निकट) के बृहत्-फलायन, वेंगी के शालंकायन (देखिये *IA*, 5. 175 और तोलेमी के अनुसार सालाकेनोई) तथा लेंदुलूर (वेंगी के निकट) के विष्णुकुण्डिन ने सत्ता हस्तांतरित करके आपस में बाँट ली।

२. सुदूर दक्षिण में सातवाहनों के बाद जितने भी वंश हुए, उन सबमें अधिक शक्तिशाली पल्लव थे। यद्यपि इनकी उत्पत्ति के बारे में हम कुछ नहीं जानते, फिर भी वे अपने को अश्वत्थामन तथा नाग-राजकुमारियों की संतान बताते हैं। अपने को भारद्वाज गोत्र का ब्राह्मण कहने वाले, अश्वमेध यज्ञ करने वाले और संस्कृत भाषा के संरक्षक होने के नाते उनका सम्बन्ध शुंग-वंश से जोड़ा जा सकता है जबकि ब्राह्मण-नाग-सम्बन्ध (देखिये संकीर्ण जाति, ब्रह्मक्षत्र, *SII*, Vol. xii, Nos. 7, 48), वैदिक यज्ञादि (जिसमें अश्वमेध यज्ञ भी है), बेलारी ज़िले में प्राचीन सातवाहन-जनपद के साथ सम्बन्धित होने की स्थिति तथा प्राकृत भाषा के प्रयोग के कारण वे सातवाहनों से सम्बन्धित बताये जाते हैं। फिर, यह क इस वंश के किसी भी व्यक्ति का नाम पार्थियनो जैसा न होने के कारण, समझा जाता है कि इनका सम्बन्ध पार्थियनों से नहीं था। मुकुट में हाथी की हड्डी के प्रयोग से ही किसी जाति-विशेष का बोध नहीं होता। चोल-वंश के साथ घोर शत्रुता के होने तथा उत्तरी सभ्यता को अपनाने के कारण विश्वास किया जाता है कि उनका सम्बन्ध तमिल जाति से नहीं था। गुंटूर के 'मयिदवोलु' तथा बेलारी में हिरहडगल्लि के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि शिवस्कन्दवर्मन पल्लव-वंश का प्रथम महान् राजा था, जिसका राज्य कांची, आंध्रपथ, सताहनि रट्ठ तक फैला हुआ था और उसने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। चौथी शताब्दी के मध्य में महाराज समुद्रगुप्त ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण किया, तथा वहाँ के पल्लव शासक विष्णुगोप को पराजित कर कांची-जैसे शक्तिशाली राज्य को ऐसा आघात पहुँचाया कि आगे

सातवाहन-काल में प्रान्तीय शासन

सातवाहन-नरेशों के आन्तरिक शासन के सम्बन्ध में थोड़ा उल्लेख आवश्यक है। राजा या तो 'प्रतिष्ठान' में रहता था, या गोवर्धन (नासिक जिला), वैजयन्ती (उत्तरी कनारा) के सैन्य-स्कान्धावार तथा अन्य स्थानों में ।

सम्पूर्ण राज्य प्रशासकीय इकाइयों में विभाजित था, जिन्हें आहार अथवा 'जनपद' कहते थे। इनके शासक दो प्रकार के होते थे : (१) असैनिक कार्यों के अध्यक्ष को अमात्य, तथा (२) सैनिक राज्यपाल को महासेनापति, महारथी,

---

चल कर यही उसके पतन का कारण बन गया। परन्तु पेनुकोन्दा-प्लेट, तालगुण्ड-अभिलेख, तथा हेबात-दानपत्र (*IHQ*, 1927, 434) से प्रतीत होता है कि कुछ समय तक पल्लव राजाओं का आधिपत्य अनन्तपुर तथा पूर्वी मैसूर के गंगों, वैजयन्ती (बनवासी) तथा महिष-विषय (मैसूर) के कदम्बों ने भी स्वीकार किया था। पाँचवीं तथा छठी शताब्दी में पल्लवों का इतिहास अंधकारमय है। कुछ अभिलेखों में निम्नलिखित नरेशों की सूची दी गयी है, लेकिन इनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती—

* जिनमें इस प्रकार के चिह्न हैं, वे दोनों में हैं; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यही ठीक है। इस दिशा में अभी और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

महाभोज और कभी-कभी राजन् भी कहते थे। अपरान्त (उत्तरी कोंकण), गोवर्धन (नासिक), मामाद(ल) (पूना), बनवासी (उत्तरी कनारा) और खट्ट-बली (गोदावरी-क्षेत्र) के प्रशासक अमात्य थे, जबकि चीतलद्रुग, नानाघाट, कार्ले

	कुमारविष्णु	बुद्धवर्मन	
	स्कन्दवर्मन-प्रथम	स्कन्दवर्मन-तृतीय	
	वीरवर्मन*	विष्णुगोप-द्वितीय	
		विष्णुदास	
	(१) विजय स्कन्दवर्मन-द्वितीय (तांब्राप)[2]	स्कन्दवर्मन-चतुर्थ	
		सिंहवर्मन-प्रथम[1]	
ओंगोडु प्रथम, और द्वितीय वुरुवुपल्लि,	(२) युव-महाराज विष्णुगोप (पलक्कद)	वीरवर्मन*	
		स्कन्दवर्मन-पंचम	
मांगलूर, पिकिर, विलवत्ति तथा चूर दानपत्र	(३) सिंहवर्मन (दशनपुर, मेनमातुर और वेंगोराष्ट्र)	सिंहवर्मन-द्वितीय (४३६ ई० ?)	
		स्कन्दवर्मन-षष्ठम	उदयेन्दिरम दानपत्र लोक-विभाग ४५८ ई० तथा पेनुकोण्ड-प्लेट
	(४) विजय विष्णुगोपवर्मन (विजय-पलोत्कट)	नन्दिवर्मन-प्रथम	
		सिंहवर्मन तृतीय, चतुर्थ (दो राजा इसी नाम के)	
		विष्णुगोप-तृतीय	
		सिंहवर्मन-पंचम	
		सिंहविष्णु	
		महेन्द्रवर्मन-प्रथम	
		नरसिंहवर्मन-प्रथम (पुलकेशिन-द्वितीय का समकालीन)	

* जिनमें इस प्रकार के चिह्न हैं, वे दोनों में हैं; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यही ठीक है। इस दिशा में अभी और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

१. पलनाद-अभिलेख में भी सीहवर्मन का उल्लेख है, परन्तु उसकी तिथि आदि के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

२. तांब्राप को चेम्बोलु भी कहा जाता है।

और कन्हेरी (उत्तरी कोंकण में) सैनिक प्रशासकों के अधीन थे। ये प्रशासक राजघरानों तथा छुतु, कौशिक तथा वासिष्ठ[1] जाति से अपने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे, और कभी-कभी राजघरानों के नाम पर भी अपने नाम रख लिया करते थे। उदाहरणार्थ, महाभोजों का बनवासी के छुतु शासकों से अत्यन्त निकटतम सम्बन्ध था। यज्ञश्री के शासन-काल में नासिक तथा पुलुमायि के शासन-काल में बेलारी 'महासेनापति' के अधीन प्रशासकीय इकाइयाँ थी। कौशिक-वंश[2] के सैनिक प्रशासकों का वैवाहिक सम्बन्ध राजघराने से था, यह तथ्य अन्तिम सातवाहन-काल में अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। कोल्हापुर-क्षेत्र के प्रशासकों की उपाधि 'राजा' की थी। इनमें से अधिक प्रसिद्ध वासिष्ठीपुत्र विलिवायकुर, माथरीपुत्र शिवलकुर तथा गौतमीपुत्र विलिवायकुर-द्वितीय थे। विलिवायकुर-कुल से हमें अनायास ग्रीक-भूगोल वेत्ता तोलेमी (सी० १५० ई०) द्वारा उल्लिखित हिप्पोकौर के बेलिओकौरेस की याद आ जाती है।

सातवाहन-राज्य के पतन के बाद इन्हीं सामन्तों, सैनिक तथा असैनिक प्रशासकों के द्वारा छोटे-छोटे राज्यों का विकास हुआ। उदाहरण के लिये, शालंकायन (मालाकेनोइ) लोग शुरू-शुरू में आन्ध्र के सामन्त (उपशासक) की हैसियत रखते थे, जिन्होंने आगे चल कर स्वतन्त्र आन्ध्र-राज्य स्थापित कर लिया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि बेलारी जिले के सैनिक राज्यपाल ही आगे चल कर पल्लव नरेश बने।

कुन्तल के शातकर्णि

बलश्री के पुत्र गौतमीपुत्र-महान् के राज्य-काल में बनवासी अथवा वैजयन्ती (कनारा) सम्भवतः शिवगुप्त अमात्य के अधीन एक राजकीय प्रान्त था। कुछ अनजान कारणों से इस प्रदेश का शासन एक ऐसे वंश के हाथों में चला गया,

---

१. आगे चल कर 'वासिष्ठ-वंश' कलिंग के शासक के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

२. कौशिकीपुत्र शातकर्णि का ज्ञान हमें एक मुद्रा से होता है (*Bibliography of Indian Coins*, Part I, 1950, p. 36)।

जो अभिलेखों[1] के अनुसार छुटु-वंश के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन, सातवाहन शातकर्णि तथा छुटु-वंश के आपसी सम्बन्धों के बारे में कोई जानकरी नहीं मिलती। म्यकदोनी-अभिलेख तथा वात्स्यायन के 'कामसूत्र', 'गाथासप्तशती' और 'काव्य-मीमांसा' से ज्ञात होता है कि कुन्तल अथवा कनेरी देश में छुटु-कुल के पूर्व सातवाहनों का शासन था। उनमें से कुछ तो प्राकृत भाषा के बड़े संरक्षक थे। इनमें 'हाल' सर्वाधिक प्रसिद्ध था। पुराणों के अनुसार हाल के पूर्वज कामसूत्र में उल्लिखित कुन्तल शातकर्णि थे जो स्वयं भी प्राकृत भाषा के एक महान् संरक्षक थे। छुटु-वंश के प्रतिनिधि शासक हारितीपुत्र विष्णुकड-छुटु कुलानन्द शातकर्णि थे। ये वैजन्तीपुर के राजा थे। इनके नाती (पुत्री के पुत्र) शिवस्कन्द-नागश्री थे, जो प्रो० रैप्सन के अनुसार, कन्हेरी-अभिलेख में उल्लिखित स्कन्दनाग शातक अथवा वैजयन्ती के राजा हारितीपुत्र शिव (स्कन्द) वर्मन थे, जिनका उल्लेख मैसूर के शिमोगा ज़िले से प्राप्त मालावल्ली-अभिलेख में मिलता है। अंतिम नाम के बारे में अभी संदेह है, क्योंकि विष्णुकड की माता एवं पुत्री का एक ही गोत्र का होना कठिन प्रतीत होता है। स्पष्ट है कि हारितीपुत्र शिववर्मन के पश्चात् कदम्ब-वंश[2] वालों के हाथ में सिंहासन आ गया।

---

१. कुछ विद्वानों का मत है कि 'छुटु' किसी राजवंश का नाम नहीं था। उनके अनुसार यह व्यक्तिगत नाम हो सकता है। (*Prog. Rep. of the ASI W. Circle*, 1911-12, p. 5)।

२. कदम्ब-वंश का संस्थापक 'मयूरशर्मन' नामक एक ब्राह्मण था, जो 'बृहद् बाण' तथा अन्य राजाओं की सहायता से पल्लव-राजाओं के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ और पल्लवों को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे उसे सैनिक राज्यपाल का 'पट्टबन्ध' (पत्रबन्ध) प्रदान कर दें। शीघ्र ही उसने अपने राज्य की सीमा पश्चिमी घाट तक विस्तृत कर ली। उसके प्रपौत्र काकुस्थवर्मन ने अपनी पुत्रियों का विवाह गुप्त तथा अन्य नरेशों के साथ किया। इसी वंश के कृष्णवर्मन-प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ भी किया। मृगेशवर्मन ने गंगों तथा पल्लव नरेशों को पराजित कर वैजयन्ती को अपनी राजधानी बनाया। इसी वंश के छोटे राजकुमार पलाशिका, उच्चश्रृङ्गी तथा त्रिपर्वत पर राज्य करते थे। अंत में चालुक्यों ने अंतिम रूप से उन्हें पराजित कर दिया (देखिये मोरेस, 'कदम्बकुल'; Sircar, *JIH*, 1936, 301 ff)।

३. उज्जैन तथा काठियावाड़ के शक

पुनर्स्थापित सातवाहन-साम्राज्य के सबसे बड़े शत्रु उज्जैन के शक-क्षत्रप थे। शक-वंश का प्रथम शासक यशामोतिक था जो महाक्षत्रप चाश्तान का पिता था। यशामोतिक नाम शक[1] नाम है। यशामोतिक के जिस उत्तराधिकारी को चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने पराजित किया, उसे महाकवि बाण ने अपने 'हर्षचरित' में एक शक राजा कहा है। अतः इतिहासकारों का अनुमान है कि उज्जैन के क्षत्रप शक-वंश के थे।

इस वंश का उचित नाम हमें ज्ञात नहीं है। रैप्सन का अनुमान है कि सम्भवतः इस राजवंश का नाम कार्द्दमक-वंश था। रुद्रदामन की पुत्री ने गर्व के साथ अपने को कार्द्दमक-वंश का बताया है। परन्तु, इसके लिये उसे अपनी माता का आभारी होना चाहिये था। फ़ारस में कार्दम नाम की एक नदी है, उसी के आधार पर इस वंश का नाम कार्द्दमक पड़ा।[2]

डुब्रील के अनुसार, चाश्तान ७८ ई० में गद्दी पर बैठा था, तथा शक-सम्वत् का जन्मदाता भी वही था। उसकी राजधानी उज्जैन बताई जाती है, परन्तु यह बात असम्भव-सी प्रतीत होती है, क्योंकि पेरीप्लस के लेख से ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी के सात दशकों में उज्जैन राजधानी थी ही नहीं।[3] उसका कथन है कि उसके पहले यह राजधानी अवश्य थी। चाश्तान की सबसे पहली ज्ञात तिथि शक-सम्वत् ५२, अर्थात् सन् १३० ई० है। आन्धव-अभिलेख के अनुसार चाश्तान सन् १३० ई० में अपने पौत्र रुद्रदामन के साथ-साथ शासन कर रहा था। प्रोफ़ेसर रैप्सन तथा डॉ० भण्डारकर स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि उसकी विदेशी उपाधि

---

१. *JRAS*, 1906, p. 211. लेवी तथा एस० कोनोव (*Corpus*, II, i. lxx) यशामोतिक को 'भूमक' बताते हैं, क्योंकि शक शब्द 'यशम' का अर्थ 'भूमि' होता है। परन्तु, आवश्यक नहीं कि नाम के अर्थ पर ही कोई व्यक्ति हो। इस सम्बन्ध में देखिये कुमारगुप्त तथा स्कन्दगुप्त।

२. पारसिक। शाम शास्त्री द्वारा अर्थशास्त्र का अनुवाद, p. 86. देखिये *IHQ*, 1933, 37 ff. *Cf.* the Artamis of Ptolemy, VI. 11.2—ऑक्सस की एक सहायक नदी।

३. पेरीप्लस में Nabataeans के राजा मलिकोस (मलिकु) का उल्लेख आया है। इनकी मृत्यु ७५ ई० में हुई थी। Auxumites के राजा ज़ोस्केलीज़ (ज़ा हकेल) (राज्य सन् ७६ ई०-८० ई०) का भी उल्लेख है (*JRAS*, 1917, 827-830)।

क्षत्रप तथा उसकी अपनी मुद्राओं पर खरोष्ठी लिपि का प्रयोग—इन दोनों बातों से सिद्ध होता है कि वह किसी विदेशी शासक—सम्भवतः उत्तर के कुषाणों द्वारा नियुक्त एक उपशासक था। चाश्तान का पुत्र जयदामन मात्र एक क्षत्रप ही रहा और अपने पिता के पहले ही उसकी मृत्यु हो गयी। अतः चाश्तान के पश्चात् उसका पौत्र रुद्रदामन-प्रथम सिंहासनासीन हुआ और उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की।

सम्वत् ५२ तथा ७२ (सन् १३० से १५० ई०) के बीच किसी भी समय रुद्रदामन[1] ने स्वतंत्र शासक बन कर महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। सम्वत् ७२ के जूनगढ़-शिलालेख से ज्ञात होता है कि सभी जातिवालो ने उसे अपना संरक्षक चुना, और इसीलिए उसने अपने को 'महाक्षत्रप' कहना आरम्भ किया। इससे अनुमान लगाया जाता है कि किसी दूसरे ने—सम्भवतः गौमती-पुत्र ने—उसके वंश की शक्ति कम कर दी, जिसे उसने अपने बाहुबल से फिर स्थापित किया।

लेख में आये हुए नाम से अनुमान होता है कि रुद्रदामन ने अपना राज्य पूर्वापर-आकर-अवन्ती (पूर्वी तथा पश्चिमी मालव), अनूप-निवृत अथवा माहिष्मती प्रदेश (निमाड़ में मांधाता अथवा महेश्वर)[2], आनर्त्त[3] (द्वारका के आसपास का प्रदेश), सुराष्ट्र (जूनागढ़ के आसपास का प्रदेश), स्वभ्र (साबरमती-

१. साहित्य में रुद्रदामन के लिये, देखिये Chatterjee, *Buddhistic Studies* (ed. Law), p. 384f.

२. *IA*, 4, 346.

३. कुछ विद्वानों के अनुसार 'आनर्त्त' वडनगर ज़िले के आसपास का प्रदेश था (*Bom. Gaz.*, 1, i, 6)। अतः कुकुर को द्वारका प्रदेश में होना चाहिये। भागवत पुराण (1, 11, 10) में द्वारका को "कुकुरान्धक-वृष्णिभिः गुप्ता" कहा गया है। वायु पुराण (Ch. 96. 134) में यादव राजा उग्रसेन को कुकुर-वंश का (कुकुरोद्भव) कहा गया है। महाभारत (III, 183, 32) में भी कुकुरों को दशार्हों तथा यादव जाति के अंधकों के निकट का बताया गया है। महाभारत (II, 52, 15) में ही उनको अम्बष्ठों तथा पह्लवों के साथ जोड़ा गया है। कदाचित् उनकी एक शाखा चिनाब तथा सिन्धु की घाटी में निवास करती थी, जबकि दूसरी काठियावाड़ में रहती थी।

तट के प्रदेश), मरु (मारवाड़), कच्छ (कच), सिन्धु-सौवीर (सिन्धु-घाटी का निचला भाग),[1] कुकुर (सम्भवतः सिन्ध तथा पारियात्र पर्वत के बीच का भाग)[2], अपरान्त (उत्तरी कोंकण)[3], निषाद (सरस्वती तथा पश्चिमी विन्ध्य-प्रदेश)[4], आदि तक फैला रखा था। इन स्थानों में से सुराष्ट्र, कुकुर, अपरान्त, अनूप तथा आकरावन्ती गौतमीपुत्र के राज्य के भाग थे जिसे या तो स्वयं गौतमीपुत्र या उसके उत्तराधिकारियों से, महाक्षत्रप रुद्रदामन ने जीता होगा। जूनागढ़-अभिलेख से ज्ञात होता है कि रुद्रदामन ने दक्षिण के सम्राट् शातकर्णि को दो बार पराजित किया, परन्तु निकट सम्बन्धी होने के कारण उसे नष्ट नहीं किया। डॉ० डी० आर० भण्डारकर के अनुसार, यह

१. सिन्धु नदी के पश्चिमी तट का अन्तर्वर्ती भाग सिंघ कहलाता है (Watters, *Yuan Chwang*, II, 252, 253, read with 256; वात्स्यायन, कामसूत्र, बनारस-संस्करण, 295)। लिटोरल (मिलन्दपञ्ह, *SBE*, XXXVI, 269) तथा सिन्धु नदी का पूर्वी अन्तर्वर्ती प्रदेश मुलतान तक सौवीर कहलाता था (अल्बेरूनी, I, 302; *IA*, 7, 259)। जैनियों के प्रवचनसारोद्धार में 'वितभय' को इसकी राजधानी बताया गया है।

२. बृहत्संहिता, V, 7I; XIV, 4.

३. अपरान्त प्रदेश का विस्तार (देखिये अशोक, RE, V) केवल सूरपारक तक ही नहीं था, बल्कि उसमें नासिक, भरुकच्छ, मही‌घाटी, कच्छ, सुराष्ट्र, आनर्त्त, आबू आदि भी शामिल थे (वायु पुराण, 45, 129 f; मत्स्य पुराण, 114, 50-51; मार्कण्डेय पुराण, 57, 49 f.—पुराणों में दिया गया सूरपारकाः कच्छियाः तथा आनर्त्ताः ग़लत हैं। इनके स्थान पर सूर्यारकाः, काश्मीराः तथा आवन्त्याः होना चाहिये)। परन्तु, जूनागढ़ के लेख द्वारा अपरान्त को सुराष्ट्र तथा आनर्त्त से भिन्न बताया गया है। अतः, निश्चय ही इसका प्रयोग यहाँ अत्यन्त सीमित अर्थ में हुआ है।

४. देखिये 'निषाद-राष्ट्र', महाभारत, III, 130. 4. सरस्वती नदी के अदृश्य होने के (विनाशन) स्थान को निषाद-राष्ट्र का द्वार कहा गया है। पारियात्रचरः भी देखें, महाभारत, XII, 135, 3.5 में भी यही है। महाभारत (ii, 31.4-7) में चम्बल तथा मत्स्य (जयपुर) के बीच के भाग को 'निषादभूमि' कहा गया है। वेद के आलोचक महीधर का कथन है कि निषाद का अर्थ भील है (*Vedic Index*, I, 454)। बूहलर (*IA*, 7, 263) के अनुसार 'निषादभूमि' हिसार तथा भटनीर का ही नाम था।

शातकर्णि स्वयं गौतमीपुत्र था, जिसका पुत्र वासिष्ठीपुत्र, शातकर्णि रुद्रदामन का दामाद था। रैप्सन के अनुसार, दक्षिण का शासक शक-नरेश पुलुमायि के हाथों पराजित हुआ था। इस बात की सम्भावना अधिक मालूम होती है कि पराजित राजा वासिष्ठीपुत्र शातकर्णि स्वयं रहा होगा जो कदाचित् पुलुमायि का भाई अथवा पूर्वज रहा होगा।

महाक्षत्रप रुद्रदामन ने सतलज के पास जोहियाबार के यौधेयों को भी पराजित किया था। एक प्रस्तर-लेख के अनुसार इन यौधेयों ने भरतपुर राज्य के विजयगढ़-क्षेत्र को भी अपने अधिकार में कर लिया था। यदि कुषाण-वंश की स्वीकृत तिथियाँ सत्य हैं तो निश्चय ही रुद्रदामन ने सिन्धु-सौवीर को कनिष्क-प्रथम के उत्तराधिकारियों में से किसी एक से छीन लिया होगा।

रुद्रदामन का दरबार उज्जैन में ही लगता रहा होगा, जो तोलेमी के अनुसार उसके पितामह चाश्तान की राजधानी थी। तोलेमी के अनुसार, आनर्त्त तथा सुराष्ट्र प्रान्त पह्लव (पार्थियन) अमात्य[1] सुविशाख के शासन के अन्तर्गत थे। इस अमात्य ने प्रसिद्ध सुदर्शन भील पर बाँध भी बँधवाया था। इस बाँध का अस्तित्व "मौर्य शासन-काल में भी था जबकि इस दूर-स्थित प्रदेश में भी सिंचाई की पूरी व्यवस्था की गयी थी।"

महान् 'क्षत्रप' शब्द (व्याकरण), अर्थ (राजनीति), गन्धर्व (संगीत), तथा न्याय (तर्क) के अध्ययन और प्रसार के लिए विख्यात थे। चरित्र के नैतिक दृष्टिकोण से उन्होंने यह सिद्धान्त बना रखा था कि सिवा युद्धक्षेत्र के वे कभी भी नरहत्या नहीं करेंगे। सुदर्शन भील को ठीक कराने में जो बहुत अधिक धन व्यय हुआ, वह उसने अपने कोष से दिया और उस खर्च को पूरा करने के लिए वहाँ के स्थानीय लोगों पर बेगार, या कर इत्यादि नहीं लगाया गया।[2] शासन-व्यवस्था में राजा की सहायता के लिये विद्वान्, गुण-सम्पन्न मंत्रिजन हुआ करते थे। ये मंत्री दो प्रकार के थे—प्रथम, मतिसचिव—

१. अमात्य की इस उपाधि से सुराष्ट्र के शासक 'तुषास्फ़' (अशोक के राज्य-काल) के नाम के साथ पायी जाने वाली उपाधि 'राजा' तुलनीय है (*IA*, 7, 257 n); जबकि कुछ ज़िलों तथा प्रान्तों में अमात्य शासन करते थे, और उनका कार्य केवल असैनिक होता था। परन्तु, अन्य प्रान्तों में महादंडनायक राज्य करते थे। यह नाम साँची के अभिलेख से पुष्ट होता (*JASB*, 1923, 343)।

२. *Bomb. Gaz.*, I, 1, 39.

जो केवल मंत्रणा देते थे; तथा द्वितीय, कर्मसचिव—इनका कार्य राज्य की नीतियों को लागू करना था।

रुद्रदामन के दो पुत्र तथा एक पुत्री थी। राजकुमारी का विवाह दक्षिण के सातवाहन-वंश के वासिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि के साथ हुआ था। नागार्जुनिकोंड-अभिलेख[1] में किसी एक उज्जैन की राजकुमारी रुद्रधर भट्टारिका का उल्लेख आता है जिसका विवाह गुण्टूर तथा कृष्णा-घाटी के आसपास के इक्ष्वाकु-वंशीय शासक के साथ हुआ था। वोगेल के अनुसार, वह राजकुमारी चाश्तान-वंश की थी, उसके पिता स्वामी रुद्रसेन-तृतीय (सी० ३४८ से ३७८ ई०) थे, और संभवत: सम्राट् समुद्रगुप्त के समकालीन थे। उन्होंने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी। यह उपाधि रुद्रदामन-प्रथम के उत्तराधिकारी अक्सर अपने नाम के साथ लगाया करते थे। फिर भी यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इक्ष्वाकु-वंश की रानी (महादेवी) रुद्रसेन-तृतीय की पुत्री थीं, अथवा किसी दूसरे राजा की।

रुद्रदामन के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र दामग्सद (Damaghsada) प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। रैप्सन के कथनानुसार, उसकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी के दो उत्तराधिकारी सामने आये—एक उसका पुत्र जीवदामन और दूसरा, उसका भाई रुद्रसिंह-प्रथम। इन दोनों के बीच हुए युद्ध में रुद्रसिंह विजयी हुआ। रुद्रसिंह के राज्य-काल में सन् १८१ ई० में प्राप्त गुण्ड-अभिलेख में बापक या बाहक के पुत्र एक आभीर सेनापति रुद्रभूति का उल्लेख आता है जिसने एक तालाब खुदवाया था। आगे चलकर इन्हीं आभीरों ने महाक्षत्रप-पद रुद्रदामन के उत्तराधिकारियों से छीन लिया। डॉ० भण्डारकर के अनुसार, ईश्वरदत्त नामक एक आभीर सेनापति सन् १८८-१९० ई० में 'महाक्षत्रप' था, परन्तु रैप्सन के अनुसार ईश्वरदत्त सन् २३६ ई० के बाद हुआ था।

रुद्रसिंह के पश्चात् उसके पुत्र रुद्रसेन-प्रथम,[2] संघदामन तथा दामसेन सिंहासन पर आसीन हुए। दामसेन के तीन पुत्र—यशोदामन, विजयसेन तथा दामजद-श्री महाक्षत्रप बने। दामजद-श्री के पश्चात् उसका भतीजा रुद्रसेन-द्वितीय

१. *Ep. Ind.*, XX, 1 ff.

२. मुलवासर तालाब का लेख तथा जसधन-स्तम्भलेख रुद्रसेन के शासन-काल (२०५ ई०) के ही हैं। जसधन-स्तम्भलेख में जयदाम को छोड़कर रुद्रसेन के सभी पूर्वजों के नाम के पूर्व 'भद्रमुख' शब्द का प्रयोग हुआ है।

और उसके पश्चात् उसके पुत्र विश्वसिंह और भर्तृदामन सिंहासनारूढ़ हुए। भर्तृदामन के शासन-काल में उसका पुत्र विश्वसेन मात्र क्षत्रप था।

भर्तृदामन तथा विश्वसेन के पश्चात् महाक्षत्रप रुद्रदामन-द्वितीय सिंहासन पर बैठा, परन्तु भर्तृदामन अथवा विश्वसेन से उसके संबंध के बारे में हमारे पास ज्यादा जानकारी नहीं है। इस वंश का अंतिम सम्राट् रुद्रसिंह-तृतीय था जिसने लगभग सन् ३८८ ई० तक राज्य किया।

रैप्सन का मत है कि सन् २९५ से लेकर सी० ३४० तक कोई भी महाक्षत्रप नहीं हुआ। ३०५ ई० के लगभग इस वंश की अग्रज शाखा का अंत हो गया, तथा उस परिवर्त्तनशील काल में कोई अज्ञातवंशी क्षत्रप तथा महाक्षत्रप के रूप में राज्य करने लगा। सन् २९५ से ३३२ ई० तक जितने भी शासक हुए, उन सभी ने 'क्षत्रप' जैसी दूसरे दर्जे की उपाधि धारण की, 'महाराज क्षत्रप' अथवा 'राजा महाक्षत्रप' जैसी स्वतंत्र उपाधि सन् ३४८ ई० के तनिक पूर्व रुद्रसेन-तृतीय ने फिर ग्रहण की थी। इसी समय जबकि प्राचीन वंश प्रायः लुप्त हो चुका था तथा महा-क्षत्रप का पद रिक्त पड़ा था, भारत का शकस्थान नामक भाग ससानियन राज्य में मिला लिया गया, तथा उनके राज्यपाल ही शासन करते रहे। वर्ह्रान (बहराम) द्वितीय के शासन के अंत के पूर्व ही (२९३ ई०) ससानियन-वंश के लोगों ने विजय करना आरम्भ कर दिया तथा शापूर-द्वितीय (३०९—७९ ई०) तक अपने राज्य को बनाये रखा। चौथी शताब्दी के मध्य में फ़ारस-निवासियों का भारत पर अधिकार शनैः-शनैः कम होता गया, जबकि रुद्रसेन-तृतीय ने 'महाराजा' की उपाधि धारण की तथा समुद्रगुप्त (कालिदास के रघुवंश के 'रघु') ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रान्त के विदेशी शासकों को बाध्य किया कि वे उसे अपना सम्राट् स्वीकार करें।

पश्चिमी भारत में शकों ने यद्यपि अपना राज्य पुनःस्थापित कर लिया था, तो भी वह अधिक समय तक चल नहीं सका, और अंत में गुप्त-सम्राटों द्वारा शक पूर्ण रूप से पराजित हुए। समुद्रगुप्त के शासन-काल से ही हमने देखा कि शकों ने अपनी कन्याओं का विवाह करके तथा अन्य दूसरे अज्ञाकारी ढंगों से शान्ति से रह सकने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उदयगिरि-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने पूर्वी मालव को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था। एक अन्य लेख से ज्ञात होता है कि एक बार राजा के साथ एक मंत्री यहाँ आया था। राजा के आने के उपलक्ष्य में उसने एक गुफा बनवाई थी।

एक लेख में 'सिंह विक्रान्तगामिनि' शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि पश्चिमी मालव को जीत कर 'सिंह-विक्रम', अर्थात् चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने मन्दसौर के नरवर्मन[1] को अपना उपशासक बना लिया था। चन्द्रगुप्त की रजत-मुद्राओं (जिन्हें उसने शक-क्षत्रपों की मुद्राओं के समान बनवाया था) से ज्ञात होता है कि उसने सुराष्ट्र को भी अपने राज्य में मिला लिया था। अंत में, 'हर्षचरित' में बाण का कथन है कि चन्द्रगुप्त ने किसी शक-राजा का वध किया था—

अरि (लि ?) पुरे च परकलत्र-कामुकं कामिनीवेश गुप्तश्च
चन्द्रगुप्तः शकपतिमशातयदिति।[2]

---

१. *Int. Ant.*, 1913, p. 162. चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने छोटी-छोटी चाँदी की मुद्राएँ, जिन पर एक सुराहीनुमा बर्तन की आकृति बनी है, सम्भवतः मालव में चलायी होंगी जो दूसरी शताब्दी में शकों के अधिकार में रहा होगा। (Allan, *CICAI*, cvi)।

२. टीकाकार शंकर के अनुसार 'परकलत्र' और 'कामनी' ध्रुवदेवी के लिये प्रयुक्त हुआ है; और, ध्रुवदेवी के वेश में (जिससे प्रेम करने के लिये शक-नरेश आगे बढ़ रहा था) स्वयं चन्द्रगुप्त ने जाकर शक-नरेश का वध कर दिया। भोज के 'शृङ्गार-प्रकाश' के द्वारा इस पर और अधिक प्रकाश पड़ता है, क्योंकि उसमें 'देवीचन्द्रगुप्तम्' से कुछ अंश उद्धृत किया गया है। (देखिये *Aiyangar Com. Vol.*, 359 ff; Levi, *J A*, 1923, 201 ff; रंगस्वामी सरस्वती द्वारा सम्पादित 'देवीचन्द्रगुप्तम्', *Ind. Ant.*, 1923, p. 181 ff)। अंतिम कृति 'मुद्राराक्षस' के लेखक 'विशाखदत्त' द्वारा लिखी गई है। रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र के 'नाट्य-दर्पण' में भी 'देवीचन्द्रगुप्तम्' से उद्धरण दिये गये हैं।

उज्जैन के शक-नरेशों की वंशावली

४. सीथियन (शक) युग[1] का प्रशासन

सीथियन युग की शासन-प्रणाली के बारे में हमें जितना भी थोड़ा ज्ञात है, उससे हम यह निष्कर्ष तो नहीं ही निकाल सकते कि उनकी शासन-पद्धति नये-नये सैनिक विजेताओं की अस्त-व्यस्त और अवैज्ञानिक शासन-पद्धति थी। बल्कि, इसकी जगह शताब्दियों और पीढ़ियों से चले आते हुए राजनीतिशास्त्रियों तथा व्यावहारिक प्रशासकों द्वारा विकसित वह एक उच्चकोटि की शासन-प्रणाली थी—यह कहना अधिक संगत होगा।

भारतीय शक-शासन-तंत्र पर राजनीतिक विचारकों (अर्थचिन्तकों) का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उस युग के सबसे योग्य राजकुमार को अर्थविद्या[2] की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। युवराज को हर प्रकार से प्रशिक्षित किया जाता था, और मंत्रिपद के लिये केवल वे ही व्यक्ति चुने जाते थे जिनमें अमात्य-गुण विद्यमान होते थे। मंत्रियों, अन्य उच्च पदाधिकारियों तथा सचिवों का वर्गीकरण किया जाता था। युवराज को बताया जाता था कि किसी प्रकार की बेगार (विष्ठि) आदि न लें। साथ ही नगरवासियों तथा देशवासियों के लिये लाभदायक एवं कल्याणकारी कार्य करें। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि 'अर्थशास्त्र' की शिक्षाएँ सीथियन-शासन में एकदम लुप्त नहीं हो गयी थीं। उनकी शासन-प्रणाली पहले की शासन-प्रणाली से अधिक भिन्न नहीं थी। उनके यहाँ भी महामात्र,[3] रज्जुक,[4] सम्चरंतक अथवा सञ्चारिन[5] गुप्तचर आदि पाये जाते

१. 'सीथियन युग' का प्रयोग यहाँ पर हमने एक विस्तृत अर्थ में किया है। इसमें मौर्य-काल के पश्चात् आने वाले उन सारे राजवंशों का वर्णन है, जो ईस्वी सन् के आसपास राज्य करते थे। इस काल में अधिकतर भाग में सबसे शक्तिशाली सीथियन (राजाओं का राजा) शासक था, जिसकी राजधानी कहीं उत्तर-पश्चिम में थी, लेकिन उसका आदेश गंगा और गोदावरी के तट तक माना जाता था (देखिये *Cal. Rev.*, Sept.; 1925)।

२. रुद्रदामन का जूनागढ़-अभिलेख (*Ind. Ant.*, 1878, p. 261; *Ep. Ind.*, VIII, 36 f)।

३. *Luders' Ins.*, Nos. 937, 1144. सातवाहन-राजा ने एक श्रमण (जैन साधु) को अपना 'महामात्र' नियुक्त किया था।

४. *Ins.*, Nos. 416, 1195. देहाती क्षेत्र में 'रज्जुक' भूमिमापक तथा न्यायाधीश हुआ करते थे।

५. *Ins.*, No. 1200; *Cf. IA.*, 5, 52, 155.

थे। इससे अनुमान होता है कि कम से कम दक्षिणी भारत में मौर्य-शासन-प्रणाली अभी एकदम समाप्त नहीं हो गयी थी। परन्तु, इससे हमें यह अर्थ नहीं निकालना चाहिये कि सम्पूर्ण शासन-प्रणाली मौर्य-शासन-प्रणाली की नक़ल भर थी। उत्तरी-पश्चिमी भारत के विदेशी विजेता जिन देशों से भी विजय प्राप्त करते हुए आये, अपने साथ उन देशों में सहस्रों वर्षों से चली आ रही शासन-प्रणाली भी साथ लाये थे। इस प्रकार इन क्षत्रपों ने शासन की फ़ारसी प्रणाली को उत्तरी-पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत के अनेक प्रान्तों में लागू किया। इस तरह यूनानी उपाधि वाले मेरीदार्क (Meridarch[1], सम्भवतः ज़िला-अधिकारी) तथा स्ट्राटेगो (Strategos, राज्यपाल अथवा सेनानायक) भारतीय उपाधि वाले अमात्यों (ज़िले का अधिकारी कोई मंत्री आदि) तथा महासेनापतियों (सैनिक राज्यपाल) के साथ-साथ शासन करते थे।

शकों के निरंतर आक्रमण होने पर भी बुद्ध तथा सिकन्दर के काल से चली आ रही कबाइली प्रजातंत्र-शासन-प्रणाली पूरी तरह समाप्त न हो सकी थी। अभिलेखों तथा मुद्राओं से ऐसे अनेक कबाइली तथा जातीय[2] राज्यों का पता चलता है। उनमें से लिच्छवियों तथा शाक्यों की तरह ही अत्यन्त शक्तिशाली राज्य हमेशा अपने पड़ोसी शक-राजवंश से लोहा लिया करते थे। दुर्भाग्यवश उस समय की सामग्री में, उनके सम्बन्ध में हमें बहुत कम ही ज्ञात हो पाता है। ऐसी स्थिति में यह उचित नहीं प्रतीत होता कि हम उन शासन-प्रणालियों को, जो उनके उत्तराधिकारों ने विकसित किया, उनके नाम के साथ जोड़ दें।

यद्यपि सीथियन लोग सारे भारतीय लोकतंत्रों को समाप्त नहीं कर सके, फिर भी उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत के कई राजवंशों को नष्ट करके वहाँ एक विशिष्ट प्रकार की अपनी राजतंत्र-व्यवस्था क़ायम की। इसका पता हमें दो बातों से चलता है—प्रथम, सारे सीथियन-सम्राटों द्वारा बड़ी-बड़ी दैवी उपाधियों का धारण करना; और दूसरे, मृत सम्राटों को देवता-रूप में स्वीकार करना। यद्यपि यह सत्य

१. स्वात खरोष्ठी-लेख में एक 'मेरीदार्ख थ्योदोरा' का भी उल्लेख मिलता है। तक्षशिला के खरोष्ठी-अभिलेख में एक दूसरे 'मेरीदार्ख' का उल्लेख आया है। इन दोनों का उल्लेख बौद्धधर्म तथा मूर्त्तियाँ स्थापित करने वाले के रूप में किया गया है (*Corpus*, II, i, XV)।

२. उदाहरण के लिये, मालव (मलय), यौधेय, आर्जुनायन, तथा सम्भवतः औदुम्बर, कुलूत, कुनिन्द (See, *Camb. Hist. Ind.*, 528, 529) तथा उत्तम-भद्र (देखिये *Smith*, *Cotalogue of Coins*, Sec. VII)।

है कि प्राचीन काल में भी भारतीय नरेश अपने को दैवी सन्तति कहते थे तथा बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करते थे। फिर भी, यह ध्यान देने योग्य बात है कि अशोक-जैसे महान् सम्राट् ने अपने को केवल राजा अथवा 'देवानंपिय पियदसि'[1] कहकर ही संतोष किया था। परन्तु, सीथियन-काल के नरेश इस प्रकार की विनम्र उपाधियों से संतुष्ट नहीं थे, वे बड़ी-बड़ी उपाधियाँ, जैसे 'चक्रवर्तिन्', 'अधिराज', 'राजातिराज', 'देवपुत्र' आदि धारण करते थे।

दक्षिणी भारत में उस काल में राजाओं के नाम के साथ धार्मिक उपाधियाँ भी देखने को मिलती हैं, जैसे 'क्षेमराज',[2] 'धर्म महाराजाधिराज' तथा 'धर्म युव-महाराज'[3] आदि। इन उपाधियों को धारण करने का अर्थ यह था कि राजा प्राचीन धर्म-प्रचारकों और शिक्षकों द्वारा प्रवर्त्तित धर्म की रक्षा करेगा और कलियुग की बुराइयों तथा विदेशी नास्तिकों और उत्तर-पश्चिम की बर्बर विजातियों से देश की रक्षा करेगा।

जिस प्रकार इस युग के राजाओं ने बड़ी-बड़ी उपाधियों[4] से अपने को विभूषित किया, उसी प्रकार उनकी मुख्य रानियों को भी बड़ी-बड़ी उपाधियाँ दी गईं।

---

१. "Of Gracious Mien, Beloved of the Gods"

२. *Luders' Ins.*, No. 1345; 'दयालु एवं धार्मिक राजा', 'शान्तिप्रिय राजकुमार।'

३. 'सद्चरित्र महाराजाधिराज', 'सद्चरित्र युवराज' *Luders' Ins.*, Nos. 1196, 1200. उपाधियों के महत्त्व के लिये देखिये *IA*, 5,51. "कलियुग-दोषाव-सन्न धर्मोद्धरण नित्य सन्नद्ध", "मन्वादि प्रणीत विधि-विधान-धर्मा धर्मराज इव", "प्रक्षालित कलि-कलंक:" उपाधियाँ वलभी के मैत्रक राजाओं के लिये प्रयुक्त हुई हैं (भवनगर-अभिलेख, ३१)। कभी-कभी शक-नरेश भी अपने को 'धर्मविजयी' कहते थे (*JASB*, 1923, 343)।

४. भारतीय इतिहास की यह विशेषता रही है कि जो उपाधियाँ एक काल में राजाओं द्वारा ग्रहण की जाती थीं, वही दूसरे काल में सहायकों द्वारा प्रयुक्त होती थीं। इस प्रकार अशोक द्वारा धारण की गयी 'राजा' की उपाधि शकों तथा गुप्तों के समय में उपशासकों द्वारा धारण की जाने लगी। सम्राटों द्वारा उस काल में 'राजराजा', 'राजाधिराज', 'महाराजाधिराज', 'परमभट्टारक' तथा 'परम-राजाधिराज', आदि उपाधियाँ अपनाई गयीं (Allan, 63)। परन्तु, पार्थियनों के शासन-काल में 'महाराजाधिराजा' की पदवी फिर सहायकों ने ले ली, क्योंकि नरेशों में 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' जैसी उपाधियाँ ज्यादा प्रचलित हो चुकी थीं।

अशोक की महारानी को 'देवी' कहा गया। 'तीवर' की माता को 'द्वितीय देवी' कहा गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुख्य रानी को 'प्रथम देवी' कहते रहे होंगे। परन्तु, सीथियन-काल में रानियों के लिए 'अग्रमहिषी' तथा 'महादेवी' की उपाधियाँ अधिक प्रचलित मिलती हैं। 'महादेवी' उपाधि से मुख्य रानी को उसकी दूसरी सौतों से अलग किया गया है। इस प्रकार की उपाधियाँ 'अयसि कमुइआ', 'नागनिका' तथा 'बलश्री' के नामों के साथ मिलती हैं।

सीथियन-काल में राजा की मृत्यु के पश्चात् उसकी मूर्त्ति बनाने और उसे स्थापित करने की विचित्र प्रथा प्रचलित थी। इस तरह के मूर्त्तिगृहों को 'देवकुल' कहते थे। इनमें सबसे प्रसिद्ध मथुरा-अभिलेख[1] में उल्लिखित हुविष्क के पितामह का 'देवकुल' था। राजवंश के इन देवकुलों, उनके मन्दिरों तथा स्वयं जीवित देवपुत्रों (तत्कालीन शासक राजाओं) के ही कारण सम्भवतः मथुरा का नाम 'देवताओं की नगरी'[2] पड़ा।

हम यहाँ जिस युग की चर्चा कर रहे हैं, उसमें कुछ लेखकों ने राजधर्म की भी चर्चा की तथा राजा को मनुष्य के रूप में 'महती देवता' की उपाधि प्रदान की। परन्तु, सम्भवतः सर्वप्रथम यह उपाधि शकों (सीथियनों)[1] द्वारा धारण

---

1. *JRAS*, 1924, p. 402. अन्तिम राजाओं की मूर्त्तियों के लिए देखिये—*Beginnings of South Indian History*, 144, 153; Raverty, *Tabaqat*, I, 622 (effigy of Bikramajit); C. S. Srinivasachari, *The Evolution of Political Institutions of South India*, Sec., IV (*"The Young Men of India"*, *June and July, 1924*, p. *5*)। तंजोर के मंदिर में सुन्दरचोल तथा उसकी एक रानी की मूर्त्ति मिलती है। सी० वी० वैद्य (*Mediaeval Hindu India*, I, 98) का मत कि जहाँ पर मृत राजा का दाह-संस्कार किया जाता था, वहीं एक मन्दिर बनवा दिया जाता था। परन्तु, यह बात स्पष्ट नहीं है कि उसमें मृतक राजा तथा उसकी रानी की मूर्त्ति भी स्थापित की जाती थी, या नहीं। मृत राजाओं की मूर्त्तियों का स्थापन और उनकी पूजा की तुलना कौटिल्य (II. 6) के 'देवपितृपूजा' से की जा सकती है।

२. एक दूसरे ही मत के लिये देखिये Tarn, *The Greeks in the Bactria and India*, 252. परन्तु, टार्न ने तोलेमी के वाक्यांश का अनुवाद 'देवताओं की पुत्री' किया है (देखिये (Levi, *JA*, 1915, p. 91)।

१. कुछ भारतीय-ग्रीक राजाओं ने 'थियोस' तथा 'थियोट्रोपोस' की उपाधि का भी प्रयोग किया है। परन्तु, इसका खुल कर अनुकरण नहीं

की गई थी, क्योंकि उन्होंने अपने राजा का आदर्श फ़ारस, चीन तथा रोम के राजाओं के आदर्शों के आधार पर रखा था। रैप्सन के अनुसार, 'राजातिराज' की उपाधि अपने मूल रूप में फ़ारसी राजवंशों की ही उपाधि है। इस उपाधि का इतिहास डेरियस (Darius) अभिलेखों में उल्लिखित 'क्षायथियानाम्' अथवा 'क्षायथिय'[1] से लेकर आधुनिक 'शाहांशाह' तक फैला हुआ है। कुषाण राजाओं द्वारा अपनाई गयी उपाधि 'देवपुत्र' अपने मूल रूप में एक चीनी उपाधि है, जो चीनी 'तीन-त्जे तीन-त्जू'[2] अथवा 'स्वर्ग-पुत्र' का अक्षरशः अनुवाद है। यदि लूडर्स के कथन पर विश्वास किया जाये तो भारतीय शक-नरेशों में से कम-से-कम एक (आरा-अभिलेख के कनिष्क) ने रोमन उपाधि 'कैसर' धारण की थी। सम्भव है जिस प्रकार वहाँ टाइबर नदी के तट पर राजाओं की स्मृति में मन्दिर बनाये जाते थे, उसी अनुकरण में यहाँ भी जमुना-तट पर 'देवकुलों' की स्थापना की जाती थी।

शक-काल की एक महत्त्वपूर्ण प्रथा उत्तरी तथा पश्चिमी भारत में 'द्वैराज्य' (सहशासन) तथा उत्तरी-पश्चिमी भारत एवं सुदूर दक्षिण में 'यौवराज्य'

हुआ। यह सत्य है कि गोण्डोफ़र्न्स ने अपने को 'देव' अथवा 'देवपुत्र' न कह कर 'देवव्रत' कहा है। जहाँ तक कुषाण-राजाओं द्वारा अपनायी गयी उपाधि 'देवताओं का पुत्र' का सम्बन्ध है, इस बारे में अभी तक कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि यह उपाधि हूणों से ली गयी और चीनियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है (Pace, *B. C. Law Volume*, II, 305 ff)। 'पंचाओ' के समय से कुषाणों का चीनियों से सीधा सम्बन्ध रहा था।

१. देखिये, 'क्षपयित्वा' शब्द का प्रयोग सिमुकों के द्वारा शुंग-राज्य को समाप्त करने के लिए किया गया है। 'क्षत्रस्य क्षत्र' (बृहदारण्यक उपनिषद्, I. 4, 14), 'अधिराज', 'चक्रवर्तिन्' आदि शब्द निस्संदेह प्राचीन भारत में भी प्रचलित थे। परन्तु, पिछली दो उपाधियों के मौर्य-काल के बाद तक भी प्रयुक्त होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, जबकि अन्तिम का प्रयोग तो कभी हुआ ही नहीं।

२. *JRAS*, 1897, 903; 1912, 671, 682; Allan, *Coins of the Gupta Dynasties*, xxvii. Artabanus (प्रथम अथवा द्वितीय) अपने को 'देवपुत्र' कहता था। (Tarn, *The Greeks*, p. 92)। यह यूनानी प्रभाव का भी संकेत करता है। कुछ लेखक साहित्य में तथा अभिलेखों में प्रयुक्त उपाधियों के बारे में भ्रम में हैं (*B. C. Law Volume*, II, pp. 305 ff)।

(युवराजों का शासन) थी। इन दोनों ही प्रथाओं के अनुसार राजा के पुत्र, पौत्र, भतीजों आदि का शासन में सहशासक अथवा उपशासक की हैसियत से महत्त्वपूर्ण स्थान था। द्वैराज्य-प्रणाली में सहशासक अपने पूर्व राजा के बराबर के स्थान का होता था, जबकि यौवराज्य-प्रथा में युवराज राजा का प्रतिनिधि या उप-शासक होता था। द्वैराज्य के उदाहरण में लीसियस तथा एन्टियलकिडस, आग्थोक्लिया तथा स्ट्रैटो-प्रथम, स्ट्रैटो-प्रथम तथा स्ट्रैटो-द्वितीय, स्पैलिरिसेस तथा एज़ेस, हगान तथा हगामष, गोण्डोफ़र्न्स तथा गद, गोण्डोफ़र्न्स तथा अब्दगसेस, चाश्तान तथा रुद्रदामन, कनिष्क-द्वितीय तथा हुविष्क, आदि का नाम लिया जा सकता है। युवराजों की कोटि में खरोष्ट तथा पल्लव, युवमहाराजों में शिव-स्कन्दवर्मन, विजयबुद्धवर्मन[1] तथा पलक्कद के विष्णुगोप का उल्लेख आता है।

राजा अथवा युवराज जिस नगर में रहते थे, उसे 'अधिष्ठान' कहते थे। इस प्रकार के अधिष्ठान तथा अन्य प्रकार के नगर-नगरी आदि की संख्या बहुत अधिक थी। परन्तु, उनके सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है। अभिलेखों के द्वारा हमें ज्ञात होता है कि 'निगमसभा' तथा 'नगराक्षदर्श'[2] आदि की व्यवस्था थी, जिनके कर्त्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख हमें नहीं मिलता, लेकिन ये सम्भवतः मौर्य-काल के 'नगर-व्यावहारिक' (नगर-न्यायाधीश) से मिलते-जुलते रहे होंगे।

सामान्य प्रशासन—प्रान्तों, ज़िलों तथा ग्रामों के शासन—के सम्बन्ध में हमारे पास विस्तृत विवरण उपलब्ध है। कुछ बड़े-बड़े अधिकारियों के पद वही थे, जो मौर्य-काल में थे। सातवाहन और सीथियन राजाओं के समय में महामात्र तथा रज्जुक उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखते थे जितना महत्त्वपूर्ण स्थान उनका अशोक के समय में था। परन्तु, इनके साथ ही अनेक ऐसे पदाधिकारियों के सम्बन्ध में भी सूचना मिलती है जिनमें से कुछ का उल्लेख कौटिल्य के 'अर्थ-शास्त्र' में तो मिलता है, परन्तु मौर्यकालीन अभिलेखों में नहीं मिलता।

राजाओं के अत्यन्त निकट रहने वाले पदाधिकारी जूनागढ़-लेख के अनुसार

---

१. *IHQ*, 1933, 211.

२. *EHI*[4], 226; *Luders' Ins.*, No. 1351 (उदयगिरि गुफ़ालेख)। *Cf.* अक्षदर्श, पतंजलि, *Index of Words*; Oka, अमरकोश, 123; अग्नि पुराण, 366, 3; विनय पुराण, iii, 47. अन्तिम स्रोत के अनुसार 'अक्खदस्स' को अशोक के युग में 'महामत्त' कहते थे। आगे चल कर सम्भवतः 'अक्षदर्श' का कार्य कर एकत्रित करना था (देखिये अमरकोश में 'क्षीर' की टीका)। इस सम्बन्ध में गुप्त-काल के 'अक्षपतलिक' के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख आवश्यक है।

'मतिसचिव,' तथा पल्लव-दानपत्र के अनुसार 'रहस्याधिकृत' थे। दूसरे प्रमुख अधिकारी 'राजवैद्य'[१] तथा 'राजलिपिक'[२] थे।

सैनिक-अधिकारियों में 'महासेनापति,'[३] 'दण्डनायक' तथा 'महादण्डनायक'[४] —जो कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार 'सेनापति' तथा 'नायक'[५] के समानस्तरीय थे—का स्थान किसी प्रकार भी इन उपर्युक्त अधिकारियों से कम नहीं था। इन महत्वपूर्ण पदाधिकारियों के नीचे दूसरे सहायक अधिकारी, जैसे सेनागोप, गौल्मिक[६], आरक्षाधिकृत[७], अश्ववारक[८], भटमनुष्य[९] आदि होते थे।

असैनिक अधिकारियों (अमात्य या सचिव), जैसे मतिसचिव के सम्बन्ध में हम पहले ही बता चुके हैं। इसके अतिरिक्त अमात्यों का एक वर्ग और भी था जिन्हें कर्मसचिव कहते थे। इन्हीं में से राज्यपाल[१०], कोषाध्यक्ष[११], अधीक्षक[१२], सचिव[१३] आदि अधिकारी चुने जाते थे। ठीक वैसे ही जैसे ये अधिकारी मेगास्थनीज के समय में चुने जाते थे।

१. *Ins.*, 1190-93.

२. *Ins.*, 271; कौटिल्य, II, 10.

३. 1124, 1146.

४. 1328, देखिये मजूमदार, *List of Kharoshthi Ins.*, No. 36. दंडनायक के कर्त्तव्यों के लिये देखिये *IA*, 4, 106, 275n; 5, 49; Fleet, *CII*, 16. कभी-कभी 'दंडनायक' अपने लिये भी राज्य प्राप्त करते थे (*JASB*, 1923, 343)।

५. कौटिल्य, Bk. X, Ch. 1, 2, 5.

६. *Luders' Ins.*, 1200; *Ep. Ind.*, XIV, 155; देखिये मनु, VII, 190.

७. *Luders*, 1200.

८. *Luders*, 381, 728.

९. *Luders*, 1200.

१०. *Luders' Ins.*, 965.

११. 1141.

१२. 1186.

१३. 1125.

कोष-सम्बन्धी अधिकारियों में गंजवर[१], कोष्ठागारिक[२] और भाण्डागारिक[३] जो मुख्य राजामात्य में से कोई एक होता था, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परन्तु, विन्ध्य के 'शैल' तथा कोशल के 'सोमवंशी' राजाओं के पूर्व का कोई ऐसा अभिलेख नहीं मिलता, जिससे हमें 'सन्निधातृ' अथवा 'समाहर्तृ' के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात हो सके। जैसा कि जूनागढ़-अभिलेख से ज्ञात होता है, मुख्य-मुख्य कर, जैसे 'बलि', 'शुल्क' तथा 'भाग' भाण्डागार अथवा कोष में सीधे जमा होते थे। इन करों से ही इतना पर्याप्त धन मिल जाता था कि रुद्रदामन-जैसे उदार राजा के कोष भी स्वर्ण, रजत, वज्र (हीरे-जवाहरात), वैदूर्यरत्न आदि से भरे रहते थे। लेकिन महाक्षत्रप से निम्न वर्ग के शासक जनता को सताते थे और उनसे मन-माना कर, बेगार इत्यादि (कर-विष्टि-प्रणय-क्रिया-भिः) लेने से नहीं चूकते थे। भाण्डागार (जिसके बारे में हमें लूडर्स-लेख, संख्या ११४१ से पता चलता है) के अतिरिक्त कोष्ठागार[४] भी होते थे, जिनका उल्लेख कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र', भाग २, अध्याय १५ में मिलता है। अभिलेखों से मालूम होता है कि कर द्वारा प्राप्त धन कैसे खर्च किया जाता था। इस सम्बन्ध में पीने के पानी का प्रबन्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जूनागढ़-अभिलेख से हमें पता चलता है कि किस प्रकार एक शक राजा तथा उसके अमात्य ने अपने निजी कोष से धन देकर सुदर्शन झील का पुनर्निर्माण करवाया था। इन लेखों में तालाब, कुएँ, झील आदि के बनवाने तथा उनकी मरम्मत करवाने का उल्लेख बहुधा मिलता है। लूडर्स-लेख, सं० ११३७ में हाइड्रालिक इंजन (औद्यान्त्रिक) के निर्माण का भी उल्लेख मिलता है। यही नहीं, अन्य लेखों[५] में 'पानीयधरिक' (जल-विभाग के अधीक्षक) का भी उल्लेख आया है। लेख, सं० ११८६ में एक तालाब के दान, नाग देवता तथा विहार के उल्लेख के पश्चात् एक अमात्य स्कन्द-स्वाति का उल्लेख आया है जो 'कर्मान्तिक' (अर्थशास्त्र[६] में आया एक पद)—कार्य का अधीक्षक—के पद पर काम करता था।

१. *Luders*, 82; राजतरंगिणी, V. 177. एक शक राजा ने एक ब्राह्मण को कोषाध्यक्ष बनाया था।

२. *Ep. Ind.*, XX, 28.

३. *Luders*, 1141.

४. *Ins.*, No. 937.

५. *Luders*, 1279.

६. Bk. I, Chap. 12.

विदेश-विभाग के अन्तर्गत 'दूत' का उल्लेख मिलता है, परन्तु 'संधिविग्रहिक', कुमारामात्य[1] आदि पदाधिकारियों का उल्लेख, जो गुप्त-काल और उसके बाद बहु-प्रचलित था, इस काल में हमें कहीं नहीं मिलता।

इस काल के अभिलेखों में उपर्युक्त अधिकारियों के अलावा 'महासामिय' रिकार्ड रखने वाले[2] का उल्लेख आता है। इसके अतिरिक्त 'अभ्यन्तरोपस्थायक' (रनिवास की देखभाल करने वाला), माडबिक[3], तूथिक तथा नेयिक[4] का भी उल्लेख आया है, किन्तु इनके कार्यों के बारे में हमें कोई सूचना नहीं मिलती।

उत्तरी-पश्चिमी भारत का साम्राज्य अनेक बड़े-बड़े क्षत्रपियों तथा छोटे-छोटे प्रान्तों में विभाजित था, जहाँ महाक्षत्रपों तथा क्षत्रपों द्वारा शासन चलाया जाता था। क्षत्रपियों, और शक राज्य-प्रान्तों के अतिरिक्त जो दूसरे राज्य थे, वे अनेक ज़िलों, यानी राष्ट्र, आहार, जनपद, देश अथवा 'विषय' में विभाजित थे। शक शासन-काल में हमें भुक्ति (जागीर) के बारे में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता, जो शक-काल के बाद बहुप्रचलित थी। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्र, आहार (हार) और जनपद इस काल में पर्यायवाची शब्द थे, जैसाकि 'साताहनि-रट्ठ' (राष्ट्र) या 'सातवाहनि-हार' से मालूम होता है, जिसे म्यकदोनी-अभिलेख में 'जनपद' कहा गया है। राष्ट्र अथवा आहार का मुख्य अधिकारी राष्ट्रपति, राष्ट्रिक (रठिक) अथवा अमात्य हुआ करता था। उदाहरण के लिये, अमात्य सुविशाख, महाक्षत्रप रुद्र-

१. 'कुमार' का अर्थ 'युवक' अथवा 'राजकुमार' से है। अतः, 'कुमारामात्य' का अर्थ 'सहायक मंत्री' अथवा 'राजकुमार-मंत्री' हो सकता है। 'कुमार' शब्द 'प्रौढ़' शब्द का विलोम है और दक्षिण के 'चिक्क', 'चेन्न' अथवा 'इम्मडि' से मिलता-जुलता है। इसका एक दूसरा भी अर्थ सम्भव हो सकता है। 'कुमारा-मात्य' का अर्थ उस अमात्य से भी हो सकता है जो युवावस्था से ही मंत्री हो—जैसे कुमार-सेवक का अर्थ 'आकौमार-परिचारिकः' (कुमारावस्था से ही सेवक का काम करने वाला) है।

२. दूसरे अर्थ के लिये देखिये *JBBRAS*, N. S., IV, 1928, p. 64,72; *IHQ*, 1933, 221. वी० एस० बाखले के अनुसार 'महासामिय' से अभिप्राय सम्भवतः 'नगरसभा' से था।

३. 'माडबिक' शब्द जैन-कल्पसूत्र (89, para 62) में आये हुए 'माडम्ब' से मिलता-जुलता है। उसी में 'माडम्बिय' नामक अधिकारी का भी उल्लेख आया है। 'मण्डपिका' कर के लिये देखिये *Ep. Ind.*, XXIII, 137.

४. 'सरकार' ने 'नेयिक' की समानता 'नैयोगिक' से की है।

दामन के राज्य-काल में सुराष्ट्र का शासक था। अमात्य विष्णुपालित, श्यामक तथा शिवस्कन्ददत्त गोवर्धन (नासिक) आहार में गौतमीपुत्र शातकर्णि तथा पुलुमायि के शासन-काल में शासन चलाते रहे। इन्हीं दिनों पड़ोस का आहार 'मामाल' (ज़िला पूना में) एक अन्य अमात्य के अधीन था, जिसके नाम के अंत में 'गुप्त' की उपाधि लगी हुई थी। सुदूर दक्षिण में आहार के मुख्य अधिकारी को शायद 'व्यापृत'[१] कहते थे। मुख्य रूप से सीमा पर के कुछ जनपद सैनिक राज्यपालों के अन्तर्गत रखे जाते थे। इनको स्त्रातेगो, महासेनापति, महादण्डनायक आदि कहते थे। उदाहरण के लिये, सातवाहनिहार का जनपद महासेनापति स्कन्दनाग[२] के प्रशासन में रखा गया था। गुप्त-नरेशों के द्वारा अपने राज्य में मिलाये जाने के पूर्व पूर्वी मालव किसी एक शक महादण्डनायक के प्रशासन में था। एज़ेस तथा गोण्डोफ़र्न्स के शासन के अन्तर्गत आर्यावर्त्त का सीमान्त प्रदेश स्त्रातेगोइ (अश्पवर्मन, सस[३]) के प्रशासन में था।

'राष्ट्र' अथवा 'जनपद' के पर्याय रूप में 'देश' शब्द का भी प्रयोग बहुत अधिक होता था। इसके शासक को 'देशाधिकृत', जो मध्यकाल में 'देशमुख' के नाम से विख्यात थे, कहते थे (देखिये शिवस्कन्दवर्मन द्वारा दिया गया हीरहडगल्लि-दान)। इसके नीचे का प्रशासकीय क्षेत्र 'विषय' कहलाता था, जिसका शासक 'विषयपति'[४] होता था। कभी-कभी 'विषय' का प्रयोग 'देश' तथा 'राष्ट्र' के पर्याय रूप में भी होता था। उत्तर गुप्त-काल में 'विषय' शब्द का प्रयोग 'राष्ट्र'[५] से अपेक्षाकृत अधिक व्यापक भूभाग के लिए होता था।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई 'ग्राम' अथवा 'ग्रामाहार'[६] थी, तथा छोटे नगर या इम्पोरिया 'निगम'[७] कहलाते थे। ग्रामों की देखभाल करने वाले को 'ग्रामेयिक

१. *Luders*, 1327, 1328.

२. देखिये, भ्यकदोनी का लेख।

३. 'सस' नामक अमात्य के लिये देखिये सातवाहन-नरेश श्रीचण्ड 'साति' अथवा 'शात' का कोदावली-शिलालेख (*Ep. Ind.*, XVIII, 318)।

४. *929n* (*Luders*)।

५. Fleet, *CII*, 32 n.

६. *Luders' Ins.*, No. 1195.

७. पालि-साहित्य में 'निगमों को ग्राम एवं नगर से काफ़ी भिन्न बताया गया है। नगरों के चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवालें तथा तोरण होते थे (दृढ़ प्राकार तोरण)।

आयुत्त'[1] कहते थे तथा इनके ऊपर ग्रामणी,[2] ग्रामिक,[3] ग्रामभोजक[4] अथवा (ग्राम) महत्तरक होते थे। लूडर्स ने (मथुरा) लेख-संख्या ४८ में, जयदेव तथा जयनाग नामक दो ग्रामिकों के नाम दिए हैं। दक्षिणी भारत में ग्रामों के मुख्य अधिकारी को 'मुलुद' कहते थे।[5] निगमों के मुख्य अधिकारी 'गहपति'[6] कहलाते थे तथा यही गाँवों में 'ग्रामवृद्ध' होते थे। लूडर्स-लेख, संख्या ११५३ से भी इस बात की पुष्टि होती है, क्योंकि उसमें धम्म-निगम के मुख्य को 'गहपति' कहते थे। उसके कार्यों का वर्णन भी हमें इसमें मिलता है। प्राचीन भारत के प्रशासन में 'ग्राम' तथा 'निगम' का इतना स्थायी महत्त्व बना रहा कि सैकड़ों वर्षों तथा शासन करने के बावजूद शक-सम्राट् इसे नष्ट नहीं कर पाये। वास्तव में अनेक प्रकार के सामाजिक संगठनों, संस्थानों आदि में व्यक्त होने वाले और मान्यता प्राप्त करने वाले सिद्धान्त, चिन्तन और विचारों के जन्म-स्थल भी यही 'ग्राम' तथा 'निगम' थे। इस प्रकार के संगठनों, जैसे गोष्ठी[7], निकाय[8], परिषद्[9], संघ[10], आदि के बारे में अभिलेखों में काफ़ी कुछ पढ़ने को मिलता है। राजा तथा ग्रामवासियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाली संस्था 'गोष्ठी' थी। लूडर्स-लेख, संख्या १३३२ से १३३८ में एक ऐसी गोष्ठी का उल्लेख मिलता है जिसका सभापति कोई एक 'राजन्' था और उस गोष्ठी में गाँव के मुखिया का पुत्र भी शामिल था।

प्राचीन भारतीय कूटनीति में ध्यान आकर्षित करने वाली एक और जिस व्यवस्था का उल्लेख मिलता है, वह है गुप्तचरों की नियुक्ति। इन्हें 'संचरंतक', अर्थात्

१. 1327.

२. 1333.

३. 48. 69a.

४. 1200.

५. *Ins.*, 1194. देखिये मुरुण्ड= स्वामी (शक)। शकों के सुदूर दक्षिण के होने के सम्बन्ध में देखिये *Ep. Ind.*, XX, 37.

६. 'गहपति' (गृहस्वामी) शब्द की उपाधि बहुधा सभ्य जनों में मुख्य व्यक्ति को, मध्य वर्ग के धनवान् व्यक्ति को अर्थात् 'कल्याण-भत्तिको' तथा पुजारियों आदि को दी जाती थी। परन्तु, वे पुजारियों तथा दरबारियों से सर्वथा भिन्न होते थे। देखिये (राइस डेविड्स तथा स्टीड)।

७. *Luders' Ins.*, 273, 1332, 1335, 1338.

८. 1133.

९. 125, 925.

१०. 5, 1137.

घूम-घूम कर दिये हुए विचार और समाचार एकत्र करने वाले कहते थे। इनके कार्यों एवं कर्त्तव्यों का विशद् वर्णन 'अर्थशास्त्र' में मिलता है। लेकिन मौर्य तथा गुप्त काल में आने वाले विदेशी यात्रियों द्वारा दिये गए विवरणों से ज्ञात होता है कि जनता का राजनैतिक स्तर इतना नीचे नहीं गिर गया था, जैसाकि 'अर्थशास्त्र' के अध्ययन से लगता है। सम्भवत: वात्स्यायन ने वस्तु-स्थिति का वास्तविक चित्रण करते हुए कहा है कि सिद्धान्त की दृष्टि से निश्चित प्रत्येक कार्य एवं विचार को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता, और न वे व्यवहार में ढलने के लिये होते ही हैं। ऐसा ठीक भी है। जहाँ तक सिद्धान्त का प्रश्न है, उसे अत्यन्त विशद् रूप में लिखा जाना चाहिये, परन्तु उसका व्यावहारिक क्षेत्र सदैव ही सीमित माना जाना चाहिये। यद्यपि वैद्यक की पुस्तकों में कुत्ते के मांस को न केवल सुस्वादु, वरन् अत्यन्त शक्तिवर्धक भी बताया गया है, परन्तु इस पर भी शायद ही कोई स्वस्थ व्यक्ति कुत्ते का मांस खाना पसंद करे।

न शास्त्रमस्तीत्ये तावत् प्रयोगे कारणं भवेत्
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान्
रस-वीर्य विपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके
कीर्तिता इति तत् किम् स्याद् भक्षणीयम् विचक्षणैः।

———

गुप्त-साम्राज्य: गुप्त-शक्ति का उदय | १३

इमाम् सागर पर्यन्ताम् हिमवद्-विंध्य-कुण्डलाम्
महीम् एकातपत्रांकाम् राजसिंह[1] प्रशास्तु नः।

—दूतवाक्यम्

१. गुप्त-वंश का उद्भव

हमने पिछले अध्यायों में पढ़ा है कि शकों की बढ़ती हुई विजय-शक्ति, जिसे सातवाहनों ने कुछ समय के लिए रोका था, अंतिम रूप से गुप्त-सम्राटों द्वारा समाप्त कर दी गयी। यह एक मनोरंजक और ध्यान देने योग्य तथ्य है कि शकों को पराजित करने वाले सातवाहन-विजेताओं में अनेक गुप्त-वंश के अधिकारी थे, जैसे सम्वत् १८ के नासिक-अभिलेख में उल्लिखित शिवगुप्त अथवा कार्ले-अभिलेख मे पुर अथवा पुरुगुप्त तथा शिवस्कन्दगुप्त आदि। यह कह सकना अत्यन्त कठिन

---

१. चन्द्रगुप्त-द्वितीय की मुद्राओं में जिस नरेन्द्रसिंह का उल्लेख मिलता है, वह सम्भवत: राजसिंह ही था (Allan, *Gupta Coins*, 43)। इनमें प्रयुक्त सारे अक्षर स्पष्ट नहीं हैं (*Ibid*, cxiii), परन्तु अनेक मुद्राओं पर 'सिंहविक्रम' लिखा हुआ अवश्य मिलता है (pp. 38 ff)। 'दूतवाक्य' में उत्तरी भारत के एक शक्तिशाली राजा का उल्लेख है, जिसका साम्राज्य समुद्र से लेकर हिमालय और विंध्य की श्रेणियों तक फैला था तथा जो 'सिंह के समान' शक्तिशाली था। यह शासक दूसरा कोई न होकर चन्द्रगुप्त-द्वितीय ही था। कदाचित् 'दूतवाक्य' के लेखक का संकेत इसी सम्राट् की ओर था। यदि वह कालिदास का अग्रज भास था तो उसने काव्य-रचना चन्द्रगुप्त-द्वितीय, विक्रमादित्य, 'नरेन्द्रसिंह' के राज्यारोहण के पूर्व शुरू की होगी जो कि महान् संरक्षक कविराज समुद्रगुप्त का समकालीन रहा होगा।

कार्य है कि इन गुप्तों तथा गुप्त-राजवंश के उन सम्राटों में कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं, जिनमें से दो का नाम स्कन्दगुप्त तथा पुरुगुप्त था।'

ब्राह्मी-अभिलेखों में गुप्त-नरेशों का बहुधा उल्लेख मिलता है।

---

१. *Modern Review* (Nov., 1929, p. 499 f) के अनुसार गुप्त-वंश का उद्‌भव 'कारस्कर' से हुआ। परन्तु, इस सम्बन्ध में जो प्रमाण हैं, उनसे कोई निष्कर्ष नहो निकाला जा सकता। 'कौमुदी-महोत्सव' के चण्डसेन (सुन्दर-वर्मन का दत्तक पुत्र) के वंश का उन्मूलन चन्द्रगुप्त-प्रथम (जो कि महाराज श्री घटोत्कच का पुत्र था तथा जिसके वंशजों ने शताब्दियों तक शासन किया था) के साथ हो चुका था (p. 500), यह कहना स्पष्टतः आधारहीन है। केवल इस आधार पर कि लिच्छवियों ने चण्डसेन की सहायता की थी, यह नही कहा जा सकता कि चण्डसेन ही चन्द्रगुप्त-प्रथम थे। पाँचवीं शताब्दी ईसापूर्व से ही लिच्छवियों और मागधो की शत्रुता प्रसिद्ध हो गयी थी। इस सम्बन्ध मे किसी लेखिका द्वारा रचित नाटक के कथानक के लिये देखिये *Aiyangar Com. Vol.*, 361 f. यदि सुन्दरवर्मन तथा उसका पुत्र कल्याणवर्मन वास्तव में ऐतिहासिक व्यक्ति हैं तथा उन्होंने वास्तव में मगध पर शासन किया, तो वे महाराज श्रीगुप्त के पूर्व अथवा बालादित्य (६ठीं शताब्दी) के पश्चात् हुए थे। महाशिवगुप्त के सीरपुर-पाषाण-लेख के समय मगध पर वर्मन-आधिपत्य की काफ़ी चर्चा थी (*Ep. Ind.*, XI, 191)। साथ ही हमें चीनियों के वर्णन से पूर्णवर्मन एवं देववर्मन तथा मौखरी-वंश के अन्य शासकों से संबंधित जानकारी भी मिलती है। अतः, गुप्त-वंश की उत्पत्ति अत्यन्त रहस्यमय है। हम केवल इतना ही जानते हैं कि सम्भवतः वे 'धारण' गोत्र के थे (*IHQ*, 1930, 565)। सम्भव है कि अग्निमित्र की मुख्य रानी धारिणी से उनका कोई सम्बन्ध रहा हो। डॉ० आर० सी० मजूमदार (*IHQ*, 1933, 930 ff) का मत है कि जावा के एक लेख (तन्त्रि-कामंदक) से पता चलता है कि इक्ष्वाकु जाति के राजा महाराज ऐश्वर्यपाल अपने वंश का सम्बन्ध समुद्रगुप्त के वंश से जोड़ते थे। बाद के लेखकों को कोई समर्थन प्राप्त नहीं है, अतः उन पर अधिक भरोसा नहीं किया जा सकता। उनसे भी अधिक अविश्वसनीय 'भविष्योत्तर पुराण' है जो कि कुछ आलोचकों के अनुसार 'वर्त्तमान युग की जालसाजी' है (*NHIP*, VI, 133n)। *Cf. Proceedings of the I. H. Congress*, 1944, pp. 119 ff.

इच्छावर[1] के बुद्धमूर्ति-अभिलेख[2] में कहा गया है कि श्री हरिदास की रानी महादेवी गुप्त-वंश की ही थी। शुंग-काल के भरहुत में पाये गए बुद्ध-स्तम्भ-अभिलेख[3] में राजन् विसदेव की रानी 'गौप्ति' तथा धनभूति की दादी गुप्त-वंश की थीं।

दूसरी शताब्दी में ही गंगा के तटीय क्षेत्र तथा मगध में गुप्त-वंशी राज्य के चिह्न मिलते हैं। ७वीं शताब्दी में भारत में 'आई-त्सिंग' नामक एक चीनी यात्री आया था। उसके अनुसार, नालन्दा से लगभग ४० योजन पूर्व की ओर स्थित मृग-सिखावन के निकट महाराज श्रीगुप्त ने एक मंदिर बनवाया था। उसके अनुसार, उसका राज्य सन् १७५ई०[4] के लगभग था। एलन उक्त समय को अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि श्रीगुप्त समुद्रगुप्त के परदादा थे। अतः एक ही क्षेत्र में थोडे से समय के अंतर से एक ही वंश और एक ही नाम के दो राजाओं का होना असंगत-सा प्रतीत होता है। परन्तु, क्या थोड़े समय में ही दो 'चन्द्रगुप्त' तथा दो 'कुमारगुप्त' नहीं हुए ? इसमें सचमुच कोई उचित कारण नहीं कि १७५ ई० के श्रीगुप्त को लगभग १०० वर्ष बाद के समुद्रगुप्त के परदादा से सम्बद्ध किया जाय।

श्रीगुप्त के बाद के उत्तराधिकारियों के बारे में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। मगध के गुप्त-सम्राटों में सबसे पहले हमें महाराज गुप्त का नाम मिलता है, जिसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र महाराज घटोत्कच था।

२. चन्द्रगुप्त-प्रथम

घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त-प्रथम इस वंश के प्रथम 'महाराजाधिराज'[5] (स्वतंत्र शासक) थे। वे सन् ३२० ई० के आसपास सिंहासनारूढ़ हुए होंगे। इसी तिथि से गुप्त-काल[6] आरम्भ होता है। अपने अग्रज बिम्बिसार के सामने ही उसने

१. जिला बाँदा।

२. *Luders*, No. 11.

३. *Luders*, No. 687.

४. Allan, *Gupta Coins*, Introduction, p. xv; *of. Ind. Ant.*, X (1881), 110.

५. ऋद्धपुर के प्लेटों (*JASB*, 1924,58) में चन्द्रगुप्त-प्रथम तथा समुद्रगुप्त को भी केवल 'महाराज' कहा गया है।

६. *JRAS*, 1893,80; Cunningham, *Arch. Sur. Rep.*, Vol. IX, p. 21. इस बात का पता ठीक से नहीं चलता कि सन् ३२० ई० का काल (गुप्त-प्रकाल, गुप्तानम् काल) किस राजा के राज्य-काल से आरम्भ होता है ? सम्भव है कि यह तिथि महाराजगुप्त (*IHQ*, 1942, 273n) अथवा समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की ही तिथि हो।

भी धीरे-धीरे अपनी स्थिति दृढ़ कर ली। ऐसा उसने नेपाल[1] अथवा वैशाली के लिच्छवियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके किया। इस प्रकार उसने दूसरे मगध-राज्य की नींव डाली। चन्द्रगुप्त-प्रथम तथा लिच्छवि-वंश के इस वैवाहिक सम्बन्ध का आख्यान अनेक मुद्राओं[2] द्वारा किया गया है। इन मुद्राओं पर एक ओर चन्द्रगुप्त तथा उसकी लिच्छवि-वंशीया रानी कुमारदेवी की मूर्त्ति है तो दूसरी ओर लक्ष्मी, अर्थात् सुख एवं सम्पन्नता की देवी की। यह सम्भवतः इस लिए है कि इस रानी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के पश्चात् ही उसके वंश का वैभव बढ़ा था। स्मिथ का मत है कि लिच्छवि-वंश के शासक पाटलिपुत्र में कुषाणों के सामन्त के रूप में राज्य करते थे और चन्द्रगुप्त ने उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके अपनी पत्नी के सम्बन्धियों का यह अधिकार प्राप्त किया था और परिणामतः वह पाटलिपुत्र का शासक बना। परन्तु, एलन का मत है कि श्रीगुप्त के समय[3] से ही पाटलिपुत्र गुप्त-वंश के अधिकार में था।

समुद्रगुप्त के विजय-विवरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पिता का राज्य मगध तथा उसके आसपास के क्षेत्रों तक ही सीमित था। एलन के अनुसार पुराणों में इसी गुप्त-साम्राज्य की परिभाषा दी गई है—

---

१. इस विवाह के, सन् ३२० ई० के बाद, होने का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। सन् ३८० ई० के पूर्व का गुप्त-वंश का इतिहास संदेहात्मक है। जब तक कि हमें चन्द्रगुप्त-प्रथम के शासन-काल की अवधि ज्ञात नहीं हो जाती तथा यह नही पता चल जाता कि वह तथा उसका पुत्र समुद्रगुप्त कब गद्दी पर बैठे, तब तक विवाह की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। कुछ विद्वानों का मत है कि चन्द्रगुप्त-प्रथम ने नेपाल (*JRAS*, 1889, p. 55) अथवा पाटलिपुत्र (*JRAS*, 1893 p. 81) के शासक के यहाँ विवाह किया था।

२. इन मुद्राओं के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है (देखिये Altekar, *Num. Suppl.*, No. XLVII; *JRASB*, III, 1937, No. 2, 346)। जब तक चन्द्रगुप्त-प्रथम के काल की कोई ऐसी मुद्रा नहीं मिल जाती, जिसके सम्बन्ध में तनिक भी संदेह न हो, तब तक कुछ भी कहना सम्भव नहीं है।

३. Kielhorn, *North Indian Inscription*, No. 541. इसमें लिच्छवियों तथा पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) का आपसी सम्बन्ध निर्देशित है।

अनुगंगा प्रयागंच साकेतम् मगधांस्तथा
एतान् जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः ।

"गंगा-तट पर स्थित प्रयाग[1], साकेत (अवध) तथा मगध (दक्षिण बिहार) गुप्त-वंश के राजाओं के शासन के अन्तर्गत हैं।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वैशाली (उत्तर बिहार) का नाम इस सूची में नहीं है। अतः एलन के इस मत से, कि चन्द्रगुप्त ने अपने शासन के प्रारम्भिक काल में ही वैशाली पर अधिकार कर लिया था, हम सहमत नहीं हैं। समुद्रगुप्त की विजय-सूची में भी वैशाली का नाम नहीं मिलता, यद्यपि इलाहाबाद के स्तम्भ-लेख से यह अवश्य ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के राज्य की सीमा नेपाल तक थी। इससे यह सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वैशाली उस समय तक गुप्त-साम्राज्य की सूची में सम्मिलित की जा चुकी थी। प्रामाणिक रूप से वैशाली गुप्त-वंश के अधिकार में सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त-द्वितीय के शासन-काल में आयी जबकि उसने एक राजकुमार को वहाँ का उपशासक नियुक्त कर दिया। कदाचित् प्रयाग भी किसी राजवंश से जीतकर साम्राज्य में मिला लिया गया था। इस राजवंश का उल्लेख भीटा[2] के अभिलेख में मिलता है। इनमें से दो राजा गौतमीपुत्र श्रीशिवमघ तथा राजन् वासिष्ठीपुत्र भीमसेन, मार्शल के अनुसार, दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी के हैं। शिवमेघ (अथवा शिवमघ) से हमें 'मेघ' (अथवा माघ) राजाओं की याद आती है, जो तीसरी शताब्दी[3] में कोशल पर राज्य करते थे। तीसरी अथवा चौथी शताब्दी में एक दूसरे राजा महाराज गौतमीपुत्र वृषध्वज भी राज्य करते थे। चन्द्रगुप्त-प्रथम ने एक सराहनीय कार्य यह किया कि सभी सभ्यों (सभासदों) और राजवंश के राजकुमारों की सभा बुलाकर समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

---

१. देखिये, अनुगंगम् हस्तिनापुरम्, अनुगंगम् वाराणसी, अनुशोणम् पाटलिपुत्रम्—पतञ्जलि, II, 1, 2

२. देखिये बन्धोगढ़ (रीवा)—*Amrita Bazar Patrika*, 11,10,38, p. 2; *NHIP*, VI, 41 ff. फतेहपुर से प्राप्त मुद्राओं में भी मघ राजाओं का उल्लेख है।

३. *JRAS* 1911, 132; Pargiter, *DKA*, p. 51; देखिये *Indian Culture*, III, 1936, 177 ff में ए० घोष द्वारा उद्धृत महाराज भीमवर्मन का कोसाम-पाषाण-लेख; और *IC*, 694, 715.

३. समुद्रगुप्त पराक्रमाङ्क[1]

चन्द्रगुप्त-प्रथम के उपरान्त समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की निश्चित तिथि मालूम नहीं है। यदि नृपुर से प्रेषित नालन्दा-लेख को प्रामाणिक माना जाये तो यह घटना गुप्त-काल से ५ वर्ष पूर्व, अर्थात् सन् ३२५ ई० में घटी थी। परन्तु, यह तिथि अत्यन्त संदेहजनक है। यह बात न केवल इलाहाबाद-प्रशस्ति से, वरन् 'तत्पादपरिग्रहीता' (समुद्रगुप्त के ऋद्धपुर के लेख) से भी स्पष्ट हो जाती है कि चन्द्रगुप्त-प्रथम ने अपने सभी पुत्रों में सबसे योग्य पुत्र समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी चुना। नये राजा को काच[2] के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था।

---

१. 'पराक्रम', 'व्याघ्रपराक्रम' तथा 'पराक्रमांक' आदि उपाधियाँ अनेक मुद्राओं पर अंकित हैं (Allan, *Catalogue*, p. cxi, 1 f) तथा इलाहाबाद-प्रशस्ति (*CII*, p. 6) में पायी गयी हैं। हाल ही में एक ऐसी भी मुद्रा मिली है, जिसमें एक ओर 'श्री विक्रमः' लिखा है (Bamnala hoard, Nimar district, *J. Num. Soc. Ind.*, Vol. V, pt. 2, p. 140, December 1943)।

२. काच की मुद्राओं पर 'सर्वराजोच्छेत्ता' लिखा हुआ मिला है, जिससे पता चलता है कि वह सम्भवतः समुद्रगुप्त ही था (*Cf.* Smith, *Catalogue*, 96; *IA*, 1902, 259 f.)। दूसरे मत के लिये देखिये Smith, *JRAS*, 1897, 19; Rapson, *JRAS*, 1893, 81; Heras, *Annals Of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, Vol. IX, p. 83 f. हम तो यह सोच भी नहीं सकते कि जिस गुप्त-सम्राट् ने वास्तव में ऐसा किया (समकालीन लेख से पता चलता है कि उसने ऐसा ही किया), उसके अतिरिक्त कोई दूसरा राजा भी अपने लिये 'शत्रुविनाशक' की उपाधि धारण करे। पूना-लेख से ज्ञात होता है कि यह उपाधि समुद्रगुप्त के पुत्र चन्द्रगुप्त-द्वितीय के लिये थी। परन्तु, यह भी स्मरण रहे कि ये लेख गुप्त-सम्राटों के प्रामाणिक लेख नहीं हैं। समुद्रगुप्त को छोड़कर अन्य किसी भी गुप्त-सम्राट् ने अपने 'लिये सर्वराजोच्छेत्ता' की उपाधि धारण नहीं की। पूना-लेख में यह उपाधि चन्द्रगुप्त-द्वितीय के नाम उसी असावधानी के कारण लिखी गई, जिस असावधानी में चन्द्रगुप्त-प्रथम को 'महाराजाधिराज' न लिखकर केवल 'महाराज' लिखा गया। आमगाछी तथा बाणगढ अभिलेखों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन प्रशस्तिकारों ने अपनी असावधानी के कारण एक नरेश की उपाधि उसके उत्तराधिकारी के नाम के साथ भी टाँक दी।

भारतवर्ष को राजनैतिक एकता के सूत्र में बाँधना तथा अपने को 'महापद्म' के समान एकमात्र (एकराट्) शासक बना लेना ही समुद्रगुप्त का उद्देश्य था। परन्तु, उसकी स्थायी विजय गंगा और उसकी सहायक नदियों की ऊपरी घाटी से लेकर मध्य तथा पूर्वी भारत के कुछ जिलों तक ही सीमित थी। उनके पूर्वज सर्वक्षत्रांतक[1] के समान इस 'सर्वराजोच्छेत्ता' (समस्त राजाओं का उन्मूलक) ने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपति नाग, नागसेन, अच्युत, नन्दी, बलवर्मन तथा आर्यवर्त्त[2] के अन्य राजाओं का उन्मूलन कर, कोट-वंश के राजा को बन्दी कर शेष वन-प्रदेश (आटविक-राज) के नरेशों को अपना दास बना लिया। श्री दीक्षित के अनुसार, रुद्रदेव अन्य कोई न होकर रुद्रसेन वाकाटक ही था। परन्तु वाकाटकों ने आर्यावर्त्त पर भी राज्य किया था, यह अमान्य है। अतः, समुद्रगुप्त[3] के शासन-काल में उनके उन्मूलन का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार यह भी अविश्वसनीय है कि बलवर्मन असम का राजकुमार था, क्योंकि उस युग में असम आर्यावर्त्त का भाग न होकर सीमा-प्रान्त (प्रत्यन्त) था। मध्य दोआब में बुलन्दशहर में एक सील मिली है, जिस पर 'मत्तिल' नाम अंकित है। सम्भवतः इसी को 'मतिल' कहा गया है। इस सील पर कोई भी आदरसूचक शब्द नहीं है। अतः एलन का ऐसा अनुमान है कि यह किसी की व्यक्तिगत सील थी। परन्तु, हमे अनेक ऐसे राजकुमारों के नाम भी मिले हैं जिनके नाम के पहले किसी भी आदरसूचक शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। मुसूनिया[4] के अभिलेख में चन्द्रवर्मन नामक एक राजा का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः वही यह चन्द्रवर्मन होगा जो पुष्करण का राजा था तथा 'घुग्रहाती-ग्राण्ट' के अनुसार,

---

१. 'महापद्म' की एक उपाधि, क्षत्रियों का विनाश करने वाला।

२. Father Heras (*Ann. Bhan. Ins.*, IX, p. 88) का मत है कि समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त्त पर दो बार आक्रमण किया। परन्तु, इस सिद्धान्त के अनुसार प्रथम आक्रमण में अच्युत तथा नागसेन को पराजित कर दूसरे आक्रमण में उन्हें पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया था। किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो, इसीलिये 'उन्मूलन' (uprooted) शब्द का अर्थ पराजित करने से लिया गया है। यह बात संतोषजनक नहीं है।

३. *Cf. IHQ*, I, 2, 254. सी० पी० के चन्दा ज़िले के देवतेक से रुद्रसेन सम्बन्धित है (*Eighth Or. Conf.*, 613 ff; *Ep. Ind.*, xxvi, 147, 150)।

४. बाँकुरा के उत्तर-पश्चिम में १२ मील दूर पर स्थित एक पर्वत।

चन्द्रवर्मन-कोट की नींव डालने वाला भी था। कुछ विद्वानों का मत है कि पुष्करण मारवाड़-स्थित पोकरन अथवा पोकुर्न नगर था। साथ ही चन्द्रवर्मन के पिता, मंदसौर-वंश के सिंहवर्मन को उपर्युक्त सिंहवर्मन बताया गया है। परन्तु, इस सम्बन्ध में कुछ अधिक सामग्री नहीं मिलती। पश्चिमी मालव के वर्मन-वंश के लोगों में चन्द्रवर्मन अथवा उसकी विजय का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वास्तव में सुसूनिया पहाड़ी[1] के उत्तर-पूर्व में २५ मील दूर, बाँकुरा ज़िले में दामोदर नदी के तट पर स्थित 'पोखरन' गाँव ही पुष्करण है।

---

१. देखिये दीक्षित, *ASI*, *AR*, 1927-28 p. 188; एस० के० चटर्जी, *The Orgin and Development of the Bengali Language*, II, 1061; *IHQ*, I, 2, 255. पंडित एच० पी० शास्त्री का मत है कि 'महाराज' की उपाधि धारण करने वाला यहाँ का स्थानीय शासक श्री मेहरौली के लौह स्तम्भ-लेख में अंकित (भूमिपति प्राप्त ऐकाधिराज्य) राजा चन्द्र ही था जिसने अपनी वीरता से समस्त संगठित शत्रुओं को भगाकर सात मुँह वाली सिन्धु पार कर युद्ध किया और वाह्लीकों को हराया था। दूसरे लोग 'चन्द्र' को चन्द्रगुप्त-प्रथम अथवा द्वितीय बताते हैं। परन्तु, चन्द्र ने अपने आपको न कभी चन्द्रवर्मन कहा और न कभी चन्द्रगुप्त ही। यही नहीं, गुप्त एवं वर्मन वंश के चारणों के समान यद्यपि इसके चारण भी बताते हैं कि उसने अपने बाहुबल से अपना राज्य दूर-दूर तक फैला रखा था, तो भी उसकी वंशावली के सम्बन्ध में वे भी मौन ही लगते हैं। यही नहीं, नाम तो उसके पिता तक का भी नहीं दिया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पुराणों के अनुसार चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में जमुना की घाटी तथा मध्यभारत में नागों का राज्य था। विष्णु-पुराण से ज्ञात होता है कि पद्मावती तथा मथुरा में नागों का राज्य था। पार्जिटर (*Kali Age*, p. 49) के अनुसार विदिशा में भी नागों का राज्य था। आंध्र-देश के नाग-राजाओं के बाद के दो राजाओं—सदाचन्द्र तथा चन्द्रांश (नखवन्त-द्वितीय)—का भी उल्लेख मिलता है। इनमें से एक (सम्भवतः अंतिम) प्रसिद्ध शासक था और कदाचित् मेहरौली-स्थित लौह स्तम्भ में वर्णित राजा 'चन्द्र' था। सात मुँह वाली सिन्धु के उस पार रहने वाले वाह्लीक 'बकत्रिओई' थे, जिन्होंने तोलेमी के समय में अर्कोशिया प्रदेश पर अधिकार कर रखा था (*Ind. Ant.*, 1884, p. 408)। वैभार पर्वत पर जैनियों की एक मूर्त्ति पर 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्र' लिखा हुआ मिला है (*AIS*, *AR*, 1925-26, p. 125)। ज्ञात नहीं कि यह 'चन्द्र' कौन था?

ऐसा प्रतीत होता है कि गनपति नाग, नागसेन तथा नन्दी नाग-राजकुमार थे। यह निश्चित है कि गनपति नाग नाग-राजकुमार ही थे। मथुरा[1] में प्राप्त मुद्राओं से भी इस राजकुमार के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञात होता है। ऐसी ही सूचना नरवर के निकट पवाया तथा बेसनगर[2] में प्राप्त मुद्राओं से भी मिलती है। सिन्धु-तट पर ग्वालियर तथा झाँसी के बीच नरवर के निकट पद्मावती में नागसेन की मृत्यु हुई थी। इस राजा का उल्लेख हर्षचरित में भी है (नागकुल-जन्मन: सारिकाश्रावित मंत्रस्य आसीद्नाशो नागसेनस्य पद्मावत्याम्[3])। सम्भवत: नंदी भी नाग-राजकुमार ही था। पुराणों में आये हुए शिशुनन्दी तथा नन्दीयश मध्य भारत के नाग-वंश के ही थे। एक दूसरे नाग-वंशीय राजकुमार शिवनन्दी[4] के बारे में भी पता चलता है। अहिच्छत्र (बरेली जिले के आधुनिक रामनगर) में कदाचित् राजा अच्युत राज्य करता था। अहिच्छत्र[5] में अनेक छोटी-छोटी ताँबे की मुद्राएँ मिली हैं, जिन पर 'अच्यु' लिखा है और जो सम्भवत: इसी की हैं। रैप्सन[6] हमारा ध्यान कोट-कुल की मुद्राओं की ओर आकर्षित

१. Altekar, *NIHP*, vi, 37.

२. *IHQ*, I, 2, 255. धार्मिक इतिहास की दृष्टि से इस राजा के नाम के महत्त्व पर ध्यान दीजिए (देखिये बृहत्संहिता का गजमुख, 58.58)। आगे चल कर 'भावशतक' में भी गणपति नाग का उल्लेख संदेहजनक है। उस लेख के गजवक्र-श्री वास्तव में गतवक्त्र-श्री थे *IHQ*, 1936, 135ff; काव्यमाला IV, pp. 46f, 60)।

३. 'पद्मावती' के अनुसार, नागसेन का जन्म नागवंश में हुआ था और उसकी अज्ञात तपस्या 'सारिका' पक्षी द्वारा भंग हो जाने पर उसकी मृत्यु हो गई थी।

४. Dubreuil, *Ancient History of the Deccan*, p. 31. यह अत्यन्त विचित्र बात है कि गुप्त-सम्राटों का राजचिह्न गरुड़ था, जिन्होंने नागों को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया था। देखिये स्कन्दगुप्त का जूनागढ़-लेख—

नरपति भुजगानाम् मानदर्पोत् फणानाम्
प्रतिकृति गरुणाज्ञाम् निर्विशीम् चावकर्त्ता।

"पुराणों के अनुसार गुप्तों के आराध्य कृष्ण 'कालिय' नाग और दूसरे सर्पों के सिर को कुचल डालते हैं।"

५. Allan, *Gupta Coins*, xxii; *CCAI*, lxxix.

६. *JRAS*, 1898, 449f.

करता है। इन मुद्राओं पर 'कोट' अंकित है और गंगा के उत्तरी मैदान में राज्य करने वाले श्रीवस्ती के राजा की 'श्रुत मुद्राओं' से मिलती-जुलती हैं।[1]

विजित प्रदेशों को साम्राज्य में मिलाकर 'विषय' की संज्ञा दी गई थी। बाद के लेखों से दो 'विषयों' का पता चलता है। इनमें से एक दोआब में था, जिसका नाम 'अंतर्वेदी' था; और दूसरा 'ऐरिकिन' पूर्वी मालव में था। समुद्रगुप्त के शासन-काल में नाग-वंश का राजा 'विषयपति सर्वनाग' अंतर्वेदी में राज्य करता था।

उपर्युक्त उत्तरवर्त्ती राज्यों को ही समुद्रगुप्त ने अपने राज्य में नहीं मिलाया था, वरन् उसने 'आटविक राज्यों' के शासकों को भी अपना दास बना लिया था। किन्तु, उसकी अत्यन्त साहजिक विजय दक्षिण की विजय थी, जहाँ पूर्वी दक्षिण के राजाओं ने उसका लोहा मान लिया था। पूर्व में तो मगध-सम्राटो के समान वह 'दिग्विजयी'[2] ही प्रसिद्ध था। परन्तु, दक्षिण में महाकाव्यों तथा कौटिल्य द्वारा निर्देशित 'धर्मविजयी' तक ही उसने अपने को सीमित रखा। यद्यपि

---

१. स्मिथ (*Coins in the Indian Museum*, 258) का कथन है कि कोट-मुद्रायें पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली के बाजार में भारी संख्या में प्रचलित थीं। ऐसा कहा जाता है कि कोट की एक जाति नीलगिरि में भी रहती थी (*JRAS*, 1897, 863; *Ind. Ant.*, iii, 36, 96, 205)। इलाहाबाद-अभिलेख में यह वाक्य "समुद्रगुप्त की सेना ने कोट-वंश के एक राजा को बन्दी बनाकर पुष्पाह्वय में अपना मनोरंजन किया" का अर्थ कुछ विद्वान् यह बताते हैं कि कोट-नरेश कभी पाटलिपुत्र पर भी राज्य करते थे (*Cf.* Jayaswal, *History of India, c. 150 A. D. to 350 A. D.*, p. 113)। 'कौमुदी-महोत्सव' में वर्णित मगध-वंश के शासक कोट-कुल के थे, इसका कोई प्रमाण हमें नहीं मिलता।

२. इस प्रकार की विजय 'असुर-विजय' कहलाती है (देखिये अर्थशास्त्र, p. 382)। यह नाम कदाचित् असीरियनों से लिया गया है जो युद्धक्षेत्र में अपनी क्रूरता के लिये प्रसिद्ध थे। "अश्शुर" शब्द से ही 'असुर' शब्द की उत्पत्ति हुई है (देखिये *JRAS*, 1916, 355; 1924, 265 ff)। इस प्रकार की विजय का भारत में सर्वप्रथम उल्लेख ई०पू० छठी शताब्दी में हुआ था (देखिये अजातशत्रु द्वारा लिच्छवियों तथा विडूडभ (विदर्भ) के शाक्यों पर विजय)। उस समय भारत तथा असीरिया में फ़ारस बीच की कड़ी था।

वहाँ के राजाओं को उसने पराजित तो किया, परन्तु उनका राज्य अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। सम्भवतः उसने यह अनुमान लगा लिया था कि दक्षिण के इन दूरस्थ भागों पर सुदूर उत्तर भारत में रहकर किसी तरह का प्रभावशाली नियंत्रण रखना सम्भव न होगा। वैसे उसके उत्तराधिकारियों ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर दक्षिण पर अपना अधिकार बनाये रखा। निस्संदेह ही आटविक राज्य में आलवक (गाज़ीपुर) तथा डभाला (जबलपुर)[1] को मिलाने वाला वन-प्रदेश भी सम्मिलित था। समुद्रगुप्त के एरण-अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने इस प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की थी।

दक्षिणापथ के जिन राजाओं ने गुप्त-सम्राटों के साथ युद्ध किया था, उनके नाम इस प्रकार हैं—कोशल के महेन्द्र, महाकांतार के व्याघ्रराज, कौराल के मण्टराज, कोट्टूर के स्वामिदत्त, पिष्टपुर का एक अज्ञातनाम शासक[2], एरण्डपल्ल के दमन, काँची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेंगी के हस्तिवर्मन, पलक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनञ्जय, तथा अन्य नरेश।

दक्षिणापथ के कोशल अर्थात् दक्षिणी कोशल में आधुनिक बिलासपुर, रायपुर, सम्बलपुर ज़िले तथा गंजाम[3] के कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। इसकी राजधानी

१. Fleet, *CII*, p. 114; *Ep. Ind.*, VIII, 284-287. पाँचवीं शताब्दी के अंत तथा छठी शताब्दी के प्रारम्भ में डभाल प्रदेश पर गुप्त-वंश के अधीनस्थ 'परिव्राजक महाराज' शासन करते थे। महाभारत (ii, 31, 13-15) में इलाहाबाद-प्रशस्ति की तरह आटविकों तथा कांतारकों में अंतर बताया गया है। संध्याकर नन्दी के रामचरित की टीका (p. 36) में आया हुआ 'कोटाटवि' सम्भवतः आटविक का ही दूसरा नाम है (*Ep. Ind.*, VII, p. 126), और एक दूसरे लेख में 'वटाटवि' कहा गया है जबकि लूडर्स की सूची, संख्या ११६५ में, 'महलाटवि' बताया गया है।

२. "पैष्टपुरक महेन्द्रगिरि कौट्टूरक स्वामिदत्त" के सम्बन्ध में विविध अर्थों के लिये देखिये फ्लीट, *CII*, Vol. 3, pp. 7; *JRAS*, 1897, pp. 420, 868-870; *IHQ*, 1925, 252; बरुआ, *Old Brahmi Inscriptions* p. 224. हो सकता है कि इसमें आया हुआ 'महेन्द्रगिरि' नाम किसी का व्यक्तिगत नाम हो। कीलहॉर्न (*S. Ins.*, 596) के अनुसार गोदावरी ज़िले के एक भाग में कोंडविड्डु के राजा का नाम कुमारगिरि था। *JRAS* (1897, 870) में सिंधिया के मित्र राजा का नाम कामतागिर था।

३. रतनपुर भी सम्मिलित था (देखिये *Ep. Ind.*, X. 26; कोंगोद—*Ep. Ind.*, VI. 141, तभी जब तोसल को कोशल पढ़ लिया जाये)।

श्रीपुर (आधुनिक सीरपुर) रायपुर से पूर्व तथा उत्तर की ओर ४० मील पर स्थित था।[१] महाकांतार कदाचित् मध्य प्रदेश का वन-प्रदेश है, जिसमें सम्भवतः कांतार भी है, और जिसमें महाभारत में वेरावातट (वैनगंगा की घाटी) तथा प्राक्कोशल का पूर्वी भाग भी शामिल था।[२]

'कौराल' 'कोल्लेरु' अथवा 'कोलैर' कभी भी नही हो सकता, जो कि कदाचित् वेंगी के हस्तिवर्मन, जिनका उल्लेख अलग से किया गया है, के राज्य में सम्मिलित था। डॉ बार्नेट के अनुसार, दक्षिणी भारत मे कोराड[३] नामक ग्राम ही यह स्थान था। गंजाम में रसेलकोंदा के निकट कोलाड नामक एक स्थान है।

गंजाम[४] में महेन्द्रगिरि से १२ मील पूर्व-दक्षिण में स्थित 'कोथूर' ही 'कोट्टूर' है। गोदावरी जिले का पिष्टपुर ही पिठापुरम है। फ्लीट के अनुसार, खानदेश

---

१. Fleet, *CII*, p. 293; *Cf. Ep. Ind.*, xxiii, 118 f.

२. महाभारत, II, 31,12-13. जी० रामदास (*IHQ*, I. 4,684) के अनुसार गंजाम तथा विशाखापटनम के क्षेत्र में 'झारखंड' क्षेत्र को महाकांतार कहा गया है। महाकांतार के राजा का राज्य उत्तर की ओर अजयगढ़ राज्य के नाचना तक फैला हुआ था (Smith, *JRAS*, 1914, 320)। R. Sathianathaier (*Studies in the Ancient History of Tondamandalam*) ने बहुत से दक्षिणी राज्यों के सम्बन्ध में जो चर्चा की है, वह विश्वमनीय प्रतीत नही होती। उसका यह निष्कर्ष, कि समुद्रगुप्त सर्वप्रथम पूर्वी किनारे पर पिठापुरम में आया और वहीं से पश्चिमी दक्षिण पर विजय प्राप्त की, निस्संदेह अस्पष्ट प्रमाणों पर ही आधारित है।

३. *Cal. Rev.*, Feb., 1924, 253 n; देखिये कुर्रालम, Tj, 590, *A Topographical List* of *Inscriptions of the Madras Presidency*, by V. Rangacharya. इस पुस्तक के कुछ संस्करणों में ययातिनगरी (*Ep. Ind.*, XI. 189) को ही बताया गया है। परन्तु, 'पवनदूत' मे 'केरली' पढ़ना भी कुछ असम्भव नहीं है। कोलाड के लिये देखिये *Ep. Ind.*, XIX, 42.

४. विशाखापटनम जिले में पहाड़ी की तलहटी में 'कोट्टूर' नामक एक अन्य प्रदेश भी है। और भी देखिये 'कोट्टूर' (*IA*, 4, 329) और 'कोट्टूरनाडु' (*MS*, 333, रंगाचार्य की सूची)।

का एरएडोल ही एरएडपल्ल है, जबकि डुब्रील के अनुसार, गंजाम[1] ज़िले के एरगडपली का एक नाम एरएडपल्ल था। परन्तु, जी० रामदास[2] का कथन है कि यह नाम विशाखापटनम के येरडीपल्ली अथवा एलोर तालुका के येरडापिल्ली से मिलता है। मद्रास के निकट काँची ही कांजीवरम है। अवमुक्त का पता ठीक से नहीं चलता; परन्तु इसके राजा 'नीलराज' से हमें गोदावरी[3] ज़िले में यानम के निकट स्थित प्राचीन बन्दरगाह नीलपल्ली की याद आती है। वेंगी वास्तव में वेगी अथवा पेदावेगी था, जो कृष्णा तथा गोदावरी के बीच एलोर से सात मील उत्तर की ओर था। हल्ट्ज़ के अनुसार, इसका राजा हस्तिवर्मन वास्तव में आनन्द-वंश[4] का अत्तिवर्मन था। परन्तु, अधिक विश्वसनीय यह प्रतीत होता है कि वह शालंकायन-वंश[5] से सम्बन्धित था। पलक्क सम्भवतः दक्षिण भारत के नेल्लोर अथवा गुगटूर ज़िले के पल्लव-राजा अथवा उसके प्रतिनिधि का निवास-स्थान पलक्कद अथवा पाल्लकट था। एलन तथा जी० रामदास के अनुसार, यह नेल्लोर ज़िले[6] में ही था। देवराष्ट्र, येल्लामंचिली तालुका था जो विशाखापटनम[7]

१. Dubreil, *AHD*, pp. 58-60. 'एरगडवल्ली' नामक स्थान का उल्लेख गोविन्द-तृतीय के लेख में भी है (*Bharat Itihas Sam. Mandala*, AR, XVI)।

२. *IHQ*, 1,4, p. 683. पाद्म (स्वर्ग-खगड, 45, 57, 61) में 'एरगडी' तीर्थ का उल्लेख मिलता है।

३. गोदावरी ज़िले का गज़ेटियर, Vol. I, p. 213. ब्रह्म पुराण (Chap. 113. 22 f) में अविमुक्त क्षेत्र को गौतमी या गोदावरी के तट पर बताया गया है। रंगाचार्य की सूची में १६४ पर देखिये अविमुक्तेश्वर, अनन्तपुर।

४. अत्तिवर्मन को भूल से पल्लव-वंश का कहा गया है (देखिये *IHQ*, 1,2, p. 253; *Ind. Ant.* IX, 102)। परन्तु, वास्तव में वह प्रसिद्ध संन्यासी आनन्द का वंशज था (*Bomb. Gaz.*, I, ii. 334; कीलहार्न, *S. Ins.*, 1015; *IA*, IX, 102; *ASI*, 1924-25, p. 118)।

५. हस्तिवर्मन वास्तव में शालंकायन-वंशावली में मिलता है (*IHQ*, 1927, 429; 1933, 212; नन्दीवर्मन-द्वितीय का पेदवेगी-लेख)।

६. *IHQ*, I, 2, 686; *Cf. Ep. Ind.*, xxiv, 140.

७. Dubruil, *AHD*, p. 160; *ASR*, 1908-09, p. 123; 1934-35, 43, 65.

ज़िले में था। उत्तरी आर्काट[1] में पोलूर के निकट कुत्तलपुर सम्भवतः, डॉ० बार्नेट के अनुसार, कुस्थलपुर था।

महेन्द्रगिरि पर्वत के निकट मुख्य रूप से कोट्टूर के शासक के बन्दी बनाये जाने तथा उसके मुक्त होने से हमें कालिदास के रघुवंशम् की इन पक्तियों का स्मरण हो आता है—

गृहीत-प्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृपः
श्रियं महेन्द्रनाथस्य जहार नतु मेदिनीम्।

"न्याय विजयी महाराज रघु ने महेन्द्रगिरि के राजा को बन्दी बनाकर छोड़ दिया। इस प्रकार उन्होंने उसका यश लेकर राज्य नहीं छोड़ा।"

इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि इलाहाबाद की प्रशस्ति में वाकाटकों का संदर्भ नही मिलता, जिन्होंने बुन्देलखण्ड तथा पेनगंगा के कुछ भागों पर पाँचवीं शताब्दी में अधिकार कर रखा था। वाकाटकों का सर्वप्रथम उल्लेख अमरावती[2] के कुछ अभिलेखों में मिलता है। विन्ध्यशक्ति-प्रथम तथा उसके पुत्र प्रवरसेन-प्रथम के शासन-काल में इस वंश का उत्थान हुआ। सम्भवतः प्रवरसेन के पौत्र रुद्रसेन-प्रथम ने उसके राज्य के उत्तरी भाग पर शासन किया था। रुद्रसेन-प्रथम की पुत्र एवं उत्तराधिकारी पृथिवीषेण-प्रथम समुद्रगुप्त तथा कदाचित् उसके पुत्र चन्द्र-गुप्त-द्वितीय का समकालीन था। उसका पुत्र रुद्रसेन-द्वितीय ने चन्द्रगुप्त-द्वितीय की पुत्री के साथ विवाह किया था। पृथिवीषेण-प्रथम का राजनैतिक प्रभाव बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। 'नाचने की तलाई' तथा गज[3] प्रदेश में उसके आधि-पत्य को स्वीकार कर व्याघ्रदेव राज्य करते थे। प्रो० डुब्रील का मत है कि 'नाचना' तथा गंज के अभिलेखों में जिस व्याघ्र का उल्लेख है, वह पृथिवीषेण-प्रथम के समय का न होकर उसके प्रपौत्र पृथिवीषेण-द्वितीय के समय का ही अधिक लगता है। यह तथ्य विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि पृथिवीषेण-द्वितीय के

१. *Cal. Rev.*, 1924, p. 253 n. देखिये—कुतलपर्इ, *MS*, 179 of Rangacharya's List.

२. *Ep. Ind.*, XV, pp. 261, 267.

३. Feet, *CII*, p. 233; *Ep. Ind*, XVII, 12; *Cf. Ind. Anti.*, June, 1929.

परदादा के समय से, यदि इससे भी पूर्व नहीं तो, 'नाचना' तथा गंज और वाकाटक[1] प्रदेश के बीच की भूमि पर गुप्त-सम्राटों का शासन था । 'नाचना' तथा गंज के विवरणों से ज्ञात होता है कि व्याघ्र ने वाकाटक पृथिवीषेण का आधिपत्य स्वीकार किया था। अतः वह पृथिवीषेण-प्रथम ही होगा, जिसने गुप्त-वंश के समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त-द्वितीय[2] के आधिपत्य की स्थापना के पूर्व राज्य किया होगा। वह राजा पृथिवीषेण-द्वितीय नहीं हो सकता, क्योंकि उसके काल में, जैसा कि परिव्राजक महाराज[3] के विवरणों से ज्ञात होता है, वाकाटकों का न होकर गुप्त-साम्राटों का आधिपत्य एवं राज्य मध्यप्रदेश में था।

हरिषेण की प्रशस्ति में पृथिवीषेण-प्रथम का उल्लेख केवल इसीलिये नहीं मिलता कि समुद्रगुप्त ने अपनी विजय उत्तरी भारत के पूर्वी भाग तक ही सीमित रखी थी। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि समुद्रगुप्त ने दक्षिणी भारत के मध्य तथा पश्चिमी भाग पर भी आक्रमण किया था, या नहीं । अतः, पृथिवीषेण-प्रथम के राज्य पर समुद्रगुप्त का आक्रमण कभी हुआ ही नहीं। प्रो० डुब्रील का कथन है कि देवराष्ट्र को महाराष्ट्र तथा एरण्डपल्ल को खानदेश का एरण्डोल बताना शायद ग़लत होगा।[4]

यद्यपि समुद्रगुप्त ने पश्चिमी दक्षिणापथ पर आक्रमण नहीं किया, फिर भी एरण-अभिलेख से स्पष्ट है कि उसने मध्य भारत में वाकाटकों की प्रभुता समाप्त कर दी थी। इन प्रदेशों पर वाकाटक-नरेशों का सीधा राज्य नहीं था, वरन् यहाँ

१. यह प्रदेश बरार तथा उसके आसपास का प्रदेश था (*Ep. Ind.*, xxvi, 147)। बृहत्संहिता से ज्ञात होता है कि नाचना तथा गंज गुप्त-काल में दक्षिणापथ में सम्मिलित थे। उसके अनुसार चित्रकूट भी दक्षिणी भारत में ही था। हाल ही में द्रुग जिले में एक वाकाटक-अभिलेख का पता चला है, जिसमें पद्मपुर का उल्लेख है। प्रो० मिराशी के अनुसार यह स्थान भवभूति की जन्मभूमि था, तथा मध्य प्रान्त के भण्डारा ज़िले में आमगाँव के निकट था (*IHQ*, 1935, 299; *Ep. Ind.*, xxii, 207 ff)। बासिम-ग्राण्ट से ज्ञात होता है कि अजन्ता-क्षेत्र के दक्षिण में बरार के एक भाग पर इस वंश का अधिकार था।

२. देखिये—एरण तथा उदयगिरि लेख। पुराभूगोल के साक्ष्य के लिए देखिये —*JRASB*, xii, 2, 1946, 73.

3. *Cf. Modern Review*, April, 1921, p. 475. डुब्रील के विचार जानने के लिए देखिये—*Ind. Ant.*, June, 1926.

4. *Cf. Modern Review*, 1921, p. 427.

पर उनके प्रतिनिधि राज्य करते थे । पृथिवीषेण के राज्य-काल में यह प्रतिनिधि व्याघ्र थे । अतः यह स्वाभाविक ही है कि वाकाटक के प्रतिनिधियों तथा गुप्त-विजेताओं के बीच समय-समय पर संघर्ष होता रहा। आश्चर्य की बात है कि इलाहाबाद-प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त ने महाकांतार[1] के राजा व्याघ्रराज पर विजय प्राप्त की थी। हो सकता है कि यह व्याघ्रराज वही व्याघ्र हो, जो नाचना-अभिलेख के अनुसार, मध्य भारत में पृथिवीषेण का प्रतिनिधि था । समुद्रगुप्त की विजयों के कारण वाकाटकों के ऊपर गुप्त-सम्राटों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था। अब से वाकाटकों की शक्ति केवल दक्षिण में ही सीमित रह गई थी ।

समुद्रगुप्त की इन विजयों का गहरा प्रभाव उत्तरी-पूर्वी भारत और हिमालय-क्षेत्रों के प्रत्यन्त[2] नृपतियों अथवा सीमावर्ती नरेशों पर भी पड़ा। साथ ही पंजाब के कबाइली राज्य भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके । इनके अतिरिक्त पश्चिमी भारत, मालव तथा मध्यप्रदेश के शासकों ने 'हर प्रकार के कर देकर तथा उसकी प्रभुता को मानकर' उसके 'प्रचण्ड शासन' को स्वीकार किया । पूर्वी राज्यों में जिन प्रदेशों ने गुप्त-सम्राटों का आधिपत्य स्वीकार किया, उनमें से मुख्य प्रदेश समतट (पूर्वी बंगाल का समुद्र-तटवर्ती प्रदेश जिसकी राजधानी कोमिल्ला[3] के निकट कर्मान्त या बडकाम्त थी)[3], डवाक (अभी तक ठीक से इसका पता नही चल सका है)[4] तथा कामरूप (असम में) थे। दामोदरपुर-

१. समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों पर शेर को पैरों से कुचलते हुए राजा को दिखाया गया है तथा उस पर 'व्याघ्र-पराक्रम' लिखा है । तो क्या इसका कोई सम्बन्ध सम्राट् के व्याघ्रराज पर विजय प्राप्त करने से है ? यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि दूसरे सम्राट् ने अंतिम क्षत्रप रुद्रसिंह-तृतीय पर विजय प्राप्त करके 'सिंहविक्रम' की उपाधि धारण की थी ।

२. इस शब्द के महत्व के लिए देखिए—दिव्यावदान, p. 22.

३. Bhattasali, *Iconograqhy*, pp. 4 f; *JASB*, 1914,85 ff. देखिये कि छठी शताब्दी के प्रारम्भ में महाराज वैन्यगुप्त के नीचे महाराज रुद्रदत्त की क्या स्थिति थी ?

४. देखिए देकक (ढाका), Hoyland, *The Empire af the Great Mogol*, p. 14. श्री के० एल० बरुआ मध्य असम में कोपिली-घाटी को 'दवाक' बताते हैं (*Early History of Kamarupa*, 42 n) । गुप्त-काल का प्रयोग दबोका-क्षेत्र में देखने के लिए देखिए—*Ep. Ind.*, xxvii, 18 f.

प्लेट से पता चलता है कि उत्तरी बंगाल का पुंड्रवर्धन भुक्ति नामक एक बहुत बड़ा भाग सन् ४४३ से ५४३ ई० तक गुप्त-साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग था और उपरिकों द्वारा, गुप्त-वंश के प्रतिनिधि के रूप में, शासित था। अतः उत्तरी बंगाल के कुछ जिलों को 'डवाक' बताना भ्रमात्मक होगा। उत्तरी प्रत्यन्तों में नेपाल तथा कर्त्तृपुर नामक राज्य थे। कर्त्तृपुर में सम्भवतः कर्तारपुर (जो जालन्धर जिले में था), कुमायूँ का कतूरिया अथवा कत्यूर 'राज', गढ़वाल और रोहिलखण्ड सम्मिलित थे।[1]

वे सभी कबाइली राज्य जो समुद्रगुप्त को कर देते थे, आर्यावर्त्त के पश्चिमी और दक्षिणी-पश्चिमी सीमान्त पर स्थित थे। इनमें से मुख्य-मुख्य राज्य मालव, आर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक और खरपरिक थे।

सिकन्दर के आक्रमण के समय मालवों ने पंजाब के कुछ भाग पर अपना अधिकार कर रखा था। जिस समय उनका संघर्ष उषवदात से हुआ, उस समय सम्भवतः वे पूर्वी राजपूताना[2] में थे। समुद्रगुप्त के समय की उनकी वास्तविक स्थिति मालूम नहीं की जा सकती। समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों के समय में उनका सम्बन्ध सम्भवतः मन्दसौर प्रान्त से था। हमने देखा है कि मन्दसौर के राजा ५८ ई०पू० से आरम्भ होने वाली तिथि को मानते थे, जो सम्भवतः उन्हें मालवगण से मिली थी।

बृहत्संहिता के लेखक ने आर्जुनायनों तथा यौधेयों को उत्तरी भारत का बताया है। तोलेमी के अनुसार, शायद पंजाब[3] में बसे हुए पाण्डुओई अथवा पांडव जाति से उनका सम्बन्ध था। आर्जुनायनों का सम्बन्ध पाण्डव अर्जुन[4] से था, यह स्पष्ट है। यौधेय कदाचित् महाभारत[5] में आए हुए युधिष्ठिर

---

१. *EHI*[4], 302 n; *JRAS*, 1898; 198; *Ep. Ind.*, XIII, 114; *Cf. J. U. P. Hist. Soc.*, July-Dec., 1945, pp. 217ff., जिसमें पावेल प्राइस के अनुसार कुणिन्दों तथा कत्यूरों के बीच कुछ सम्बन्ध अवश्य था।

२. *Cf.* Smith, *Catalogue*, 161; Allan, *CCAI*, p. cv. जयपुर राज्य में मालव की मुद्रायें भारी संख्या में पाई गई हैं (*JRAS*, 1897, 883)।

३. *Ind. Ant.*, XIII, 331, 349.

४. उनकी मुद्रायें मथुरा में भी मिली हैं (Smith, *Catalogue*, 160)। 'अभिधान चिंतामणि' (p.434) में आर्जुनी नामक नदी को बाहुदा (रामगङ्गा ?) नदी बताया गया है।

५. महाभारत, आदिपर्व, 95, 76. पाणिनि यौधेयों के बारे में जानते थे (V. 3, 117)।

के पुत्र का नाम था। हरिवंश में यौधेयों को उशीनर[1] से सम्बद्ध बताया गया है। विजयगढ़-अभिलेख[2] में इस जाति के निवास-स्थान का हल्का-सा संकेत मिलता है। राजपूताना के भरतपुर राज्य में बयाना के दक्षिण-पश्चिम में दो मील दूर विजयगढ़ का पहाड़ी किला स्थित है। परन्तु, यौधेयों का राज्य इससे अधिक क्षेत्र में विस्तृत था तथा उसमें सतलज के दोनों ओर की भूमि (जिसका नाम जोहियाबार था) तथा बहावलपुर का प्रदेश भी सम्मिलित था।[3]

मद्रकों की राजधानी पंजाब में शाकल अथवा शियालकोट थी। सिन्धु-घाटी का निचला भाग तथा विनाशन[4] के निकट पश्चिमी राजपूताना का वह ज़िला जिसे 'पेरीप्लस'[5] ने तथा तोलेमी ने अपने भूगोल में 'अबीरिया' कहा है, आभीरों के अधिकार में थे। हमने पहले ही पढ़ा है कि एक आभीर-सामन्त ने पश्चिमी भारत में 'महाक्षत्रप' का पद पाने के बाद तीसरी शताब्दी के मध्य तक महाराष्ट्र के एक भाग में सातवाहनों को स्थापित किया था। इसी जाति की एक शाखा मध्यभारत में जा बसी और उसने झाँसी तथा भिलसा के बीच के प्रदेश को आहिरवार देश नाम दिया।[6] प्रार्जुनों, सनानीकों, काकों और खरपारकों के राज्य सम्भवतः मालव तथा मध्यभारत में स्थित थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[7] में प्रार्जुनों का उल्लेख मिलता है। स्मिथ[8] के अनुसार इनका राज्य मध्यप्रान्त के नरसिंहपुर ज़िले में स्थित था। पूर्वी मालवा में चन्द्रगुप्त-द्वितीय के प्राप्त उदयगिरि-अभिलेख से सनकानीकों के स्थान का कुछ पता चलता है। काकों का उल्लेख महाभारत[9] में

१. Pargiter, मार्कण्डेय पुराण, p. 380.

२. Fleet, *CII*, p. 251. यौधेयों की कुछ सीलें लुधियाना ज़िले में भी पाई गई हैं (*JRAS*, 1897, 887)। सहारनपुर से मुलतान तक के प्रदेश में मुद्रायें मिली हैं (Allan, *CCAI*, cli)।

३. Smith, *JRAS*, 1897, p. 30; *Cf.* Cunningham, *AGI*, 1924, 281.

४. महाभारत, IX, 1,37,1—'शूद्राभिरान्प्रतिद्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती।'

५. *Cf. Ind. Ant.*, III, 226 f.

६. *JRAS*, 1897, 891; देखिये *Ain-i-Akbari*, II, 165; *Malcolm*, *CI.* I, *20.*

७. P. 194.

८. *JRAS*, 1897, p. 892.

९. महाभारत, VI, 9, 64.

मिलता है—'ऋषिका विदभाः काकास् तंगनाः परतंगनाः' । ऑम्बे-मर्ब्टियर में काक को बिठूर के निकट काकूपुर बताया गया है । स्मिथ का मत है कि काकों का सम्बन्ध काकनाद (साँची) से था । खरपरिकों के अधिकार में सम्भवतः मध्य-प्रदेश का दमोह जिला था ।[१]

उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रान्त, मालब, सुराष्ट्र (कठियावाड़) आदि में विदेशियों का राज्य था । अतः जब उन्होंने एक भारतीय राजा की शक्ति को बढ़ते देखा तो उसकी सत्ता स्वीकार कर, व्यक्तिगत रूप से सेवा कर तथा सुन्दरियों[२] को उपहार में देकर सन्धि कर ली, साथ ही प्रार्थना की कि 'गरुड़-चिह्न' (गरुत्मदंक) देकर उनको उनके जिलों और प्रान्तों पर शासन करने दिया जाये ।[३] इस प्रकार सम्राट् समुद्रगुप्त से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले विदेशियों में दैवपुत्र[४]-शाहि-शाहानुशाहि, शक मुरुण्ड,[५] सिंहल तथा अन्य द्वीपों[६] के निवासी भी थे ।

१. भण्डारकर, *IHQ*, 1925, 258; *Ep. Ind.*, XII, 46. एच० सी० राय (*DHNI*, 1, 586) लिखते हैं कि खरपर 'पद्रक' मालव में है । 'बेरण्ण-कार्पर-भाग' का उल्लेख सिवानी-प्लेट में मिलता है ।

२. हिन्दू-राजाओं के रनिवास में शक-सुन्दरियों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । चन्द्रगुप्त मौर्य का विवाह सेल्युकस और शातकर्णि का विवाह एक क्षत्रप की पुत्री से हुआ था (*Cf.* Penzer, II, 47; III, 170) ।

३. देखिए—नीलकंठ शास्त्री, *The Pandyan Kingdom*, 145. "विजेता ने धार्मिक दान के रूप में चोल राज्य वापस कर दिया, इसकी पुष्टि पाण्ड्या की सील वाली राजाज्ञा द्वारा की गई ।"

४. 'दैव' शब्द के लिए Xerxes का एकीमीनियन-अभिलेख देखिये, जिसमें 'भीमरथी' के स्थान पर 'भैमरथी' लिखा है ।

५. समुद्रगुप्त ने कुषाणों की मुद्रा को अपना कर उल्टी ओर 'अदोच्शो' अंकित कराया (Allan, xxviii, xxxiv, lxvi) । विद्वानों के अनुसार ये मुद्रायें उत्तर-पश्चिम के शकों द्वारा चलायी गयी थीं ।

६. 'धनद-वरुणेन्द्रान्तकसम' ('धनद', कुबेर, संपत्ति के देवता तथा उत्तर के स्वामी), ('वरुण', समुद्र के भारतीय देवता तथा पश्चिम के स्वामी), ('इन्द्र', देवताओं तथा पूर्व के स्वामी) तथा ('अंतक', यम, मृत्यु के देवता तथा दक्षिण के स्वामी) के अनुसार समुद्र के आसपास के द्वीपों पर भी अधिकार था । समुद्रगुप्त की तुलना उपर्युक्त देवताओं से करने का अर्थ यह है कि उसने न केवल चारों

दैवपुत्र-शाहि-शाहानुशाहि निश्चय ही उत्तर-पश्चिम के कुषाण-राजवंश से सम्बद्ध थे, तथा 'देवपुत्र' कनिष्क[1] की वंश-परम्परा में थे। शक मुरुण्डों में उत्तर के, 'अर्दोक्षो' मुद्रा चलाने वाले शक-शासक तथा सुराष्ट्र एवं मध्यभारत के गङ्गा के मैदान पर भी राज्य करने वाले शक-राजा सम्मिलित थे। स्टेन कोनोव का कथन है कि 'मुरुण्ड' शक शब्द है, जिसका अर्थ संस्कृत शब्द स्वामिन्(मालिक) से मिलता-जुलता है। 'स्वामिन्' उपाधि का प्रयोग सुराष्ट्र और उज्जैन के क्षत्रप अपने लिए किया करते थे। मार्शल द्वारा पाये गये साँची-अभिलेख से पता चलता है कि सन् ३१६ ई० में एक और शक-प्रान्त था जिस पर नन्द[2] के पुत्र महादंड-नायक श्रीधरवर्मन राज्य करते थे। मध्यभारत के खोह-अभिलेख में किसी एक मुरुण्ड-स्वामिनी का उल्लेख मिलता है। भारी संख्या में पूर्वी विंध्य तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में पायी जाने वाली 'पुरी कुषाण' मुद्राओं का संबंध सम्भवतः विन्ध्य प्रदेश के शक-शासकों से है। समुद्रगुप्त से दो सौ वर्ष पूर्व गंगा के मैदान में, तोलेमी[3] के अनुसार, शकों का राज्य था। जैन ग्रंथ 'प्रभावक चरित' से ज्ञात होता है कि किसी समय महान् राजधानी पाटलिपुत्र[4] भी शक राजा के अधीन थी।

दिशाओं में अपनी विजय-पताका ही फहरायी, वरन् कुबेर के समान उसके पास अथाह धन था तथा समुद्र एवं अनेक प्रतापी राजाओं पर उसका प्रभुत्व था। गङ्गा तथा मलय (रक्तमृत्तिका के महानाविक) में पाई गई मुद्राओं तथा लेखों से ज्ञात होता है कि भारतीय निवासी नाविक-विद्या में भी प्रवीण थे तथा गुप्त-काल में उन्होंने सैनिक आक्रमण आदि भी किये।

१. स्मिथ (*JRAS*, 1897, 32) ने इनको वमवेट बताया है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह किसी दूसरे राजा अथवा सरदार के लिए प्रयुक्त हुआ है (Allan, xxvii)। यह उल्लेख सम्भवतः ससानिदों के लिए भी आया हुआ लगता है।

२. *Ep. Ind.*, xvi, 232; *JRAS*, 1923, 336, 337 ff.

३. *Ind. Ant.*, 1884, 377; Allan, xxix; *Cf. India Antiqua* (Vogel Volume, 1947), 171f; Murundas in the Ganges Valley *C.* 245 A. D. mentioned by the Chinese.

४. C. J. Shah, *Jainism in N. India*, p. 194; *Cf. Indian Culture*, III, 49.

लंका का राजा मेघवर्ण समुद्रगुप्त का समकालीन था। चीनी लेखक वांग ह्वेन-से के अनुसार, ची-मी-किया-पो-मो (श्री मेघवर्मन या मेघवर्ण) ने बहुत-सा उपहार तथा दूत भेजकर, समुद्रगुप्त से बोधगया में पवित्र वृक्ष के पास एक विशाल विहार बनाने की आज्ञा माँगी थी, जहाँ लंका से जाने वाले बौद्ध यात्री[1] ठहर सकें।

एलन के अनुसार जिस अश्वमेध यज्ञ[2] की सूचना हमें समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों द्वारा निर्मित शिलालेखों से मिलती है, उसे सम्राट् ने अपनी विजयें पूरी कर लेने के बाद ही किया होगा। परन्तु, यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इसी बीच (पुष्यमित्र से लेकर समुद्रगुप्त तक) बहुत से नरेशों ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था, उदाहरण के लिए पाराशरी-पुत्र सर्वतात, शातकर्णि (नायनिका के पति), वासिष्ठीपुत्र इक्ष्वाकु श्रीचांतमूल, देववर्मन शालंकायन, प्रवरसेन-प्रथम वाकाटक, शिवस्कन्दवर्मन पल्लव और भारशिव-वंश के नाग-राजा। यह संभव है कि गुप्त-वंश के दरबारी कवियों को इन राजाओं के संबंध में कुछ भी ज्ञात न रहा हो। इस अश्वमेध यज्ञ के पश्चात् समुद्रगुप्त ने जो मुद्रायें चलायीं, उन पर 'अश्वमेधपराक्रमः' (अर्थात् जिसकी शक्ति अश्वमेध-यज्ञ[3] द्वारा प्रतिष्ठापित) अंकित कराया।

१. Geiger, महावंश (अनु०), p. xxxix; Levi, *Journ. As.*, 1900, pp. 316 ff, 401 ff; *Ind. Ant.*, 1992, 194.

२. *Cf.* Divekar, *Annals of the Bhandarkar Institute*, VII, pp. 164-65—'इलाहाबाद-प्रशस्ति तथा अश्वमेध'। पूना-लेख में समुद्रगुप्त को 'अनेकाश्वमेधयामिन्' (अनेक अश्वमेध यज्ञों को करने वाला) की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसने एक से अधिक अश्वमेध यज्ञ किए थे। इनमें से कई अश्वमेध-विजयें, जिनका उल्लेख इलाहाबाद-प्रशस्ति में है, उन्हें अश्वमेध में छोड़े जाने वाले घोड़े की रक्षा में चलने वाले राजकुमारों या सेना के अधिकारियों ने पूरा किया होगा। हरिषेण-अभिलेख में कई पराजित नरेशों को बन्दी बनाने का श्रेय सेना को दिया गया है। बड़े-बड़े सेनानायकों में तिलभट्टक तथा ध्रुवभूति के पुत्र स्वयं हरिषेण भी थे।

३. रैप्सन तथा एलन एक ऐसी सील का उल्लेख करते हैं जिस पर अश्व बना है तथा 'पराक्रम' अंकित है। यह सील लखनऊ में है। अनुमान है कि इसका संबंध समुद्रगुप्त के अश्वमेध-यज्ञ से है (*JARS*, 1901, 102; *Gupta Coins*, xxxi)।

यदि इलाहाबाद-प्रशस्ति के लेखक हरिषेण का आधार लिया जाये तो कह सकते हैं कि यह गुप्त-सम्राट् एक बहुमुखी प्रतिभावाला व्यक्ति था। "उसने अपनी तीक्ष्ण और संस्कारवान् योग्यता, बुद्धिमानी तथा गायन-कला से देवताओं, तुम्बुरु,[1] नारद आदि को भी लज्जित कर रक्खा था। बहुत-सी कविताओं की रचना कर उसने 'कविराज' की उपाधि ग्रहण की थी।"[2] "बड़े-बड़े विद्वानों के के लिये वह स्वयं ही विचार का विषय था...उसकी शैली कवित्वमय, तथा मननीय थी। उसके काव्य से दूसरे कवियों को आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती थी।" दुर्भाग्यवश उसका कोई भी काव्य-ग्रन्थ आज प्राप्त नहीं है।[3] परन्तु, वह उत्तम कोटि का गायक था, हरिषेण के साक्ष्य पर इसकी पुष्टि उसकी एक मुद्रा से होती है। मुद्रा पर वीणा[4] अंकित है। हर्ष, महेन्द्रवर्मन तथा अन्य नरेशों की भाँति वह स्वयं भी एक कवि था। उसने अपने ही समान अन्य महान् कवियों के सहयोग से कवियों के बीच चलने वाले वाग्युद्ध (सत्यकाव्य-श्रीविरोध) को समाप्त कर दिया था। परिणामस्वरूप विद्वानों के समाज में उसका बड़ा प्रभाव और प्रभुत्व था। इसका कारण उसकी अनेकानेक कवितायें थीं।

समुद्रगुप्त कविता एवं शास्त्र, दोनों का ही उपासक था, जबकि अशोक ने केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में ही दक्षता प्राप्त की थी। जैसा कि उसके लेखों से ज्ञात होता है, समुद्रगुप्त समस्त संसार को जीतना (सर्व-पृथिवी-जय) चाहता था, परन्तु अशोक ने कलिंग-युद्ध के बाद युद्ध करना बन्द कर दिया था तथा तीनों महाद्वीपों में धर्म-विजय के लिये सेना संगठित की थी। इतनी सारी असमानताएँ होने

१. 'तुम्बुरु' के लिये देखिये 'अद्भुत् रामायण', VI. 7; *EI*, I. 236.

२. काव्य-मीमांसा (3rd ed., *GOS*, pp. xv, xxxii, 19) के अनुसार 'कविराज' का पद 'महाकवि' से ऊँचा होता है तथा वह विभिन्न भाषाओं, शैलियों तथा विचारों की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होता है। गुप्त-काल की साहित्यिक उपलब्धियों के लिये देखिये—भण्डारकर, *A Peep into the Early History of India*, p. 61-74; तथा बूह्लर, *IA*, 1913. समुद्रगुप्त के पुत्र तथा उत्तराधिकारी को 'रूपकृती' (नाटकों का रचयिता) की उपाधि मिली थी।

३. 'कृष्णचरितम्' नामक काव्य-ग्रंथ के लेखक का नाम विक्रमांक महराजाधिराज परमभागवत श्री समुद्रगुप्त था (*IC*, X, 79 etc.)। परन्तु, विद्वान् आलोचकों को इस पर संदेह है (*Cf.* Jagannath in *Annals, BORI*, and others)।

४. अश्वमेध में वीणावादक (वीणागाथिन्) का महत्त्वपूर्ण स्थान होता था।

पर भी दोनों सम्राटों में कई समान विशेषताएँ भी हैं। दोनों ने पराक्रम—जो कार्य हाथ में लो उसे अपनी समस्त योग्यता एवं शक्ति के साथ सम्पादित करो—पर विशेष बल दिया। दोनों ने ही अपनी प्रजा की भलाई का विशेष ध्यान रखा। साथ ही पराजित व्यक्तियों के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण रहा। यही नहीं, दोनों ने धर्म पर भी विशेष बल दिया। समुद्रगुप्त ने 'धर्माशोक' की तरह सत्य-धर्म को दृढ़ बनाने के लिये भी कुछ कम प्रयास नहीं किया (धर्म-प्राचीर-बन्धः)।

इसे स्वीकार करना ही होगा कि काच के नाम पर जो मुद्रायें चलाई गईं, वे समुद्रगुप्त की ही थीं। परन्तु, फ़रीदपुर-ग्राण्ट में प्रयुक्त 'धर्मादित्य' (सत्य-धर्म का सूर्य) उपाधि से समुद्रगुप्त को मिलाना बिलकुल भ्रामक होगा। इस सम्राट् ने निम्नलिखित उपाधियों का प्रयोग किया था—'अप्रतिरथ' (रथविद्या में अद्वितीय), 'अप्रतिवार्यवीर्य' (साहस में अद्वितीय), 'कृतांत-परशु' (मृत्यु का फरसा), 'सर्व-राजोच्छेत्ता'[1] (समस्त राजाओं का उच्छेदक), 'व्याघ्र-पराक्रम' (शेर-जैसा शक्ति-शाली), अश्वमेध-पराक्रम (जिसने अपनी शक्ति अश्वमेध द्वारा दिखाई हो) तथा 'पराक्रमांक' (शक्ति से भरा हुआ)। परन्तु, इस पूरी सूची में 'धर्मादित्य' का प्रयोग कहीं नहीं मिलता। इनमें बहुत-सी उपाधियाँ सम्राट् समुद्रगुप्त द्वारा जारी की गई मुद्राओं पर अंकित मिलती हैं। एक विशेष प्रकार की मुद्राओं की दूसरी ओर 'पराक्रम' शब्द अंकित मिलता है। 'अप्रतिरथ' शब्द धनुषाकार मुद्राओं पर, 'कृतान्त-परशु' युद्ध में प्रयुक्त होने वाले फरसे[2]-जैसी मुद्राओं पर, 'सर्वराजोच्छेत्ता' कार्य-मुद्राओं पर, 'व्याघ्र-पराक्रम' (राजा) शेर-जैसी मुद्राओं पर तथा 'अश्वमेध-पराक्रम' अश्वमेध[3]-मुद्राओं पर पाये जाते हैं। सिंहवाहिनी देवी (सिंहवाहिनी दुर्गा अथवा पार्वती, विन्ध्यवासनी अथवा हैमावती) से अनुमान होता है कि गुप्त-साम्राज्य विन्ध्य तथा हिमालय-क्षेत्र तक फैल चुका था।[4] चीता तथा नदी की देवी (मकरवाहिनी) से अनुमान लगाया जाता है कि समुद्रगुप्त का राज्य

१. देखिये 'सर्वक्षत्रांतक' की उपाधि, जो उसके पूर्व महापद्म नन्द की थी।

२. उदुम्बरों (*CHI*, 539) और जयदामन (Rapson, *Andhra*, etc. 76) की मुद्राओं पर भी युद्ध के फरसे अंकित थे।

३. देखिये—वाश्तान की चौकोर मुद्राओं पर भी ऐसा ही अश्व अंकित है। इस वंश को गुप्तों ने समाप्त किया था।

४. हुविष्क की मुद्राओं पर 'शेर पर नाना' की मूर्ति ने इस प्रकार की मुद्राओं की प्रेरणा दी थी (Whitehead, 207)।

गंगा की घाटी से लेकर महाकांतार प्रान्त (जहाँ चीते पाये जाते हैं) तक फैला हुआ था। गुप्त-काल के कपाटों पर गंगा तथा जमुना अंकित हैं। इससे यह सारांश निकलता है कि उसका सम्बन्ध गंगा के मैदान से भी था।

उसके शासन-काल के एरण-अभिलेख में उसकी सत्यनिष्ठा एवं पतिव्रता पत्नी, सम्भवतः दत्तदेवी का उल्लेख मिलता है। इस महान् शासक की शासन-सम्बन्धी तिथि के लिये हमारे पास कोई प्रामाणिक पत्र नहीं है। नालंदा[1] तथा गया के दानपत्रों से ज्ञात होता है कि वे उसके शासन के क्रमशः ५वें तथा ६वें वर्ष में लिखे गये थे, परन्तु, उन पर पूरा-पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। साथ ही गया-लेख में संख्या का पढ़ना भी अनिश्चित-सा ही है। स्मिथ द्वारा समुद्रगुप्त के लिये दी गई तिथि (सन् ३३० ई० से ३७५ ई०) उचित जान पड़ती है। उसके बाद सिंहासन पर आने वाले राजा की जो तिथि दी गई है, उसके बारे में सब से पहली तिथि ३८०-३८१ ई० है।[2] अतः इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं कि उसके पूर्वज एवं पिता की मृत्यु सन् ३७५ ई०[3] के पश्चात् हुई हो। समुद्रगुप्त के अंतिम कार्यों में से एक कार्य उत्तराधिकारी का चुनाव भी था। अंत में उसने अपने पुत्र चन्द्र-गुप्त (जिसकी माता दत्तदेवी थीं) को इस पद के लिये चुना।

———

१. *ASI, AR*, 1927-28, p. 138.

२. चन्द्रगुप्त-द्वितीय का एक लेख सन् ३८०-८१ का मथुरा में मिला है (*Ep. Ind.*, XXI, 1,f f)।

३. सरकार (*IHQ*, 1942, 372) ६१ वर्ष के अभिलेख के तिथि वाले भाग को इस प्रकार पढ़ते हैं—'श्री चन्द्रगुप्तस्य विजय-राज्य सम्वत्सरे पंचमे—'अर्थात् चन्द्रगुप्त-द्वितीय के राज्य का पाँचवाँ वर्ष।' अतः उसका प्रथम वर्ष सन् ३७६-७७ ई० रहा होगा।

गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः): विक्रमादित्यों का युग | १४

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्
नक्षत्र-तारा-ग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः ।

—रघुवंशम्

चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य

अभिलेखों आदि से ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्त के पश्चात् दत्तदेवी से उत्पन्न उसका पुत्र चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके अन्य नाम नरेन्द्रचन्द्र, सिंहचन्द्र, नरेन्द्रसिंह तथा सिंहविक्रम हैं।[1] उसके पिता ने उसे अपने अन्य दूसरे पुत्रों से अधिक योग्य एवं कुशल समझ कर ही उसका चुनाव किया।[2]

---

१. देखिये—उज्जयिनी के विक्रमसिंह का नाम, Penzer, III, 11. 'विषम-शिल लम्बक' में जो कथा मिलती है, उसके नायक महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य थे, जिनको साधारणतः स्कंदगुप्त कहा गया है। परन्तु, कुछ अन्य लेखों (कथा-सरित्सागर, XVIII, 3,42) में शत्रु के यहाँ वैताल के साथ स्त्री-वेश में जाने की चर्चा से लगता है कि इसका सम्बन्ध महेन्द्रादित्य के पिता चंद्रगुप्त-द्वितीय से था।

२. एरण-अभिलेख से स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त के अनेक पुत्र एवं पौत्र थे। डॉ० अल्तेकर तथा अन्य व्यक्तियों का कथन है कि समुद्रगुप्त तथा चंद्रगुप्त-द्वितीय के बीच एक और राजा राम (शर्म ? सेन ?) गुप्त भी हुआ था, अमान्य है; क्योंकि इसकी पुष्टि कहीं से भी नहीं होती (*JBORS*, XIV, pp. 223-253; XV, pt. i, ii, pp. 134 f)। ऐसा विश्वास किया जाता है कि नवीं शताब्दी में एक गुप्त राजा ने अपने भाई की हत्या कर उसकी पत्नी तथा राजमुकुट को हथिया लिया था। इस सम्बन्ध में प्राप्त साहित्यिक प्रमाणों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। सातवीं शताब्दी में बाण द्वारा दिया गया विवरण मुख्य-मुख्य विषयों में काव्य-मीमांसा

कुछ वाकाटक-अभिलेखों, अन्य मुद्राओं तथा साँची-अभिलेख (४१२-१३ ई०) से ज्ञात होता है कि इस नये राजा का दूसरा नाम 'देवगुप्त', 'देवश्री' अथवा 'देवराज' था।[1]

चंद्रगुप्त-द्वितीय के राज्य-काल के बारे में हमारे पास अनेक अभिलेख हैं, जिन पर तिथियाँ मिलती हैं। अतः उनके आधार पर उसके पूर्वजों के काल की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक रूप से उसका इतिहास लिखा जा सकता है। वह सन् ३८१ ई० के पूर्व कभी सिंहासनासीन हुआ तथा ४१३-१४ ई० के लगभग उसका देहांत हुआ।

उसके शासन-काल की बाह्य नीति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसने वाकाटक राजा पृथिवीषेण-प्रथम के पुत्र रुद्रसेन-द्वितीय के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। दूसरी बात कि उसने शक-क्षत्रपों से युद्ध करके पश्चिमी मालव एवं सौराष्ट्र को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

गुप्त-सम्राटों की बाह्य नीति में वैवाहिक सम्बन्धों का विशिष्ट स्थान था। उन्होंने लिच्छवियों से सम्बन्ध स्थापित कर बिहार में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी। उन्होंने उत्तरी प्रांतों को जीत कर अन्य शासकों के साथ इसी तरह के वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, जिससे कि अपने नये राज्य को सुदृढ़ करने में सहायता मिले और अन्य देशों पर आक्रमण करने के लिए उपयुक्त स्थान मिल सके।

के लेखक के मतों से भिन्न है। (देखिये *Cir*, 900 A. D. *Ind. Ant.*, Nov., 1933, 201 ff; *JBORS*, XVIII, 1, 1932, 17 ff)। 'हर्षचरित' की साधारण कथा को, कि चंद्रगुप्त ने दूसरे की पत्नी हरने के आकांक्षी शक-राजा का उसके नगर में ही जा कर वध किया, अन्य कवियों एवं नाटककारों ने अपने कृतियों का आधार बनाया। साथ ही जो बातें आरम्भ के लेखों में नहीं मिलती थीं उनका भी उल्लेख अमोघवर्ष-प्रथम (८१५ ई० से ८७८ ई०) तथा गोविन्द-चतुर्थ (९२७ ई० से ९३३ ई० तक) के राज्य-काल में हुआ। जिस प्रकार से 'मुद्राराक्षस' तथा 'अशोकावदान' को मौर्यों के इतिहास का आधार नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार 'देवी चंद्रगुप्तम्' नामक ग्रंथ को भी। सिंधिया ओरियंटल इंस्टीट्यूट (1948, pp. 483-511) नामक पुस्तक के लेख *'Vikramadliya in History and Legend'* में लेखक ने इस विषय पर काफ़ी तर्क-वितर्क किया है। इस समय उपलब्ध चंद्रगुप्त की कथा के आधार पर अनेक लोकगीत रचे जा चुके हैं। पेन्ज़र (कथासरित्सागर, III, 290) के कथन से स्पष्ट होता है कि उसकी पत्नी ने अपने दुर्बलहृदय पति को क्यों त्याग दिया था।

१. भण्डारकर, *Ind. Ant.*, 1913, p. 160.

शक-कुषाण नरेशों तथा अन्य दूसरे विदेशी राजाओं से समुद्रगुप्त को उपहार में कन्यायें मिली थीं। चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने नागवंश[1] की राजकुमारी कुबेरनागा से विवाह किया था तथा उससे प्रभावती नामक एक कन्या हुई थी, जिसका विवाह बरार तथा उसके आसपास के जिलों के शासक वाकाटक-नरेश रुद्रसेन-द्वितीय से हुआ था। डॉ० स्मिथ[2] के अनुसार वाकाटकों की भौगोलिक स्थिति उत्तरी नरेशों के गुजरात और सौराष्ट्र के शक-क्षत्रपों पर नये अभियान के लिए विजय अथवा पराजय, दोनों के लिहाज से बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती थी। चन्द्रगुप्त ने अपनी पुत्री का विवाह वाकाटक-राजा से करके उसे अपने अधीन कर अपनी कूटनीतिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया।

पश्चिमी क्षत्रपों के विरुद्ध छेड़े गये अभियान में वीरसेन-शाब सम्राट् विक्रमादित्य के साथ थे, जैसा कि उदयगिरि-गुफा-अभिलेख से ज्ञात होता है। "विश्व-विजयाकांक्षी महाराज चन्द्रगुप्त के साथ वे (शाब) भी यहाँ (पूर्वी मालव) आये थे।" वीरसेन-शाब पाटलिपुत्र के निवासी थे। वंश-परम्परागत रूप में वीरसेन-शाब चन्द्रगुप्त-द्वितीय के मंत्री थे, तथा राजा ने उन्हें युद्ध और शान्ति विभाग का अध्यक्ष बना रखा था। अतः जब पश्चिमी अभियान आरम्भ हुआ तो स्वाभाविक था कि वीरसेन-शाब सम्राट् के साथ युद्धभूमि में गये। सम्राट् समुद्रगुप्त द्वारा पहले से ही अधिकृत पूर्वी मालव को शकों के विरुद्ध किये जाने वाले सैनिक-अभियान का अभियान-स्थल बनाया गया। साँची तथा उदयगिरि के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने पूर्वी मालव में विदिशा अथवा उसके निकट अपने बहुत से मंत्रियों, सेनानायकों तथा अधीनस्थ राजाओं को एकत्रित किया। इनमें से कुछ का उल्लेख सन् ४०२ से ४१३ ई० तक के रिकार्डों

---

१. देखिये *JASB*, 1924, p. 58—नागकुलोत्पन्ना। जैसा कि अन्य लेखकों ने लिखा है, यह भी सम्भव है कि चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य ने वैजयंती के कदम्बों अथवा कुंतल के बनवासी अथवा कनेरियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया हो। भोज तथा क्षेमेन्द्र का मत है कि कुन्तल में विक्रमादित्य ने अपना दूत भेजा था (*Proceedings of the Third Oriental Conference*, p. 6)। कदम्ब-वंश के काकुस्थवर्मन ने अपनी कन्याओं का विवाह गुप्त-वंश के सम्राटों से तो किया ही था, अन्य सम्राटों से भी किया था (देखिये तालगुन्द-अभिलेख; *Ep. Ind.*, VIII, 33 ff ; *IHQ*, 1933, 197 ff)।

2. *JRAS*, 1914, p. 324.

में मिलता है। शक-नरेशों के विरुद्ध किया गया अभियान बहुत सफल रहा। बाण ने भी शक-क्षत्रप के पतन का उल्लेख किया है। उसके राज्य को साम्राज्य में मिला लिये जाने की सूचना मुद्राओं से भी मिलती है।[१]

साम्राज्य के मुख्य-मुख्य नगर

गुप्त-साम्राज्य का सर्वप्रथम प्रसिद्ध नगर पाटलिपुत्र 'पुष्पनगर' था, जहाँ अपनी महान् विजयों के बाद सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपनी वीणा के साथ विश्राम किया था। यहीं से उसके 'युद्ध तथा शान्ति' का मंत्री पूर्वी मालव पर आक्रमण के समय सम्राट् के साथ गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि सन् ४०२ ई० के के बाद चन्द्रगुप्त ने पूर्वी मालव में पहले विदिशा और फिर अपनी पश्चिमी विजयों के बाद उज्जैन को अपना निवास-स्थान बनाया। कुछ कनेरी शासक जो अपने को चन्द्रगुप्त का वंशज बताते हैं, के अनुसार चन्द्रगुप्त उत्तम नगरी उज्जैन के स्वामी (उज्जयिनी-पुरवर अधीश्वर) तथा उत्तम नगरी पाटलिपुत्र के स्वामी (पाटलिपुरवर-अधीवर) थे। आर० जी० भण्डारकार ने चन्द्रगुप्त-द्वितीय को उज्जैन का 'विक्रमादित्य-शकारि' (साहस में सूर्य के समान तथा शकों का दमन करने वाला)[२] बताया है। वास्तव में चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर

१. सम्भवतः गरुड़छाप रजत-मुद्राएँ, जिनमें 'परम-भागवत लिखा था, सौराष्ट्र में बनी थीं। कुछ मुद्राओं पर तिथि ६० (= सन् ४०६ ई०; *EHI*, th4 ed., p. 345) अंकित थी। अपने पिता की तरह चन्द्रगुप्त ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था (*IHQ*, 1927, p. 725)। बनारस के निकट नागवा ग्राम में पत्थर का बना एक अश्व मिला है, जिस पर 'चन्द्रगुप्त' लिखा है। अश्व कदाचित् इसी समय बनवाया गया हो। परन्तु, अब तक प्राप्त किसी भी लेख अथवा मुद्रा से यह तथ्य प्रमाणित नहीं होता।

२. साहित्य में विक्रमादित्य को पाटलिपुत्र (कथा-सरित्सागर, VII, 4.9—विक्रमादित्य इत्यासिद्राजा पाटलिपुत्रके), उज्जयिनी और अन्य नगरों का शासक कहा गया है। काव्य-मीमांसा (3rd ed., p. 50) में लिखा है कि साहसांक ने आज्ञा दे रखी थी की उसके अन्तःपुर में संस्कृत का प्रयोग हो। इस प्रकार उसने आढ्यराज (p. 197) अथवा कुन्तल के सातवाहन की नीति में आमूल परिवर्त्तन कर दिया। देखिये—सरस्वती कंठाभरण, II, 15 का एक पद—

श्रीविक्रमः, सिंहविक्रमः, अजित-विक्रमः, विक्रमांक तथा विक्रमादित्य आदि उपाधियाँ मिलती हैं।[1]

चन्द्रगुप्त के समय में उज्जयिनी (जिसे विशाला, पद्मावती, भोगवती, तथा हिरण्यवती भी कहते थे)[2] की क्या दशा थी, इसका विशद वर्णन आज भी उपलब्ध

केऽभून्न आढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः
काले श्री साहसाङ्कस्य के न संस्कृतवादिनः।

उज्जैन में हुई काव्यकारों की प्रतिद्वन्द्विता में कालिदास, अमर, भारवि आदि के साथ चन्द्रगुप्त का भी उल्लेख मिलता है (काव्य-मीमांसा, p. 55)। 'वसुबन्धु' के जीवनी-लेखक परमार्थ के अनुसार विक्रमादित्य की राजधानी अयोध्या थी, जब कि ह्वेनसांग के अनुसार श्रावस्ती (*EHI*, 3rd ed., p. 332-33)। सुबन्धु ने विक्रमादित्य की प्रसिद्धि तथा उसकी लोकप्रियता आदि की तो चर्चा की है, परन्तु उसकी राजधानी के विषय में कुछ नहीं कहा। "किसी झील के समान विक्रमादित्य ने इस संसार को त्याग दिया, परन्तु अपनी प्रसिद्धि यहीं रहने दी" (Keith, *History of Sanskrit Literature*, p. 312; *Cf.* Hala, v. 64)।

१. नाम एवं उपाधि — **मुद्राओं का आकार-प्रकार**

श्री विक्रम...... { (सोने की) तीर-कमान के समान / (सोने की) शंख के समान

विक्रमादित्य......(सोने की) क्षत्र के समान

रूपकृती.........(सोने की) कोच के समान

सिंहविक्रम, नरेन्द्र चन्द्र, नरेन्द्र सिंह, सिंह चन्द्र } (सोने की) सिंह का वध करने वाला

अजीत विक्रम परमभागवत...(सोने की) घुड़सवार के समान

परमभागवत, विक्रमादित्य, विक्रमांक...(रजत की) गरुड़ के समान

विक्रमादित्य, महाराज, चन्द्र...(ताँबे की) गरुड़, क्षत्र तथा कलश के समान

२. त्वानी का अनुवाद—मेघदूत (I, 31) तथा कथासरित्सागर (Vol. II, p. 275)। सातवीं शताब्दी में उज्जयिनी के सम्बन्ध में देखिये—Beal, *H. Tsang*, p. 270; Ridding, कादम्बरी, pp. 210 ff.

नहीं है। परन्तु सन् ४०५ से ४११ ई० तक मध्य भारत का भ्रमण करने वाले फ़ाह्यान ने पाटलिपुत्र के बारे में बहुत कुछ लिखा है। इस यात्री ने अशोक के राजमहल तथा नगर के मध्य स्थित, अब तक पुराने पड़ चुके विशाल कक्ष के सम्बन्ध में लिखा है—"अशोक द्वारा नियुक्त परियों तथा देवदूतों द्वारा यहाँ की दीवालों, तोरणों और पत्थरों पर की गई नक़्क़ाशी आदि की दृष्टि से वास्तव में यह नगर इतना सुन्दर है कि विश्वास ही नहीं होता कि साधारण मनुष्यों ने इसका निर्माण किया होगा।" "यहाँ के निवासी धनी तथा समृद्धिशाली हैं तथा दयालुता एवं सन्मार्ग के कार्यों में एक दूसरे से बढ़ जाने की स्पर्धा रखते हैं। प्रत्येक वर्ष, दूसरे मास के आठवें दिन मूर्त्तियों का एक जुलूस निकलता है। वैश्य-वंश के बड़े-बूढ़े निःशुल्क चिकित्सा तथा चिकित्सालयों का प्रबन्ध करते हैं।" पूर्वी समुद्र तट का मुख्य बन्दरगाह 'ताम्रलिप्ति' अथवा 'तामलुक' पश्चिमी-बंगाल में था जहाँ से लंका तथा जावा (जो उस समय ब्राह्मण-धर्म के केन्द्र थे) एवं चीन को जल पोत रवाना होते थे।

फ़ाह्यान के विवरणों तथा अब तक के उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के शासन-प्रबन्ध पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। मध्यवर्त्ती राज्य और गंगा की उत्तरी घाटी के संबंध में फ़ाह्यान का कथन है--"यहाँ की जनसंख्या बहुत है तथा लोग खुशहाल हैं। उन्हें अपने घरेलू सामान की रजिस्ट्री आदि कराने अथवा अदालतों में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। जो लोग राजा की भूमि पर खेती करते हैं, केवल उन्हीं को कर देना पड़ता है। वैसे वे कहीं भी आने-जाने के लिए स्वतंत्र हैं। राजा प्रजा पर बिना किसी शारीरिक दंड के शासन करता है। परिस्थितियों तथा अपराध के अनुसार कभी कम और कभी अधिक जुर्माना किया जाता है। बार-बार विद्रोह आदि करने पर केवल दाहिना हाथ काट दिया जाता है। राजा के अंगरक्षकों तथा सेवकों को वेतन मिलता है। सम्पूर्ण राज्य में कोई भी जीवित पशु-पक्षी की हत्या नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मादक वस्तुओं के सेवन तथा लहसुन, प्याज आदि के प्रयोग पर भी प्रतिबन्ध है। परन्तु, चांडाल इनका प्रयोग करते हैं। वस्तुओं के क्रय-विक्रय मे कौड़ियों[1] का प्रयोग होता है।" अंतिम उल्लेख फ़ाह्यान ने इसलिए किया है कि उसे छोटी-मोटी वस्तुएं लेनी होती थीं,[2] बड़ी-बड़ी वस्तुओं का क्रय नहीं करना

१. Legge.

२ Allan.

पड़ता था, अतः उसे सोने की मुद्राओं का पता नहीं था। अभिलेखों[1] में 'दीनार' तथा 'स्वर्ण' का उल्लेख मिलता है। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय मुद्रायें सामान्यतया प्रचलित थीं।

इन्हीं लेखों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय एक कुशल शासक था। यद्यपि वह कट्टर वैष्णव (परम-भागवत) था, फिर भी प्रत्येक धर्मवालों को ऊँचे से ऊँचे पदों पर नियुक्त करता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका सेनानायक सैकड़ों युद्धों का विजेता और यशस्वी आम्रकार्द्दव बौद्धधर्म का अनुयायी था। युद्ध तथा शान्ति का मंत्री शाब-वीरसेन तथा कदाचित् एक और मंत्री शिखरस्वामिन शैवधर्म के उपासक थे।

सरकारी शासन के कौन-कौन से अंग थे, इस सम्बन्ध में हमें ज्यादा कुछ नहीं मालूम। फिर भी, प्राप्त अभिलेखों से इतनी जानकारी तो मिलती ही है कि मौर्य-काल की भाँति इस काल में भी राजा ही साम्राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था और अपने उत्तराधिकारी को स्वयं चुनता था। राजा को देवपुरुष (अचिन्त्य पुरुष), कुबेर, यम, वरुण तथा इन्द्र के समान (धनद-वरुणेन्द्रान्तक-सम) इस पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता (लोकधाम-देव) अथवा सबसे महान् देवता (परम दैवत) के नाम से सम्बोधित किया जाता था। उसकी सहायता के लिए उच्च कोटि की मंत्रि-परिषद् होती थी। मंत्रियों का पद प्रायः उत्तराधिकार-प्राप्त होता था, जैसा कि शाब के उदयगिरि-अभिलेख[2] (अन्वय-प्राप्त साचिव्य)

---

१. चन्द्रगुप्त-द्वितीय ने रजत और ताँबे की मुद्रायें भी प्रचलित कराईं। रजत-मुद्रायें मुख्य रूप से पश्चिमी प्रान्तों के लिये थीं जिन्हें उसने शक-क्षत्रपों से जीता था। लेकिन, पश्चिमी बंगाल के अभिलेख में इन मुद्राओं का उल्लेख उसके पुत्र के शासन-काल में भी मिलता है। उदाहरण के लिए, १२८वें वर्ष (४४८ ई०) के बैग्राम-अभिलेख में 'दीनार' के साथ-साथ रूपक का भी उल्लेख मिलता है (*Cf.* Allan, p. cxxvii)। चन्द्रगुप्त-द्वितीय द्वारा मुद्रित ताम्र-मुद्रायें अधिकतर अयोध्या के आसपास पायी जाती हैं (Aallan, p. cxxxi)।

२. महादंडनायक हरिषेण महादंडनायक ध्रुवभूति के पुत्र थे। मंत्री पृथिवीषेण मंत्री शिखरस्वामिन के पुत्र थे। इसी प्रकार मन्दसौर, सुराष्ट्र आदि में पैतृकता से प्राप्त गवर्नर (गोप्तृ) पद भी देखिये। मौर्य-काल में ऐसी स्थिति नहीं थी। अशोक के शासन-काल में सुराष्ट्र का राज्यपाल तुषास्फ़ था, परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-काल में पुष्यगुप्त; और, इन दोनों के बीच कोई भी रक्त-सम्बन्ध नहीं था।

से ज्ञात होता है। मंत्रि-परिषद् में मुख्य-मुख्य मंत्री—मंत्रिन्, सम्भवतः प्रधान मंत्री सांधिविग्रहिक, युद्ध और शान्ति मंत्री; अक्षपटल-अधिकृत, गृहमंत्री आदि होते थे। कौटिल्य के 'मंत्रिन्' की तरह गुप्त-काल का 'सांधिविग्रहिक' राजा के साथ युद्ध में जाया करता था। शिवाजी के 'प्रधानों' की तरह ही उसके सैनिक और असैनिक अधिकारियों के कार्यों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं था। एक ही व्यक्ति सांधिविग्रहिक (युद्ध और शांति मंत्री), कुमारामात्य और महादण्डनायक (सेनापति) हो सकता था। इसी प्रकार मंत्रिन् (प्रधान मंत्री) महाबलाधिकृत (सर्वोच्च सेनाध्यक्ष) भी हो सकता था।

इस बात का हमें स्पष्ट पता नहीं है कि गुप्त-सम्राटों के यहाँ सर्वोच्च मंत्रि-परिषद्[1] होती थी या नहीं ? परन्तु, स्थानीय परिषदों (उदाहरणार्थ, उदानकूप परिषद्) की व्यवस्था अवश्य थी। ब्लॉच द्वारा ढूंढ़ निकाली गयी बसाढ़-सील से इसकी पुष्टि होती है।

सम्पूर्ण साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभाजित था, जिन्हें 'देश', 'भुक्ति' आदि कहते थे। ये प्रान्त अनेक ज़िलों (प्रदेशों अथवा विषयों)[2] में बँटे थे। 'देशों' के सम्बन्ध में गुप्त-अभिलेख से 'शुकुलि-देश' का पता चलता है। सौराष्ट्र (काठिया-वाड़), डभाला (जबलपुर-क्षेत्र, बाद के समय का डाहल या चेदि) तथा पूर्वी मालव की सीमा से लगा हुआ जमुना तथा नर्मदा के बीच का क्षेत्र—ये सभी सम्भवतः इसी कोटि में आते हैं।

गुप्त-काल तथा गुप्त-वंश की समाप्ति के प्रारम्भिक काल में हमें पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल), वर्धमान भुक्ति (पश्चिमी बंगाल), तीर भुक्ति (उत्तरी बिहार), नगर भुक्ति (दक्षिणी बिहार), श्रावस्ती भुक्ति (अवध) और अहिच्छत्र भुक्ति (रुहेलखण्ड)—इन सभी भुक्तियों के गंगा की घाटी में स्थित होने का उल्लेख मिलता है। 'प्रदेशों' अथवा 'विषयों' में लाट विषय (गुजरात), त्रिपुरी विषय (जबलपुर-क्षेत्र), ऐरिकिन (पूर्वी मालव) आदि (ये समुद्रगुप्त के एरण-अभिलेख के अनुसार 'प्रदेश' तथा तोरमाण के अनुसार 'विषय' कहे जाते थे)।

---

१. बिल्सड-अभिलेख (*CII*, 44) में '(पा) र्षद' का उल्लेख मिलता है। परन्तु, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर इसे 'केन्द्रीय राजनीतिक परिषद्' कहा जा सके। इलाहाबाद-स्तम्भ-लेख में जिन 'सभ्यों' का उल्लेख है, वे सम्भवतः केन्द्रीय, मंत्रि-परिषद् के सदस्य थे।

२. 'वीथी' नामक एक दूसरी क्षेत्रीय इकाई का पता चलता है।

इसी प्रकार अन्तर्वेदी (गंगा का दोआब), वाल्वी (?) (गया), कोटिवर्ष (उत्तरी बङ्गाल का दीनाजपुर-क्षेत्र), महाखुशापार (?), खाडाटापार (?) और कुण्डधारिण आदि प्रदेश थे।[१]

'देश' के शासक को 'गोप्तृ' कहते थे, जैसा कि इस वाक्य से हमें पता चलता है—"सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्," "सारे 'देशों' में गोप्तृयों की नियुक्ति की।" 'भुक्ति' के शासक को 'उपरिक' अथवा 'उपरिक महाराज' कहा जाता था। इस पद पर अधिकांशतः राजवंश के राजकुमार ही नियुक्त किये जाते थे। उदाहरण के लिए, दामोदरपुर-लेख में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के राज्यपाल को 'राजपुत्र-देव-भट्टारक' कहा गया है, जबकि बसाढ़-सील[२] में तीर भुक्ति के राज्यपाल गोविन्दगुप्त, तथा मध्य भारत के तुमैन के राज्यपाल कदाचित् घटोत्कचगुप्त का उल्लेख मिलता है। 'विषयपति' अथवा ज़िलाधीश प्रायः 'कुमारामात्य' तथा 'आयुक्तक'[३] अथवा एरण-अभिलेख के अनुसार मातृविष्णु जैसे सामन्त भी होते थे। अन्तर्वेदी'[४] के शर्वनाग आदि जैसे कुछ विषयपति सीधे सम्राट् के अधीन थे, जबकि कोटिवर्ष, ऐरिकिन, त्रिपुरी आदि के विषयपति राज्यपाल के अधीन काम करते थे। राज्यपालों एवं ज़िलाधीशों के कार्यों में 'दाण्डिक', 'चौर-ओद्धरणिक' तथा 'दण्डपाशिक'[५] (कानून तथा पुलिस विभाग) सहायता करते थे। इनके अतिरिक्त 'नगर-श्रेष्ठ, (नगर-वृद्ध), सार्थवाह, प्रथम कुलिक, प्रथम कायस्थ, पुस्तपाल आदि अन्य अधिकारी थे। प्रत्येक 'विषय' में अनेक ग्राम

---

१. *Book of the Gradual Sayings* (I. 18 N) में 'कुण्डधान' नामक ग्राम का वर्णन है।

२. मालव के ५२४ विक्रमी के मंदसौर-लेख से गोविन्दगुप्त का पता चलता है (Garde, *ASI*, Annual Report, 1922-23, p. 187; *Cal. Rev.*, 1926, July, 155; *Ep. Ind.*, xix, App. No. 7; xxvii, 12 ff) । इसमें उसके 'सेनाधिप' अथवा नायक वायुरक्षित तथ वायु के पुत्र दत्तभट, राजा प्रभाकर (४६७-६८ ई०) के मुख्य सेनापति का भी उल्लेख मिलता है।

३. वे 'वीथियों' अथवा छोटी-छोटी इकाइयों के शासक थे।

४. पंचनगरी (उत्तरी बङ्गाल) के कुलवृद्धि, *Ep. Ind.*, xxi, 81.

५. देखिये—'दन्दोआसी', ग्राम की देखभाल करने वाला, *JASB*, 1916,30.

हुआ करते थे जिनकी देखभाल करने वाले को 'ग्रामिक', 'महत्तर' तथा 'भोजक'[1] कहा जाता था।

सम्राट् के राज्य के बाहर इलाहाबाद-प्रशस्ति तथा रिकार्डों में उल्लिखित अधीनस्थ राज्य और प्रजातंत्र स्थित थे। बसाढ़-सील के द्वारा तीर भुक्ति (तिरहुत उत्तर बिहार) के प्रान्तीय तथा नागरिक शासन और अर्थ-व्यवस्था के बारे में काफ़ी प्रकाश पड़ता है। इस प्रान्त के शासक, राजकुमार गोविन्दगुप्त सम्राट् तथा महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी के पुत्र थे और उनकी राजधानी वैशाली थी। बसाढ़-सील में उपरिक (राज्यपाल), कुमारामात्य (सेनामंत्री)[2] महाप्रतिहार (सुरक्षाधिकारी), तलवर

---

१. शूद्रक-कृत 'मृच्छकटिक' (Act IX), जिसकी रचना सम्भवतः महाकवि बाण और वामन (८वीं शती) के बीच कभी हुई होगी, के अनुसार 'श्रेष्ठिन्' तथा 'कायस्थ' भी इनके साथ थे। 'व्यवहार-मंडप' तथा 'नगर-रक्षाधिकृत' की सहायता के लिये 'अधिकरण-भोजक' तथा 'महत्तरक' आदि हुआ करते थे। विशाखदत्त की 'मुद्राराक्षस', जो सम्भवतः राजशेखर, दशरूपक तथा भोज आदि के समय में लिखी गई थी, में वामन (मौखरी अथवा उत्पल वंश के अवन्तिवर्मन नहीं) तथा दन्तिवर्मन (राष्ट्रकूट अथवा पल्लव वंश के), जिनका उल्लेख 'भरत-वाक्य' में बार-बार आता है, कायस्थ, दण्डपाशिक आदि का उल्लेख करते हैं। ग्राम-अधिकारी-वर्ग साधारणतया 'विषयपति' अथवा 'ज़िला-अधिकारी' के नीचे कार्य करता था। परन्तु, कभी-कभी विशेष परिस्थिति में वह 'उपरिक' अथवा 'भुक्ति' के राज्यपाल से भी शासन-सम्बन्धी कार्यों में भी सीधे सम्पर्क स्थापित करता था (*Ep. Ind.*, XV, 136)।

२. इसके निम्नलिखित अर्थ हैं: (१) 'कुमारामात्य' (राजकुमार का मंत्री), 'राजामात्य' (राजा के मंत्री) से भिन्न होता था; (२) सी०बी० वैद्य (*Med. Hisd. Ind.*, I, 138) के अनुसार राजकुमारों की निगरानी में मंत्री; (३) कोई ऐसा सहायक मंत्री जिसका पिता जीवित हो तथा (४) वह, जो अपनी युवावस्था से ही मंत्री रहा हो। परंतु *Ep. Ind.* (X, 49; XV, 302 f) के अनुसार कुमारामात्य, जैसा कि एक लेखक ने लिखा है, दो भागों में विभक्त थे—अर्थात् (१) युवराज-पादीय—वे जो युवराज की सेवा में थे तथा (२) परम भट्टारकपादीय—वे जो राजा की सेवा में थे। इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि ये मंत्री राजकुमारों की देखभाल के लिये होते थे। फिर भी देखिये—Penzer, I, 32; III, 136. वास्तव में अनुमान यह है कि 'कुमारामात्य' में 'कुमार' शब्द दक्षिण के 'पिन', 'चिक्क', 'इम्मदि', 'इलय' आदि का पर्यायवाची तथा 'पेद' का विलोम था। गुप्त-

(स्थानीय अध्यक्ष)[1], महादण्डनायक (मुख्य सेनाध्यक्ष), विनयस्थिति[2] स्थापक[3] (सेन्सर अधिकारी ?), भटाश्वपति (अश्वाधिकारी), युवराज-पादीय कुमारामात्य-आधिकरण (युवराज-कार्यालय), रणभाण्डागार-आधिकरण[4] (युद्धकोष-कार्यालय), दण्डपाश-आधिकरण (मुख्य पुलिस-कार्यालय), तीरभुक्ति उपारिक-आधिकरण (तीरभुक्ति-राज्यपाल-कार्यालय), तीरभुक्तौ विनयस्थिति-स्थापक-आधिकरण (तीरभुक्ति-सेन्सर-कार्यालय), वैशाली-आधिष्ठान-आधिकरण (वैशाली के शासक का कार्यालय), श्री परम-भट्टारक-पादीय कुमारामात्य-आधिकरण[5], आदि का उल्लेख मिलता है।

उदानकूप की परिषद् के उल्लेख से ज्ञात होता है कि परिषद् का स्थानीय शासन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये बड़ा ही रोचक होगा, यदि वे 'श्रेष्ठि-सार्थवाह कुलिक-निगम' का भी अध्ययन करें।

चन्द्रगुप्त-द्वितीय की कम से कम दो रानियाँ थीं---एक ध्रुवदेवी तथा दूसरी, कुबेरनागा। ध्रुवदेवी गोविन्दगुप्त तथा कुमारगुप्त-प्रथम की माता थी।[6] दूसरी रानी से प्रभावती नामक एक कन्या थी, जिसका विवाह वाकाटक-राजा से हुआ था।

काल में कुमारामात्य अधिकतर ज़िला-अधिकारी के पद पर काम करते थे। इस पद पर कार्य करने वाले को नायक, मंत्री तथा विदेश-मन्त्री का भी कार्य करना होता था।

१. देखिये—समरसिंह के चीरवा-अभिलेख में 'तलार'।

२. डॉ० बसाक के अनुसार 'विनय-स्थिति' का अर्थ शान्ति-व्यवस्था है (*The History of North-Eastern India*, p. 312)।

३. नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के प्रारम्भकर्त्ता को 'स्थापक' कहते थे। (Keith, *Sanskrit Drama*, p. 340)। यहाँ इसका दूसरा ही अर्थ है।

४. 'रण-भाण्डागार' के अनुसार अर्थ-विभाग की अगली सेना थी जो मुख्य सेना से भिन्न होती थी।

५. राज्य-अधिकारी तथा प्रान्तीय राज्यपाल के अधिकारियों में भी अंतर था। यही नहीं, तीरभुक्ति के अधिकारियों का कार्य वैशाली के अधिष्ठान से भिन्न होता था।

६. वामन की 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' में उद्धृत एक दोहे में चन्द्रगुप्त के एक पुत्र को भूपति (राजा) चन्द्रप्रकाश कहा गया है (*JASB*, Vol. I, NO. 10. [N. S.] 1905, 253 ff)। परन्तु, इस 'चन्द्र' गुप्त के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह चन्द्रगुप्त वास्तव में विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त-द्वितीय) ही था, यह वामन के द्वारा वसुबन्धु (अथवा सुबन्धु) की दी हुई तिथि पर निर्भर करता है। साथ ही यह भी निर्णय करना है कि यह वही बौद्ध-भिक्षु था, जिसका जीवन-

प्रभावती के पुत्रों का नाम दिवाकरसेन, दामोदरसेन, प्रवरसेन-द्वितीय (अथवा तृतीय) था। कनेरी के कुछ शासकों ने अपने को चन्द्रगुप्त का वंशज कहा है। इन लोगों की उत्पत्ति की खोज विक्रमादित्य के दक्षिण-अभियान से सम्बन्ध रखती है।[1]

चरित्र परमार्थ (सन् ५००-६६ ई०) ने लिखा है। परमार्थ उज्जयिनी के भारद्वाज-गोत्र के ब्राह्मण-कुल से सम्बन्धित थे। कुछ समय तक वे मगध में रहे, फिर चीन (५४६-६६ ई०) चले गए। उनके अनुसार कौशिक-गोत्रीय ब्राह्मण-वंश में वसुबन्धु का जन्म पुरुषपुर (पेशावर) में हुआ था। विक्रमादित्य (*JRAS*, 1905, 33ff) के पुत्र बालादित्य के अनुरोध पर ये अयोध्या गये। वसुबन्धु के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिये देखिये—*Indian Studies in Honour of C. R. Lanman*, 79 ff.

१. राजशेखर 'काव्य-मीमांसा' तथा भोज 'श्रृङ्गार-प्रकाशिका' में कहते हैं कि विक्रमादित्य ने कालिदास को कुन्तल-नरेश के यहाँ राजदूत बनाकर भेजा था। "क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य-विचार-चर्चा' में कालिदास के कुन्तेश्वर-दौत्य का उल्लेख किया है" (*Proceedings of the Third Oriental Conference*, 1924, p. 6)। तालगुन्द-अभिलेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त-सम्राटों ने कुन्तल से सम्बन्ध स्थापित किया था। साथ ही इस अभिलेख से यह भी विदित होता है कि कनेरी प्रदेश के एक कदम्ब शासक ने अपनी कन्याओं का विवाह गुप्त एवं अन्य राजाओं के साथ किया था। कुमारगुप्त-प्रथम की कुछ मुद्रायें सतारा जिले में भी मिली हैं (Allan, p. cxxx), जिससे अनुमान होता है कि गुप्त-सम्राटों का प्रभाव देश के दक्षिणी-पश्चिमी भाग पर था। राजशेखर, भोज तथा क्षेमेन्द्र ने कालिदास के सम्बन्ध में जो कहा है, उस पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि जनश्रुति के अनुसार गुप्त-काल के प्रारम्भिक दिनों में वे थे। उनके महाराजाधिराज विक्रमादित्य (शकाराति), दिग्नाग तथा वाकाटक-वंशीय राजा प्रवरसेन (महाराष्ट्री प्राकृत में लिखे गये 'सेतुबन्ध' काव्य के रचयिता), आदि के समकालीन होने के सम्बन्ध में देखिये—अभिनन्द, रामचरित, ch. 32; हाल, गाथासप्तशती, भूमिका, p. 8; तथा अन्य कृतियाँ। और भी देखिये—*Proceedings of the Seventh Oriental Conference*, 99 ff; मल्लिनाथ, मेघदूत की टीका, I, 14; *Ind. Ant.*, 1912, 267; *JRAS*, 1918, 118f. मिराशी ने अभी कुछ समय पूर्व ही कहा है कि प्रवरसेन-द्वितीय के पत्तन-प्लेट से ज्ञात हुआ है कि कालिदास राजाज्ञा लिखने का कार्य करते थे (*Ep. Ind.*, 1935, xxiii, pp. 81 ff), किन्तु राजाज्ञा-लेखक और महान् कवि कालिदास एक ही थे, यह अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

विष्णुवृद्ध गोत्र के वाकाटकों की वंशावली

विन्ध्यशक्ति-प्रथम (द्विज)

महाराज प्रवरसेन-प्रथम[1] भवनाग (भारशिव, पद्मावती (?) के राजा[2])

सर्वसेन * गौतमीपुत्र — पुत्री

विन्ध्यशक्ति-द्वितीय धर्म महाराज (वत्सगुल्म अथवा दक्षिण बरार में बेसिन) समुद्रगुप्त महाराज रुद्रसेन-प्रथम (देवटेक)

महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त-द्वितीय महाराज पृथिवीषेण-प्रथम[3]

प्रवरसेन-द्वितीय (?) प्रभावती अग्रमहिषी — महाराज रुद्रसेन-द्वितीय

पुत्र युवराज दिवाकरसेन दामोदरसेन (रामगिरि) प्रवरसेन-द्वितीय (तृतीय)[4]

देवसेन नन्दीवर्धन[5] सुप्रतिष्ठाहार अज्झित भट्टारिका (कुन्तल की राजकुमारी) — नरेन्द्रसेन[6]

हरिषेण[7] (हस्तिभोज उसका मंत्री था) पृथिवीषेण-द्वितीय (वेमबार) (नलों से उसने अपने डूबे हुए वंश को उठाया)
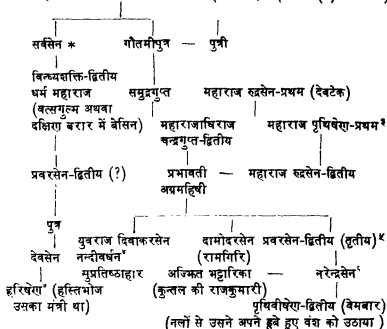
* इसका अर्थ यह नहीं है कि सर्वसेन दोनों भ्राताओं में ज्येष्ठ था। यह बात तभी निश्चित की जा सकती है जब इस पर थोड़ा प्रकाश पड़े।

१. उसने चार अश्वमेध यज्ञ किये तथा उसे 'महाराज' अथवा 'सम्राट्' कहा जाता था। उसकी राजधानी 'कांचनकापुर' से हमें दूदिया-प्लेट के हिरण्यपुर (हीरपुर ? सागर की SSE) की याद आती है (*Ep. Ind.*, III, 258 ff)। इस नाम को 'पुरिका' तथा 'चनका' के रूप में विकृत करना उचित नहीं है।

२. *J. Num. Soc.*, v, pt. ii, p. 2; *Coins and Identity of Bhavanagar* (Altekar)।

३. 'धर्म-विजयी' वह होता था, जिसका 'कोष-दण्ड-साधन' १०० वर्षों से एकत्र हो रहा हो।

४. रामटेक के पास नगरधन से सम्बन्धित (हीरालाल-अभिलेख, सं० ४; *Tenth Or. Conf.*, p. 458)। परन्तु अन्य उसे रामटेक के उत्तर-पूर्व में घुघुसगढ़ के निकट स्थित नन्दपुर बताते हैं (Wellsted, *Notes on the Vakatakas*, *JASB*, 1933, 160 f)।

५. प्रवरपुर, चर्माङ्क तथा कुछ अन्य राज्यों, जैसे उत्तरी बरार के भोजकट, पूर्वी बरार के आरम्भी, वर्धा-क्षेत्र के शासक। कुछ लोग प्रवरपुर को वर्धा जिले का पवनार बताते हैं (*JASB*, 1933, 159)।

६. कोशल मेकल तथा मालव के राजा उसकी आज्ञा मानते थे।

२. कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य

चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उत्तराधिकारी कुमारगुप्त-प्रथम[1] महेन्द्रादित्य[2] थे जिनकी तिथि सन् ४१५ ई० से ४५५ ई०[3] मानी जाती है। विभिन्न और दूरस्थ स्थानों से प्राप्त उसके अभिलेख एवं मुद्राओं से पता चलता है कि मध्य और सुदूर पश्चिमी प्रान्तों के साथ ही अपने पिता के सम्पूर्ण विशाल राज्य को कुमारगुप्त ने सुरक्षित रखा।[4] उसका एक प्रतिनिधि-चिरादत्त

----

१. ५२४ वर्ष के मंदसौर-अभिलेख (मालव) से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त का प्रतिद्वन्द्वी उसका भाई गोविन्दगुप्त था। इसमें इन्द्र [विवुधाधिप (कुमार ?), जिसे मुद्राओं में श्री महेन्द्र तथा महेन्द्रकर्मा कहा गया है] गोविन्द की शक्ति के प्रति ईर्ष्यालु था (*Ep. Ind.*, XIX, App. N0.7 and n. 5; *Ep.*, xxvii. 15)।

२. तीर-धनुष के आकार वाली मुद्राओं में 'श्रीमहेन्द्र'; अश्वमेध वाली मुद्राओं में 'अश्वमेध महेन्द्र'; घुड़सवार-छाप मुद्राओं में 'महेन्द्रवर्मा', 'अजित महेन्द्र'; सिंह-वध-छाप मुद्राओं में 'सिंह महेन्द्र', 'श्री महेन्द्र सिंह'; मोर-छापवाली मुद्राओं में 'महेन्द्र कुमार'; तुमेन-अभिलेख में 'महेन्द्र कल्प'; (सिंह-वध वाली मुद्राओं में) 'सिंहविक्रम' आदि नामों से भी कुमारगुप्त सम्बोधित किया जाता था (Allan, *Gupta Coins*, p. 80)। 'व्याघ्रबल-पराक्रम' (चीता-वधवाली मुद्राओं पर) तथा 'श्री प्रताप' के नाम से भी उसे सम्बोधित किया गया है। तलवार धारण किये हुए, सोने की मुद्राओं में, तथा गरुड़ वाली, ताँबे की एवं कदाचित् सिंहवाहिनी मुद्राओं में महाराज को केवल 'श्री कुमारगुप्त' कहा गया है। सुराष्ट्र में बनी चाँदी की मुद्राओं में उन्हें 'महेन्द्रादित्य परमभागवत' कहा गया है।

३. तिथि ९६ (=४१५ ई०) बिसलर-अभिलेख में तथा तिथि १३६ (= ४५५ ई०) रजत-मुद्राओं (*EHI*, 4th ed., p. 315-46) पर पाई जाती है। एरण-अभिलेख में समुद्रगुप्त की सत्यनिष्ठा एवं पतिव्रता पत्नी का उल्लेख है। साथ ही अनेक पुत्रों एवं पौत्रों की भी चर्चा मिलती है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि कुमारगुप्त तथा उसके अन्य भाइयों का जन्म समुद्रगुप्त के सामने ही हुआ था। कुमारगुप्त का राज्याभिषेक लगभग ३५ वर्ष की उम्र में हुआ था। उन्होंने लगभग ४० वर्षों तक शासन किया। अतः उनकी मृत्यु ७५ वर्ष की उम्र में हुई होगी।

४. एलन के अनुसार मोर-छापवाली रजत-मुद्राओं से इस बात की पुष्टि हो जाती है (देखिये आर्यमित्र की अयोध्या में प्राप्त मुद्रायें; *CHI*, I, 538; और मेघदूत, I, 45) कि उसके साम्राज्य में गंगा-घाटी के मध्य जिले शामिल थे। दूसरी ओर

'पुंड्रवर्धन भुक्ति' (उत्तरी बंगाल)[1] पर राज्य करता था। दूसरा प्रतिनिधि राजकुमार घटोत्कचगुप्त एरण (पश्चिमी मालव में) जिसमें तुम्बवन[2] भी सम्मिलित था तथा तीसरा प्रतिनिधि बंधुवर्मन पश्चिमी मालव में स्थित दशपुर[3] का शासक था। सन् ४३६ ई० के करमदाण्डे-

गरुड़-छाप की मुद्राओं से सिद्ध होता है कि पश्चिमी प्रान्त सम्राट् के अधीन थे। ताँबे के किनारे वाली चाँदी की मुद्रायें वलभी में प्रचलित थीं। त्रैकुटक-मुद्राओं के समान मुद्राएँ स्पष्ट रूप से उत्तरी गुजरात के लिये निश्चित थीं (Allan, pp. xciii ff)।

१. देखिये १२४ तथा १२८ तिथियों के दामोदरपुर-प्लेट (*Ep.*, xvii, 193)। तिथि १२८ (सन् ४४७-४८ ई०) के बैग्राम-अभिलेख से कुलवृद्धि नामक एक कुमारामात्य का पता चलता है, जो पंचनगरी, सम्भवतः करतोया पर पंचगद अथवा पंचबीबी को राजधानी बनाकर एक 'विषय' पर राज्य करता था (*H. Standard* 14-10-47 in North Bengal; *Ep. Ind.*, XXI, 78 ff; Year Book, *ASB*, 1950, 200)। मुल्तानपुर अथवा कलईकुदी अभिलेख (वंगश्री 1350 B. S. वैशाख, pp. 415-51 तथा भाद्र; *IHQ*, XIX, 12), जो सन् ४३६ ई० का है तथा बोगरा जिले में मिलता है, में शृङ्गवेरवीथी में पूर्णकौशिका के अच्युतदास 'आयुक्तक' का उल्लेख मिलता है। सन् ४३२ ई० के नाटोर-अभिलेख (*JPASB*, 1911) से भी सिद्ध होता है कि कुमार का राज्य उत्तरी बङ्गाल में था।

२. ग्वालियर राज्य में, एरण के उत्तम-पश्चिम में ५० मील दूर गुना जिले में तुमेन स्थित है (M. B. Garde, *Ind. Ant.*, xlix, 1920, p. 114; *Ep. Ind.*, xxvi, 1941, pp. 115 ff; ४३५ ई० का तुमेन-अभिलेख)। इस अभिलेख में उल्लिखित राजकुमार, जिसका जिक्र सीलों में पाये जाने वाले घटोत्कच, अथवा मुद्राओं में वर्णित घटोक्रमादित्य के साथ बार-बार हुआ है, कौन था—इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता (Allan, xvi, xl, liv)। हेमचन्द्र (परिशिष्टपर्वन्, xii, 2-3) के अनुसार तुम्बवन अवन्ति देश में है जो जम्बूद्वीप में स्थित पश्चिमी भारत का शृङ्गार है—

इहैव जम्बूद्वीपेऽपाग् भरतार्द्धं विभूषण
अवन्तिरिति देशोऽस्ति स्वर्गदेशीय ऋद्धिभिः
तत्र तुम्बवनमिति विद्यते सन्निवेशनम् ।

३. सन् ४३७-३८ का मंदसौर-अभिलेख Bhide। (*JBORS*, VII, March, 1921, pp. 33 f) का मत है कि गुप्त-अभिलेख, संख्या १७ का विश्ववर्मन एक स्वतंत्र शासक था जो अभिलेख-संख्या १७ के गुप्त-वंश के अपने ही नाम के राज्य-

अभिलेख से ज्ञात होता है कि पहले के मंत्री तथा कुमारामात्य, परन्तु बाद में कुमारगुप्त के शासन-काल में महाबलाधिकृत पृथिवीषेण सम्भवतः अवध में नियुक्त थे। मालव के एक प्रतिनिधि के चारण अनुसार, कुमारगुप्त के साम्राज्य में "वह समस्त भूखण्ड था, जिसके एक ओर समुद्र था, दूसरी ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत थे तथा उनसे घिरी-घिरी झीलें थीं। साथ ही उस देश में हरे-भरे लहलहाते हुए खेत थे, और वे खेत नाना प्रकार के पुष्पों से सुसज्जित थे।"

अपने पिता के समान ही कुमारगुप्त एक सहनशील सम्राट् थे। उनके शासन-काल में स्वामी महासेन (कार्त्तिकेय), बुद्ध, शिवलिंग, सूर्य तथा विष्णु की उपासना साथ-साथ चलती हुई अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी।[1]

कुमारगुप्त के शासन-काल में, अश्वमेध-छाप की मुद्राओं द्वारा प्रमाणित अश्वमेध यज्ञ का होना तथा कुछ समय के लिये पुष्यमित्रों द्वारा गुप्त-साम्राज्य के वैभव एवं पराक्रम-रूपी सूर्य को ग्रहण लग जाना, ये दो प्रमुख घटनाएँ हैं। भिटारी-अभिलेख में, जहाँ इसका उल्लेख आया है, इस नाम का द्वितीय अक्षर मिट-सा

पाल (गोप्तृ) से सौ वर्ष पूर्व हुआ था। एस० मजूमदार का मत है कि अभिलेख-संख्या १७ के विश्ववर्मन वी० एस० सन् ४०४-४०५ के नरवर्मन के पश्चात् हुए थे। मालव के राजगढ़ स्टेट में पाये जाने वाले बिहार कोटरा-अभिलेख (*Ep. Ind.*, xxvi, 130 ff) के महाराज नरवर्मन (४१७-१८ ई०) को 'औलिकर' कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनका सम्बन्ध मालव के विष्णुवर्धन (५३२-३३ई०) से था।

१. देखिये बिल्सड, मानकुवर तथा करमदाण्डे और मंदसौर अभिलेख। बहुत-से मंत्रियों के मुख्य उपास्य शिव, राजा के विष्णु तथा कलाकारों एवं व्यापारियों के प्रारम्भिक गुप्त-काल में सूर्य थे। कदाचित् राजा ने 'जितम् भगवता' को अत्यधिक लोकप्रिय बना दिया था। पेनुकोंडा-प्लेट (*Ep. Ind.*, XIV, 334) के अनुसार माधव गंग; हेब्बात-दानपत्र (मैसूर *A.S.A.R.*, 1925, 98) के अनुसार कदम्ब के विष्णुवर्मन-प्रथम, उदयेंदिरम (*Ep. Ind.*, III, 145) के पल्लव-वंशी नन्दिवर्मन तथा दक्षिण के अन्य राजाओं ने उसका अनुसरण किया था। कार्त्तिकेय की लोकप्रियता का पता न केवल स्थान-स्थान पर मिलने वाली उनकी मूर्त्तियों से ही चलता है, वरन् राजाओं द्वारा अपने नाम के साथ 'कुमार' तथा 'स्कन्द' के प्रयोग से तथा कुमारगुप्त-प्रथम की मोरछाप-मुद्राओं से भी चलता है। मोरछाप मुद्राओं को चलाने वाले शासक के शासन-काल में गुप्त-साम्राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था, परन्तु इसके पश्चात् ही इसका पतन आरम्भ हो गया।

गया है।[1] अतः बहुत से विद्वान् उसको 'पुष्यमित्र' पढ़ना स्वीकार नहीं करते। डॉ० फ्लीट के 'पुस्यमित्रांस् = च' को श्री एच० आर० दिवाकर ने अपने लेख 'गुप्त-काल में पुष्यमित्र' में 'युधि = अमित्रांश = च' स्वीकार किया है और इस प्रकार इस भ्रम का निराकरण करने की कोशिश की है।[2] फिर भी, यह तथ्य आज लगभग सर्वस्वीकृत है कि कुमारगुप्त के शासन-काल के अंतिम दिनों में गुप्त-साम्राज्य की बुनियाद हिल गयी थी। परन्तु, अभी तक इसका कोई निश्चय नहीं हो सका है कि भिटारी-अभिलेख में आया हुआ शब्द 'अमित्र' है अथवा 'पुष्यमित्र'।[3] लेकिन, यह भी ध्यान रखने की बात है कि वास्तव में विष्णु पुराण में पुष्यमित्र नामक एक व्यक्ति तथा जैन-कल्पसूत्र[4] में 'पुष्यमितिक-कुल' का उल्लेख मिलता है। पौराणिक कथाएँ पुष्यमित्रों, पटुमित्रों या दुर्मित्रों आदि का सम्बन्ध नर्मदा के उद्गम-क्षेत्र में स्थित 'मेकल'[5] स्थान से जोड़ती हैं। कुमारगुप्त और वाकाटकों के सम्बन्ध का उल्लेख करने वाले अभिलेखों से यह भी पता चलता है कि मेकल और पड़ोसी कोशल में युद्ध-सम्बन्धी गतिविधियाँ दिखाई पड़ती थीं। स्मरण रहे कि इन्हीं राज्यों को सम्राट् गुप्त ने कभी रौंद दिया था। बाण ने मगध के एक शासक का एक बार मेकल के मंत्रियों द्वारा अपहृत किये जाने की दुर्घटना का उल्लेख किया है। १२९वें वर्ष (४४९ ई०) के मानकुवर-पाषाण-लेख में कुमारगुप्त-प्रथम को 'महाराजाधिराज श्री' के स्थान पर केवल 'महाराज श्री' कहा गया है। अतः कुछ विद्वानों ने इससे यह अनुमान लगाया है कि इस समय तक कुमारगुप्त-प्रथम सम्राट् की सर्वोच्च सत्ता की उपाधि से शत्रुओं द्वारा रहित कर दिये गये थे। परन्तु, लगभग उसी समय के दामोदरपुर प्लेट के विवरणों से इस अनुमान का खण्डन होता है, क्योंकि उसमें कुमारगुप्त को पूरी-पूरी उपाधि

१. *Cf.* Fleet, *CII*, p. 55 n.

२. *Annals of the Bhandarkar Institute*, 1919-20, 99 f.

३. *CII*, iii, p. 55.

४. *SBE*, XXII, 292. देखिये—कुषाण-युग की भीटा-सीलों में अथवा उसके पूर्व (*JRAS*, 1911, 138)। की जनश्रुति में 'पुसमितस' का उल्लेख है।

५. Vish., IV, 24, 17; Wilson, IX, 213. पुष्यमित्र, पटुमित्र तथा अन्य १३ व्यक्ति मेकला पर राज्य करेंगे। ये १३ पुष्यमित्र-पटुमित्र ७ मेकल-राजाओं से भिन्न थे। लेकिन, सन्दर्भ से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र माहिष्यों (माहिष्मती के निवासियों) तथा नर्मदा-सोन-घाटी के मेकलों के बीच की भूमि में राज्य करते थे (*Cf.* Fleet, *JRAS*, 1889, 228; भीटा-सील भी देखिये)। मेकला के लिए भी देखिये—*Ep. Ind.*, xxvii, 138 f.

से विभूषित किया गया है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि अनेक अभिलेखों एवं मुद्राओं पर उसके उत्तराधिकारियों को केवल 'राजा' अथवा 'महाराज' कह कर ही सम्बोधित किया गया है।

कुमार की मुद्राओं पर अंकित शब्द 'व्याघ्र-बल-पराक्रम' से बोध होता है कि वह अपने पितामह के समान दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित कर धीरे-धीरे व्याघ्रों से भरे हुए नर्मदा-पार के वनों में घुसा था। सतारा ज़िले[1] में १,३६५ मुद्राएँ मिली हैं। इनसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि दक्षिण की ओर वह साम्राज्य-विस्तार कर रहा था। परन्तु, इस अभियान में राजसेना अवश्य ही नष्ट-भ्रष्ट हो गई होगी। गुप्त-वंश की गिरती हुई दशा को एक बार पुनः स्कन्दगुप्त ने सँभाला तथा उसे ऊपर उठाया। कुमारगुप्त ने स्कन्दगुप्त को गाज़ीपुर का शासक नियुक्त कर रखा था।[2]

वंशावली में कुमारगुप्त-प्रथम की केवल एक ही रानी अनन्त देवी का उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त के कम से कम दो पुत्र थे। एक का नाम पुरुगुप्त था, तथा इसकी माता का नाम अनन्तदेवी था। दूसरे का नाम स्कन्दगुप्त था। कुछ विद्वानों के अनुसार स्कन्दगुप्त की माता का नाम अभिलेखों मे नहीं मिलता। सीवेल का मत है कि स्कन्दगुप्त की माता का नाम देवकी[3] था। यह बात विश्वसनीय-सी ही लगती है, क्योंकि यदि इसे स्वीकार न किया जाये तो भिटारी-स्तम्भ-लेख के छठें श्लोक में गुप्त-सम्राट् की विधवा रानी की जो तुलना कृष्ण की माता के साथ की गई है, उसे हम पूर्ण रूप से न्यायोचित ढंग से स्पष्ट न कर सकेंगे। ह्वेनसांग ने बुद्धगुप्त (फ़ो-तो-किओ-तो) अथवा बुधगुप्त[4] को शक्रादित्य[5] का पुत्र अथवा

१. Allan, p. cxxx. कदम्ब-अभिलेख में पाँचवी शताब्दी में कदम्बों एवं गुप्तों के सम्बन्ध के बारे में देखिये।

२. देखिये— भिटारी अभिलेख।

३. *Historical Inscription of Southern India*, p. 394.

४. 'फ़ो-तो-किओ-तो' को बुद्धगुप्त बताया जाता है। परन्तु, इस काल में बुद्धगुप्त नामक शासक की सत्ता को हम किसी दूसरे स्वतंत्र साक्ष्य से प्रमाणित नहीं कर सकते। उसके उत्तराधिकारी के उत्तराधिकारी बालादित्य का सम्बन्ध मिहिरकुल से था, अतः हम उसे बुद्धगुप्त ही स्वीकार करते हैं (*Cf. Ind. Ant.*, 1886, 251 n)।

५. नालन्दा-सील से भी शक्रादित्य की पुष्टि होती है (एच० शास्त्री, *MASI*, No. 66, p. 38)। कहा जाता है कि प्रसिद्ध, आगे चल कर विश्व-विख्यात, विश्वविद्यालय के रूप में ज्ञापित होने वाला नगर नालन्दा, इसी सातवीं शताब्दी में बसाया गया था। नालन्दा पर लिखे एक महत्वपूर्ण लेख में श्री एच० शास्त्री का मत है कि ह्वेनसांग ने नालन्दा का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया है, परन्तु वास्तव मे उसने केवल वास्तविकता का ही वर्णन किया है।

उत्तराधिकारी बताया है। बुधगुप्त का समकालीन और इस प्रकार की उपाधि धारण करने वाला राजा केवल कुमारगुप्त-प्रथम था, जिसकी उपाधि मुद्राओं पर 'महेन्द्रादित्य' थी। महेन्द्र तथा शक में कोई विशेष अन्तर नहीं है। गुप्त-काल में इस प्रकार की उपाधियों के प्रयोग की कमी नहीं थी। विक्रमादित्य को 'विक्रमांक' भी कहते थे। स्कंदगुप्त को 'विक्रमादित्य' तथा 'क्रमादित्य' दोनों ही नामों से सम्बोधित करते थे। अतः यदि शक्रादित्य को हम महेन्द्रादित्य अथवा कुमारगुप्त-प्रथम स्वीकार कर लें तो कहेंगे कि बुद्धगुप्त[1] का कुमारगुप्त से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था। कुमारगुप्त के वंश का दूसरा सदस्य सम्भवतः घटोत्कचगुप्त[2] था।

३. स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य

'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' तथा अन्य लेखों से स्पष्ट है कि महेन्द्र, अर्थात् कुमारगुप्त-प्रथम के उत्तराधिकारी का नाम स्कन्दगुप्त था। 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल' की एक सभा में एक पत्र पढ़ते हुए डॉ० आर० सी० मजूमदार ने एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना का उल्लेख किया। उनके अनुसार पुष्यमित्रों के साथ चल रहे अनिर्णयात्मक युद्ध के दौरान ही सम्राट् कुमारगुप्त-प्रथम की मृत्यु हो गई। उनके निधन के बाद सिंहासन के लिये सम्राट् के पुत्रों में घनघोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अन्ततः स्कन्दगुप्त ने अपने सभी भाइयों को, यहाँ तक कि सिंहासन के वैध उत्तराधिकारी पुरुगुप्त को भी, पराजित कर दिया। इसके बाद उसने स्वयं सम्राट् की उपाधि धारण की तथा जैसे भगवान कृष्ण ने देवकी[3] का

१. आधुनिक अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि बुधगुप्त कुमारगुप्त-प्रथम का पुत्र न होकर पौत्र था। सम्भवतः चीनी यात्री पुत्र एवं पौत्र में कोई अंतर न कर सका हो। देखिये कोप्परम-प्लेट, जिसमें पुल्केसिन-द्वितीय को कीर्त्तिवर्मन-प्रथम का पौत्र बताया गया है। परन्तु, वास्तव में वह कीर्त्तिवर्मन-प्रथम का पुत्र था। यह भी सम्भव है कि बुधगुप्त के पिता पुरुगुप्त की उपाधि 'शक्रादित्य' रही हो।

२. मि० गार्डे ने तुमेन-अभिलेख का उल्लेख किया है। देखिये बसाढ़-सील, जिसमें घटोत्कचगुप्त का उल्लेख मिलता है। इस अभिलेख से कुमार के साथ सम्बन्ध का कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता।

३. देखिये भिटारी-अभिलेख, *JASB*, 1921 (N.S. XVII), 253 ff. डॉ० मजूमदार (*IC*, 1944, 171) ने बिहार-अभिलेख में जो नाम नहीं दिया गया है, उस सम्बन्ध में अपने विचार में, थोड़ा-सा परिवर्त्तन किया है तथा उसी अभिलेख में महादेवी अनन्तदेवी तथा उसके पुत्र पुरुगुप्त का उल्लेख किया है।

उद्धार किया था, वैसे ही उसने अपनी माता का उद्धार किया। डॉ० मजूमदार का मत है कि बिहार तथा भिटारी-स्तम्भ-लेख में जो वंशावली दी गई है, उसमें स्कन्दगुप्त की माता का नाम नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि वह मुख्य रानी नहीं थी। इस प्रकार स्कन्दगुप्त राज्य-सिंहासन का वैध उत्तराधिकारी नहीं था। वास्तव में राज्य के वैध अधिकारी महाराज कुमारगुप्त तथा महादेवी अनन्तदेवी के पुत्र श्री पुरुगुप्त ही थे।

हमें वैसे यह स्मरण रखना चाहिये कि उस समय तक अन्य रानियों का अभिलेखों में उल्लेख करना वर्जित नहीं था। उदाहरण के लिये, चन्द्रगुप्त-द्वितीय[1] की पुत्री राजकुमारी प्रभावती की माता कुबेरनागा का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है, जबकि वह मुख्य रानी नहीं थी—यद्यपि यह सत्य है कि उसकी पुत्री ने उसके नाम के साथ 'महादेवी' शब्द का उल्लेख किया है, परन्तु अन्य लेखों में इसकी पुनरावृत्ति नहीं हुई है। ऋद्धपुर-प्लेट में 'महादेवी' न लिख कर केवल 'कुबेरनागा देवी' लिखा गया है, जबकि कुमारदेवी, दत्तदेवी और स्वयं कुबेर-नागा की पुत्री प्रभावती गुप्त के नामों के पूर्व 'महादेवी' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह विभिन्नता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि चन्द्रगुप्त-द्वितीय की मुख्य रानी महादेवी ध्रुवदेवी अथवा ध्रुवस्वामिनी थीं। यद्यपि कुबेरनागा मुख्य रानी (अग्रमहिषी) नहीं थी, फिर भी एक लेख में उसकी पुत्री ने इसका उल्लेख किया है। परन्तु, कभी-कभी रानियों एवं राजमाताओं का नाम छोड़ भी दिया जाता था।[2] बंसखेर तथा मधुबन प्लेटों में जो वंशावली दी गई है, उसमें हर्ष की माता यशोमती का उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु नालन्दा तथा सोनपत सीलों[3] में उसे राज्यवर्द्धन तथा हर्षवर्द्धन की माता बताया गया है। अतः सीलों एवं साधारण प्रशस्तियों में दी गई वंशावलियों के आधार पर किसी प्रकार का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा। यदि हम उपर्युक्त सीलों तथा सामान्य प्रशस्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो दो तथ्यों का पता चलता है—(१) जो वंशावली सीलों आदि में दी गई है, वह पूर्ण है; परन्तु प्रशस्ति में दी गई वंशावली अपूर्ण

१. *JASB*, 1924, 58.

२. कभी-कभी राज्य करने वाले राजा के पिता का नाम भी छोड़ दिया जाता था (*Cf.* Kielhorn's N. Ins., Nos. 464, 468)।

३. देखिये A. R. of the A.S.I. Eastern Circle, 1917-1918, p. 44; *Ep. Ind.*, XXI, 74 ff; *MASI*, No. 66, 68 f.

है, तथा (२) राजमाताओं का नाम, अर्थात् जो राजा राज्य कर रहा है, उसकी माता का नाम (चाहे उसकी पुनरावृत्ति ही क्यों न हो) सील में अवश्य मिलता है, जबकि प्रशस्ति में, चाहे वह अग्रमहिषी ही क्यों न रही हो, कभी-कभी उसका उल्लेख नहीं भी मिलता। अतः भिटारी-सील तथा स्तम्भ-लेखों के बीच वास्तविक समानता नहीं है। वास्तव में सील की तुलना दूसरी सील से तथा सामान्य प्रशस्ति की तुलना उसी कोटि के किसी अन्य लेख आदि से की जानी चाहिये।'

जहाँ तक वैध उत्तराधिकार का प्रश्न है, हमने देखा कि समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उदाहरणों से सिद्ध है कि जन्म आदि का विचार न कर के केवल योग्यतम व्यक्ति को ही सम्राट्-पद दिया जाता था।

१. हमने देखा है कि सीवेल के अनुसार स्कन्द की माता का नाम वास्तव में एक लेख में मिलता है। उसके अनुसार उनकी माता का नाम 'देवकी' था। कृष्ण की माता के साथ भिटारी-अभिलेख में उसकी जो तुलना की गई है (यद्यपि समस्त दुःखों के होते हुए भी कृष्ण की माता को वैधव्य का दुःख नहीं था), वह अधिक स्पष्ट नहीं है। फिर भी, यदि 'देवकी' स्कन्दगुप्त और साथ ही साथ कृष्ण की माता का नाम नहीं था, तो यह तुलना क्यों? शत्रु-पक्ष पर विजय प्राप्त करने के सम्बन्ध में कृष्ण और देवकी का ही उल्लेख क्यों किया गया? यह न कह कर 'स्कन्द' (कार्त्तिकेय) तथा 'पार्वती', 'इन्द्र' अथवा 'विष्णु' और 'आदित्य' आदि भी तो कहा जा सकता है, क्योंकि स्कन्दगुप्त के प्रशंसकों ने उसे 'शक्र' (कहाउम-अभिलेख में शक्रोपम) तथा जूनागढ़-अभिलेख के अनुसार 'विष्णु' (श्री परिक्षिप्तवक्षा) की भी उपाधि दी है। सम्भवतः उसकी माता के दुःखों को देखकर तथा उसके नाम में समानता पाकर ही राजकवि ने उसकी तुलना 'कृष्ण' तथा 'देवकी' से की है (*Cf. Ep. Ind.*, I, 364; xiii, 126, 131)। कृष्णदेव राय के हैम्पे तथा कांजीवरम अभिलेखों के अनुसार देवकी के नाम पर इसी प्रकार का एक नाटक भी मिलता है—

> तद्वंशे देवकी जानिर्हृदीपे तिम्म भूपतिः
> यशस्वी तुलुवेन्द्रेषु यदोः कृष्ण इवान्वये...
> सरसावुवभूत्वस्मान् नरसावनिपालकः
> देवकीनन्दनात् (*Var.* नन्दनः) कामो देवकीनन्दनादिव।

इस समस्या में अनेक कठिनाइयाँ हैं, तथा इस पर अंतिम निर्णय देने से पूर्व नवीन अनुसन्धानों के निष्कर्षों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

भिटारी-अभिलेख में जिस संघर्ष का उल्लेख कुमारगुप्त-प्रथम के शासन-काल के अंतिम दिनों में आता है, उसमें कहीं यह सूचना नहीं मिलती कि वह संघर्ष राजगद्दी के लिए था। अभिलेख का मौलिक पद इस प्रकार है—

पितरि दिवं उपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीम्
भुजबल-विजित श्ररिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः
जितमिति परिपोषान् मातरं साश्रु नेत्राम्
हत-रिपुर-इव कृष्ण देवकीपेम्युबतः ।

"जिसने अपने पिता के देहावसान के बाद, अपने बाहुबल एवं अपनी शक्ति के द्वारा शत्रुओं का विनाश करके, अपने वंश की डाँवाडोल स्थिति को दृढ किया, वह शत्रुओं का पूर्ण रूप से विनाश करके अपनी रोती दुःखी माँ, देवकी[1] के पास गया।"

जिन्होंने स्कन्दगुप्त की वंश-लक्ष्मी को उसके पिता की मृत्यु के उपरान्त विलुप्त किया, वे निस्संदेह ही गुप्त-वंश के शत्रु थे, अर्थात् उन लोगों का गुप्त-वंश से कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं था। यह निश्चित है कि भिटारी-अभिलेख में उल्लिखित ये शत्रु विदेशी थे, अर्थात् वे पुष्यमित्र[2] तथा हूण थे। यहाँ पर भाइयों के बीच हुए युद्ध के सम्बन्ध में किंचित् मात्र उल्लेख नहीं मिलता। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़-अभिलेख में एक स्थान पर यह विवरण आता है—"भाग्य एवं समृद्धि की देवी लक्ष्मी ने उसके भाइयों को प्राथमिकता न देकर उसे अपना वर चुना (स्वयम् वर्यम् चकार)।" परन्तु, यह वाक्यांश 'स्वयंमेव श्रिया गृहीत', अर्थात् 'लक्ष्मी जी ने स्वयं अपनी इच्छा से चुना' एक उपाधि मात्र है, जिसको प्रभाकरवर्धन ने अपनी मृत्यु से कुछ ही पूर्व हर्ष के लिए प्रयुक्त किया था, जबकि हम जानते हैं कि हर्ष अपने भाई राज्यवर्धन से कितना अधिक प्रेम करते थे। यह बात सभी को भली

१. देवकी के सम्बन्ध में जानने के लिये विष्णु-पुराण, V, p. 79 देखिये।

२. यदि यहाँ पर 'अमित्रों' (see *ante*, p. 568) का वर्णन भी किया जाये तो भी उससे बड़े भाई का अर्थ कदापि नहीं निकलता, क्योंकि गद्यांश में स्पष्ट लिखा है कि "उसने अपना बायाँ पैर उस शत्रु राजा के सिंहासन पर रखा।" यदि गुप्त-वंश का कोई वास्तविक अधिकारी ही सिंहासन पर आता, तो इतना साधन होते हुए भी एकाएक शासन हथिया लेने वाले किसी नये शासक के लिए 'समुदित बल-कोष' (उसका धन एवं उसकी शक्ति बढ़ती ही गई) लिखने की आवश्यकता ही न पड़ती।

भाँति विदित है कि हर्ष के समान ही स्कन्दगुप्त भी लक्ष्मी के प्रिय पात्रों में से थे। इस सम्बन्ध में हमारा ध्यान जूनागढ़-अभिलेख की ओर जहाँ स्कन्दगुप्त को 'श्री परिक्षिप्तवक्षाः' कहा गया है—तथा लक्ष्मी-छाप मुद्राओं[1] की ओर जाता है। सम्राट् के एक चारण ने यह भी बताया है कि जिस ढंग से स्वयंवर होता है, उसी प्रकार का स्वयंवर स्कन्दगुप्त के समय में भी हुआ।[2] स्वयंवर में सभी राजकुमार (आवश्यक नहीं कि ये राजकुमार एक ही वंश के हों) एकत्र होते हैं, तथा उनमें से किसी एक को कन्या अपना वर चुनती है। परन्तु स्वयंवर के बाद युद्ध न हो, यह कोई जरूरी नहीं है। फिर भी, इतना तो इतिहास-सिद्ध है ही कि इस तरह का युद्ध कभी भी एक ही राजा के पुत्रों के बीच नहीं होता। अतः जिस गद्यांश का उल्लेख यहाँ लक्ष्मी के स्वयंवर के सम्बन्ध में किया गया है, उससे यह अर्थ जरूरी तौर पर तो नहीं निकलता कि कुमारगुप्त के पुत्रों के बीच युद्ध हुआ है और उसमें अंत में स्कन्दगुप्त विजयी ही हुआ था। वास्तव में इससे केवल यही अर्थ निकलता है कि कुमारगुप्त के सभी पुत्रों में स्कन्दगुप्त ही केवल एक ऐसा भाग्यशाली, शक्ति-सम्पन्न और योग्य था जिसने अपने वंश और साम्राज्य के एक-एक शत्रु को चुन-चुनकर पराजित किया। इलाहाबाद-प्रशस्ति में भी इसी आशय का एक उल्लेख सम्राट् समुद्रगुप्त के बारे में मिलता है—"दूसरे राजकुमार अपने जन्म और रक्त सम्बन्ध से उसके (समुद्रगुप्त के) समान होते हुए भी, अस्वीकृत किये जाने के कारण, समुद्रगुप्त के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु थे, क्योंकि सम्राट् चन्द्रगुप्त-प्रथम ने यह घोषणा करते हुए कहा कि यही मात्र योग्य पुत्र है जो सारी दुनिया का शासन चलाने की शक्ति रखता है" और अपने गले से लगा लिया था। परन्तु, इस सम्बन्ध में एक तर्क यह भी है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सम्राट् कुमारगुप्त ने स्कन्दगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया ही था। इसके विपरीत, यह कहा गया है कि लक्ष्मी ने अपने आप स्कन्दगुप्त को चुना। परन्तु यही बात तो हर्ष के साथ भी थी। हर्ष के समान ही स्कन्द के ऊपर अपने वंश एवं पितामह के राज्य को बचाने का दायित्व उस

१. Allan, p. xcix.

२. *Cf*. *Ep*. *Ind*., I, 25—'गूर्जरेश्वर-राज्य-श्रीर्यस्य जज्ञे स्वयम्वरा।'

उर्वशी ने अपनी अन्य अप्सराओं के साथ महाराज इन्द्र के सम्मुख जो नाटक किया था, उसका भी विषय 'लक्ष्मी का स्वयंवर' ही था।

समय आया, जब उसके राजवंश की स्थिति बहुत ही डावाँडोल थी। दोनों ने ही अपनी शक्ति एवं कार्य-कुशलता से राज्य को बचा लिया। इस सम्बन्ध में एक दूसरी मुख्य और स्मरणीय बात यह है कि अभिलेखों में स्कन्दगुप्त के जिन शत्रुओं की सूचना मिलती है, वे सभी पुष्यमित्र, हूण[1] और म्लेच्छ थे।[2] जूनागढ़-अभिलेख में जिन 'मनुजेन्द्र-पुत्रों' का उल्लेख मिलता है, वे केवल निराश उम्मीदवार हो सकते हैं, पराजित शत्रु नहीं; जैसा कि समुद्रगुप्त के अन्य भाइयों के साथ भी हुआ था। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि क्योंकि स्कंदगुप्त ने लड़खड़ाते हुए गुप्त-साम्राज्य को नष्ट होने से बचा लिया था, अतः वही सबसे योग्य शासक ठहराया गया। वास्तव में आज ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि सिंहासन के लिये स्कंदगुप्त तथा उसके भाइयों में कोई युद्ध भी हुआ। यह कहना सर्वथा भ्रमात्मक होगा कि अपने भाइयों का रक्तपात करके ही वह सिंहासनारूढ़ हुआ और यह कि भिटारी-लेख[3] में उसे जो 'पवित्र हृदय वाला' (अमलात्मा) तथा 'दूसरों की सहायता करने वाला' (परहितकारी) कहा गया है, वह ग़लत है।

'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प'[4] में एक ऐसा पद आया है, जिसके आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है कि कुमारगुप्त-प्रथम के उपरान्त स्कंदगुप्त ही उसका उत्तराधिकारी बना—

समुद्राख्य नृपश्चैव विक्रमश्चैव कीर्तितः
महेन्द्र-नृपवरो मुख्यः सकाराद्यं अतः परम्
देवराजाख्य नामासौ युगाधमे।

उपर्युक्त पद में समुद्र, विक्रम, महेन्द्र तथा 'शाकाराद्य' नृपों को पहचानना असम्भव नहीं है। ये नाम क्रम से महान् गुप्त-सम्राटों समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य, तथा स्कंदगुप्त आदि के ही हैं।[5]

१. देखिये—भिटारी-अभिलेख।

२. देखिये—जूनागढ़-अभिलेख।

३. Allan, *Gupta Coins*, cxxi.

४. देखिये गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित Vol. I, p. 628. देखिये, रींवा-अभिलेख, सन् ४६०-४६१ ई० का। ओरियन्टल कान्फ्रेंस के बारहवें (बनारस) अधिवेशन में इस ओर हमारा ध्यान श्री बी० सी० छाबरा ने आकृष्ट किया। उसके पश्चात् डॉ० मजूमदार तथा सरकार ने भी इस ओर हमें प्रवृत्त किया।

५. *IHQ*, 1932, p. 352.

स्कंदगुप्त ने 'क्रमादित्य' तथा 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी।[1] 'मंजुश्री-मूलकल्प' से जो उपर्युक्त पद लिया गया है, उसमें उसे 'देवराज' कहा गया है। सम्भवतः 'विक्रमादित्य' एवं 'देवराज' की उपाधि उसने अपने पितामह के अनुकरण में ही धारण की थी। 'देवराज' की उपाधि हमें इस बात का भी स्मरण कराती है कि उसके पिता को 'महेन्द्र' की उपाधि भी दी गयी थी। इलाहाबाद के स्तम्भ-लेख में समुद्रगुप्त को 'इन्द्र तथा अन्य देवताओं के समान' तथा कहाउम-लेख में स्कंदगुप्त को 'शक्रोपम' कहा गया है।

मुद्राओं एवं अभिलेखों आदि से ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त ने सन् ४५५ से ४६७ ई० तक शासन किया। सर्वप्रथम विनाश की ओर जाते गुप्त-साम्राज्य को बचा कर उसने उसे एक महान् शक्तिशाली राज्य में परिणत किया। साथ ही ऐसे सारे प्रान्त फिर से राज्य के अंग बने जो गुप्त-साम्राज्य से अपना संबंध-विच्छेद कर चुके थे।

अभिलेख के एक वाक्य से हमें यह भी ज्ञात होता है कि खोये हुए वैभव को प्राप्त करने के सिलसिले में एक बार ऐसा भी समय आया जब सम्राट् स्कन्दगुप्त को एक पूरी रात नंगी ज़मीन पर सोना पड़ा। भिटारी-अभिलेख की १२वीं पंक्ति से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त-प्रथम के स्वर्गवासी हो जाने पर स्कन्दगुप्त ने अपने शत्रुओं को अपने पराक्रम से जीता। इस लेख के संदर्भ से यह भी ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र ही, जिनकी शक्ति एवं समृद्धि अकस्मात् ही बढ़ गई थी, गुप्त-वंश के परम शत्रु थे।

पुष्यमित्रों को पराजित करने के पश्चात् स्कन्दगुप्त ने हूणों[2] तथा कदाचित्

१. Allan, *Catalogue*, pp. 117, 122; *cf. Fleet*, CII, p. 83—

विनय-बल सुनीतैर्विक्रमेण क्रमेण

प्रतिदिनमभियोगादीप्सितं येन लब्ध्वा।

"कुछ धनुष-छाप सोने की बड़ी मुद्राओं पर 'क्रमादित्य' की उपाधि मिलती है। साथ ही यह उपाधि चाँदी की गरुड़, वृषभ तथा वेदी छाप मुद्राओं पर भी अंकित है। सुप्रसिद्ध उपाधि 'विक्रमाद्रित्य' चाँदी की वेदी-छाप मुद्राओं पर प्रायः अधिक मिलती है।"

२. हूणों का उल्लेख इन अभिलेखों के अतिरिक्त 'महाभारत', पुराणों, 'रघुवंश', 'हर्षचरित' और सोमदेव-रचित 'नीतिवाक्यामृत' में भी आया है। 'ललित-विस्तर' (अनुवादकः धर्मरक्ष, ३१३ ई०) में हूण-लिपि का ज़िक्र आयाहै। (*Ind. Ant.*, 1913, p. 266)। इसके अलावा देखिये—W. M. McGovern, *The Early Empires of Central Asia*, 399 ff, 455 ff. 485 f,

वाकाटकों को भी रणभूमि में पराजित किया। जूनागढ़-अभिलेख में जिन म्लेच्छों का उल्लेख मिलता है, यदि वे हूण ही थे तो उनका आक्रमण सन् ४५८ ई० के पूर्व ही हुआ होगा। सोमदेव-रचित 'कथा-सरित्सागर'[१] में उज्जैन के सम्राट् महेन्द्रादित्य के पुत्र महाराज विक्रमादित्य की कथा में मलेच्छों के ऊपर विजय का उल्लेख मिलता है। मध्य भारत एवं सौराष्ट्र गुप्त-साम्राज्य के विशिष्ट अंग थे। बालाघाट- प्लेट[२] में स्कन्दगुप्त के चचेरे भाई प्रवरसेन-द्वितीय (तृतीय ?) के पुत्र नरेन्द्रसेन वाकाटक को 'कोशला-मेकला-मालव-आधिपत्यम्यचित शासन' (जिसकी आज्ञा का कोशल, मेकल तथा मालव नरेश सम्मान से पालन करते थे) कहा है। जूनागढ़-अभिलेख से ही इस बात का भी पता चलता है कि "कई रातों तथा कई दिनों तक स्कन्दगुप्त यही सोचते रहे कि सौराष्ट्र का शासन किसे सौंपा जाये।" एलन इससे तथा इन शब्दों 'सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्' से यह अर्थ निकालते हैं कि राजा को इस बात का बड़ा सोच था कि वह किन-किन व्यक्तियों को सीमा के नवीन आक्रमणों को रोकने के लिये नियुक्त करे। इन्हीं में सौराष्ट्र का राज्यपाल पर्णदत्त[३] भी था। इतनी अथक चेष्टा करने के बाद भी स्कन्दगुप्त अपने साम्राज्य के सुदूर पश्चिमी भाग को भविष्य की विपत्तियों से मुक्त नहीं कर सके। निस्सन्देह अपने जीवन-काल में उसने गुजरात, मालव के आसपास की भूमि, सुराष्ट्र तथा कैम्बे पर अपना अधिकार बनाये रखा।[४] परन्तु, स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारी उसके समान ही भाग्यशाली नहीं

१. Allan, *Gupta Coins*, Introduction, p. xlix.

२. *Ep. Ind.*, IX, p. 271.

३. जार्ल कार्पेन्टियर के अनुसार फ़ारसी 'फ़र्नदात' वस्तुतः पर्णदत्त ही है (*JRAS*, 1931, 140; *Aiyangar Com. Vol.*, 15)।

४. जूनागढ़-अभिलेख से सुराष्ट्र तथा चाँदी की वृषभ-छाप मुद्राओं से कैम्बे-तट के उसके राज्य में मिलाये जाने का प्रमाण मिलता है। इन मुद्राओं का अनुकरण सम्भवतः कटच्चुरी-वंश के कृष्णराज ने भी किया था (Allan, ci)। कृष्ण के पुत्र शंकरगण ने समुद्रगुप्त की उपाधियों को अपनाया। उसके पुत्र बुद्धराज ने ७वीं शताब्दी में पूर्वी मालव पर विजय प्राप्त की थी (C. 608 A. D.; Vadner plates, *Ep. Ind.*, xii. 31 ff; see also Marshal, *A Guide to Sanchi*, p. 21 n)। चलुक्य ने इस वंश का विनाश किया। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि कैरा-दानपत्र के अनुसार समुद्रगुप्त की तीन उपाधियाँ चालुक्य-राजा विजयराज को मिली थीं (Fleet, *CII*, 14)।

सिद्ध हुए। अभी तक एक भी ऐसा लेख अथवा मुद्रा नहीं मिली है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि सुराष्ट्र एवं पश्चिमी मालव स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् भी गुप्त-साम्राज्य के ही अंग बने रहे। इसके विपरीत, नरेन्द्रसेन के चचेरे भाई हरिषेण वाकाटक लाट (दक्षिणी गुजरात), अवन्ति (उज्जैन के आस-पास का प्रदेश), कोंकण प्रदेश के त्रिकूट, कुन्तल (कनेरी देश), आंध्र (तेलुगु देश), कलिंग (दक्षिण उड़ीसा और कुछ आसपास का भाग), कोशल (महानदी का ऊपरी भाग), आदि पर अपना अधिकार बताते हैं जबकि वलभी के मैत्रकों ने धीरे-धीरे अपने को स्वतंत्र कर लिया था।

स्कन्दगुप्त के अंतिम वर्ष शान्तिपूर्वक ही बीते।[1] शासकीय कार्य में उसे पश्चिम के राज्यपाल पर्णदत्त, अन्तर्वेदी के जिलाधीश (विषयपति) सर्वनाग तथा कोसाम प्रदेश के शासक भीमवर्मन[2] जैसे कितने ही योग्य राज्यपालों से महत्त्वपूर्ण सहायता मिली थी। सन् ४५७-४५८ ई० में पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने गिरनार-स्थित सुदर्शन झील के बाँध को ठीक करवाया था, जो दो वर्ष पूर्व टूट गया था।

सम्राट् ने अपने पूर्वजों की सहिष्णुता की नीति का ही अनुसरण किया। कृष्ण-विष्णु के उपासक होने तथा भागवत की उपाधि धारण करने के बाद भी उसने अथवा उसके अधिकारियों ने दूसरे धर्म के अनुयायियों, जैसे जैनियों या सूर्योपासना करने वालों को कभी कोई यातना नहीं दी। प्रजा भी सहिष्णु थी। कहाउम-अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक कट्टर ब्राह्मणवादी ने जैन-मूर्त्तियों को स्थापित कराया था।[3] इन्दौर-प्लेट से पता चलता है कि किसी ब्राह्मण ने सूर्य के मन्दिर में दीपदान किया था।

---

१. देखिये—सन् ४६०-६१ ई० का कहाउम-अभिलेख।

२. भिटारी तथा बिहार स्तम्भ-लेखों से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त के साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तों का समावेश उसके साम्राज्य में हुआ था। सोने की धनुष-छाप मुद्राओं (इनमें से प्रत्येक मुद्रा का वजन १४४·६ ग्रेन था) से भी इस बात की पुष्टि होती है (Allan, p. xcviii, 118)।

३. देखिये—सन् ४७९ ई० का पहाड़पुर-लेख, जिससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण-दम्पति ने जैनियों के लिए दान दिया था।

१५ | गुप्त-साम्राज्य (क्रमशः) : उत्तर गुप्त-सम्राट्

वस्वौकसारामतिभूय साहं सौराज्य बद्धोत्सवया विभूत्या ।
समग्रशक्तौ त्वयि सूर्यवंश्ये सति प्रपन्ना करुणामवस्थाम् ।
—रघुवंशम्

१. स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त-साम्राज्य

आज लगभग सभी विद्वान् इस पर एकमत हैं कि स्कन्दगुप्त का शासन-काल सन् ४६७ ई०[१] में समाप्त हो गया था। उसकी मृत्यु के उपरान्त धीरे-धीरे राज्य का पतन,[२] मुख्य रूप से पश्चिम में, आरम्भ हुआ। पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा छठी एवं सातवीं शताब्दी में गुप्त-साम्राज्य के अन्तर्गत मध्य एवं पूर्वी भारत था, इस बात की पुष्टि के लिये हमारे पास न केवल अभिलेख इत्यादि हैं, वरन् साहित्य भी उपलब्ध है। दामोदरपुर-प्लेट, सारनाथ-अभिलेख[३] तथा बुधगुप्त का एरण-अभिलेख आदि सभी इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सन् ४७७ से ७९६ ई० तक बङ्गाल से लेकर पूर्वी मालव तक गुप्त-साम्राज्य फैला हुआ था। परिव्राजक महाराज संक्षोभ के सन् ५१८ ई० के 'गुप्त-साम्राज्य'[४] की प्रभुता के काल में लिखा गया' बेतुलन प्लेट से ज्ञात होता है कि डभाला, जिसके अन्तर्गत त्रिपुरी विषय (जबलपुर-क्षेत्र)[५]

---

१. Smith, *The Oxford History of India*, additions and, corrections, p. 171, end.

२. पतन के सम्भावित कारणों के लिए देखिये—*Calcutta Review*, April, 1930, p. 36 ff; also *post*. 626 ff.

३. *A.S.I. Report*, 1914-15; *Hindusthan Review*, Jan., 1918; *JBORS*, IV, 344 f.

४. "श्रीमति प्रवर्धमान विजय-राज्ये संवत्सर शते नव-नवत्युत्तर्म गुप्त-नृप-राज्य भुक्तौ।" अर्थात् 'एक शताब्दी तथा ९९ वर्षों तक गुप्त-साम्राज्य एक प्रभुतासम्पन्न, वैभवशाली एवं समृद्धशाली राज्य था।'

५. *Ep. Ind.*, VIII, pp. 284-87—डभाला = अन्त में डाहल।

भी था, तक उसकी सत्ता स्वीकार की जाती थी। बघेलखण्ड में खोह्-ग्राम के निकट की घाटी में सन् ५२८ ई० का संक्षोभ का एक दूसरा अभिलेख मिला है। उससे ज्ञात हुआ है कि सन् ५२८ ई०[1] में भी गुप्त-साम्राज्य में कुछ मध्य प्रांत सम्मिलित थे। १५ वर्ष के उपरांत पुंड्रवर्धन भुक्ति (सामान्यतः उत्तरी बङ्गाल) के कोटिवर्ष विषय (जिला दीनाजपुर) में 'परमदैवत परम-भट्टारक महाराजाधिराजा श्री···गुप्त'[2] के शासन-काल में जो ग्राम दिया गया था, उससे स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त-साम्राज्य में पूर्वी तथा मध्य प्रांत भी थे। छठी शताब्दी के अंत में एक गुप्त-वंश का राजा, जो श्रीकांत (थानेश्वर) के पुष्यभूति-वंश[3] के प्रभाकरवर्धन का समकालीन था, मालव[4] पर शासन करता था। इस राजा के दो पुत्रों—कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त—को थानेश्वर के राजकुमार राज्यवर्धन की सेवा में रहना पड़ा

१. Fleet, *CII*, III, pp. 113-16; Hoernle in *JASB*, 1889, p. 95.

२. *Ep. Ind.*, XV, 113 ff. Corrected in *Ep. Ind.*, XVII, 1889, p. 95.

३. 'पुष्पभूति' न होकर 'पुष्यभूति' ही ठीक एवं सही प्रतीत होता है (*Ep. Ind.*, I, 68)।

४. पाँचवीं शताब्दी में ही मालव पर गुप्त-वंश का अधिकार हो गया था, इस बात की पुष्टि चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उदयगिरि-अभिलेख तथा घटोत्कचगुप्त के तुमेन-अभिलेख से होती है। छठी शताब्दी के अन्त तथा सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ गुप्त-राजाओं का सीधा शासन था। परन्तु, यह ज्ञात नहीं है कि इस शासक का गुप्त-महाराजाओं से क्या सम्बन्ध था। मगध पर, सम्भवतः, कुमारामात्य महाराज नंदन जैसे स्थानीय शासकों (सन् ५५१-५५२ ई०, गया जिले के अमौना-प्लेट वाले; *Ep. Ind.*, X, 49) तथा वर्मनों (नागार्जुनि पर्वत-गुफालेख, *CII*, 226; ह्वेनसांग द्वारा वर्णित पूर्णवर्मन, तथा *IA*, X, 110 के देववर्मन) का राज्य था। विशद विवरण के लिये देखिये रायचौधरी, *JBORS*, XV, parts iii, and iv (1929, p. 651 f)। अंतिम गुप्त-राजाओं के राज्य-काल में मालव की सीमा एवं क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। विक्रमादित्य-षष्ठम के करदाता दण्डनायक अनंतपाल ने हिमालय तक फैले 'सप्त' मालव-प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया था (*Ep. Ind.*, V, 229)। इससे अनुमान होता है कि अधिक से अधिक सात मालव

उत्तर गुप्त राजाओं के काल में भारत
अंग्रेज़ी मील
कश्मीर
राजपुरी
तक्षशिला
सियालकोट
स्थाण्वीश्वर
मथुरा
श्रावस्ती
अहिच्छत्र
अयोध्या
काठमांडू
वैशाली
पाटलिपुत्र
कौशाम्बी
प्रयाग
काशी
राजगृह
बोधगया
कर्णसुवर्ण
बहमनाबाद
दशपुर
अवन्ती
उज्जैन
धारा
नर्मदा नदी
वलभी
जूनागढ़
ताम्रलिप्ति
नासिक
गोदावरी नदी
चरित्र
कंगोद
गंजाम
पिष्टपुर
वेंगी
कृष्णा नदी
वातापी
कदम्ब
पश्चिम पयोधि
पूर्व सागर
कांचीपुरा
चोल
मालकूट
सिंहल
दक्षिण जलनिधि
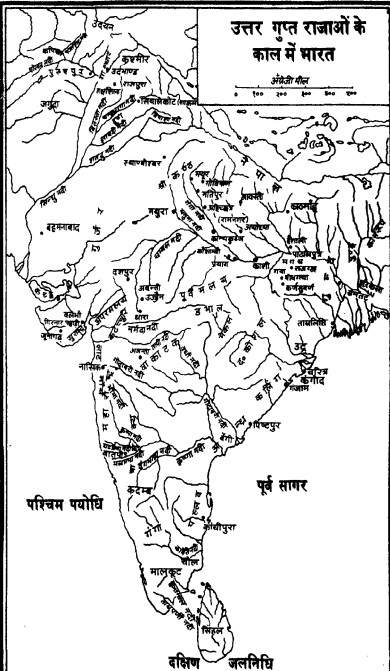
इससे स्पष्ट है कि लगभग ६०० ई० तक (प्रभाकरवर्धन के शासन-काल में) भी गुप्त-वंश की प्रभुता मालव से ब्रह्मपुत्र[1] तक फैली हुई थी।

यह एक निःसंदिग्ध तथ्य है कि छठी शताब्दी तक आते-आते गुप्त-वंश की शक्ति को मंदसौर के हूणों तथा मौखरी-वंश के शासकों ने चुनौती देनी शुरू कर दी थी। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कटच्चुरियों ने विदिशा पर तथा हर्ष ने गंगा की घाटी पर अधिकार कर लिया। परन्तु, कन्नौज के शासक की मृत्यु के पश्चात् गुप्त-वंश के माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने, जिसका साम्राज्य समुद्र तक फैला हुआ था, अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। उसने अश्वमेध यज्ञादि कर के 'परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की।

२. पुरुगुप्त एवं नरसिंहगुप्त बालादित्य

इस अध्याय में हम स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों का वर्णन करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका भाई पुरुगुप्त सिंहासनारूढ हुआ। सन् १८८९ ई० तक, जब कुमारगुप्त-द्वितीय की भिटारी-सील का पता चला तथा स्मिथ एवं हार्नले[2] ने उसे प्रकाशित किया, राजा पुरुगुप्त के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं था। इस सील से ज्ञात होता है कि पुरुगुप्त कुमारगुप्त-प्रथम तथा रानी अनन्तदेवी के पुत्र थे। परन्तु, इसमें स्कन्दगुप्त का कोई उल्लेख नही है, यद्यपि यह सत्य है कि कुमारगुप्त के ठीक बाद पुरुगुप्त का उल्लेख मिलता है, तथा उसके साथ 'तत्-पाद्-आनुध्यात्' भी लिखा है। फिर भी यह आवश्यक नही कि वह अपने पिता के तुरंत पश्चात् गद्दी पर बैठा हो तथा अपने भाई अथवा

---

१. बाण की कादम्बरी के १०वें श्लोक मे अंतिम गुप्त-राजाओं के सम्बन्ध में कुछ सूचनायें मिलती हैं, क्योंकि उसमें कहा गया है कि कवि के पितामह कुबेर के कमल-पद की वंदना अनेक गुप्त सम्राटों ने की थी —

> बभूव वात्स्यायन वंश सम्भवो
> द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।
> अनेक गुप्तार्चित पादपंकजः
> कुबेर नामांश इव स्वयंभुवः॥

२. *JASB*, 1889, p. 84-105.

सौतेले भाई स्कन्दगुप्त[1] का समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी रहा हो। मनहाली-दान-पत्र में मदनपाल को 'श्री रामपाल-देवपाद-आनुध्यात्' कहा गया है, जबकि उसके बड़े भाई कुमारपाल ने शासन किया था। कीलहार्न के उत्तरी अभिलेख, संख्या ३६ में विजयपाल[2] को क्षितिपाल का उत्तराधिकारी कहा गया है, जबकि उसके पूर्व उसके भाई देवपाल ने भी राज्य किया था। स्मिथ तथा एलन ने यह सिद्ध किया है कि स्कन्दगुप्त का राज्य समूचे साम्राज्य पर था तथा पूर्वी, मध्य एवं पश्चिमी प्रान्त के कुछ प्रदेश उसके साम्राज्य के अन्तर्गत थे। हो सकता है कि सुदूर पश्चिम में उसने अपने साम्राज्य के कुछ भाग खो दिये हों। परन्तु, मुद्राओं से स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त एवं बुधगुप्त को छोड़कर कुमारगुप्त के अन्य किसी भी उत्तराधिकारी की सत्ता पश्चिमी भारत पर नहीं थी। अतः, मुद्राओं एवं लेखों से यह पूर्णतया प्रमाणित हो गया है कि स्कन्दगुप्त के शासन-काल में उत्तरी भारत में (बङ्गाल एवं बिहार को मिलाकर) उसका विरोधी कोई भी मगधाधिराज नहीं था। सन् ४६७ ई०[3] में मृत्यु के समय वह परिपक्व अवस्था का था।

---

१. स्कन्द के भाई के पौत्र ने भिटारी-सील में स्कन्द का उल्लेख नहीं किया है। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं कि उसमें तथा पुरुगुप्त के वंश के बीच शत्रुता थी (आर० डी० बनर्जी, *Annals of the Bhand. Ins.*, 1918-1919, pp. 74-75)। पुलकेशिन-द्वितीय का नाम भी उसके भाई और युवराज विष्णुवर्द्धन के लेख में नहीं मिलता (सतारा ग्राण्ट, *Ind. Ant.*, 1890, pp. 227 f)। प्रतिहार-वंश के महाराज भोज-द्वितीय का नाम उसके भतीजे महेन्द्रपाल-द्वितीय के प्रतापगढ़-अभिलेख में नहीं है। परन्तु, महेन्द्रपाल के पिता एवं उसके भाई विनायकपाल के लेख में उसका उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त ऐसा कोई नियम नहीं था, जिसके अनुसार प्रतिद्वन्द्वी चाचा या भाई का नाम देना वर्जित हो। अपने प्रतिद्वन्द्वियों एवं वंशजों के अभिलेखों में मंगलेश तथा गोबिन्द-द्वितीय का नाम मिलता है, जबकि इसके विपरीत कभी-कभी राज्य करने वाले राजा के पूर्वज का नाम नहीं भी दिया जाता था। उदाहरण के लिए, धरपट्ट के नाम का उल्लेख उसके पुत्र के अभिलेख में ही नहीं मिलता (Kielhorn, *N. Ins.*, N0. 464)।

२. Kielhorn, *Ins.*, No. 31.

३. जब कभी लम्बी अवधि के पश्चात् कोई युवराज अपने पिता के पश्चात् सिंहासन पर बैठता है तो वह साधारणतया काफ़ी परिपक्व आयु का होता है। स्कन्दगुप्त के सम्बन्ध में हम जानते हैं कि सन् ४५५ ई० में ही वह इतना परिपक्व था कि अपने वंश और राज्य के सारे शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष करने में समर्थ था (*Cf.* 566 n. 3 *ante*)।

उस समय तक उसके भाई एवं उत्तराधिकारी पुरुगुप्त भी वृद्ध हो चुके होंगे। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उनका शासन-काल अत्यन्त अल्प था, तथा उनकी मृत्यु उसके पौत्र कुमारगुप्त-द्वितीय के शासन-काल अर्थात् ४७३ ई० के पूर्व हुई थी। विभिन्न विद्वानों ने उसकी पत्नी का नाम श्री वत्सदेवी, वैन्यदेवी तथा श्री चन्द्रदेवी[1] बताया है। वे नरसिंहगुप्त बालादित्य की माता थीं।

पुरुगुप्त की मुद्रायें भारी धनुषधारी छाप की हैं। स्पष्ट है कि वे उसके पूर्वजों[2] के समान ही पूर्वी राज्य की हैं। कुछ मुद्राओं की दूसरी ओर 'श्रीविक्रमः'[3] लिखा है, जो सम्भवतः विक्रमादित्य का सूक्ष्म रूप है। एलन का मत है कि वे बालादित्य के पिता अयोध्या के राजा विक्रमादित्य थे, जो वसुबन्धु के प्रभाव में आकर बौद्धधर्म के अनुयायी बन गये थे। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों की राजधानी सम्भवतः, मौखरियों की शक्ति के उदय के पूर्व, अयोध्या थी। यदि गया-लेख को विश्वसनीय मान लिया जाये तो निश्चय ही समुद्रगुप्त के समय में ही अयोध्या गुप्त-वंश के राजाओं का 'जय-स्कन्धावार' था। ऐसा प्रतीत होता है कि बालादित्य तथा उसके उत्तराधिकारियों की मुख्य राजधानी काशी[4] थी।

एलन के द्वारा जो परिचय दिया गया है, उससे स्पष्ट है कि पुरुगुप्त सन् ४७२ ई० के पश्चात् अधिक दिनों तक नहीं रहा। उसी काल के भारतीय राजाओं के चीनी इतिहास में 'ब-सु-बं-द'[5] का उल्लेख मिलता है।

---

१. *Ep. Ind.*, XXI, 77; *ASI*, *AR.*, 1934-35, 63.

२. Allan, p. lxxx, xcviii.

३. श्री एस० के० सरस्वती कहते हैं कि ये मुद्रायें बुधगुप्त की थीं (*Indian Culture*, I, 692)। प्रो० जगन्नाथ इस मत से सहमत नहीं हैं। (*Summaries of papers submitted to the 13th All India Oriental Conference*, Nagpur, 1946, Sec. IX, p. 11)। प्रो० जगन्नाथ के अनुसार वह शब्द 'बुध' न होकर 'पुरु' है। विक्रमादित्य-उपाधि के सम्बन्ध में देखिये—Allan, p. cxxii. डॉ० आर० सी० मजूमदार (*ASB*, 4-4-49) श्री सरस्वती के मत से सहमत हैं।

४. *CII*, 285.

५. *JRAS*, 1905, 40. यह बात उस सील से प्रमाणित हो जाती है, जिसमें पुरु को बुद्ध का पिता बताया गया है (476-95)।

भरसार में पाई गयी मुद्राओं से ज्ञात होता है कि स्कन्दगुप्त के पश्चात् कुछ काल के लिए प्रकाशादित्य शासक हुए। सम्भवतः 'प्रकाशादित्य' पुरुगुप्त की 'बिरुद' या द्वितीय उपाधि थी, अथवा उसके तुरंत बाद ही सिंहासनारूढ़ होने वाले किसी अन्य उत्तराधिकारी की उपाधि रही होगी। यदि हम एलन के मत से सहमत भी हो जायें और यह स्वीकार भी कर लें कि पुरुगुप्त की उपाधि 'विक्रमादित्य' थी तो भी यह असम्भव नहीं कि उसने 'आदित्य' की उपाधि भी धारण की हो। एक ही राजा दो 'आदित्यों' की उपाधि धारण करते थे, यह स्कन्दगुप्त ('विक्रमादित्य' और क्रमादित्य) तथा वलभी के राजा (शीलादित्य धर्मादित्य) की दुहरी उपाधियों से भी सिद्ध हो जाता है। परन्तु, प्रकाशादित्य कौन था, इस विषय में अभी निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उसकी मुद्राओं में अश्वारोही एवं सिंहवधिक छाप मुद्राओं का समन्वय मिलता है। गुप्त-साम्राज्य[1] के दक्षिणी प्रान्तों में अश्वारोही तथा उत्तरी प्रान्तों में सिंहवधिक छाप की मुद्रायें मिली हैं।[2]

सम्राट्-पुरुगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र नरसिंहगुप्त बालादित्य सिंहासन पर बैठा। बालादित्य के बारे में कहा गया है कि यह वही राजा है जिसके सम्बन्ध में ह्वेनसांग ने लिखा था कि उसकी सेनाओं ने अत्याचारी मिहिरकुल को बन्दी बना रखा था। इस सम्बन्ध में हम यह भूल जाते हैं कि ह्वेनसांग ने जिस बालादित्य का उल्लेख किया है, वह बुधगुप्त[3] के पश्चात् राजा होने वाले तथागतगुप्त[4] का उत्तराधिकारी था जबकि नरसिंहगुप्त बालादित्य पुरुगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था जो पुरुगुप्त स्वयं कुमारगुप्त-प्रथम का पुत्र और स्कन्दगुप्त का उत्तराधिकारी था। ह्वेनसांग के अनुसार, बालादित्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम वज्र[5] था, जबकि नरसिंहगुप्त के उत्तराधिकारी का नाम कुमारगुप्त-द्वितीय

१. Allan, p. lxxxvi.

२. *Ibid*, xci.

३. बील, फ्लीट तथा वाटर्स ने 'फ़ो-तो-किओ-तो' का अर्थ बुधगुप्त बताया है, जो गुप्त-वंश में नहीं मिलता। परन्तु, उसके उत्तराधिकारी बालादित्य द्वारा मिहिरकुल को बन्दी बनाये जाने के उल्लेख से सिद्ध होता है कि इसका अर्थ 'बुधगुप्त' ही है। नामों के अपभ्रंश के अल्प उदाहरण भी मिलते हैं जैसे आंध्र-वंश की अनेक पौराणिक सूचियों में 'स्कन्द' का 'स्कन्ध' हो गया है।

४. *Life of Hiuen Tsang*, p. 111; *Si-yu-ki*, II, p. 168.

५. *Yuan Chwang*, II, p. 165.

था। यह बात सिद्ध हो गई है कि मिहिरकुल को पराजित करने वाला पुरगुप्त का पुत्र न होकर कोई अन्य ही व्यक्ति था।[1] मध्यदेश के पूर्वी भाग में ऐसे अनेक राजाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने 'विरुद' बालादित्य की उपाधि धारण की थी। यह बात प्रकटादित्य[2] के सारनाथ-अभिलेख से प्रमाणित हो जाती है। सन् ४७३ ई० में या इसके आसपास ही नरसिंहगुप्त की मृत्यु अवश्य हुई होगी। उसके पश्चात् उसकी रानी मित्रदेवी[3] से उत्पन्न कुमारगुप्त-द्वितीय क्रमादित्य उत्तराधिकारी हुआ।

नरसिंहगुप्त एवं उसके उत्तराधिकारियों की दो प्रकार की धनुषधारी छाप मुद्रायें थीं। एलन के अनुसार, इनमें से एक प्रकार की मुद्रायें गंगा की निचली (दक्षिणी) घाटी में, तथा दूसरे प्रकार की मुद्रायें गंगा की ऊपरी (उत्तरी) घाटी में प्रचलित थीं। 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प'[4] के अनुसार यह निर्विवाद सत्य है कि बालादित्य (बालाह्य) तथा कुमार (द्वितीय) के साम्राज्य का अंग पूर्वी भारत भी था।

१. डॉ० भट्टसाली तथा बसाक ह्वेनसांग के मत से सहमत हैं, परन्तु वे *Life of Hiuen Tsang* (p. 111) के प्रमाण को कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। आगे चल कर हम देखेंगे कि इसकी पुष्टि प्रकटादित्य के सारनाथ-अभिलेख तथा 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' से भी होती है। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ह्वेनसांग द्वारा वर्णित बालादित्य (प्रकटादित्य एवं वज्र के पिता) भानुगुप्त थे।

२. *CII*, p. 285. यशोवर्मन के नालन्दा-पाषाण-अभिलेख में भी किसी बालादित्य का उल्लेख मिलता है (*Ep. Ind.*, 1929, Jan., 38) तथा एक सील में लिखा है कि 'श्री नालंदायाम् श्री बालादित्य गन्धकुडी' (*MASI*, 66, 38)।

३. *Ep. Ind.*, xxi, 77 (नालंदा की मिट्टी की सील तथा *ASI*, *AR*, 1934-35, 63) में कहा गया है कि कुमारगुप्त की माता का नाम श्रीमती देवी अथवा लक्ष्मी देवी न होकर मित्रदेवी था।

४. गणपति शास्त्री का संस्करण, p. 630; *Cf.* Jayaswal, *Imperial History*, 35.

बालाख्य नामसौ नृपतिर्भविता पूर्वदेशकः
तस्यापरेण नृपतिः गौडानां प्रभविष्णवः
कुमाराख्यो नामतः प्रोक्तः सोऽपिर् अत्यन्त धर्मवान् ।

३. कुमारगुप्त-द्वितीय तथा विष्णुगुप्त

नरसिंहगुप्त के पुत्र तथा भिटारी-सील के कुमारगुप्त-द्वितीय निस्संदेह नरसिंह बालादित्य की धनुषधारी-छाप मुद्राओं में वर्णित क्रमादित्य ही थे। सन् ४७३-७४ ई०[1] के सारनाथ-बुद्ध-प्रतिमा-अभिलेख में वर्णित कुमारगुप्त को भी वही बताया जाता है। डॉ० भट्टसाली, डॉ० बसाक तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि भिटारी-सील तथा सारनाथ के अभिलेख के कुमारगुप्त दो भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं। डॉ० भट्टसाली का मत है कि नरसिंह के पुत्र कुमार सन् ५००[2] के बहुत बाद हुए थे। परन्तु, उनका यह मत इस भ्रम पर आधारित है कि यह नरसिंहगुप्त वही हैं जिन्होंने मिहिरकुल को पराजित करके बन्दी बनाया था। डॉ० बसाक के अनुसार सारनाथ के कुमार, स्कन्द के तात्कालिक उत्तराधिकारी थे। उनके विचार में दो प्रतिद्वन्द्वी गुप्त-वंश एक ही समय में शासन कर रहे थे। इनमें से एक वंश में स्कन्द, सारनाथ के कुमार तथा बुद्ध थे, जबकि दूसरे में पुरु, नरसिंह तथा भिटारी-सील के नरसिंह के पुत्र कुमार थे। पाँचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुप्त-वंश के विभाजन का कोई उल्लेख अथवा संकेत हमें कहीं भी नहीं मिलता। इसके विपरीत, मुद्राओं से यही ज्ञात होता है कि स्कन्द एवं बुद्ध दोनों ने ही बङ्गाल से लेकर पश्चिम तक के विस्तृत साम्राज्य पर शासन किया। हमने अभी देखा है कि 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' के अनुसार 'बालाख्या' अर्थात् बालादित्य एवं उसके उत्तराधिकारियों का शासन 'पूर्व देश' (पूर्वी भारत), जिसमें गौड़ प्रान्त[3] भी था तक फैला था। यदि हम तथाकथित प्रतिद्वन्द्वी सम्राटों स्कन्दगुप्त तथा बुद्धगुप्त[4] का शासन मानते हैं तो फिर गुप्त-वंश के इन राजाओं की सत्ता को हम किस प्रकार सही ठहरा सकेंगे ! अतः, हमारे समक्ष ऐसा कोई

---

१. देखिये *ASI*, *AR*, 1914-15, 124; *Hindusthan Review*, Jan., 1918; *Ann. Bhand. Inst.*, 1918-19, 67 ff and *JBORS*, iv, 344, 412 में वेनिस, पाठक, पाण्डेय, पन्नालाल तथा दूसरों के विचार देखिये।

२. *Dacca Review*, May and June, 1920, pp. 54-57.

३. जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प', pp. 630 f.

४. बुद्धगुप्त की सील (*MASB*, No. 66, p. 64) से सिद्ध होता है कि विरोधी होना तो दूर रहा, उल्टे वास्तव में बुध पुरुगुप्त का पुत्र था। डॉ० भट्टसाली ने जो अंतिम तिथि पुरुगुप्त के लिए दी थी, वह भी इस सील द्वारा ग़लत सिद्ध हो जाती है।

प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर हम इस सिद्धान्त को भ्रमात्मक कहें कि भिटारी-सील तथा सारनाथ-अभिलेख के कुमार एक ही व्यक्ति थे।

बुद्धगुप्त के शासन-काल की पहली ज्ञात तिथि सन् ४७६-७७ ई० है।[1] अतः कुमारगुप्त का शासन इस तिथि से पूर्व अवश्य समाप्त हो गया होगा।

---

१. 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' के लेखक के अनुसार बालादित्य के पुत्र कुमार-द्वितीय के उत्तराधिकारियों में से एक ने 'उकाराख्य' की उपाधि धारण की थी। हो सकता है कि जैसा जायसवाल जी का कथन है, यह उपाधि प्रकाशादित्य के लिये रही हो, क्योंकि उनकी मुद्राओं में एलन को 'रु' अथवा 'उ' शब्द मिले हैं। परन्तु 'उ' शब्द बुधगुप्त के लिए आया है (*An Imperial Histoy of India*, 38), यह मत सही प्रतीत नहीं होता। 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' में इसके समाधान के लिये उपगुप्त, उपेन्द्र का भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि ऐसा कोई लेख अथवा कोई मुद्रा नहीं है, जिसके आधार पर उसके शासन-काल को सिद्ध किया जा सके, फिर भी उपगुप्त नाम के राजा का होना कुछ अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि मौखरी-रिकार्डों में ईशानवर्मन की माता उपगुप्ता का उल्लेख मिलता है (असीरगढ़-सील, फ्लीट, *CII*, p. 220 तथा नालन्दा-सील, (*Ep. Ind.*, xix, p. 74)। देखिए भानुगुप्त और भानुगुप्ता, हर्षगुप्ता और हर्षगुप्ता महासेनगुप्त और महासेनगुप्ता। इस तरह के साम्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ईशानवर्मन की माता उपगुप्ता का कोई भाई उपगुप्त रहा हो। अगर इस कल्पना को सही मान लें तो उपगुप्त का समय भी ईशानवर्मन की माता उपगुप्ता (छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध : बुद्धगुप्त के कुछ बाद) का समय ही होगा। यदि 'उ' से उपेन्द्र (विष्णु अथवा कृष्ण) का बोध होता है तो इसका संकेत विष्णुगुप्त अथवा कृष्णगुप्त की ओर उसी प्रकार हो सकता है, जैसे सोमाख्य से गौड़ के राजा शशांक का। नालन्दा में प्राप्त एक टूटी सील में कुमारगुप्त के पुत्र महाराजाधिराज श्री विष्णुगुप्त का भी उल्लेख मिलता है (*Ep. Ind.*, xxvi, 235; *IHQ*, XIX, 19)। उपलब्ध साधनों के आधार पर यह कहना असम्भव है कि वह अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त अथवा अपने चाचा बुधगुप्त की मृत्यु के बाद राजा बना था। जो विद्वान् यह कहते हैं कि वह और उसके पिता बुधगुप्त के पश्चात् हुए थे, उन्हें भिटारी तथा नालन्दा सीलों के कुमारगुप्त को सारनाथ के राजकुमार से भिन्न करना पड़ेगा। यद्यपि यह कुछ असम्भव नहीं है; फिर भी हमें उस समय तक प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी जब तक कि इस दिशा में अनुसंधान नहीं हो जाता।

पुरु, नरसिंह तथा कुमार-द्वितीय के शासन की अवधि अत्यन्त अल्प थी। कदाचित् तीनों के राज्य-काल की अवधि १० वर्ष (सन् ४६७ से ४७७ ई०) थी। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। वेंगी में तीन पूर्वी चालुक्य-राजा विजयादित्य-चतुर्थ, उसका पुत्र अम्मराज-प्रथम तथा अम्मराज के पुत्र विजयादित्य ने मिलकर कुल सात वर्ष ६½ मास[1] तक ही राज्य किया। कश्मीर में छः राजाओं—सूरवर्मन-प्रथम, पार्थ, शम्भुवर्मन, चक्रवर्मन, उन्मत्तावन्ती तथा सूरवर्मन-द्वितीय—ने छः वर्षों से कम (सन् ६३३-३६ ई०) समय तक राज्य किया और राजाओं की तीन पीढ़ियों, जैसे यशस्कर, उनके चाचा वर्णाट और उनके पुत्र संग्रामदेव ने कुल दस वर्षों तक (सन् ६३६-४६ ई०) ही शासन किया। नालन्दा में प्राप्त एक टूटी सील से पता चलता है कि कुमार के पुत्र का नाम विष्णुगुप्त (सम्भवतः मुद्राओं का चन्द्रादित्य) था।

४. बुधगुप्त

आधुनिक प्रमाणों से सिद्ध पुरुगुप्त[2] के पुत्र बुधगुप्त के सम्बन्ध में अनेक लेख एवं मुद्रायें हैं, जिन पर तिथियाँ अंकित हैं। अतः उनके आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि उसने लगभग २० वर्षों (सन् ४७७ ई० से ४६५ ई०) तक राज्य किया था।

दीनाजपुरजिले के दामोदरपुर ग्राम में दो ताम्रलेख मिले हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि बुधगुप्त के राज्य में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति (साधारणतया उत्तरी बङ्गाल) भी था, तथा यहाँ पर उसके प्रतिनिधि (उपरिक महाराज) ब्रह्मदत्त एवं जयदत्त शासन करते थे।[3] सन् ४७६-७७ ई० के सारनाथ-अभिलेख एवं सन् ४७६ के बनारस-अभिलेख से सिद्ध होता है[4] कि काशी उसी के राज्य में

१. Hultzsch, *SII*, Vol. I, p. 46.

२. बुधगुप्त की सील (*MASB*, No. 66, p. 64)।

३. सन् ४७८-७६ ई० (*Mod. Rev.*, 1931, 150; प्रबासी, 1338, 671; *Ep. Ind.*, XX, 59 ff) के पहाड़पुर (प्राचीन सोमपुर ज़िला राजशाही) का लेख इसी गुप्त-राजा के समय का था। साथ ही मुंगेर ज़िले के नन्दपुर ग्राम में प्राप्त सन् ४८८-८६ का ताम्रपत्र भी इसी के राज्य-काल का था। पौराणिक साहित्य में बुधगुप्त के सम्बन्ध में देखिये—*Pro. of the Seventh Or. Conf.*, 576.

४. *JRASB*, 1949, 5ff.

था। सन् ४८४-८५ ई० में जनार्दन, अर्थात् विष्णु के सम्मान में एरण के शासक महाराज मातृविष्णु, तथा उनके भाई धन्यविष्णु द्वारा ध्वज-स्तम्भ की स्थापना, जबकि भूपति बुधगुप्त के शासन-काल में कालिन्दी (जमुना) तथा नर्मदा के बीच के क्षेत्र पर महाराज सुरश्मिचंद्र का राज्य था, इस बात का संकेत है कि मध्य-भारत का कुछ भाग, काशी तथा उत्तरी बङ्गाल बुधगुप्त के साम्राज्य के अंग थे।

इस राजा की मुद्राओं पर सन् ४९५ ई० अंकित है। एलन के अनुसार, उस समय भी मोरछाप रजत-मुद्रायें राज्य के मध्य भाग में प्रचलित थीं।[1] कुमारगुप्त-प्रथम तथा स्कन्दगुप्त की मुद्राओं के लेखों से ज्ञात होता है कि वे पृथ्वी एवं आकाश के स्वामी थे।

५. बुधगुप्त के उत्तराधिकारी

'ह्वेनसांग की जीवनी' के अनुसार बुधगुप्त के पश्चात् तथागतगुप्त और उनके पश्चात् बालादित्य गद्दी पर बैठे।[2] इसी समय मध्य भारत में गुप्त-नरेश की शक्ति एवं प्रभुता को हूण राजा तोरमाण ने चुनौती दी। पिछले अध्यायों में हमने देखा कि ऐरिकिण विषय (पूर्वी मालव में एरण, जो मध्य प्रदेश के सागर जिले में है) में सन् ४८४-८५ ई०में महाराज मातृविष्णु का शासन था। वे वहाँ पर बुधगुप्त के प्रतिनिधि के रूप में शासन करते थे। परन्तु, उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई धन्यविष्णु तोरमाण के पक्षधर बन बैठे। जो भी हो, मध्य भारत में हूणों की सफलता चिरस्थायी न हो सकी। हमारे पास इस बात का प्रमाण है कि सन् ५१०-११ ई० में गुप्त-सम्राट् की ओर से एरण में गोपराज नामक एक सेनापति तथा एरण के निकटवर्ती प्रदेश डभाला के राजा 'हस्तिन' ने युद्ध किया था। इससे सिद्ध होता है कि ५१८-१९ ई० में गुप्त-सम्राटों की प्रभुता त्रिपुरी विषय (जबलपुर ज़िले) में भी स्वीकार की जाती थी। ५२८-२९ ई० में डभाला के 'परिव्राजक महाराज' गुप्त-सम्राटों की सत्ता एवं प्रभुता स्वीकार करते थे। आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में परिव्राजक 'हस्तिन' तथा संक्षोभ गुप्त-साम्राज्य के मेरुदण्ड थे। 'हर्षचरित' के रचयिता बाण के अनुसार, प्रभाकरवर्धन (६०० ई०) तक पूर्वी मालव पर गुप्त-राजाओं का आधिपत्य कायम था। वैसे इसमें कोई संदेह नहीं कि मध्य भारत से हूणों को सदा के

१. देखिये महाभारत, ii, 32, 4; कालिदास, मेघदूत I, 45.

२. Beal, *Si-yu-ki*, II, p. 168; the *Life*, p. 111.

लिये निकाल दिया गया था।[1] कदाचित् जिस बालादित्य की सेना ने ह्वेनसांग के अनुसार, मिहिरकुल को बन्दी बनाया था, उसी ने मध्य भारत पर फिर से विजय प्राप्त कर उसे गुप्त-साम्राज्य का अंग बनाया। राजमाता के कहने पर ही बालादित्य ने तोरमाण के पुत्र एवं उत्तराधिकारी मिहिरकुल को मुक्त किया था। मुक्त होने के बाद मिहिरकुल ने उत्तर में एक छोटा-सा राज्य लेकर ही संतोष कर लिया।[2] इसमें कोई संदेह नहीं कि "इस पृथ्वी पर सबसे अधिक शक्तिशाली तथा पार्थ के समान बलशाली भानुगुप्त जिनकी उपाधि बालादित्य थी, अपने सेनापति गोपराज के साथ एरण गये, जहाँ प्रसिद्ध युद्ध में उन्होंने शत्रुओं को पराजित किया।" इस राजा भानुगुप्त की मृत्यु ५१०-११ ई०[3] में हुई।

---

१. मालव-क्षेत्र में हूणों के दीर्घकालीन अस्तित्व के लिये देखिये—*Ep. Ind.*, xxiii, p. 102.

२. Beal, *Si-yu-ki*, I, p. 171.

३. नालन्दा-पाषाण-अभिलेख (*Ep. Ind.*, XX, 43-45) के अनुसार बालादित्य अत्यन्त शक्तिशाली राजा था, जिसने अनेक शत्रुओं को पराजित किया था। सारनाथ-अभिलेख (Fleet, *CII*, 285 f) में जिस बालादित्य का उल्लेख मिलता है, उसकी पत्नी धवला से उत्पन्न उसके पुत्र का नाम प्रकटादित्य था। जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' (p. 637 ff) के अनुसार पकाराख्य (प्रकटादित्य) भकाराख्य (भानुगुप्त) के पुत्र थे। इसी प्रकार बौद्ध परम्पराएँ एवं जनुश्रुतियाँ भी, जैसा कि इस पुस्तक में पहले भी कहा जा चुका है, बालादित्य का सम्बन्ध भानुगुप्त से ही बताती हैं (देखिये जायसवाल, *An Imperial History of India*, 47, 53)। कोमिला के निकट गुणाइघर में प्राप्त एक अभिलेख तथा नालन्दा में प्राप्त कुछ सीलों से यह पता चलता है कि सन् ५०७ ई० के लगभग वहाँ वैन्यगुप्त नामक राजा शासन करता था। यह अवश्य ही मिहिरकुल अथवा उसके पिता का समकालीन रहा होगा। सील के अनुसार वह 'महाराजाधिराजा' था (*ASI*, *AR*, 1930-34, Pt. I, 230, 249; *MASI*, 66, 67; *IHQ*, XIX,275) तथा गुप्त-सम्राटों के साथ उसका सम्बन्ध भी था। डॉ० डी० सी० गांगुली के अनुसार मुद्राओं में पाया जाने वाला द्वादशादित्य (*IHQ*, 1933, 784,989) इसी का नाम था। परन्तु, नालन्दा-सील ऐसी दयनीय अवस्था में प्राप्त हुई है कि उसके सम्बन्ध में ठीक-ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

मंदसौर के जनेन्द्र[1] यशोधर्मन ने ५३३ ई० के पूर्व ही मिहिरकुल को अंतिम

---

१. यह कहना कि मंदसौर के यशोधर्मन ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी, और वह 'मो—ला—पो' के शिलादित्य का पिता, प्रभाकरवर्धन का श्वसुर, और उज्जैन का मुख्य शासक था, सर्वथा अनुचित होगा। फ़ादर हेरा (*JBORS*, 1927, March, 8-9) के अनुसार हूण राजा मिहिरकुल को बालादित्य ने जब पराजित किया, उसके पहले वह (मिहिरकुल) यशोधर्मन द्वारा बलहीन किया जा चुका था। कहा गया है कि बालादित्य के साथ युद्ध के समय मिहिरकुल प्रभुता-सम्पन्न सम्राट् था, जिसे मगध-सम्राट् कर देता था, तथा अपनी शारीरिक क्षीणता के कारण युद्ध करने से डरता भी था (Beal, *Si-yu-ki*, vol. I, p. 168)। लेकिन जिस तरह मंदसौर के जनेन्द्र ने मिहिरकुल को पराजित करके उसे 'दो चरणों पर सिर झुकाने' के लिए बाध्य किया, उससे यह सम्भव नहीं दिखता। सम्राट् बालादित्य की मिहिरकुल पर विजय एक स्थायी विजय थी। केवल कुछ समय के लिए ही मिहिरकुल ने सम्भवतः मगध पर अधिकार किया होगा। शीघ्र ही वह कश्मीर के सिंहासन पर आसीन हुआ और गांधार जीत लिया (Beal, *Si-yu-ki*, I, p. 171)। यशोधर्मन के दरबारी कवि के अनुसार मिहिरकुल मुख्य रूप से हिमाचल-प्रदेश का शासक था। निम्न-लिखित गद्यांश का अर्थ फ्लीट ने गलत लगाया और फ़ादर हेरा (p.8n) ने इसे सही समझा। इससे सभी कुछ स्पष्ट हो जायेगा—

"उस (यशोधर्मन) के चरणों की वन्दना वह प्रसिद्ध राजा मिहिरकुल करता था जिसने केवल देवता 'स्थाणु' को छोड़ कर किसी के समक्ष अपना मस्तक नहीं झुकाया था, जिसकी प्रतापी भुजाओं के संसर्ग से हिमाच्छादित पर्वत-शिखर भी अजेय दुर्ग बन जाते थे (Kielhorn, *Ind. Ant.*, 1885, p. 219)। कीलहॉर्न की इस व्याख्या को फ्लीट ने स्वीकार किया है। (यह कथन कि मिहिरकुल ने केवल देवता स्थाणु को छोड़ कर अन्य किसी के समक्ष अपना शीश नहीं झुकाया, सिद्ध करता है कि उसने बालादित्य के समक्ष भी नतमस्तक होना स्वीकार किया नहीं होगा जिसके कारण उसे मृत्यु-दंड मिला।)

रूप से पराजित कर दिया था। मंदसौर के पाषाण-स्तम्भ-अभिलेख[1] की छठी पंक्ति से ज्ञात होता है कि यशोधर्मन से समय में मिहिरकुल हिमालय-प्रदेश अर्थात् कश्मीर एवं उसके आसपास की भूमि का शासक था। जनेन्द्र यशोधर्मन ने जब गंगा के उद्गम-स्थल के आसपास के हिमाच्छादित प्रदेश पर चढ़ाई की तो मिहिरकुल को बाध्य होकर उसकी सत्ता स्वीकार करनी पड़ी।

यशोधर्मन का कथन है कि पूर्व में ब्रह्मपुत्र या लौहित्य तक उसका राज्य फैला हुआ था। यह असम्भव नहीं कि उसने बालादित्य[2] के पुत्र वज्र को पराजित कर युद्धक्षेत्र में उसका वध किया तथा पुंड्रवर्धन के दत्त-वंश को भी समाप्त कर दिया हो। ह्वेनसांग ने भी इस बात की पुष्टि की है कि मध्य भारत का कोई शासक (गुप्त-वंश का नहीं) वज्र का उत्तराधिकारी बना। इसी समय कुमारगुप्त-प्रथम के समय से पुंड्रवर्धन पर शासन कर वाले दत्त-वंश का जैसे नामोनिशान सदा-सदा के लिए मिट गया। किन्तु, जिस मंदसौर-अभिलेख में जनेन्द्र यशोधर्मन को विजयी बताया गया है, उसके ठीक १० वर्ष बाद सन् ५४३-४४ ई० में पुंड्रवर्धन भुक्ति पर मध्य भारतीय जनेन्द्र का कोई अधिकारी नहीं, बल्कि 'परमभट्टारक, महाराजाधिराज पृथ्वीपति' गुप्त-सम्राट् का कोई पुत्र प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था। इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि जनेन्द्र यशोधर्मन की मंदसौर-पाषाण-अभिलेख में उल्लिखित विजय अत्यन्त क्षणिक रही होगी।

---

१. *CII*, p. 146-147; जायसवाल, *The Historical Portion of Kalki*, p. 9.

२. जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, यदि बालादित्य का सम्बन्ध भानुगुप्त से है तो उसका पुत्र वज्र ही 'वकाराख्य' था, जो सारनाथ-अभिलेख के प्रकटादित्य का छोटा भाई (अनुज) था (Fleet, *CII*, 284 ff) । जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित 'आर्य-मंजुश्री-मूलकल्प' (p. 637-44) के अनुसार पकाराख्य भकाराख्य (भानुगुप्त) का पुत्र था। प्रकटादित्य को उक्त अभिलेख में बालादित्य एवं रानी धवला का पुत्र बताया गया है (देखिये जायसवाल, *An Imperial History of India*, p. 47, 53, 56, 63) ।

प्रारम्भिक गुप्त-सम्राट्
गुप्त
घटोत्कच
लिच्छवि
चन्द्रगुप्त-प्रथम=कुमारदेवी
(?) सन् ३२० ई०
समुद्रगुप्त=दत्तदेवी
ध्रुवदेवी = देवगुप्त-प्रथम (चन्द्रगुप्त-द्वितीय) विक्रमादित्य=कुबेरनागा
३७६–४१३ ई०
गोविन्दगुप्त
कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य (१) देवकी ?
युवराज ? ४१५-४५५ ई०
(२) अनन्तदेवी
गुत्तल के गुप्त
प्रभावती
दक्षिण में भोजकट के वाकाटक राजा आदि
स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य-द्वितीय
४५५ सी ४६७ ई०
पुरुगुप्त=श्रीचन्द्रदेवी (?)
? घटोत्कचगुप्त, मध्य भारत
नरसिंहगुप्त (बालादित्य)=श्रीमित्र देवी
बुधगुप्त, ४७७-सी, ४६५ ई०
कुमारगुप्त-द्वितीय क्रमादित्य
(?) ४७३-४७४ ई०
(?) तथागतगुप्त, सम्भवतः वैन्यगुप्त से सम्बद्ध
५०७ ई०
बालादित्य-द्वितीय (भानुगुप्त ?) ५१० ई०
विष्णुगुप्त
प्रकटादित्य (?)
वज्र (?)

६. कृष्णगुप्त के वंशज

सन् ५४३-४४ ई० की दामोदरपुर-प्लेट में दुर्भाग्यवश गुप्त-सम्राट् का नाम मिट-सा गया है। फिर भी, अपशद-अभिलेख से अनेक गुप्त-सम्राटों का पता चलता है, जिनमें से चौथा गुप्त-सम्राट् कुमारगुप्त (तृतीय) हराहा-अभिलेख[1] के अनुसार ५५४ ई०[2] के ईशानवर्मन मौखरी का समकालीन था। अतः कुमार-गुप्त-तृतीय एवं उसके तीनों पूर्वजों—कृष्ण हर्ष, और जीवित—को हम सन् ५१० ई० (भानुगुप्त की तिथि) से ५५४ ई० (ईशानवर्मन की तिथि) के बीच में रख सकते है। यह सम्भव हो सकता है, परन्तु निश्चित नहीं कि इनमें से एक राजा

१. यद्यपि नाम के अंत में 'गुप्त' शब्द वाले बहुत-से शासकों का उल्लेख अप-शद तथा अन्य समकालीन लेखों में मिलता है, जो गुप्त-साम्राज्य के मुख्य प्रान्तों में राज्य करते थे और सुविधा के लिये 'गुप्त-शासक' ही कहे गये। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि गुप्त-वंश अथवा गुप्त-कुल से उनका क्या और कैसा सम्बन्ध था? यह याद रखने की बात है कि उनमें से कुछ (जैसे कुमारगुप्त, देवगुप्त आदि) के नाम प्रारम्भिक वंशावली में मिलते है तथा कुछ विद्वानों के अनुसार इस नये गुप्त-वंश की नींव डालने वाले कृष्णगुप्त और कोई नहीं चन्द्रगुप्त-द्वितीय के पुत्र गोविन्दगुप्त का ही दूसरा नाम था। परन्तु, इस तथ्य को हम ज्यों-का-त्यों स्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि गोविन्दगुप्त कृष्णगुप्त से लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ था। अगर ऐसा है तो यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि कृष्ण-गुप्त की वंशावली प्रस्तुत करने वालों ने गुप्त-वंश के राजघराने के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति (गोविन्दगुप्त) का नाम क्यों छोड़ दिया! अपशद-अभिलेख में इस वंश को केवल 'सद्वंश' कहा गया है। इस गुप्त-वंश का पुराने गुप्त-वंश से कोई संबंध नहीं था, इसकी पुष्टि बाण भी करते हैं। बाण की 'कादम्बरी' तथा 'हर्षचरित' में जिन गुप्तों और 'गुप्त-कुलपुत्रों' का उल्लेख मिलता है, निश्चय ही उनका सम्बन्ध कृष्णगुप्त और उसके वंशजों से जोड़ा जा सकता है। प्रारम्भिक गुप्त-वंश का एक राजकुमार तुमेन-अभिलेख में उल्लिखित घटोत्कचगुप्त भी था जो पूर्वी मालव का शासक था। यह असम्भव नहीं कि कृष्णगुप्त का उससे किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध भी रहा हो। परन्तु, इस विषय में दृढ़ता से कुछ भी कह सकना सम्भव नहीं है। खोज अपेक्षित है।

२. एच० शास्त्री, *Ep. Ind.*, XIV, pp. 110 ff.

सन् ५४३-४४ ई०[1] के दामोदरपुर-प्लेट का गुप्त-राजा ही था। अपसाद-अभिलेख में यदि 'महाराजाधिराज' अथवा 'परमभट्टारक' जैसी ऊँची उपाधियाँ नहीं हैं तो इसका यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उल्लिखित राजा छोटे-मोटे शासक थे। मंदसौर-अभिलेख में कुमारगुप्त-प्रथम को इस प्रकार की कोई उपाधि नहीं दी गई है। इसी प्रकार एरण-अभिलेख में दिये 'बुध' के नाम के पूर्व भी कोई उपाधि नहीं है। परन्तु, इसी के साथ अपसाद अभिलेख में उल्लिखित अत्यन्त दुर्बल राजा माधवगुप्त की रानी को देव-बरणार्क-अभिलेख में 'परम-भट्टारिका' तथा 'महादेवी' कहा गया है।

कृष्णगुप्त के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। अपसद-अभिलेख में उसे नायक का रूप दिया गया है, जिसने 'सिंह' की जैसी अपनी बाहुओं से गर्वीले शत्रु (दृप्ताराति) की चिंघाड़ती हुई हस्तिसेना के मस्तक को तोड़ कर असंख्य शत्रुओं का मान मर्दन किया और उन पर विजय प्राप्त की। सम्भवतः यशोधर्मन ही वह गर्वीला शत्रु (दृप्तारति) था, जिसके विरुद्ध उसे युद्ध करना पड़ा था। उसके पश्चात्, दूसरा राजा 'देवश्री हर्षगुप्त' था, जिसे उन लोगों के साथ युद्ध करना पड़ा, "जो यह नहीं चाहते थे कि भाग्य की देवी लक्ष्मी उसे अपना वर चुने।" उसके वक्षस्थल पर नाना प्रकार के शस्त्रों के घाव थे। जिन शत्रुओं ने उस पर आक्रमण किया था, उनके नामों का उल्लेख हमें नहीं मिलता। हर्ष के पुत्र जीवितगुप्त-प्रथम ने सम्भवतः अपने वंश की प्रभुता पुनः हिमालय तथा सागर (पूर्वी भारत) के बीच स्थापित कर ली थी। "यद्यपि उसके शत्रु ठंडे सागर के तट पर ठंडी हवा में खड़े हुए थे, सागर में ज्वार-भाटा आ रहा था, और हाथियों द्वारा तट के वृक्ष गिराये जा चुके थे, फिर भी वे सब भय के ज्वर से पीड़ित थे।" समुद्र-तट पर खड़े हुए 'गर्वीले शत्रु' कदाचित् गौड़ थे, जिन्होंने विजय-अभियान आरम्भ कर दिया था। सन् ५५४ ई०[2] के हराहा-अभिलेख के अनुसार वे उस समय सागर-तट (समुद्राश्रय) पर रहते थे। अन्य शत्रु नन्दन-

१. श्री वाई० आर० गुप्ते (*Ind. Hist. Journal*) सन् ५४३-४४ ई० के अभिलेख में 'कुमार' का नाम पढ़ते हैं, परन्तु वे उसे नरसिंहगुप्त का पुत्र बताते हैं। जिस राजा का नाम नहीं मिल रहा है, वह इन्हीं के वंश का अथवा किसी अन्य नवीन वंश का रहा होगा। देखिये इस सम्बन्ध में वैन्यगुप्त और दूसरे राजकुमारों का उल्लेख—*Ep. Ind.*, xx, Appendix, pp. 214-15.

२. *Ep. Ind.*, XIV p. 110 *et seq.*

जैसे महत्त्वाकांक्षी कुमारामात्य रहे होंगे, जिनका उल्लेख अमौना-प्लेट में आया है।

इसके पश्चात् गद्दी पर बैठने वाले राजा कुमारगुप्त-तृतीय को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गौड़ लोग अपने राज्य, जो समुद्र-तट तक फैला हुआ था और जिसमें कर्णसुवर्ण[1] और राधापुरी[2] भी सम्मिलित थे, से निकल कर जब-तब आक्रमण करने लगे। इनके अतिरिक्त सहस्रों हाथियों की तीन पंक्तियाँ बनाने वाले आन्ध्र लोग तथा अनेक अश्वारोहियों की सेना के स्वामी शूलिक उसके दूसरे शत्रु थे। सम्भवतः माधववर्मन (प्रथम, जनाश्रय) आन्ध्र के राजा थे। पोलामुरुह-प्लेट के अनुसार वे विष्णुकुण्डिन-वंश के थे, पूर्वी क्षेत्र[3] पर विजय प्राप्त करने के लिए गोदावरी-पार गये थे, और उन्होंने ग्यारह बार अश्वमेध यज्ञ आयोजित किया था। शूलिक कदाचित् चालुक्य थे।[4] महाकूट-स्तम्भ-अभिलेख में यह नाम 'चालिक्य' के रूप में आता है। गुजरात के लेखों में हमें 'सोलकी' तथा 'सोलंकी' रूप भी देखने को मिलते हैं। 'शूलिक' इसी प्रकार किसी दूसरी बोली का रूप हो सकता है। महाकूट-स्तम्भ-अभिलेख से ज्ञात होता है कि चालिक्य-वंश के कीर्त्ति-वर्मन-प्रथम (छठी शताब्दी) ने अंग, वंग, मगध आदि देशों पर विजय प्राप्त की थी। उसके पिता ने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। "उन दिनों योद्धाओं पर विजय प्राप्त करने का एक मात्र उपाय यही था तथा महान् योद्धा वही होता था जो इस कसौटी पर खरा उतरता था।" जिन प्रदेशों के राजाओं को चुनौती दी जाती

---

१. एम० चक्रवर्ती, *JASB*, 1908, p. 274.

२. प्रबोध-चन्द्रोदय, Act II.

३. Dubreuil, *AHD*, p. 92 and D. C. Sircar, *IHQ*, 1933, 276 ff.

४. शूलिकों और शौलिकों का सम्बन्ध अपरान्त (उत्तरी कोंकण), वनवासी (कनारा) तथा विदर्भ (बरार) से बताया जाता है (बृहत्संहिता, IX, 15; XIV 8)। इतना ही नहीं, उन्हें गांधार तथा वोक्काण (वाखान) से भी सम्बद्ध बताया गया है (बृहत्संहिता, IX, 21, X, 7; XVI, 35)। सम्भव है इनकी एक शाखा उत्तरपश्चिम में भी रही हो। शुलिक-वंश के कुलस्तम्भ का भी उल्लेख मिलता है। तारनाथ *Ind. Ant.*, IV, 364) शुलिक-राज्य को टोगर (दक्षिण में टेर ?) में बताते हैं।

थी, उनके राज्य में यज्ञ का अश्व छोड़ दिया जाता था, तथा उसकी रक्षा के लिए एक सेना उसके पीछे चला करती थी। सम्भवतः राजकुमार कीर्त्तिवर्मन को इस सेना का नायक बना कर अश्व की रक्षा का भार सौंपा गया था।

इसी समय गंगा की ऊपरी घाटी में एक नयी शक्ति का उदय हो रहा था, जिसे उत्तरी भारत में अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिए गुप्तों से घनघोर युद्ध करना पड़ा। यह शक्ति 'मुखर' अथवा 'मौखरी' वंश[1] की थी। मौखरी-वंश की उत्पत्ति अश्वपति के सौ पुत्रों से हुई थी, जो राजा अश्वपति को वैवस्वत यम[2] (न कि मनु) से वरदान-रूप में मिले थे। यह वंश अनेक विभिन्न शाखाओं में बँटा हुआ था। इस वंश की एक शाखा के पाषाण-अभिलेख उत्तर प्रदेश के जौनपुर और बाराबंकी जिले में प्राप्त हुए हैं, जबकि दूसरी शाखा के लेख बिहार राज्य के ज़िले में मिले हैं। एक तीसरी शाखा के अभिलेख राजस्थान राज्य के कोटा में 'बड़वा' नामक स्थान पर प्राप्त हुए हैं। गया के मौखरी-शासक यज्ञवर्मन, शार्दूल-वर्मन, तथा अनन्तवर्मन सहायक राजा थे। बारबरा-पर्वत-गुफालेख[3] में शार्दूलवर्मन को उसके पुत्र ने 'सामन्त चूड़ामणि' की उपाधि से सम्बोधित किया है। तीसरी शताब्दी में बड़वा मौखरी पश्चिमी भारत के किसी राजा के अधीन सेनानायक

---

१. इस वंश को 'मुखर' तथा 'मौखरी' दोनों ही नामों से सम्बोधित करते थे। "सोम-सूर्य वंशाविक पुष्पभूति मुखर-वंशौ," "सकल भुवन नमस्कृतो मौखरी वंशः" (Parab's ed., हर्षचरित, pp. 141, 146) l *Cf. CII*, p. 229.

२. महाभारत, III, 216, 38 ff. अपनी पुत्री सावित्री के माँगने पर राजा अश्वपति के वरदानस्वरूप यम की कृपा से सौ पुत्र हुए थे, उसी ओर यह संकेत है। यह एक आश्चर्य की बात है कि कुछ लेखक मौखरी-लेख के वैवस्वत को मनु मानते हैं।

३. *CII*, p. 223. गया से मौखरियों का सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन था। इस बात की पुष्टि 'मोखलिश' अथवा 'मोखलिणम' अभिलेख से मिट्टी की सील द्वारा होती है (Fleet, *CII*, 14)। कदम्ब के राजा के चन्द्रवल्लि-पाषाण-अभिलेख में भी मौखरियों का उल्लेख मिलता है (*Arch. Survey of Mysore*, A.R. 1929, pp. 50 ff)। त्रिपाठी को इसी प्रकार का संकेत महाभाष्य में मिला है (*JBORS*, 1934 March)। बड़वा-अभिलेख के लिए देखिये—Altekar, *Ep. Ind.*, XXIII, 42 ff.

अथवा सैनिक राज्यपाल के पद पर कार्य करते थे। ऐसे ही कदाचित् उत्तर प्रदेश[1] की शाखा भी आरम्भ में किसी के आश्रित थी। इस वंश के प्रारम्भिक राजकुमार हरिवर्मन, आदित्यवर्मन तथा ईश्वरवर्मन केवल साधारण महाराज थे। आदित्यवर्मन की पत्नी हर्षगुप्ता कदाचित् हर्षगुप्त की बहन थी। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी ईश्वरवर्मन की पत्नी उपगुप्ता भी सम्भवतः गुप्त-वंश की ही राजकुमारी थी। हराहा-अभिलेख के अनुसार ईश्वरवर्मन तथा उपगुप्ता[2] के पुत्र ईशानवर्मन ने आंध्रों[3], शूलिकों तथा गौड़ों पर विजय प्राप्त कर के सर्वप्रथम 'महाराजाधिराजा' की सम्राटीय उपाधि-धारण की। इसी से उसे कुमारगुप्त-तृतीय के साथ संघर्ष में आना पड़ा।[4] इस तरह मौखरियों एवं गुप्तों में द्वन्द्व आरम्भ हुआ, तथा अंत में गुप्तों ने गौड़ों की सहायता से हर्षवर्धन के बहनोई ग्रहवर्मन मौखरी को पूर्ण रूप से पराजित कर उसके राज्य को नष्ट कर दिया।[5]

---

१. साहित्य में मौखरियों का सम्बन्ध उत्तर प्रदेश में कन्नौज से बताया जाता है, जो सम्भवतः किसी समय उनकी राजधानी रही होगी (*Cf.* सी० वी० वैद्य, *Mediaeval Hindu India*, I, pp. 9,33; Aravamuthan, *The Kaveri, the Maukharis and the Samgam Age*, p. 101)। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष से बहुत पूर्व कन्नौज पर पुष्यभूति के वंशजों का अधिकार था। हर्ष के उत्कर्ष के पूर्व तथा राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् कुशास्थल (कन्नौज) का शासक गुप्त-वंश का कोई सामन्त था (Parab's ed., हर्षचरित, pp. 226, 249)।

२. Fleet, *CII*, p. 220.

३. जौनपुर-पाषाण-अभिलेख में भी आंध्रों पर विजय का उल्लेख मिलता है (*CII*, p. 230)। इसी से फ्लीट के अनुसार पश्चिमी मालव की राजधानी धारा में हुए युद्ध का भी पता चलता है। डॉ० बसाक का मत है कि इसमें 'धारा' शब्द का प्रयोग तलवार की धार के अर्थ में हुआ है, न कि किसी नगर आदि के अर्थ में (*Hist. N. E. India*, 109)।

४. जो व्यक्ति यूरोप के इतिहास से भली भाँति परिचित हैं, उन्हें अच्छी तरह से ज्ञात होगा कि प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि का अर्थ यह नहीं है कि जो राजा इस उपाधि को धारण करें, वे सभी एक ही वंश के हों।

५. ग्रहवर्मन के उत्तराधिकारी साधारण सरदारों की तरह ही रह गये होंगे। उनके साथ सातवीं शताब्दी में गुप्त-वंश के अंतिम राजाओं में से किसी एक ने वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ईशानवर्मन की माता एवं दादी गुप्त-वंश की थीं। छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में साम्राज्य स्थापित करने वाले प्रभाकर वर्धन की माता भी गुप्त-वंश की ही थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में लिच्छवियों[1] के साथ विवाह कर दूसरे राजा अपनी शक्ति बढ़ाते थे, उसी मक़सद से इस काल में गुप्त-वंश में विवाह-सम्बन्ध स्थापित किये जाते थे।

कुमारगुप्त-तृतीय ने दावा किया है कि "राजाओं में चन्द्रमा के समान ईशानवर्मन की सेना को बिलोकर उसने अपने आपको परम भाग्यशाली बना लिया।"[2] यह कोई मिथ्याभिमान की बात नहीं है, क्योंकि अन्य किसी भी स्रोत से यह ज्ञात नहीं होता कि मौखरियों ने कभी भी गुप्त-सम्राटों पर विजय प्राप्त की थी। कुमारगुप्त-तृतीय का अंतिम संस्कार प्रयाग में हुआ था, जिससे यह अनुमान होता है कि सम्भवतः प्रयाग उसके साम्राज्य का ही अंग था।

इस राजा के पुत्र एवं उत्तराधिकारी का नाम दामोदरगुप्त था। उसने मौखरियों[3] के साथ होने वाले युद्ध को जारी रखा और अंत में उनके साथ युद्ध करता हुआ स्वर्गवासी हुआ। मौखरियों के शक्तिशाली हाथियों की पंक्ति को जिससे

---

१. *Cf.* Hoernle, *JRAS*, 1903, p. 557.

२. अपशद-अभिलेख।

३. दामोदरगुप्त का मौखरी-शत्रु सूर्यवर्मन था या सर्ववर्मन। महाशिवगुप्त के सीरपुर-पाषाण-अभिलेख में सूर्यवर्मन के सम्बन्ध में लिखा है कि उसका जन्म उस शक्तिशाली एवं पवित्र वर्मन-वंश में हुआ था जिसका आधिपत्य मगध पर भी था। यदि यह सूर्यवर्मन ईशानवर्मन का ही पुत्र अथवा सूर्यवर्मन का वंशज था, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कुछ समय के लिये मगध की सत्ता गुप्त-सम्राटों के हाथों से निकल कर मौखरियों के हाथों में आ गई थी। जीवितगुप्त-द्वितीय के शाहाबाद जिले के देव-बरणार्क-अभिलेख से ज्ञात होता है (*CII*, pp. 216-18) कि मौखरी-वंश के सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन के अधिकार में बालादित्य-देव के पश्चात् मगध का एक बहुत बड़ा भाग आ गया था। ज़ाहिर है कि मगध के निकल जाने के बाद अंतिम गुप्त-सम्राटों के पास केवल मालव ही शेष बच रहा था, जब तक कि आगे चलकर महासेनगुप्त ने एक बार पुनः अपनी विजयों द्वारा लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक अपना साम्राज्य-विस्तार न कर लिया।

उन्होंने हूणों को पददलित किया था, तोड़कर वह दामोदरगुप्त मूर्च्छित हो गया और युद्धक्षेत्र में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ।[1]

दामोदरगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र महासेनगुप्त सिंहासनारूढ़ हुआ। 'हर्ष-चरित' में वर्णित पूर्वी मालव का शासक कदाचित् यही था। सम्भवतः इसी के पुत्र कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त को श्रीकंठ (थानेश्वर) के पुष्यभूति-वंश के प्रभाकर-वर्द्धन ने अपने दोनों पुत्रों—राज्यवर्द्धन एवं हर्षवर्द्धन—की सेवा में रखा था। मधुबन-दानपत्र तथा हर्ष की सोनपत-ताम्रसील से ज्ञात होता है कि प्रभाकर-वर्द्धन तथा महासेनगुप्त के वंश के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। ताम्रसील के अनुसार, 'महासेनगुप्त देवी' प्रभाकर की माता थीं, तथा आदित्यसेन के अफ़सद-अभिलेख से पता चलता है कि महासेनगुप्त के पुत्र माधवगुप्त की मित्रता हर्ष से थी।

मौखरियों की बढ़ती हुई शक्ति के भय से महासेनगुप्त ने पुष्यभूति से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था।[2] यह नीति काफ़ी सफल रही। परिणामस्वरूप उसके जीवन-काल में उस वंश से किसी प्रकार का युद्ध नहीं हुआ। परन्तु, इसी समय पूर्व की ओर से एक नया भय उत्पन्न हो गया। भगदत्त के वंशजों ने काम-रूप में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया। इस वंश के राजा सुस्थितवर्मन[3]

---

१. महाभारत (XII, 98, 46-47), रघुवंश (VII, 53), काव्यदर्श (II, 119), राजतरंगिणी (I, 68) आदि से ज्ञात होता है कि फ़्लीट द्वारा किये गये अर्थ के विरुद्ध जो कुछ कहा गया है, वह सब अमान्य है। सुरबंधुओं के महत्त्व को (जो मनुष्य न थीं) *Bhand. Com. Vol.*, 181 का लेखक तथा डॉ० त्रिपाठी की *History of Ancient India* का आलोचक ठीक से समझ नहीं सके।

२. कदाचित् दूसरे आक्रमणकारी राज्यों का नाम 'हर्षचरित' के चौथे उच्छ्-वास में है। जिस अंश में लाटों का उल्लेख आता है, वे कदाचित् कटच्चुरि रहे होंगे, जिन्होंने अन्ततः सन् ६०८ ई० के लगभग गुप्त-राजाओं को विदिशा से उखाड़ फेंका। कटच्चुरि (कलचुरि) राज्य में छठी शताब्दी के अन्त तथा सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लाट प्रदेश भी सम्मिलित था (Dubreuil, *AHD*, 82)।

३. देखिये निधनपुर-प्लेट। *JRAS* (1928) में एक लेखक पुनः यह सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि सुस्थितवर्मन कामरूप के राजा न होकर मौखरी राजा थे। परन्तु, इस नाम के किसी भी मौखरी-शासक का उल्लेख नहीं मिलता। सुस्थित-वर्मन का ब्रह्मपुत्र से सम्बन्धित होना, यही सिद्ध करता है कि उस नाम के जिस शासक का उल्लेख निधनपुर-प्लेट में है, वह यही था।

का महासेनगुप्त के साथ युद्ध हुआ, जिसमें वह (सुस्थितवर्मन) स्वयं पराजित हुआ। अपशद-अभिलेख के अनुसार सुस्थितवर्मन को पराजित करने के पश्चात् महासेनगुप्त की प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई, तथा उस समय भी लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के तट तक उसकी कीर्त्ति के गीत गाये जाने लगे।''

महासेनगुप्त तथा उसके समकालीन प्रभाकरवर्द्धन के बीच, तथा महासेनगुप्त के छोटे अथवा सबसे छोटे पुत्र माधवगुप्त और उसके समकालीन हर्ष के बीच देवगुप्त-द्वितीय[1] नामक राजा हुआ था। इसका उल्लेख हर्ष के मधुबन तथा बंसखेर-अभिलेखों में मिलता है, जहाँ उन्हें उन राजाओं (जिनकी तुलना दुष्ट घोड़ों से की गयी है) में श्रेष्ठतम कहा गया है। उसे अपने-अपने कर्मों का फल राज्यवर्द्धन के हाथों भोगना पड़ा था। 'हर्षचरित' में गुप्त-राजाओं का सम्बन्ध मालव से बताया गया है। अतः, इसमें कोई संदेह नहीं कि देवगुप्त ही मालव का वह दुष्ट शासक था, जिसने ग्रहवर्मन मौखरी का वध किया था, तथा स्वयं बड़ी सहजता से राज्यवर्धन[2] के द्वारा पराजित हुआ था। गुप्त-राजाओं की वंशावली में देवगुप्त का स्थान निश्चित करना फ़िलहाल अत्यन्त कठिन है। सम्भवतः वह महासेनगुप्त का सबसे बड़ा पुत्र तथा कुमारगुप्त एवं माधवगुप्त का बड़ा भाई रहा होगा।[3] उसका नाम अपशद-अभि-

१. सम्राट् चन्द्रगुप्त-द्वितीय ही देवगुप्त-प्रथम थे।

२. ग्रहवर्मन तथा राज्यवर्द्धन का मालव-शत्रु बुद्धराज कलचुरि-वंश का था, जैसा कि एक विद्वान् ने सिद्ध करने की कोशिश की है, विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। यदि यही सही होता तो हर्ष के समय के अभिलेखों में बुद्धराज को न चुन कर देवगुप्त जैसे निर्बल राजा को ही इस उल्लेख के लिए क्यों चुना जाता, जबकि वह एक दुष्ट राजा था और राज्यवर्द्धन ने उसे कठोर दण्ड दिया था। राज्यश्री की मुक्ति तक की जो कथा 'हर्षचरित' में आती है, वहाँ गुप्त-राजाओं के मालव से सम्बद्ध होने का ही उल्लेख है। अन्तिम मौखरी-राजा का दुःखद अन्त, राज्यश्री की कठिनाइयों तथा राज्यवर्द्धन को जिनसे युद्ध करना पड़ा, उनमें गुप्त एवं गौड़ राजाओं का तो उल्लेख है, परन्तु किसी कटच्चुरि-राजा का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।

३. Hoernle, *JRAS*, 1903, p. 562. इस सुझाव को पूर्णतया निश्चित तथ्य नहीं माना जा सकता। सम्भव है कि देवगुप्त ने मालव-वंश की उस शाखा का प्रतिनिधित्व किया हो, जो पुष्यभूति-वंश तथा मौखरियों के प्रति शत्रुता की

लेख के राजाओं की सूची में नहीं मिलता। यह सम्भवतः उसी प्रकार है, जैसे भिटारी-लेख में स्कन्दगुप्त का नाम छूट गया है।

अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पूर्व राजा प्रभाकरवर्द्धन ने अपनी पुत्री राज्यश्री का विवाह मौखरी-राजा अवन्तिवर्मन के ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मन के साथ किया। उसके परम शत्रु के साथ पुष्यभूतियों के इस सम्पर्क के कारण देवगुप्त ने उनसे अलग हो कर ईशानवर्मन के समय से ही चले आ रहे मौखरियों के शत्रु गौड़ों के साथ मैत्री कर ली। प्रभाकर की मृत्यु के पश्चात् गुप्त-राजा तथा गौड़-राजा शशांक[1] ने मिल कर मौखरी राज्य पर सम्मिलित रूप से आक्रमण कर दिया। "मालव के दुष्ट राजा ने ग्रहवर्मन को समाप्त कर उसके साथ ही उसके सत्कार्यों को भी समाप्त कर दिया। रानी राज्यश्री के पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डाल कर कान्यकुब्ज में बन्दी बना दिया गया।" "उस दुष्ट राजा ने यह सोचकर कि सेना बिना नायक के है, थानेश्वर पर आक्रमण कर उसे जीत लेने का प्रस्ताव रखा।"[2] यद्यपि राज्यवर्द्धन ने बड़ी सरलता से मालव-सेना को पराजित कर दिया था, फिर भी गौड़-नरेश के झूठे विश्वास में आकर उन्होंने शालीनतावश हथियार रख दिया, जिसके परिणामस्वरूप वे अपने ही स्कन्धावार में मारे गये।

अपने शक्तिशाली शत्रु गौड़ों तथा गुप्तों को पराजित करने के लिए राज्यवर्द्धन के उत्तराधिकारी हर्ष ने कामरूप के राजा भास्करवर्मन, जिसके पिता सुस्थितवर्मन मृगाङ्क ने महासेनगुप्त से युद्ध किया था, से सन्धि कर ली। जैसाकि भास्कर के निधनपुर-प्लेट से ज्ञात होता है, यह सन्धि गौड़ों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुई।

भावना रखती रही हो; जबकि कुमार, माधव आदि गुप्त 'कुलपुत्र' जिन्होंने राज्यश्री को जेल से भाग जाने में सहायता की, और माधव के पुत्र आदित्यसेन, जिसने अपनी पुत्री का विवाह किसी मौखरी शासक से किया, मित्र-पक्ष के रहे हों।

१. ऐसा कोई कारण नहीं, जिससे विश्वास हो सके कि शशांक गुप्त-वंश का था (Allan, *Gupta Coins*, lxiv)। यदि यह भी सिद्ध हो जाये कि उसका उपनाम नरेन्द्रगुप्त था, तो भी इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह गुप्त-वंश का ही था, क्योंकि (अ) उसी की सील अथवा लेख इत्यादि में कोई विवरण नहीं मिलता जो उसे गुप्त-वंश का साबित कर सके; (ब) गरुड़ध्वज के स्थान पर नन्दिध्वज का प्रयोग; तथा (स) गौड़ों से उसका सम्बन्ध। छठी शताब्दी में 'समुद्राश्रय' गौड़ों की उपाधि थी। अतः, उसे मगध, मालव अथवा प्रयाग के गुप्त-राजाओं की उपाधि कहना भ्रमात्मक होगा।

२. हर्षचरित, उच्छ्वास 6, p. 183.

जिस समय भास्करवर्मन ने निधनपुर की प्लेट अंकित करवायी, उस समय कर्ण-सुवर्ण नगर पर उसका अधिकार था। कर्णसुवर्ण गौड़-राजा शशांक (सन् ६१६-३७ ई०) की राजधानी था। भास्करवर्मन ने सम्भवतः शशांक के उत्तराधिकारी जयनाग, जिसका उल्लेख वप्पघोषवाट-अभिलेख[1] में आता है, को पराजित करके कर्णसुवर्ण पर अधिकार किया होगा। फिर भी, गौड़ लोगों ने सहज में ही अपनी स्वाधीनता का अपहरण होने नहीं दिया। कन्नौज एवं कामरूप की आँखों में वे लगातार काँटे की तरह चुभते रहे, और यह शत्रुता और संघर्ष शशांक के उत्तराधिकारियों—पाल एवं सेन राजाओं—ने भी पूर्ववत् जारी रखा।

सन् ६०८ ई० के आसपास कटच्चुरियों ने गुप्त-राजाओं से विदिशा का राज्य छीन लिया। सन् ६३७ ई० के कुछ पूर्व मगध पर पूर्णवर्मन ने अधिकार कर लिया। महासेनगुप्त का छोटा अथवा सबसे छोटा पुत्र माधवगुप्त थानेश्वर तथा कन्नौज के शासक हर्षवर्द्धन का न केवल आश्रित ही था, वरन् उसके दरबार में भी रहता था। ६१८ से ६२७ ई० के बीच हर्ष ने भारत के चारों कोनों के राजाओं को दण्डित कर सन् ६४१ ई० में मगधाधिराज[2] की उपाधि धारण की। उसकी मृत्यु के पश्चात् गुप्त-वंश के योग्य एवं शक्तिशाली राजकुमार आदित्यसेन ने मगध पर गुप्त-वंश के राज्याधिकार को पुनरुज्जीवित किया। हर्ष की मृत्यु से सारे राज्य में फैली हुई अव्यवस्था के बीच ही उसने फिर से राज्य को हड़प लिया। इस गुप्त-सम्राट् के सम्बन्ध में प्रमाणस्वरूप हमें अनेक स्तम्भ-लेख, प्लेट और अभिलेख मिलते हैं। इनसे सिद्ध होता है कि उसका राज्य आसमुद्रान्त फैला हुआ था। अप-शद, शाहपुर और मंदार अभिलेखों से यह सिद्ध होता है कि पूर्वी और दक्षिणी बिहार पर उसका अधिकार निश्चित रूप से था। फ्लीट[3] द्वारा उल्लिखित देवबर के अभिलेख से पता चलता है कि उसके अधिकार में समुद्र तक की समस्त भूमि थी, तथा उसने अश्वमेध एवं अन्य दूसरे यज्ञादि किये थे। उसने मौखरियों और गौड़ों से पुनः अपना संबंध स्थापित किया, और 'सूक्ष्मशिव' नामक गौड़ सामन्त को अपनी सेवा में भी रखा। 'भोगवर्मन' नामक एक मौखरी-शासक ने उसकी पुत्री[4] के

१. *Ep. Ind.*, XVIII, p. 60 ff; संपा० जी० शास्त्री, आर्य-मजुंश्री-मूल-कल्प, p. 636. 'जय' नाम बुद्ध साहित्य में भी मिलता है।

२. *Ind. Ant.*, IX, 19.

३. *CII*, p. 213 n. कहा जाता है कि आदित्य ने तीन अश्वमेध यज्ञ किये थे।

४. Kielhorn, *INI*, 541.

साथ अपना विवाह कर उसका सहायक होना स्वीकार कर लिया। देव-बरणार्क-अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि उसके प्रपौत्र जीवितगुप्त-द्वितीय का 'जयस्कन्धावार' गोमतीकोट्टक पर था। इससे स्पष्ट है कि मध्यदेश की गोमती-घाटी में गुप्त-वंश के राजाओं का ही शासन था, मौखरियों का नहीं। मंदार-अभिलेख के अनुसार आदित्यसेन को परमभट्टारक' तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि प्राप्त थी। शाहपुर के पाषाण मूर्त्तिलेख से ज्ञात होता है कि सन् ६७२-७३ ई० में वह शासन कर रहा था। ऐसा लगता है कि 'सकलोत्तरा-पथ-नाथ' (सारे उत्तर भारत का स्वामी) उसे ही, अथवा उसके पुत्र देवगुप्त-तृतीय को, कहा गया है। देवगुप्त-तृतीय को चालुक्य-राजा विनयादित्य (६८०-९६ ई०) तथा विजयादित्य ने पराजित किया था।[1]

देव-बरणार्क-अभिलेख से ज्ञात होता है कि आदित्यसेन का उत्तराधिकारी देव-गुप्त-तृतीय, और देवगुप्त का उत्तराधिकारी विष्णुगुप्त-द्वितीय था।[2] विष्णु का पुत्र जीवितगुप्त-द्वितीय अंतिम सम्राट् था। इन सभी राजाओं ने शाही उपाधि ग्रहण कर रखी थी। वातापी के पश्चिमी चालुक्यों से ज्ञात होता है कि वे केवल कोरी उपाधियाँ ही नहीं थीं। सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में भी सम्पूर्ण उत्तरी भारत में उनका राज्य था। 'अपशद' तथा देव-बरणार्क अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस काल में केवल आदित्यसेन एवं उसके उत्तराधिकारी ही मगध तथा मध्यदेश के शासक थे।[3]

गुप्त-राजवंश को अंतिम रूप से गौड़-नरेशों ने समाप्त कर दिया। वे इस बात को नहीं भुला सके कि माधवगुप्त ने उन्हें धोखा दिया था, साथ ही आदित्य-सेन की सेवा में रह कर वे शक्तिशाली भी हो गये थे। कन्नौज के यशोवर्मन के समय (८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध) में मगध[4] पर किसी गौड़-राजा का अधिकार था।

---

१. *Bomb. Gaz.*, Vol. I, Part II, pp. 189, 368, 371; और केन्दूर-प्लेट।

२. बक्सर प्रदेश के मंगरांव-अभिलेख में भी इस राजा का उल्लेख है।

३. चालुक्यों तथा राजा जिह्-क्वान (आदित्यसेन) के सन्दर्भ के लिए देखिये—*IA*, X, p. 110.

४. देखिये—वाक्पतिराज का गौडवहो। बनर्जी ने गौड़ों तथा अन्तिम गुप्तों को मिलाकर बड़ी गड़बड़ी की है। हराहा-अभिलेख में गौड़ों को समुद्र के किनारे रहने वाला (समुद्राश्रय) बताया गया है, जबकि अन्तिम गुप्त-शासकों का राज्य

बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी में छोटे-छोटे गुप्त-राजकुमार कनेरी जिलों के शासक थे। इनका उल्लेख अक्सर अभिलेखों में मिलता है। गुप्त-शासकों का कनेरी से सम्बन्ध था, इसका उल्लेख तालगुण्द-अभिलेखों में भी मिलता है; जिसमें लिखा है कि कदम्ब-वंश के काकुस्थवर्मन ने अपनी पुत्रियों का विवाह गुप्त-राजाओं तथा दूसरे राजाओं के साथ किया था। पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी में चन्द्रगुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावतीगुप्ता के पुत्र वाकाटक राजा नरेन्द्र-सेन थे जिन्होंने कनेरी प्रदेश[1] की राजकुमारी कुन्तल से विवाह किया था। आश्चर्य की बात है कि कनेरी प्रदेश में 'गुत' अथवा 'गुप्त' अपने को उज्जयिनी[2] के शासक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य[3] का वंशज बताते हैं।

मगध एवं मालव में था। अपशद-अभिलेख के अनुसार समुद्र-तट के निवासी जीवितगुप्त-प्रथम से शत्रुता रखते थे। अपशद-अभिलेख के प्रशस्तिकारों को स्पष्ट रूप से गौड़ कहा गया है। यह उपाधि उन्होंने अपने किसी भी संरक्षक (गुप्त-शासक) को कभी भी नहीं दी। कृष्णगुप्त के वंश को 'सद्वंश' कहा गया है। पर, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर कहा जा सके कि उसकी तथा उसकी वंशावली लिखने वालों (चारणों, प्रशस्तिकारों) की राष्ट्रीयता एक थी। इस बात से, कि आठवीं शताब्दी (यशोवर्मन के शासन-काल) में मगध के शासक गौड़ कहे जाते थे, यह नहीं सिद्ध होता कि गौड़ तथा अन्तिम गुप्त-शासक एक ही थे। इस काल में मगध का आधिपत्य अन्तिम गुप्त-काल के शासकों से अभिन्न नहीं था। "मगधाधिपत्यमहताम् जात कुले वर्मणाम्" से सिद्ध होता है कि इस काल में मगध पर गुप्त-वंश के अतिरिक्त अन्य राजाओं का भी राज्य था।

१. Jouveau-Dubreuil, *AHD*, p. 76.

२. अन्तिम गुप्त-शासकों का वर्णन सर्वप्रथम *JASB*, (1920, No. 7) में प्रकाशित हुआ था।

३. *Bomb. Gaz.*, Vol. I, Part II, pp. 578-80; सर आर०जी०भण्डारकर, *A Peep into the Early History of India*, p. 60. इस संकेत के लिए मैं डॉ० भण्डारकर का आभारी हूँ।

अन्तिम गुप्त-सम्राटों की वंशावली
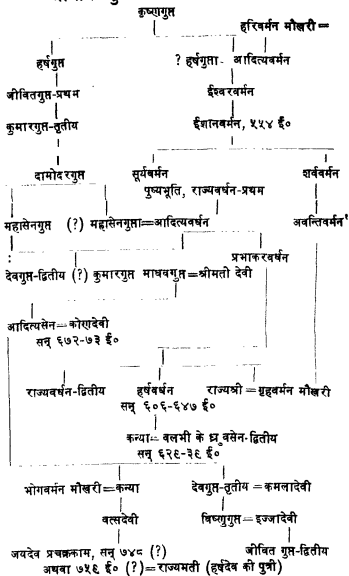
१. ए० घोष, *Two Maukhari Seals from Nalanda, Ep.*, **xxiv**, 285. अवन्तिवर्मन के एक अन्य पुत्र 'सुव' अथवा 'सुच' का भी उल्लेख मिलता है।......वह सम्भवतः अपने पिता के पश्चात् गद्दी पर बैठा था। 'हर्षचरित' (pp. 149, 183) में ग्रहवर्मन को भी राज-उपाधियाँ प्राप्त थीं। उपलब्ध प्रमाणों से स्पष्ट नहीं होता कि कौन किसके पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुआ था।

परिशिष्ट 'क'

अशोक के धर्म-प्रचार का पश्चिमी एशिया में प्रभाव[1]

भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा की उस ओर के विस्तृत भूभाग की चर्चा हमें 'बावेरु जातक' तथा सम्भवत: 'सुस्सोन्दी जातक' जैसे प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थों में मिलती है, तथा ईसा से तीसरी शताब्दी पूर्व के बुद्ध अभिलेखों में यहाँ के राजाओं का भी उल्लेख आया है। अशोक के विवरणों से ज्ञात होता है कि मगध के धर्म-प्रचारकों का ध्यान पूर्व की ओर न होकर पश्चिम की ओर अधिक था। प्राचीन बौद्ध-भिक्षुओं ने श्रीलंका[2] का जो विवरण दिया है, उसमें भी कहा गया है कि यवन-देश के "महारक्खित ने 'कालकाराम सुत्तन्त' के सम्बन्ध में भाषण दिया, जिसके परिणामस्वरूप १७० हज़ार व्यक्तियों को मोक्ष मिला, तथा दस सहस्र व्यक्तियों को 'पब्बज्जा' मिली।" यह अवश्य कहा जा सकता है कि यहाँ यवन-देश का अर्थ काबुल के कुछ भागों से ही है; यवनराज एण्टियोकोस[3] तथा उसके पड़ोसी

---

१. बी० सी० लॉ द्वारा सम्पादित *Buddhistic Studies* नामक लेख के आधार पर।

२. महावंश, Ch. XII.

३. डॉ० जार्ल कार्पेन्टियर ने *A Volume of Indian Studies presented to Professor E. J. Rapson* में एक लेख लिखा था, जिसमें अपने प्रिन्सेप (हुल्ट्ज़, अशोक, xxxi) के इस विचार को पुनःप्रतिपादित किया कि अशोक ने एण्टियोकोस सोटर (सी० २८१-६१) का 'अंतियक' शब्द से उल्लेख किया था। उसका अभिप्राय एण्टियोकोस थियोस (२६१-४१) से नहीं था। परन्तु, उसके इस सिद्धान्त का अर्थ यह होगा कि चन्द्रगुप्त ईसापूर्व ३२७-२५ में सिंहासनारूढ़ हुआ, तथा जस्टिन एवं प्लूटार्क द्वारा दी गई कथा, कि उसने सिकन्दर से भेंट की थी, केवल एक कपोल-कल्पना ही थी। यह सिद्धान्त न केवल जस्टिन तथा प्लूटार्क के साक्ष्य के विरुद्ध है, वरन् अब तक चन्द्रगुप्त के पूर्वजों के संबंध में जो कुछ भी ज्ञात है, इससे वह भी ग़लत हो जाता है। इस बात का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता कि चन्द्रगुप्त नाई-वंश का था। ब्राह्मण तथा बौद्ध-लेखकों ने उसके पूर्वजों को राज-परिवार से ही सम्बद्ध बताया है।

राजा तोलेमी, एण्टिगोनोस, मगस तथा सिकन्दर आदि के प्रदेशों से नहीं है जिनका उल्लेख अशोक के दूसरे तथा तेरहवें पाषाण-लेखों में मिलता है। राइस डेविड्स इन लेखों से निष्कर्ष निकालते हैं कि यवन-प्रदेश में केवल प्रचार मात्र में ही अशोक को सफलता मिली थी। उनका कथन है, "बहुत सम्भव है कि धर्म-प्रचार के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ा कर प्रतिपादित करने के लिए ग्रीक-नरेशों का यहाँ केवल उल्लेख मात्र ही हुआ है, जबकि वास्तव में वहाँ कोई धर्म-प्रचारक भेजा भी न गया हो।"[१] सर फ़्लिण्डर्स पेत्रे का मत है कि तोलेमी के शासन-काल में बौद्ध-पर्व, उत्सव-समारोह तथा स्वयं बौद्धधर्म के अनुयायी, आदि मिस्र तक पहुँच चुके थे। उनकी इस धारणा का आधार मेम्फ़िस में प्राप्त भारतीय मूर्त्तियाँ हैं। थिबेद में प्राप्त एक लेख से ज्ञात होता है कि 'सोफ़न नामक भारतीय'[२] ने उसे समर्पित किया था।

ग्यारहवी शताब्दी में अल्बेरूनी[३] ने लिखा है, "प्राचीन काल में खुरासान, फ़ारस, ईराक़ तथा सीरिया की सीमा तक फैले हुए मोसुल-प्रदेश के लोग बौद्धधर्म के मानने वाले थे। आधरबैजान से फिर ज़रथुस्ट्र ने आकर बल्ख (बक्त्र) में मागी-धर्म का प्रचार आरम्भ किया। राजा गुष्तास्प उसके विचारों से प्रभावित हुआ तथा उसके पुत्र इस्फ़ेन्दियाद (Isfendiyad) ने शक्ति एवं सन्धि दोनों ही तरीक़ों से इस धर्म का प्रचार पूर्व एवं पश्चिम में किया। चीन की सीमा से लेकर यूनान राज्य तक अपने सम्पूर्ण राज्य में उसने अग्नि देवता के मन्दिर बनवाए। उसके उत्तराधिकारियों ने फ़ारस तथा ईराक में पारसी-धर्म को अनिवार्य कर दिया। परिणामस्वरूप इन देशों से बौद्धधर्म मानने वालों को निष्कासित कर दिया गया और उन्हें बल्ख के पूर्वी प्रदेशों में शरण लेनी पड़ी।······इसके पश्चात् इस्लाम-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ।" सम्भव है कि उपर्युक्त विवरण पूर्ण रूप से सही न हो। यह कहना कि पारसी-धर्म के पूर्व ही पश्चिमी एशिया में बौद्धधर्म का प्रचलन था, भ्रमात्मक होगा। परन्तु यह कथन कि अल्बेरूनी से बहुत पूर्व पश्चिमी एशिया में शाक्यमुनि का धर्म प्रचलित था, परन्तु बाद में पारसी एवं इस्लाम धर्मवालों ने इसे नष्ट कर दिया, मान्य है। 'भूरिदत्त जातक'[४] में भी इसका उल्लेख है कि

१. *Buddhist India*, p. 298.

२. Mahaffy, *A History of Egypt under the Ptolemaic Dynasty*, 155 f.

३. Sachau, *Alberuni's India*, Vol. I, p. 21.

४. No. 543.

बौद्धधर्म वालों की अग्नि-उपासकों (पारसियों) से शत्रुता थी। ऐसा अनुमान है कि पारसियों ने बौद्धधर्म[1] के साथ होने वाले संघर्ष का उचित रूप से उल्लेख नहीं किया है।

अल्बेरूनी से चार शताब्दी पूर्व ह्वेनसांग ने लिखा है कि फ़ारस के एक प्रदेश लांग-की (का)-लो में लगभग १०० मठ तथा ६००० से भी अधिक महायान एवं हीनयान के अनुयायी थे। फ़ारस (पो-ला-सी) में ही दो या तीन संघाराम थे, जिनमें कई सौ भिक्षु, सरवास्तिवादिन विचारधारा के अनुसार, हीनयान का अध्ययन करते थे। इसी देश में राजा के राजभवन[2] में शाक्य बुद्ध का एक पात्र भी मिला है।

ऐसा प्रतीत होता है कि चीनी यात्री स्वयं फ़ारस नहीं गया था। फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि ईरान में बौद्धधर्म के अनुयायी, संघाराम तथा मठादि थे। स्टेन ने सीस्तान[3] प्रदेश में हेलमण्ड नामक स्थान के दलदलों में एक ऐसा ही मठ खोज निकाला है। मनीशियन धर्म के प्रवर्त्तक मानी, जिनका जन्म सन् २१५-१६ ई० में बेबीलोनिया के टेसीफ़ान नामक स्थान पर हुआ था, तथा सन् २४२ ई० में जिन्होंने सम्भवतः अपने धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया था, के विचारों पर भी बौद्धधर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।[4] अपनी पुस्तक शाबूरक़ान (शापुरखान) में उन्होंने भगवान बुद्ध को ईश्वर का संदेशवाहक कहा है। लेगि (Legge) तथा इलियट ने मनीशियन धर्म की एक पुस्तक का उल्लेख किया है, जिसका शिल्प बौद्ध-सूत्रों की तरह था। इसमें मानी को तथागत कहा गया है तथा बुद्ध एवं बोधिसत्त्व का भी उल्लेख मिलता है। बनियुनॉनजिओ की पुस्तक *Catalogue of the Chinese Translation of the Buddhist Tripitak* (App. II, No. 4) में हमें एक ऐसे पार्थियन राजकुमार का उल्लेख मिलता है, जो सन् १४८ ई० पूर्व बौद्ध-श्रमण (भिक्षु) हो गया था। अपनी पुस्तक में डॉ० स्मिथ ने एक चार भुजाओं वाले बौद्ध संन्यासी अथवा बोधिसत्त्व[5] का उल्लेख किया है, जिसके काली मूँछें एवं दाढ़ी है तथा जो फ़ारसवासियों के वेश में है। उसके

---

१. Sir Charles Eliot, *Hinduism and Buddhism*, III, 450.

२. Beal, *Records of the Western World*, Vol. II, p. 277-78; Watters, *Yuan Chwang*, II, 257.

३. Sir Charles Eliot, *Hinduism and Buddhism*, II, 3.

४. *Ibid.*, p. 446; *The Dacca University Journal*, Feb., 1926, pp. 108, 111; *JRAS*, 1913, 69,76,81.

५. P. 310.

बायें हाथ में वज्र है। यह तस्वीर तुर्किस्तान में 'दन्दान उलिक' नामक स्थान में मिली है। निस्संदेह इस प्रकार की तस्वीरें ईरान में विकसित बौद्धधर्म के प्रभाव से ही बनी होंगी, और बौद्धधर्म का यह रूप आठवीं शती तक वहाँ लोकप्रिय रहा होगा, क्योंकि 'दन्दान उलिक' में प्राप्त लकड़ी और प्लास्टर पर बने इन फ्रेस्कोज़ का समय स्मिथ ने आठवीं शताब्दी दिया है।

पश्चिमी एशिया में बौद्ध-साहित्य का कितना प्रभाव पड़ा, कहा नहीं जा सकता। सर चार्ल्स इलियट कुछ मनीशियन पुस्तकों तथा बुद्ध-सुत्तों एवं 'पातिमोक्ख' में बहुत कुछ समानता पाते हैं। उनका कथन है कि येरुसलेम के सिरिल के अनुसार, मनीशियन धार्मिक पुस्तकें किसी सीथियन विद्वान् द्वारा लिखी गई थीं तथा उसके शिष्य टेरेबिन्थस, जिसने अपना नाम बदल कर बोद्दस[1] (बुद्ध) रख लिया था, ने उसे संशोधित किया था। इसमें हमें बुद्ध शाक्यमुनि तथा बोधिवृक्ष का संकेत मिलता है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि बहुत-सी जातक कथाओं तथा 'अरेबियन नाइट्स' की कथाओं में बहुत कुछ समानता है। उदाहरण के लिए, समुग्ग जातक[2] में एक ऐसे राक्षस की कथा है, जो अपनी सुन्दर पत्नी को संदूक में बन्द कर इसलिए उसकी रक्षा करता था कि वह कहीं इधर-उधर न जा सके। परन्तु, इतने पर भी वह उसे दूसरों के साथ रँगरेलियाँ करने से रोक न पाया। इस कथा का सम्पूर्ण कथानक अरेबियन नाइट्स[3] में मिलता है। जातक में कहा गया है कि "स्त्रियों एवं उनकी क्रूरताओं से दूर रह कर कोई एकान्त वास का सच्चा

१. *Cf.* McCrindle, *Ancient India as described in Classical Literature*, p. 185. टेरेबिन्थस ने घोषित किया कि वह मिस्र की सभी विद्याओं में पारंगत था तथा अब उसका नाम 'टेरेबिन्थस' न होकर नवीन बुद्ध (बुद्दस) था। साथ ही यह कि उसका जन्म एक कुवाँरी कन्या से हुआ था। वह सीथियनस का शिष्य था, जिसका जन्म फ़िलीस्तीन में हुआ था और जिसने भारत के साथ व्यापार किया था।

२. No. 436.

३. Burton, *The Book of Thousand Nights*, I, 12 ff; Olcott, *Stories from the Arabian Nights*, p. 3; Lane's *Arabian Nights*, pp. 8-9. इसी प्रकार की एक कथा कथा-सरित्सागर (लम्बक X, तरंग 8) में भी मिलती है (Penzer, *The Ocean of Story*, Vol. II, pp. 151-52)। "स्त्रियों के प्रति इतना आसक्त होने से कष्ट ही कष्ट है, जबकि उनके प्रति उदासीन रह कर मनुष्य आवागमन से मुक्ति पा सकता है।"

सुख एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है।" इसी से मिलता-जुलता विवरण 'अरेबियन नाइट्स' में है—"किसी भी स्त्री का भरोसा न करो और न उनकी शपथ का विश्वास करो; क्योंकि उनकी प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता उनकी भावनाओं पर निर्भर करती है। उनका स्नेह-दान झूठा है, क्योंकि बेवफ़ाई उनके कपड़ों में छिपी रहती है।" आज स्थिति चाहे जो कुछ भी हो, परन्तु अति प्राचीन काल में पश्चिमी एशिया पर बौद्धधर्म का बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव अवश्य ही था।

परिशिष्ट 'ख'

कनिष्क और रुद्रदामन-प्रथम[1] की तिथियों के सम्बन्ध में एक टिप्पणी

कुछ वर्ष पूर्व[2] श्री हरिचरण घोष तथा प्रोफ़ेसर जयचन्द्र विद्यालंकार ने कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध में दो बहुत ही रोचक लेख लिखे हैं। विद्यालंकारजी डॉ स्टेन कोनोव तथा डा० वॉन विज्क के विचारों से सहमत होते हुए कहते हैं कि महान् कुषाण-राजा का राज्य-काल सन् १२८-१२६ ई० था। इस पुस्तक में दी गई व्याख्या की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि कनिष्क-प्रथम का राज्य सिन्धु नदी के उत्तरी मैदान (वास्तव में 'सिन्ध' शब्द न होकर यही शब्द प्रयुक्त हुआ है) में रुद्रदामन-प्रथम के काल में नहीं था। रुद्रदामन-प्रथम ने महाक्षत्रप की उपाधि स्वयं ग्रहण की थी। प्रो० कोनोव तथा डॉ० वॉन विज्क के निष्कर्ष के सम्बन्ध में प्रो० रैप्सन की १९३० के *JRAS* (p. 186-202) में प्रकाशित आलोचना के पश्चात् कुछ भी कहने को शेष नहीं रह जाता। इस अध्याय में हम केवल प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार तथा श्री हरिचरण घोष की इस पुस्तक में दिये गये मत के आधार पर की गई आलोचना के सम्बन्ध में कुछ कहने तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्रोफ़ेसर महोदय ने इस सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं कहा है कि कनिष्क की तिथि १-२३; वासिष्क की तिथि २४-२८; हुविष्क की तिथि ३१[3]-६० तथा वासुदेव की तिथि ६७-९८ यह सिद्ध करती है कि उनमें एक क्रम है। दूसरे शब्दों में कनिष्क को इस सम्वत् का प्रवर्त्तक कहा गया है। परन्तु, हमें ऐसी किसी भी सम्वत् का पता नहीं है जो उत्तर-पश्चिम भारत में दूसरी शताब्दी में प्रचलित रहा हो। उन्होंने अपना सारा ध्यान यह सिद्ध करने में लगाया है कि सन् १३०

---

१. *IHQ*, 1930, p. 149 ff.

२. *IHQ*, Vol. No. I, March, 1929, pp. 49-80 and *JBORS*, XV, parts I, II, March-June, 1929, pp. 47-63.

३. हुविष्क की सबसे प्राचीन ज्ञात तिथि २८ है।

से १५० ई० के बीच सिन्धु-सौवीर में रुद्रदामन का राज्य था। परन्तु, इसका यह अर्थ नहीं कि सुई-विहार तथा मुलतान पर भी उसका अधिकार था। अतः इससे यही ज्ञात होता है कि इस सम्वत् के ११वें वर्ष में, अर्थात् सन् १२८-२६ ई० में, अथवा लगभग १४० ई० में सुई-विहार पर कनिष्क का ही पूर्ण अधिकार था। इस तरह सिन्ध-सौवीर पर महाक्षत्रप रुद्रदामन का अधिकार होने से ऐतिहासिक तथ्यों में कोई गड़बड़ी नहीं होती। प्रोफ़ेसर महोदय इस बारे में स्पष्ट नहीं हैं कि रुद्रदामन की राज्य-सीमा को इस तरह सीमित कर देने से उस तथ्य का क्या होगा, जिसके अनुसार महाक्षत्रप रुद्रदामन ने शक्तिशाली यौधेयों को उनके अपने ही राज्य, जो सुई-विहार के भी उत्तर में स्थित था, में उन्हे पराजित किया था। यदि सुई-विहार पर कनिष्क का अधिकार था तो महाक्षत्रप उससे भी उत्तर में कैसे जा सका? उन्होंने इस कठिनाई का हल यह कहकर किया कि उत्तर मे कौसान (कुषाण?) सेना का दबाव पड़ने पर यौधेयों को विवश होकर मारवाड़ की मरुभूमि की ओर जाना पड़ा। कठिनाइयों के सम्बन्ध में इस प्रकार की व्याख्या तनिक भी विश्वास के योग्य नहीं है, वह भी तब; जबकि वह मरु-प्रदेश, जिसका उल्लेख प्रोफ़ेसर साहब ने किया है, रुद्रदामन के अपने ही अभिलेख के अनुसार उसके राज्य के अन्तर्गत था।

परन्तु प्रोफ़ेसर महोदय की यह धारणा कि सिन्ध-सौवीर में मुलतान तक का प्रदेश सम्मिलित नही था, क्या युक्तिसंगत है? अल्बेरूनी, जिसने अपने कथन को भौगोलिक तथ्यों, पुराणों तथा बृहत्संहिता पर आधारित किया है, कहता है कि सौवीर का अर्थ मुलतान तथा झारवार[1] (Jahravar) से ही था। इसके विपरीत, प्रो० विद्यालंकार 'युवान च्वांग' के मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि 'माउ-लो-सान-पु-लु' अर्थात् मूल-स्थान-पुर अथवा मुलतान मध्य पंजाब के चेक अथवा टक्क का एक उपशासित प्रदेश था। इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि चीनी यात्री का 'उपशासित' शब्द से अर्थ राजनीतिक उपशासन से है, भौगोलिक 'अन्तर्वेश' से नही। भारत ग्रेट ब्रिटेन का उपशासित था, परन्तु भौगोलिक दृष्टि से यह नही कहा जा सकता कि वह ब्रिटिश द्वीप का एक अंग था। दूसरी ओर अल्बेरूनी इस बात का तनिक भी संकेत नही देता कि सौवीर को मुलतान तथा झारवार कहने से उसका अभिप्राय यही था कि राजनीतिक दृष्टि से मुलतान सिन्ध का उपशासित था। यहाँ पर उसका अर्थ केवल भौगोलिक दृष्टि से है। उसने वराह-

१. 302.

मिहिर की संहिता से देशों का नाम लेकर अपनी धारणा सामने रक्खी है। मुलतान को सिन्ध का राजनीतिक उपशासित बनाना तो दूर, उसने अत्यन्त सावधानी के साथ सौवीर, अर्थात् मुलतान तथा झारवार से अलग सिन्ध का उल्लेख किया है।

यह विचार, कि प्राचीन सौवीर केवल दक्षिणी सिन्ध तक ही सीमित था तथा सिन्ध एवं सौवीर और कुछ न होकर आधुनिक सिन्ध थे, किसी भी तथ्य के द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सका है। युवान च्वांग सिन-तू से पूर्व की ओर जा कर, सिन्धु को पारकर, ९००ली पूरब की ओर स्थित माउ-लो-सान-पु-लु देश[1] में पहुँचा। इससे सिद्ध होता है कि माउ-लो-सान-पु-लु (मुलतान) के पश्चिम में सिन-तू था तथा वह सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर था। वात्स्यायन के कामसूत्र के टीकाकार ने अपने कथन[2] में 'सैन्धवानामिति', 'सिन्धुनामा नदस्तस्य पश्चिमेन सिन्धदेशास्तत्र भवानाम्' स्पष्ट किया है। निस्संदेह आधुनिक सिन्ध का एक बहुत बड़ा भाग प्राचीन सिन-तू, अर्थात् सिन्ध से स्पष्ट रूप से अलग था। साथ ही युवान च्वांग के समय में ए-तीन-पो-चिह-लो, पि-तो-सिह-लो तथा ए-फ़ॉन-तू उसी के एक भाग थे। आधुनिक सिन्ध का कुछ भाग सम्भवतः सौवीर में सम्मिलित रहा हो; तथा इसमे तनिक भी संदेह नहीं कि उसकी दक्षिणी सीमा सागर को छूती थी, क्योंकि 'मिलिन्दपञ्हो' में इस देश का उल्लेख उन देशों की उस सूची में हुआ है, जहाँ बहुत से जलयान आकर एकत्र होते थे। 'पेरिप्लस' के लेखक के द्वारा हमें ज्ञात होता है कि बारबरीकम (सिन्धु नदी के मुहाने पर) में आकर जलयान ठहरते थे। अल्बेरूनी के विवरण से स्पष्ट है कि सौवीर की उत्तरी सीमा मुलतान तक पहुँचती थी। अल्बेरूनी जैसा पुराणों का प्रकांड विद्वान् कोई ऐसी बात नही कह सकता जो आधारहीन अथवा ग़लत हो। वास्तव में कुछ पुराणों से भी स्पष्ट हो जाता है कि मुलतान सौवीर का ही अभिन्न अंग था। उदाहरण के लिए, स्कन्दपुराण[3] में 'मूल स्थान' अथवा 'मुलतान' के 'सूर्यमंदिर' के विषय में उल्लेख है कि यह मंदिर देविका नदी के तट पर बना हुआ था—

ततो गच्छेम्महादेवि मूलस्थानमिति श्रुतम्
देविकायास्तटे रम्ये भास्करं वारितस्करम्।

---

१. Watters, II, 254.
२. देखिये, बनारस-संस्करण, p. 295.
३. प्रभास-क्स् एत्र-माहात्म्य, Ch. 278.

अग्निपुराण[1] में देविका को सौवीर राज्य से विशेष रूप से सम्बद्ध किया गया है—

सौवीरराज्यस्य पुरा मैत्रेयोभूत् पुरोहितः
तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे।

युवान च्वांग के अनुसार मिन-तु तथा मुलतान सिन्धु नदी के तट पर आमने-सामने बसे, एक-दूसरे के पड़ोसी राज्य थे। यही तथ्य, कि सिन्धु एवं सौवीर एक-दूसरे के अत्यन्त निकट थे, प्राचीन साहित्य से भी सिद्ध होता है—

पतिः सौवीरसिन्धूनां दुष्टभावो जयद्रथः।[2]
कश्चिदेकः शिवीनाढ्यान् सौवीरान् सहसिन्धुभिः।[3]
शिबिसौवीरसिन्धूनां विषादश्चाप्यजायत।[4]

अतः एक ही समय में सिन्ध एवं सौवीर पर रुद्रदामन का अधिकार (उसी अर्थ में जिसमें पुराणों, वात्स्यायन के 'कामसूत्र' के टीकाकार, युवान च्वांग तथा अल्बेरूनी ने समझा था) तथा सुई-विहार पर कनिष्क का अधिकार होना समझ में नहीं आता।

सौवीर को मुलतान तथा झारवार सिद्ध करने के अतिरिक्त क्या यह तर्क असंगत प्रतीत होता है कि जिस शक्ति का अधिकार सिन्ध एवं मरु पर था, तथा जिसने जोहियावार के यौधेयों को युद्ध में परास्त किया था, उसी महाक्षत्रप रुद्र-दामन का अधिकार 'सुई-विहार' पर भी था ?

श्री एच० सी० घोष[5] का कथन है कि हमारे पास ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं है, जिसके आधार पर कहा जा सके कि कम से कम सन् १३६ ई० से सिन्ध एवं सौवीर पर रुद्रदामन का अधिकार था। उनकी धारणा यह भी है कि कनिष्क ने कोई सम्वत् चलाया, इस पर तर्क की गुंजाइश है। हम यह जानते हैं कि सन् १५० में "रुद्रदामन ने सम्पूर्ण पूर्वी एवं पश्चिमी आकरावन्ती, अनुपनीवृद, आनर्त्त, सुराष्ट्र, स्वभ्र, मरु, कच्छ, सिन्ध, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद तथा अन्य देशों पर अपनी शक्ति से विजय प्राप्त की थी।" इतने देशों को जीतने में निस्संदेह उसे

१. Ch. 200.
२. महाभारत, III, Ch. 266.
३. महाभारत, III, Ch. 266.
४. महाभारत, III, Ch. 270.
५. *IHQ*, 1929, p. 79.

बहुत समय लगा होगा। अन्धौ-अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इनमें से एक देश, सम्भवतः कच्छ, पर सन् १३० ई० में ही इस महाक्षत्रप का अधिकार हो गया था। *Political History of Ancient India* (द्वितीय संस्करण) के पृष्ठ २७७ पर बताया गया है कि सीथिया (सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग) की राजधानी का, 'पेरीप्लस' के समय में, नाम 'मिन्नगर' था। स्पष्ट है कि यह नाम इसीडोर द्वारा वर्णित शकस्थान में, मिन-नगर के आधार पर रखा गया होगा। रैप्सन ने बताया है कि चाश्तान के पश्चिमी क्षत्रपों के नामों में एक विशेषता यह थी कि उनके अंत में 'दामन'(-दम) शब्द का प्रयोग होता था। परन्तु, यही शब्द वोनोन्स के ड्रैन्जियन-वंश के एक राजकुमार के नाम के साथ भी पाया गया है। अंत में कार्द्मक-वंश, जिसमें महाक्षत्रप रुद्र की पुत्री उत्पन्न हुई थी, यह नाम फ़ारस की एक नदी 'कार्द्म' से लिया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि शक जाति जिससे चाश्तान तथा रुद्रदामन सम्बन्धित थे, ईरान के शकस्थान से निकल कर, सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग से होकर, कच्छ तथा पश्चिमी भारत के अन्य नगरों में फैली थी। इस सत्य के साथ ही यह देखते हुए कि कच्छ सिन्धु-घाटी के दक्षिणी भाग से सम्बन्धित था, यही विश्वास होता है कि सिन्ध तथा सौवीर की विजय-तिथियाँ एक दूसरे से वहुत दूर नहीं थीं। साथ ही, यह भी सम्भव है कि इनकी विजय कच्छ-विजय के पूर्व हुई हो, क्योंकि महाक्षत्रप का राज्य इन नगरों पर सन् १५० ई० में भी था। अतः यही न्यायसंगत प्रतीत होता है कि उसका राज्य इन पर सी-१३६ ई० से ही था।

श्री घोष के दूसरे कथन के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि कनिष्क की तिथि १-२३, वासिष्क की तिथि २४-२८, हुविष्क की तिथि २८-६० तथा वासुदेव की तिथि ६७-९८ से इस बात का संकेत मिलता है कि वे सब क्रमशः एक के बाद एक हुए थे। यदि हम यह अस्वीकार कर दें कि कनिष्क ने कोई सम्वत् चलाया था, तो उसके उत्तराधिकारियों—वासिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव—की तिथियाँ सम्वत् में न होकर सन् में होंगी, जिन्हें किसी भी दशा में स्वीकार नही किया जा सकता। कोई भी विद्वान् यह नहीं कहेगा कि वासुदेव की तिथि सन् ६७-९८ के बीच मान ली जाये।

———

परिशिष्ट 'ग'

उत्तर गुप्त-राजाओं पर एक टिप्पणी

अभी हाल में ही प्रो० आर० डी० बनर्जी ने कहा है कि माधवगुप्त के पिता, हर्ष के साथी, तथा अपशद-अभिलेख के महासेनगुप्त पूर्वी मालव के शासक कभी भी नहीं हो सकते। दूसरे, जिस सुस्थितवर्मन का उल्लेख अपशद-अभिलेख में मिलता है तथा जो लोहित अथवा लौहित्य प्रदेश में महासेनगुप्त द्वारा पराजित हुआ था, वह मौखरी-वंश का न होकर कामरूप का शासक था।

अपशद-अभिलेख तथा निधनपुर-प्लेट का जिन लोगों ने गहन अध्ययन किया है, वे तुरन्त इस दूसरे सिद्धान्त को स्वीकार कर लेंगे। यद्यपि आज भी अनेक पश्चिमी विद्वान् ऐसे भी मिलेंगे जो पता नहीं क्यों इसके विपरीत विचारों के हैं।[1] जहाँ तक पहली बात का प्रश्न है कि महासेनगुप्त पूर्वी मालव अथवा मगध का शासक था, प्रत्येक जिज्ञासु को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा—

(i) जीवितगुप्त द्वितीय देव-बरणार्क-अभिलेख में, जिसमें दक्षिण बिहार के एक ग्रामदान[3] का विवरण दिया हुआ है, बालादित्यदेव तथा उसके पश्चात् मौखरी सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन का उल्लेख आता है। इस ग्रामदान आदि के पूर्व इस सम्बन्ध में एक शब्द भी उनके समकालीन अंतिम गुप्त-राजाओं के बारे में नहीं कहा गया है। निस्संदेह यह लेख अस्त-व्यस्त है, परन्तु सर्ववर्मन तथा अवन्तिवर्मन का अधिकार इस बात को सिद्ध करता है कि उनके समकालीन अंतिम गुप्त-राजाओं का वहाँ सीधा शासन नहीं था।

---

१. सितम्बर-दिसम्बर १६२६ में *JBORS* (p. 561) में प्रकाशित एक लेख के आधार पर।

२. *JRAS*, 1928, July, p. 689 f.

३. डॉ० आर० सी० मजूमदार के इस मत की, कि यह गाँव उत्तर प्रदेश में था, डॉ० सरकार ने आलोचना करते हुए कहा है कि फ़्लीट ने गाँव का जो नाम पढ़ा है (जिस पर डॉ० मजूमदार अपना मत आधारित करते हैं), वह भ्रमात्मक है, अतः उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(ii) बारबरा तथा नागार्जुनि पहाड़ियों के गुफालेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी 'वर्मनों' की एक दूसरी भी शाखा थी जो अंतिम गुप्त-राजाओं के समय में गया ज़िले पर उनके प्रतिनिधि के रूप में शासन करती थी।

(iii) हर्ष के समय में मगध की यात्रा करने वाले चीनी यात्री ने लिखा है कि उस समय पूर्णवर्मन मगध का शासक था।[१] मगध के सम्बन्ध में उसने माधव-गुप्त अथवा उसके पिता के बारे में एक भी शब्द नहीं लिखा है।

(iv) महाकवि बाण ने अवश्य ही हर्ष के साथी माधवगुप्त का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से लिखा है कि उसके पिता मगध के नहीं, वरन् मालव के शासक थे। इस महान् सम्राट् के जीवनी-लेखक को इस बात का कोई पता नहीं था कि माधवगुप्त नाम के दो व्यक्ति थे, जिनमें से एक शायद मगध-सम्राट् का पुत्र रहा हो।

उपर्युक्त तथ्यों से दो बातें स्पष्ट होती हैं : (१) केवल एक ही माधवगुप्त, जिसका ज्ञान बाण को था और जो उसके संरक्षक (हर्ष) का मित्र था, का पिता मालव का राजा था। दूसरे, हर्षवर्धन द्वारा ६४१ ई०[२] में जीता गया मगध वर्मनों के अधिकार में था, गुप्त-राजाओं के अधिकार में नहीं। महाशिवगुप्त के सीरपुर-पाषाण-अभिलेख के समय मगध पर वर्मन-राजाओं का ही आधिपत्य था।

हर्ष के मित्र माधवगुप्त के पिता महासेनगुप्त मालव के शासक थे।[३] इसके विपरीत, प्रो० बनर्जी का सबसे प्रबल तर्क यह है कि मालव-नरेश के लिए यह कैसे सम्भव हुआ कि बिना किसी घोर विरोध के वह लोहित के तट तक पहुँच सके, जबकि बीच में दूसरे विरोधी राज्य स्थित थे। परन्तु प्रो० बनर्जी ने इसका बड़ा ही विचित्र समाधान प्रस्तुत किया। उन्होंने महासेनगुप्त को मगध का सम्राट् मान लिया और यह कल्पना कर ली कि सम्भवतः असम मगध के सीमान्त पर ही अवस्थित था और राधा तथा वंग अथवा मिथिला और वरेन्द्र मगध राज्य के अन्तर्गत शामिल थे। यद्यपि इसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं था, फिर भी हमने उनकी इस धारणा को स्वीकार इसलिए किया कि इसके बिना महासेन-गुप्त का सुस्थितवर्मन को पराजित करना सम्भव नहीं दिखता था।

यशोधर्मन के मंदसौर-अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि मालव का कोई राजा युद्ध करते-करते लोहित (ब्रह्मपुत्र) के तट तक जा पहुँचा था। जहाँ तक

१. Watters, III, 115.

२. *Ind. Ant.*, IX, 19.

३. *Political History of Ancient India*, Second Edition, p. 373.

महासेनगुप्त का प्रश्न है, अपसद-अभिलेख का सावधानी से अध्ययन करने वाला इतिहास का कोई भी सचेत विद्यार्थी यह समझ सकता है कि लौहित्य तक पहुँचने तथा उस पर अधिकार जमाने के लिये महासेनगुप्त के पूर्व-सम्राटों ने रास्ता साफ़ कर दिया था। उसके पितामह कुमारगुप्त ने प्रयाग तक विजय-पताका फहरायी थी, जबकि उसके पिता दामोदरगुप्त ने शक्तिशाली हाथियों की पंक्तियों को तोड़-कर मौखरियों के गर्व को चूर किया था। हमने देखा है कि हर्ष द्वारा मगध-विजय के पूर्व उस पर इसी मौखरी-वंश के शक्तिशाली वर्मनों का आधिपत्य था। दूसरी ओर, ईशानवर्मन मौखरी ने अपने बाहुबल द्वारा कुछ समय के लिये गौड़ की बढ़ती हुई शक्ति को बिलकुल ही रोक दिया था। अतः, समझ में नहीं आता कि अब ऐसी कौन-सी शक्ति शेष रह गयी थी, जो युद्धक्षेत्र में प्राण त्यागने वाले दामोदरगुप्त के पुत्र एवं उत्तराधिकारी महासेनगुप्त को लौहित्य के तट तक पहुँचने से रोक सके।[१]

---

१. *Cf.* Fleet, *Corpus*, III, pp. 203, 206; *Cf* also बीरक्षाया मोतिफ़, ante 606 n 1.

परिशिष्ट 'घ'

प्रारम्भिक गुप्त-साम्राज्य का पतन[1]

प्रतिभा-सम्पन्न समुद्रगुप्त एवं विक्रमादित्य ने अपने पराक्रम से जिस साम्राज्य का निर्माण किया था, वह पाँचवीं शताब्दी के अंत में अत्यन्त द्रुत गति से पतन की ओर अग्रसर होने लगा था। प्रारम्भिक गुप्त-वंश का अंतिम शासक समुद्र-गुप्त था जिसने सुदूर पश्चिमी प्रान्तों पर अपना अधिकार बनाये रखा था। सन् ४६७ ई० में उसकी मृत्यु के पश्चात् हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं, जिसके आधार पर कहा जा सके कि गुप्त-सम्राटों का सम्बन्ध सुराष्ट्र अथवा पश्चिमी मालव[2] के एक बड़े भाग से किंचित् मात्र भी था। कदाचित् बुधगुप्त (सन् ४७६-

---

१. सर्वप्रथम अप्रैल सन् १६३० के 'कलकत्ता-रिव्यू' में प्रकाशित।

२. इसका पता नहीं कि वलभी का राजा द्रोणसिंह, जिसके लिए 'परम-स्वामिन्' उपाधि का उल्लेख किया गया है, कौन था? यह धारणा कि उसका सम्बन्ध गुप्त-वंश से था, बहुत तर्कसंगत नहीं लगती। कुछ विद्वानों का कहना है कि जिस संवत् का प्रयोग वहाँ हुआ है, वह गुप्त-संवत् है (*IC*, V, 409)। परन्तु, यह आवश्यक नहीं कि यदि कोई वंश कोई नया सम्वत् चलाये तो उसके मानने वाले राजनैतिक रूप से उसके आश्रित हों। इसका महत्त्व केवल भौगोलिक हो सकता है—एक विशिष्ट क्षेत्र की प्रचलित परिपाटी को चालू रखने का प्रयत्न। गुप्त-राजाओं के अधीनस्थ मंदसौर के सामन्तों ने 'मालव-विक्रम-सम्वत्' का प्रयोग किया है। इसके विपरीत, गुप्त-साम्राज्य के बाहर शोरकोट-क्षेत्र में गुप्त-सम्वत् का प्रचलन था। तेजपुर भी सम्भवतः इसी कोटि में आता है, क्योंकि हमें इस बात का पूर्ण विश्वास नहीं है कि चौथी शताब्दी में वह कामरूप राज्य का अंग था भी, या नहीं। उपर्युक्त राजा हूण था, अथवा मंदसौर का शासक, इस सम्बन्ध में निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। निश्चित मत के अभाव में अटकल-पच्चू तौर पर निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना ठीक नहीं। छठी शताब्दी के प्रथम चरण में पश्चिमी मालव के मंदसौर-क्षेत्र से गुप्त-राजाओं का कुछ सम्पर्क अवश्य था, क्योंकि यशोधर्मन की मंदसौर-प्रशस्ति में 'गुप्तनाथैः' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'नाथ' शब्द से यह अर्थ भी निकलता है कि गुप्त-राजा कभी मंदसौर के भी स्वामी थे। परन्तु, उसी में 'हूणाधिप' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। अतः 'नाथ' शब्द का अर्थ मात्र 'स्वामी' या 'राजा' भी हो सकता है जिसका मंदसौर और (सन् ५३३ ई० या उसके आसपास के) गुप्त-सम्राटों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं भी हो सकता।

७७ से ४६५ ई०) वह अंतिम गुप्त-सम्राट् था जिसकी सत्ता गंगा तथा नर्मदा के तट तक स्वीकार की जाती थी। उसके पश्चात् जो भी राजा सिंहासनासीन हुए, उन्होंने किसी प्रकार पूर्वी मालव तथा उत्तरी बंगाल पर अपना अधिकार बनाये रखा। परन्तु उन्हें अपने चारों ओर के शत्रुओं से बराबर युद्ध करते रहना पड़ा। यदि जिनसेन[1] द्वारा उल्लिखित जनुश्रुति को सच माना जाय तो गुप्त-वंश का ह्रास सन् ५५१ ई० (३२०+२३१) में हुआ।

गुप्तानां च शत-द्वयं एकत्रिंशच्च वर्षाणि काल-विद्भिरुदाहृतम्।[2]

इसके पश्चात् आर्यावर्त्त मुखर (*cir.* ५५४ ई०)[3] तथा पुष्यभूति (हर्ष का वंश, सन् ६०६-४७ ई०) के अधिकार में आ गया। इन राजवंशों के समय में राजनीति का केन्द्र मगध से हट कर कन्नौज तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में आ गया। यद्यपि अंतिम गुप्त-राजाओं ने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि किसी प्रकार अपने वंश के लुप्त वैभव को पुनः स्थापित करें, परन्तु जब तक महाराज हर्ष जीवित रहे, उन्हें कोई सफलता नहीं मिल सकी।

प्रारम्भिक गुप्त-वंश के पतन के कारणों की खोज करने के लिये हमें कहीं दूर नहीं जाना है। परन्तु, फिर भी गुप्त-राजाओं के समकालीन उल्लिखित प्रमाणों के अभाव में उनका विशद् विवरण नहीं दिया जा सकता। इतना होने पर भी उनके पतन की कहानी स्पष्ट है। गुप्त-वंश के विनाश के अधिकांश कारण लगभग वही हैं, जिनसे १४वीं शताब्दी में तुर्की साम्राज्य, अथवा अठारहवीं शताब्दी में मुग़ल-साम्राज्य का पतन हुआ, अर्थात् (i) आंतरिक विद्रोह, (ii) बाह्य आक्रमण, (iii) पैतृक राज्यपालों का उदय तथा अपने-अपने क्षेत्र में इनका प्रभावाधिक्य, एवं 'महाराज' अथवा 'महाराजाधिराजा' की उपाधि धारण करने की प्रवृत्ति, और (iv) राजवंश में आपसी फूट एवं कलह आदि।

---

१. हरिवंश Ch. 60.

२. *Ind. Ant.*, 1886, 142; *Bhand. Com. Vol.*, 195.

३. *Ep. Ind.*, XIV, pp. 110-20; *JRAS*, 1906, 843 f. इस समय (५५४ ई० या ५६४ ई०), जैसा कि डॉ० भट्टसाली तथा सरकार का कथन है, असम के राजा भूतिवर्मन ने अश्वमेध यज्ञ कर के राजसी उपाधियाँ धारण की थीं। देखिये, 'भारतवर्ष', आषाढ़, 1348, p. 83 आदि; *Ep. Ind.*, xxvii, 18 f. अतः, सरकार के अनुसार उन्हें इस उल्लेख में गुप्त-सम्वत् का प्रयोग नहीं मिलता।

कुमारगुप्त-प्रथम के शासन-काल में ही इस वंश के लोगों में पुष्यमित्रों की लगातार विद्रोही प्रवृत्तियों से भय उत्पन्न हो गया था, परन्तु युवराज स्कन्दगुप्त ने उस खतरे को एक तरह से दूर कर दिया। उसके पश्चात् मध्य एशिया में घास के मैदान में एक दूसरे ही शक्तिशाली शत्रु का उदय हुआ। भिटारी, कुर, ग्वालियर, एरण के अभिलेखों तथा अनेक चीनी यात्रियों के विवरणों से सिद्ध होता है कि कुमारगुप्त-प्रथम की मृत्यु के बाद ही अत्याचारी, क्रूर हूणों ने राज्य के उत्तरी-पश्चिमी प्रान्तों पर आक्रमण कर पंजाब तथा पूर्वी मालव पर अपना अधिकार जमा लिया था।

इन नवागन्तुकों को भारतीय पहले से ही चीनियों के निकट सम्बन्धी के रूप में जानते थे। महावस्तु[१] में उनका उल्लेख चीनियों के साथ हुआ है, जबकि महाभारत[२] के सभापर्व में उनका नाम विदेशियों की उस सूची में आया है, जिसमें सर्वप्रथम चीनियों का आता है—

चीनान् शकांस्तथा च् ओड्रान् (?)[३] बर्बरान् वनवासिनः
वाष्र्णेयान् (?) हार-हूणांश्च कृष्णान् हैमवतंस्तथा।

'भीष्म-पर्व'[४] के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि हूणों का सम्बन्ध फ़ारस-वासियों से भी था। देखिये—

यवनास् चीन-काम्बोजा-दारुणा म्लेच्छजातयः
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह।

यह श्लोक उस समय का है जबकि हूणों का सम्पर्क फ़ारस के ससानियन वंश से हुआ।[५] कालिदास ने भी हूणों का संबंध फ़ारस से जोड़ा है, जहाँ केसर की खेती होती है तथा वंक्ष (आधुनिक आँक्सस[६]) नदी से सिंचाई होती है। स्कन्दगुप्त के शासन-

१. I. 135.

२. II, 51, 23-24.

३. इस सम्बन्ध में ओड्रों का उल्लेख असंगत है। इस महाकाव्य में 'तथाचोड्रान्' की जगह 'चडोतांच' पढ़ने का लोभ होता है। 'चडोत' मध्य एशिया में खोतान के निकट एक जगह का नाम है।

४. 9, 65-66.

५. Smith, *EHI*, 4th edition, p. 339; See also W.M. McGovern, *The Early Empires of Central Asia*.

६. *Ind. Ant.*, 1912, 265 f.

काल के प्रारम्भिक दिनों में उन्होंने बड़ी संख्या में भारत में घुसना प्रारम्भ किया, किन्तु सम्राट् ने उन्हें तुरन्त खदेड़ दिया। इसका उल्लेख हमें भिटारी-अभिलेख तथा व्याकरणाचार्य चन्द्रगोमिन के विवरणों में मिलता है।[1] स्कन्दगुप्त की मृत्यु के पश्चात् हूणों को रोकने के जो भी साधन थे, लगभग सभी समाप्त हो गये थे। यदि कृष्ण-तृतीय, राष्ट्रकूट के समकालीन सोमदेव का विश्वास किया जाये, तो हूण भारत में घुसते हुए चित्रकूट[2] तक जा पहुँचे। आधुनिक मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित एरण प्रदेश को उन्होंने वास्तव में जीत लिया था। उनके शासक तोरमाण तथा मिहिरकुल के समय में भारत में उनकी शक्ति के मुख्य केन्द्र चिनाब[3] के तट पर स्थित पव्वैया, शाकल (आधुनिक स्यालकोट) तथा उत्तरी पंजाब में स्थित चेनाब और देग़ के बीच के क्षेत्र थे।

हूणों के पश्चात् महत्त्वाकांक्षी सेनापतियों एवं सामन्तों का उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है। महाराज स्कन्दगुप्त के शासन-काल में सुराष्ट्र पर पर्णदत्त गोप्तृ का शासन था। पर्णदत्त को स्वयं सम्राट् ने सुदूर पश्चिम का राज्यपाल नियुक्त किया था। इसके कुछ समय बाद ही मैत्रक-वंश के भटार्क नामक एक सेनापति ने अपने आपको वहाँ का सैनिक शासक घोषित कर दिया और कदाचित् उसने वलभी को अपनी राजधानी बनाया। वह तथा उसके उत्तराधिकारी धरसेन-प्रथम केवल 'सेनापति' की उपाधि धारण करके ही संतुष्ट हो गये थे, परन्तु इनके पश्चात् 'भटार्क' (५०२-५०३ ई०) के द्वितीय पुत्र द्रोणसिंह ने 'महाराज' की उपाधि धारण की। छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस वंश की एक शाखा ने मो-ला-पो (मालवक)[4] अथवा मालव के सुदूर पश्चिमी भाग में अपना

१. *Ind. Ant.*, 1896, 105.

२. *Bhand. Com. Vol.*, 216. राजपूताना का चित्तौड़ भी चित्रकूट हो सकता है। परन्तु, अधिक सम्भावना इस बात की है कि चित्रकूट मध्य भारत में मंदाकिनी-तट पर था, जहाँ कभी भगवान राम अपने निर्वासन-काल में कुछ समय के लिए ठहरे थे। एक अभिलेख से पता चलता है कि मालव-क्षेत्र में हूण-मण्डल था (*Ep. Ind.*, XXIII, 102)।

३. *JBORS*, 1928, March, p. 33; सी० जे० शाह, *Jainism in Northern India*, p. 210, जिसमें आठवीं (?) शताब्दी के 'कुवलयमाला' से उद्धृत किया गया है।

४. Smith, *EHI*, 4th edition, p. 343.

राज्य स्थापित कर सह्य तथा विन्ध्य पर्वत[1] की ओर विजय-अभियान आरम्भ किया। इससे छोटी, एक दूसरी शाखा वलभी में ही शासन करती रही। सातवीं शताब्दी में इसी वंश के ध्रुवसेन-द्वितीय ने हर्ष की पुत्री से विवाह किया। उसके पुत्र धरसेन-चतुर्थ (सन् ६४५-४६ ई०) ने 'परमभट्टारक परमेश्वर चक्रवर्त्ती' की उपाधि धारण की थी।

परन्तु, मो-ला-पो तथा वलभी के मैत्रक ही केवल ऐसे सामन्त नहीं थे, जिन्होंने धीरे-धीरे अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। मंदसौर के शासकों ने भी यही मार्ग अपनाया तथा मध्यदेश के मौखरी और नव्यावकाशिका वर्द्धमान तथा बंगाल के 'कर्णसुपर्ण' के शासकों ने भी उनका अनुकरण किया।

प्रारंभिक गुप्त-काल में मंदसौर (प्राचीन दशपुर) अत्यन्त महत्वपूर्ण उपशासित प्रदेश था। औलिकर-वंश[2] के शासकों की यही राजधानी थी। वे महाराज चन्द्र-

---

१. वलभी के राजा धरसेन-द्वितीय के दो पुत्र शीलादित्य-द्वितीय धर्मादित्य तथा खरग्रह-प्रथम थे। ह्वेनसांग के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उसके समय (शीलादित्य की मृत्यु के कुछ समय पश्चात्) में मैत्रकों का राज्य दो भागों में विभाजित हो गया था। एक भाग वह, जिसमें मो-ला-पो तथा अन्य प्रदेश थे और जो शीलादित्य धर्मादित्य के वंशजों के अधिकार में था; तथा दूसरा भाग वह, जिसमें वलभी भी सम्मिलित थी तथा जिस पर खरग्रह के पुत्रों और वंशजों का अधिकार था। खरग्रह के पुत्रों में से एक का नाम ध्रुवसेन-द्वितीय बालादित्य या ध्रुवभट था जिसने कन्नौज के राजा हर्ष की पुत्री से विवाह किया था। चीनी लेखक के इस कथन की पुष्टि शीलादित्य-सप्तम के एलिना-अभिलेख से होती है (Fleet, *CII*, 171 f. esp. 182 n)। इसके अनुसार शीलादित्य-प्रथम धर्मादित्य का पुत्र देरभट सह्य एवं विन्ध्य पर्वतीय क्षेत्र का स्वामी था, जबकि खरग्रह-प्रथम के वंशजों का वलभी पर अधिकार था। नवलखी तथा नोगावा प्लेटों से ज्ञात होता है कि बहुधा एक ही शासक मालव तथा वलभी में शासन किया करता था। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खरग्रह-वंश लुप्त हो गया, तथा मैत्रक राज्य पुनः एक हो गये। वलभी-वंश का कनेरी देश से क्या सम्बन्ध था, इस विषय में मोरेस-कृत 'कदम्ब-कुल', पृ० ६४ देखिये। अभी हाल में ही खरग्रह-प्रथम (सन् ६१६-१७) का जो विरदी-ताम्रलेख खोजा गया है, उससे पता चला है कि उसका कुछ समय तक उज्जैन पर भी अधिकार था (*Pro. of the* 7th *Or. Conf.*, 695 ff)। यह ताम्र पत्र उज्जैन के कैम्प से ही प्रचलित किया गया था।

२. *Ep. Ind.*, XXVI, 130 ff; Fleet, *CII*, 153.

गुप्त-द्वितीय विक्रमादित्य तथा उसके पुत्र कुमारगुप्त-प्रथम महेन्द्रादित्य की ओर से उपशासक सामन्त थे। छठी शताब्दी में यहाँ एक नया दृश्य सामने आया। सन् ५३३ ई० में मंदसौर के शासक यशोधर्मन ने हूणों पर अपनी विजय से प्रोत्साहित होकर गुप्तनाथों (गुप्त-सम्राटों) की आज्ञाओं को मानने से इन्कार करके अपनी स्वतंत्र स्थिति बना ली। अपनी विजयों का महोत्सव मनाने के लिए उसने जगह-जगह विजय-स्तम्भ बनवाये। इन विजय-स्तम्भों पर उसके दरबारी कवियों और भाटों के अनुसार यशोधर्मन का राज्य लौहित्य या ब्रह्मपुत्र नदी से लेकर पूरे आर्यावर्त्त में पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से लेकर पूर्वी घाट या महेन्द्र पर्वत तक फैला हुआ था। उसकी मृत्यु के पश्चात्, साहित्य एवं हर्ष के समय के अभिलेखों में गुप्त-राजाओं को पुनः पूर्वी मालव का शासक बताया गया है। परन्तु, पश्चिमी मालव पर दुबारा उनका अधिकार नहीं हो सका। जैसा कि हमने पहले ही देखा है, इसका एक भाग मैत्रकों के राज्य में सम्मिलित कर लिया गया था। दूसरा भाग, अर्थात् अवन्ती, अथवा उज्जैन के आसपास का भाग जो पाँचवीं शताब्दी में विक्रमादित्य तथा महेन्द्रादित्य की शानदार राजधानी थी,[1] अगली शताब्दी में कटच्चुरि या कलचुरि वंश के शंकरगण के अधिकार में था। फिर मैत्रक-वंश के खरग्रह-प्रथम के अधिकार में गया। फिर ह्वेनसांग के समय में एक ब्राह्मण-वंश ने अवन्ती को हथिया लिया।[2] [3] आगे चल कर उस पर राष्ट्रकूटों, गुर्जर प्रतिहारों तथा अन्य वंशवालों का समय-समय पर अधिकार रहा।[4]

१. सोमदेव, कथा-सरित्सागर, Bk. XVIII; Allan, *Gupta Coins*, xlix n; *Bomb. Gaz.*, I, ii, 578.

२. G. Jouveau Dubreuil, *Ancient History of the Deccan*, 82.

३. Watters, *Yuan Chwang*, ii, 250. इस वंश का सम्बन्ध यशोधर्मन तथा विष्णुवर्धन के समय के मन्दसौर-अभिलेख में उल्लिखित नैगामों के सामन्तों से था। इसी वंश का अभयदत्त विन्ध्य प्रदेश के आसपास के क्षेत्र, पारियात्र (पश्चिमी विन्ध्य जिसमें अरावली पहाड़ियाँ भी सम्मिलित थीं) तथा सिन्धु (सागर अथवा इसी नाम की मध्य भारत की एक नदी) का शासक (राजस्थानीय सचिव) था। उसके भतीजे को 'नृपति' कहा गया है। इस राजा के छोटे भाई दक्ष ने सन् ५३३-३४ ई० में एक कुआँ खुदवाया था।

४. *Ind. Ant.*, 1886, 142; *Ep. Ind.*, XVIII, 1926, 239 (संजम-दानपत्र का नवाँ श्लोक); देखिये *Ep. Ind.*, XIV, p. 177 (प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल-द्वितीय के उज्जैन के राज्यपाल का उल्लेख)। संजम-अभिलेख से पता

इसके अलावा मुखर अथवा मौखरी नामक एक दूसरा राजवंश छठी शताब्दी में काफ़ी शक्तिशाली हो गया। इस वंश के राजाओं के पाषाण-अभिलेखों से पता चलता है कि उत्तर प्रदेश तथा बिहार के बाराबंकी, जौनपुर तथा गया ज़िलों पर उनका अधिकार था। चौथी एवं पाँचवीं शताब्दी में ये सभी प्रदेश गुप्त-साम्राज्य के अंतरंग अंग थे। छठी शताब्दी में इन स्थानों पर अवश्य ही मौखरियों का अधिकार हो गया था। मौखरी-वंश के कुछ शासकों की हैसियत देखते हुए यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी के आरम्भ में वे मात्र उपशासक या सम्राट् के प्रतिनिधि थे। लगभग ५५४ ई० में ईशानवर्मन मौखरी ने गुप्त-सम्राटों और कदाचित् हूणों के विरुद्ध तलवार उठायी तथा 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की। गंगा की ऊपरी घाटी में लगभग चौथाई सदी (सन् ५५४ ई० से ५८० ई०तक) मौखरी-राजवंश सबसे शक्तिशाली राजवंश था। कुछ हद तक उन्हें अपने वंश के सर्वशक्तिशाली राजा ग्रहवर्मन और उनके साले हर्षवर्द्धन (कन्नौज के स्वामी ?) के यश और शक्ति का जो अन्दाज़ था, वह ठीक ही निकला।

मौखरियों की तरह छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बङ्गाल के शासकों ने भी गुप्त-सम्राटों के जुएँ को अपने कन्धे से उतार कर स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। यह सच है कि चौथी-पाँचवीं शताब्दी में बंगाल पर गुप्त-राजाओं की सत्ता क़ायम थी। इलाहाबाद-स्तम्भ-अभिलेख में समतट (पूर्वी बंगाल) को समुद्रगुप्त के राज्य का 'प्रत्यन्त' (सीमा-प्रान्त) कहा गया है। अतः, इससे यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण पश्चिमी तथा मध्य बंगाल समुद्रगुप्त के साम्राज्य का अंग था, जबकि उत्तरी बंगाल (पुण्ड्रवर्धन भुक्ति) कुमारगुप्त-प्रथम के शासन-काल (सन् ५४३-४४ ई०)[1] से गुप्त-साम्राज्य का अंग बन गया, इसकी पुष्टि दामोदर-पुर-प्लेट से भी होती है। यद्यपि समतट गुप्त-साम्राज्य के बाहर था, फिर भी

चलता है कि प्रारम्भ में उज्जैन के राष्ट्रकूट राजा ने गुर्जर तथा अन्य सामन्तों को अपने यहाँ द्वारपाल (प्रतिहार) बना रखा था। यह कुछ असम्भव नहीं कि प्रारम्भ में जैसे गुर्जर और परमार लोग उज्जैन आने पर राष्ट्रकूटों के सामन्त थे, उसी प्रकार 'प्रतिहार' भी रहे हों, इसके पहले कि उन्होंने अपने उद्भव के रूप में अयोध्या के राजकुमार लक्ष्मण को खोज निकाला हो। यहाँ यह भी बता देना उचित होगा कि संयोगवश नागभट-वंश की जन्मभूमि (स्वविषय) मारवाड़ थी। इसका पता हमें जैन-ग्रन्थ 'कुवलयमाला' और बुचकल-अभिलेख से चलता है।

१. तिथि के लिये देखिये, *Ep. Ind.*, XVII, Oct., 1924, p. 345.

उसे गुप्त-सम्राटों की भयंकर शक्ति का अहसास हमेशा बना रहा। लेकिन ईशान-वर्मन के हराहा-अभिलेख से ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी के मध्य तक आते-आते गुप्त-साम्राज्य का राजनीतिक नक्शा बिलकुल बदल चुका था। गंगा की निचली घाटी में गौड़ों की एक नयी शक्ति का उदय हो रहा था। गौड़ों के विषय में पाणिनि[1] तथा कौटिल्य (अर्थशास्त्र)[2] दोनों ही को जानकारी थी। पाणिनि उनका सम्बन्ध पूर्व से जोड़ते हैं।[3] मत्स्य, कूर्म तथा लिंग पुराण[4] में एक ऐसा गद्यांश मिलता है, जिससे अनुमान होता है कि गौड़ों का उद्भव-स्थान श्रावस्ती-प्रदेश था। परन्तु, यही गद्यांश वायु तथा ब्रह्म पुराणों एवं महाभारत[5] में नहीं मिलता। प्राचीन साहित्य में श्रावस्ती के निवासियों को 'कोशलवासी' ही कहा गया है। वात्स्यायन, जिनका समय ईसा की तीसरी-चौथी शताब्दी बताया जाता है, अपने ग्रन्थ कामसूत्र में 'कोशल' और 'गौड़' दोनों को दो अलग-अलग देश बताते हैं।[6] मत्स्य, कूर्म तथा लिंग पुराणों की पाण्डुलिपि में आया हुआ 'गौड़' शब्द सम्भवत: 'गोंड़' के संस्कृत रूप की तरह प्रयुक्त हुआ होगा; जिस तरह कुछ आधुनिक पंडितों और प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति के जानकार विद्वानों और अखबारनवीसों ने मद्र-मंडल को मद्रास प्रेसीडेन्सी के लिए प्रयुक्त बताया है।[7] मध्य प्रान्त में बहुधा 'गोंड' के संस्कृत रूप को 'गौड़'[8] ही कहा जाता है। छठी शताब्दी में उत्पन्न वराहमिहिर ने 'गौड़क' को पूर्वी भारत का अंग बताया है। मध्य देश में स्थित प्रदेशों की सूची प्रस्तुत करते हुए उन्होंने गौड़ प्रदेश को उसमें शामिल नहीं

१. VI, ii, 100.

२. ii, 13.

३. *Cf.* VI, ii, 99 (in regard to accentuation)।

४. निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे द्विजोत्माह:—मत्स्य पुराण, XII, 30; देखिये लिंग पुराण, I, 65. निर्मिता येन श्रावस्ती गौड़देशे महापुरी (कूर्म पुराण, I, 20, 19)।

५. यशे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता (वायु पुराण, 88, 27; ब्रह्म पुराण, VII, 53); तस्या श्रावस्तको ज्ञेय: श्रावस्ती येन निर्मिता (महाभारत, III, 201, 4)।

६. 'कोशल' के लिए देखिये 'दशनच्छेद्य-प्रकरणम्', 'गौड़' के लिए देखिये 'नखच्छेद्य-प्रकरणम्' और 'दाररक्षिक-प्रकरणम्'।

७. देखिये, गीगर द्वारा अनूदित महावंश, p. 62 n.

८. *Cf. Imperial Gazetteer of India*, Provincial Series, *Central Provinces*, p. 158.

किया है। वैसे 'गुड' नामक एक स्थान का उल्लेख अवश्य आया है। परन्तु, अल्बेरूनी[1] के अनुसार 'गुड' अवध न होकर थानेश्वर का नाम था। उत्तरी भारत के कन्नौज एवं सरस्वती नदी तक के भूभाग के लिए जहाँ 'पंचगौड़' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह उल्लेख लगभग बारहवीं शताब्दी का है। सम्भवतः यह नाम धर्मपाल एवं देवपाल के गौड़ राज्य की याद में रखा गया होगा और उसको ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी का गौड़ देश मानना ग़लत होगा। हराहा-अभिलेख में स्पष्ट रूप से लिखा है कि गौड़-राज्य समुद्र-तट पर था, जिससे सिद्ध होता है कि छठी शताब्दी में गौड़ों का वास-स्थान अवध न होकर बङ्गाल था। अगली शताब्दी में गौड़-राजा शशांक की राजधानी मुर्शिदाबाद के निकट कर्णसुवर्ण नामक नगर था। वाक्पतिराज के 'गौडवहो' (८वीं शताब्दी) में एक ऐसे गौड़-राजा का उल्लेख आता है जिसे मगध का शासक बताया गया है। नवीं शताब्दी में गौड़-वंश उन्नति की चरम सीमा पर था, जबकि उनका आधिपत्य गंगा-दोआब तथा कन्नौज तक हो गया था। गौड़-वंश के प्रारम्भिक राजाओं के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। फ़रीदपुर तथा बर्दवान[2] ज़िले में कुछ ताम्रलेख मिले हैं, जिनमें तीन राजाओं—धर्मादित्य, गोपचन्द्र[3] तथा समाचारदेव—का उल्लेख मिलता है और उन्हें 'नव्यावकाशिका' 'वारक-मंडल' तथा वर्धमान भुक्ति (बर्दवान) का शासक बताया गया है। वप्पघोषवाट-अभिलेख के द्वारा हमें एक चौथे राजा जयनाग का भी पता चलता है जो कर्णसुवर्ण का शासक था। इन राजाओं को कहीं भी स्पष्ट रूप से 'गौड़' कह कर सम्बोधित नहीं किया गया है। सबसे पहला राजा जिसे 'गौड़' कहा गया है, वह राज्यवर्धन और हर्षवर्धन का प्रसिद्ध शत्रु शशांक है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, बङ्गाल के कुछ शासकों ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर ली थी। अतः इसमें अब कोई संदेह नहीं

१. i, 300.

२. मल्लसारुल-प्लेट (एस० पी० पत्रिका, 1344, 17)।

३. गोपचन्द्र सम्भवतः गोपाख्य नृपति ही हो। वह भानुगुप्त के पुत्र प्रकटादित्य का प्रतिद्वन्द्वी एवं समकालीन था। जी० शास्त्री द्वारा सम्पादित (आर्य-मंजुश्री-मूल-कल्प, p. 637)। यह भी असम्भव नहीं है कि 'धकराख्य' ही 'धर्मादित्य' रहा हो (*Ibid*., p. 644)। क्या वह वकाराख्य (वज्र) तथा पकाराख्य (प्रकटादित्य) का अनुज था ? यदि हमारा यह विचार सही मान लिया जाय, तो वह निस्संदेह गुप्त-वंश का ही था।

कि वे लोग पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो चुके थे तथा गुप्त-राजाओं की सत्ता किसी भी दशा अथवा अवस्था में स्वीकार नहीं थी।

गुप्त-साम्राज्य के अंतिम वर्षों में पुष्यमित्र का विद्रोह, हूणों का आक्रमण तथा प्रान्तीय सामन्तों एवं अन्य अधिकारियों की स्वतंत्र होने की प्रकृति ही पतन के कारण नहीं थे। बाह्य आक्रमणों तथा प्रान्तीय सामन्तों द्वारा आंतरिक विद्रोह के साथ-साथ हमें यह भी स्मरण रखना है कि स्वयं गुप्त-वंश में फूट एवं कलह उत्पन्न हो चुकी थी। कुमारगुप्त-प्रथम के पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये युद्ध हुआ—यह सत्य हो या न हो, परन्तु हमारे पास यथेष्ठ प्रमाण हैं, जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि चन्द्रगुप्त-द्वितीय के उत्तराधिकारियों में वैमनस्य आरंभ हो चुका था। अंतिम गुप्त-सम्राटों के वंशज अपने समय में होने वाले युद्धों या संघर्षों में अक्सर एक दूसरे के विरुद्ध होकर भी लड़ने लगे थे। अपने चचेरे भाई वाकाटक-शासकों के साथ भी इनका व्यवहार मैत्रीपूर्ण नहीं था। चन्द्रगुप्त-द्वितीय के प्रपौत्र (पुत्री प्रभावती का वंशज) नरेन्द्रसेन वाकाटक का मालव के उपशासक से संघर्ष का उल्लेख मिलता है। नरेन्द्रसेन के चचेरे भाई हरिषेण ने अवन्ती पर विजय प्राप्त की थी। जहाँ तक हर्ष के शासन-काल में गुप्त-सम्राटों का मालव से सम्बन्ध का प्रश्न है, यही कहा जा सकता है कि वाकाटकों ने कुछ भाग अपने चचेरे भाई गुप्त-राजाओं से भी प्राप्त किया था। यह तो ज्ञात ही है कि सातवीं शताब्दी में जहाँ देवगुप्त हर्ष के वंश का शत्रु था, वहीं माधवगुप्त उसका मित्र था।

अंत में, एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि जहाँ प्रारम्भिक गुप्त-सम्राट् कट्टर ब्राह्मण थे, तथा यज्ञादि में नरबलि देना उचित समझते थे, वहीं आगे चलकर बुद्धगुप्त, तथागतगुप्त तथा बालादित्य आदि कुछ सम्राटों का झुकाव बौद्धधर्म की ओर अधिक था। जिस प्रकार कलिंग-युद्ध के पश्चात् अशोक ने तथा चीनी यात्री के निकटतम सम्पर्क में आ जाने के पश्चात् हर्ष ने बौद्धधर्म को अपनाया था, तथा इस धर्म-परिवर्त्तन का सब से अधिक प्रभाव राज्य की सेना पर पड़ा था, उसी प्रकार इन अंतिम गुप्त-सम्राटों के धर्म-परिवर्त्तन के कारण भी साम्राज्य की राजनीतिक दशा एवं सेना पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। इस सम्बन्ध में ह्वेनसांग द्वारा दी गई कथा का स्मरण दिलाना उचित होगा। जब शाकल प्रदेश का क्रूर शासक मिहिरकुल, बालादित्य के साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिये बढ़ा तो बालादित्य ने अपने मन्त्रियों से कहा—"मैंने सुना है कि ये चोर बढ़े चले आ रहे हैं और मैं उनकी सेना के साथ युद्ध नहीं कर सकता, अपने मन्त्रियों की राय से मैं अपने कमज़ोर शरीर को दलदली

झाड़ियों में छिपा दूंगा।" यह कह कर अपनी बहुत-सी प्रजा के साथ वह एक द्वीप की ओर चला गया। मिहिरकुल पीछा करता हुआ आगे बढ़ा, परन्तु उसे जीवित अवस्था में ही बन्दी बना लिया गया। कुछ समय पश्चात् राजमाता[1] के कहने पर उसे मुक्त कर वापस जाने दिया गया। पता नहीं, यह कथा कहाँ तक विश्वसनीय है, परन्तु ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में भारतीयों को अंतिम गुप्त-सम्राटों की शक्ति एवं साहस में बहुत अधिक विश्वास एवं आस्था नहीं थी, और उन्हीं से चीनी यात्री ने यह कथा सुनी होगी। परन्तु इतना तो सभी स्वीकार करते ही हैं कि अन्तिम गुप्त-सम्राट् बड़े ही दयालु और पवित्र थे। बालादित्य तथा उसकी माता की दया के कारण ही मिहिरकुल को अत्याचार करने का अवसर मिला। साथ ही यशोधर्मन, ईशानवर्मन, प्रभाकरवर्धन आदि को अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने का अवसर मिलते ही, न केवल उन्होंने हूणों को खदेड़ा, बल्कि गुप्त-सम्राटों के एकाधिपत्य को भी उत्तर भारत में समाप्त कर दिया।

---

१. Beal, *Si-yu-ki*, I, 168 f; Watters, I, 288-89.

परिशिष्ट 'च'

विन्ध्यपर्वत-पार के भारतीय राज्यों, जनों तथा वंशों आदि की क्रमिक सूची

ब्राह्मण-काल— (१) निषाद (राजधानी गिरिप्रस्थ, महाभारत, III, 324,12)।

(२) विदर्भ (राजधानी कुण्डिन) तथा दूसरे भोज।

(३) दस्यु जाति—आन्ध्र, शबर, पुलिन्द तथा मूतिब।

सूत्र-काल— (१) माहिष्मती (मान्धाता अथवा महेश्वर; *IA*, 4, 346)।

(२) भृगु-कच्छ (ब्रोच)।

(३) शूरपारक (कोंकण में सोपर)।

(४) अश्मक (राजधानी पौदन्य, बोधन)।

(५) मूलक (राजधानी प्रतिष्ठान)।

(६) कलिंग (राजधानी दंतपुर)।

(७) (?) उक्कल (उत्तरी उड़ीसा)।

रामायण-काल—गोदावरी के दक्षिण की ओर आर्यों का विस्तार—पम्पा-तट पर बसना—मलय, महेन्द्र तथा लंका की खोज।

मौर्य-काल— / मौर्य-साम्राज्य—

(१) अपरान्त (राजधानी शूरपारक)।
(२) भोज (राजधानी कुण्डिन ?)।
(३) राष्ट्रिक (राजधानी नासिक ?)।
(४) पेतेनिक (प्रतिष्ठान के निवासी ?)।
(५) पुलिन्द (राजधानी पुलिन्दनगर)
(६) आंध्र (राजधानी बेजबाड़ा आदि ?)।
(७) अटवी।
(८) कलिंग (तोसली तथा समापा भी सम्मिलित थे)
(९) सुवर्णगिरि का प्रदेश।
(१०) इसिला का आहार।

(११) चोल ।
(१२) पाण्ड्य ।
(१३) केरलपुत्र ।
(१४) सतियपुत्र (केरलोत्पत्ति की सत्यभूमि ?) ।
(१५) ताम्रपर्णी (श्रीलंका) ।

मौर्य-काल के—(१) विदर्भ-राज्य ।
पश्चात्— (२) दक्षिण-पथ के सातवाहन ।
(३) कलिंग के चेत ।
(४) मसुलीपटम के निकट पिथुड राज्य ।
(५) चोल राज्य ।
(६) पाण्ड्य राज्य ।
(७) केरल राज्य ।
(८) श्रीलंका का राज्य (जहाँ कभी चोल राजाओं का शासन था) ।

पेरीप्लस का युग—(१) मम्बरुस (या नम्बनुस) के निकट अरियक का दक्षिणी भाग ।
(२) सरगनुस तथा उसके उत्तराधिकारियों के अधीन दक्षिण-बदेस (सातवाहन शातकर्णियों के अधीन दक्षिण) ।
(३) दमीरिका (तमिलकम, द्रविड़) जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित थे—
(अ) केरोबोथ्र (केरलपुत्र) ।
(ब) पाण्ड्य राज्य ।
(स) अर्गरु (उरगपुर) राज्य ।
(४) मसलिया (मसुलीपटम) ।
(५) दोसरेन (=तोसली) ।

तोलेमी का युग—(१) बैथन (प्रतिष्ठान) राज्य, पुलुमायि (सातवाहन) द्वारा शासित ।
(२) हिप्पोकौर राज्य (कोल्हापुर), बैलिओकौरोस (विलिवायकुर) द्वारा शासित ।
(३) मौसोपल्ली राज्य (कनेरी प्रदेश में) ।
(४) करौर राज्य, केरोबोथ्रोस (केरलपुत्र) द्वारा शासित ।
(५) पौन्नत (दक्षिण-पश्चिमी मैसूर) ।

(६) अई ओई राज्य (दक्षिण ट्रावनकोर में, राजधानी कोट्टिअर)।
(७) करेओई राज्य (ताम्रपर्णी घाटी)।
(८) मोदौर (मदुरा) राज्य, पांड्य-वंश द्वारा शासित।
(९) बटोई राज्य (राजधानी निकम)।
(१०) ओरथौर राज्य, सोर्नगोम द्वारा शासित (चोल और नाग वंश।
(११) मोर (चोल) राज्य, अर्नतोस द्वारा शासित।
(१२) मलंग (काँची ?,) (मविलंगाई ?) राज्य, बमरोनाग (नाग ?) द्वारा शासित।
(१३) पितुंद्र (पिथुड) राज्य।

सन १५० से (१) आभीर (उत्तरी महाराष्ट्र तथा पश्चिमी भाग्न)।
३५० ई०—(२) वाकाटक (बरार तथा आसपास प्रदेश) तथा महाकान्तार के शासक।
(३) दक्षिणी कोशल, कौराल, कोट्टूर, एरण्डपल्ल, देवराष्ट्र (वशिष्ठ के वंशज ?), पिष्टपुर (माठर-कुल के अधीन ?), अवमुक्त, पलक्क तथा कुस्थलपुर के राज्य।
(४) आन्ध्रपथ (तथा वेंगी) राज्य—
(अ) इक्ष्वाकु।
(ब) आनन्द-गोत्र (कन्दरपुर) के शासक।
(स) कुदुर आदि के बृहत्फलायन।
(द) वेंगीपुर के सालंकायन (तोलेमी के सलकेनोई ?), इन्हीं में से एक वेंगी का हस्तिवर्मन था।
(५) काँची के पल्लव।
(६) कुन्तल के शासकर्णि।

सन् ३५० से (१) कोंकण के त्रैकुटक तथा मौर्य और दक्षिणी गुजरात के लाट, ६०० ई०— नाग तथा गुर्जर।
(२) वाकाटक (मध्य दक्षिण)।
(३) कटच्चुरि (उत्तरी महाराष्ट्र तथा मालव)।
(४) शरभपुर (दक्षिणी कोसल) के राजा।
(५) मेकला के पाण्डव।
(६) उड़, कोंगोद, कलिंग [वशिष्ठ-वंश, माठर कुल, मुद्गल-वंश

(*Ep. Ind.*, xxiii, 199 ff) तथा पूर्वी गंगा के अधीन]; लेन्डुलुर (विष्णुकुण्डिन के अधीन) पूर्वी दक्षिण में ।

(७) कांची के पल्लव (द्रमिल अथवा द्रविड़ में) ।

(८) चोल, पाण्ड्य, मूषक तथा केरल (सुदूर दक्षिण में) ।

(९) दक्षिणी मैसूर के गंग और आलुप (सिमोगा तथा दक्षिणी कनारा के पास) ।

(१०) पूर्वी मैसूर तथा उत्तरी आरकाट के वाण, दावंगीर तालुक के केकय, वैजयन्ती आदि के कदम्ब, और उत्तरी-पश्चिमी मैसूर में तुकर प्रदेश अथवा नागरखण्ड के सेन्द्रक ।

(११) नल—(अ) पुष्करी, जो पोदागढ़ (जयपुर एजेन्सी) क्षेत्र में शासन करते थे, (ब) बरार के येवतमाल और सम्भवत: (स) बेल्लारी जिला भी । सभी नल-वंश के थे ।

(१२) वातापी के प्रारम्भिक चालुक्य ।

सन् ६००ई०(१) कोंकण के शिलाहार ।

में पश्चात्—(२) प्रारम्भिक चालुक्य, राष्ट्रकूट जिनमें मानदेश आदि के वंशज भी सम्मिलित थे । पश्चिमी दक्षिण के उत्तर चालुक्य, कलचुरि तथा यादव ।

(३) त्रिपुरी तथा रत्नपुर के हैहय, कलचुरि अथवा चेदि और चक्रकूट (मध्य प्रदेश) के नाग ।

(४) पूर्वी चालुक्य, वेल्लाण्डु के स्वामी तथा तेलुगु प्रदेश के काकतीय; कलिंग तथा उड़ीसा के पूर्वी गंग: महानदी घाटी (उत्तर-पूर्व दक्षिण) के कर, शबर (? शशधर एवं पाण्डु के वंशज) तथा सोमवंशी गुप्त ।

(५) पश्चिमी गंग, सान्तर तथा होयसल (मैसूर) ।

(६) कांची के पल्लव, रेनाण्डु के वैदुम्बर, तिन्नवेली जिले के कलभ्र, तंजोर के चोल, केरल और कोलम्ब के वर्मन, मदुरा (सुदूर दक्षिण) के पाण्ड्य ।

———

शताब्दी	पश्चिमी मालवा और सुराष्ट्र	निम्नतर सिन्धु-घाटी	पूर्वी तथा मध्य पंजाब	पश्चिम
ई० पू० (?) ९वीं " शताब्दी	प्रागैतिहासिक आनर्त (राजधानी द्वारका)	सिन्धु-सौवीर का राज्य	शाकल के मद्र राजा	केकय
(?) ७वीं "			काप्य पतञ्चल (ऋषि)	अश्वप केकय
६ठी "	उज्जैन के प्रद्योत	रोरुक के रुद्रायन		
५वीं "				
४थी "		मौसिकानो पिथोन	पोरस तथा स्वतन्त्र जातियाँ फिलिप्पोस, यूदमोस	पोरस
			मौ र्य	सा म्रा
३री "	पुष्यगुप्त वैश्य उज्जैन के मौर्य-कुमार और यवनराज तुषास्फ			
२री "				
१ली "		दत्तामित्री के ग्रीकवासी	शाकल के ग्रीक राज्य	
ईस्वी सन् १ली शताब्दी			आरट्ट ...	
	अरियक के नम्बनुस, ओज़ीन राजधानी नहीं थी	मिन्नगर के पार्थियन	कु षा ण	
२री "	ओजेन (चष्टान) के टियस्टेन रुद्रदामन तथा सुविशाख	रुद्रदामन ...	पाण्डूई ...	
३री "				
४थी "				
	शक मुरुण्ड, मालव तथा आभीर		मद्रक तथा यौधेय	
५वीं "	गुप्त तथा मंदसौर के वर्मन-सामन्त पर्णदत्त			

सन्दर्भ-अनुक्रमणिका

(अँग्रेज़ी-क्रम)

(हिन्दी-क्रम)

सामान्य अनुक्रमणिका

(हिन्दी-क्रम)

अ

घ

च

थ

द

ध

न

प

म

य

श

ह